भारत में अंगरेज़ी राज्य

भारत में अङ्गरेज़ों के आगमन, अङ्गरेज़ी सत्ता के विस्तार,
अङ्गरेज़ विजेताओं के साधन, और हमारी
क़ौमी कमज़ोरियों का

इतिहास

दूसरा भाग

लेखक

सुन्दरलाल

प्रकाशक

'चाँद' कार्यालय

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण, २००० } { दो भाग का मूल्य १६)

प्रकाशक
'चाँद' कार्यालय
इलाहाबाद

पहली बार २,०००

मुद्रक
आर० सहगल
फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉटेज,
इलाहाबाद

विषय-सूची

छब्बीसवाँ अध्याय

भरतपुर का मोहासरा

सत्ताईसवाँ अध्याय

दूसरे मराठा युद्ध का अन्त

अट्ठाईसवाँ अध्याय

प्रथम लॉर्ड मिण्टो

[१८०७—१८१३]

मुग़लों के समय से तुलना—कम्पनी के साथ साथ भारत में कुशासन और अराजकता का आगमन—अङ्गरेज़ों के सब से बड़े शत्रु जसवन्तराव का चरित्र—होलकर दरबार में अङ्गरेज़ों के षड्यन्त्र—जसवन्तराव का एकाएक पागल हो जाना—होलकर दरबार में कम्पनी के धनक्रीत अमीरख़ाँ का बल—जसवन्तराव की मृत्यु—मराठा सरदारों की आपसी फूट में अङ्गरेज़ों का हित—पिण्डारी और अङ्गरेज़—पिण्डारियों का सच्चा चरित्र—उनकी उत्पत्ति—मराठों से उनका सम्बन्ध—पिण्डारियों का सङ्गठन—मराठों और मुसलमानों में परस्पर सम्बन्ध—अङ्गरेज़ों का पिण्डारियों को धन दे देकर उनसे देशी राजाओं के इलाक़ों में लूट मार करवाना—पिण्डारी सरदारों की ओर कम्पनी की दुरङ्गी चालें—अङ्गरेज़ों का उद्देश—बरार के राजा पर सबसीडीयरी सन्धि के लिए ज़ोर—बरार के विरुद्ध अमीर ख़ाँ को भड़काना—निज़ाम को बरार के विरुद्ध उकसाना—बरार के राजा को निज़ाम और अमीर ख़ाँ दोनों के विरुद्ध भड़काना—अमीरख़ाँ के साथ विश्वासभङ्ग—ईरान और अफ़ग़ानिस्तान के प्रति वेलसली की नीति—ईरान के बादशाह को धन का लोभ देकर अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध भड़काना—अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह ज़मानशाह के विरुद्ध कम्पनी की अन्य साज़िशें—शिया और सुन्नियों में फूट डलवाना—वेलसली का पत्र कप्तान मैलकम के नाम—कूटनीति का एक सुन्दर नमूना—ज़मानशाह के भाइयों को उसके विरुद्ध भड़काना—कप्तान मैलकम की कोशिशों द्वारा अफ़ग़ानिस्तान में आपसी झगड़े—राजहत्या, रक्तपात और क्रान्ति—लॉर्ड मिण्टो और ईरान—ईरान के दरबार में अङ्गरेज़ दूत जोन्स और मैलकम—मैलकम की धृष्टता—उसका ईरान से विफल लौटना—मैलकम का दोबारा ईरान जाना—ईरान को अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध और अफ़ग़ानिस्तान को ईरान

उन्तीसवाँ अध्याय

भारतीय उद्योग धन्धों का सर्वनाश

के धन्धों की अपूर्व उन्नति—इङ्गलिस्तान में नई ईजादें—चारटर ऐक्ट—भारतीय उद्योग धन्धों को नाश करने के विधिवत् प्रयत्न—सूरत, मद्रास और बङ्गाल के जुलाहों पर अत्याचार—मनमाने दाम—ज़बरदस्ती काम—आजीवन ग़ुलामी—अनसुने दण्ड—रेशम का व्यापार—ज़बरदस्ती के इक़रारनामे—जुलाहों को धर्मभ्रष्ट करना—बुनने के धन्धे का नाश—सैकड़ों ग्रामों की वीरानी—अँगूठे काटना—समस्त रय्यत पर अत्याचार—रय्यत का अपने बच्चे बेचने और देश छोड़ने पर मजबूर होना—संसार के इतिहास में अपूर्व अन्याय—सन् १८१३ की नई व्यापारिक नीति—भारत के उद्योग धन्धों को नष्ट करके इङ्गलिस्तान के उद्योग धन्धों को बढ़ाने का स्पष्ट निश्चय—उसके सात उपाय—भारत में इङ्गलिस्तान के बने माल पर और हिन्दोस्तान से इङ्गलिस्तान जाने वाली रुई पर महसूल माफ़—भारत के बने माल पर इङ्गलिस्तान में ज़बरदस्त महसूल—भारत के बने कपड़ों का इङ्गलिस्तान में आना क़ानून द्वारा बन्द किया जाना—इङ्गलिस्तान में भारत का कपड़ा पहनने वालों को राजदण्ड—दोनों जगह के कपड़ों की तुलना—इङ्गलिस्तान में अन्य भारतीय माल—३०००) फ़ी सैकड़ा तक महसूल—कठोर बहिष्कार—राजनैतिक अन्याय—भारत की मण्डियों तक में भारत के माल का बिक सकना असम्भव कर देना—चुङ्गी के पुराने भारतीय ढङ्ग और कम्पनी की नई पद्धति की तुलना—दोनों में अन्तर—नई चौकियाँ—पहले की अपेक्षा कई गुनी चुङ्गी—नए रवन्ने—तलाशी की चौकियाँ—देश के आन्तरिक व्यापार का सत्यानाश—अङ्गरेज़ व्यापारियों को विशेष सहायता—भारतवासियों के ख़र्च पर अङ्गरेज़ों को मदद—चाय के बाग़ीचों में ग़ुलामी की प्रथा—नील की खेती—भारतीय कारीगरी के रहस्यों का पता लगाना—प्रदर्शनियाँ—अजायबघर—अठारह

तीसवाँ अध्याय

नैपाल युद्ध

इकतीसवाँ अध्याय

हेस्टिंग्स के अन्य कृत्य

बत्तीसवाँ अध्याय

तीसरा मराठा युद्ध

आदेश—राघोजी के पुत्र बाला साहब का गद्दी पर बैठना—आधी रात के समय अप्पा साहब को घेर कर बाला साहब की ओर से उससे सबसीडीयरी सन्धि पर हस्ताक्षर कराना—राजा बाला साहब की अचानक हत्या—रेज़िडेण्ट जेनकिन्स पर सन्देह—अप्पा साहब और अङ्गरेज़ों में अनबन—अप्पा साहब को पेशवा की ओर से ख़िलअत—रेज़िडेण्ट के विरुद्ध अप्पा साहब की शिकायतें—अप्पा साहब के साथ युद्ध की तैयारी—अङ्गरेज़ी सेना की नागपुर पर चढ़ाई—नागपुर में दो दल—अङ्गरेज़ी सेना पर हमला—मराठा सेना की क्षणिक हार—अङ्गरेज़ों की शर्तें—अप्पा साहब से झूठा वादा—राज्य के वफ़ादार अरब सिपाही—अङ्गरेज़ी सेना की हार—और अधिक अङ्गरेज़ी सेना का नागपुर पहुँचना—दूसरी बार अङ्गरेज़ी सेना की हार—अरबों के साथ समझौते की बातचीत—अरबों की अदम्य स्वामिभक्ति—अप्पा साहब के साथ फिर झूठा वादा—नागपुर महल पर अङ्गरेज़ों का क़ब्ज़ा—अप्पा साहब के साथ विश्वासभङ्ग—नई शर्तें—अप्पा साहब पर झूठे दोष—अप्पा साहब की गिरफ़्तारी—नया दुधमुँहा राजा—नई सन्धि—आधे राज्य पर कम्पनी का क़ब्ज़ा—मध्य भारत के क़िले—अप्पा साहब की कहानी—राचूरी में अङ्गरेज़ों की क़ैद से अप्पा साहब का भागना—गोंड जाति का उसे मदद देना—अप्पासाहब का चौरागढ़ जाना—बरहानपुर—अप्पा साहब की गिरफ़्तारी के लिए कम्पनी की ओर से एक लाख का इनाम—असीरगढ़ का संग्राम—अप्पा साहब का अधीनता स्वीकार करने से इनकार करना—उसकी लाहौर यात्रा—उसका मण्डी जाना—जोधपुर में निर्वासित अप्पा साहब की मृत्यु—होलकर की मृत्यु के बाद होलकर राज्य में फूट और कुशासन—हेस्टिंग्स का होलकर राज्य पर हमला—महीदपुर का संग्राम—

तैंतीसवाँ अध्याय

लॉर्ड ऐमहर्स्ट

[१८२३—१८२८]

पहला बरमा युद्ध

दोनों ओर से अङ्गरेज़ों का बरमा पर हमला—रङ्गून पर अङ्गरेज़ों का क़ब्ज़ा—बरमी प्रजा का अङ्गरेज़ों के साथ असहयोग—रङ्गून निवासियों को अपनी ओर फोड़ने के असफल प्रयत्न—आसामनिवासियों को लोभ देना—बरमी सेनापति महाबन्दूला—रत्नपुल्लुङ्ग का घमासान संग्राम—अङ्गरेज़ी सेना की भयङ्कर हार—भारत में तहलका—कलकत्ते पर हमले का डर—महाबन्दूला का रङ्गून जाना—कम्पनी का अपने भारतीय सिपाहियों के साथ अनुचित व्यवहार—बैरेकपुर के सिपाहियों की शिकायतें—उनके कष्ट—उनके धार्मिक विचारों पर हमला—उनसे हथियारों का रखाया जाना—उन पर पीछे से गोले बरसा कर उनका संहार—इस वीभत्स घटना पर हरबर्ट स्पेन्सर की राय—बरमा के प्रान्तीय शासकों और वहाँ की प्रजा को अपनी ओर करने के लिए कम्पनी का पानी की तरह धन बहाना—महाबन्दूला की मृत्यु—अङ्गरेज़ों की ओर से दो बार सुलह की प्रार्थना—दोनों बार बरमी दरबार का अङ्गरेज़ों की शर्तें स्वीकार न करना—भरतपुर की हार का अङ्गरेज़ों के दिलों में खटकते रहना—महाराजा भरतपुर की मृत्यु—गद्दी के दो हक़दार—एक का पक्ष लेकर अङ्गरेज़ों का २५ हज़ार सेना सहित भरतपुर पहुँचना—सवा महीने का मोहासरा—अङ्गरेज़ों के पक्ष वाले हक़दार की विजय—अङ्गरेज़ों की युद्ध कीर्ति का फिर से क़ायम होना—भरतपुर की प्रजा पर कम्पनी के अफ़सरों के अत्याचार—भारतीय नरेशों से धन वसूल करने का ढङ्ग—भरतपुर के पतन का बरमा युद्ध पर प्रभाव—बरमा दरबार के साथ कम्पनी की सन्धि—सम्राट अकबरशाह के साथ लॉर्ड ऐमहर्स्ट के झूठे वादे—सम्राट का अपमान—दिल्ली में गहरा शोक—भारतवासियों में राष्ट्रीयता के भावों की कमी। १०४३—१०७८

चौंतीसवाँ अध्याय

लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क

[१८२८—१८३५]

अङ्गरेज़ों और मुसलमानों के शासन की तुलना—कम्पनी की भारतीय नीति का सच्चा रूप—कम्पनी की झूठी सन्धियाँ—अङ्गरेज़ी उपनिवेश के लिए कुर्ग की आवश्यकता—कुर्ग में बेण्टिङ्क की साज़िशें—कुर्ग पर चढ़ाई—राजा की शान्तिप्रियता—कुर्ग पर कम्पनी का क़ब्ज़ा—झूठा एलान—प्रजा के साथ विश्वासभङ्ग—राजा के साथ अनुचित व्यवहार—कुर्ग की लूट का बटवारा—कुर्ग में अङ्गरेज़ी क़हवे के बग़ीचे—कछाड़ की रियासत का अन्त—मैसूर राज्य की ज़बरदस्ती कुर्क़ी—साँभर पर कम्पनी का क़ब्ज़ा—अवध के नवाब के साथ ज़बरदस्ती—दिल्ली सम्राट पर बेजा दबाव—ग्वालियर में उपद्रवों का खड़ा किया जाना—ग्वालियर को हड़पने की कोशिश—झाँसी में कम्पनी की साज़िशों का प्रारम्भ—इन्दौर में असफल कुचक्र—लॉर्ड बेण्टिङ्क का छल द्वारा सिन्धु नदी के जलमार्ग की थाह लेना—उसका उद्देश—सिन्ध के अमीरों को धोखा देना—महाराजा रणजीतसिंह के पास इङ्गलिस्तान के बादशाह की ओर से उपहार भेजने का बहाना—महाराजा रणजीतसिंह के साथ सन्धि का उल्लङ्घन—बेण्टिङ्क और रणजीतसिंह की भेंट—शाह-शुजा को भड़काकर उससे काबुल पर हमला करवाना—आगामी अफ़ग़ान युद्ध की प्रस्तावना—पुराने घरानों की समाप्ति—माफ़ी की ज़मीनों का ज़ब्त कर लिया जाना—सहस्रों घरानों की बरबादी—धार्मिक तथा

पैंतीसवाँ अध्याय

सन् १८३३ का चारटर एक्ट

छत्तीसवाँ अध्याय

भारतीय शिक्षा का सर्वनाश

शिक्षा सम्बन्धी संस्थाएँ—छोटे से छोटे ग्राम में पाठशाला—बङ्गाल में ८०,००० पाठशालाएँ—इङ्गलिस्तान में भारतीय शिक्षा प्रणाली का अनुसरण—कम्पनी के शासन में भारतीय शिक्षा का ह्रास—मद्रास प्रान्त की अवस्था—कम्पनी से पहले और कम्पनी के बाद की तुलना—शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं को राज्य की ओर से सहायता का बन्द हो जाना—महाराष्ट्र तथा बम्बई प्रान्त की अवस्था—साहित्य और विज्ञान की दिन प्रतिदिन अवनति—कम्पनी के अधीन शिक्षा के ह्रास के चार मुख्य कारण—(१) देश की बढ़ती हुई दरिद्रता—(२) प्राचीन ग्राम पञ्चायतों का नाश—(३) शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं की जागीरों का छिन जाना—और (४) अङ्गरेज़ शासकों की ओर से शिक्षा का विरोध—भारतवासियों को शिक्षा देने के विषय में अङ्गरेज़ शासकों में मतभेद—उनकी शिक्षा से अङ्गरेज़ों को डर—भारतवासियों के अनैक्य में अङ्गरेज़ी राज्य की कुशल—उनकी एकता से अङ्गरेज़ी राज्य को ख़तरा—सर जॉन मैलकम के स्पष्ट विचार—सन् १८१३ का चारटर एक्ट—भारतवासियों में धार्मिक पक्षपात को बनाए रखने की आवश्यकता—हिन्दू और मुसलमानों को एक दूसरे से लड़ाए रखना—शिक्षा के सम्बन्ध में अङ्गरेज़ शासकों के विचारों में परिवर्तन—बिना शिक्षित भारतवासियों की सहायता के शासन का न चल सकना—भारतवासियों में ईसाई धर्म प्रचार की आवश्यकता—सन् १८५३ का चारटर एक्ट—दोनों दलों में बहस—ब्रिटिश साम्राज्य का रहस्य—शिक्षा के पक्ष वालों के विचार—पश्चिमी शिक्षा द्वारा भारतवासियों को राष्ट्रीयता के विचारों से दूर रखना—शिक्षा के पक्ष वालों में दो तरह के विचार—एक भारतवासियों को पूर्वीय शिक्षा देने के पक्ष में, और दूसरे उन्हें अङ्गरेज़ी शिक्षा देने के पक्ष में—लॉर्ड मैकॉले

सैंतीसवाँ अध्याय

पहला अफ़ग़ान युद्ध

बर्न्स का दूसरी बार अफ़ग़ानिस्तान भेजा जाना—बर्न्स का असफल भारत लौटना—अफ़ग़ानिस्तान के साथ युद्ध की तैयारी—दोस्तमोहम्मद ख़ाँ को उतार कर उसकी जगह शाहशुजा को अफ़ग़ानिस्तान के तख़्त पर बैठाने की चेष्टा—दोस्तमोहम्मद ख़ाँ के विषय में पार्लिमेण्ट के सरकारी काग़ज़ों में जालसाज़ी—कम्पनी, महाराजा रणजीतसिंह और शाहशुजा में सन्धि—शाहशुजा को काबुल के तख़्त पर बैठाने का वादा—अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई—सिन्ध के रास्ते अङ्गरेज़ी सेना की यात्रा—सिन्ध के अमीरों के साथ सन्धि का उल्लङ्घन—अमीरों के साथ ज़बरदस्ती—युद्ध के ख़र्च के लिए उनसे धन वसूल किया जाना—कप्तान ईस्टविक और अमीर नूरमोहम्मद ख़ाँ में बातचीत—सिन्ध की प्रजा पर अङ्गरेज़ी सेना के अत्याचार—अङ्गरेज़ी सेना का अफ़ग़ानिस्तान पहुँचना—साज़िशों के प्रताप सफलता—दोस्तमोहम्मद ख़ाँ का क़ैद करके भारत भेजा जाना—शाहशुजा के नाम पर अफ़ग़ानिस्तान में अङ्गरेज़ों का शासन—युद्ध का जारी रहना—अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर अङ्गरेज़ों के अत्याचार—अफ़ग़ान सरदारों के साथ विश्वासभङ्ग—अफ़ग़ानियों में फूट डालने के प्रयत्न—शिया और सुन्नियों को एक दूसरे से लड़ाना—धन ख़र्च करके अफ़ग़ान सरदारों की गुप्त हत्याएँ करवाना—मोहनलाल के नाम कोनोली का पत्र—अङ्गरेज़ राजदूतों और अङ्गरेज़ अफ़सरों की घृणित पाशविक वृत्तियाँ—अफ़ग़ान स्त्रियों के सतीत्व पर हमला—अफ़ग़ान जाति का भयङ्कर क्रोध—अङ्गरेज़ों को अपने देश से बाहर निकालने का सङ्कल्प—शाहशुजा की हत्या—बर्न्स की हत्या—मैकनॉटन की हत्या—अङ्गरेज़ी सेना की पराजय—अफ़ग़ानिस्तान में अङ्गरेज़ बन्धक—बची खुची अङ्गरेज़ी सेना का अफ़ग़ानिस्तान से वापस लौटना—मार्ग में थकान और

सरदी—सोलह हज़ार की सेना में से केवल एक व्यक्ति का बच कर भारत पहुँचना—लॉर्ड एलेनब्रु के विचार—अफ़ग़ान युद्ध के विषय में भारत के अन्दर झूठे एलान—एलेनब्रु का मुसलमानों से द्वेष—हिन्दुओं को अपनी ओर करने के प्रयत्न—सोमनाथ के बनावटी फाटक और उनका जुलूस—ब्रिटिश कूटनीति का एक सुन्दर नमूना—अफ़ग़ान युद्ध का असह्य ख़र्च—जनरल पोलक का नई सेना सहित अफ़ग़ानिस्तान जाना—काबुल में पोलक का अनुचित व्यवहार—दोस्तमोहम्मद ख़ाँ के पुत्र अकबर ख़ाँ और कम्पनी में सन्धि—दोस्तमोहम्मद ख़ाँ की वापसी—उसका फिर से अफ़ग़ानिस्तान के तख़्त पर बैठना—प्रथम अफ़ग़ान युद्ध का अन्त। ११६४—११६९

अड़तीसवाँ अध्याय

सिन्ध पर अङ्गरेज़ों का क़ब्ज़ा

सिन्ध के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रारम्भिक सम्बन्ध—सिन्ध के धन्धों का नाश—अङ्गरेज़ों का सिन्ध से निकाला जाना—दूसरी बार अङ्गरेज़ों को व्यापार की इजाज़त—कम्पनी के लोगों का अनुचित व्यवहार—दूसरी बार अङ्गरेज़ों का सिन्ध से निकाला जाना—सिन्ध के अमीरों और कम्पनी के बीच पहली सन्धि—दो वर्ष बाद सिन्ध के अमीरों के साथ दूसरी सन्धि—सन् १८३७ में सिन्ध के अमीरों के साथ तीसरी सन्धि—अङ्गरेज़ों की ओर से हर बार की सन्धि का उल्लङ्घन—सन् १८२० में सिन्धु नदी की सरवे—सिन्ध पर कम्पनी के दाँत—पुरानी

सन्धियों का उल्लङ्घन—हर बार नई सन्धियाँ—सिन्ध के अमीरों पर बेजा दबाव—सन् १८३९ की अन्तिम सन्धि—सिन्ध के दो भाग—ख़ैरपुर के अमीरों और हैदराबाद के अमीरों में प्रेम का सम्बन्ध—ख़ैरपुर के अमीर मीर रुस्तम ख़ाँ के साथ सन्धि का उल्लङ्घन—भक्कर के क़िले पर अङ्गरेज़ी सेना का क़ब्ज़ा—मीर रुस्तम ख़ाँ के साथ झूठा वादा—सन् १८३८-३९ की नई सन्धियाँ—सिन्ध के अन्दर कम्पनी की साज़िशें—मीर रुस्तम ख़ाँ के छोटे भाई मीरअली मुराद को मीर रुस्तम ख़ाँ के विरुद्ध फोड़ना—मीर रुस्तम ख़ाँ के विरुद्ध जाली पत्र—सिन्ध पर क़ब्ज़ा करने की अङ्गरेज़ों की इच्छा के पाँच मुख्य कारण—सर चार्ल्स नेपियर की सिन्ध पर चढ़ाई—अली मुराद के साथ साज़िश का पक्का किया जाना—सिन्ध के अमीरों के ऊपर झूठे इलज़ाम—मीर रुस्तम ख़ाँ की सुलह की कोशिश—मीर रुस्तम ख़ाँ के साथ नेपियर के घृणित छल—नेपियर की ख़ैरपुर पर चढ़ाई—मीर रुस्तम ख़ाँ का हैदराबाद की ओर भागना—ख़ैरपुर की लूट—हैदराबाद पर नेपियर की चढ़ाई—हैदराबाद के अमीरों का सुलह के लिए बार बार प्रार्थना करना—बार बार नेपियर का उनसे छल—मेजर ऊटरम का हैदराबाद पहुँचना—ऊटरम का अमीरों को धोखे में रखना—नेपियर का सेना सहित हैदराबाद की ओर बढ़ना—बलूचियों में खलबली—निरपराध बलूची सरदार हयात ख़ाँ का क़ैद किया जाना—बलूचियों में बेचैनी—अमीरों की आश्चर्यजनक शान्ति-प्रियता—मियानी का संग्राम—बलूचियों की आश्चर्यजनक वीरता—ऊटरम के बहकाए में आकर अमीर नसीर ख़ाँ का अपने १२ हज़ार सैनिकों को संग्राम में भाग लेने से रोके रखना—बलूची सेना में विश्वासघातक—अङ्गरेज़ी सेना की विजय—मीर नसीर ख़ाँ से अङ्गरेज़ों के झूठे वादे—अङ्गरेज़ी सेना

उन्तालीसवाँ अध्याय

अन्य भारतीय नरेशों के साथ
वलेनज़ी का व्यवहार

चालीसवाँ अध्याय

पहला सिख युद्ध

महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु के पश्चात् पञ्जाब में उपद्रव खड़े करने के प्रयत्न—सिखों के साथ युद्ध की तैयारी—लाहौर दरबार के मुख्य-मुख्य लोगों को दलीपसिंह के विरुद्ध फोड़ने की चेष्टाएँ—प्रधान मन्त्री लालसिंह के साथ साज़िश—अङ्गरेज़ों का सरदार तेजसिंह को अपनी ओर फोड़ना—तीसरे देशद्रोही गुलाबसिंह का विश्वासघात—पञ्जाब के प्रभावशाली कुलों के चरित्र का आश्चर्यजनक पतन—सिखों के साथ सन्धि का उल्लङ्घन—लाहौर दरबार की निर्दोषता—युद्ध का एकमात्र कारण अङ्गरेज़ों की साम्राज्य-पिपासा—युद्ध का बहाना—इस बहाने की असलीयत—कम्पनी के विरुद्ध लाहौर दरबार की शिकायतें। लालसिंह और तेजसिंह द्वारा सिख सेना को भड़काने के प्रयत्न—अङ्गरेज़ गुप्तचर जनरल वेन्तुरा—मुदकी का संग्राम—सिख सेना की भयङ्कर वीरता—अङ्गरेज़ों की भारी हानि—लालसिंह और तेजसिंह के विश्वासघात द्वारा सिख सेना को छर्रों की जगह सरसों और बारूद की जगह रँगा हुआ आटा दिया जाना—मुदकी में अङ्गरेज़ों की विजय—फ़ीरोज़शहर की लड़ाई—सिख सेना की आश्चर्यजनक वीरता—अङ्गरेज़ों की अपूर्व हानि—गवरनर-जनरल हार्डिञ्ज की घबराहट—अङ्गरेज़ी सेना की पराजय—लालसिंह का छल द्वारा सिख सेना को आगे बढ़ने से रोके रखना—कम्पनी की ओर से सिख सिपाहियों और अफ़सरों को प्रलोभनों का एलान—महाराजा पटियाला को अपनी ओर रखने के प्रयत्न—अलीवाल की काग़ज़ी लड़ाई—सुबराँव का संग्राम—सिख

सेना की अद्भुत वीरता—लालसिंह और तेजसिंह का आगे बढ़ कर पुल तोड़ देना—सिख क़ौम के साथ जम्मू के राजा गुलाबसिंह का विश्वासघात—विश्वासघाती नेताओं का धोखा देकर स्वयं अपनी सेना को नदी में ढकेल देना—सुबराँव के मैदान में पञ्जाब की स्वाधीनता का अन्त—बूढ़े सरदार शामसिंह अटारी वाले की वीरता और उसका बलिदान—उस समय की सिख तोपों से यूरोपियन तोपों की तुलना—पञ्जाब को कम्पनी के राज्य में मिलाने में कठिनाई—लाहौर दरबार के साथ कम्पनी की सन्धि—देशद्रोही लालसिंह के हाथों में सत्ता—देशद्रोही गुलाबसिंह को इनाम में काश्मीर की रियासत का दिया जाना—लाहौर दरबार के साथ दूसरी सन्धि—महारानी झिन्दाँ का शासन-प्रबन्ध से अलग किया जाना—आठ सरदारों की कौन्सिल—रेज़िडेण्ट के हाथों में सत्ता—पञ्जाब में कम्पनी की सेना की स्थापना—शिवाजी के वंशज राजा प्रतापसिंह का अङ्गरेज़ों की क़ैद में घुलघुल कर मर जाना। १२६२—१२८७

इकतालीसवाँ अध्याय

दूसरा सिख युद्ध

लाहौर के रेज़िडेण्ट सर फ़्रेडरिक करी का अनुचित व्यवहार—मुलतान प्रान्त—दीवान मूलराज का शासन—मूलराज के साथ लालसिंह की ज़बरदस्ती—भगवानसिंह को उसकी जगह दीवान बनाने की चेष्टा—१६ दिसम्बर सन् १८४६ को भैंरोवाल की सन्धि—अङ्गरेज़ों का दीवान मूल राज को दिक़ करना—उसके ख़िराज का बढ़ाया

बयालीसवाँ अध्याय

दूसरा बरमा युद्ध

एक अङ्गरेज़ी जहाज़ के कप्तान शैपर्ड को नरहत्या और लूट के दण्ड में बरमी अदालत का १०१ पाउण्ड जुर्माना करना—एक दूसरे अङ्गरेज़ कप्तान लुई को नरहत्या के अपराध में ७० पाउण्ड जुर्माना—लॉर्ड डलहौज़ी का अनधिकार हस्तक्षेप—दो अङ्गरेज़ी युद्ध के जहाज़ों का रङ्गून भेजा जाना—कप्तान लैम्बर्ट को गुप्त हिदायतें—बरमा में लैम्बर्ट का अनुचित व्यवहार—बरमा दरबार से अनुचित माँगें—बरमा के महाराजा की शान्तिप्रियता—उसका लैम्बर्ट की सब माँगें पूरी कर देना—लैम्बर्ट की नई नई बदमाशियाँ—अकारण एक बरमी जहाज़ की गिरफ़्तारी—रङ्गून का मोहासरा—११ अप्रैल सन् १८५२ को युद्ध का प्रारम्भ—बरमा के 'पगू' प्रान्त का कम्पनी के राज्य में मिला लिया जाना—इतिहास-लेखक कॉबडेन और जनरल कैस के विचार। १३११—१३२३

तैंतालीसवाँ अध्याय

डलहौज़ी की भू-पिपासा

लैप्स की नीति—सतारा के राजा प्रतापसिंह के साथ अन्याय—उसे क़ैद करके बनारस भेज देना—दत्तक पुत्र के अधिकारों को स्वीकार न करना—सतारा पर कम्पनी का क़ब्ज़ा—नागपुर में राजा राघोजी तीसरे के

चवालीसवाँ अध्याय

सन् १८५७ का विप्लव—कारण और तैयारी

पैंतालीसवाँ अध्याय

चरबी के कारतूस और विप्लव का प्रारम्भ

बैरकपुर में नए कारतूसों का कारखाना—एक ब्राह्मण सिपाही को मेहतर का ताना—चरबी के कारतूसों की असलीयत—बैरकपुर की सेना का नए कारतूसों के उपयोग से इनकार—मङ्गल पाँडे—नए कारतूसों का उपयोग न करने के अपराध में मेरठ में ८५ सिपाहियों का कोर्ट मार्शल—शेष सिपाहियों को मेरठ की स्त्रियों का ताने देना—६ मई सन् १८५७ को विप्लव का प्रारम्भ—१० मई को मेरठ के विप्लवकारियों की दिल्ली यात्रा—सम्राट बहादुरशाह की सलामी—दिल्ली में विप्लव—नगरनिवासियों का उत्साह—हरा झण्डा—१६ मई को दिल्ली की स्वाधीनता—अलीगढ़, इटावा और नसीराबाद में विप्लव का प्रारम्भ—ख़ानबहादुर ख़ाँ के अधीन रुहेलखण्ड में विप्लव—रुहेलखण्ड की पलटनों के नाम दिल्ली के विप्लवकारियों का पत्र—बरेली, शाहजहाँपुर, मुरादाबाद, बदायूँ इत्यादि की स्वाधीनता—ख़ानबहादुर ख़ाँ का एलान—गोरखपुर और आज़मगढ़ के विप्लवकारियों का उदार व्यवहार—ईरान इत्यादि से नई अङ्गरेज़ी फ़ौजें—बनारस में सिखों और वहाँ के कुछ रईसों का अङ्गरेज़ों को मदद देना—जौनपुर की स्वाधीनता—इलाहाबाद में विप्लव का प्रचार—सिखों का अङ्गरेज़ों की सहायता करना—नगर में विप्लव—हरे झण्डे के जुलूस—मौलवी लियाक़तअली। १३६५—१४२६

छयालीसवाँ अध्याय

प्रतिकार का प्रारम्भ

जनरल नील का सेना सहित बनारस पहुँचना—प्रजा पर जनरल नील के भयङ्कर अत्याचार—क़त्लेआम, फाँसियाँ और ग्रामों का जलाना—ख़ूनी अदालतें—जनरल नील की इलाहाबाद यात्रा—ख़ुसरोबाग़ का घमासान संग्राम—अङ्गरेज़ों की विजय—इलाहाबाद निवासियों से बदला—हरे झण्डे के जुलूस निकालने के अपराध में छोटे छोटे बच्चों को फाँसी—चौक के नीम के वृत्त—क़त्लेआम—कानपुर में विप्लव के लिए उत्साह—कम्पनी के ख़ज़ाने और मैगज़ीन पर नाना साहब का क़ब्ज़ा—कानपुर में विप्लव का प्रारम्भ—सम्राट के झण्डे का जुलूस—अङ्गरेज़ी क़िले पर हमला—कानपुर की स्त्रियों का उत्साह—नाना साहब का शासन प्रबन्ध अङ्गरेज़ी क़िले पर नाना साहब का क़ब्ज़ा—सतीचौरा घाट का हत्याकाण्ड—क़ैदी अङ्गरेज़ स्त्रियों और बच्चों के साथ नाना का व्यवहार—कानपुर में नाना का दरबार—झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई—उसका चरित्र—४ जून को झाँसी में विप्लव का प्रारम्भ—झाँसी की स्वाधीनता—लखनऊ में सर हेनरी लॉरेन्स का दरबार—हिन्दू और मुसलमानों को पुराने झगड़ों की याद दिलाना—लखनऊ में विप्लव का प्रारम्भ—सीतापुर और फ़र्रुख़ाबाद—अवध के विप्लवकारियों की उदारता—मौलवी अहमदशाह—फ़ैज़ाबाद की स्वाधीनता—राजा मानसिंह—राजा हनुमन्तसिंह—दस दिन के अन्दर लखनऊ की रेज़िडेन्सी को छोड़कर शेष अवध से कम्पनी के राज्य का मिट जाना।

१४२७—१४६३

सैंतालीसवाँ अध्याय

दिल्ली, पञ्जाब और बीच की घटनाएँ

दिल्ली का महत्व—दोनों ओर की सेनाओं का आ आकर दिल्ली में जमा होना—कमाण्डर-इन-चीफ़ ऐनसन का दिल्ली विजय करने के लिए पञ्जाब से सेनाएँ जमा करना—पञ्जाब को अपनी ओर रखने के कम्पनी के प्रयत्न—सिखों को मुसलमानों के विरुद्ध भड़काना—उन्हें मुग़लों के पुराने ज़ुल्मों की याद दिलाना—बहादुरशाह के नाम से जाली एलान—सिख नरेशों को अपनी ओर करने के विप्लवकारियों के प्रयत्न—इसके विरुद्ध सर जॉन लारेन्स के प्रत्युपाय—विप्लवकारियों की असफलता—सिख राजाओं का अङ्गरेज़ों का साथ देना—पञ्जाब की जनता में विप्लव के साथ सहानुभूति—मियाँमीर और लाहौर की छावनी में देशी सिपाहियों से हथियार रखाया जाना—पञ्जाब में विप्लवकारियों की योजना—फ़ीरोज़पुर की देशी पलटनों का विद्रोह—अमीर काबुल के साथ विप्लवकारियों का पत्र-व्यवहार—सरहद की मुसलमान क़ौमों को अपनी ओर रखने के कम्पनी के प्रयत्न—मुल्लाओं को धन—पेशावर की देशी पलटनों का निश्चय—सन्देह पर उनसे हथियार रखा लिया जाना—बारगों के बाहर तोपें—विद्रोही नेताओं का फाँसी पर लटकाया जाना—भारतीय सिपाहियों का तोप के मुँह से उड़ाया जाना—होती मरदान की ५५ नम्बर देशी पलटन—हर तीसरे मनुष्य का तोप के मुँह से उड़ाया जाना—भीषण दृश्य—५५ नम्बर पलटन के अधिकांश सिपाहियों की निर्दोषता—सन्देह पर दस नम्बर सवार पलटन के घोड़ों की ज़ब्ती—सिपाहियों का ज़बरदस्ती किश्तियों में बैठाकर सिन्धु

दिल्ली में बीस हज़ार सेना की परेड—वख़्तख़ाँ का कम्पनी की सेना पर हमला—कम्पनी की ओर नई नई सेनाओं का आना—अङ्गरेज़ सेनापतियों का नैराश्य—कमाण्डर-इन-चीफ़ वरनर्ड की मृत्यु—तीसरा कमाण्डर-इन-चीफ़ जनरल रीड—दिल्ली की सेना के ज़बरदस्त हमले—जनरल रीड का बीमार पड़कर मैदान से चला जाना—चौथा कमाण्डर-इन-चीफ़ जनरल विलसन—अङ्गरेज़ों की ओर निराशा की पराकाष्ठा—शेष भारत की अवस्था—ग्वालियर, भरतपुर तथा अन्य रियासतों की स्थिति—नसीराबाद और नीमच में विप्लव—आगरे में विप्लवकारियों का हरा झण्डा—महाराजा होलकर की द्विविधा—कच्छ तथा राजपूताने की स्थिति—कलकत्ते में क़ैदी नवाब वाजिद-अली शाह और वज़ीर अलीनक़ी ख़ाँ—गवरनर-जनरल लॉर्ड कैनिङ्ग का इलाहाबाद पहुँचना—जनरल नील की कानपुर यात्रा—मार्ग में सैकड़ों ग्रामों का जलाया जाना और निर्दोष ग्रामनिवासियों का संहार—जनरल हैवलॉक की कानपुर यात्रा—इस यात्रा के एक अङ्गरेज़ अफ़सर का रोज़-नामचा—नाना साहब के उपाय—फ़तहपुर के नगर की स्वाधीनता—कम्पनी की सेना द्वारा फ़तहपुर नगर की लूट—नगर तथा नगरनिवासियों का जलाकर ख़ाक कर दिया जाना—इस समाचार पर कानपुर में कोप—कानपुर की क़ैदी अङ्गरेज़ स्त्रियों का गुप्त पत्र-व्यवहार—अङ्गरेज़ स्त्रियों और बच्चों का संहार—इस लज्जाजनक हत्याकाण्ड की विवेचना—नाना साहब का उसके साथ सम्बन्ध—नाना साहब और हैवलॉक में संग्राम—हैवलॉक की विजय—कानपुर-निवासियों से जनरल हैवलॉक का बदला—नगर की लूट—विचित्र फाँसियाँ—नाना साहब का नगर छोड़ना—पञ्जाब का ब्लैक-होल—अजनाले में 'काल्याँ-दा-खूह'—३१ जुलाई की रात को ६६ हिन्दोस्तानियों का एक छोटे से गुम्बद में भर दिया जाना—सुबह तक ४५ का

में क़ैद—दिल्ली का अन्तिम पतन—सम्राट के दो पुत्रों और एक पौत्र की गिरफ़्तारी—उनकी हत्या—कप्तान हडसन का शहज़ादों का ख़ून पीना—शहज़ादों के कटे हुए सरों का बहादुरशाह के समाने पेश किया जाना—बहादुरशाह का आश्चर्यजनक धैर्य—शहज़ादों की लाशों का बाज़ार में टँगवाया जाना—लाशों का जमना में फिंकवा दिया जाना—दिल्ली के अन्दर कम्पनी की सेना के अनसुने अत्याचार—बीमारों और घायलों की हत्या—सार्वजनिक संहार—गलियों में लाशों का दृश्य—प्राणदण्ड से पहले अनसुनी यातनाएँ—मुसलमानों का फाँसी देने से पहले सुअर की खाल में सिया जाना—एक बार समस्त दिल्ली की वीरानी—सहस्रों मर्द, औरत और बच्चों का जङ्गलों में गृहविहीन घूमना—सङ्गठित लूट—'प्राइज़ एजेन्सी'—विचित्र गिरफ़्तारियाँ—नगर के कुँओं का भारतीय स्त्रियों की लाशों से पट जाना—लोगों का अपनी स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा के लिए उन्हें स्वयं क़त्ल कर डालना—मन्दिरों और मसजिदों की बेइज़्ज़ती—जामे मसजिद का दृश्य—अकबराबादी मसजिद को तोड़ कर ज़मीन से मिला दिया जाना—नए सिरे से दिल्ली की आबादी—राजकुल के लोगों का हृदय विदारक अन्त—क़ैद में छै वर्ष बाद सम्राट बहादुरशाह की हसरतभरी मौत। १४६४—१५३८

अड़तालीसवाँ अध्याय

अवध और बिहार

बेगम हज़रतमहल—लखनऊ की रेज़िडेन्सी पर विप्लवकारियों के

फिर से तात्या का क़ब्ज़ा—सर कॉलिन कैम्पबेल की लखनऊ से कानपुर वापसी—६ दिन के संग्राम के बाद कानपुर पर फिर से कम्पनी का क़ब्ज़ा—इटावे के २५ विप्लवकारियों की अद्भुत वीरता—फ़र्रुख़ाबाद के मुसलमान नवाब के साथ घृणित व्यवहार—दिल्ली में फिर से सनसनी—कॉलिन कैम्पबेल का २३ फ़रवरी सन् ५८ को एक विशाल सेना सहित फिर लखनऊ की ओर बढ़ना—नैपालियों का सेना द्वारा अङ्गरेज़ों को मदद करना—तीन विशाल सैन्यदलों की एक साथ लखनऊ पर चढ़ाई—मार्ग के संग्राम—अवधनिवासियों की अद्भुत वीरता—लखनऊ नगर के अन्दर अव्यवस्था का प्रारम्भ—बेगम हज़रतमहल का शस्त्र धारण कर स्वयं मैदान में आना—६ मार्च से १५ मार्च तक घमासान संग्राम—तीसरी बार लखनऊ नगर में रक्त की नदियाँ—सिखों और गोरखों की मदद से अङ्गरेज़ी सेना का लखनऊ के नगर में प्रवेश—शहादतगञ्ज की अन्तिम लड़ाई—लखनऊ पर कम्पनी का क़ब्ज़ा—क़त्लेआम—क्रूर यातनाएँ—बेगम हज़रतमहल की उदारता—बिहार में विप्लव के केन्द्र—पटना, तिरहुत और जगदीशपुर—राजाकुँवरसिंह—कुँवरसिंह के प्रयत्न—आरा विजय—बीबीगञ्ज का संग्राम—आरा पर फिर से अङ्गरेज़ों का क़ब्ज़ा—जगदीशपुर पर कम्पनी का क़ब्ज़ा—अतरौलिया का संग्राम—कुँवरसिंह की विजय—कुँवरसिंह का आज़मगढ़ को विजय करना—उसका बनारस की ओर बढ़ना—लॉर्ड कैनिङ्ग की घबराहट—कुँवरसिंह के मुक़ाबले के लिए लॉर्ड मार्क के अधीन नई सेना—कुँवरसिंह का युद्ध कौशल—उसका जगदीशपुर वापस पहुँचना—अङ्गरेज़ी सेना का उसे रोकने का प्रयत्न—कुँवरसिंह के दाहने हाथ में गोली लगना—आठ महीने के बाद कुँवरसिंह का फिर से जगदीशपुर विजय करना—नई अङ्गरेज़ी सेना का जगदीशपुर पर हमला—अङ्गरेज़ी सेना

उनञ्चासवाँ अध्याय

लक्ष्मीबाई और तात्याटोपी

रावसाहब और शहज़ादे फ़ीरोज़शाह का एक महीने तक युद्ध जारी रखना—तीन वर्ष बाद रावसाहब की गिरफ़्तारी और फाँसी—अरब में फ़ीरोज़शाह के अन्तिम दिन—सन् ५७ के विप्लव का अन्त। १५६४—१६४१

पचासवाँ अध्याय

सन् ५७ के विप्लव पर एक दृष्टि

विप्लव की असफलता के दो मुख्य कारण—तीन अन्य गौण कारण—दोनों ओर के आदर्शों की तुलना—दोनों ओर के अत्याचारों की तुलना—यदि विप्लव सफल हो गया होता—धर्म और दीन की आवाज़ें—उच्च कुलों का अभिमान—हिंसा और भारत का चिरकालीन गौरव—यदि विप्लव न हुआ होता—चीन तथा जापान पर विप्लव का प्रभाव—भारतवासियों के लिए अब मुख्य कार्य। १६४२—१६५८

इक्यावनवाँ अध्याय

विप्लव के पश्चात्

साम्राज्य की मज़बूती की मुख्य तदबीरें—ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अन्त—उसका मुख्य कारण—सन् १८५८ की कमेटी—मलका विक्टोरिया का एलान—देशी रियासतें—भारत में अंगरेज़ी उपनिवेश—उनकी

चित्रसूची

दूसरा भाग

नक़्शे

राजा रणजीत सिंह—भरतपुर

[पण्डित गोकुलचन्द दीक्षित, सम्पादक 'स्टेट गज़ट,' भरतपुर, की कृपा से प्राप्त]

छब्बीसवाँ अध्याय

भरतपुर का मोहासरा

दिल्ली से भरतपुर

सवन्तराव होलकर के दिल्ली से चले जाने के बाद उसका पीछा करने के लिए तीन विशाल सेनाएँ अलग अलग दिल्ली से रवाना हुईं। एक करनल वर्न के अधीन, दूसरी जनरल लेक के अधीन, और तीसरी मेजर-जनरल फ्रेज़र के अधीन। करनल वर्न की सेना २६ अक्तूबर सन् १८०४ को दिल्ली से चली। करनल वर्न और जसवन्तराव होलकर की सेनाएँ कई बार एक दूसरे के पास आ गईं। किन्तु करनल वर्न को हमला करने का साहस न हो सका। जसवन्तराव उस समय उत्तरीय भारत की दूसरी राजशक्तियों को अङ्गरेज़ों के विरुद्ध मिला लेने के फ़िक्र में था। वह सहारनपुर से लौट कर भरतपुर की ओर जा रहा था। उसने अपनी सेना के दो हिस्से किए। पैदल सेना और

तोपख़ाने को उसने आगे बढ़ा दिया और स्वयं अपने सवारों सहित पीछे रहा। ३१ अक्तूबर को जनरल लेक तीन रैजिमेण्ट गोरे सवारों की, तीन देशी सवारों की और बहुत सा तोपख़ाना लेकर होलकर और उसके सवारों के मुक़ाबले के लिए दिल्ली से निकला। उधर मेजर-जनरल फ्रेज़र को उसने बहुत सी पैदल सेना, दो रैजिमेण्ट देशी सवारों की और तोपख़ाना देकर होलकर की पैदल सेना और तोपख़ाने का पीछा करने के लिए रवाना किया।

लेक को पता चला कि होलकर अपने सवारों सहित इस समय शामली में है। जसवन्तराव, जितनी जल्दी हो सके, भरतपुर पहुँचना चाहता था, और लेक उसे मार्ग में रोक कर उससे लड़ना चाहता था। जसवन्तराव की ख़बर पाते ही लेक शामली की ओर बढ़ा। ३ नवम्बर को जनरल लेक शामली पहुँचा; किन्तु होलकर उससे पहले ही भरतपुर की ओर रवाना हो चुका था।

जनरल लेक होलकर का पीछा करता रहा। १७ नवम्बर को जनरल लेक फ़र्रुख़ाबाद में होलकर की सेना से आ मिला। किन्तु फिर भी जनरल लेक को होलकर पर हमला करने का साहस न हो सका, और जसवन्तराव होलकर निर्विघ्न अपनी सवार सेना सहित भरतपुर राज्य के अन्दर डीग के क़िले में जा पहुँचा। जनरल लेक की इस असफलता के विषय में गवरनर-जनरल ने जनरल लेक को हिम्मत दिलाते हुए लिखा—

"दुर्भाग्य की बात है कि होलकर आप से बच कर निकल गया।

इस बात को आप उतने ही ज़ोर के साथ अनुभव करते हैं जितने मैं कि होलकर को गिरफ़्तार कर लेना अथवा उसका नाश कर देना सर्वथा आवश्यक है। जब तक उसे नाश न कर दिया जायगा अथवा क़ैद न कर लिया जायगा तब तक हमें शान्ति नहीं मिल सकती। इसलिए मैं आप पर इस बात के लिए भरोसा करता हूँ कि जहाँ तक भी वह जाय, आप उसका पीछा करने से किसी कारण भी न हटें।"*

मेजर-जनरल फ़्रेज़र को अपने काम में जनरल लेक की अपेक्षा अधिक सफलता प्राप्त हुई। ५ नवम्बर को जनरल फ़्रेज़र सेना लेकर दिल्ली से निकला। होलकर की पैदल सेना और तोपख़ाना उस समय डीग के पास पहुँच चुके थे, किन्तु होलकर स्वयं डीग से बहुत दूर था। जनरल फ़्रेज़र १२ नवम्बर को डीग के निकट पहुँचा। १३ को जसवन्तराव होलकर के पहुँचने से पहले डीग के क़िले से बाहर दोनों ओर की सेनाओं में लड़ाई हुई। अङ्गरेज़ों के बयान के अनुसार उनके ६४३ आदमी मैदान में खेत हुए, जिनमें २२ अङ्गरेज अफ़सर थे। जनरल फ़्रेज़र भी इसी लड़ाई में काम आया। होलकर के हताहतों की संख्या २००० बताई जाती है। होलकर की शेष सेना ने पीछे हट कर डीग के दुर्ग में पनाह ली, जहाँ चन्द

* "It is unfortunate that Holkar's person should have escaped you, you are equally impressed with me by the absolute necessity of seizing or destroying him. Until his person be either destroyed or imprisoned, we shall have no rest. I therefore rely on you to permit no circumstance to divert you from pursuing him to the utmost extremity."

रोज़ बाद होलकर स्वयं अपने सवारों सहित उनसे आ मिला। कहा जाता है कि इस संग्राम में होलकर की ८७ तोपें अङ्गरेज़ों के हाथ लगीं।

इस विजय पर गवरनर-जनरल और जनरल लेक दोनों ने खूब जलसे किए और समस्त भारत में उसका एलान किया। १९ नवम्बर को स्वयं अपनी प्रशंसा करते हुए जनरल लेक ने गवरनर-जनरल को लिखा—

"मेरे कूच की तेज़ी को देख कर तमाम हिन्दोस्तानी इतने चकित रह गए कि जिसकी कल्पना भी नहीं हो सकती × × ×"*

कहा जाता है कि ३१ अक्तूबर से १७ नवम्बर तक जनरल लेक के कूच की रफ़्तार २३ मील रोज़ाना थी। रेल और तार उस समय तक संसार में कहीं न थे। होलकर के आदमियों और विशेष कर पठानों के साथ जनरल लेक के "गुप्त प्रयत्न" बराबर जारी थे।

जसवन्तराव होलकर अपनी समस्त सेना सहित वास्तव में भरतपुर पहुँचना चाहता था। किन्तु मार्ग में उसे और उसकी सेना को डीग के क़िले में आश्रय लेना पड़ा। डीग का क़िला भी भरतपुर के राज्य में था।

भरतपुर के राजा के साथ अङ्गरेज़ों का पत्र-व्यवहार जारी था। मालूम नहीं, भरतपुर के राजा का विचार इससे पहले अङ्गरेज़ों

---

* "The rapidity of my march has astonished all the natives beyond imagination, . . ."—General Lake to Governor-General, 19th November, 1804.

से लड़ने का था या नहीं। किन्तु इसी समय एक ऐसी घटना हुई जिससे विवश होकर भरतपुर के राजा रणजीतसिंह को अङ्गरेज़ों के विरुद्ध होलकर का साथ देना पड़ा।

मार्क्विस वेल्सली ने भरतपुर की प्रजा के कुछ प्रतिष्ठित लोगों पर यह दोष लगा कर, कि वे होलकर के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार कर रहे थे, लेक को यह आज्ञा दे दी कि भरतपुर राज्य के अन्दर से उन लोगों को ज़बरदस्ती गिरफ़्तार करके अङ्गरेज़ी इलाक़े में लाकर अङ्गरेज़ी अदालत के सामने उनका कोर्ट मार्शल किया जाय। भरतपुर एक स्वाधीन रियासत थी। किन्तु राजा रणजीत-सिंह से न इस मामले में राय ली गई, न दरबार द्वारा किसी तरह की तहक़ीक़ात कराई गई और न भरतपुर की प्रजा को गिरफ़्तार करने या सज़ा देने के लिए राजा की इजाज़त तक की आवश्यकता समझी गई। पहले राजा को यह आज्ञा दी गई कि जिन जिन लोगों को लेक बतावे उन्हें, फ़ौरन गिरफ़्तार करके, अङ्गरेज़ों के हवाले कर दो। इसके बाद गवरनर-जनरल ने लेक को अधिकार दे दिया कि आप बिना राजा से पूछे उसकी प्रजा के इन लोगों को ज़बर-दस्ती गिरफ़्तार करके अङ्गरेज़ी इलाक़े में ले आएँ और उन्हें गोली से उड़वा दें।

कोई नरेश, जिसे अपनी आन का खयाल हो, इस तरह की धृष्टता तथा ज़बरदस्ती को सहन नहीं कर सकता। जनरल लेक के इस समय के एक एक पत्र से साबित है कि वह भरतपुर राज्य का अन्त कर देने के लिए लालायित था और इसे एक अत्यन्त सरल

कार्य समझे हुए था। राजा रणजीतसिंह के पास अब जसवन्तराव होलकर को अङ्गरेज़ों के विरुद्ध मदद देने के सिवा और कोई चारा न था। इसके अतिरिक्त निर्वासित होलकर ने भरतपुर के राज्य में शरण ली थी और न्याय तथा साधारण शिष्टता भी राजा रणजीतसिंह से यही चाहती थी कि वह अपने शरणागत अतिथि की सहायता करे। जनरल लेक भरतपुर के राजा को परास्त करना कितना सरल समझता था, यह उसके निम्न-लिखित वाक्य से ज़ाहिर है। २७ नवम्बर सन् १८०४ को उसने गवरनर-जनरल के एक पत्र के उत्तर में लिखा—

"× × × मैं अब फ़ौरन राजा रणजीतसिंह और उसके क़िलों पर हमला करके उन्हें अपने अधीन किए बिना नहीं रह सकता।"*

अङ्गरेज़ों ने डीग के क़िले का मोहासरा करने का निश्चय किया। ८ दिसम्बर सन् १८०४ को जनरल लेक अपनी सेना लेकर डीग पहुँचा। १० दिसम्बर को क़िले की दीवारें तोड़ने के लिए आगरे से गोला, बारूद और तोपें आईं। १३ को गोलाबारी शुरू हुई। दस दिन के प्रयत्न के बाद २३ दिसम्बर को एक ओर की दीवार का कुछ भाग टूट पाया। इसी बीच क़िले के भीतर की समस्त सेना, जो वास्तव में भरतपुर ही जाना चाहती थी, क़िले से निकल कर सुरक्षित भरतपुर पहुँच गई। २३ की आधी रात को टूटे हुए

---

* ". . . it will not be in my power to avoid attacking and reducing him and his forts without delay."—General Lake to Marquess Wellesley, dated 27th November, 1804.

हिस्से से अङ्गरेज़ी सेना ने खाली क़िले में प्रवेश किया। इस हमले में अङ्गरेज़ों के २२७ आदमी काम आए। २४ तारीख़ को डीग का नगर और निर्जन क़िला दोनों अङ्गरेज़ों के हाथों में आ गए।

डीग की विजय का समाचार सुनकर गवरनर-जनरल का हौसला बढ़ गया। २० दिसम्बर १८०४ को उसने एक "गुप्त और सरकारी" पत्र में जनरल लेक को लिखा —

"किन्तु अब भरतपुर के राजा के बल और उसके तमाम वसीलों को पूरी तरह वश में कर लेना अनिवार्य और आवश्यक हो गया है, इसलिए मैं आपको अधिकार देता हूँ और आदेश देता हूँ कि इस हितकर उद्देश को पूरा करने और भरतपुर राज्य के समस्त क़िलों, इलाक़ों और प्रान्तों को जिस तरह आप सब से अधिक हितकर समझें, उस तरह अङ्गरेज़ी राज्य में मिला लेने के लिए आप शीघ्र प्रबन्ध करें।"*

डीग पर क़ब्ज़ा करते ही अङ्गरेज़ों ने आस पास के तमाम इलाक़े पर क़ब्ज़ा कर लिया। कहा जाता है कि केवल भरतपुर

---

* "The entire reduction of the power and resources of the Raja of Bharatpur, however, is now become indispensably necessary, and I accordingly authorize and direct Your Excellency to adopt immediate arrangements for the attainment of that desirable object, and for the annexation to the British power, in such manner as Your Excellency may deem most consistent with the public interests, of all the forts, territories, and possessions belonging to the Raja of Bharatpur."—Governor-General's letter to General Lake, dated 20th December, 1804, marked "Secret and Official."

का नगर राजा रणजीतसिंह के क़ब्ज़े में बाक़ी रह गया था। अङ्गरेज़ों ने अब राजा रणजीतसिंह से यह कहा कि आप होलकर को हमारे हवाले कर दें। किन्तु राजा रणजीतसिंह के स्वाभिमान ने इसकी इजाज़त न दी। २९ दिसम्बर को डीग से चल कर ३ जनवरी सन् १८०५ को जनरल लेक भरतपुर के सामने आ पहुँचा। भरतपुर का मोहासरा शुरू हो गया।

भरतपुर का मोहासरा

भरतपुर का नगर उस समय आठ मील लम्बा था। चारों ओर बहुत मोटी और ऊँची गारे की दीवार थी, जिसके बाहर की ओर पानी से भरी हुई चौड़ी गहरी खाई थी। नगर के पूर्वीय कोने पर भरतपुर का क़िला था। शहर फ़सील के ऊपर तोपें चढ़ी हुई थीं। राजा रणजीतसिंह की समस्त सेना, होलकर की पैदल सेना और नगर तथा आस पास की बहुत सी प्रजा इस फ़सील के अन्दर थी। होलकर की सवार सेना अङ्गरेज़ों को पीछे से दिक़ करने और उनकी रसद इत्यादि रोकने लिए कुछ दूर नगर से बाहर रही।

७ जनवरी सन् १८०५ को कम्पनी की सेना ने भरतपुर के ऊपर गोले बरसाने और फ़सील को तोड़ने के प्रयत्न करने शुरू किए। ९ जनवरी को एक ओर से दीवार का कुछ हिस्सा टूटा मालूम हुआ। अङ्गरेज़ी सेना ने ज्यों त्यों खाई को पार कर उस ओर से नगर में घुसना चाहा। किन्तु नगर के भीतर की भारतीय सेना ने इस वीरता के साथ मुक़ाबला किया कि बार बार प्रयत्न
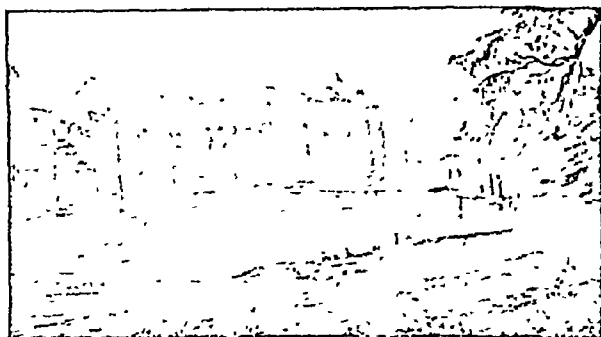
भरतपुर का ऐतिहासिक दुर्ग

भरतपुर की एक पीतल की तोप

करने पर भी अनेक जानें खोकर अङ्गरेज़ी सेना को विवश पीछे लौट आना पड़ा ।*

इस प्रकार भरतपुर पर क़ब्ज़ा करने का पहला प्रयत्न निष्फल गया ।

१२ दिन तक फिर गोलाबारी होती रही । इसके बाद दूसरी बार २१ जनवरी सन् १८०५ को अङ्गरेज़ी सेना ने नगर में प्रवेश करने का और अधिक ज़ोरों के साथ प्रयत्न किया ; किन्तु इस बार भी सफलता न मिल सकी । इस दूसरे प्रयत्न की असफलता के विषय में जनरल लेक ने मार्क्विस वेलसली को लिखा—

"× × × मुझे यह लिखते हुए दुख होता है कि खाई इतनी अधिक चौड़ी और गहरी निकली कि उसे पार करने की जितनी कोशिशें की गईं सब व्यर्थ साबित हुईं, और हमारी सेना को बिना अपना उद्देश पूरा किए अपनी ट्रेन्चेज़ में लौट आना पड़ा ।

"हमारी सेना ने सदा की भाँति दृढ़ता से काम किया, किन्तु इतनी देर तक, इतने ज़ोरों से और इतने ठीक निशाने के साथ उनके ऊपर गोले बरसते रहे कि मुझे डर है, हमारा नुक़सान बहुत अधिक हुआ है ।"†

निस्सन्देह भरतपुर के क़िले और फ़सील के ऊपर की वे तोपें,

---

* ". . . and the column, after making several attempts, with heavy loss, was obliged to retire . . ."—General Lake to Marquess Wellesley, 10th January.

† ". . . I am sorry to add, that the ditch was found so broad and deep, that *every attempt* to pass it proved unsuccessful, and the party *was obliged* to return to the trenches, without effecting their object.

जिनकी भयङ्कर आग ने दो बार शत्रु के मुँह मोड़ दिए, इस समय योग्य और विश्वासपात्र भारतीय वीरों के हाथों में थीं।

इन दोनों वार के प्रयत्नों में अङ्गरेज़ों की ओर जान और माल दोनों का इतना ज़बरदस्त नुक़सान हो चुका था कि अब लेक को बिना बाहर से मदद आए तीसरी वार हमला करने की हिम्मत न हो सकी। लगभग एक मास तक अङ्गरेज़ी सेना ख़ाली पड़ी रही। इस बीच करनल मरे होलकर के मध्यभारत के इलाक़ों पर कम्पनी की ओर से क़ब्ज़ा करके गुजरात लौट गया। करनल मरे के अधीन गुजरात की जितनी सेना थी वह सब अब मेजर-जनरल जोन्स के अधीन १२ फ़रवरी सन् १८०५ को जनरल लेक की सहायता के लिए भरतपुर के बाहर आ पहुँची। आगरे तथा अन्य स्थानों से नया सामान और नई तथा अधिक ज़बरदस्त तोपें मँगाई गईं। फ़रवरी के शुरू में ऐसे मौक़े देख कर कि जहाँ पर फ़सील कम चौड़ी मालूम होती थी, अङ्गरेज़ी सेना ने फिर गोले-बारी शुरू की। अन्त में एक नई ओर से रास्ता बना कर २० फ़रवरी सन् १८०५ को कम्पनी की सेना ने तीसरी बार भरतपुर के अन्दर प्रवेश करने का प्रयत्न किया।

इस समय एक और विचित्र घटना हुई। जिस रास्ते से कम्पनी की सेना ने भीतर घुसना चाहा, उसी रास्ते से उसी दिन

" The troops behaved with their usual steadiness, but I fear, from the heavy fire they were unavoidably exposed to, for a considerable time, that our loss has been severe."

भीतर की भारतीय सेना ने बाहर निकल कर कम्पनी की सेना पर हमला किया। कम्पनी के अनेक अङ्गरेज़ अफ़सर और असंख्य देशी तथा विदेशी सिपाही वहीं पर भारतीय गोलियों का शिकार हो गए। यहाँ तक कि भीतर की सेना ने अङ्गरेज़ों की आगे की ट्रेञ्चेज़ पर कब्ज़ा कर लिया। अङ्गरेज़ों की ओर सब से आगे गोरी पलटनें थीं। जनरल लेक ने इन लोगों को आज्ञा दी कि तुम आगे बढ़ कर शत्रु को नगर के अन्दर वापस ढकेल दो। उनके अफ़सरों ने उन्हें खूब समझाया और हिम्मत दिलाई, किन्तु इन गोरे सिपाहियों के दिलों में इतना डर बैठ गया था और भरतपुर की सेना की ओर से गोलियों की बौछार इतनी भयङ्कर थी कि इन लोगों ने आगे बढ़ने से साफ़ इनकार कर दिया। उस सङ्कट के समय जनरल लेक ने अपने हिन्दोस्तानी पैदलों की दो रैजि-मेण्टों को आगे बढ़ने का हुकुम दिया। ये लोग वीरता के साथ आगे बढ़े।* भरतपुर के अन्दर प्रवेश कर सकने की दृष्टि से अङ्गरेज़ों का यह तीसरी बार का प्रयत्न भी सर्वथा निष्फल गया। किन्तु कम्पनी के हिन्दोस्तानी सिपाहियों ने वीरता के साथ बढ़ कर लड़ते लड़ते भरतपुर की सेना को नगर के अन्दर वापस

* "The Europeans, however, of His Majesty's 75th and 76th, who were at the head of the column, refused to advance, ... The entreaties and expostulations of their officers failing to produce any effect, two regiments of Native Infantry, the 12th and 15th, were summoned to the front, and gallantly advanced to the Storm."—Mill. vol. vi, p. 426.

चले जाने पर मजबूर कर दिया। इसमें सन्देह नहीं कि उस ऐन सङ्कट के समय, जब कि गोरी सेना की शिस्त और शूरता दोनों का अन्त हो चुका था, यदि कम्पनी के हिन्दोस्तानी सिपाही अपनी जानों पर खेल कर आगे न बढ़ते तो भरतपुर की विजयी सेना उसी दिन भरतपुर के मैदान में अङ्गरेज़ी सेना का ख़ात्मा कर देती और जनरल लेक तथा उसके सहजातियों की तमाम भावी आशाओं पर पानी फेर देती।

भरतपुर की सेना के विरुद्ध जनरल लेक के इन तीन बार के प्रयत्नों के निष्फल जाने का मुख्य कारण निस्सन्देह यह था कि भरतपुर की फ़सील के अन्दर राजा रणजीतसिंह अथवा जसवन्तराव होलकर दोनों में से किसी की सेना में इस समय कोई भी विश्वासघातक न था। इसी प्रकार भरतपुर की वीर भारतीय सेना यदि २० फ़रवरी सन् १८०५ को बाहर की अङ्गरेज़ी सेना का ख़ात्मा न कर सकी तो इसका भी एकमात्र कारण यह था कि कम्पनी के उन धनक्रीत भारतीय सिपाहियों में, जिन्होंने ऐन मौके पर अपने देशवासियों के विरुद्ध अङ्गरेज़ों का साथ दिया, 'देशीयता' अथवा 'राष्ट्रीयता' के भाव का सर्वथा अभाव था।

जनरल लेक के इस तीसरे प्रयत्न की असफलता का समाचार सुन कर मार्क्विस वेल्सली घबरा गया। ५ मार्च सन् १८०५ को उसने जनरल लेक को एक लम्बा पत्र लिखा, जिसमें युद्ध को शीघ्र समाप्त करने के विस्तृत उपाय लेक को सुझाते हुए मार्क्विस वेल्सली ने लिखा—

"क्या यह उचित न होगा कि जिस समय आप भरतपुर के मोहासरे की तैयारी कर रहे हों अथवा उस मोहासरे में लगे हुए हों, उसी समय रणजीतसिंह को होलकर से फोड़ने की कोशिश की जाय ? यद्यपि भरतपुर विजय नहीं हुआ, तथापि × × × यदि रणजीतसिंह ने होलकर का साथ छोड़ दिया तो होलकर को कोई आशा न रहेगी।"*

आगे चल कर गवरनर-जनरल ने जनरल लेक को लिखा कि राजा रणजीतसिंह से कह दिया जाय कि यदि आप "होलकर का साथ बिलकुल छोड़ देंगे तो ××× आपका राज्य आपको फिर से वापस दे दिया जायगा।"†

इसी भरतपुर के राजा के विषय में केवल ढाई महीने पहले गवरनर-जनरल ने जनरल लेक को लिखा था कि "भरतपुर के राजा के तमाम किले, इलाके और प्रान्त अङ्गरेजी राज्य में मिला लिए जायँ।" जनरल लेक भी उस समय भरतपुर राज्य को हड़पने के लिए लालायित था। किन्तु पिछले दो मास के अन्दर स्थिति काफ़ी पलटा खा चुकी थी। जनरल लेक को राजा रणजीतसिंह के बल और पराक्रम का अब काफ़ी पता लग चुका था। उसने गवरनर-जनरल के उत्तर में लिखा—

---

* "While the Commander-in-Chief is preparing for the siege of Bharatpur, or actually engaged in it, might it not be advisable to endeavour to detach Ranjit Singh from Holkar? Although Bharatpur has not fallen, . . . Holkar would be hopeless if abandoned by Ranjit Singh."

† ". . . and renounce Holkar altogether, in which case he will be . . . restored to his possessions."

"रणजीतसिंह को होलकर से फोड़ने के लिए हर तरह कोशिश की जा रही है और की जायगी । × × × यदि रणजीतसिंह ने साथ छोड़ दिया तो फिर होलकर और उसके अनुयायियों के लिए कोई आशा न रहेगी ।"*

और आगे चल कर जनरल लेक ने लिखा—

"रणजीतसिंह के साथ इस समय मेरा पत्र-व्यवहार जारी है, और मुझे आशा है कि इस पत्र-व्यवहार द्वारा एक ऐसा समझौता कर लिया जायगा जो अङ्गरेज़ सरकार के लिए काफ़ी लाभदायक होगा और जिससे भविष्य में फिर कभी राजा रणजीतसिंह और जसवन्तराव होलकर में मेल न हो पाएगा ।"†

निस्सन्देह जनरल लेक का विश्वास अपने "गुप्त उपायों" पर अभी तक काफ़ी ज़बरदस्त था । भरतपुर के बाहर अङ्गरेज़ी सेना की स्थिति इस समय वास्तव में अत्यन्त नाज़ुक थी । नगर के भीतर की भारतीय सेना के हौसले बढ़े हुए थे । जनरल लेक और उसकी सेना की हिम्मतें बिलकुल टूट चुकी थीं । सामान की भी

---

* "Every endeavour is making, and will be made to detach Ranjit Singh from Holkar . . . Holkar and his followers would have little hope if abandoned by Ranjit Singh."—General Lake to Governor-General.

† "A correspondence is now going on between me and Ranjit Singh, which I am in hopes will lead to an accommodation sufficiently favourable to the British Government and prevent any future union of interests between that chief and Jaswant Rao Holkar."

उनके पास बेहद कमी थी। भरतपुर विजय होने की लेक को अब अणुमात्र भी आशा न रही थी और न भरतपुर से लौट कर पीछे मुड़ने में ही अङ्गरेज़ों को अपनी सलामती नज़र आती थी।

ऊपर लिखा जा चुका है कि होलकर की सवार सेना इस समय भतरपुर से बाहर थी। यह सेना होलकर के प्रसिद्ध सरदार अमीर ख़ाँ के अधीन थो। इस बाहर की सेना ने अङ्गरेज़ी सेना को काफ़ी दिक़ कर रक्खा था और उनके पास रसद का पहुँच सकना लगभग असम्भव कर दिया था। निस्सन्देह यदि अमीर ख़ाँ एक वार हिम्मत करके पीछे से अङ्गरेज़ी सेना पर हमला कर देता तो सामने से फ़सील पर की गोलाबारी और पीछे से अमीर ख़ाँ का हमला, इन दोनों के बीच में आकर रही सही अङ्गरेज़ी सेना वहीं पर चकनाचूर हो गई होती। किन्तु अङ्गरेज़ों के सौभाग्य से अमीर ख़ाँ शुरू से वफ़ादारी अथवा ईमानदारी के मुक़ाबले में धन की अधिक क़द्र करता था। ५ मार्च को गवरनर-जनरल ने जनरल लेक को लिखा—

"मिस्टर सीटन और जनरल स्मिथ को इस बात का अधिकार दे देना चाहिए कि अमीर ख़ाँ के जो अनुयायी उसे छोड़ कर आने को तैयार हों उन सब से वे ज़मींदारियाँ देने का वादा कर लें। यदि अमीर ख़ाँ होलकर को छोड़ कर अङ्गरेज़ सरकार की ओर आ जाय × × × तो उससे भी जागीर का वादा कर लिया जाय।"*

* "Mr. Seton and General Smith should be authorized to offer a settlement of land to such of Amir Khan's followers as

अर्थात् अमीर ख़ाँ के साथ अङ्गरेज़ों की साज़िशें इस समय दोरुख़ी थीं। एक अमीर ख़ाँ के आदमियों को लोभ देकर अमीर ख़ाँ से फोड़ने की कोशिश, और दूसरे अमीर ख़ाँ को लालच देकर होलकर से फोड़ने की कोशिश। जनरल लेक ने गवरनर-जनरल को जवाब में लिखा—

"निस्सन्देह अमीर ख़ाँ के अनुयायियों को ज़मींदारियों का लालच देना चाहिए।

"अमीर ख़ाँ की माँगें बहुत अधिक हैं। वह तेंतीस लाख रुपए शुरू में और फिर उसके बाद इतनी बड़ी जागीर माँगता है जिससे दस हज़ार सवारों का गुज़ारा चल सके। यही उसकी माँग रुहेलखण्ड में थी, और अब चूँकि उसकी पलटनें और तोपें सींधिया से जा मिली हैं, मुझे बहुत सन्देह है कि अब वह अपनी माँग को कम करे।"*

---

would quit him. Even Amir Khan himself might be offered a *Jagheer*, if he will quit Holkar's cause, submit to the British Government, and come into General Smith's camp . . ."—Governor-General to General Lake, 5th March.

* "A settlement in lands should certainly be offered to Amir Khan's followers.

"Amir Khan is most exorbitant in his demands. He asks thirty-three lacs of rupees in the first instances and a *Jagheer* for 10,000 horse. This was his proposal in Rohilkhund, and I doubt much if he would now be more moderate, as his battalions and guns have joined Scindhia."—General Lake to Governor-General.

अमीर ख़ाँ का विश्वासघात

अमीर ख़ाँ के साथ सौदा हो गया। जनरल स्मिथ जिसकी मार्फ़त सौदा तय हुआ अब अमीर ख़ाँ को परास्त करने के लिए सवारों सहित कम्पनी की ओर से भेजा गया। अफ़ज़लगढ़ में अमीर ख़ाँ की सेना और जनरल स्मिथ की सेना में एक दिखावटी संग्राम हुआ। अमीर ख़ाँ ने धन और जागीर के लोभ में स्वयं अपने मालिक जसवन्तराव होलकर के सवारों को शत्रु के भालों और गोलियों के हवाले कर दिया। विजय जनरल स्मिथ की ओर रही। अफ़ज़लगढ़ से चल कर नमकहराम अमीर ख़ाँ २० मार्च सन् १८०५ को फिर भरतपुर में होलकर से आ मिला, और विजयी स्मिथ २३ मार्च को बाहर जनरल लेक से आकर मिल गया। जनरल लेक का एक बहुत बड़ा भय इस प्रकार दूर हो गया।

इस पर भी यदि कोई अन्य भारतीय नरेश और विशेष कर यदि दौलतराव सींधिया उस समय बाहर से आकर जनरल लेक की सेना पर हमला कर देता तो भी जनरल लेक की सेना भरतपुर के मैदान में दोनों ओर से शत्रुओं के बीच में पिस कर समाप्त हो गई होती। निस्सन्देह दौलतराव सींधिया को इससे अच्छा अवसर न मिल सकता था। यदि वह अपनी शेष सेना सहित इस समय होलकर की मदद को पहुँच जाता तो अपने समस्त खोए हुए राज्य और अधिकारों को फिर से प्राप्त कर सकता था, भारत के अन्दर मृतप्राय मराठा साम्राज्य को फिर से जीवित कर सकता था, और विदेशियों की साम्राज्य-आकांक्षाओं को उस

समय भी ख़ाक में मिला सकता था। जसवन्तराव होलकर और भरतपुर के राजा दोनों को दौलतराव सींधिया के पहुँचने की पूरी आशा थी। स्वयं दौलतराव इस बात को समझता था और भरतपुर पहुँचने के लिए उत्सुक था। किन्तु यह बात जानने योग्य है कि किन चतुर उपायों से अङ्गरेज़ों ने दौलतराव सींधिया को होलकर की मदद के लिए मौक़े पर पहुँचने से रोके रक्खा। इस बात को जानने के लिए हमें अब कुछ पीछे हट कर इस युद्ध के शुरू के दिनों की ओर दृष्टि डालनी होगी।

सींधिया की अनिश्चितता

दौलतराव सींधिया और जसवन्तराव होलकर में अङ्गरेज़ों ही के कारण शुरू से एक दूसरे पर अविश्वास चला आता था। इस अविश्वास को और अधिक भड़का कर और उससे लाभ उठा कर अङ्गरेज़ स्वयं दौलतराव सींधिया से जसवन्तराव होलकर के विरुद्ध सहायता चाहते थे। इसी लिए जसवन्तराव के साथ युद्ध शुरू करने से पहले ही गवरनर-जनरल ने दौलतराव से वादा कर लिया था कि विजय के बाद होलकर के राज्य का एक बहुत बड़ा भाग आपको दे दिया जायगा। आरम्भ में दौलतराव ने इस वादे पर विश्वास करके अङ्गरेज़ों की मदद भी करना चाहा। किन्तु शीघ्र ही दौलतराव को अङ्गरेज़ों के इन तमाम वादों की असलीयत का फिर से पता चल गया। अङ्गरेज़ों के उस समय तक के व्यवहार के विरुद्ध दौलतराव को अनेक शिकायतें थीं,

जिनमें से कुछ का इससे पूर्व जिक्र किया जा चुका है। १८ अक्त-वर सन् १८०४ को महाराजा दौलतराव सींधिया ने मार्क्विस वेल्सली के नाम एक अत्यन्त स्पष्ट और महत्वपूर्ण पत्र लिखा। उस पत्र का सार इस प्रकार है—

अङ्गरेजों ने मेरी ओर मित्रता दर्शा कर मुझसे होलकर के विरुद्ध सहायता चाही, किन्तु मेरी सलाहों और प्रार्थनाओं की ओर रेजिडेण्ट वेब ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया, यहाँ तक कि स्वयं मेरी ओर वेब का व्यवहार अत्यन्त अनुचित और असभ्य रहा; गोहद और ग्वालियर के मामले में अङ्गरेजों ने हाल की सन्धि का साफ़ उल्लङ्घन किया; मेरे कुंमारकुण्डा और जाम-गाँव इत्यादि इलाक़ों में अङ्गरेजों ने अनेक तरह के उपद्रव खड़े करवा दिए और फिर सन्धि की शर्तों के अनुसार उन्होंने न मुझे अङ्गरेजी सेना की सहायता दी और न अपनी प्रजा की रक्षा के लिए मुझे स्वयं उन इलाक़ों तक सेना ले जाने दी; बापूजी सींधिया के साथ जनरल मॉनसन का व्यवहार आद्योपान्त किस प्रकार लज्जाजनक रहा; यद्यपि अङ्गरेज मुझे अपना मित्र कहते थे और यद्यपि पिछली सन्धि के अनुसार मेरे इलाक़े की रक्षा करना अङ्गरेजों का वैसा ही कर्त्तव्य था जैसा अपने इलाक़े की रक्षा करना, तथापि जिस समय करनल मरे अपनी सेना सहित उज्जैन में मौजूद था, ठीक उस समय जसवन्तराव होलकर दो महीने तक मण्डेश्वर के क़िले का मोहासरा करता रहा और आस पास के समस्त इलाक़े में लूट मार मचाता रहा, किन्तु करनल मरे ने उसकी

ज़रा भी परवा न की ; ठीक उसी समय होलकर के सरदार अमीर ख़ाँ ने, जो अङ्गरेज़ों से मिला हुआ था, भिलसा के क़िले को घेर लिया, भिलसा नगर और आस पास के तमाम इलाक़े को लूटा और क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया, किन्तु अङ्गरेज़ों ने अथवा करनल मरे ने ज़रा भी परवा न की और न मेरी ज़रा भी सहायता की ; पिछले युद्ध के बाद से अब तक सन्धि के साफ़ विरुद्ध मेरे अमुक अमुक इलाक़े पर अङ्गरेज़ों ने स्वयं क़ब्ज़ा कर रक्खा है, अमुक अमुक इलाक़े दूसरों को दे रक्खे हैं, और अमुक अमुक इलाक़ा उजाड़ कर वीरान कर दिया है, जिसके कारण मुझे भारी आर्थिक तथा अन्य हानियाँ सहनी पड़ रही हैं, इत्यादि। अन्त में महाराजा दौलतराव सींधिया ने गवरनर-जनरल को सूचना दी—

"अब मैं दृढ़ निश्चय कर चुका हूँ कि अपनी पुरानी सेनाएँ जमा करके और नई सेनाएँ भरती करके एक बहुत बड़ी सेना तैयार करूँ और फिर शत्रु को दण्ड देने के लिए निकलूँ ; क्योंकि मैं इस बात को देख कर कैसे सन्तुष्ट रह सकता हूँ कि जिस इलाक़े को विजय करने में करोड़ों रुपए ख़र्च हुए हैं और बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ लड़ी गई हैं और जो इलाक़ा एक दीर्घकाल से मेरे अधिकार में रहा है वह अब दूसरे के हाथों में चला जाय ! शत्रु के हाथों से अपने इलाक़े को छीन लेना कोई अधिक कठिन कार्य नहीं है। केवल अपने मित्रों की स्पष्ट और दिली मदद की आवश्यकता है और किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है।"

निस्सन्देह सींधिया की तमाम शिकायतें सच्ची थीं, और पत्र के अन्तिम वाक्य से स्पष्ट है कि उसी समय वह लाचार होकर अङ्ग-

रेज़ों और उनके मददगारों से लड़ने और अपने इलाक़े वापस लेने का दृढ़ सङ्कल्प कर चुका था।

इस बीच रेज़िडेण्ट वेब की मृत्यु हो गई। जेनकिन्स उसकी जगह रेज़िडेण्ट नियुक्त होकर सींधिया दरबार में भेजा गया। जेनकिन्स का व्यवहार भी महाराजा दौलतराव सींधिया के साथ उतना ही ख़राब रहा जितना कि वेब का रह चुका था। यहाँ तक कि विवश होकर दौलतराव सींधिया ने जेनकिन्स को अपने यहाँ क़ैद कर लिया।

अङ्गरेज़ों को अब सबसे अधिक चिन्ता इस बात की थी कि कहीं दौलतराव सींधिया जसवन्तराव की मदद के लिए भरतपुर न पहुँच जाय। सींधिया के आदमियों के साथ फिर से साज़िशें शुरू की गईं। सींधिया की सेना के अधिकांश यूरोपियन अफ़सर गत युद्ध के समय अङ्गरेज़ों से मिल गए थे। तथापि सींधिया के दुर्भाग्य और उसकी अदूरदर्शिता के कारण एक ईसाई अफ़सर जीन बैप्टिस्टे फ़िलॉसे, जिसका ज़िक्र ऊपर भी आ चुका है, अभी तक सींधिया की सेना में एक अत्यन्त उच्च पद पर नियुक्त था। जीन बैप्टिस्टे के अनेक सम्बन्धी भी सेना के अनेक पदों पर नौकर थे। जनरल लेक ने जीन बैप्टिस्टे के साथ और उसके द्वारा दूसरों के साथ साज़िशें शुरू कीं। मार्क्विस वेल्सली के नाम २२ सितम्बर सन् १८०४ को एक "प्राइवेट" पत्र में जनरल लेक ने आगरे से लिखा—

"जीन बैप्टिस्टे × × × मेरे पास आ जाना चाहता है, किन्तु अपनी

फ़ौज को देने के लिए डेढ़ लाख रुपए माँगता है। कहा जाता है कि आदमी अच्छा और ईमानदार है, और हाल में उसके पत्र-व्यवहार से जो कुछ मैं देख पाया हूँ उससे ज़ाहिरा ऐसा ही मालूम होता है ; किन्तु उसे रुपया देने से पहले मुझे उसके ईमानदार होने का अधिक विश्वास होना चाहिए; कम से कम इतना रुपया तो नहीं ; यदि वह कोई ख़ास काम करके दिखाए तो फिर उसे रुपया देने का भी काफ़ी मौक़ा रहेगा।"*

जनरल लेक के अन्य पत्रों से साबित है कि जीन बैप्टिस्टे से अङ्गरेज़ों का सौदा हो गया और उसने 'ख़ास काम' करके भी दिखा दिया।

भरतपुर के मोहासरे के समय दौलतराव सींधिया अपनी सेना सहित बरहानपुर में मौजूद था। भरतपुर के मोहासरे की ख़बर पाते ही उसने सबसे पहले अपने पिण्डारी सवार भरतपुर की ओर रवाना कर दिए और फिर शेष सेना सहित स्वयं भरतपुर पहुँचने के लिए उत्तर की ओर बढ़ा। जसवन्तराव होलकर और राजा रणजीतसिंह दोनों को दौलतराव सींधिया की सहायता पर पूरा

---

* "Jean Baptiste . . . is desirous of coming to me but requires a lac and a half of rupees to pay his troops. He is *reported to be a good* and fair man, and by what I have seen of him lately from his correspondence, has every appearance of being so; but I must be more convinced that he is so before I give him money, at any rate not to that extent; if he does anything worth notice it will be time enough to pay him then."—General Lake's 'Private' letter to Marquess Wellesley, dated Agra 22nd September, 1804.

भरोसा था। इसमें भी सन्देह नहीं कि यदि दौलतराव की सहायता वक्त पर पहुँच जाती तो कम से कम मराठा मण्डल को दूसरे मराठा युद्ध के पूर्व की अपनी प्रतिभा फिर से प्राप्त हो जाती। किन्तु दुर्भाग्यवश एक तो सींधिया के वे अधिकांश पिण्डारी सवार, जो भरतपुर की ओर रवाना किए गए, पहले अमीर खाँ की सेना में रह चुके थे और अमीर खाँ के प्रभाव में थे; दूसरे सींधिया की सेना की वाग इस समय नमकहराम जीन वैप्टिस्टे फ़िलॉसे के हाथों में थी; तीसरे सींधिया के मुख्य सलाहकारों में इस समय एक मुन्शी कमलनयन था। सन् १८०३ में अङ्गरेज़ों और सींधिया के बीच जो सन्धि हुई थी उस पर सींधिया की ओर से मुन्शी कमलनयन के हस्ताक्षर हुए थे। जेम्स मिल के इतिहास से स्पष्ट पता चलता है कि मुन्शी कमलनयन अङ्गरेज़ों का धनक्रीत और उनका पक्का हितसाधक* था।

जीन वैप्टिस्टे ने सींधिया के साथ विश्वासघात करके उस सवार सेना को समय पर भरतपुर पहुँचने से रोके रक्खा जिसे दौलतराव सींधिया ने आगे रवाना कर दिया था। वाद में जब भरतपुर के मोहासरे के वाद जसवन्तराव होलकर और दौलतराव सींधिया की भेंट हुई, तब दौलतराव को जीन वैप्टिस्टे के इस विश्वासघात का पता चला; इस पर दौलतराव ने जीन वैप्टिस्टे को क़ैद कर लिया; किन्तु उस समय तक जीन वैप्टिस्टे का विश्वासघात अपना काम कर चुका था।

* *Mill's History of British India*, book vi, chap. xiii.

अङ्गरेजों को जब पता लगा कि स्वयं दौलतराव सींधिया भरतपुर की ओर बढ़ा चला आ रहा है और चम्बल नदी के निकट आ पहुँचा है तो उन्होंने तुरन्त मुन्शी कमलनयन की मारफ़त सींधिया को यह लोभ दिया कि यदि आप पीछे लौट कर होलकर के मालवा के कुछ ज़िलों पर क़ब्ज़ा कर लें तो वे सब ज़िले और बहुत सा नक़द धन कम्पनी की ओर से आपकी भेंट कर दिया जायगा। दौलतराव सींधिया ने होलकर के उन ज़िलों पर हमला करना स्वीकार न किया, तथापि मुन्शी कमलनयन की चालों तथा इन नरेशों के पुराने परस्पर अविश्वास ने इतना असर अवश्य किया कि दौलतराव सींधिया बजाय भरतपुर पहुँचने के आठ मील पीछे हट कर अपनी सेना सहित सब्बलगढ़ में ठहर गया। जसवन्तराव होलकर तथा भरतपुर के राजा दोनों ने पिछले युद्ध में सींधिया के विरुद्ध अङ्गरेज़ों का साथ दिया था और इसमें सन्देह नहीं कि उस दुर्घटना की याद ने जीन बैप्टिस्टे तथा मुन्शी कमलनयन के कार्य को बहुत सुगम कर दिया।

राघोजी भोंसले के साथ अन्याय

दौलतराव सींधिया के अतिरिक्त राघोजी भोंसले के भी जसवन्तराव की मदद के लिए पहुँच जाने का अङ्गरेज़ों को डर था। अब हमें यह देखना होगा कि उन्होंने किस प्रकार राजा राघोजी भोंसले को जसवन्तराव होलकर की मदद कर सकने के अयोग्य बनाए रक्खा।

जिस तरह अङ्गरेजों ने महाराजा सींधिया के साथ सन् १८०३ की सन्धि को तोड़ कर ग्वालियर और गोहद के इलाक़े उससे बलपूर्वक छीन लिए थे उसी तरह बरार राज्य के कई उपजाऊ प्रान्त उन्होंने सन्धि के विरुद्ध अपने क़ब्ज़े में कर लिए और राजा राघोजी भोंसले से उसकी स्वीकृति पर जबरदस्ती हस्ताक्षर कराने चाहे। राजा राघोजी ने इस अन्याय का विरोध किया। २४ मार्च सन् १८०५ को गवरनर-जनरल ने डाइरेक्टरों के नाम बरार के इन प्रान्तों के विषय में लिखा—

"राजा के उन हितकर शर्तों को नामन्ज़ूर करने से और राजा और उसके मन्त्रियों के बयानों के आम तर्ज़ से यह स्पष्ट है कि हमने जो प्रान्त राजा से ले लिए हैं, उसे वह अभी तक अपने साथ अन्याय और ब्रिटिश सरकार की ओर से विश्वासघात समझता है।"*

अर्थात् बरार का राजा अभी तक इस अन्याय को अन्याय कह रहा था और इस अन्याय के सामने उसने गर्दन न झुकाई थी। इसके अलावा नागपुर के अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट ऐलफ़िन्सटन ने इस समय राजा राघोजी के साथ अत्यन्त अनादर का व्यवहार शुरू कर दिया। निस्सन्देह उस समय के भारतीय नरेशों के दरबारों

* "It manifestly appeared not merely by the Raja's rejection of those beneficial articles, but by the general tenor of his declarations and those of his ministers, that the Raja still considered the alienation of the provinces in question to be an act of injustice and a violation of faith on the part of the British Government."

में रेज़िडेण्टों का अच्छा या बुरा व्यवहार कम्पनी की भारतीय नीति का एक निश्चित अङ्ग होता था।

अङ्गरेज़ों को अब इस बात का डर था कि इस समस्त व्यवहार के बाद बरार का राजा अपनी रही सही ताक़त से कहीं जसवन्तराव होलकर का साथ न दे जाय और अपने पैतृक सूबे अङ्गरेज़ों के हाथों से छुड़ाने की कोशिश न कर बैठे। मथुरा से बैठे हुए जसवन्तराव ने राजा राघोजी भोंसले को अपनी ओर करने का प्रयत्न भी किया था। इसलिए मार्क्विस वेल्सली ने बरार के राज्य ही को हिन्दोस्तान के मानचित्र से मिटा देने का सङ्कल्प कर लिया। गवरनर-जनरल के जिस पत्र का ऊपर ज़िक्र किया गया है उसमें लिखा है—

"गवरनर-जनरल ने नागपुर के रेज़िडेण्ट के नाम यह आदेश भेज देना उचित समझा कि नागपुर के राजा की काररवाई के विषय में अङ्गरेज़ सरकार को जो कुछ ख़बर मिली है उसकी सूचना उचित अवसर पाकर बिलकुल खुले तरीक़े पर राजा को दे दो और यह कह दो कि गवरनर-जनरल आवश्यक समझता है कि बिना आप (राजा) की ओर से किसी जवाब का इन्तज़ार किए आपके आक्रमण को रोकने और आपको इस विश्वासघात का दण्ड देने के उद्देश से तैयारियाँ शुरू कर दे; × × ×। गवरनर-जनरल ने यह निश्चय कर लिया कि जिस रियासत में ईमानदारी के प्रत्येक उसूल की इतनी कमी है उसके विरुद्ध कम्पनी की समस्त शक्ति और सामर्थ्य से काम लिया जाय, और जब तक कि राजा पूरी तरह से परास्त न हो जाय, तब तक रुका न जाय।"*

---

* "The Governor-General deemed it expedient to issue

जनरल लेक और मार्किस वेल्सली दोनों के अनेक पत्रों से प्रकट है कि जनरल मॉनसन की पराजयों के बाद ही उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि भारतवासियों के दिलों पर ब्रिटिश सत्ता का दबदबा फिर से क़ायम करने के लिए भरतपुर के राजा रणजीतसिंह और नागपुर के राजा राघोजी भोंसले दोनों को कोई न कोई बहाना निकाल कर हरा दिया जाय और उनके राज्य को भारत के मानचित्र से मिटा दिया जाय। इसलिए 'विश्वासघात' किस ओर था और 'ईमानदारी के प्रत्येक असूल की इतनी कमी' अङ्गरेज़ों की ओर थी अथवा राजा राघोजी भोंसले की ओर—यह बात इतिहास से स्पष्ट है।

बरार के राजा पर यह इलज़ाम लगाया गया कि तुम होलकर की मदद करना चाहते हो। किन्तु राजा को इस इलज़ाम के विषय में कोई शब्द कहने अथवा पत्र का जवाब देने तक का

---

instructions to the Resident at Nagpore, directing him to take a proper opportunity of apprizing the Raja of Berar in the most public manner of the information which the British Government had received with regard to his proceeding that the Governor-General had deemed it necessary, without awaiting any explanation, to make preparatory arrangements for the eventual purpose of repelling aggression and punishing treachery on the part of the Raja; . . . The Governor-General resolved to call forth the whole power and resources of the Company against a state so devoid of every principle of good faith, and not to desist until the Government of the Raja should have been effectually reduced."

मौक़ा नहीं दिया गया। इसके विपरीत राजा राघोजी को धोखे में रखने के लिए गवरनर-जनरल ने आगे चल कर लिखा है—

"किन्तु रेज़िडेण्ट को हिदायत की गई कि तुम ये सब बातें उस समय तक राजा से न कहना जिस समय तक कि तुम्हें होलकर के साथ जनरल लेक की पहली लड़ाइयों का परिणाम मालूम न हो जाय; सिवाय इसके कि कोई ऐसी परिस्थिति पैदा हो जाय जिसके कारण इन बातों का फ़ौरन् कह देना ही तुम्हें उपयोगी और आवश्यक जान पड़े।

"साथ ही रेज़िडेण्ट को यह भी आदेश दिया गया कि तुम राजा को विश्वास दिला दो कि जब तक आप स्वयं पिछली सन्धि की शर्तों पर क़ायम रहेंगे, तब तक अङ्गरेज़ सरकार आपके साथ अत्यन्त मित्रता का व्यवहार जारी रक्खेगी × × ×।"*

अक्तूबर सन् १८०४ के शुरू में गवरनर-जनरल ने अपने भाई जनरल वेल्सली को फिर कलकत्ते से दक्षिण वापस भेजा और यह हिदायत की कि तुम उचित अवसर देख कर नागपुर पर आक्रमण कर देना। नागपुर में वेल्सली की काररवाइयों का ज़िक्र किसी

---

* "The Resident, however, was directed to suspend these representations until he should have learned the result of the Commander-in-Chief's first operations against Holkar, unless circumstances should render an immediate statement of them useful and necessary.

"The Resident was at the sametime instructed to assure the Raja of the most amicable disposition of the British Government towards him while he should continue to abide by his engagements under the late peace; etc. etc."

अगले अध्याय में किया जायगा, यहाँ पर केवल यह दिखाना आवश्यक था कि किस प्रकार अङ्गरेजों ने सींधिया और भोंसले दोनों को जसवन्तराव होलकर तथा राजा रणजीतसिंह की सहायता के लिए पहुँचने से रोके रक्खा।

भरतपुर के साथ सन्धि

इधर मार्किस वेल्सली युद्ध समाप्त करने के लिए अधीर हो रहा था। ९ मार्च सन् १८०५ को उसने जनरल लेक को लिखा—

"× × × मैं हद से ज़्यादा इच्छुक हूँ कि जिन शर्तों पर भी हो सके, युद्ध को शीघ्र समाप्त किया जाय। × × × मेरी आप से प्रार्थना है कि जब तक मोहासरे को जारी रखने के लिए आपके पास पूरा पूरा और काफ़ी सामान न हो, आप फिर से मोहासरा शुरू करने की कोशिश न करें; जब तक सफलता में ज़रा सा भी सन्देह है तब तक आप हमला करने का प्रयत्न न करें। मुझे डर है कि हमने इस जगह को और इस शत्रु को इतना तुच्छ समझ लिया था कि हमने दोनों को अजेय बना दिया।"*

जनरल लेक ने बार बार राजा रणजीतसिंह से सुलह की प्रार्थना की। राजा रणजीतसिंह ने बार बार लेक की शर्तों को अस्वी-

* ". . . I feel too strong a desire for the early termination of the war, even on any terms . . . I request Your Lordship not to attempt to renew the siege without full and ample means for its prosecution; *not to* attempt any assault while the least doubt exists of success. I fear that we have despised the place and enemy so much as to render both formidable."—Marquess Wellesley to General Lake 9th March, 1805.

कार किया। पत्र-व्यवहार बराबर जारी रहा। अन्त में जब राजा रणजीतसिंह ने देखा कि अमीर ख़ाँ ने होलकर के साथ विश्वासघात किया, और दौलतराव सींधिया भी अपने नमकहराम सलाहकारों की चालों में आकर जसवन्तराव होलकर की मदद के लिए भरतपुर न पहुँच सका, तो विवश होकर उसने जनरल लेक की सुलह की प्रार्थना की ओर ध्यान देना शुरू किया। तथापि लेक के ज़ोर देने पर भी राजा रणजीतसिंह ने जसवन्तराव होलकर को अङ्गरेज़ों के हवाले करना किसी तरह स्वीकार न किया। अङ्गरेज़ों ने अब मजबूर होकर भरतपुर का मोहासरा बन्द कर दिया। राजा ने सब से पहले मार्च सन् १८०५ के अन्त में होलकर और उसकी शेष सेना को खुले सब्बलगढ़ की ओर रवाना कर दिया। उसके बाद अप्रैल के शुरू में अङ्गरेज़ों और भरतपुर के राजा में सन्धि हो गई। सींधिया की सवार सेना भरतपुर पहुँची, किन्तु इस सुलह हो जाने के बाद। डीग का क़िला और भरतपुर का वह समस्त इलाक़ा, जिस पर हाल में अङ्गरेज़ों ने क़ब्ज़ा कर लिया था, ज्यों का त्यों राजा भरतपुर को लौटा दिया गया, अर्थात् राजा रणजीतसिंह को इस युद्ध से किसी तरह की हानि नहीं उठानी पड़ी। जसवन्तराव होलकर कहीं और जाकर फिर एक बार अङ्गरेज़ों के साथ अपनी क़िस्मत आजमाने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया गया।

भरतपुर की सेना की वीरता और वहाँ के क़िले की अभेद्यता उस समय समस्त भारत में प्रसिद्ध हो गई। इतिहास-लेखक थॉर्नटन लिखता है कि "जिस समय सन् १८०५ में अङ्गरेज़ भरतपुर के

क़िले का मोहासरा कर रहे थे उस समय कम्पनी के कुछ हिन्दोस्तानी सिपाहियों ने कहा था कि "हम लोगों को नगर के ऊपर पीताम्बर पहरे, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किए श्रीकृष्ण दिखाई दे रहे हैं।"*

निस्सन्देह भरतपुर की दीवारों ने अङ्गरेज़ों के गर्व को चूर कर दिया और भारतवासियों के दिलों से कुछ समय के लिए उनके जादू के असर को दूर कर दिया।

* "In 1805, during the first siege, some of the native soldiers in the British service declared that they distinictly saw the town defended by that divinity, dressed in yellow garments, and armed with his peculiar weapons, the bow, mace, conch and pipe."—Thornton in his *Gazetteer of India.*
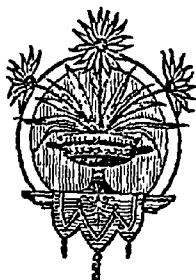
सत्ताईसवाँ अध्याय

दूसरे मराठा युद्ध का अन्त

मार्क्विस वेल्सली की चिन्ता

रतपुर का मोहासरा हटा लिया गया। राजा रणजीतसिंह के साथ अङ्गरेज़ों की सन्धि हो गई। किन्तु महाराजा जसवन्तराव होलकर अभी तक परास्त न हुआ था और न दौलतराव सींधिया की शिकायतों का ही निबटारा हुआ था।

जसवन्तराव होलकर भरतपुर से चल कर सब्बलगढ़ में सींधिया से आ मिला। इन दो बलवान नरेशों के मिल जाने से अङ्गरेज़ और भी अधिक घबरा गए। कम्पनी की आर्थिक अवस्था इस समय अत्यन्त हीन थी। मार्क्विस वेल्सली ने जनरल लेक को आज्ञा दी कि आप सींधिया का पीछा कीजे। सींधिया और होलकर दोनों सब्बलगढ़ से कोटा पहुँचे और कोटा से अजमेर गए। जनरल लेक ने २५ अप्रेल सन् १८०५ को मार्क्विस वेल्सली को लिखा कि—"मेरे लिए सींधिया का पीछा कर सकना असम्भव होगा।"

अपनी इस असमर्थता के कारणों में उसने "गरमी की तेज़ी" और "पानी की कमी" के अतिरिक्त एक कारण यह भी लिखा—

"कोई ऐसा अधम कार्य नहीं जिसे ये लोग न कर सकते हों; उस अमानुषिक राक्षस होलकर को सब से अधिक आनन्द समस्त यूरोपियनों का वध करने में आता है, और जहाँ तक सुनने में आया है सेरजीराव घोटका के भाव भी हमारी ओर ठीक इसी प्रकार के हैं।"*

सेरजीराव घोटका सींधिया का एक विश्वस्त सेनापति और अनुयायी था। प्रतिष्ठित भारतीय नरेशों के लिए अपने सरकारी तथा प्राइवेट पत्रों में नीच से नीच अपशब्दों का उपयोग करना तथा भारतीय नरेशों के चरित्र पर झूठे कलङ्क लगाना उस समय के कम्पनी के बड़े से बड़े अङ्गरेज़ मुलाज़िमों के लिए एक सामान्य बात थी। जनरल लेक के आयरलैण्ड तथा भारत के असंख्य पाप-कृत्यों से ज़ाहिर है कि "अधम कार्यों" के करने में प्रायः कोई भी मनुष्य जनरल लेक का मुक़ाबला न कर सकता था। वास्तव में जसवन्तराव होलकर और दौलतराव सींधिया दोनों अत्यन्त वीर और ऊँचे दर्जे के सेनानी साबित हो चुके थे और जनरल लेक जिसका एक मात्र शस्त्र उसके "गुप्त उपाय" थे, उन दोनों का मुक़ाबला करने से काँपता था।

---

* "There is no vile act these people are not equal to; that inhuman monster Holkar's chief delight is in butchering all Europeans, and by all accounts Serjie Rao Ghautka's disposition towards us is precisely the same."

मार्क्विस वेल्सली भी काफ़ी घबराया हुआ था। उसने जनरल लेक के पत्र के उत्तर में १७ मई सन् १८०५ को लिखा कि जहाँ तक हो सके "दौलतराव सींधिया के साथ लड़ाई छेड़ने से बचा जाय" और "यदि सम्भव हो तो बिना और अधिक लड़े होलकर के साथ भी सब मामलों का फ़ैसला कर लिया जाय।"

किन्तु मार्क्विस वेल्सली इस बात को भी अनुभव कर रहा था कि इतने दिनों प्रयत्न करने पर भी भरतपुर जैसे छोटे से राजा से हार जाना, होलकर को वश में न कर सकना, और सींधिया के साथ भी इस प्रकार समझौता कर लेना, इस सब में अङ्गरेज़ों की काफ़ी ज़िल्लत हुई है। वेल्सली केवल मौसम की ख़राबी और धन की कमी से विवश था। सुलह की बातचीत से वह केवल सींधिया और होलकर दोनों को धोखे में रखना चाहता था। उसकी हार्दिक इच्छा यही थी कि जितनी जल्दी मौक़ा मिले सींधिया और होलकर दोनों को नष्ट कर दिया जाय। एक ओर उसने जनरल लेक को लिखा कि मराठा नरेशों के साथ सुलह की बातचीत की जाय, और दूसरी ओर उसने अवध के नवाब-वज़ीर से नया क़र्ज़ लेने का प्रबन्ध किया। जिस पत्र का ऊपर ज़िक्र आया है, उसी पत्र में आगे चल कर वेल्सली ने जनरल लेक को लिखा—

"× × × ज्यों ही कि मौसम इजाज़त दे त्यों ही फिर युद्ध शुरू करने के लिए फ़ौजें पूरी तरह तैयार रहनी चाहिए। निस्सन्देह इन बातों का प्रबन्ध आप कर ही लेंगे कि रसद इत्यादि जमा कर ली जाय और आइन्दा

मौसम के शुरू में ही किसी समय सींधिया को नाश कर सकने के लिए जो जो तैयारी ज़रूरी हो, वह सब पूरी कर ली जाय।

"× × × सम्भव है हमें अगस्त महीने के क़रीब ही या ज्यों ही कि वर्षा का ज़ोर घटे, सींधिया पर हमला करना पड़े या होलकर से युद्ध करना पड़े।"*

इसी पत्र में मार्किस वेल्सली ने लेक को आदेश दिया कि सींधिया और होलकर से लड़ने के लिए चार सेनाएँ चार ओर तैयार रक्खी जायँ। एक गोहद के राजा के ख़र्च पर सबसीडीयरी सेना गोहद में, दूसरी सेना बुन्देलखण्ड में, तीसरी आगरा और मथुरा में, और चौथी देहली तथा दोआब के उत्तरी भाग में। इसके बाद २५ जुलाई सन् १८०५ को मार्किस वेल्सली ने जनरल लेक को फिर लिखा—

"यदि हमने, जितनी जल्दी से जल्दी मुमकिन हो सकता है, फिर से

---

* . . The troops . . . should be completely ready to commence active operations as soon as the season will permit and arrangements will of course be adopted by Your Lordship for collecting supplies, etc, and for completing every other preparation which may be necessary to enable Your Lordship to destroy Scindhia at any early period of the ensuing season.

" . . . the possible contingency of our being compelled to attack Scindhia, or to operate against Holkar, about the month of August, or as soon as the violence of the rainy season may have subsided."—Marquess Wellesley's 'Official and Secret' Letter to General Lake, dated 17th May 1805.

युद्ध शुरू न कर दिया तो हम पर एक बहुत बड़ी आपत्ति आए बिना नहीं रह सकती। × × ×

"× × × इन नरेशों की संयुक्त सेनाओं के विरुद्ध हमें × × × हिन्दोस्तान और दक्षिण के हर भाग में युद्ध करना होगा।"*

ज़ाहिर है कि मार्क्विस वेल्सली इस बात का निश्चय कर चुका था कि परिणाम चाहे कुछ भी हो, अगस्त सन् १८०५ में सींधिया और होलकर दोनों के साथ फिर से युद्ध आरम्भ कर दिया जाय। किन्तु मार्क्विस वेल्सली की इच्छा पूरी न हो सकी। स्वयं वेल्सली को भारत छोड़ कर शीघ्र इङ्गलिस्तान लौट जाना पड़ा।

वेल्सली की इङ्गलिस्तान वापसी

कारण यह था कि दो वर्ष से ऊपर के लगातार युद्धों और प्रायः साल भर की लगातार हारों के कारण इङ्गलिस्तान के शासकों और कम्पनी के डाइरेक्टरों में मार्क्विस वेल्सली और जनरल लेक दोनों के प्रति अप्रसन्नता बढ़ती जा रही थी। इस अप्रसन्नता का मुख्य कारण यह था कि मार्क्विस वेल्सली की युद्ध-नीति के कारण कम्पनी की आर्थिक स्थिति इस समय अत्यन्त ख़राब हो गई थी। सींधिया और भोंसले के विरुद्ध संग्रामों में धन को पानी की तरह बहा कर, रिशवतें दे देकर, अङ्गरेज़ों ने विजय प्राप्त की थी, और

---

* "Great danger must inevitably be produced by our abstaining from the prosecution of hostilities at the earliest practicable period of time, . . .

". . . against the confederated forces . . . hostilities in every quarter of Hindustan and the Deccan."

होलकर तथा राजा भरतपुर के विरुद्ध उनका यह उपाय भी निष्फल जा रहा था। अङ्गरेज़ जाति एक व्यापारी जाति है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी इङ्गलिस्तान के व्यापारियों की एक कम्पनी थी। यदि दूसरे देशों में अङ्गरेजी साम्राज्य का बढ़ना इन लोगों को प्रिय था तो केवल इसलिए क्यों कि उससे उन्हें इङ्गलिस्तान के धन के बढ़ने की आशा थी। इङ्गलिस्तान के लोगों ने भारत के अन्दर अङ्गरेजी साम्राज्य स्थापित करने में कभी एक पैसा भी इङ्गलिस्तान के कोष से लाकर खर्च नहीं किया। ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य का संस्थापन केवल हिन्दोस्तानियों के पैसे से और अधिकतर हिन्दोस्तानियों ही के रक्त से हुआ है। अङ्गरेज क़ौम किसी भी दूसरी हानि को सहन कर सकती है, किन्तु धन की हानि उसके लिए सर्वथा असह्य है। यही कारण था कि इङ्गलिस्तान के शासक और कम्पनी के डाइरेक्टर दोनों इस समय मार्क्विस वेल्सली को गवरनर-जनरल के पद से अलग करके इङ्गलिस्तान वापस बुला लेने के लिए उत्सुक थे।

कम्पनी की आर्थिक स्थिति

कम्पनी की आर्थिक स्थिति की इस समय यह दशा थी कि भारत के अन्दर कम्पनी का ख़ज़ाना ख़ाली पड़ा था। लखनऊ, बनारस तथा अन्य कई स्थानों से मार्क्विस वेल्सली ने कम्पनी के नाम पर बड़ी बड़ी रक़में क़र्ज़ ले रक्खी थीं जिनमें बीस लाख रुपए की एक रक़म लखनऊ के नवाब-वज़ीर से क़र्ज़ ली गई थी। इस समय वेल्सली फिर नवाब-वज़ीर पर ज़ोर देकर उससे दस लाख

रुपए और क़र्ज़ माँग रहा था।* क़रीब पाँच लाख रुपए माहवार जनरल लेक की अपनी सेना की तनख़ाहों का ख़र्च था, और इसके अलावा जनरल लेक के "गुप्त उपायों" द्वारा भारतीय नरेशों के जो सिपाही अपने मालिकों के साथ विश्वासघात करके कम्पनी की ओर आ गए थे, उनका ख़र्च क़रीब छै लाख रुपए माहवार का था; और जब कि भारतीय ब्रिटिश सरकार क़र्ज़ों में डूबी हुई थी, ये सब तनख़ाहें इस समय कई महीनों से चढ़ी हुई थीं।†

इसके अतिरिक्त भारत-सम्राट शाहआलम को वश में रखने और दिल्ली पर क़ब्ज़ा रखने के लिए कम्पनी को दिल्ली में एक ज़बरदस्त सेना रखनी पड़ती थी, जिसके बदले में कम्पनी को एक पाई आमदनी के रूप में न मिलती थी।‡

स्वयं इङ्गलिस्तान के अन्दर कम्पनी के ज़िम्मे क़र्ज़ा बढ़ता जा रहा था। पार्लिमेण्ट के अन्दर २५ फ़रवरी सन् १८०६ को मि० पॉल ने पार्लिमेण्ट के सदस्यों को यह सूचना दी—

---

* Lord Cornwallis' letter to Lord Castlereagh, 1st August, 1805.

† "Lake's army, the pay of which amounts to about five lacs per month, is above five months in arrears. An army of irregulars, composed chiefly of deserters from the enemy, which with the approbation of Government, the General assembled by proclamation, and which costs about six lacs per month, is likewise somewhat in arrear."—Lord Cornwallis to Lord Castlereagh, August 9th, 1805.

‡ Lord Cornwallis to Colonel Malcolm, 14th August, 1805.

"सन् १७९३ के क़ानून के अनुसार, भारत के फ़ौजदारी और दीवानी के महकमों का तमाम ख़र्च अदा करने के बाद, क़ानून की यह आज्ञा है कि कम से कम दस लाख पौण्ड (अर्थात् लगभग डेढ़ करोड़ रुपए) प्रतिवर्ष व्यापार में लगाए जायँ, और इङ्गलिस्तान की राष्ट्रीय सम्पत्ति को बढ़ाने के लिए हर साल भारत से इङ्गलिस्तान भेज दिए जाया करें। सन् १७९८ से अब तक कोई रक़म व्यापार में नहीं लगाई गई, और इस एक मामले में क़ानून के विरुद्ध इङ्गलिस्तान को ८० लाख पौण्ड से अधिक की हानि पहुँचाई जा चुकी है। इस हद तक इस व्यापारी जाति को हमारे उप-निवेशों से इतनी बड़ी रक़म के माल से वञ्चित रक्खा गया है, जिसकी कि क़ानून ने आज्ञा दी थी और नियत कर दिया था।"*

अर्थात् इङ्गलिस्तान के शासकों की यह आज्ञा थी कि कम्पनी के भारतीय इलाक़ों की आमदनी में से बचा कर यहाँ की अङ्गरेज़ सरकार हर साल कम से कम दस लाख पौण्ड का माल मुफ़्त कम्पनी के हिस्सेदारों की जेबें भरने के लिए इङ्गलिस्तान भेज दिया करे। जेम्स मिल जैसे उदार अङ्गरेज़ ने लिखा है कि—"इङ्गलि-

---

* "By the Act of 1793, after the payment of the military and civil establishment, the Act enjoins that a sum not less than one million of pounds sterling shall be applied for commercial purposes, and remitted to Great Britain, to form a part of its national wealth. Since 1798, no sum whatever has been applied to commercial purposes, and the law has been violated in this single instance to a sum exceeding 8 millions. To this extent, and to this amount has this commercial nation been deprived of such an import from our colonies, which the law ordered and enjoined."

स्तान को हिन्दोस्तान से तभी लाभ है जब कि हिन्दोस्तान की आमदनी में से बचा कर धन इङ्गलिस्तान भेजा जा सके।"* किन्तु आए दिन के युद्धों के कारण ८ साल तक यह मुफ़्त का माल इङ्गलिस्तान न पहुँच सका। होलकर और भरतपुर के विरुद्ध संग्रामों में भी मार्क्विस वेल्सली को लगातार ज़िल्लत उठानी पड़ी थी। स्वभावतः इङ्गलिस्तान के लोग मार्क्विस वेल्सली से इस समय काफ़ी असन्तुष्ट थे। कम्पनी के जिन हिस्सेदारों की वार्षिक आमदनी में कमी पड़ गई थी, उन्होंने भी शोर मचाना शुरू किया। इङ्गलिस्तान के सब लोग उस समय, जिस तरह भी हो सके, युद्ध बन्द कर देने के लिए उत्सुक थे। अन्त में मार्क्विस वेल्सली की जगह लॉर्ड कॉर्नवालिस को दूसरी बार भारत का गवरनर-जनरल नियुक्त करके भेजा गया। १८ जुलाई सन् १८०५ को कॉर्नवालिस मद्रास पहुँचा, २९ को कलकत्ते पहुँचा, और ३० जुलाई सन् १८०५ को उसने दूसरी बार गवरनर-जनरल का पद ग्रहण किया।

शुरू अगस्त में मार्क्विस वेल्सली अपने देश वापस चला गया। अपने समस्त शासन-काल में उसने एक भी कार्य ऐसा नहीं किया जिसके लिए कोई भारतवासी उसे प्रेम अथवा कृतज्ञता के साथ याद कर सके।

* "If India affords a surplus revenue which can be sent to England, thus far is India beneficial to England."—Mill, vol. vi, p. 471.

लॉर्ड कॉर्नवालिस

भारतीय नरेशों अथवा भारतीय प्रजा के साथ लॉर्ड कॉर्नवालिस को मार्क्विस वेल्सली की अपेक्षा अधिक प्रेम न था, और न दोनों की साम्राज्य-पिपासा में ही कोई अन्तर था। इसी दूसरे मराठा युद्ध के शुरू के दिनों में सींधिया और बरार के राजा के विरुद्ध जनरल लेक और जनरल वेल्सली की विजयों का समाचार सुन कर लॉर्ड कॉर्नवालिस ने इङ्गलिस्तान से बैठे हुए ३० अप्रेल सन् १८०४ को मार्क्विस वेल्सली को लिखा था—

"अपने मित्रों जनरल लेक और जनरल वेल्सली की महत्वपूर्ण और गौरवान्वित विजयों से मुझे अत्यन्त सच्चा सन्तोष हुआ है। × × ×

"× × × मैं सच्चे जी से चाहता हूँ कि जिस तरह के योग्य नीतिज्ञों और चतुर सेनापतियों के सुपुर्द हाल में हमारे एशियाई साम्राज्य के संरक्षण का भार रहा है, उसी तरह के योग्य नीतिज्ञ पृथ्वी के हर भाग में मेरे देश के हितों को बढ़ावें और ऐसे ही चतुर सेनापति समस्त पृथ्वी पर मेरे देश की सेनाएँ लेकर जायँ।"*

---

* "The important and glorious achievements of my friends, General Lake and Wellesley, have afforded me the most sincere satisfaction.

* * *

". . . I earnestly hope that, in every part of the globe, its (my country's) interests will be promoted by as able statesmen, and its (my country's) armies conducted by as *meritorious* generals, as those who have of late been entrusted with the preservation of our Asiatic Empire."

किन्तु कम्पनी की आर्थिक कठिनाइयों, होलकर और सींधिया के विरुद्ध विजय की दुराशा, और भावी पराजयों से अङ्गरेज़ी राज्य के सर्वनाश के भय ने लॉर्ड कॉर्नवालिस को विवश कर दिया कि भारत पहुँचते ही सब से पहले वह युद्ध को समाप्त करने का प्रयत्न करे। ८ अगस्त सन् १८०५ को कॉर्नवालिस कलकत्ते से पश्चिमोत्तर प्रान्तों की ओर बढ़ा। १९ सितम्बर सन् १८०५ को उसने जनरल लेक के नाम इस सम्बन्ध में एक विस्तृत पत्र लिखा।

महाराजा दौलतराव सींधिया के साथ अङ्गरेज़ों के मुख्य झगड़े इस समय ये थे—

(१) रेज़िडेण्ट जेनकिन्स को दौलतराव ने अपने यहाँ क़ैद कर रक्खा था और अङ्गरेज़ उसकी रिहाई पर ज़ोर दे रहे थे।

(२) ग्वालियर और गोहद अभी तक अङ्गरेज़ों के हाथों में थे और सींधिया उन्हें वापस माँग रहा था।

(३) युद्ध के शुरू में धौलपुर, बारी और राजकेरी के ज़िले अङ्गरेज़ों के क़ब्ज़े में आ गए थे और अङ्गरेज़ ही वहाँ की मालगुज़ारी वसूल करते थे। पिछली सन्धि के अनुसार ये सब ज़िले सींधिया को वापस मिल जाने चाहिए थे, किन्तु अङ्गरेज़ों ने अभी तक उन्हें वापस न किया था।

(४) महाराजा जयपुर की ओर से क़रीब तीन लाख रुपया सालाना ख़िराज सींधिया को मिला करता था। यह ख़िराज अब ऊपर ही ऊपर अङ्गरेज़ वसूल कर रहे थे।

और कई छोटी छोटी बातें थीं जिनका हल करना इतना अधिक कठिन न था।

लॉर्ड कॉर्नवालिस ने १९ सितम्बर के पत्र में जनरल लेक को साफ़ साफ़ लिख दिया कि सींधिया से सुलह कर लेने को मैं इन सब बातों के लिए तैयार हूँ—

(१) जेनकिन्स की रिहाई का सवाल ही न उठाया जाय।

(२) ग्वालियर और गोहद फ़ौरन् सींधिया को वापस दे दिए जायँ।

(३) धौलपुर, बारी और राजकेरी के ज़िले सींधिया के हवाले कर दिए जायँ और पिछली सन्धि से अब तक की वहाँ की मालगुज़ारी का सींधिया को हिसाब दे दिया जाय।

(४) तीन लाख रुपए सालाना जयपुर का ख़िराज सींधिया को वापस कर दिया जाय, इत्यादि। केवल इस शर्त पर कि सींधिया होलकर से अलग हो जाय और गोहद के राना के खर्च के लिए ढाई या तीन लाख रुपए वार्षिक का प्रबन्ध कर दे।

इसी पत्र में कॉर्नवालिस ने लेक को लिखा कि मैं जसवन्तराव होलकर के समस्त इलाक़े जसवन्तराव को वापस देकर उसके साथ भी सुलह करने को तैयार हूँ।

निस्सन्देह ये सब शर्तें स्वीकार करना अङ्गरेज़ों के लिए काफ़ी दबना था, किन्तु लॉर्ड कॉर्नवालिस के पास उस समय और कोई चारा न था। तथापि मराठों के साथ सुलह करने का यश कॉर्नवालिस को प्राप्त न हो सका। अभी पत्र-व्यवहार हो ही रहा था

कि तीन महीने से कम गवरनर-जनरल रहने के बाद अक्तूबर सन् १८०५ में अचानक ग़ाज़ीपुर में लॉर्ड कॉर्नवालिस की मृत्यु हो गई। इस समय ग़ाज़ीपुर में भारतवासियों के चन्दे से उसके मृत-शरीर के ऊपर एक सुन्दर मक़बरा बना हुआ है।

लॉर्ड कॉर्नवालिस के इस क्षणिक शासन-काल की एक और छोटी सी घटना वर्णन करने योग्य है, जिससे ईस्ट इण्डिया कम्पनी की उस समय की राजनैतिक, व्यापारिक लूट का एक ख़ासा उदाहरण मिलता है।

कॉर्नवालिस के भारत आने के समय कम्पनी की सेनाओं की तनख़ाहें इतनी चढ़ी हुई थीं कि लॉर्ड कॉर्नवालिस को फ़ौजों में ग़दर हो जाने का भय था। इसके इलाज के लिए कॉर्नवालिस ने एक तो तुरन्त फ़ौजें कम कर दीं। दूसरे उस समय कम्पनी का कुछ रुपया माल की ख़रीदारी के लिए इङ्गलिस्तान से जहाज़ों में चीन जा रहा था। ये जहाज़ संयोगवश मद्रास में ठहरे। कॉर्नवालिस ने इस रक़म को जहाज़ों से लेकर भारतीय फ़ौज की तनख़ाहें देने में ख़र्च कर लिया। ९ अगस्त सन् १८०५ को कॉर्नवालिस ने कम्पनी के डाइरेक्टरों को लिखा कि मेरे इस काम से कम्पनी को ज़रा भी हानि वा असुविधा न होगी; क्योंकि आजकल लगभग चालीस लाख रुपए सालाना का माल, जिसमें अधिकतर अफ़ीम और कपास होती है, मुफ़्त भारत से चीन जाता है और उसके बदले में चीन से चीन का माल लेकर इङ्गलिस्तान भेज दिया जाता है। चीन में इस माल की क़ीमत आजकल

बढ़ती जा रही है ; मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जो रक़म मैंने ली है, वह इसी भारतीय माल द्वारा चीन में अदा कर दी जायगी और इङ्गलिस्तान में जाने वाले माल में कोई कमी न होगी।

ज़ाहिर है कि इस चालीस लाख सालाना की लूट का उस डेढ़ करोड़ सालाना के मुफ़्त के माल से कोई सम्बन्ध न था, जिसका ऊपर ज़िक्र आ चुका है और जिसका इङ्गलिस्तान भेजा जाना क़ानूनन् ज़रूरी बताया गया था।

जिन भारतीय सरदारों ने पिछले संग्रामों में अपने देशवासियों के विरुद्ध अङ्गरेज़ों को मदद दी थी उनमें से कुछ को कॉर्नवालिस ने दिल्ली के दक्खिण और पश्चिम के इलाक़े में जागीरें देने की भी तजवीज़ की। किन्तु शायद इस काम को भी पूरा करने का उसे समय न मिल सका।

सर जॉर्ज बारलो

लॉर्ड कॉर्नवालिस की मृत्यु के बाद गवरनर-जनरल की कौन्सिल का सब से बड़ा सदस्य सर जॉर्ज बारलो भारत का गवरनर-जनरल नियुक्त हुआ। यह वही बारलो था, जिसके मार्किस वेल्सली के नाम १२ जुलाई सन् १८०३ के लम्बे निवेदनपत्र का ऊपर ज़िक्र आ चुका है, जिसमें बारलो ने मार्किस वेल्सली को सलाह दी थी—

"हिन्दोस्तान के अन्दर एक भी देशी रियासत इस तरह की बाक़ी

नहीं रहने देनी चाहिए, जो ब्रिटिश सत्ता के सहारे क़ायम न हो, अथवा जिसका समस्त राजनैतिक व्यवहार पूरी तरह से ब्रिटिश सत्ता के वश में न हो।"*

किन्तु इस समय देश की परिस्थिति और कम्पनी की आर्थिक कठिनाई से बारलो भी मजबूर था। होलकर और सींधिया दोनों इस समय अजमेर में थे। जनरल लेक को उनका मुक़ाबला करने का साहस न होता था। इसलिए बारलो को सबसे पहली चिन्ता यह हुई कि जिस तरह हो सके, सींधिया और होलकर को एक दूसरे से पृथक कर दिया जाय।

शुरू ही से सींधिया को जसवन्तराव होलकर पर पूरा विश्वास न होता था और जसवन्तराव का साथ देने के लिए उसमें जैसा चाहिए वैसा उत्साह न था। इस लिए लॉर्ड कॉर्नवालिस की सुलह की तजवीजों का सींधिया पर अच्छा असर पड़ा। अपनी ओर से वह युद्ध बन्द करने के लिए राज़ी हो गया।

सींधिया से सन्धि

मुन्शी कमलनयन का ज़िक्र पिछले अध्याय में किया जा चुका है। जिस समय जसवन्तराव भरतपुर से चल कर सींधिया से आकर मिला, मुन्शी कमलनयन एकाएक अपने मालिक को

---

* ". . . no native state should be left to exist in India, which is not upheld by the British power, or the political conduct of which is not under its absolute control."—Sir George Barlow's memorandum to *Marquess Wellesley, dated 12th July,* 1803.

छोड़ कर अङ्गरेज़ों के पास दिल्ली चला आया। मुन्शी कमलनयन की मार्फ़त ही जनरल लेक ने सींधिया के साथ फिर बातचीत शुरू की। सींधिया को होलकर से फोड़ने का कार्य फिर कमलनयन को सौंपा गया और अन्त में कमलनयन की मार्फ़त ही २३ नवम्बर सन् १८०५ को महाराजा दौलतराव सींधिया और अङ्गरेज़ों के बीच फिर से सन्धि हो गई।

इस नई सन्धि द्वारा सन् १८०३ वाली सन्धि की कई शर्तें बदल दी गईं। सबसीडीयरी सन्धि का जुआ सींधिया की गर्दन से हटा लिया गया, और गोहद का प्रान्त तथा ग्वालियर का ज़िला दोनों सींधिया को वापस दे दिए गए। जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, कोटा इत्यादि राजपूताने की रियासतों को अङ्गरेज़ों ने महाराजा सींधिया की सामन्त रियासतें स्वीकार कर लिया और वादा किया कि अङ्गरेज़ इन रियासतों के साथ अथवा सींधिया के अन्य सामन्तों के साथ कभी किसी तरह की पृथक सन्धि न करेंगे। तापती और चम्बल के बीच में होलकर का जो इलाक़ा सींधिया ने जीत लिया था वह सींधिया का इलाक़ा मान लिया गया। दोआब में सींधिया के जिन ज़िलों पर अङ्गरेज़ों ने क़ब्ज़ा कर रक्खा था उनमें से कुछ सींधिया को वापस दे दिए गए और शेष के बदले में अङ्गरेज़ों ने चार लाख रुपए नक़द सालाना महाराजा सींधिया को देते रहने का वादा किया। चम्बल नदी तक महाराजा सींधिया के राज्य की सीमा स्वीकार कर ली गई। सींधिया ने रेज़िडेण्ट जेनकिन्स को क़ैद से छोड़ दिया। निस्सन्देह सन् १८०३ की सन्धि

से यह सन्धि महाराजा दौलतराव सींधिया के लिए कहीं अधिक अच्छी थी।

होलकर के अन्तिम प्रयत्न

जसवन्तराव होलकर के साथ भी अङ्गरेज़ों ने उसका समस्त इलाक़ा वापस देकर सुलह कर लेना चाहा। जसवन्तराव का अब कोई सहायक न था। अरसे से वह अपने देश से निर्वासित था। अपनी सेना को देने के लिए भी उसके पास धन की कमी थी। सींधिया ने भी उसका साथ छोड़ दिया। तथापि वीर जसवन्तराव का साहस न टूटा। मालूम होता है कि वह इसी दूसरे मराठा युद्ध के शुरू की अपनी ग़लतियों का पूर्ण प्रायश्चित्त करने का सङ्कल्प कर चुका था। इस समय भी उसने अङ्गरेज़ों के साथ सुलह करने से इनकार कर दिया। वह अभी तक अन्य भारतीय अथवा एशियाई नरेशों को अपनी ओर मिला कर अङ्गरेज़ों को भारत से निकालने के स्वप्न देख रहा था। सितम्बर सन् १८०५ के शुरू में अपने रहे सहे वफ़ादार अनुयायियों सहित अजमेर से निकल कर लाहौर के महाराजा रणजीतसिंह तथा अन्य सिक्ख राजाओं से मदद की आशा में, अथवा अधिक आगे बढ़ कर काबुल के बादशाह से सहायता प्राप्त करने की आशा में, जसवन्तराव होलकर पञ्जाब की ओर बढ़ा।

जनरल लेक अब अपनी सेना सहित होलकर का पीछा करने के लिए निकला। किन्तु इस समय भी होलकर का विरोध करने

का जनरल लेक को एकाएक साहस न होता था। कलकत्ते की अङ्गरेज़ कौन्सिल बराबर जनरल लेक पर ज़ोर दे रही थी कि जिस तरह और जितनी जल्दी हो सके, होलकर के साथ सुलह कर ली जाय। व्यास नदी के ऊपर लेक और होलकर की सेनाएँ एक दूसरे के निकट आ गईं। अमीर ख़ाँ, जो इस तमाम अरसे में जसवन्तराव के साथ था, अपने जीवन-चरित्र में लिखता है—

"जनरल लेक ने देख लिया कि यदि रणजीतसिंह और पटियाले के राजा और इस देश के दूसरे सरदार महाराजा होलकर के साथ मिल जायँगे तो एक नई आग भड़क उठेगी, जिसे बुझाना बड़ा मुश्किल होगा। इसलिए उसने × × × एक ऐसे चतुर और कुशल मध्यस्थ को खोजना शुरू किया जिसे होलकर के ख़ेमे में भेजा जाय और जिसके द्वारा सुलह की बातचीत छेड़ी जाय। × × ×"*

निस्सन्देह जनरल लेक का डर और जसवन्तराव होलकर की आशाएँ बेमाइने न थीं। काबुल का बादशाह उस समय भारत पर हमला करने की धमकी अङ्गरेज़ों को दे चुका था और महाराजा रणजीतसिंह तथा पञ्जाब के अन्य कई राजा नाम के लिए

---

* ". . . the General (Lake) saw himself that, if Ranjit Singh with the Patiyala chief and other Sirdars of this country, were to make common cause with the Maharaj (Holkar), a new flame would be lighted up, which it would be difficult to extinguish. He accordingly . . . looked out for an intelligent skilful negotiator to be sent to Holkar's camp, and to be made the channel for an overture, . . ."—Autobiography of Amir Khan, p. 286.

काबुल के बादशाह के अधीन थे। किन्तु रणजीतसिंह तथा अन्य सिख राजाओं के साथ अङ्गरेजों की गुप्त साजिशें पहले से जारी थीं। ऊपर के अध्यायों में दिखाया जा चुका है कि महाराजा रणजीतसिंह वीर किन्तु अदूरदर्शी था और इसी कारण सदा अङ्गरेजों के हाथों में खेलता रहा। बल्कि मराठों का पतन और सिखों का अङ्गरेजों को मदद देना, ये दो ही सिखों की राजनैतिक उन्नति के मुख्य कारण थे। इस समय अङ्गरेज सिखों पर दो बातों के लिए सब से अधिक ज़ोर दे रहे थे। एक यह कि आप काबुल-नरेश के साथ अपना सम्बन्ध तोड़ दें और दूसरे यह कि मराठों को अङ्गरेजों के विरुद्ध किसी तरह की मदद न दें। अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर भी कम्पनी के एजएट सर जॉन मैलकम के प्रयत्नों के प्रताप से उस समय भाई भाई में लड़ाइयाँ हो रही थीं। फिर भी यदि रणजीतसिंह निर्वासित जसवन्तराव का साथ देने का साहस कर बैठता तो बहुत सम्भव है कि अङ्गरेजों का सितारा व्यास नदी के जल में सदा के लिए निमग्न हो जाता। किन्तु रणजीतसिंह ने बजाय जसवन्तराव का साथ देने के उसे अङ्गरेजों के कहने के अनुसार यह सलाह दी कि आप अङ्गरेजों के साथ सुलह कर लें।

पञ्जाब में अभी तक यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि इस अवसर पर जसवन्तराव ने महाराजा रणजीतसिंह को लाञ्छना देते हुए कहा कि यदि अपने एक विपत्तिग्रस्त अतिथि और देशवासी की ओर आपका यही धर्मपालन है, तो स्मरण रहे मेरे कुल में

राज्य क़ायम रहेगा, किन्तु आपके कुल की सत्ता का शीघ्र अन्त हो जायगा। यदि यह किंवदन्ती सच है तो निस्सन्देह जसवन्तराव होलकर की भविष्यद्वाणी सच्ची साबित हुई।

जसवन्तराव होलकर से सन्धि

अन्त में एक विपक्षी राज्य से होकर आगे बढ़ना असम्भव देख, मजबूर होकर जसवन्तराव को सन्धि स्वीकार करनी पड़ी। २४ दिसम्बर सन् १८०५ को लॉर्ड कॉर्नवालिस की निश्चित की हुई शर्तों पर अङ्गरेजों और जसवन्तराव होलकर के बीच सन्धि हो गई। ताप्ती और गोदावरी के दक्षिण का वह समस्त इलाक़ा जिस पर अङ्गरेजों ने हाल में क़ब्ज़ा कर लिया था, जसवन्तराव होलकर को वापस दे दिया गया और जसवन्तराव को अपने समस्त राज्य का अनन्य तथा स्वाधीन नरेश स्वीकार कर लिया गया, अर्थात् इस युद्ध द्वारा होलकर की स्वाधीनता अथवा उसके राज्य के क्षेत्रफल में तनिक भी अन्तर न आया।

सिंहावलोकन

इस प्रकार ले देकर दूसरे मराठा युद्ध का अन्त हुआ। इस युद्ध द्वारा मार्किस वेल्सली का वास्तविक उद्देश सिद्ध न हो सका, अर्थात् मराठों की सत्ता का सर्वथा अन्त न हो सका। सिवाय पेशवा के और कोई मराठा नरेश सबसीडीयरी सन्धि के जाल में भी न फँस सका। किन्तु मराठों की ताक़त को सदा के लिए एक बहुत बड़ा धक्का पहुँच गया; और पेशवा, सींधिया तथा

बरार के राजा, इन तीनों नरेशों के कुछ अत्यन्त उपजाऊ इलाक़े उनसे सदा के लिए छीन लिए गए। कूटनीति तथा भेदनीति में अङ्गरेज़ों का पल्ला भारी रहा, किन्तु वीरता अथवा युद्ध-कौशल में वे मराठों तथा अन्य भारतीयों के मुक़ाबले में तुच्छ साबित हुए। यही दूसरे मराठा युद्ध का सार है।

दूसरे मराठा युद्ध में भाग लेने वाले धुरन्धर भारतीय नीतिज्ञ भारतीय स्वाधीनता के बढ़ते हुए क्षय और इस देश में अङ्गरेज़ी राज्य की नींवों के दिन प्रतिदिन अधिकाधिक मज़बूत होने को न रोक सके, जिसका एक मात्र कारण भारतीय नरेशों में एक दूसरे पर अविश्वास तथा भारतवासियों में राष्ट्रीयता के भावों का शोकजनक अभाव था; तथापि इस युद्ध के अन्त के दिनों में जसवन्तराव होलकर और भरतपुर के राजा का व्यवहार अत्यन्त सराहनीय और भारत के भविष्य की दृष्टि से गौरवान्वित तथा हितकर रहा। निस्सन्देह युद्ध के शुरू में जसवन्तराव होलकर की भूलें अत्यन्त खेदकर थीं। यदि जसवन्तराव अङ्गरेज़ों के हाथों में खेल कर उनकी सहायता न करता तो अङ्गरेज़ कदापि सबसीडीयरी सन्धि का जुआ पेशवा के कन्धों पर न लाद सकते। उसके बाद भी यदि जसवन्तराव मराठा मण्डल के एक सदस्य की हैसियत से अपना कर्त्तव्य पूरा करता और अङ्गरेज़ों के बहकाए में आकर सींधिया और भोंसले की आपत्तियों की ओर से तटस्थ न हो बैठता तो अङ्गरेज़ असाई, अरगाँव और लसवाड़ी के मैदानों में सींधिया और बरार के राजा को कदापि परास्त न कर पाते और न उनके

इलाक़े छीन सकते। तथापि इसके बाद से ज्योंही जसवन्तराव ने अनुभव किया कि अङ्गरेज़ मुझसे केवल अपना काम निकाल रहे थे और अन्दर ही अन्दर मेरी जड़ें खोदने की तैयारियाँ कर रहे थे, तो उसे अपनी भूलों पर हार्दिक पश्चात्ताप हुआ। उस समय से ही उसने अङ्गरेज़ों के साथ जम कर युद्ध करने का सङ्कल्प कर लिया। और यदि असाई, अरगाँव और लसवाड़ी की विजयों के बाद जसवन्तराव अङ्गरेज़ों के मार्ग में न आया होता और लगातार एक वर्ष से ऊपर तक उन पर हारों पर हारें न लादता तो मार्क्विस वेल्सली और उसके साथियों के हौसले दुगने हो गए होते, राजपूताना और मध्यभारत की रियासतों को हड़पने के बहाने ढूँढ़ लेना कुछ भी कार्य न था, सिखों की ताक़त उस समय इतने अधिक महत्व की थी ही नहीं, आइरिश सेनापति जॉर्ज टॉमस मार्क्विस वेल्सली को लिख चुका था कि पञ्जाब को कितनी सरलता से विजय करके अङ्गरेज़ी राज्य में मिलाया जा सकता है। सारांश यह कि फिर दो चार वर्ष के अन्दर ही हिन्दोस्तान का सारा नक़शा अङ्गरेज़ी रङ्ग में रङ्ग लिया गया होता। अर्थात् यदि जसवन्तराव होलकर और भरतपुर का राजा दोनों वीरता के साथ अङ्गरेज़ों का मुक़ाबला न करते तो इस समय के भारत की लगभग ७०० छोटी बड़ी देशी रियासतों में से शायद एक भी बाक़ी न बची होती।

इसके अतिरिक्त भारतीय प्रजा के साथ भी अङ्गरेज़ों का व्यवहार फिर दूसरे ही ढङ्ग का होता। सम्भव है कि जिस

प्रकार अङ्गरेज़ों तथा अन्य यूरोपनिवासियों के दूसरे उपनिवेशों में देशी क़ौमों को मिटा देने के सफल प्रयत्न किए गए, उसी प्रकार भारत में भी किए जाते। किन्तु ये सब केवल अनुमान हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वह समय राष्ट्र की क़िस्मत के एक ख़ास पलटा खाने का समय था, और जसवन्तराव होलकर तथा भरतपुर के राजा के साहस ने उस समय भारतवासियों के चित्तों से अङ्गरेज़ों के जादू का असर बहुत दर्जे तक कम कर दिया और अङ्गरेज़ों के दिलों में भी भारतवासियों की एक ख़ास इज़्ज़त पैदा कर दी। निस्सन्देह जसवन्तराव होलकर और भरतपुर के राजा के नाम भारतीय वीरों की सर्वोच्च श्रेणी में सदा के लिए अङ्कित रहेंगे।

सर जॉर्ज बारलो के शासन-काल की केवल दो और घटनाएँ उल्लेख करने योग्य हैं। एक, राजपूताने की देशी रियासतों की ओर उसकी नीति, और दूसरी वेलोर का ग़दर।

बारलो की भेदनीति

राजपूताने के राजाओं ने मराठों के विरुद्ध अङ्गरेज़ों को सहायता दी थी। इस सहायता के बदले में मार्क्विस वेल्सली और जनरल लेक ने इन राजाओं के साथ सन्धियाँ करके उनसे वादा किया था कि यदि आप में से किसी पर कोई बाहर से आक्रमण करेगा तो अङ्गरेज़ आपकी सहायता करेंगे। किन्तु सर जॉर्ज बारलो ने आकर इन सन्धियों को एक क़लम रद्द कर दिया, और इसके विपरीत इन राजपूत राजाओं को एक दूसरे से फोड़ने और

लड़ाने की पूरी कोशिशें कीं। इस तोड़ फोड़ के विस्तार में पड़ने के स्थान पर हम केवल बारलो की इस कुत्सित नीति का सच्चा रूप दो प्रामाणिक अङ्गरेज़ लेखकों के सार शब्दों में दर्शा देना चाहते हैं। सर जॉन मैलकम लिखता है कि सर जॉर्ज बारलो की—

"नीति × × × खुले तौर पर अपने पड़ोसियों के आपसी झगड़ों और उनकी लड़ाइयों को अपनी कुशल का एक विशेष उपाय समझती है; और यदि इन आपसी लड़ाइयों को साफ़ भड़काती नहीं, तो कम से कम अलग अलग रियासतों के साथ अपने राजनैतिक सम्बन्ध को इस तरह का रूप देती है कि जिससे उनमें इस तरह की आपसी लड़ाइयाँ पैदा हों और जारी रहें।"*

एक दूसरे विद्वान् अङ्गरेज़ लॉर्ड मेटकाफ़ का कथन है—

"गवरनर-जनरल सर जॉर्ज बारलो ने अपने कुछ पत्रों में साफ़ साफ़ लिखा है कि देशी राजाओं के आपसी झगड़े बारलो को अपने बल के बढ़ाने का एक विशेष उपाय नज़र आते हैं; और यदि मैं ग़लती नहीं करता तो गवरनर-जनरल की कुछ तजवीज़ों का स्पष्ट परिणाम यह है और उनका लक्ष्य भी यही है कि उनके द्वारा इन रियासतों में आपसी झगड़े पैदा किए जायँ।"†

---

* ". . . a policy, which declaredly looks to the disputes and wars of its neighbours, as one of the chief sources of its security; and which, if it does not directly excite such wars, shapes its political relations with inferior states in a manner *calculated to create and continue them*."—*Political History of India* by Sir John Malcolm.

† "The Governor-General in some of his despatches,

इन दो गवाहियों के बाद इस मामले को अधिक विस्तार देना व्यर्थ है।

वेलोर का ग़दर

वेलोर के ग़दर का एक मात्र कारण यह था कि उस समय के अङ्गरेज़ शासकों में भारतवासियों को ईसाई बनाने का उत्साह अधिक था। मार्क्विस वेल्सली ने भारत के अन्दर ईसाई मत के प्रचार में जो कुछ सहायता दी उसका वर्णन ऊपर किसी अध्याय में किया जा चुका है। प्रारम्भ से ही ईसाई मत को भारत में सबसे अच्छा क्षेत्र मद्रास प्रान्त में मिला। इसलिए मद्रास प्रान्त में ही अभी तक ईसाइयों की संख्या सबसे अधिक है।

उस समय लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क मद्रास का गवरनर और सर जॉन क्रेडक वहाँ का कमाण्डर-इन-चीफ़ था। ये दोनों अङ्गरेज़ ईसाई मत के प्रचार में बड़े उत्साही थे।

लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क के इस सम्बन्ध के कारनामों में से एक यह भी था कि उसने ऐबे दूबॉय नामक एक फ़ान्सीसी ईसाई पादरी को ८,००० रुपए नक़द देकर भारतवासियों के धार्मिक तथा सामाजिक रस्मो रिवाज पर एक पुस्तक लिखवाई, जिसमें भारत-

---

distinctly says that he contemplates in the discord of the native powers, an additional source of strength; and, if I am not mistaken, some of his plans go directly and are designed to foment discord among those states.—The policy of Sir George Barlow, from Kaye's *Selections from the Papers of Lord Metcalf*. p. 7.

वासियों को जी भर के गालियाँ दी गई हैं, जिसमें अनेक झूठ भरे हुए हैं और जिसका सरकार के खर्च पर इङ्गलिस्तान में खूब प्रचार कराया गया। इस पुस्तक में यह साबित करने की कोशिश की गई है कि भारतवासी अत्यन्त जङ्गली हैं और उनके उद्धार के लिए अङ्गरेज़ों का शासन आवश्यक है। इस फ़ान्सीसी पादरी के भारत से फ़ान्स लौटने पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उसे एक विशेष आजीवन पेनशन प्रदान की।*

जिस "कपटी स्वेच्छाशासन" ने सुप्रसिद्ध अङ्गरेज़ विद्वान हरबर्ट स्पेन्सर के शब्दों में "देश की पराधीनता को क़ायम रखने और उसे विस्तार देने के लिए देशी सिपाहियों"† का ही उपयोग किया, उसी कपटी स्वेच्छाशासन द्वारा भारतवासियों को ईसाई बनाने का भी उद्योग किया गया। उस समय के ईसाई शासक ईसाई मत प्रचारकों को हर तरह की सुविधा और सहायता देते थे। पादरी लोग जहाँ कहीं जाना चाहते थे, अङ्गरेज़ सरकार से उन्हें पासपोर्ट मिल जाते थे। उनके नोटिस, प्रचार-पत्रिकाएँ आदिक सब सरकारी छापेख़ानों में मुफ़्त छाप कर दी जाती थीं। क़िले के अन्दर भारतीय सिपाहियों में प्रचार करने की उन्हें ख़ास सुविधाएँ दी गई थीं। अपने काम के लिए उन्हें मुफ़्त बड़ी बड़ी ज़मीनें दे दी गई थीं। त्रिवानकुर जैसी

---

* *Encyclopoedia Britannica*, vol. viii, p. 624; 11th edition.

† "Cunning despotism" which used "native soldiers to maintain and extend native subjection."—Herbert Spencer.

देशी रियासतों में भी राजाओं और दीवानों के ऊपर ज़ोर देकर ईसाई मत प्रचार के लिए ख़ास सुविधाएँ करा दी जाती थीं। इत्यादि।* धीरे धीरे मद्रास प्रान्त की हिन्दोस्तानी सेना को आज्ञा दी गई कि कोई सिपाही परेड के समय अथवा ड्यूटी पर या वरदी पहने हुए अपने माथे पर किसी तरह का तिलक आदिक न लगाए, और न कानों में बालियाँ पहने, हिन्दू, मुसलमान सब सिपाहियों को हुकुम दिया गया कि अपनी डाढ़ियाँ मुँड़वा दें और सब लोग एक तरह की कटी हुई मूछें रक्खें, इत्यादि।†

इस पर जुलाई सन् १८०६ की रात को वेलोर की छावनी के हिन्दोस्तानी सिपाही बिगड़ खड़े हुए। दो बजे रात को उन्होंने सदर गारद के सामने जमा होकर अपने कमाण्डिङ्ग अफ़सर करनल फ़ैनकोर्ट के मकान को घेर लिया और उसे गोली से मार दिया। उसके बाद उन्होंने अपने शेष ईसाई अफ़सरों और गोरे सिपाहियों को ख़तम करना शुरू किया। किन्तु अन्त में यह बग़ावत शान्त कर दी गई और बाग़ियों को पूरा दण्ड दिया गया।

---

* Revd. Sydney Smith in the *Edinburgh Review* for 1807, on 'The Conversion of India.'

† ". . . not (to) mark his face to denote his caste, or wear earrings, when dressed in his uniform; and it is further directed that at all parades, and upon all duties, every soldier of the battalion shall be clean—shaved on the chin. It is directed also that uniformity shall be preserved in regard to the quantity and shap of the hair upon the upper lip, as far as may be practicable."—Instructions to the Madras Sepoys, 1806.

टीपू सुलतान के बेटे और उसके घर के लोग उन दिनों वेलोर के क़िले में क़ैद थे। बाद में साबित हो गया कि इन लोगों का इस बग़ावत से कोई किसी तरह का सम्बन्ध न था, तथापि उन्हें वेलोर से हटाकर बङ्गाल भेज दिया गया। गवरनर बेण्टिङ्क और कमाण्डर-इन-चीफ़ क्रेडक दोनों बरख़ास्त कर दिए गए, और कम्पनी के अफ़सरों का ईसाई मत प्रचार का जोश बहुत दर्जे तक ठण्ढा हो गया।

सर जॉर्ज बारलो को अब गवरनर-जनरली से हटाकर मद्रास का गवरनर नियुक्त करके भेज दिया गया और लॉर्ड मिण्टो को उसकी जगह गवरनर-जनरल नियुक्त किया गया।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

प्रथम लॉर्ड मिण्टो

[१८०७—१८१३ ई०]

कम्पनी की स्थिति

दिसम्बर सन् १८०६ में इङ्गलिस्तान से चल कर ३ जुलाई सन् १८०७ को लॉर्ड मिण्टो ने कलकत्ते में ब्रिटिश भारत की गवरनर-जनरली का कार्य सँभाला।

हिन्दोस्तान में अङ्गरेज़ों की हालत उस समय ख़ासी नाज़ुक थी। एक तो कम्पनी का ख़ज़ाना ख़ाली था, क़र्ज़ा बढ़ा हुआ था और आर्थिक अवस्था अत्यन्त बिगड़ी हुई थी। इसके अतिरिक्त दूसरे मराठा युद्ध के कारण लगभग समस्त भारतीय नरेश अङ्गरेज़ों के व्यवहार से अत्यन्त असन्तुष्ट थे। जसवन्तराव होलकर और राजा भरतपुर के हाथों जनरल मॉनसन और जनरल लेक की एक वर्ष से ऊपर की लगातार हारों और ज़िल्लत के कारण भारतवासियों में अङ्गरेज़ों की कीर्ति को भी ज़बरदस्त धक्का पहुँच

चुका था। बरार के राजा और महाराजा सींधिया दोनों के कुछ उपजाऊ इलाक़े अङ्गरेज़ों के हाथ आ गए थे, तथापि अपने अपने राज्य के अन्दर सींधिया, भोंसले तथा होलकर, तीनों की पूर्ण स्वाधीनता में कोई फ़रक़ न आया था। राजपूताने के राजाओं और विशेष कर गोहद के राना ने मराठों के विरुद्ध अङ्गरेज़ों की पूरी सहायता की थी, किन्तु युद्ध के बाद अङ्गरेज़ों ने इन नरेशों के साथ जिस तरह की कृतघ्नता का बर्ताव किया उसे देख अन्य भारतीय नरेशों के चित्तों से भी अङ्गरेज़ों की ईमानदारी में विश्वास उठ गया था। चारों ओर इस बात की सम्भावना दिखाई देती थी कि विविध भारतीय नरेश ब्रिटिश भारत पर हमला करके अपने खोए हुए इलाक़े फिर से प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

इसके अतिरिक्त स्वयं अङ्गरेज़ी इलाक़े के अन्दर कम्पनी की भारतीय प्रजा अत्यन्त दुखी और असन्तुष्ट थी। ब्रिटिश भारत में ज़मीन का लगान इतना अधिक बढ़ा दिया गया था कि जितना अङ्गरेज़ों के राज्य से पहले कभी सुनने में भी न आया था और न जिसकी उस समय किसी भी देशी राज्य के अन्दर मिसाल मिल सकती थी।

नए अङ्गरेज़ी इलाक़ों के अन्दर गोहत्या के प्रारम्भ होने तथा अन्य अनेक अनसुने अत्याचारों का ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है। परिणाम यह था कि लॉर्ड मिण्टो को इस बात का डर था कि अङ्गरेज़ी इलाक़े की असन्तुष्ट प्रजा अपने नए विदेशी तथा विधर्मी शासकों के विरुद्ध बलवा न कर बैठे।

डाके और अराजकता

कम्पनी के लिए सब से पहला काम यह था कि अपनी भारतीय प्रजा को इस प्रकार दबा कर रक्खे जिससे प्रजा उसके विरुद्ध विद्रोह न कर सके। प्रजा को लगातार आपत्तियों में फँसाए रखने में ही उस समय के विदेशी शासकों को अपनी कुशल दिखाई दी, और प्रजा की खुशहाली और निश्चिन्तता में उन्हें अपने लिए ख़तरा नज़र आया। लॉर्ड कॉर्नवालिस के जिन शासन-सुधारों का ऊपर वर्णन हो चुका है उनका मुख्य उद्देश भी भारतीय प्रजा में सदा के लिए आपसी झगड़े क़ायम रखना ही था और यही उन 'सुधारों' का परिणाम हुआ।

लॉड मिण्टो के समय में लगभग समस्त ब्रिटिश भारत के अन्दर डकैतियों का बाज़ार खूब गरम था, और उनके साथ साथ भयङ्कर हत्याएँ, घरों में आग लगा देना, और तरह तरह के अत्याचार जगह जगह हो रहे थे।*

लॉर्ड डफ़रिन ने ३० नवम्बर सन् १८८८ को कलकत्ते में वक्तृता देते हुए कहा था—

"× × × लॉर्ड मिण्टो के समय में कलकत्ते से इधर उधर बीस बीस मील तक पूरे ज़िले के ज़िले डकैतों की दया पर छोड़ दिए गए थे और

---

* " . . . the scenes of horror, the murders, the burnings, the excessive cruelties . . ."—the Judge of circuit in Rajeshaye, 1808.

यह हालत पचास वर्ष से अधिक बङ्गाल पर अङ्गरेज़ों का क़ब्ज़ा रहने के बाद की थी।"*

इतिहास-लेखक जेम्स मिल हमारे इस भ्रम को भी दूर कर देता है कि सम्भव है अङ्गरेज़ों के आने से पहले भी इस देश में डकैतियों की यही हालत रही हो। वह लिखता है—

"अङ्गरेज़ी हुकूमत और उसके क़ानूनों के अधीन इस तरह के जुर्म (अर्थात् डकैतियाँ) कम नहीं हुए, बल्कि इस दर्जे बढ़ गए कि जो किसी भी सभ्य क़ौम के न्यायशासन के लिए अत्यन्त लज्जाजनक है। अङ्गरेज़ी हुकूमत के अधीन ये जुर्म न केवल इस दर्जे बढ़ गए कि जिसकी भारत की देशी हुकूमतों के अधीन कहीं कोई मिसाल नहीं मिलती, बल्कि किसी काल में भी किसी भी देश में जहाँ किसी दर्जे औचित्य के साथ भी यह कहा जा सकता है कि वहाँ हुकूमत और क़ानून मौजूद थे, इस तरह के जुर्म इतने कभी भी देखने में न आए थे।"†

---

* ". . . in his (Lord Minto's) time whole districts within twenty miles of Calcutta were at the mercy of dacoits, and this after the English had been more than fifty years in the occupation of Bengal."—Lord Dufferin on the 30th November, 1888 at Calcutta.

† "This class of offences did not diminish under the English Government and its legislative provisions. It increased, to a degree highly disgraceful to the legislation of a civilized people. It increased under the English Government, not only to a degree of which there seems to have been no example under the Native Goverments of India, but to a degree surpassing what was ever witnessed in any country in which law and government could with any degree of propriety be said to exist."—Mill, vol. v, 387.

उस समय का एक प्रसिद्ध अङ्गरेज़ जज सर हेनरी स्ट्रैची लिखता है—

"मुझे विश्वास है कि अङ्गरेज़ों की अदालतें खुलने के समय से डकैती के जुर्म बहुत बढ़ गए हैं।"*

सन् १८०८ में राजशाही के डिवीज़नल जज ने लिखा—

"अनेक बार कहा जा चुका है कि राजशाही में डकैतियाँ बहुत होती हैं। × × × तथापि प्रजा की हालत की ओर काफ़ी ध्यान नहीं दिया जाता। इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि वास्तव में जान या माल की कोई रक्षा नहीं की जाती।"†

सन् १८०९ में गवरमेण्ट के सेक्रेटरी डाउड्सवेल ने लिखा—

"भारतीय प्रजा के जान अथवा माल की कोई हिफ़ाज़त नहीं की जाती।"‡

यह भी नहीं कि अङ्गरेज़ सरकार के पास प्रजा की रक्षा के लिए उस समय काफ़ी सामान न रहा हो। जेम्स मिल लिखता है—

---

* "The crime of dacoity has, I believe, increased greatly, since the British administration of Justice."—Sir Henry Strachey.

† "That dacoity is very prevalent in Rajashaye has been often stated . . . . Yet the situation of the people is not sufficiently attended to. It can not be denied, that, in point of fact, there is no protection for persons or property."

‡ "To the people of India there is no protection, either of person or of property."

"बङ्गाल की अङ्गरेज़ सरकार के पास इतनी काफ़ी फ़ौज मौजूद है कि अत्यन्त आसानी से वह तमाम प्रजा का संहार कर सकती है ;"*

स्वयं लॉर्ड मिण्टो ने अपनी धर्मपत्नी के नाम एक 'प्राइवेट' पत्र में उपहास के साथ लिखा था—

"हाल में डाकू लोग बैरकपुर से तीस मील के अन्दर आ गए हैं। दल बाँध कर डाका डालने का जुर्म थोड़ा बहुत बङ्गाल में हमेशा होता रहा है। किन्तु आजकल यहाँ डाकुओं को कामयाबी भी होती है और दण्ड भी कुछ नहीं मिलता; इसलिए आस पास के अधिक जङ्गली इलाक़ों में, जहाँ लोगों को इतने अर्से तक एक बाज़ाब्ता और क़ानूनी हुकूमत का सुख भोगने को नहीं मिला, डकैतियाँ जितनी प्रचलित हैं उससे भारत के इस सभ्य और समृद्ध भाग में कहीं अधिक प्रचलित हैं। और ऊपर से देखने में इन प्रान्तों की अङ्गरेज़ी हुकूमत के लिए यह लज्जाजनक प्रतीत होता है कि हमारे सब से पुराने इलाक़े इस अराजकता और अन्याय के दुष्परिणामों से सब से अधिक अरक्षित हों।"†

---

* "Such is the military strength of the British Government in Bengal, that it could exterminate all the inhabitants with the utmost ease;"—Mill, vol. v, p. 410.

† "They (the dacoits) have of late come within thirty miles of Barrackpore. The crime of gang robbery has at all times, though in different degrees, obtained a footing in Bengal. The prevalence of the offence, occasioned by its success and impunity, has been much greater in this civilized and flourishing part of India, than in the wilder territories adjoining, which have not enjoyed so long the advantages of a regular and legal government;

ऊपर के उद्धरण में लॉर्ड मिण्टो का यह इशारा करना कि कम्पनी के इलाक़े के लोग उस समय पास के देशी इलाक़ों से अधिक समृद्ध थे, सर्वथा झूठ है। असंख्य उद्धरण इस बात के सुबूत में दिए जा सकते हैं कि पास के देशी इलाक़ों की प्रजा कम्पनी के इलाक़े की प्रजा से कई गुणा अधिक समृद्ध थी। उदाहरण के लिए उस समय के कम्पनी के इलाक़े और मराठा इलाक़े की तुलना करते हुए एक अङ्गरेज़ लेखक लिखता है—

"बरार के जागीरदारों की ज़मीनें कम्पनी सरकार के इलाक़ों की अपेक्षा अधिक समृद्ध अवस्था में हैं, इसका कारण यह है कि वे ज़मीनें अधिक सुरक्षित हैं और वहाँ की रय्यत पर कम अत्याचार किए जाते हैं।"*

तथापि अङ्गरेज़ी इलाक़े की तुलना में देशी इलाक़ों के अन्दर डकैतियों का निशान तक न था।

यह कह सकना कि किन किन उपायों से उस समय इन निरङ्कुश डाकुओं के हौसले बढ़ाए गए, अत्यन्त कठिन है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इन डाकुओं को दण्ड देना अथवा उनसे प्रजा की

---

and it appears at first sight mortifying to the English administration of these provinces, that our oldest possessions should be the worst protected against the evils of lawless violance."—Lord Minto in a private letter to Lady Minto.

* "The lands of the Jagirdars, in Berar, are in a more prosperous condition than those of the Circar, because they are better protected, and the ryots less oppressed."—*Origin of the Pindaries etc.*, by an Officer in the service of the Honourable East India Company, 1818, p. 149.

रक्षा करना उस समय भारत के अङ्गरेज़ शासकों की नीति के विरुद्ध था। भारतीय प्रजा के इस तरह की आपत्तियों में पड़े रहने में ही उन्हें अपना हित दिखाई देता था, और "प्रजा की जान माल की रक्षा" करने में उन्हें अपनी कुशल दिखाई न देती थी।

भारतीय इतिहास के अङ्गरेज़ लेखक प्रायः गर्व के साथ लिखते हैं कि अङ्गरेज़ों के भारत आगमन के समय इस देश में चारों ओर अराजकता और कुशासन का दौर था और विदेशियों ने आकर आपसी मार काट और डाकुओं की लूट मार से भारतवासियों की रक्षा की। किन्तु इतिहास के पृष्ठ लौटने से कुछ दूसरा ही दृश्य देखने को मिलता है। निस्सन्देह मुग़ल साम्राज्य के अन्त के दिनों में, जब कि वह विशाल साम्राज्य सङ्कट की अवस्था में था, सम्राट के अनेक अनुचरों ने विविध प्रान्तों में अपने अपने लिए स्वतन्त्र बादशाहतें क़ायम कर लीं। इस प्रकार ही हैदराबाद में आसफ़-जाह और अवध में सआदत ख़ाँ ने अपनी अपनी सल्तनतें क़ायम कीं। लड़ाइयाँ और रक्तपात भी उस समय भारत में अवश्य हुआ, क्योंकि बिना लड़ाइयों और रक्तपात के नई सल्तनतें क़ायम नहीं हो सकतीं। किन्तु इतिहास से पता चलता है कि ईसा की १८ वीं सदी में अथवा १९ वीं सदी के आरम्भ में जितनी लड़ाइयाँ और जितना रक्तपात भारत में हुआ है उससे यूरोप में कहीं अधिक हुआ है। इसके अतिरिक्त मुग़ल साम्राज्य के समय की समृद्धि का तो ज़िक्र ही क्या, जिसे देख कर यूरोप तथा शेष समस्त संसार के यात्री चकित रह जाते थे; किन्तु इन समस्त नई सल्तनतों के क़ायम

करने वाले मराठे, राजपूत तथा मुसलमान नरेश भी अपनी प्रजा की आवश्यकताओं की ओर पूरा ध्यान देते थे और प्रजा के जान माल की रक्षा करना अपना परम कर्त्तव्य मानते थे। प्रायः समस्त अङ्गरेज़ लेखक स्वीकार करते हैं कि उस समय भी जब कि ब्रिटिश भारत के अन्दर चारों ओर डकैतियों का बाज़ार गरम था और भारतीय प्रजा के जान माल की कोई रक्षा न की जाती थी, पास के देशी राज्यों में, जहाँ पर कि प्रजा के पास धन वैभव कहीं अधिक था, उनकी जान और माल दोनों की पूरी हिफ़ाज़त की जाती थी। निस्सन्देह अराजकता और कुशासन अङ्गरेज़ों के आने से पहले भारत में मौजूद न थे। इतिहास साक्षी है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ ही साथ इस देश में शान्ति और समृद्धि दोनों का ख़ात्मा हुआ, और अराजकता और कुशासन ने उनका स्थान ग्रहण किया।

यहाँ तक कि देशी राज्यों के अन्दर भी जितने उपद्रव और विद्रोह होने शुरू हुए वे कम्पनी के बङ्गाल में क़दम जमाने के बाद से शुरू हुए और अधिकतर कम्पनी के शासकों या उनके गुप्तचरों के ही पैदा किए हुए थे। कम्पनी के प्रतिनिधियों ने ही अवध के नवाब-वज़ीर से निरपराध वीर रुहेलों का संहार करवाया और आसफ़ुद्दौला के काँपते हुए हाथों से उसकी वृद्धा माँ के महलों को लूटने में मदद ली। किन्तु यह सब कहानी किसी दूसरे स्थान की है।

लॉर्ड मिण्टो ने अपने पत्र में यह भी स्वीकार किया है कि

पचास वर्ष से ऊपर के अङ्गरेज़ी शासन ने भारतवासियों और ख़ास कर बङ्गालियों को इतना "कायर और निर्वीर्य" बना दिया था कि वे डाकुओं का मुक़ाबला करने के असमर्थ हो गए थे।*

जसवन्तराव की मृत्यु

दूसरा ख़तरा उस समय अङ्गरेज़ों को मराठों से था। होलकर, सींधिया और भोंसले का अभी तक सर्वनाश न हो पाया था और यह डर था कि कहीं ये नरेश फिर से आपस में मिल कर अङ्गरेज़ों से बदला न लें।

इन तीनों में सबसे अधिक भय अङ्गरेज़ों को अभी तक जसवन्तराव होलकर से था। जसवन्तराव के चरित्र के विषय में ग्राण्ट डफ़ लिखता है—

"जसवन्तराव होलकर के चरित्र का मुख्य गुण वह कठोर उद्यमशीलता और पराक्रमशीलता थी, जो कि उसके अन्य देशवासियों के समान उसमें विजय के समय तो अनन्त होती ही थी, किन्तु जो कठिन से कठिन पराजयों के समय भी उसके अन्दर से कम होने न पाती थी। इसी तरह आम मराठों की अपेक्षा वह अधिक सुशिक्षित था, और फ़ारसी तथा मराठी दोनों लिख सकता था। व्यवहार में वह निष्कपट था, × × × उसका क़द छोटा था, किन्तु शरीर अत्यन्त फुर्तीला और मज़बूत था; यद्यपि उसका रङ्ग साँवला था और अचानक किसी बन्दूक़ के छूट जाने के कारण

---

* . . . loss of martial habits and character, have made the people of Bengal so timid and enervated, that no resistance is to be apprehended in the act, nor punishment afterwards."
—Lord Minto's letter to Lady Minto.

उसकी एक आँख जाती रही थी, तथापि उसका चेहरा देखने में बुरा न लगता था, और चेहरे से एक प्रकार का हँसमुखपन और मरदाना हिम्मत प्रकट होती थी।"*

निस्सन्देह जसवन्तराव होलकर से बढ़ कर अङ्गरेज़ों का जानी दुश्मन उस समय भारत में दूसरा न था। जसवन्तराव के ख़ास दरबारियों में विश्वासघातक अमीर ख़ाँ अभी तक मौजूद था, जिसने भरतपुर के मोहासरे के समय ३३ लाख रुपए अङ्गरेज़ों से लेकर होलकर के सवारों को अङ्गरेज़ों के भालों और गोलियों के हवाले कर दिया था। अमीर ख़ाँ के ज़रिए अङ्गरेज़ों के षड्यन्त्र होलकर के दरबार में बराबर जारी थे।

न जाने क्यों और कैसे सन् १८०८ में जसवन्तराव होलकर बीमार पड़ा और फिर एकाएक पागल हो गया। तुरन्त होलकर

---

* "The chief feature of Jaswant Rao Holkar's character was that hardy spirit of energy and enterprise which, though, like that of his countrymen, boundless in success, was also not to be discouraged by trying reverses. He was likewise better educated than Marathas in general, and could write both the Persian language and his own; his manner was frank, and could be courteous . . . In person his stature was low, but he was of a very active strong make; though his complexion was dark, and he had lost an eye by the accidental bursting of a match-lock, the expression of his countenance was not disagreeable, and bespoke something of droll humor, as well as of manly boldness."—*History of the Marathas*, by Captain Grant Duff, p. 606.

दरबार के अन्दर दो दल खड़े हो गए। एक मराठों का दल और दूसरा अमीर ख़ाँ और उसके पिण्डारियों का दल। इन दोनों दलों के बीच बराबर प्रतिस्पर्धा और गुप्त प्रयत्न जारी रहे।

अन्त में अङ्गरेज़ों के सौभाग्य और सम्भवतः उनके प्रयत्नों से तय हो गया कि जसवन्तराव के उन्माद की अवस्था में उसकी रानी तुलसीबाई के नाम पर अमीर ख़ाँ ही राज्य का समस्त कारबार करे। थोड़े दिनों बाद जसवन्तराव की मृत्यु हो गई। रानी तुलसीबाई ने चार वर्ष के एक लड़के मलहरराव होलकर को गोद ले लिया। इस प्रकार राज्य के शासन की बाग अमीर ख़ाँ के हाथों ही में रही और कम से कम होलकर की ओर से लॉर्ड मिण्टो का भय बिलकुल दूर हो गया।

अमीर ख़ाँ को अङ्गरेज़ों ने राजपूतों तथा अन्य भारतीय नरेशों के विरुद्ध उकसा कर लड़ाना शुरू किया, और स्वयं होलकर राज्य के अन्दर उसी के द्वारा दलबन्दियाँ और साज़िशें जारी रक्खीं।

अङ्गरेज़ों और अमीर ख़ाँ की इन साज़िशों के विषय में इतिहास-लेखक नॉलेन लिखता है—

"जो सरदार अङ्गरेज़ों के अनुग्रह-पात्र बने हुए थे, उनमें से एक अमीर ख़ाँ था। × × × पिछली सन्धियों का उल्लङ्घन करते हुए लॉर्ड मिण्टो ने होलकर के इलाक़े का एक ख़ासा हिस्सा इस शख़्स को दे दिया था, और इस आततायी डाकू और हत्यारे तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दरमियान एक बाज़ाब्ता सन्धि द्वारा मित्रता का सम्बन्ध क़ायम हो चुका

था।×××होलकर के राज्य की अखण्डता के विरुद्ध अङ्गरेज़ों और अमीर ख़ाँ के दरमियान की साज़िशें हमारी क़ौम की प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाली न थीं। इन साज़िशों के सम्बन्ध में दरबार के आस पास के तमाम लोग और उस रियासत के अन्दर के तमाम दल, कोई अङ्गरेज़ों के पक्ष में और कोई उनके विरुद्ध, और एक दूसरे के पक्ष में तथा विपक्ष में सब के सब साज़िशों में लगे हुए थे। जिस प्रदेश के ऊपर उस होलकर का राज्य था, जिसकी कीर्ति एक समय दूर दूर तक फैली हुई थी, उस प्रदेश को अब दरोग़हलफ़ी, विश्वासघात, बलात्कार अपहरण, क़तल, हत्या, लूट, बग़ावत और आपसी लड़ाइयों ने कलङ्कित और टुकड़े टुकड़े कर रक्खा था।"*

इतिहास-लेखक ग्राण्ट डफ़ उस समय की इन दलबन्दियों के उद्देश के विषय में साफ़ लिखता है—

"यह आशा की जाती थी कि यदि मराठा सरदार आपस में लड़ते

---

* "Among the chiefs who received favour from the English was one Amir Khan . . .. This person had, in spite of previous treaties, a considerable portion of Holkar's territory made over to him by Lord Minto, and a formal treaty sealed the bond of amity between this desperate robber and murderer and the East India Company. . . . The intrigues between the English and Amir Khan against the integrity of Holkar's dominion were not honourable to our nation. In connection with them, all persons about the court, all parties in that state, intrigued for and against the English, and for and against one another. Perjury, perfidy, abduction, assassination, murder, plunder, revolt and civil war rent and stained realms which had owned the sovereignty of the once far—renowned Holkar."—Nolan's *History of the British Empire*, pp. 510, 511, 521.

रहेंगे, अपने पड़ोसियों को लूटते रहेंगे, और उन्हें स्वयं अपने इलाक़ों के छिन जाने का डर बना रहेगा, तो वे अङ्गरेज़ सरकार के विरुद्ध लड़ाई छेड़ने से रुके रहेंगे।"*

होलकर से उतर कर दूसरा डर अङ्गरेज़ों को महाराजा सींधिया और बरार के राजा से था। इन दोनों के थोड़े थोड़े इलाक़े पिछले युद्ध में छीन लिए गए थे। उनके राज्य अङ्गरेज़ी सरहद से मिले हुए थे। बहुत सम्भव था कि इस समय वे अपने खोए हुए इलाक़ों को फिर से विजय करने के प्रयत्न करते। कम्पनी की आर्थिक अवस्था इस योग्य न थी कि इन बलवान नरेशों के मुक़ाबले के लिए तमाम सरहद पर सेनाएँ रक्खी जा सकतीं। इस कठिनाई को हल करने के लिए अङ्गरेज़ों ने दो मुख्य उपाय किए। एक, इन राज्यों में अपने गुप्तचर भेज कर इन नरेशों के विरुद्ध जगह जगह विद्रोह खड़े करवा दिए तथा अनेक छोटे बड़े मराठा सरदारों को एक दूसरे से लड़ाए रक्खा; और दूसरे, पिण्डारियों को धन देकर तथा उकसा कर उनसे मराठों के इलाक़ों में लूट मार करवाई।

पिण्डारी और अङ्गरेज़

इस स्थान पर आगे बढ़ने से पहले हमें पिण्डारियों के विषय में कुछ अधिक जान लेना आवश्यक है। क्योंकि भारत के प्रायः समस्त अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों ने वीर पिण्डारियों के चरित्र पर

* "It was expected that their (the Maratha Chiefs') domestic wars, the plunder of their neighbours, and the fear of loosing what they possessed, would deter them from hostile proceedings against the British Government."—Grant Duff.

अनेक झूठे इलज़ाम लगाने, उन्हें डाकू और लुटेरे बताने और उन्हें बदनाम करने के पूरे प्रयत्न किए हैं।

पिण्डारी दक्षिण भारत की एक पठान जाति थी। ये लोग आरम्भ से दक्षिण के भारतीय नरेशों के यहाँ सेना में सवार हुआ करते थे। इनके प्रायः अपने घोड़े होते थे। सहस्रों पिण्डारी मराठों की सेनाओं में नौकर थे और मराठों के सबसे अधिक विश्वस्त तथा वीर सेनानियों में गिने जाते थे। मराठों तथा औरङ्गज़ेब के युद्धों में पिण्डारियों ने बड़ी वीरता के साथ औरङ्गज़ेब के विरुद्ध मराठों का साथ दिया। १७ वीं शताब्दी से लेकर १९ वीं शताब्दी के शुरू तक अनेक पिण्डारी सरदारों के नाम उस समय के इतिहास में प्रसिद्ध हैं। नसरू पिण्डारी शिवाजी का एक विश्वस्त जमादार था। एक दूसरा पिण्डारी सरदार सेनापति पुनापा उन दिनों मराठों का एक बड़ा भारी मददगार था। पेशवा बाजीराव प्रथम ने अधिकतर पिण्डारियों ही की सहायता से मालवा प्रान्त को विजय किया। उसके बाद होलकर तथा सींधिया दोनों की सेनाओं में हज़ारों पिण्डारी योद्धा और अनेक पिण्डारी सरदार शामिल थे। हीरा ख़ाँ पिण्डारी और बुरान ख़ाँ पिण्डारी माधोजी सींधिया के दो विश्वस्त और योग्य सेनापति थे। एक और प्रसिद्ध पिण्डारी सरदार चीतू को महाराजा दौलतराव सींधिया ने उसकी सेवाओं के बदले में नवाब की उपाधि और एक जागीर प्रदान कर रक्खी थी। दौलतराव सींधिया ही की सेना में एक और पिण्डारी सरदार करीम ख़ाँ को भी नवाब की उपाधि और जागीर प्रदान की गई थी।

पानीपत की तीसरी लड़ाई में एक पिण्डारी सेनापति हूल-सवार के अधीन १५ हज़ार सवारों ने पूरी जाँनिसारी के साथ मराठों के पक्ष में युद्ध किया था।

एक अङ्गरेज़ लेखक लिखता है कि पिण्डारियों की सेनाओं में हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों के लोग खुले भरती किए जाते थे। सम्भवतः उनके सरदारों में भी हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों के लोग होते थे, क्योंकि पूर्वोक्त लेखक के अनुसार विविध पिण्डारी दलों के, जिन्हें 'दुर्रे' या 'लब्बर' कहते थे, सरदारों का पद पैतृक न होता था। वरन् प्रत्येक सरदार के मरने पर उसके समस्त अनुयायी मिल कर अपने में से सब से अधिक वीर तथा सब से अधिक योग्य व्यक्ति को अपना सरदार चुन लेते थे। इस सम्बन्ध में पूर्वोक्त अङ्गरेज़ लिखता है—

"मालूम होता है कि मराठों तथा मुसलमानों के बीच कभी भी अधिक धार्मिक वैमनस्य मौजूद न था। दोनों एक ही भाषा का उपयोग करते हैं। दोनों में बहुत से रिवाज एक समान पाए जाते हैं। मराठों ने मुसलमानों की अनेक उपाधियाँ अपने यहाँ ले रक्खी हैं। सींधिया तथा अन्य मराठा नरेशों के सेनापति प्रायः मुसलमान हैं; और मुसलमान नरेशों के दरबारों की बाग प्रायः ब्राह्मण मन्त्रियों के हाथों में होती है।"*

---

* "No great religious enmity would ever appear to have existed between the Marathas and Mohammedans. The same language is common to them both, many of their customs are the same, and the former have adopted many of the titles of the latter. The Generals of Scindhia and the other Maratha

पिण्डारी सरदारों का व्यवहार अपने अनुयायियों के साथ इतना सुन्दर होता था कि विशेष कर १८ वीं सदी के अन्त और १९ वीं सदी के प्रारम्भ में उनके अनुयायियों की संख्या ज़ोरों के साथ बढ़ती चली गई। इतिहास-लेखक विलसन लिखता है कि इनमें से अधिकांश पिण्डारी सरदार मालवा में बस गए। सींधिया और होलकर दरबारों की ओर से अधिकतर नर्बदा के किनारे किनारे इन्हें अपने गुज़ारे के लिए मुफ़्त ज़मीनें दे दी गईं। शान्ति के समय ये लोग खेती बाड़ी करके तथा अपने टट्टुओं और बैलों पर माल लाद कर उसे बेच कर अपना गुज़ारा करते थे और इनसे यह शर्त थी कि युद्ध छिड़ने पर अपने घोड़ों सहित मराठा दरबारों की मदद के लिए पहुँच जाया करें। होलकर राज्य में रहने वाले पिण्डारी 'होलकर शाही' और सींधिया राज्य में रहने वाले 'सींधिया शाही' कहलाते थे। जसवन्तराव होलकर का अनुयायी प्रसिद्ध अमीर ख़ाँ भी एक पिण्डारी सरदार था।

जनरल वेल्सली ने २९ मार्च सन् १८०३ को जनरल स्टुअर्ट को लिखा था कि मैंने तीन हज़ार पिण्डारी सवार पेशवा की नौकरी के लिए तैयार किए हैं और—

"यदि पेशवा उन्हें नौकर रखना पसन्द न करे तो × × × उन्हें या

---

chiefs, are often Mohammedans; and Brahmans frequently govern the Courts of Mussalman Princes."—*Origin of the Pindaries* etc., by an Officer in the Service of the Honourable East India Company, 1818.

तो बरख़ास्त कर दिया जाय और या बिना तनख़्वाह दिए शत्रु को लुटवाने में उनका उपयोग किया जाय; और हर सूरत में यदि पेशवा उनका ख़र्च देने से इनकार कर दे तो भी × × × यदि हम उन्हें होलकर की ओर जाने से रोके रक्खें तो इससे हमारी सेना को निस्सन्देह इतना लाभ होगा कि उसके मुक़ाबले में कम्पनी के ऊपर जो कुछ ख़र्च करना पड़ेगा वह बहुत ही थोड़ा होगा।"*

ज़ाहिर है कि उस समय भी अङ्गरेज़ पिण्डारियों को धन और उत्तेजना दे देकर उनसे देशी राजाओं के इलाक़ों में लूट मार करवाया करते थे। इसीलिए ग्राण्ट डफ़ लिखता है कि यदि कोई अङ्गरेज़ निहत्था भी इन पिण्डारी डाकुओं के बीच से रात को निकल जाता था तो वे उसे कुछ न कहते थे।

वास्तव में पिण्डारियों से अपने मराठा स्वामियों के साथ विश्वासघात कराना और उनसे भारतीय नरेशों के इलाक़ों को लुटवाना उस समय की कम्पनी की भारतीय नीति का एक विशेष अङ्ग था।

किन्तु यह हालत बहुत दिनों न रह सकी। सन् १८१२ ई० के

* "If he (the Peshwa) should not approve of retaining them, they may either be discharged, or may be employed in the plunder of the enemy without pay, . . . and at all events, supposing that His Highness should refuse to pay their expences . . . the charge to the Company will be trifling in comparison with the benefit which this detachment must derive from keeping this body of Pindaries out of Holkar's services, ... "—Duke of Wellington's despatches, vol. i, pp. 120, 121.

लगभग इन पिण्डारी डाकुओं ने अङ्गरेज़ी इलाक़े पर भी धावे मारने शुरू कर दिए। प्राण्ट डफ़ लिखता है—

"कुछ समय तक, अर्थात् जब तक कि × × × पिण्डारियों को अधिक उपजाऊ मैदानों में धावा मारने के लिए उत्तेजित नहीं किया गया, तब तक उनके धावे अधिकतर मालवा, मारवाड़, मेवाड़ और समस्त राजपूताना तथा बरार तक ही परिमित रहे × × × किन्तु यदि पिण्डारियों को अपने धावों का क्षेत्र अधिक विस्तीर्ण करने के लिए उत्तेजित करने वाले और कारण न भी पैदा होते, तो भी अङ्गरेज़ सरकार की अधूरी चालों और स्वार्थमय नीति (Selfish policy) ने हिन्दोस्तान की जो हालत कर दी थी उसमें यह असम्भव था कि हिन्दोस्तान का कोई हिस्सा बहुत दिनों तक इनके लूट मार के धावों से बचा रहता।"

पिण्डारियों के अङ्गरेज़ी इलाक़ों पर धावे शुरू कर देने के अनेक कारण हो सकते हैं। सम्भव है कि कुछ देशी नरेशों ने अङ्गरेज़ों ही की नीति का अनुकरण करके पिण्डारियों को अङ्गरेज़ी इलाक़ों पर धावा करने के लिए उत्तेजित किया हो, किन्तु अङ्गरेज़ों का देशी राजाओं की प्रजा के लुटने तथा कम्पनी की हिन्दोस्तानी प्रजा के लुटने दोनों में लाभ था, क्योंकि जब कि देशी नरेश अपनी प्रजा को सुखी और सुरक्षित रखने में अपना हित समझते थे, कम्पनी के शासकों को अपनी कुशल अपनी हिन्दोस्तानी प्रजा को निर्बल और भयभीत रखने में ही दिखाई देती थी। पिण्डारियों के अङ्गरेज़ी इलाक़ों पर हमले शुरू कर देने का एक कारण यह भी था कि अङ्गरेज़ों ने पिण्डारी सरदारों के बढ़ते हुए बल को

रोकने के लिए उन्हें आपस में एक दूसरे के विरुद्ध भड़काना और एक दूसरे से लड़ाना शुरू कर दिया था, और उनमें से कई की वे रक़में बन्द कर दीं जो पहले उन्हें कम्पनी से मिला करती थीं।

पिण्डारी सरदारों की ओर कम्पनी की चालें कितनी दुरङ्गी थीं, इसकी एक सुन्दर मिसाल सन् १८०९ का अमीर ख़ाँ का बरार पर हमला है।

अमीर ख़ाँ का बरार पर हमला

इस मामले में कम्पनी के दो उद्देश थे। एक, यद्यपि अमीर ख़ाँ से कम्पनी के अनेक बड़े बड़े काम निकल चुके थे, जिनके लिए अङ्गरेज़ अमीर ख़ाँ को अनेक बार धन भी दे चुके थे, तथापि अमीर ख़ाँ का बल इस समय इतना बढ़ गया था कि अङ्गरेज़ों को स्वयं अपने लिए उसे भय हो गया। अमीर ख़ाँ एक वीर और पराक्रमी सेनापति था और अङ्गरेज़ अब जिस प्रकार हो, उसके बल को कम करने की कोशिशों में लग गए। दूसरे, बहुत दिनों से वे बरार के राजा को सबसीडीयरी सन्धि के जाल में फँसाने के प्रयत्न कर रहे थे।

२४ मार्च सन् १८०५ को मार्किस वेल्सली ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम एक लम्बा पत्र लिखा था, जिसमें लिखा है कि—उस समय जब कि होलकर और अङ्गरेज़ों में युद्ध जारी था, नागपुर के रेज़िडेण्ट ने बरार के राजा और उसके मन्त्रियों को ख़ूब समझाया कि आपको अङ्गरेज़ों के साथ सबसीडीयरी सन्धि कर लेनी चाहिए। पत्र में लिखा है कि रेज़िडेण्ट ने उस अवसर पर

बरार के राजा से साफ़ साफ़ कहा कि यदि आपने अङ्गरेज़ों के साथ सबसीडीयरी सन्धि न कर ली तो डर है कि जसवन्तराव होलकर के साथ अङ्गरेज़ों का युद्ध समाप्त होने के बाद जसवन्तराव की सेना आपके इलाक़े पर हमला कर दे ; और यदि अङ्गरेज़ों और आपके बीच पहले से सबसीडीयरी सन्धि हो जायगी तो अङ्गरेज़ सबसीडीयरी सेना द्वारा आपकी सहायता कर सकेंगे। किन्तु रेज़िडेण्ट के हर तरह समझाने पर भी राजा ने सबसीडीयरी सन्धि को स्वीकार करने से इनकार किया। इस तरह की सन्धियों के विषय में उन दिनों आम नियम यह था कि पहले अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट और कम्पनी के दूत देशी नरेशों और उनके मन्त्रियों को ज़बानी इस तरह की सन्धियों के फ़ायदे सुझाते थे और फिर देशी नरेश की ओर से कम्पनी के नाम पत्र द्वारा सन्धि के लिए इच्छा प्रकट कराई जाती थी। और दिखाया यह जाता था कि ये सन्धियाँ देशी नरेशों की प्रार्थना पर की जाती हैं। उस समय अङ्गरेज़ बरार के राजा पर इससे अधिक ज़ोर न दे सकते थे । इसलिए मार्किस वेल्सली ने अपने पत्र के अन्त में लिखा है—

"यह अधिक उचित मालूम हुआ कि राजा के चित्त पर आयन्दा की घटनाओं का प्रभाव पड़ने तक के लिए राजा को छोड़ दिया जाय और इस बात पर विश्वास किया जाय कि उन घटनाओं का राजा पर इस तरह का प्रभाव पड़ेगा कि वह फिर इस तरह की सन्धि के लिए अपनी स्वीकृति दे देगा और हमारा उद्देश सिद्ध हो जायगा।"*

---

* "It appeared to be more advisable to leave the Raja to the

ज़ाहिर है कि होलकर की कुछ सेना से वरार पर हमला करवा कर वरार के राजा को डराने और इस प्रकार उसे सब॰ सीडीयरी सन्धि में फँसाने का इरादा अङ्गरेज़ सन् १८०५ ही में कर चुके थे। वे यह भी जानते थे कि होलकर की सेना में अमीर ख़ाँ हमारा ही आदमी है।

लॉर्ड मिण्टो के समय में अङ्गरेज़ों ने निज़ाम को उकसा कर उससे अमीर ख़ाँ के नाम यह पत्र लिखवा दिया कि आप वरार पर आकर हमला कीजे और मैं धन इत्यादि से आपकी सहायता करूँगा। कहा गया कि जिन दिनों जसवन्तराव होलकर नागपुर में था उन दिनों वरार के राजा ने जसवन्तराव के कुछ क़ीमती जवाहरात अपने पास रख लिए थे। अमीर ख़ाँ से अब वरार के राजा के नाम एक पत्र लिखवाया गया कि आप वे जवाहरात या उनकी क़ीमत होलकर दरबार को लौटा दें; और जब वरार के राजा से कोई सन्तोषप्रद उत्तर न मिल सका तो अमीर ख़ाँ ने वरार पर हमला करने की तैयारी शुरू कर दी। अमीर ख़ाँ और अङ्गरेज़ कम्पनी के बीच पहले से यह साफ़ साफ़ सन्धि हो गई थी कि अङ्गरेज़ होलकर दरबार के मामलों में और विशेष कर वरार के राजा के साथ होलकर दरबार के झगड़ों में किसी तरह का दख़ल न देंगे। इस सन्धि के भरोसे और निज़ाम की सहायता

operation of future events on his mind, and to trust exclusively to (?) the object of obtaining the consent of the Raja to the alliance; . . ."

पर विश्वास करके अमीर खाँ अपनी सेना लेकर जनवरी सन् १८०९ में बरार की सरहद पर जा पहुँचा।

दूसरी ओर बरार के राजा को अङ्गरेजों ने यह सुझाया कि निज़ाम और अमीर खाँ दोनों मुसलमान मिल कर तुम्हारे विरुद्ध साज़िश कर रहे हैं, और बरार के उस इलाक़े पर, जो निज़ाम की सरहद से मिला हुआ है, अमीर ख़ाँ का राज्य क़ायम कर देना चाहते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि लॉर्ड मिण्टो ने बिना माँगे कम्पनी की सेना अमीर खाँ के मुक़ाबले और राजा बरार की मदद के लिए रवाना कर दी।

अमीर खाँ अपने मुक़ाबले में कम्पनी की सेना को आया हुआ देख कर चकित रह गया। प्रोफ़ेसर एच० एच० विलसन लिखता है कि अमीर खाँ ने—

"होलकर दरबार के साथ अङ्गरेज़ों की सन्धि की उस शर्त की दुहाई दी जिसमें अङ्गरेज़ सरकार ने यह वादा किया था कि हम होलकर के मामलों में किसी तरह का भी दख़ल न देंगे, × × × अमीर ख़ाँ का एतराज़ नहीं सुना गया, तथापि उसकी दलील अकाट्य और न्याय्य थी; × × × उसकी दलील यह थी कि अङ्गरेज़ सरकार का व्यवहार सन्धि के साफ़ विरुद्ध है और उन गम्भीर वादों के भी विरुद्ध है जो अङ्गरेज़ सरकार ने होलकर दरबार से किए हैं कि बरार के राजा से जसवन्तराव का जो कुछ झगड़ा है उसमें हम कोई दख़ल न देंगे। इन दलीलों का अब कोई प्रभाव न पड़ सकता था।"*

---

* ". . . appealed with unanswerable justice, although with

हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि बरार के राजा के साथ अङ्गरेजों की कोई सन्धि इस तरह की न थी जिससे वे ऐसे अवसर पर राजा की मदद करने के लिए बाध्य होते, और न राजा ने उनसे मदद की प्रार्थना की थी। तथापि अमीर खाँ को हराने और बरार के राजा की रक्षा करने के लिए अङ्गरेजी सेना मौक़े पर मौजूद हो गई। मालूम नहीं, इसके बाद स्वयं अमीर खाँ की नीति किस ओर को झुकी। कम्पनी की सेना के बढ़ते ही अमीर खाँ बरार के राजा का इलाक़ा छोड़ कर पीछे हट गया। अङ्गरेजों ने भी अमीर खाँ का अधिक दूर तक पीछा करना उचित न समझा, और यह घटना यहीं समाप्त हो गई।

इस प्रकार की नीति द्वारा लॉर्ड मिण्टो ने अपनी भारतीय प्रजा तथा होलकर, सींधिया और भोंसले जैसे भारतीय नरेशों को अङ्गरेजों के विरुद्ध सर उठाने से रोके रक्खा।

बुन्देलखण्ड के कुछ छोटे छोटे राजाओं के विरुद्ध भी लॉर्ड मिण्टो को सेनाएँ भेजनी पड़ीं और एक साधारण सा युद्ध त्रिवानकुर

no avail, to the stipulation of the existing treaty with Holkar . . ., which engaged that the British Government would not in any manner whatever interfere in his affairs; . . . he argued that the conduct of the Government was a manifest infraction of the treaty, and a breach of the solemn promises made to Jaswant Rao, that it would not meddle with his claims upon the Raja of Berar. These representations were no longer likely to be of any weight."—Mill, vol. vii, p. 210.

में भी हुआ। किन्तु लॉर्ड मिण्टो के समय की सब से अधिक महत्वपूर्ण घटना ईरान और अफ़ग़ानिस्तान की ओर उसकी नीति थी। लॉर्ड मिण्टो की इस पर-राष्ट्र नीति को बयान करने से पहले इससे पूर्व की मार्क्विस वेल्सली की पर-राष्ट्र नीति को बयान करना आवश्यक है।

ईरान और अफ़ग़ानिस्तान

मार्क्विस वेल्सली के समय में ज़मानशाह अफ़ग़ानिस्तान का बादशाह था, सिन्ध और पञ्जाब के सूबे अफ़ग़ानिस्तान के सामन्त थे, और ज़मानशाह के ब्रिटिश भारत पर हमला करने की कई बार ख़बर उड़ चुकी थी। इसके लिए मार्क्विस वेल्सली ने तीन मुख्य उपाय किए। एक, उसने ईरान के बादशाह बाबा ख़ाँ के पास अपने विशेष दूत भेज कर बाबा ख़ाँ को धन का लोभ दिया और उसे अपने सहधर्मी और पड़ोसी अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने के लिए उकसाया। दूसरे, सिन्ध और पञ्जाब के नरेशों को ज़मानशाह के विरुद्ध भड़काया। और तीसरे, ईरान ही के ज़रिये अफ़ग़ानिस्तान में आपसी फूट डलवाई और ज़मानशाह के विरुद्ध साज़िशें करवाई।

८ अक्तूबर सन् १७९८ को मार्क्विस वेल्सली ने बम्बई के गवरनर डनकन को लिखा—

"मैं आपसे सहमत हूँ कि आपने बुशायर में रहने के लिए जिस देशी एजण्ट को नियुक्त किया है, उससे वह काम बहुत अच्छी तरह

निकाला जा सकता है जिसका आपने अपने पत्र में ज़िक्र किया है। और चूँकि हिन्दोस्तान पर ज़मानशाह के हमले की सम्भावना बढ़ती हुई मालूम होती है, इसलिए मेरी राय है कि जितनी जल्दी हो सके, उतनी जल्दी मेहदीअली ख़ाँ को बाबा ख़ाँ के दरबार में अपनी कारवाइयाँ शुरू कर देनी चाहिएँ × × × निस्सन्देह यह बहुत ही ज़रूरी है कि उस मुल्क में इस तरह की आफ़त खड़ी कर दी जाय जिससे विवश होकर ज़मानशाह या तो इधर हमला करने का इरादा छोड़ दे और या यदि रवाना हो चुका हो तो वापस लौट जाय।"*

कम्पनी का यह "देशी एजण्ट" मेहदीअली ख़ाँ एक ईरानी अमीर था, जो हिन्दोस्तान में बस गया था। बुशायर से उसने ईरान के बादशाह बाबा ख़ाँ के नाम अनेक पत्र लिखे जिनमें अनेक कल्पित घटनाएँ बयान करके उसने बाबा ख़ाँ को ज़मानशाह के विरुद्ध भड़काने का प्रयत्न किया। बाबा ख़ाँ शिया सम्प्रदाय का था और

---

* "I concur with you in thinking that the services of the native agent whom you have appointed to reside at Bushire may be usefully employed for the purpose mentioned in that letter; and as the probability of the invasion of Hindostan by Zeman Shah seems to increase, I am of opinion that Mehdi Ali Khan can not too soon commence his operations at the Court of Baba Khan, . . . *It would certainly be a very desirable object to excite such an alarm in that quarter as may either induce the Shah to relinquish his projected expedition, or may recall him should he have actually embarked on it.*"—Marquess Wellesley's letter to the Hon. J. Duncan, Governor of Bombay, dated 8th October, 1798.

अफ़ग़ानिस्तान का बादशाह सुन्नी था। मेहदीअली ख़ाँ ने ईरान के बादशाह को लिखा कि काबुल के बादशाह के सुन्नी अफ़ग़ानों ने लाहौर के शिया मुसलमानों पर ऐसे ऐसे अत्याचार किए हैं कि वहाँ के हज़ारों शिया मुसलमानों ने भाग भाग कर अङ्गरेज़ों के इलाक़े में पनाह ली है, इसलिए ज़मानशाह को दबाना दीन इसलाम की ख़िदमत करना है।

मेहदीअली ख़ाँ के बेधड़क झूठ बोलने की एक छोटी सी मिसाल यह दी जा सकती है कि उसने ईरान के बादशाह को लिखा कि अङ्गरेज़ कम्पनी के सात सौ बहादुर सिपाहियों ने सिराजुद्दौला के तीन लाख सिपाहियों को हरा दिया।*

मालूम होता है मेहदीअली ख़ाँ की बातों का ईरान के बादशाह पर ख़ासा असर हुआ। सन् १७९९ की शरद ऋतु में बादशाह ने मेहदीअली ख़ाँ को मिलने के लिए तेहरान बुलाया। मेहदीअली ख़ाँ ने शाह और उसके दरबारियों को बड़ी बड़ी नज़रें देने में बहुत सा धन व्यय किया। निस्सन्देह यह सब धन भारत के कोष का था। इसके बाद मेहदीअली ख़ाँ अपना काम करके बुशायर लौट आया।

मेहदीअली ख़ाँ के काम को पक्का करने और अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध ईरान के साथ सन्धि करने के लिए सन् १७९९ के अन्त में मार्किस वेल्सली ने सर जॉन मैलकम को, जो उस समय कप्तान मैलकम था, अपना विशेष दूत नियुक्त करके ईरान भेजा। गवरनर-

---

* *History of Persia* by Lieut. Colonel. P. M. Sykes, vol. ii, p. 397.

जनरल की ओर से उसके फ़ौजी सेक्रेटरी करनल कर्कपैट्रिक ने मैलकम के नाम १० अक्तूबर सन् १७९९ को एक लम्बा पत्र लिखा जिसमें मैलकम को ईरान में काम करने के लिए आदेश दिए गए। यह पत्र इतने महत्व का है कि यहाँ पर उसके कुछ वाक्य उद्धृत करना आवश्यक है। करनल कर्कपैट्रिक ने मैलकम को लिखा—

"बम्बई में गवरनर और उसकी कौन्सिल से आपको उन तमाम पत्रों की नक़लें मिलेंगी जो गवरनर और मेहदीअली ख़ाँ के बीच आए गए हैं। मेहदीअली ख़ाँ एक देशी एजण्ट है, जिसे कुछ दिनों से मिस्टर डनकन ने गवरनर-जनरल के आदेश के अनुसार इस कार्य के लिए नियुक्त किया है कि हिन्दोस्तान के विरुद्ध बार बार ज़मानशाह जो तजवीज़ें करता है, उनमें ज़मानशाह को विफल करने के लिए मेहदीअली ख़ाँ ईरान के दरबार के साथ बातचीत शुरू करे और जारी रक्खे।

* * *

"बसरा या बग़दाद पहुँच कर जितनी जल्दी हो सके, आप ईरान के दरबार को अपनी नियुक्ति की सूचना भेज दें, और मोटे तौर पर यह लिख भेजें कि आपको भेजने का उद्देश उस मेल और मित्रता को फिर से क़ायम करना है जो पुराने समय में ईरान की सरकार और अङ्गरेज़ सरकार के बीच क़ायम थी। यदि कोई मनुष्य आपसे मिलने के लिए × × × भेजा जाय तो आपका उससे इससे ज़्यादा खुल कर बात करना अच्छा नहीं है; किन्तु यदि आपके साथ इस विषय पर ज़्यादा ज़ोर दिया जाय तो आप कह सकते हैं कि और बातों के साथ साथ, मुझे यह आदेश दिया गया है कि मैं हिन्दोस्तान के अङ्गरेज़ी इलाक़ों और ईरान के बीच व्यापार को उन्नति देने के लिए प्रयत्न करूँ।"

निस्सन्देह "व्यापार को उन्नति देना" केवल एक आड़ थी। मैलकम के ईरान भेजे जाने का वास्तविक उद्देश इस पत्र के नीचे के वाक्य से ज़ाहिर है—

"तुम्हारे भेजे जाने का मुख्य उद्देश ज़मानशाह को हिन्दोस्तान पर हमला करने से रोकना है; × × × दूसरा लक्ष्य गवरनर-जनरल का यह है कि यदि किसी समय फ़ान्सीसी किसी ऐसे मार्ग से भारत में प्रवेश करने का प्रयत्न करें जिसमें ईरान का बादशाह उन्हें रोक सके, तो ईरान के दरबार के साथ सन्धि कर ली जाय कि वह फ़ान्सीसियों के विरुद्ध हमें दिल से और ज़ोरों से मदद दे।"

मैलकम को इस पत्र में अधिकार दिया गया कि नीचे लिखी शर्तों पर ईरान के बादशाह के साथ सन्धि कर ली जाय—

"ईरान के बादशाह के साथ सन्धि कर ली जाय कि इस तरह के उपायों द्वारा, जो ईरान के बादशाह और कप्तान मैलकम के बीच तय हो जायें, ज़मानशाह को हिन्दोस्तान के किसी भाग पर हमला करने से रोका जाय, और यदि ज़मानशाह अटक के पार आ जाय या हिन्दोस्तान पर हमला कर बैठे, तो ईरान का बादशाह इस बात का वादा करे कि वह इस तरह की ज़रूरी तदबीरें करेगा जो कि ज़मानशाह को फ़ौरन् अपनी सल्तनत की रक्षा के लिए लौटने पर मजबूर कर दें।"

बाबा ख़ाँ को अपने एक सहधर्मी और पड़ोसी नरेश के साथ इस प्रकार विश्वासघात पर राज़ी करने के लिए उसे लोभ देना आवश्यक था। इसलिए मैलकम को लिख दिया गया—

"कम्पनी इस सेवा के बदले में वादा करे कि या तो उस समय तक

जिस समय तक कि यह सन्धि क़ायम रहे कम्पनी ईरान के बादशाह को तीन लाख रुपए सालाना की सहायता देती रहे और या × × × ईरान के बादशाह को किसी समय भी जो × × × असाधारण ख़र्च करना पड़े, कम्पनी उसका एक हिस्सा, जो अधिक से अधिक एक तिहाई हो, अदा करे।"

इसके अलावा ज़मानशाह के ख़िलाफ़ अफ़ग़ानिस्तान में उपद्रव खड़े करना भी ज़रूरी था। ज़मानशाह के दो निर्वासित भाई महमूद और शुजा उन दिनों ईरान में रहते थे। मैलकम को इन दोनों के साथ साज़िश करने के लिए कहा गया। इसी पत्र में गवरनर-जनरल ने उसको लिखा—

"× × × ज़मान ख़ाँ को रोके रखने के लिए जो अनेक उपाय काम में लाए जा सकते हैं, उन पर विचार करते हुए आप स्वभावतः उन उपायों की ओर भी उचित ध्यान देंगे, जो ज़मान ख़ाँ के उन निर्वासित भाइयों द्वारा किए जा सकते हैं जो इस समय बाबा ख़ाँ की शरण में ईरान में रहते हैं।"

मैलकम के ईरान भेजे जाने का एक और उद्देश ज़मानशाह के बल इत्यादि का ठीक ठीक पता लगाना भी थी। मैलकम को आदेश दिया गया—

"बाबा ख़ाँ के दरबार में रहते समय आप ज़मानशाह के बल और उसके वसीलों और अपने विविध पड़ोसियों के साथ उसके राजनैतिक सम्बन्धों के ठीक ठीक पता लगाने का प्रयत्न कीजेगा और कोई न कोई ऐसा प्रबन्ध भी कर दीजेगा जिससे आयन्दा ज़मानशाह के इरादों और हरकतों की हमें ठीक ठीक और समय पर सूचना मिलती रहे।"*

* "At Bombay you will be furnished by the Governor-in-

ज़मानशाह का विचार भारत पर हमला करने का कभी रहा हो या न रहा हो, किन्तु इसमें सन्देह नहीं, अपने पड़ोस की उस स्वाधीन सल्तनत को निर्बल और आपत्तिग्रस्त रखने में भारत के विदेशी शासकों का हित था। ज़मानशाह के विरुद्ध अङ्गरेज़ों की साज़िशें बहुत दर्जे सफल हुईं। मैलकम के ईरान पहुँचने के दो

Council with copies of all the correspondence which has passed between him and Mehdi Ali Khan, a native agent employed for sometime past by Mr. Duncan, under the instructions of the Governor-General, in opening and conducting a negotiation at the Court of Persia with a view to preventing Zeman Shah from executing his frequently renewed projects against Hindostan.

* * *

"You will apprize the Court of Persia of your deputation as soon as possible after your arrival, either at Basrah or at Bagdad, intimating in general terms, that the object of it is to revive the good understanding and friendship which anciently subsisted between the Persian and the British Governments. It is not desirable that you should be more particular with any person who may be sent to meet you, or to ascertain the design of your mission; but if much pressed on the subject you may signify, that among other things, you have been instructed to endeavour to extend and improve the commercial intercourse between Persia and the British positions in India.

* * *

"The primary purpose of your mission is to prevent Zeman Shah from invading Hindostan; . . . The next object of His Lordship is to engage the Court of Persia to act vigorously and heartily against the French in the event of their attempting

वर्ष के भीतर ही अफ़ग़ानिस्तान में आपसी झगड़े, हत्या, रक्तपात और क्रान्ति का बाज़ार गरम हो गया। वह ज़मानशाह, जिसके नाम से अङ्गरेज़ डरते थे, तख़्त से उतार दिया गया। सन् १८०१ में ज़मानशाह के सौतेले भाई महमूद ने उसकी आँखें निकाल कर उसे क़ैद कर दिया और स्वयं बादशाह बन बैठा। तीसरे भाई

---

at any time to penetrate to India by any route in which it may be practicable for the King of Persia to oppose their progress.

* * *

"To engage to prevent Zeman Shah, by such means as shall be concerted between His Majesty, and Captain Malcolm, from invading any part of Hindostan, and in the event of his crossing the Attock, or of the actual invasion of Hindostan by that Prince, the King of Persia to pledge himself to the adoption of such measures as shall be necessary for the purpose of compelling Zeman Shah to return immediately to the defence of his own dominions.

* * *

"The Company (so ran the article of the treaty) to engage to pay to the King of Persia for his service, either an annual fixed subsidy of three lacs of rupees during the period that this treaty shall continue in force, or a proportion, not exceeding one-third, of such extraordinary expense as His Majesty shall at any time actually and *Bonafied* incur for the specific purposes stated in the forgoing article.

* * *

"In considering the different means by which Zeman Khan may be kept in check during the period required, you will naturally pay due attention to those which may be derived from

शाहशुजा ने महमूद को तख्त से उतार कर ज़मानशाह को क़ैद से रिहा किया और ख़ुद तख्त पर बैठ गया। यह शाहशुजा सर्वथा अंङ्गरेज़ों का आदमी था। निस्सन्देह मैलकम और उसके साथियों ने ईरान से बैठे बैठे बड़ी होशियारी के साथ अपना सारा काम पूरा कर लिया।

इतिहास-लेखक मिल एक स्थान पर लिखता है कि उस ज़माने के अङ्गरेज़ अपने मतलब के लिए काबुल के बादशाह के हमले की झूठी अफ़वाह प्रायः उड़ा दिया करते थे। यही चाल उन्होंने एक बार दौलतराव सींधिया के साथ चली थी। भावी घटनाओं ने साबित कर दिया कि मैलकम को भेजने का वास्तविक उद्देश न बाबा ख़ाँ से दोस्ती करना था और न ज़मानशाह को रोकना था, वरन् अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर ख़ानेजङ्गियाँ पैदा करके अफ़ग़ानिस्तान के ऊपर आगामी अङ्गरेज़ी हमले के लिए मैदान तैयार करना था।

---

the exiled brothers of that Prince, now resident in Persia under the protection of Baba Khan. . .

* * *

"You will endeavour during your residence at the Court of Baba Khan *to obtain an accurate account of the strength and* resources of Zeman Shah, and of his political relations with his different neighbours, and to establish some means of obtaining here-after the most correct and speedy information on the subject of his future intentions and movements."—Governor-General's letter of instructions to John Malcolm, dated 10th October, 1799.

मार्क्विस वेल्सली के समय में फ़्रान्स के ईरान द्वारा भारत पर हमला करने की सम्भावना लगभग बिलकुल न थी। इसलिए गवरनर-जनरल का अपने पत्र में इस ओर सङ्केत करना भी केवल एक राजनैतिक चाल थी।

ईरान के अतिरिक्त मार्क्विस वेल्सली ने अपने विशेष दूत सिन्ध और पञ्जाब भेज कर वहाँ के नरेशों और अन्य लोगों के साथ भी काबुल के बादशाह के विरुद्ध साज़िशें कीं।

अब हम फिर लॉर्ड मिण्टो के शासन-काल की ओर आते हैं। लॉर्ड मिण्टो के समय में ब्रिटिश भारत के ऊपर काबुल के हमले का भय बिलकुल जाता रहा था, किन्तु फ़्रान्स के हमले का भय मार्क्विस वेल्सली के समय की अपेक्षा वास्तव में अधिक सच्चा था। बल्कि सम्भावना यह थी कि फ़्रान्स और रूस मिल कर उत्तर-पश्चिम के रास्ते भारत पर हमला करें। इससे पूर्व रूस और इङ्गलिस्तान में परस्पर मित्रता रह चुकी थी। किन्तु सन् १८०७ में यूरोप के अन्दर टिलसिट नामक स्थान पर रूस और फ़्रान्स के सम्राटों के बीच सन्धि हुई। कहा जाता है कि उसी समय इन दोनों यूरोपियन सम्राटों ने मिल कर भारत पर हमला करने और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के इलाक़ों को जीत कर आपस में बाँटने का इरादा किया। कुछ दिनों बाद फ़्रान्स की आन्तरिक कठिनाइयों के कारण भारत के ऊपर फ़्रान्स के हमले का भय जाता रहा, किन्तु रूस के हमले का भय इसके लगभग १०० वर्ष बाद तक बना रहा। यद्यपि यह डर सदा केवल डर ही रहा, तथापि भारत

के अन्दर अङ्गरेज़ों की शासन-नीति पर इसका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

लॉर्ड मिण्टो और ईरान

लॉर्ड मिण्टो के समय में इङ्गलिस्तान के मन्त्रियों ने रूस और फ़्रान्स के इरादों को विफल करने के लिए सर एच० जोन्स को इङ्गलिस्तान का राजदूत नियुक्त करके ईरान भेजा, और लॉर्ड मिण्टो ने फिर सर जॉन मैलकम को अपनी ओर से सर एच० जोन्स की सहायता के लिए रवाना किया।

इस बीच ईरान और रूस में कुछ झगड़ा हुआ। ईरान ने अङ्गरेज़ों के वादों के अनुसार अङ्गरेज़ों से मदद चाही। अङ्गरेज़ों ने मदद देने से इनकार कर दिया। विवश होकर ईरान ने अपने कुछ दूत फ़्रान्स भेजे। फ़्रान्स में इन दूतों का ख़ूब स्वागत हुआ, और ईरान और फ़्रान्स के बीच सन्धि तय करने के लिए फ़्रान्स के कुछ दूत ईरान आए। ठीक उसी समय अङ्गरेज़ों की ओर से एच० जोन्स और मैलकम भी ईरान पहुँचे। मैलकम ने इस बार ईरान दरबार के साथ बड़ी धृष्टता का व्यवहार किया; उसने अपनी बातचीत शुरू करने के लिए सब से पहली शर्त यह रक्खी कि फ़्रान्स के राजदूत और उनके साथ के तमाम आदमी ईरान से बाहर निकाल दिए जायँ। ईरान के बादशाह को बहुत बुरा मालूम हुआ। मैलकम की डाँट न चल सकी, और उसे असफल भारत लौट आना पड़ा। किन्तु एच० जोन्स ने वहाँ रह कर

जिस तरह हो सका, स्थिति को सँभाला और कम से कम कहने के लिए ईरान और इङ्गलिस्तान के बीच एक सन्धि कर ली। यह सन्धि भारतीय ब्रिटिश सरकार के लिए अधिक मान-सूचक न थी। सन्धि की एक शर्त यह थी कि यदि ईरान और अफ़ग़ानिस्तान के बीच युद्ध हो तो अङ्गरेज़ उसमें किसी तरह का दख़ल न दें, और ईस्ट इण्डिया कम्पनी अथवा भारतीय ब्रिटिश सरकार ईरान के किसी मामले में भी किसी तरह का दख़ल न दें।

लॉर्ड मिण्टो ने भारतीय ब्रिटिश सरकार की इज़्ज़त को फिर से क़ायम करने के लिए दोबारा मैलकम को ईरान भेजा। मैलकम ने अपने रोज़नामचे में लिखा है कि किसी प्रकार "धोखेबाज़ी से, झूठ बोल कर, और साज़िशों द्वारा"* उसे इस बार ब्रिटिश भारतीय सरकार और ईरान सरकार के बीच फिर से मित्रता का सम्बन्ध क़ायम करने में सफलता प्राप्त हुई।

उधर जिस समय कि एच० जोन्स ने ईरान के साथ यह सन्धि की कि ईरान और अफ़ग़ानिस्तान की लड़ाई में अङ्गरेज़ किसी तरह का दख़ल न देंगे, ठीक उसी समय एक दूसरे अङ्गरेज़ एलफ़िन्सटन को इसलिए अफ़ग़ानिस्तान भेजा गया कि वह अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह के साथ इस विषय की सन्धि कर ले कि यदि ईरान अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करेगा तो अङ्गरेज़ अफ़ग़ानिस्तान की मदद करेंगे। निस्सन्देह एक ओर मुसलिम

* "Deceit, falsehood and intrigue."—Malcolm's Journal p. 186.

ईरान को अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध भड़काना और दूसरी ओर मुसलिम अफ़ग़ानिस्तान को ईरान के हमले के विरुद्ध मदद देने का वादा करना, पाश्चात्य ईसाई कूटनीति का एक ख़ासा सुन्दर नमूना है। वास्तव में रूस और फ्रान्स के हमले से अपने नए भारतीय साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिए अङ्गरेज़ों को ईरान और अफ़ग़ानिस्तान दोनों को अपनी ओर रखना और साथ ही दोनों को एक दूसरे से लड़ाए रखना आवश्यक प्रतीत होता था।

अङ्गरेज़ों का भारतीय साम्राज्य निकटवर्ती अफ़ग़ानिस्तान के बादशाहों अथवा वहाँ की प्रजा को कभी भी नहीं फला। मार्किस वेल्सली के समय से लेकर आज तक अफ़ग़ानिस्तान को गुप्त षड्यन्त्रों, आपसी लड़ाइयों और हत्याओं का क्षेत्र बनाए रखना ही भारत के ईसाई शासकों ने अपनी सलामती के लिए सदा हितकर समझा और अफ़ग़ानिस्तान की प्रजा को इन विदेशियों से सिवाय मुसीबतों और बरबादी के और कुछ न मिल सका।

ईरान के अतिरिक्त लॉर्ड मिण्टो ने तीन और स्वाधीन दरबारों में अपने विशेष दूत भेजे। एक सिन्ध, दूसरे पञ्जाब और तीसरे स्वयं अफ़ग़ानिस्तान। इन तीनों जगहों के दूतों के कृत्यों को संक्षेप में बयान करना आवश्यक है। इनमें सब से पहले हम सिन्ध के दूतों का वर्णन करते हैं।

लॉर्ड मिण्टो और सिन्ध

इससे पूर्व कम्पनी का एक व्यापारी एजण्ट सिन्ध में रहा

करता था। सन् १८०२ में सिन्ध के कारीगरों के साथ असह्य दुर्व्यवहार के कारण वह सिन्ध से निकाल दिया गया। उसके बाद सात वर्ष तक सिन्ध के साथ अङ्गरेजों की तिजारत बन्द रही। अब लॉर्ड मिण्टो ने अपना एक दूत कप्तान सीटन सिन्ध की राजधानी हैदराबाद भेजा। सीटन ने हैदराबाद के अमीर से कहा कि अफ़ग़ानिस्तान का बादशाह शाहशुजा आपको गद्दी से उतार कर आपकी जगह एक निर्वासित नरेश अब्दुलनबी को हैदराबाद की गद्दी पर बैठाना चाहता है और अङ्गरेज आपकी मदद के लिए तैयार हैं। अमीर तुरन्त अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध अङ्गरेजों के साथ सन्धि करने को तैयार हो गया।

किन्तु अङ्गरेज अफ़ग़ानिस्तान के साथ भी मित्रता की सन्धि कर रहे थे। इसलिए हैदराबाद के अमीर ने जब सन्धि में यह साफ़ साफ़ शर्त रखनी चाही कि यदि अफ़ग़ानिस्तान का बादशाह सिन्ध पर हमला करेगा तो अङ्गरेज सिन्ध की मदद करेंगे, तब अङ्गरेज राजदूत ने टालमटोल की। उसी समय शाह ईरान के कुछ दूत हैदराबाद के दरबार में ठहरे हुए थे। इन दूतों ने ईरान की ओर से अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध हैदराबाद के अमीर को सहायता देने का वादा किया, यहाँ तक कि एक ईरानी सेना सिन्ध की सहायता के लिए ईरान से चल भी दी। इस बीच अब्दुलनबी मर गया, शाहशुजा स्वयं काबुल के अन्दर कई तरह की मुसीबतों में फँस गया और उस ओर से सिन्ध का डर बिलकुल जाता रहा। ईरानी सेना का सिन्ध आना भी अङ्गरेज गवारा न कर सकते थे।

कप्तान सीटन ने अब फ़ौरन् सिन्ध के अमीरों के साथ इस विषय की एक सन्धि कर ली कि सिन्ध के शत्रुओं के विरुद्ध अङ्गरेज़ सिन्ध को मदद देंगे और अङ्गरेज़ों के शत्रुओं के विरुद्ध सिन्ध के अमीर अङ्गरेज़ों को मदद देंगे। इस सन्धि की बिना पर ईरानी सेना ईरान लौटा दी गई।

किन्तु यह सन्धि भी अङ्गरेज़ों और अफ़ग़ानिस्तान की मित्रता के साफ़ विरुद्ध जाती थी। इसलिए कप्तान सीटन के स्वीकार कर लेने पर भी लॉर्ड मिण्टो ने इस सन्धि को स्वीकार न किया। मिण्टो ने एक दूसरे अङ्गरेज़ स्मिथ को बम्बई से सिन्ध भेजा। स्मिथ ८ अगस्त सन् १८०९ को हैदराबाद पहुँचा। अमीर को समझा बुझा कर कप्तान सीटन वाली सन्धि रद्द कर दी गई और २३ अगस्त सन् १८०९ को कम्पनी तथा सिन्ध के अमीरों के बीच एक नई सन्धि हो गई, जिसमें दोनों सरकारों के बीच "सदा के लिए" मित्रता और एक दूसरे के साथ तिजारत का सम्बन्ध क़ायम किया गया। यह तय हुआ कि सिन्ध के वकील अङ्गरेज़ों के यहाँ और अङ्गरेज़ों के वकील सिन्ध में रहा करें और फ़्रान्सीसियों को सिन्ध में रहने की इजाज़त न दी जाय।

दिखलाया यह गया कि इस सन्धि का उद्देश केवल फ़्रान्सीसियों के विरुद्ध सिन्ध के साथ मित्रता करना है, किन्तु वास्तविक उद्देश था अफ़ग़ानिस्तान से सिन्ध को फाड़ना और सिन्ध के तमाम हालात की ख़बर रखने और सिन्ध में आयन्दा अपनी साज़िशों का जाल पूरने के लिए वहाँ एक स्थायी एजन्सी क़ायम करना।

लॉर्ड मिण्टो और पञ्जाब

सतलज नदी के उस पार महाराजा रणजीतसिंह का राज्य था। रणजीतसिंह नाम को काबुल के बादशाह का सामन्त था। नदी के इस पार अनेक छोटी छोटी सिख रियासतें थीं, जिनमें से अधिकांश दूसरे मराठा युद्ध तक महाराजा सींधिया की सामन्त थीं। रणजीत-सिंह अपढ़ किन्तु वीर तथा बलवान और योग्य सेनापति था। वह काबुल के प्रभुत्व को अन्त कर अपने लिए एक छोटा सा स्वतन्त्र साम्राज्य क़ायम कर लेना चाहता था। किन्तु रणजीतसिंह में दूर-दर्शिता अथवा नीतिज्ञता की कमी थी। मार्किस वेल्सली को भी उस समय पञ्जाब को अङ्गरेज़ी साम्राज्य में मिला लेने की कोशिश करना इतना लाभदायक दिखाई न देता था। वह मराठों और अफ़ग़ानिस्तान के बीच में पञ्जाब को एक इस तरह की स्वतन्त्र रियासत (बफ़र स्टेट) बनाए रखना चाहता था, जिसका समय समय पर मराठों अथवा अफ़ग़ानिस्तान दोनों के विरुद्ध उपयोग किया जा सके। इसी लिए मार्किस वेल्सली महाराजा रणजीतसिंह तथा सतलज के इस पार के सिख राजाओं के साथ बराबर साज़िशें करता रहा। रणजीतसिंह ने इस आशा में कि अङ्गरेज़ मुझे इस उपकार का बदला देंगे, न केवल ऐन सङ्कट के समय मराठों को मदद ही नहीं दी, वरन् जसवन्तराव होलकर का पीछा करने के लिए कम्पनी की सेना को अपने राज्य से जाने की इजाज़त दे दी, और एक प्रकार जसवन्तराव को उसके शत्रुओं के हवाले कर दिया।

पिछले अध्यायों में दिखाया जा चुका है कि किस प्रकार दूसरे मराठा युद्ध के समय पटियाला तथा दोआब की अन्य सिख रियासतों को अङ्गरेज़ों ने मराठों के विरुद्ध अपनी ओर फोड़ लिया था। रणजीतसिंह में यदि वीरता के साथ साथ थोड़ी सी नीतिज्ञता भी होती तो वह इन सब छोटे बड़े राजाओं को अपनी ओर करके उनकी मदद से पञ्जाब में एक स्थायी सिख साम्राज्य क़ायम कर सकता था। किन्तु इसके स्थान पर वह एक बार अपने देश तथा अपने धर्म के इन नरेशों और उनकी प्रजा को थोड़े से स्वार्थ के बदले में विदेशियों के हवाले कर देने के लिए राज़ी हो गया। कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम मार्किस वेल्सली के २९ सितम्बर सन् १८०३ के एक पत्र में लिखा है—

"लाहौर के राजा रणजीतसिंह ने, जो सिख राजाओं में मुख्य है, कमाण्डर-इन-चीफ़ के पास यह तजवीज़ लिख भेजी है कि मैं सतलज नदी के दक्षिण का सिखों का इलाक़ा कम्पनी को दे देने के लिए तैयार हूँ, इस शर्त पर कि अङ्गरेज़ और मैं दोनों एक दूसरे के शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध में एक दूसरे को सहायता दें।"*

---

* "Raja Ranjit Singh, the Raja of Lahore and the principal amongst the Sikh chieftains, has transmitted proposals to the Commander-in-Chief for the transfer of the territory belonging to that nation south of the river Satlaj, on the condition of mutual defence against the respective enemies of that chieftain and of the British Nation."—Governor-General in Council to the Hon'ble Secret Committee, etc., September 29th, 1803.

किन्तु महाराजा रणजीतसिंह की इस 'तजवीज़' की ओर ध्यान देने की अङ्गरेज़ों को उस समय आवश्यकता न थी। रणजीतसिंह से ऊपर ही ऊपर सतलज के इस पार के राजाओं के साथ वे धीरे धीरे पृथक सन्धियाँ करते जा रहे थे। इन सन्धियों के अनुसार ये सब राजा एक एक कर कम्पनी के संरक्षण (? Protection) में ले लिए जाते थे और भविष्य के लिए इस प्रकार का प्रबन्ध कर लिया जाता था कि धीरे धीरे बिना युद्ध उनकी रियासतें कम्पनी के शासन में आ जायँ, इन सन्धियों की एक शर्त यह बताई जाती थी कि यदि किसी राजा या सरदार के पुत्र न हो तो उसे गोद लेने का अधिकार न होगा, और यदि कोई दूसरा न्याय्य उत्तराधिकारी न हो तो उसकी रियासत कम्पनी की रियासत समझी जायगी। इसी विचित्र नियम के अधीन अम्बाला, कैथल इत्यादि कई सिख रियासतें समय समय पर अङ्गरेज़ी राज्य में मिला ली गईं। कुछ समय बाद लॉर्ड डलहौज़ी ने इसी नियम के अनुसार अनेक अन्य देशी रियासतों को चुपके से अङ्गरेज़ी राज्य में शामिल कर लिया।

सतलज के इस पार के इन राजाओं को स्वयं रणजीतसिंह के विरुद्ध भी भड़काया गया। अन्त में जब रणजीतसिंह ने देखा कि अपने देशवासियों के विरुद्ध अङ्गरेज़ों का साथ देने से मुझे कोई लाभ न हुआ तो विवश होकर उसने सतलज के दक्षिण के समस्त विद्रोही राजाओं को दमन करके जमना तक के इलाक़े को अपने अधीन करने का सङ्कल्प किया।

दोआब के राजा रणजीतसिंह के व्यवहार से सन्तुष्ट न थे। रणजीतसिंह ने फ़ौज लेकर उन पर चढ़ाई की। खबर उड़ी कि कम्पनी की सेना जमना नदी पर जमा हो रही है और रणजीतसिंह के विरुद्ध इन राजाओं को सहायता देने वाली है। इस खबर की सच्चाई का पता लगाने के लिए महाराजा रणजीतसिंह ने लॉर्ड मिण्टो को एक पत्र लिखा, जिसमें उसने अङ्गरेज़ कम्पनी के साथ पूर्ववत मित्रता का सम्बन्ध क़ायम रखने की इच्छा प्रकट की और लिखा कि—"जमना के इस ओर का प्रदेश, सिवाय उन स्थानों के जिन पर अङ्गरेज़ों का क़ब्ज़ा है, शेष मेरे अधीन है। उसे ऐसा ही रहने दिया जाय।" इस पत्र के उत्तर में लॉर्ड मिण्टो ने मेटकाफ़ को, जो बाद में सर चार्ल्स मेटकाफ़ के नाम से प्रसिद्ध हुआ, अपना विशेष दूत नियुक्त करके रणजीतसिंह के दरबार में भेजा। मेटकाफ़ को भेजने का उद्देश महाराजा रणजीतसिंह के साथ कम्पनी की मित्रता दर्शाना बताया गया, किन्तु जिस समय मेटकाफ़ को रणजीतसिंह के दरबार में रवाना किया गया, उसी समय उसके साथ ही साथ मिण्टो ने कमाण्डर-इन-चीफ़ को कूच की तैयारी करने की आज्ञा दी और लिखा—

"यह मानने के लिए कारण मौजूद हैं कि जिस देश पर रणजीतसिंह ने ज़बरदस्ती अपनी सत्ता जमा रक्खी है, उसका एक ख़ासा भाग अत्यन्त असन्तुष्ट है, और यदि भरपूर कोशिश की जाय और सफलता हो जाय, तो हमारे लिए इससे अधिक लाभ की और कोई बात नहीं हो सकती कि हम अपनी सरहद और सिन्धु नदी के बीच के समस्त देश

से अपनी वैरी और प्रतिस्पर्धी शक्तियों को निकाल कर उनकी जगह अपने मित्र और अपने आश्रित क़ायम कर दें।"*

अगस्त सन् १८०८ के अन्त में मेटकाफ़ दिल्ली से चला। ११ सितम्बर को वह क़सूर पहुँचा। रणजीतसिंह उस समय क़सूर में था। मेटकाफ़ के पत्र में लिखा है कि रणजीतसिंह ने बड़े आदर के साथ मेटकाफ़ का स्वागत किया। खूब ख़ातिर तवाज़ो हुई। २२ सितम्वर को मेटकाफ़ और रणजीतसिंह में मामले की बात चीत शुरू हुई। मेटकाफ़ ने रणजीतसिंह को समझाया कि फ़्रान्सीसी अफ़ग़ानिस्तान और पञ्जाब पर हमला करने वाले हैं, इसलिए आपको अङ्गरेज़ों के साथ सन्धि कर लेनी चाहिए। मेटकाफ़ ने गवरनर-जनरल को एक पत्र में लिखा—

"बातचीत करते हुए आपके आदेश के अनुसार मैंने राजा को यह डराने की कोशिश की कि आपके राज्य पर आपत्ति आने की सम्भावना है, साथ ही उसे यह विश्वास दिलाने की कोशिश की कि अङ्गरेज़ आपकी रक्षा कर सकते हैं।"†

* "There is reason to believe that a considerable portion of the country usurped by Ranjit Singh is strongly disaffected, and should any grand effort be made, and be crowned with success, nothing would be more advantageous to our interests than the substitution of friends and dependants for hostile and rival powers throughout the country between our frontier and the Indus."—*Lord Minto in India*, p. 154.

† "In the course of this conversation, I endeavoured, in conformity to the instructions of the Supreme Government, to alarm the Raja for the safety of his territories, and at the same

निश्चय के अनुसार कार्य कराने के लिए सतलज के बाएँ तट पर कम्पनी की एक सेना नियुक्त की जायगी।

महाराजा रणजीतसिंह मेटकाफ़ के इस कथन को सुन कर कोप से भर गया, तथापि इतिहास-लेखक सर जॉन के लिखता है कि उसने बड़ी होशियारी के साथ अपने क्रोध को रोका* और अपने मन्त्रियों से सलाह करके उसी दिन शाम को मेटकाफ़ से कहला भेजा कि अङ्गरेज़ सरकार की तजवीज़ ऐसी विचित्र है कि बिना अन्य सिख सरदारों से सलाह किए मैं अपना अन्तिम निश्चय प्रकट नहीं कर सकता। इसके बाद अपने सरदारों से सलाह करने के लिए रणजीतसिंह मेटकाफ़ को साथ लेकर अमृतसर आया।

अमृतसर में इस समय एक और छोटी सी घटना हुई, जो अङ्गरेज़ों की भारतीय नीति की दृष्टि से ख़ासी अर्थसूचक थी। फ़रवरी सन् १८०९ में मेटकाफ़ अमृतसर में था। मोहर्रम के दिन थे। मेटकाफ़ के साथ कुछ शिया मुसलमान भी थे। इन लोगों ने बिना रणजीतसिंह अथवा नगर के कर्मचारियों से इजाज़त लिए नगर में घूम घूम कर मोहर्रम मनाना शुरू किया और वह भी कुछ ऐसे तरीक़े से जिस तरीक़े से कि सिखों की सत्ता क़ायम होने के समय से उस समय तक कभी भी अमृतसर के अन्दर देखने में न आया था। यहाँ तक कि अमृतसर के नगर-निवासियों को बुरा मालूम हुआ। इसी पर कुछ अकालियों और मेटकाफ़ के आदमियों में लड़ाई होगई। रणजीतसिंह सुनते ही तुरन्त मौक़े

* Sir John Kaye, *Lives of Indian Officers*, vol. i, p. 396

पर पहुँचा, मेटकाफ़ के ख़ेमों को उसने फ़ौरन् शहर से कुछ दूर भेज दिया और ज्यों त्यों कर झगड़े को शान्त कर दिया।

हमें याद रखना चाहिए कि मेहदीअली खाँ ने बाबा खाँ से एक बात यह भी कही थी कि पञ्जाब में शिया मुसलमानों के साथ विशेष अन्याय किया जाता है।

मेटकाफ की मुख्य बात पर अपने सरदारों के साथ सलाह करके रणजीतसिंह एक बार अङ्गरेज़ों से लड़ने के लिए तैयार होगया। अङ्गरेज़ों ने अब उसे यह लोभ दिया कि आप अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करके उत्तर और पश्चिम की ओर अपना साम्राज्य बढ़ाइए और अङ्गरेज़ों की मित्रता के बदले में सतलज पार का प्रदेश अङ्गरेज़ों के लिए छोड़ दीजे। इसके अतिरिक्त रणजीतसिंह को डराने के लिए जनवरी सन् १८०९ में कुछ सेना दिल्ली से करनल ऑक्टरलोनी के अधीन लुधियाने रवाने करदी गई। पञ्जाब के कई सरदार इस समय रणजीतसिंह के विरुद्ध अङ्गरेज़ों के पक्ष में दिखाई दिए।

अन्त में रणजीतसिंह ने अपनी सेनाएँ पीछे हटा लीं। २५ अप्रेल सन् १८०९ को रणजीतसिंह तथा अङ्गरेज़ों के बीच सन्धि हो गई। हाल में सतलज के इस पार जो इलाक़ा रणजीतसिंह ने अपने अधीन कर लिया था वह उससे ले लिया गया; सतलज और जमना के बीच के थोड़े से इलाक़े को छोड़ कर जो पहले से रणजीतसिंह के अधीन था, वहाँ का शेष समस्त प्रदेश कम्पनी के अधीन मान लिया गया; और वहाँ के समस्त देशी नरेश और

उनकी प्रजा कम्पनी के हाथों में सौंप दिए गए। महाराजा रणजीत-सिंह को उकसा कर अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने के लिए आज़ाद छोड़ दिया गया!

लॉर्ड मिण्टो का उद्देश पूरा हुआ। सिखों और अफ़ग़ानों के बीच वैमनस्य के कारण और बढ़ गए; ब्रिटिश भारत तथा उसके भावी आक्रमकों के बीच में पञ्जाब एक दीवार हो गया; और अङ्गरेज़ी राज्य के विस्तार के लिए सतलज तक का मैदान साफ़ हो गया।

लॉर्ड मिण्टो और अफ़ग़ानिस्तान

एलफ़िन्सटन को लॉर्ड मिण्टो ने अङ्गरेज़ सरकार का विशेष दूत नियुक्त करके अफ़ग़ानिस्तान भेजा। मैलकम ईरान में था, उसने वहाँ के बादशाह बाबा खाँ को अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध भड़काया, मेटकाफ़ ने पञ्जाब में महाराजा रणजीतसिंह को अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने के लिए उकसाया, और एलफ़िन्सटन ने अफ़ग़ानिस्तान में शाहशुजा को ईरान के साथ लड़ाने का पूरा प्रयत्न किया।

एलफ़िन्सटन के भेजे जाने का उद्देश यह बताया गया कि फ़ान्स और रूस मिल कर भारत पर हमला करने वाले हैं और इस आपत्ति का मुक़ाबला करने के लिए अङ्गरेज़ों और अफ़ग़ा-निस्तान में मित्रता क़ायम करने की ज़रूरत है। महाराजा रणजीत-सिंह के इलाक़े से नीचे नीचे उसे बचाते हुए बीकानेर, भावलपुर और मुलतान के रास्ते एलफ़िन्सटन २५ फ़रवरी सन् १८०९ को पेशावर पहुँचा।

आरम्भ में अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह और वहाँ के दरबार ने एलफ़िन्सटन को अपने देश में आने की इजाज़त न दी। एलफ़िन्सटन को कुछ दिनों मुलतान में रुकना पड़ा। इसका कारण यह था कि अफ़ग़ानिस्तान में उस समय आपसी लड़ाइयाँ और बग़ावतें जारी थीं। अफ़ग़ानों को इस बात का डर था कि अङ्गरेज़ कहीं उनसे फ़ायदा उठाने की कोशिश न करें। एलफ़िन्सटन ने अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह को विश्वास दिलाया कि अङ्गरेज़ों का उद्देश केवल अफ़ग़ानिस्तान के साथ मित्रता क़ायम करना है, ताकि एक दूसरे को समय पड़ने पर सहायता दे सकें। शाहशुजा ने इजाज़त दे दी, और ५ मार्च सन् १८०९ को पेशावर में शाहशुजा और अङ्गरेज़ राजदूत में भेंट हुई। शाहशुजा ने बड़े सत्कार के साथ एलफ़िन्सटन का स्वागत किया।

एलफ़िन्सटन ने शाहशुजा को समझाया कि अफ़ग़ानिस्तान को रूस, फ़ान्स और ईरान तीनों से ख़तरा है, साथ ही उसे अङ्गरेज़ों की मित्रता का भी विश्वास दिलाया। एलफ़िन्सटन ने शाहशुजा से प्रार्थना की कि आप फ़्रान्सीसियों और ईरानियों को अपने राज्य में न घुसने दें और यदि ये लोग भारत पर हमला करना चाहें तो आप उन्हें रोकने में अङ्गरेज़ों को मदद दें। किन्तु शाहशुजा के विरुद्ध उस समय उसके देश के अन्दर आफ़त मची हुई थी। उसे एक ज़बरदस्त बग़ावत का मुक़ाबला करना पड़ रहा था। इतिहास-लेखक के लिखता है कि—"जब किसी मनुष्य के घर में आग लगी हुई हो तब उसे अधिक दूर के डर दिखाने का समय

नहीं होता।" शाहशुजा और उसके मन्त्रियों ने एलफ़िन्सटन के जवाब में उससे यह इच्छा प्रकट की कि अङ्गरेज़ पहले अफ़ग़ानिस्तान की बग़ावतों को शान्त करने में शाहशुजा को मदद दें। एलफ़िन्सटन ने इससे इनकार किया। इतिहास-लेखक के लिखता है कि—"हमें मानना पड़ेगा कि अफ़ग़ान मन्त्रियों ने अपने पक्ष में मुनासिब और कम से कम एक दरजे तक सच्ची दलीलें दीं। वे यह न समझ सके कि यदि अङ्गरेज़ अपने शत्रुओं के विरुद्ध काबुल के बादशाह की मदद चाहते हैं तो वे काबुल के बादशाह को उसके शत्रुओं के विरुद्ध मदद क्यों नहीं देते; इस सूरत में तो वे कहते थे कि सन्धि का सारा लाभ अङ्गरेज़ों को है और सारा ख़तरा हमारे बादशाह को।"*

अफ़ग़ान मन्त्री मुल्ला जाफ़र के साथ एलफ़िन्सटन की जो बातचीत हुई उसके सम्बन्ध में एलफ़िन्सटन लिखता है—"मुल्ला जाफ़र ने कहा कि मैं यह नहीं मानता कि आप बादशाह को धोखा देना चाहते हैं, किन्तु मेरा यह भी ख़याल नहीं है कि आप उतने ही सीधे हैं जितने आप अपने तईं ज़ाहिर करते हैं,

---

* "The Afghan ministers, it must be admitted, argued the case acutely and not without some amount of fairness. They could not see why, if the English wished the King of Cabul to help them against their enemies, they should not in their turn help the King to resist his; but as it was, they said, all the advantage was on our side, and all the danger on the side of the King."—Sir John Kaye's *Lives of Indian Officers*, vol. i, pp. 241, 42.

शाहशुजा ने अब एलफ़िन्सटन पर ज़ोर देना शुरू किया कि आप शीघ्र अपने इलाक़े को लौट जाइए। फ़ान्सीसियों के हमले का भय इस बीच बिलकुल जाता रहा था, किन्तु रूस के हमले का डर बाक़ी था। इसलिए अङ्गरेज़ों और अफ़ग़ानिस्तान के बीच सन्धि होना आवश्यक था। अन्त में धन के ज़ोर से अङ्गरेज़ों और शाहशुजा में सन्धि हो गई। शाहशुजा ने वादा किया कि मैं फ़ान्सीसियों या ईरानियों को अपने राज्य से होकर न निकलने दूगा और कम्पनी ने इसके बदले में अफ़ग़ानिस्तान को वार्षिक धन देते रहने का वादा किया। एलफ़िन्सटन और उसके साथी अफ़ग़ानिस्तान के सैन्य बल इत्यादि का पूरा ज्ञान प्राप्त करके और अफ़ग़ानिस्तान तथा भारत के मार्गों और मार्ग की क़ौमों की जानकारी प्राप्त करके पञ्जाब के रास्ते हिन्दोस्तान लौट आए।

एक फ़ान्सीसी लेखक लिखता है कि अङ्गरेज़ों ने रणजीतसिंह को अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने के लिए इसलिए उकसाया क्योंकि वे जानते थे कि रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद पञ्जाब और रणजीतसिंह का शेष समस्त राज्य कम्पनी के हाथों में आ जायगा।

हिन्द-महासागर में उस समय तक कुछ छोटे छोटे टापू फ़ान्सीसियों के और कुछ डच लोगों के अधीन थे। लॉर्ड मिण्टो ने सन् १८०९ में भारत से सेना भेज कर फ़ान्सीसी टापुओं पर हमला किया। सन् १८१० में यह टापू अङ्गरेज़ों के हाथों में आ गए। इसी तरह सन १८११ में डच टापुओं पर भी अङ्गरेज़ों का

क़ब्ज़ा हो गया। इन तमाम टापुओं की विजय का पूरा ख़र्च भारत से लिया गया। सन् १८१३ में लॉर्ड मिण्टो इङ्गलिस्तान के लिए रवाना हो गया।

निस्सन्देह उस नाज़ुक समय में अङ्गरेज़ क़ौम की दृष्टि से लॉर्ड मिण्टो का शासन-काल एक अत्यन्त सफल शासन-काल था। राजनीति में लॉर्ड मिण्टो की दक्षता वास्तव में प्रशंसनीय थी।

गोरे सिपाहियों की बग़ावत

किन्तु कम्पनी के गोरे सिपाही और उनके अफ़सर लॉर्ड मिण्टो के शासन-काल से इतने सन्तुष्ट न रह सके। बात यह थी कि कम्पनी की आर्थिक कठिनाई के कारण लॉर्ड मिण्टो को लगभग हर महकमे का ख़र्च कम करना पड़ा। उस समय के गोरे अफ़सरों को अपनी तनख़ाहों के अलावा कई तरह के भत्ते दिए जाते थे। हिन्दोस्तानी पलटनों के गोरे अफसरों को एक प्रकार का मासिक भत्ता मिलता था जिसे 'टैण्ट कॉण्ट्रैक्ट' अर्थात् डेरे के सामान का ठेका कहते थे। मई सन् १८०८ से मद्रास प्रान्त में यह भत्ता बन्द कर दिया गया। गोरे अफ़सर इस पर तुरन्त बिगड़ खड़े हुए।

मछलीपट्टन, श्रीरङ्गपट्टन, हैदराबाद तथा अन्य कई स्थानों पर अङ्गरेज़ अफ़सरों ने बग़ावत का झण्डा खड़ा कर दिया। मामला बढ़ गया। यहाँ तक कि जब एक बाग़ी गोरी पलटन श्रीरङ्गपट्टन के बाग़ियों से मिलने के लिए चित्तलद्रुग से श्रीरङ्गपट्टन जा रही थी, मार्ग में एक दूसरी किन्तु राजभक्त गोरी पलटन के साथ उनकी मुठभेड़ हो गई और दोनों ने एक दूसरे के ऊपर

गोलियाँ चलाईं। भारतवासियों पर इस घटना के बहुत ही अहित-कर प्रभाव पड़ने का डर था।

फ़ौरन् गोरे सिपाहियों को समझाने और उनकी शिकायतें दूर करने के लिए लॉर्ड मिण्टो स्वयं मद्रास पहुँचे। अन्य अनेक बड़े से बड़े अङ्गरेज़ अफ़सरों को इसी कार्य के लिए प्रान्त की विविध छावनियों में भेजा गया। मामला शीघ्र शान्त हो गया। एक यूरोपियन लेखक इस बग़ावत के सम्बन्ध में लिखता है—

"यह बग़ावत एक बड़े नाज़ुक समय में हुई। सतलज के इस पार के लोग, और मराठे और बुन्देलखण्ड वाले अभी तक क़ाबू में न आए थे। यदि रणजीतसिंह उस समय सतलज पार कर मराठों और बुन्देलखण्ड से होता हुआ बङ्गाल पहुँच जाता, तो निस्सन्देह अङ्गरेज़ों की सत्ता फिर से उन्हीं सीमाओं के अन्दर परिमित हो जाती, जो लॉर्ड क्लाइव के समय में थीं; किन्तु मद्रास के बाग़ियों ने शीघ्र इस ख़तरे को अनुभव कर लिया और वे ख़ुद अपनी अपनी जगह लौट गए × × × और गवरमेण्ट इतनी निर्बल थी कि उसने एक भी अफ़सर को गोली से न उड़ाया।"*

* ". . . This happened at a critical period. If Ranjit Singh had then crossed the Sutlaj, the Marathas and Bundelkhand, which were not then reduced to submission, and marched to Bengal, the British power would no doubt have re-entered into the limits conquered by Lord Clive ;—but the revolted of Madras soon perceived the danger and returned of themselves to their duty . . . and the Government had the weakness not to shoot a single officer."—M. Victor Jacquemont's *Letters from India*, vol. i, pp 323, 24.

निस्सन्देह ग़ैर-ईसाई काले सिपाहियों की समय समय की बग़ावतों को शान्त करने के लिए अङ्गरेज़ों ने इस देश में जिस तरह के उपायों का उपयोग किया है, गोरे सिपाहियों की इस बग़ावत को शान्त करने में उस तरह के उपायों का उपयोग नहीं किया गया। न एक भी गोरे अफ़सर को फाँसी दी गई और न किसी को भी तोप के मुँह से उड़ाया गया।

उन्तीसवाँ अध्याय

भारतीय उद्योग धन्धों का सर्वनाश

सन् १८१३ का चारटर एक्ट

लॉर्ड मिण्टो के बाद मार्किस ऑफ़ हेस्टिंग्स भारत का गवरनर-जनरल हुआ, जिसे पहले अर्ल ऑफ़ मोयरा कहते थे। १४ अप्रेल सन् १८१३ को इङ्गलिस्तान से चल कर ११ सितम्बर सन् १८१३ को हेस्टिंग्स भारत पहुँचा। गवरनर-जनरली के साथ साथ कम्पनी की सेनाओं के कमाण्डर-इन-चीफ़ का पद भी हेस्टिंग्स ही को दिया गया। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में तीन अङ्गरेज़ गवरनर-जनरलों ने हिन्दोस्तान के अन्दर अङ्गरेज़ी साम्राज्य को विस्तार देकर उसकी नींवों को पक्का किया। वेलसली, हेस्टिंग्स और डलहौजी। इन तीनों में मार्किस ऑफ़ हेस्टिंग्स का समय एक दृष्टि से सब से अधिक महत्व का था। इस समय से ही भारत के प्राचीन उद्योग धन्धों को नष्ट करना और इङ्गलिस्तान के उद्योग धन्धों को उन्नति देना अङ्गरेज़ों की भारतीय नीति का एक विशेष अङ्ग बन गया।

अङ्गरेज़ों के भारत आने से हज़ारों वर्ष पूर्व भारत के बने हुए कपड़े तथा भारत का अन्य माल भारत के बने हुए हज़ारों जहाज़ों में लद कर चीन, जापान, लङ्का, ईरान, अरब, कम्बोदिया, मिश्र, अफ़रीक़ा, इतालिया, मैक्सिको आदिक संसार के समस्त सभ्य देशों में जाकर बिकता था। अङ्गरेज़ों के आगमन के सैकड़ों वर्ष बाद तक भी उद्योग धन्धों की दृष्टि से भारत संसार का सब से अधिक उन्नत देश था।

१९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक, जब कि हिन्दोस्तान का बना हुआ तरह तरह का माल और विशेषकर हिन्दोस्तान के बने हुए सुन्दर कपड़े इङ्गलिस्तान में जाकर बिकते थे और ख़ूब पसन्द किए जाते थे, इङ्गलिस्तान के बने हुए कपड़े भारत में लाकर बेचने का अङ्गरेज शायद स्वप्न में भी विचार न कर सकते थे। सुप्रसिद्ध अङ्गरेज इतिहासज्ञ लैकी लिखता है कि सन् १६८८ की अङ्गरेज़ी राज्यक्रान्ति के पश्चात् जब मलका मेरी अपने पति सहित इङ्गलिस्तान आई तो "भारतवर्ष के रङ्गीन कपड़ों का शौक़ उसके साथ आया, और तेज़ी के साथ हर श्रेणी के अङ्गरेज़ों में फैलता गया।"* और आगे चल कर लैकी लिखता है कि "१७ वीं शताब्दी के अन्त में बहुत बड़ी संख्या में हिन्दोस्तान की सस्ती और नफ़ीस कैलीको, मलमल और छींटें इङ्गलिस्तान में आती थीं और इतनी

---

* "A passion for coloured East Indian calicoes, which speedily spread through all classes of the community."—Lecky's *History of England in the Eighteenth Century*, vol. ii, p. 158.

पसन्द की जाती थीं कि इङ्गलिस्तान के ऊनी और रेशमी कपड़ा बनाने वालों को उनसे बड़ा गहरा ख़तरा हो गया।"*

उस समय तक के भारत के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विषय में प्रसिद्ध अङ्गरेज़ इतिहासज्ञ डॉक्टर रॉबर्टसन सन् १८१७ में लिखता है—

"हर युग में सोना और चाँदी और विशेष कर चाँदी दूसरे मुल्कों से हिन्दोस्तान में भेजी जाती थी जिससे हिन्दोस्तान को बहुत बड़ा लाभ था। पृथ्वी का कोई और भाग ऐसा नहीं है जहाँ के लोग अपने जीवन की आवश्यकताओं अथवा अपने ऐश आराम की चीज़ों के लिए दूसरे देशों पर इतना कम निर्भर हों। ईश्वर ने भारतवासियों को अत्यन्त उपयुक्त जलवायु दिया है, उनकी भूमि अत्यन्त उपजाऊ है, और इस पर वहाँ के लोग अत्यन्त दक्ष हैं; × × × इन सब बातों के कारण हिन्दोस्तानी अपनी समस्त इच्छाओं को पूरा कर सकते हैं। नतीजा यह है कि बाहरी संसार की उनके साथ सदा एक ही ढङ्ग से तिजारत होती रही है, और उनके यहाँ के अद्भुत, प्राकृतिक तथा हाथ के बने हुए माल के बदले में क़ीमती धातें उन्हें दी जाती रही हैं।"†

---

* "At the end of the seventeenth century great quantities of cheap and graceful Indian Colicoes, muslins, and chintzes were imported into England, and they found such favour that the woolen and silk manufacturers were seriously alarmed."—Ibid, vol. vii, pp. 255—266.

† "In all ages, gold and silver, particularly the latter have been the commodities exported with the greatest profit to India. In no part of the earth do the natives depend so little upon

यही लेखक एक दूसरे स्थान पर लिखता है कि हज़रत ईसा के जन्म के समय से लेकर उन्नीसवीं सदी के शुरू तक भारत के साथ अन्य देशों का व्यापार बराबर इसी ढङ्ग का बना रहा।*
१८ वीं सदी के उत्तरार्ध तक इङ्गलिस्तान के उद्योग धन्धे भारत के उद्योग धन्धों के मुक़ाबले में बहुत ही पिछड़े हुए थे। इङ्गलिस्तान के कपड़ा बुननेवाले तथा अन्य कारीगर सुन्दरता, मज़बूती, सस्तेपन अथवा निकासी, किसी बात में भी अपने माल की तुलना भारतीय माल के साथ न कर सकते थे। उस समय तक जो यूरोपियन व्यापारी भारत पहुँचे उन सब का केवल मात्र उद्देश भारत का बना हुआ माल अपने देशों को ले जाना होता था। यही उद्देश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का भी था। प्लासी के युद्ध के बाद से बङ्गाल की लूट के प्रताप अङ्गरेज़ों को भारत का माल मुफ़्त में अथवा कौड़ियों के दाम मिलने लगा, और बङ्गाल, करनाटक, अवध तथा अन्य प्रान्तों से ख़ज़ाने लद लद कर इङ्गलिस्तान जाने लगे। इस अपूर्व लूट के कारण इङ्गलिस्तान के पिछड़े हुए उद्योग धन्धों को उन्नति करने का अवसर

---

foreign countries, either for the necessaries or luxuries of life. The blessings of a favourable climate and a fertile soil, augmented by their own ingenuity, afford them whatever they desire. In consequence of this, trade with them has always been carried on in one uniform manner, and the precious metals have been given in exchange for their peculiar production, whether of nature or art."—*A Historical Disquisition Concerning India*, New edition (London 1817), p. 180.

* Ibid, p. 203.

मिला।* वेन्स नामक एक यूरोपियन लेखक लिखता है कि सन् १७६० तक इङ्गलिस्तान में सूत कातने इत्यादि के यन्त्र अत्यन्त प्रारम्भिक और अनघड़ थे।* वाट नामक अङ्गरेज़ ने सन् १७६८ में पहली बार भाप की शक्ति (स्टीम पावर) के उपयोग का आविष्कार किया और स्टीम एञ्जिन की ईजाद की। बङ्गाल की लूट के धन ने इस तरह की ईजादों को सफल होने का मौक़ा दिया। ब्रुक्स ऐडम्स लिखता है कि—"यदि वाट ५० साल पहले पैदा हुआ होता तो वह और उसकी ईजाद दोनों साथ ही साथ मर जाते। सम्भवतः दुनिया के शुरू से अब तक कभी भी किसी भी पूँजी से इतना लाभ नहीं उठाया गया जितना कि भारतवर्ष की लूट से, क्योंकि लगभग ५० वर्ष तक इङ्गलिस्तान का मुक़ाबला करने वाला कोई न था। × × × १७६० और १८१५ के बीच (इङ्गलिस्तान के उद्योग-धन्धों ने) बड़ी तेज़ी के साथ और आश्चर्यजनक उन्नति की।"†

अन्दाज़ा लगाया गया है कि प्लासी से वाटरलू तक अर्थात् सन् १७५७ से १८१५ तक लगभग एक हज़ार मिलियन पाउण्ड

---

* *The Law of Civilization and Decay*, by Brooks Adams, pp. 263-64.

† ". . . had Watt lived fifty years earlier, he and his invention must have perished together. Possibly since the world began, no investment has ever yielded the profit reaped from the Indian plunder, because for nearly fifty years Great Britain stood without a competitor. . . Between 1760 and 1815 the growth was very rapid and prodigious."—*The Law of Civilization nd Decay*, pp. 263, 264.

अर्थात् १५ अरब रुपया शुद्ध लूट का भारत से इङ्गलिस्तान पहुँचा।* अर्थात् ५८ वर्ष तक २५ करोड़ रुपया सालाना कम्पनी के मुलाज़िम भारतवासियों से लूट कर अपने देश ले जाते रहे। निस्सन्देह संसार के इतिहास में इस भयङ्कर लूट की दूसरी मिसाल नहीं मिल सकती। स्वयं भारत के अन्दर इस लूट के मुक़ाबले में महमूद ग़ज़नवी और मोहम्मद ग़ोरी के प्रसिद्ध हमले केवल गुड़ियों के खेल थे। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि उस समय के एक रुपए और आजकल के एक रुपए में कम से कम दस और एक का अन्तर है। इस भयङ्कर लूट ने ही ब्रुक्स ऐडम्स के अनुसार इङ्गलिस्तान की नई ईजादों को फलने और वहाँ के कारख़ानों को जन्म लेने का अवसर दिया।

१९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में यूरोप की अवस्था बदली। फ़्रान्स के जगत्प्रसिद्ध विजेता नेपोलियन बोनापार्ट का प्रभाव लगभग समस्त यूरोपियन महाद्वीप पर फैल गया। महाद्वीप की प्रायः समस्त राजशक्तियाँ नेपोलियन के इशारे पर चलने लगीं। केवल इङ्गलिस्तान, जिसे अपने भारतीय साम्राज्य के निकल जाने का डर था, नेपोलियन के विरुद्ध डटा रहा। नेपोलियन को गिराने के लिए यूरोप की विविध राजशक्तियों के साथ साज़िशें करने में और यूरोप के शासकों को बड़ी बड़ी रिशवतें देने में इङ्गलिस्तान ने पानी की तरह धन बहाया। इङ्गलिस्तान के पास उस समय इतना धन कहाँ था? धन कमाने का मुख्य उपाय अङ्गरेज़ों के हाथों में

---

* *Prosperous British India*, by William Digby, C. I. E. p. 33.

व्यापार था। नेपोलियन ने समस्त यूरोपियन महाद्वीप में इङ्गलिस्तान से माल का आना जाना बन्द कर दिया, जिससे इङ्गलिस्तान के व्यापार को बहुत बड़ी हानि पहुँची। नेपोलियन का मुक़ाबला करने के लिए इस हानि को पूरा करना आवश्यक था और हानि के पूरा करने के लिए भारत के सिवा अङ्गरेजों को दूसरा देश उस समय नजर न आ सकता था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के क़ानून द्वारा क़ायम हुई थी। कम्पनी के अधिकारों को जारी रखने के लिए पार्लिमेण्ट को हर बीस वर्ष के बाद नया क़ानून पास करना पड़ता था, जिसे 'चारटर एक्ट' कहते थे। सन् १८१३ के 'चारटर एक्ट' के समय से इङ्गलिस्तान का बना हुआ माल भारतवासियों के सिर मढ़ने और भारत के प्राचीन उद्योग धन्धों का नाश करने के विधिवत् प्रयत्न शुरू हुए। यहाँ तक कि सन् १८१३ के इस 'चारटर एक्ट' को ही वर्त्तमान भारत की भयङ्कर दरिद्रता और असहायता का मूल कारण कहा जा सकता है।

कम्पनी के व्यापार के तरीक़े

किन्तु इस नए क़ानून और उसके परिणामों को पूरी तरह समझने से पहले यह आवश्यक है कि हम भारत के अन्दर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के उस समय तक के व्यापार के वास्तविक रूप को जान लें। कम्पनी अपने व्यापार में जिस तरह के अन्याय और अत्याचार करती थी उसकी दो चार प्रामाणिक मिसालें नीचे दी जाती हैं—

रिचर्ड्स नामक एक अङ्गरेज़ ने सूरत की अङ्गरेज़ी कोठी के रोज़नामचे से कुछ घटनाएँ उद्धृत की हैं, जो उसने सन् १८१३ में पुस्तकाकार प्रकाशित कीं, और जिनसे मालूम होता है कि सन् १७९६ और सन् १८११ के बीच सूरत में कम्पनी के व्यापार का ढङ्ग किस प्रकार का रहा। वह लिखता है —

"जो कपड़ा सूरत से विलायत भेजा जाता था, वह अत्यन्त कड़े और निष्ठुर अत्याचारों द्वारा वसूल किया जाता था। जुलाहों को उनकी इच्छा और हित दोनों के विरुद्ध कम्पनी से काम का ठेका लेने और उस ठेके के अनुसार काम कर देने के लिए मजबूर किया जाता था। कभी कभी जुलाहे इस प्रकार जबरन् काम करने की अपेक्षा भारी जुर्माना दे देना अधिक पसन्द करते थे। कम्पनी अपने नमूने के अनुसार अथवा बढ़िया माल के लिए जुलाहों को जो दाम देती थी उससे कहीं घटिया माल के लिए डच, पुर्तगाली, फ़ान्सीसी और अरब सौदागरों से उन जुलाहों को ज़्यादा दाम मिल सकते थे। × × × कम्पनी का व्यापारी रेज़िडेण्ट साफ़ कहता था कि कम्पनी का उद्देश यह है कि कम अथवा निश्चित दामों पर थान ख़रीद कर समस्त कपड़े के व्यापार का अनन्य अधिकार कम्पनी अपने हाथों में रक्खे। इस उद्देश को पूरा करने के लिए इतनी ज़बरदस्ती की जाती थी और इतनी अधिक सज़ाएँ दी जाती थीं कि अनेक जुलाहों ने मजबूर होकर अपना पेशा तक छोड़ दिया। इस बात को भी रोकने के लिए कि कोई जुलाहा अपना पेशा न छोड़ने पाए, यह नियम कर दिया गया कि किसी जुलाहे को फ़ौज में भरती न किया जाय। एक बार यह भी हुक्म दे दिया गया कि कोई जुलाहा बिना अङ्गरेज़ अफ़सर की इजाज़त के शहर के दरवाज़ों से बाहर न निकल सके। जब तक जुलाहे सूरत के नवाब की

प्रजा थे, उन्हें दण्ड देने और उन पर दबाव डालने के लिए नवाब को बार बार अर्जियाँ दी जाती थीं × × × नवाब अङ्गरेज़ सरकार के हाथों में केवल एक कठपुतली था × × × आस पास के देशी नरेशों पर भी ज़ोर दिया जाता था कि वे अपने इलाक़ों में इस बात का हुकुम दे दें कि कपड़ों के थान केवल कम्पनी के सौदागरों और दलालों के हाथ ही बेचे जायँ और कदापि किसी दूसरे के हाथ न बेचे जायँ। इसके बाद जब सूरत अङ्गरेज़ी अमलदारी में मिला लिया गया तब इसी तरह के अन्यायों और अत्याचारों को जारी रखने के लिए बार बार अङ्गरेज़ी अदालतों का उपयोग किया जाता था। जब तक कम्पनी सूरत में कपड़े का व्यापार करती रही, कम्पनी के मुलाज़िमों का काम करने का ढङ्ग बिलकुल इसी तरह का रहा। ठीक इसी ढङ्ग से दूसरी कोठियों का भी व्यापार चलता था।"*

---

* "That the Surat investment was provoided under the most rigorous and oppressive system of coercion; that the weavers were compelled to enter into engagements and to work for the Company, contrary to their own interests, and of course to their own inclinations, choosing in some instances to pay a heavy fine rather than be compelled so to work; that they could get better prices from Dutch, Portuguese, French and Arab merchants for inferior goods, than the Company paid them for standard or superior goods; . . . that the object of the commercial resident was, as he himself observed, to establish and maintain the complete monopoly . . . of the whole of the piece goods trade at reduced or prescribed prices; that in the prosecution of this object compulsion and punishment were carried to such a height, as to induce several weavers to quit the profession; to prevent which, they were not allowed to enlist as Sepoys, or even on one

लॉर्ड वेल्सली ने १९ जुलाई सन् १८१४ को मद्रास गवरमेण्ट के नाम एक पत्र लिखा, जिससे विस्तृत पता चलता है कि मद्रास प्रान्त की समस्त अङ्गरेजी कोठियों में भी ये सब अत्याचार ठीक इसी तरह जारी थे।

बङ्गाल में भी इसी तरह जुलाहों को जबरदस्ती पेशगी रुपए देकर पहले से उनका माल खरीद लिया जाता था। सन् १७९३ में बङ्गाल की सरकार ने एक क़ानून पास किया, जिसके अनुसार कोई मनुष्य जिसे कम्पनी का कुछ भी धन देना हो अथवा जो किसी तरह कम्पनी के कपड़े के व्यापार से सम्बन्ध रखता हो, न

---

occasion to pass out of city gates without permission from the English chiefs; that so long as the weavers were the subjects of the Nawab, frequent application was made to him to punish and coerce weavers, . . . the Nawab who was but a tool in the hands of the British Government . . . Neighbouring Princes were also prevailed on to give orders in their districts, that the Company's merchants and brokers should have a preference to all others, and that on no account should piece goods be sold to other persons; that subsequently to the transfer of Surat to the British Government, the authority of the Adalat (our own Court of Justice) was constantly interposed to enforce a similar series of arbitrary and oppressive acts.

"As long as the Company continued to trade in piece goods at Surat this was the uniform practice of their commercial servants. It may be taken as a specimen of the practice of other factories. . . ."—As quoted in *The Ruin of Indian Trade and Industries*, By Major B. D. Basu, pp. 78, 79.

कभी कम्पनी का काम छोड़ सकता था, न किसी दूसरे के लिए काम कर सकता था, और न स्वयं अपने ही लिए काम कर सकता था। इस छोटे से नियम ने देश भर में प्रत्येक जुलाहे को कठोर से कठोर अर्थों में कम्पनी का आजीवन ग़ुलाम बना दिया। यदि कोई कारीगर अपना वादा पूरा न कर सकता था तो उसे हवालात में बन्द कर दिया जाता था और उसका तमाम माल कच्चा और तैयार कम्पनी के नाम ज़ब्त कर लिया जाता था। इस बात की भी बिलकुल परवा न की जाती थी कि वह किसी दूसरे का भी क़र्ज़दार है या नहीं।

बङ्गाल के जिन ज़िलों में कम्पनी की रेशम की कोठियाँ थीं, उनमें कम से कम सन् १८२९ तक प्रजा के ऊपर इससे भी अधिक अत्याचार होते रहे। सूरत की कोठी का सा पूरा ढङ्ग वहाँ वर्ता जाता था। इसके अतिरिक्त सन् १८२७ में बङ्गाल भर में रेशम के दाम कुछ बढ़ गए। अङ्गरेज़ शासकों ने कम्पनी के रेशम ख़रीदने वाले गुमाश्तों को हुकुम दिया कि, बिना रेशम के कारीगरों से पूछे अथवा उनके हित का खयाल किए, क़ीमत कम कर दी जाय और नियत कर दी जाय।*

हेनरी गूगर नामक एक अङ्गरेज़ बङ्गाल के अन्दर कम्पनी के रेशम के व्यापार के इस ढङ्ग को इस प्रकार बयान करता है—

"जिन ज़िलों में रेशम तैयार होती थी उनमें जगह जगह पर कम्पनी

* Mr Saunder's evidence in March, 1831, before the Parliamentary Committee.

के व्यापारी रेज़िडेण्ट रहते थे। आम तौर पर ये रेज़िडेण्ट जितनी ज़्यादा रेशम कम्पनी के लिए जमा कर सकते थे उतनी ही ज़्यादा उनकी आमदनी होती थी × × ×

"दोनों ओर से इस प्रकार काररवाई होती थी,—हर फ़सल (बन्द) से पहले दो तरह के लोगों को पेशगी रुपया दिया जाता था; एक काश्तकारों को जो रेशम के कीड़े पालते थे और दूसरे उन कारीगरों को जो रेशम लपेटने का काम करते थे। इन कारीगरों की संख्या बहुत बड़ी थी और आस पास के ग्रामों में अधिकतर इन्हीं की आबादी थी। काश्तकारों को पेशगी देकर कच्चा माल निश्चित कर लिया जाता था, कारीगरों को पेशगी देकर उनकी लपेटने की मेहनत के विषय में कम्पनी पहले से निश्चित हो जाती थी × × ×

"× × × मैं एक इस तरह की घटना बयान करता हूँ कि जिस तरह की घटनाएँ प्रतिदिन हुआ करती थीं।

"एक हिन्दोस्तानी काश्तकार अपने उस फ़सल के पले हुए कीड़े मेरे हाथ बेचना चाहता है और मुझसे कुछ पेशगी ले जाता है। इसी तरह एक गाँव भर के रेशम लपेटने वाले मिल कर मुझसे पेशगी ले जाते हैं (मुझसे मतलब यहाँ पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अतिरिक्त किसी बाहरी सौदागर से है)। इस सौदे के पक्का हो जाने के बाद कम्पनी के रेज़िडेण्ट के दो नौकर उस गाँव में पहुँचते हैं; एक के हाथ में रुपयों की एक थैली, दूसरे के हाथ में एक रजिस्टर—जिसमें रुपया पाने वालों के नाम लिखे जाते हैं। जिस आदमी को रुपया दिया जाता है, वह लेने से इनकार करता है और कहता है कि मैं पहले अमुक पुरुष के साथ सौदा पक्का कर चुका हूँ, किन्तु उसकी एक नहीं सुनी जाती। यदि वह धन लेने से इनकार

ही करता रहता है तो एक रुपया उसके मकान में फेंक दिया जाता है, उसका नाम रजिस्टर में लिख लिया जाता है, जो आदमी थैली लाया था उसकी गवाही करा ली जाती है और समझा जाता है कि ज़ाब्ते की कारवाई हो गई। इस अन्याय द्वारा रेज़िडेण्ट को अधिकार है कि वह मेरे दरवाज़े से मेरा माल और मेरे कारीगरों को ज़बरदस्ती मुझसे छीन ले जाय और वह छीन ले जाता है।

"यह अन्याय यहीं पर ही ख़त्म नहीं होता। यदि मैं अपने रुपए की वापसी के लिए उस आदमी पर अदालत में दावा करता हूँ तो जज का फ़र्ज़ है कि मेरे हक़ में डिग्री देने से पहले रेज़िडेण्ट से यह पता लगा ले कि क़र्ज़दार को कम्पनी का तो कुछ रुपया नहीं देना है। यदि देना होता है तो पहले रेज़िडेण्ट के हक़ में डिग्री मिलती है और मुझे अपने रुपए से हाथ धोना पड़ता है।"*

आगे चल कर हेनरी गूगर लिखता है कि माल की क़ीमत तय करने का पूरा अधिकार रेज़िडेण्ट को होता है।

---

* "The East India Company. . . had their commercial residents established in the different parts of the silk districts, whose emoluments mainly depended on the quantity of silk they secured for the Company. . . .

"The system pursued by both parties was thus:—Advances of money before each bund or crop were made to two classes of persons—first, to the cultivators who reared the cocoons: next, to the large class of winders who formed the mass of the population of the surrounding villages. By the first the raw material was secured; by the last the labor for working it. . . .

". . . I will state a case of every day occurrence

सिराजुद्दौला के समय से लेकर बङ्गाल के अन्दर कम्पनी का यह प्रयत्न बराबर जारी था कि देश का सारा व्यापार कम्पनी ही के हाथों में आ जाय। एक प्रसिद्ध अङ्गरेज़ बोल्ट्स, जिसकी पुस्तक प्लासी के केवल दस वर्ष के बाद प्रकाशित हुई थी, इस प्रयत्न के परिणामों को इस प्रकार बयान करता है—

"इस उद्देश की पूर्ति के लिए देश के ग़रीब कारीगरों और मज़दूरों के साथ इस तरह के अत्याचार और अन्याय किए गए हैं, जिनका अनुमान

". . . A native wishing to sell me the cocoons he produces for the season takes my advance of money ; a village of winders does the same. After this contract is made, two of the Resident's servants are despatched to the village, the one bearing a bag of rupees, the other a book, in which to register the names of the recipients. In vain does the man to whom the money is offered protest that he has entered into a prior engagement with me. If he refuses to accept it, a rupee is thrown into his house, his name is written before the witness who carries the bag, and that is enough. Under this iniquitous proceeding the Resident, by the authority committed to him, forcibly seizes my property and my laborers even at my door.

"Nor does the oppression stop here. If I sued the man in court for repayment of the money I had thus been defrauded of, the judge was compelled, before granting a decree in my favour, to ascertain from the commercial Resident whether the defaulter was in debt to the East India Company. If he was, a prior decree was given to the Resident, and I lost my money."
—*A Personal Narrative of Two Year's Imprisonment in Burma, 1824—26*, By Henry Gouger, p. 2.

तक नहीं किया जा सकता। वास्तव में इन कारीगरों और मज़दूरों के ऊपर कम्पनी ने इस तरह अपना अनन्य अधिकार जमा रक्खा है कि मानो वे सब कम्पनी के ख़रीदे हुए ग़ुलाम हैं×××ग़रीब जुलाहों को सताने के अनेक और असंख्य तरीक़े हैं और देश के अन्दर कम्पनी के एजएट और गुमाश्ते इन तरीक़ों का प्रतिदिन उपयोग करते रहते हैं। उदाहरण के लिए जुर्माने करना, क़ैद कर देना, कोड़े मारना, ज़बरदस्ती इक़रारनामे लिखवा लेना इत्यादि। इन सबका परिणाम यह है कि देश के अन्दर कपड़ा बुनने वालों की संख्या बेहद कम होगई है।×××इसलिए कपड़ा बुनने वाले अपनी मेहनत का उचित मूल्य लेने की इच्छा से प्रायः निजी तौर पर अपना कपड़ा दूसरों के हाथ बेचने की कोशिश करते हैं×××इस पर अङ्गरेज़ कम्पनी का गुमाश्ता जुलाहे पर निगाह रखने के लिए अपने सिपाही नियुक्त कर देता है और बहुधा ज्योंही कि थान पूरा होने के करीब आता है, ये सिपाही थान को ज़बरदस्ती करघे में से काट कर निकाल लेते हैं। ×××देश भर के अन्दर हर पेशे के कारीगरों के साथ हर क़िस्म का अत्याचार प्रतिदिन बढ़ता जाता है; यहाँ तक कि बुनने वाले यदि अपना माल किसी को बेचने का साहस करते हैं और दलाल और पैकार यदि इस तरह की बिकरी में सहायता देते हैं अथवा उससे आँख बचा जाते हैं तो कई बार ऐसा हो चुका है कि कम्पनी के एजएट उन्हें पकड़ कर क़ैद कर लेते हैं, उनके बेड़ियाँ और हथकड़ियाँ डाल देते हैं, उनसे बड़ी बड़ी रक़में जुर्माने की वसूल करते हैं, उनके कोड़े लगाते हैं और अत्यन्त लज्जाजनक तरीक़ों से उनसे वह चीज़ भी छीन लेते हैं जिसे वे सबसे अधिक मूल्यवान् समझते हैं, अर्थात् उन्हें जाति-भ्रष्ट कर देते हैं।×××गुमाश्तों द्वारा इस तरह के अत्याचार सिराजुद्दौला के समय से अङ्गरेज़ कम्पनी की सत्ता बढ़ने के साथ

साथ शुरू हुए × × × सिराजुद्दौला के समय में जङ्गलबाड़ी के इलाक़े के आस पास से कपड़ा बुनने वालों के सात सौ से ऊपर कुटुम्बों ने इस तरह के अत्याचारों के कारण अपना पेशा और अपना देश दोनों को एक साथ छोड़ दिया × × × बङ्गाल में लॉर्ड क्लाइव के पिछले शासन में इस जोश में कि कम्पनी की कच्ची रेशम की आमदनी को बढ़ाया जाय, रेशम के लपेटने वालों को इतना अधिक सताया गया कि मानव-समाज के पवित्रतम नियमों का घोर उल्लङ्घन किया गया । × × ×"*

---

* "To effect this, inconceivable oppressions and hardships have been practised towards the poor manufacturers and workmen of the country, who are, in fact, monopolised by the Company as so many slaves . . . . Various and innumerable are the methods of oppressing the poor weavers, which are daily practised by the Company's agents and gomashtas in the country, such as by fines, imprisonments, floggings, forcing bonds from them, etc., by which the number of weavers in the country has been greatly decreased . . . . The weaver, therefore, desirous of obtaining the just price of his labour frequently attempts to sell his cloth privately to others, ... This occasions the English Company's gomashta to set his peons over the weaver to watch him, and not infrequently to cut the piece out of the loom when nearly finished . . . therefore every kind of oppression to manufacturers of all denominations throughout the whole country has daily increased; in so much that weavers, for daring to sell their goods, and dallals and pykars for having contributed to and connived at such sales, have, by the Company's agents, been frequently seized and imprisoned, confined in irons, fined considerable sums of money, flogged and deprived, in the most ignominious manner, of what they esteem most valuable, their castes. . . . It was not till the

विद्वान लेखक ने सम्भवतः लज्जा अथवा शालीनता के विचार से यह साफ़ नहीं लिखा कि बङ्गाल के कपड़ा बुनने वालों को किस प्रकार "जातिभ्रष्ट" किया जाता था अथवा "मानव-समाज के" किन "पवित्रतम नियमों" का और किस प्रकार "घोर उल्लङ्घन" किया जाता था !

एक दूसरे स्थान पर यही लेखक लिखता है—

"यदि हिन्दोस्तानी जुलाहे उतना काम पूरा नहीं कर सकते जितना कम्पनी के गुमाश्ते ज़बरदस्ती उन पर मढ़ देते हैं, तो कमी को पूरा कराने के लिए उनका माल असबाब लेकर उसी जगह नीलाम कर दिया जाता है; और कच्चे रेशम के लपेटने वालों के साथ इतना अधिक अन्याय किया गया है कि इस तरह की मिसालें देखी गई हैं जिनमें उन्होंने स्वयं अपने अँगूठे काट डाले, ताकि कोई उन्हें रेशम लपेटने के लिए विवश न कर सके।"*

---

time of Serajuddowla that oppressions of the nature now described, from the employing of gomashtas, commenced with the increasing power of the English Company . . . in Serajuddowla's time . . . . above seven hundred families of weavers, in the districts round Jungalbarry, at once abandoning their country and their professions on account of oppressions of this nature, . . . winders of raw silk were pursued with such rigour during Lord Clive's late Government in Bengal, from a zeal for increasing the Company's investment of raw silk, that the most sacred laws of society were atrociously violated. . . ."—*Considerations on Indian Affiars*, by Bolts, pp 72, 74, 192—195.

* ". . . upon their inability to perform such agreements as

रेशम लपेटने का काम बिना अँगूठे के नहीं हो सकता।

एक और स्थान पर यही लेखक लिखता है कि रय्यत को एक ओर कम्पनी के व्यापारी गुमाश्ते माल के लिए इस तरह दिक़ करते थे जिससे वे अपनी भूमि को ठीक रखने और सरकारी लगान तक देने के असमर्थ हो जाते थे, दूसरी ओर लगान वसूल करने वाले अफ़सर उन्हें लगान के लिए सताते थे, "और अनेक ही बार ऐसा हुआ है कि इन निर्दय लुटेरों ने उन्हें मजबूर कर दिया कि वे लगान अदा करने के लिए या तो अपने बच्चों को बेच डालें अथवा देश छोड़ कर भाग जायँ।"*

१८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तथा १९वीं शताब्दी के पूर्वार्ध के कम्पनी के इन अत्याचारों के विषय में ही सुप्रसिद्ध अङ्गरेज तत्व-वेत्ता हरबर्ट स्पेन्सर ने लिखा है—

"कल्पना कीजिए कि उन लोगों के कारनामे कितने काले रहे होंगे जब कि कम्पनी के डाइरेक्टरों तक ने इस बात को स्वीकार किया कि—'भारत के आन्तरिक व्यापार में जो असंख्य धन कमाया गया है, वह

---

have been forced upon them by the Company's agents, . . . have had their goods seized and sold on the spot to make good the deficiency; and the winders of raw silk, . . . have been treated also with such injustice, that instances have been known of their cutting off their thumbs to prevent their being forced to wind silk."—Ibid.

* "And not infrequently have by those harpies been necessitated to sell their children in order to pay their rents or otherwise obliged to fly the country."—Ibid.

सब इस तरह के घोर अन्यायों और अत्याचारों द्वारा प्राप्त किया गया है जिनसे बढ़ कर अन्याय और अत्याचार कभी किसी. देश अथवा किसी ज़माने में भी सुनने में न आए होंगे।'"*

ऊपर के उद्धरणों से ज़ाहिर है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन-काल में कम्पनी की भारतीय प्रजा के जान माल, उनकी मानमर्यादा अथवा उनकी 'पवित्रतम भावनाओं' किसी का अणुमात्र भी मूल्य न था। निस्सन्देह संसार के किसी भी देश और किसी भी युग में प्रजा की वह भयङ्कर दुर्दशा न हुई होगी जो कम्पनी के शासन-काल में भारतीय प्रजा की हुई।

सन् १८१३ की नई व्यापारिक नीति

अब हम फिर सन् १८१३ के नए क़ानून की ओर आते हैं। इस क़ानून के पास होने से पहले भारत तथा इङ्गलिस्तान के बीच व्यापार करने का अनन्य अधिकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी को प्राप्त था। सन् १८१३ के क़ानून में सब से पहली बात यह की गई कि यह अनन्य अधिकार कम्पनी से छीन लिया गया और भारत के साथ व्यापार करने का दरवाज़ा प्रत्येक अङ्गरेज़ व्यापारी और प्रत्येक अङ्गरेज़ व्यक्ति के लिए खोल दिया गया। इसका अर्थ यह

---

* "Imagine how black must have been their deeds, when even the Directors of the Company admitted that 'the vast fortunes acquired in the inland trade have been obtained by a scene of the most tyrannical and oppressive conduct that was ever known in any age or country.'"—*Social Statics*, by Herbert Spencer, 1st edition, p. 367.

था कि भारतीय प्रजा के ऊपर अत्याचारों के करने और उन्हें इस प्रकार लूटने का अधिकार अब आम तौर पर सब अङ्गरेज़ों को दे दिया गया।

इसके अतिरिक्त सन् १८१३ में ही पहली बार यह तय हुआ कि भारत के उद्योग धन्धों को नष्ट किया जाय, इङ्गलिस्तान के उद्योग धन्धों को बढ़ाया जाय और इङ्गलिस्तान का बना हुआ माल ज़बरदस्ती भारतवासियों के सिर मढ़ा जाय। जिस समय इस विषय पर बहस हो रही थी पार्लमेण्ट के एक सदस्य मिस्टर टीरने ने पार्लिमेण्ट में व्याख्यान देते हुए स्पष्ट कहा—

"आम असूल अब से यह होगा कि इङ्गलिस्तान अपने यहाँ का बना हुआ तमाम माल ज़बरदस्ती भारत में बेचे और उसके बदले में हिन्दोस्तान की बनी हुई एक भी चीज़ न ले। यह सच है कि हम रुई अपने यहाँ आने देंगे, किन्तु जब हमें यह पता लग गया है कि हम मशीनों के ज़रिए हिन्दोस्तानियों की निस्बत सस्ता कपड़ा बुन सकते हैं तो हम उनसे यह कहेंगे कि 'तुम बुनने का काम छोड़ दो, हमें कच्चा माल दो और हम तुम्हारे लिए कपड़ा बुन देंगे।' सम्भव है कि व्यापारियों और कारीगरों की दृष्टि से यह बहुत ही स्वाभाविक सिद्धान्त हो। किन्तु इसमें फ़िलासफ़ी छाँटना अथवा इस असूल के समर्थकों को विशेष तौर पर हिन्दोस्तान के हितचिन्तक गिनना ज़रा ज़्यादती है। यदि हिन्दोस्तान के दोस्त कहने के बजाय हम अपने तईं हिन्दोस्तान के दुशमन कहें तो तमाम हिन्दोस्तानी कारीगरी के नाश करने की इस सलाह से बढ़ कर दुशमनी की सलाह और हम हिन्दोस्तान को क्या दे सकते हैं?"*

---

* "The general principle was to *be* that England was to

निस्सन्देह मिस्टर टीरने की स्पष्टवादिता सराहनीय है। केवल एक वाक्य ऊपर के उद्धरण में असत्य था। वह यह कि "हम मशीनों के ज़रिए हिन्दोस्तानियों की निस्बत सस्ता कपड़ा बुन सकते हैं।" आगे की घटनाओं से साफ़ ज़ाहिर हो गया कि 'मशीनों' और 'भाप' की मदद से भी इङ्गलिस्तान के कारीगर भारत के कारीगरों के मुक़ाबले में सस्ता अथवा अच्छा कपड़ा न बुन सकते थे, और यदि अनसुने महसूलों, अन्यायों, बहिष्कारों और असंख्य राजनैतिक हथकण्डों द्वारा भारत के उद्योग धन्धों को नष्ट न किया गया होता तो भाप की ताक़त के लिए इङ्गलिस्तान के कपड़े के कारख़ानों को चला सकना सर्वथा असम्भव था। अब देखना यह है कि किन किन उपायों द्वारा अङ्गरेज़ों ने उस समय अपनी इस नीति को सफल बनाया।

सन् १८१३ का क़ानून पास होने से पहले पार्लिमेण्ट की दो ख़ास

---

force all her manufactures upon India, and not to take a single manufacture of India in return. It was true they would allow cotton to be brought; but then, having found out that they could weave, by means of machinery, cheaper than the people of India, they would say,—'Leave off weaving; supply us with the raw material, and we will weave for you.' This might be a very natural principle for merchants and manufacturers to go upon, but it was rather too much to talk of the philosophy of it, or to rank the supporters of it as in a peculiar degree the friends of India. If instead of calling themselves the friends of India, they had professed themselves its enemies, what more could they do than advise the destruction of all Indian manufactures?"—*Mr. Tierney* in the House of Commons, 1813.

और काम करने के लिए धन की सहायता और अन्य विशेष सुविधाएँ दी जायँ।

(५) भारतीय कारीगरों पर हर तरह का दवाव डाल कर उनकी कारीगरी के रहस्यों का पता लगाया जाय, जैसे थानों को धोना, रँगना इत्यादि, और इङ्गलिस्तान के व्यापारियों और कारीगरों को उन रहस्यों की सूचना दी जाय। तथा प्रदर्शिनियों के जरिए भारत-वासियों की आवश्यकताओं और उनकी कारीगरी के भेदों का पता लगाया जाय।

(६) माल के लाने ले जाने के लिए भारत में रेलें जारी की जायँ।

(७) अपनी मण्डियों को पक्का करने के लिए ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य को विस्तार दिया जाय और भारतवर्ष को इङ्गलिस्तान का गुलाम वना कर रक्खा जाय।

सन् १८३०—३२ में पार्लिमेण्ट की ओर से एक कमेटी नियुक्त की गई, जिसका उद्देश यह तहकीक़ात करना था कि पूर्वोक्त उपाय कहाँ तक सफल हुए और सन् १८१४ से उस समय तक भारत के अन्दर इङ्गलिस्तान का व्यापार कहाँ तक बढ़ा। कमेटी के सामने अनेक गवाहों के वयान हुए। पहला प्रश्न जो प्रत्येक गवाह से किया गया वह यह था कि सन् १८१४ से अब तक भारत के अन्दर महसूल की तवदीलियों द्वारा अङ्गरेज व्यापारियों को व्यापार के लिए क्या क्या सुविधाएँ दी जा चुकी हैं? इस प्रश्न के कुछ उत्तरों से प्रस्तुत विषय पर ख़ासी रोशनी पड़ती है।

१—अङ्गरेज़ी माल पर महसूल माफ़

लारपैण्ट नामक एक अङ्गरेज़ गवाह ने इस प्रश्न के उत्तर में कहा—

"इङ्गलिस्तान का बना हुआ जो माल हिन्दोस्तान के अन्दर आता है, उस पर महसूल घटा कर कुल क़ीमत पर २½ फ़ीसदी महसूल कर दिया गया है, और बहुत से ख़ास ख़ास तरह के माल पर बिलकुल ही महसूल उड़ा दिया गया है।

* * *

"चुङ्गी की दर बदल दी गई है और कई चीज़ों पर चुङ्गी बढ़ा दी गई है।

"जो अङ्गरेज़ क़हवा (काफ़ी) या नील का काम करना चाहते हैं, उन्हें ६० साल के पट्टे पर ज़मीनें मिलने की इजाज़त दे दी गई है, इत्यादि।"

एक दूसरे अङ्गरेज़ गवाह सलीवन ने बयान किया—

"सन् १८१४ में व्यापार का द्वार खुल जाने के समय से रुई के ऊपर महसूल बिलकुल हटा लिया गया है, जो रुई हिन्दोस्तान से चीन भेजी जाती है उस पर महसूल घटा कर पाँच फ़ीसदी कर दिया गया है, और जो रुई हिन्दोस्तान से इङ्गलिस्तान भेजी जाती है उस पर महसूल बिलकुल नहीं लिया जाता।"

क्रॉफ़र्ड नामक गवाह ने बयान किया—

"महसूल के मामले में सन् १८१३ के क़ानून में यह बात दर्ज कर दी गई थी कि बिना इङ्गलिस्तान के अधिकारियों से पूछे हिन्दोस्तान में बाहर

के माल पर कोई नया महसूल न लगाया जाय। इसी के अनुसार पुराने महसूलों को कम करके और उनकी एक सूची तैयार करके इङ्गलिस्तान से हिन्दोस्तान भेजी गई और हिन्दोस्तान की सरकार ने सन् १८१५ में उसी को क़ानून का रूप दे दिया, इत्यादि।"

ग्लासगो चैम्बर ऑफ़ कॉमर्स ने अपने बयान में लिखा—

"ऊनी कपड़ों, धातुओं और जहाज़ी सामान के ऊपर हिन्दोस्तान में बिलकुल महसूल नहीं लिया जाता, जिससे निस्सन्देह इङ्गलिस्तान के इन चीज़ों के व्यापार को बहुत बड़ी सुविधा प्राप्त हुई है।"

२—भारतीय माल पर निषेधकारी महसूल

दूसरा उपाय जो भारतीय उद्योग धन्धों को नष्ट करने का किया गया वह इङ्गलिस्तान के अन्दर भारत के बने हुए माल पर ज़बरदस्त महसूल लगा देना था, ताकि भारत का माल इङ्गलिस्तान में इङ्गलिस्तान के बने हुए माल से सस्ता न बिक सके।

सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ लैकी लिखता है कि भारत के बने हुए कपड़े उन दिनों इतने सुन्दर, सस्ते और मज़बूत होते थे कि १८ वीं शताब्दी के शुरू ही में इङ्गलिस्तान के कपड़ा बुनने वालों को हिन्दोस्तान के कपड़ों के मुक़ाबले में अपने रोज़गार के नष्ट हो जाने का डर हो गया। उसी समय से इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट ने क़ानून बना कर कई तरह के भारतीय कपड़ों का इङ्गलिस्तान आना बन्द कर दिया और दूसरे कई तरह के कपड़ों पर भारी महसूल लगा दिए। यह उपाय भी काफ़ी साबित न हुए तब लैकी के बयान के अनुसार सन् १७६६ में इङ्गलिस्तान के अन्दर यदि कोई

अङ्गरेज स्त्री हिन्दोस्तानी कपड़े की पोशाक पहनती थी तो उसे राजदण्ड दिया जाता था।*

सन् १८१३ में पार्लिमेण्ट की एक कमेटी के सामने गवाही देते हुए रॉबर्ट ब्राउन नामक एक अङ्गरेज व्यापारी ने, जो हिन्दोस्तान से सूती कपड़े मँगाया करता था, बयान किया कि उन दिनों हिन्दोस्तान से आने वाले कपड़ों पर इङ्गलिस्तान में दो तरह का महसूल लिया जाता था। एक, अङ्गरेज़ी बन्दरगाहों में माल के जहाज़ों से उतरते ही और दूसरे इङ्गलिस्तान-निवासियों के उपयोग के लिए इङ्गलिस्तान की मण्डियों में माल के पहुँचने के समय। इसके अतिरिक्त तमाम हिन्दोस्तानी माल को तीन श्रेणियों में बाँट दिया गया था। पहली श्रेणी में मलमल इत्यादि थीं, जिन पर बन्दरगाह में उतरते समय १० फ़ीसदी और इङ्गलिस्तान की मण्डियों में जाते समय २७½ फ़ीसदी महसूल लिया जाता था। दूसरी श्रेणी में कैलिको (कालीकट का एक खास कपड़ा) इत्यादि थे जिन पर बन्दरगाहों में उतरते समय ३½ फ़ीसदी और मण्डियों में जाते समय ३½ फ़ीसदी महसूल लिया जाता था। तीसरी श्रेणी में वे कपड़े थे जिनका बेचना या पहनना इङ्गलिस्तान के अन्दर जुर्म समझा जाता था। इस तरह के माल पर बन्दरगाहों में उतरते समय ६८½ फ़ीसदी महसूल लिया जाता था; और व्यापारियों के लिए आवश्यक था कि उस माल को फ़ौरन् दूसरे मुल्कों

* Lecky's *History of England in the Eighteenth Century*, vol. vii, pp. 255—266, 320.

को भेज दें। इतनी कड़ाई के होते हुए भी दूसरी श्रेणी के कपड़े ७२ फ़ीसदी महसूल देने के पश्चात् उस प्रकार के अङ्गरेज़ी कपड़ों के मुक़ाबले में इङ्गलिस्तान के बाज़ारों के अन्दर ६० फ़ीसदी तक कम दाम में मिलते थे।

अर्थात् आज से लगभग सौ वर्ष पहले तक भारत में जो कपड़ा हाथ के सूत से और हाथ के करघों पर तैयार होकर १००) रुपए से कम में मिल सकता था, उतना सुन्दर और उतना मज़बूत कपड़ा इङ्गलिस्तान के पुतलीघर वाले भाप और मशीनों की मदद से ४५० रुपए में भी तैयार करके न बेच सकते थे।

हिन्दोस्तान से उन दिनों तरह तरह के सूती, ऊनी और रेशमी कपड़ों के अतिरिक्त हाथ की छड़ियाँ जिन पर सोने चाँदी की मूठें और तरह तरह का काम होता था, चीनी मिट्टी के बरतन, चमड़े और लकड़ी की चीज़ें, शराब, अरक़, वारनिश का काम, नारियल का तेल, सींग, रस्सियाँ, चाय, अरारूट, चटाइयाँ, चीनी, साबुन, काग़ज़ इत्यादि अनेक तरह का माल इङ्गलिस्तान जाता था। सन् १८१३ से १८३२ तक इङ्गलिस्तान की आवश्यकतानुसार बराबर इङ्गलिस्तान के अन्दर इन तमाम चीज़ों पर महसूल घटता बढ़ता रहा। कई तरह के भारतीय कपड़ों, ख़ास कर रेशमी रूमालों और रेशम की बनी हुई चीज़ों का बिकना इङ्गलिस्तान में सन् १८२६ तक क़ानूनन् बन्द रहा। बहुत सी चीज़ों पर १०० फ़ीसदी से भी ज़्यादा महसूल लिया जाता था। कई पर ६०० फ़ीसदी तक और रिकर्ड नामक एक अङ्गरेज़ ने सन् १८३२ की पार्लिमेण्ट की कमेटी

के सामने बयान किया कि किसी चीज़ पर ३,००० फ़ी सैकड़ा तक महसूल लिया जाता था। अर्थात् एक रुपए की चीज़ पर तीस रुपए महसूल। सारांश यह कि जब कि एक ओर इङ्गलिस्तान के बने हुए माल पर हिन्दोस्तान में अधिक से अधिक ढाई फ़ीसदी महसूल लिया जाता था और बहुत सा माल बिना महसूल आने दिया जाता था, दूसरी ओर इङ्गलिस्तान के अन्दर हिन्दोस्तान के माल पर भयङ्कर क़ानूनी तथा सामाजिक बहिष्कार जारी था।

इतिहास-लेखक विलसन इङ्गलिस्तान के कपड़े के व्यापार की उन्नति और भारत के कपड़ा बुनने के धन्धे के इस प्रकार सर्वनाश के विषय में लिखता है—

"हमारे सूती कपड़े के व्यापार का यह इतिहास इस बात की एक शोकप्रद मिसाल है कि हिन्दोस्तान जिस देश के आधीन हो गया था उसने हिन्दोस्तान के साथ किस तरह अन्याय किया। गवाहियों में यह बयान किया गया था कि सन् १८१३ तक हिन्दोस्तान के सूती और रेशमी कपड़े इङ्गलिस्तान के बाज़ारों में इङ्गलिस्तान के बने हुए कपड़ों के मुक़ाबले में ५० फ़ीसदी से ६० फ़ीसदी तक कम दाम पर फ़ायदे के साथ बिक सकते थे। इसलिए यह आवश्यक हो गया कि हिन्दोस्तान के माल पर ७० और ८० फ़ीसदी महसूल लगाकर अथवा उसका इङ्गलिस्तान में आना सर्वथा बन्द करके इङ्गलिस्तान के व्यापार की रक्षा की जाय। यदि ऐसा न होता, यदि इस तरह की आज्ञाएँ न दी गई होतीं और भारत के माल पर इस तरह के भारी निषेधकारी महसूल न लगाए गए होते, तो पेज़ली और मैन्चेस्टर के पुतलीघर खुलते ही बन्द हो गए होते और फिर

भाप की ताक़त से भी दोबारा न चलाए जा सकते। इन पुतलीघरों का निर्माण भारतीय कारीगरी के बलिदान पर किया गया।

"यदि भारत स्वाधीन होता तो वह इसका बदला लेता, इङ्गलिस्तान के बने हुए माल पर निषेधकारी महसूल लगाता और इस प्रकार अपने यहाँ की कारीगरी को सर्वनाश से बचा लेता। किन्तु उसे इस प्रकार की आत्म-रक्षा की इजाज़त न थी। वह विदेशियों के चङ्गुल में था। इङ्गलिस्तान का माल बिना किसी तरह का महसूल दिए ज़बरदस्ती उसके सिर मढ़ दिया गया, और विदेशी कारीगरों ने एक ऐसे प्रतिस्पर्धी को दबा कर रखने और अन्त में उसका गला घोंट देने के लिए, जिसके साथ वे बराबरी की शर्तों पर मुक़ाबला न कर सकते थे, राजनैतिक अन्याय के शस्त्र का उपयोग किया।"*

---

* "The history of the trade of cotton cloths with India . . . is . . . a melancholy instance of the wrong done to India by the *country* on which she had become dependent. It was stated in evidence, that the cotton and silk goods of India up to this period (1813) could be sold for a profit in the British market, at a price from fifty to sixty per cent, lower than those fabricated in England. It consequently became necessary *to protect* the latter by duties of seventy and eighty per cent, on their value, or by *positive prohibition.* Had this not been the case, had not such prohibitory duties and decrees existed, the mills of Paisley and of Manchester would have been stopped in their outset, and could scarcely have been again set in motion even by the powers of steam. They were created by the *sacrifice* of the Indian manufacture. Had India been independent, she would have retaliated, would have imposed preventive duties upon British

इङ्गलिस्तान और यूरोप की मण्डियाँ हिन्दोस्तान के बने हुए माल के लिए निषेधकारी महसूलों द्वारा बन्द कर दी गईं। इङ्गलिस्तान के बने हुए माल की बिक्री के लिए भारत में विशेष सुविधाएँ कर दी गईं। किन्तु असंख्य भारतीय कारीगरियों के सर्वनाश के लिए यह भी काफ़ी न था। भारतवर्ष की विशाल मण्डियाँ अभी तक भारत के बने हुए माल की खपत के लिए मौजूद थीं। भारत की इन मण्डियों में इङ्गलिस्तान के बने माल के लिए जगह बनाने के वास्ते उनमें भारत ही के बने हुए माल का पहुँच सकना और बिक सकना असम्भव कर देना आवश्यक था। इसके लिए मुख्य उपाय यह किया गया कि भारतवर्ष के अन्दर चुङ्गी के पुराने तरीक़ों को बदला गया और चुङ्गी का एक नया नाशकारी महकमा क़ायम किया गया।

३—नई चुङ्गी

फ़्रेड्रिक शोर नामक उस समय के एक अङ्गरेज़ विद्वान ने चुङ्गी के पुराने हिन्दोस्तानी तरीक़े और इसके बाद के अङ्गरेज़ी तरीक़े की

---

goods, and thus would have preserved her own productive industry from annihilation. This act of self-defence was not permitted her; she was at the mercy of the stranger. British goods were forced upon her without paying any duty, and the foreign manufacturer employed the arm of political injustice to keep down and ultimately strangle a competitor with whom he could not have contended on equal terms."—Mill's *History of British India.*, vol. vii, p. 385.

तुलना करते हुए लिखा है कि चुङ्गी वसूल करने का पुराना हिन्दोस्तानी तरीक़ा अर्थात् मुग़लों या नवाबों के समय का तरीक़ा यह था कि हर चालीस, पचास अथवा साठ मील के ऊपर चुङ्गीघर बने हुए थे। हर चुङ्गीघर को पार करते समय व्यापारी को अपने माल पर चुङ्गी देनी पड़ती थी जो एक लदे हुए बैल पर एक ख़ास रक़म, टट्टू पर उससे कुछ ज्यादा, ऊँट पर और कुछ ज्यादा, बैलगाड़ी पर उससे कुछ अधिक इत्यादि, इसी हिसाब से नियत थी। माल की क़ीमत या क़िस्म से चुङ्गी का कोई सम्बन्ध न था। इसके अतिरिक्त चुङ्गी इतनी हलकी होती थी कि कोई उससे बचने की कोशिश न करता था। न किसी को माल खोल कर देखने की आवश्यकता होती थी, न किसी 'पास' या 'रवन्ने' की ज़रूरत; और न किसी व्यापारी को कोई कष्ट होता था। जो व्यापारी अपना माल अधिक दूर ले जाता था उसे हर ५० या ६० मील के बाद वही बँधी हुई रक़म देनी होती थी।

इसकी जगह जो नया तरीक़ा अङ्गरेज़ों ने जारी किया, वह यह था—

चुङ्गीघरों के अलावा देश भर में अनेक 'चौकियाँ' बना दी गईं, जिनमें हर व्यापारी के तमाम माल को खोल कर देखा जाता था। चुङ्गीघर में व्यापारी से एक बार चुङ्गी ले ली जाती थी और उसे एक 'पास' या 'रवन्ना' दे दिया जाता था ताकि उस व्यापारी को दोबारा कहीं चुङ्गी न देनी पड़े। माल की क़ीमत और क़िस्म के अनुसार हर तरह के माल पर अलग अलग चुङ्गी रक्खी गई।

चाहे व्यापारी को अत्यन्त दूर जाना हो और चाहे अत्यन्त निकट, किन्तु चुङ्गी की रक़म वह नियत की गई, जो इससे पहले दूर से दूर जाने वाले व्यापारी को रास्ते भर के तमाम चुङ्गीघरों पर मिला कर देनी पड़ती थी। इस प्रकार पहली बात तो यह हुई कि देश के आन्तरिक व्यापार पर चुङ्गी पहले की अपेक्षा कई गुनी बढ़ गई।

दूसरी बात इस नए तरीक़े में 'रवन्ना' थी। व्यापारी के किसी एक स्थान से चलते समय उसके तमाम माल पर एक रवन्ना दिया जाता था। यदि कहीं पर व्यापारी अपना आधा माल बेच दे तो बचे हुए माल के लिए उसे पास के चुङ्गीघर पर जाकर, पिछला रवन्ना दिखला कर, माल का रवन्नेके साथ मीलान करवाकर और आठ आने सैकड़ा नया महसूल देकर आवश्यकतानुसार एक या अधिक नए रवन्ने ले लेने होते थे। यदि एक साल तक माल का कोई हिस्सा न बिका हो तो भी बारह महीने के बाद हर रवन्ना रद्दी हो जाता था। व्यापारी के लिए ज़रूरी था कि बारह महीने ख़त्म होने से पहले किसी पास के चुङ्गीघर पर जाकर पिछले रवन्ने से अपने माल का मीलान करवा कर और आठ आने सैकड़ा नया महसूल देकर नया रवन्ना हासिल कर ले, अन्यथा बारह महीने समाप्त होने के बाद उसे अपने समस्त माल पर नए सिरे से चुङ्गी देनी पड़ती थी।

तीसरी और सब से बढ़ कर बात इस नए तरीक़े में तलाशी की 'चौकियाँ' थीं। ये चौकियाँ देश भर में जगह जगह बना दी गई थीं। चौकियों के छोटे से छोटे मुलाज़िम को किसी भी माल को रोक लेने, उसे खुलवा कर देखने और रवन्ने से मीलान करने

आदि का अधिकार था। यदि माल रवन्ने के मुताबिक़ न होता था अथवा व्यापारी के पास रवन्ना न होता था तो इन चौकियों पर सारा माल क़ानूनन् ज़ब्त कर लिया जा सकता था। इस पर तारीफ़ यह कि यदि कोई व्यापारी किसी ऐसे स्थान से माल ले कर चलता था कि जहाँ से आगे के चुङ्गीघर तक पहुँचने से पहले उसे किसी तलाशी की चौकी पर से जाना पड़े तो उससे यह आशा की जाती थी कि वह अपने घर से माल लेकर निकलने से पहले ही किसी चुङ्गीघर से अपने माल के लिए रवन्ना हासिल कर ले। इस विचित्र और असम्भव नियम का परिणाम यह था कि जो साधारण व्यापारी अपने घर से कुछ दूर ख़ास मेलों या बाज़ारों से माल ख़रीद कर दूसरे स्थानों पर जाकर बेचते थे उन्हें प्रायः अपने घर के पास के चुङ्गीघर वालों को पहले से यह बता देना होता था कि हम क्या, कितना और किस क़ीमत का माल ख़रीदेंगे और पहले ही से उसके लिए रवन्ना ले लेना होता था। जिस व्यापारी को यह पता न हो सकता था कि मुझे कौन सा माल और किस पड़ते पर मिल सकेगा, उसके व्यापार और रोज़गार के लिए यह नियम सर्वथा घातक था।

एक तो चुङ्गी बेहद बढ़ा दी गई थी, दूसरे इन चौकियों पर प्रायः इतना समय नष्ट होता था, माल के मीलान करवाने में इतनी कठिनाई होती थी, चौकी के छोटे मुलाज़िमों के लिए माल को पहचान सकना, उसकी क़ीमत का अन्दाज़ा लगा सकना अथवा व्यापारी के लिए यह साबित कर सकना कि माल ठीक वही

है जो रवन्ने में दर्ज है—इतना कठिन होता था और चौकियों और चुङ्गीघरों के मुलाज़िमों के अधिकार इतने विस्तृत होते थे कि इस तमाम नई पद्धति के कारण देश के व्यापारियों और कारीगरों की कठिनाइयाँ बेहद बढ़ गईं, उनके हौसले टूट गए और असंख्य देशी दस्तकारियों का तथा देश के आन्तरिक व्यापार का सत्यानाश होगया।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इङ्गलिस्तान का बना हुआ माल, जो अङ्गरेज़ों और उनके एजएटों द्वारा बिकता था, इन समस्त असुविधाओं से सुरक्षित रक्खा गया।

फ़ेड्रिक शोर लिखता है—

"हम इस बात की बड़ी बड़ी शिकायतें सुनते हैं कि इस देश के लोग ग़रीब होते जा रहे हैं, देश का आन्तरिक व्यापार नष्ट होता जा रहा है और देश की दस्तकारियाँ बजाय उन्नति करने के, गिरती जा रही हैं। इसमें आश्चर्य ही क्या है? हमारी इस चुङ्गी की प्रणाली के कारण समस्त व्यापारियों को जिन असह्य क्लेशों का सामना करना पड़ता है, क्या उनसे किसी और नतीजे की आशा की जा सकती थी?"*

फ़ेड्रिक शोर ने मिसालें दी हैं कि किस प्रकार देहली और

* "We hear loud complaints of the impoverishment of the people, the falling off of the internal trade, and the decline instead of the increase of manufactures. Is it to be wondered at? Could any other result be anticipated from the intolerable vexation to which all merchants are exposed by our internal customs?"—*Notes on Indian Affairs*, By Hon. Frederick Shore.

बनारस के दुशालों के व्यापारियों का काम इस पद्धति द्वारा नष्ट होगया। बुखारा, रूस, पेशावर और काबुल के व्यापारियों को इससे कितना नुक़सान पहुँचा और वे किस प्रकार शिकायतें करते थे। भारत की दस्तकारियों पर तो कई कई बार चुङ्गी देनी पड़ती थी; कच्चे माल पर अलग और बने हुए माल पर अलग। यहाँ तक कि दुशालों के व्यापारियों को दो बार, चमड़े के व्यापारियों को तीन बार और सूती कपड़े के व्यापारियों को चार बार चुङ्गी देनी पड़ती थी। अन्त में फ़्रेड्रिक शोर लिखता है—

"यदि यह हालत बहुत दिनों जारी रही, तो थोड़े ही दिनों में हिन्दोस्तान सिवाय इतने अन्न के कि जो उसकी आबादी के गुज़ारे के लिए ठीक काफ़ी हो, उसे पकाने के लिए थोड़े से मोटे मिट्टी के बरतनों के, और थोड़े से मोटे कपड़ों के और कुछ न बना सकेगा। यदि हम केवल इस बोझ को हिन्दोस्तान की छाती पर से हटा लें तो अब भी थोड़े ही दिनों में भारत और इङ्गलिस्तान के बीच व्यापार का तख़्ता बिलकुल पलट जाय।"*

४—अङ्गरेज़ व्यापारियों को सहायता

जो सात उपाय सन् १८१३ में नियत किए गए उनमें पहले तीन का विस्तृत बयान दिया जा चुका है। चौथा उपाय अङ्गरेज़ों को भारत में रहने और काम करने की विशेष सुविधाएँ देना था।

---

* ". . . if this be continued much longer, India will, ere long, produce nothing but food just sufficient for the population, a few coarse earthen-ware pots to cook it in, and a few coarse cloths. Only remove this incubus and the tables will very soon be turned."—Ibid.

भारत की दृष्टि से यह ग़लती वास्तव में उस समय से शुरू हुई जब कि दिल्ली के सम्राट ने एशियाई उदारता में आकर इन विदेशियों को व्यापार करने के लिए भारत में इस तरह के अधिकार प्रदान कर दिए जिस तरह के कि आज कल का कोई ईसाई शासक किसी भी दूसरे देश के लोगों को अपने देश के अन्दर प्रदान न करेगा। वास्तव में उस समय से ही भारतीय व्यापार तथा उद्योग धन्धों के नाश और भारत की राजनैतिक पराधीनता का बीज वपन हुआ। बङ्गाल के अन्दर अङ्गरेज़ व्यापारियों को जो रिआयतें दी गईं उन्हीं का परिणाम नवाब सिराजुद्दौला के विरुद्ध षड्यन्त्रों का रचा जाना और प्लासी का निर्णायक संग्राम था। इसके बहुत दिनों बाद भारत की अङ्गरेज़ी सरकार ने भारतवासियों के ख़र्च पर आसाम और कुमायूँ के अन्दर चाय की काश्त के अनेक तजरुबे किए; इसलिए कि तजरुबे सफल होने के बाद वहाँ के चाय के सब बाग़ीचे ऐसे अङ्गरेज़ों के हवाले कर दिए जायँ जो वहाँ रह कर काम करना चाहें; बाद में ऐसा ही किया भी गया। भारतवासियों के ख़र्च पर कई अङ्गरेज़ों को तरह तरह की चाय के बीज लाने के लिए चीन भेजा गया। और चीनी काश्तकार हिन्दोस्तान में लाए गए ताकि अङ्गरेज़ उनसे चाय की काश्त का तरीक़ा सीख सकें। इसलिए, ताकि इन चाय के बाग़ीचों में काम करने वालों की कभी कमी न होने पाए, वहाँ पर शुद्ध ग़ुलामी की प्रथा क़ानूनन् प्रचलित की गई। अपने भारतीय ग़ुलामों पर इन गोरे मालिकों के अत्याचारों की कथा भी एक पृथक कहानी है। इसी प्रकार लोहे के काम

करने वाले और नील की काश्त करने वाले अङ्गरेजों को भी भारत-वासियों के ख़र्च पर समय समय पर धन और क़ानून। दोनों की सहायता दी गई। इसी तरह के और भी असंख्य उदाहरण दिए जा सकते हैं, किन्तु इस विषय को विस्तार देना व्यर्थ है।

५—भारतीय कारीगरी के रहस्यों का पता लगाना

पाँचवाँ उपाय भारतीय कारीगरी के रहस्यों का पता लगाना था। इन रहस्यों और भारतवासियों की आवश्यकताओं का पता लेने के लिए अनेक प्रदर्शनियाँ की गईं। लन्दन में भारतवासियों के खर्च पर एक विशाल अजायबघर बनाया गया, जिसमें अङ्गरेज कारीगरों की जानकारी के लिए भारतीय कारीगरी के नमूने इत्यादि जमा किए गए। इससे भी बढ़ कर भारत के बने हुए कपड़ों के सात सौ भिन्न भिन्न नमूने अठारह बड़ी बड़ी जिल्दों में जमा किए गए। इस समस्त संग्रह की बीस प्रतियाँ तैयार कराई गईं। इनमें अठारह अठारह विशाल जिल्दों की तेरह प्रतियाँ इङ्गलिस्तान के कारीगरों की जानकारी के लिए उस देश के विविध औद्योगिक केन्द्रों में रक्खी गईं, और शेष सात प्रतियाँ भारत में आने जाने वाले अङ्गरेज व्यापारियों के लिए भारतवर्ष के सात मुख्य मुख्य केन्द्रों में रक्खी गईं। वास्तव में ये बीस प्रतियाँ बीस औद्योगिक अजायबघर हैं। यह तमाम विशाल कार्य इङ्गलिस्तान की कारीगरी को बढ़ाने और भारत की कारीगरी को नष्ट करने के लिए किया गया, किन्तु इसके खर्च का एक एक पैसा ग़रीब हिन्दो-

स्तानियों की जेब से लिया गया। अक्षरशः जिन पैनी छुरियों से भारतीय कारीगरों के गले काटे गए उन छुरियों को उन्हीं कारीगरों के ख़र्च पर तैयार किया गया।

हिन्दोस्तानी कारीगारी के रहस्यों का पता लगाने के लिए और भी अनेक तरह की ज़बरदस्तियाँ की गईं। मेजर कीथ नामक एक अङ्गरेज़ लिखता है—

"प्रत्येक मनुष्य जानता है कि कारीगर अपने औद्योगिक रहस्यों को कितनी सावधानी के साथ छिपा कर रखते हैं। यदि आप डूल्टन कम्पनी (इङ्गलिस्तान की एक कम्पनी) के मिट्टी के बरतनों के कारख़ाने को देखने जाएँ तो सौजन्य के साथ आपको टाल दिया जायगा। तथापि हिन्दोस्तानी कारीगरों को ज़बरदस्ती मजबूर किया गया कि वे अपने थानों को धोकर सफ़ेद करने के तरीक़े और अपने दूसरे औद्योगिक रहस्य मैन्चेस्टर वालों पर प्रकट कर दें, और उन्हें मानना पड़ा। इण्डिया हाउस के महकमे ने एक क़ीमती संग्रह तैयार किया, इसलिए ताकि उसकी मदद से मैन्चेस्टर दो करोड़ पाउण्ड (अर्थात् तीस करोड़ रुपए) सालाना हिन्दोस्तान के ग़रीबों से वसूल कर सके। इस संग्रह की प्रतियाँ "चैम्बर्स ऑफ़ कॉमर्स" को मुफ़्त भेंट की गईं और हिन्दोस्तानी रय्यत को उनकी क़ीमत देनी पड़ी। सम्भव है कि सम्पत्ति-विज्ञान (पोलिटिकल इकॉनामी) की दृष्टि से यह सब जायज़ हो, किन्तु वास्तव में इस तरह के काम में और एक दूसरी चीज़ (लूट) में अत्यन्त आश्चर्यजनक समानता है।"*

---

* "Every one knows how jealously trade secrets are guarded. If you went over Messrs Doulton's Pottery Works, you would be politely overlooked. Yet under the force of

६—रेलें

इङ्गलिस्तान के व्यापार को फैलाने तथा कच्चे माल को बाहर ले जाने के लिए भारत भर में रेलों का जाल पूर दिया गया। दूसरे देशों को पराधीन करने और उनकी पराधीनता को बनाए रखने में मिश्र, भारत, चीन, मञ्चूरिया, कोरिया तथा साइबेरिया में सब जगह रेलों ने बहुत ज़बरदस्त काम किया है।

७—भारतवासियों को चरित्र-भ्रष्ट करना

सन् १८१३ का नया 'चारटर' भारतवासियों के लिए केवल आर्थिक दृष्टि से ही घातक न था, नैतिक दृष्टि से भी वह भारतवासियों के अधिकाधिक पतन का कारण हुआ। भारतीय जीवन की सरलता और शुद्धता को भङ्ग करने ही में उस समय के धन-लोलुप अङ्गरेज़ व्यापारियों को अपना हित दिखाई देता था। सन् १८३२ की पार्लिमेण्टरी कमेटी के सामने जो गवाह पेश हुए उनमें से एक मिस्टर ब्रेकन ने अपने बयान में कहा—

---

compulsion the Indian workman had to divulge the manner of his bleaching and other trade secrets to Manchester. A costly work was prepared by the India House Department to enable Manchester to take twenty millions a year from the poor of India: copies were gratutously presented to Chambers of Commerce, and the Indian Raiyat had to pay for them. This may be political economy, but it is marvellously like something else."—Major J. B. Keith in the *Pioneer*, September 7, 1891.

"अब कलकत्ते में उन हिन्दोस्तानियों के अन्दर, जो शराब पर ख़र्च कर सकते हैं, तरह तरह की शराबें बहुत बड़ी मिक़दार में खपती हैं।"

इसी गवाह ने एक दूसरे प्रश्न के उत्तर में कहा—

"मैंने कलकत्ते के एक देशी दूकानदार से, जो वहाँ के बड़े से बड़े ख़ुर्दाफ़रोशों में से है, सुना है कि उसके शराबों, ब्राण्डी और बियर, के ग्राहकों में से अधिकांश ग्राहक हिन्दोस्तानी हैं।"

इस गवाह से पूछा गया कि—हिन्दोस्तानियों को कौन सी शराब सब से ज्यादा पसन्द है ? उसने उत्तर दिया—शैम्पेन। फिर पूछा गया कि—क्या हिन्दोस्तानी पहले बिल्कुल शराब नहीं पीते थे ? उसने जवाब दिया—मैं समझता हूँ, बहुत ही कम। पूछा गया—क्या शराब पीना उनके धर्म के विरुद्ध नहीं है ? जवाब मिला—"मुझे नहीं मालूम कि उनके धर्म के विरुद्ध है या नहीं, किन्तु उनकी आदतों के विरुद्ध अवश्य है ; वे खुले तौर पर शराब नहीं पीते। किन्तु जब कभी पीते हैं तो उनका पीना धर्म के विरुद्ध हो या न हो उनके यहाँ के सामाजिक रिवाज के विरुद्ध अवश्य होता है।"*

---

* Mr Bracken before the Commons' Committee on 24th March, 1832—

"Liquors in Calcutta are now consumed in large quantities by natives who can afford to purchase them."

In answer to another question :—

"I heard from a native shopkeeper in Calcutta, who is one of the largest retail shopkeepers, that his customers for wines, and brandy, and beer, were principally natives."

Question.—What should you say was the favourite wine among the natives?

दूसरे अङ्गरेज गवाहों ने भी बड़े हर्ष के साथ बयान किया कि यूरोपियनों के संसर्ग द्वारा भारतवासियों में शराब पीने की आदत और यूरोप के ऐश आराम के तथा अन्य दिखावटी सामान खरीदने की आदत बढ़ती जाती है जिससे अङ्गरेजी व्यापार को लाभ है। निस्सन्देह भारतीयों को चरित्रभ्रष्ट करने में उस समय के विदेशी व्यापारी-शासकों का स्पष्ट लाभ था।

भारतीय उद्योग धन्धों का अन्त

अब हम इन समस्त प्रयत्नों के परिणामों की ओर नज़र डालते हैं। नीचे के अङ्कों से साबित है कि अपने इन प्रयत्नों में इङ्गलिस्तान के व्यापारी-शासकों को पूरी सफलता प्राप्त हुई।

सर चार्ल्स ट्रेवेलियन ने सन् १८३४ में प्रकाशित किया कि सन् १८१६ में जो सूती कपड़े बङ्गाल से विदेशों को गए उन का मूल्य १,६५,९४,३८० रुपए था। उसके बाद घटते घटते सन् १८३२ में केवल ८,२२,८९१ रुपए का कपड़ा बङ्गाल से बाहर गया। इसके विपरीत इङ्गलिस्तान का बना हुआ कपड़ा बङ्गाल के अन्दर

"Champaigne."

Question:—Formerly did they not consume any wine?

"Very little, I believe."

Question:—Is it not contrary to their religion?

"I do not know whether it is contrary to their religion, but it is contrary to their habits; . . . it is not done openly, but when done it is a violation of their custom rather than of their religion."

सन् १८१४ में केवल ४५,००० रुपए का आया; सन् १८१६ में ३,१७,६०२ रुपए का, और सन् १८२८ में ७९,९६,३८३ रुपए का केवल सूती कपड़ा इङ्गलिस्तान से बङ्गाल में आकर खपा। सन् १८२३ तक एक गज़ विदेशी सूत भी बङ्गाल के अन्दर न आता था; किन्तु सन् १८२८ में लगभग अस्सी लाख रुपए के कपड़े के अतिरिक्त ३५,२२,६४० रुपए का सूत इङ्गलिस्तान से बङ्गाल में आया।

सर चार्ल्स ट्रेवेलियन लिखता है कि सन् १८३३ तक एक करोड़ रुपए साल का विलायत का बाज़ार और लगभग ८० लाख रुपए का स्वयं बङ्गाल का बाज़ार बङ्गाल के कपड़ा बुनने वालों के हाथों से छीना जा चुका था। सर चार्ल्स ने अत्यन्त मर्म-स्पर्शी शब्दों में कहा कि—

"१,८०,००,००० रुपए सालाना की इस विशाल रक़म को पैदा करने में जितने लोग लगे हुए थे उनकी अब क्या हालत होगी?"*

गाँठों के हिसाब से सन् १८१४ में ३,८४२ गाँठें कपड़े की हिन्दोस्तान से इङ्गलिस्तान भेजी गईं। सन् १८२४ में १,८७८ और सन् १८२८ में केवल ४३३ गाँठें। यदि थानों की संख्या को देखा जाय तो सन् १८२४ में १,६७,५२४ थान कपड़े के हिन्दोस्तान से इङ्गलिस्तान गए और सन् १८२९ में केवल १३,०४३ थान।

इङ्गलिस्तान के बने हुए कुल सूती माल का दाम जो सन्

---

* "What is to become of all the people who were employed in working up this great annual amount (1,80,00,000 Rs.)."—Sir Charles Trevelyan, 1834.

१८१४ में भारतवर्ष आया १६,१५,३१५ रुपए था, सन् १८२८ में यह रक़म बढ़कर ३,०१,४६,६१५ रुपए तक पहुँच गई ; अर्थात् १४ वर्ष के अन्दर हिन्दोस्तान में आने वाले इङ्गलिस्तान के सूती माल की क़ीमत लगभग १९ गुनी बढ़ गई। ऊनी कपड़ा सन् १८१४ में इङ्गलिस्तान से हिन्दोस्तान केवल ६,७०,६८० रुपए का आया। उसी वर्ष कुल माल कपड़े, लोहा, ताँबा, शराब, काग़ज़, काँच इत्यादि मिलाकर इङ्गलिस्तान से हिन्दोस्तान ६,१४, ८७, ४७५ रुपए का आया। सन् १८३० में कुल माल इङ्गलिस्तान से हिन्दोस्तान ३०,११,००,३१० रुपए का आया, जिसमें से २,१३,८८,७७० रुपए का ऊनी माल और १३,१०,४३,२४० रुपए का सूती माल था।*

सन् १८३०—३२ की पार्लिमेण्टरी कमेटी के सामने जो गवाह पेश हुए उन्होंने एक स्वर से बयान किया कि हिन्दोस्तान के अन्दर लङ्काशायर के बने हुए कपड़ों की खपत में १५ वर्ष के अन्दर अपूर्व और आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है।

कपड़े का धन्धा किसी भी देश के उद्योग धन्धों में सदा सब से अधिक महत्वपूर्ण होता है। इसलिए हमने इसे इस अध्याय में इतना अधिक विस्तार दिया है। किन्तु जिस प्रकार कम्पनी द्वारा इस भारतीय धन्धे को नष्ट किया गया ठीक उसी प्रकार उस समय के अन्य अनेक उद्योग धन्धों के भी नाश का पता चलता है। उदा-

---

* Taken from Parliamentary Papers 1830—32, as quoted in Major B. D. Basu's *Ruin of Indian Trade and Industries*, pp. 70, 71 ; One pound being taken equal to Rs. 15.

हरण के लिए सर जॉर्ज वाट ने इङ्गलिस्तान के भारत-मन्त्री की आज्ञानुसार सन् १९०८ में "दी कमर्शियल प्राक्टस ऑफ़ इण्डिया" नामक एक पुस्तक प्रकाशित की थी, जिसमें लिखा है कि किसी समय हिन्दोस्तान की बनी हुई चीनी इङ्गलिस्तान जाया करती थी। इङ्गलिस्तान की सरकार ने उस पर इतना अधिक टैक्स लगाया कि जिससे धीरे धीरे उसका भेजा जाना बन्द होगया। सर जॉर्ज वाट का कथन है कि इस प्रकार जान बूझ कर हिन्दोस्तान के चीनी के धन्धे का नाश किया गया। आज कल कपड़े से उतर कर दूसरी चीज़, जिस पर भारत का सबसे अधिक धन विदेश चला जाता है, विदेशी चीनी ही है।

दूसरी बात इस पुस्तक में सर जॉर्ज वाट ने लिखा है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दिनों में भारत के अन्दर अनेक कारख़ाने काग़ज़ बनाने के थे। भारतीय काग़ज़ अधिकतर सन से बनाया जाता था। कम्पनी सरकार ने इसी तरह के प्रयत्नों द्वारा भारत के इस धन्धे का भी नाश कर दिया।

सर जॉर्ज वाट ने इसी पुस्तक में प्राचीन भारत के लोहे और फ़ौलाद के कारख़ानों का भी ज़िक्र किया है, और लिखा है कि ऐतिहासिक काल से पहले इस देश में बढ़िया से बढ़िया फ़ौलाद तैयार की जाती थी, जबकि यूरोप के किसी देश में इस तरह के कारख़ाने मौजूद न थे। विशेष कर दक्षिण भारत की तलवारें संसार भर में प्रख्यात थीं। किन्तु अङ्गरेज़ कम्पनियों को इस तरह के कारख़ानों का ठेका देकर तथा अन्य ज़बरदस्तियों द्वारा इस

भारतीय धन्धे का भी सर्वनाश कर दिया गया और लाखों भारतीय लोहारों तथा कोलों की जीविका का अन्त कर दिया गया।*

सन् १८३०—३२ की पार्लिमेण्टरी कमेटी के मेम्बरों ने बयान किया कि उस समय दो करोड़ पाउण्ड अर्थात् तीस करोड़ रुपए सालाना की आमदनी इङ्गलिस्तान के कारीगरों और मज़दूरों को भारत के व्यापार से हो रही थी। इसके बाद इङ्गलिस्तान की यह आय प्रति वर्ष बढ़ती चली गई और उसी औसत से पराधीन भारतवर्ष की दरिद्रता भी बढ़ती गई; यहाँ तक कि १९वीं शताब्दी के अन्त में भारत के प्रचीन उद्योग धन्धे इतिहास मात्र रह गए और जो देश लगभग सौ वर्ष पहले संसार का सबसे अधिक धनवान देश था वह सौ वर्ष के विदेशी शासन के परिणाम-स्वरूप संसार का सबसे अधिक निर्धन देश होगया।

---

* *Jungle Life in India*, by Valentine Ball, pp. 224—25.

तीसवाँ अध्याय

नैपाल-युद्ध

युद्ध का कारण

र्ड हेस्टिंग्स के शासन-काल का पहला राजनैतिक कार्य नैपाल-युद्ध था। पिछले अध्यायों में कहा जा चुका है कि अङ्गरेज़ों की उन दिनों एक मुख्य अभिलाषा यह थी कि भारतवर्ष के अन्दर ठीक उसी प्रकार अङ्गरेज़ों की बस्तियाँ आबाद की जायँ जिस प्रकार ऑस्ट्रेलिया, अफ़रीका, अमरीका आदि देशों में की जा चुकी थीं। इस तरह के अङ्गरेज़ी उपनिवेशों के लिए भारत के अन्दर सब से अधिक उपयोगी स्थान हिमालय की रमणीय घाटियाँ थीं। इसलिए देहरादून, कुमायूँ और गढ़वाल के इलाक़ों पर अङ्गरेज़ों के बहुत दिनों से दाँत थे। किन्तु ये सब ज़िले उस समय नैपाल के स्वाधीन साम्राज्य में शामिल थे। यही हेस्टिंग्स के नैपाल-युद्ध का वास्तविक कारण था। इससे कुछ वर्ष पहले भी महाराजा रणजीतसिंह को भड़का कर और उससे मदद का वादा करके

अङ्गरेज उसे गोरखों से लड़ा चुके थे।* प्रसिद्ध अङ्गरेज इतिहासज्ञ प्रोफ़ेसर एच० एच० विलसन लिखता है—

"किसी उत्तरीय (यूरोपियन) जाति के लोग केवल एक ऐसे प्रदेश और ऐसे जलवायु में ही जमा हो सकते हैं और बढ़ सकते हैं जो कि हिन्दोस्तान के गरम मैदानों की अपेक्षा यूरोपियन सङ्गठन के लिए अधिक अनुकूल हो, और जहाँ पर कि उनके स्वतन्त्रता से फैलने के लिए काफ़ी जगह हो; और यदि कभी भी पूरब में अङ्गरेज़ों के उपनिवेश किसी ऐसे स्थान पर क़ायम होंगे जहाँ अङ्गरेज़ों की अपनी नैतिक और शारीरिक शक्तियाँ ज्यों की त्यों बनी रह सकें, तो इसकी आशा हम केवल भारतीय एल्प्स (हिमालय) की पहाड़ियों और घाटियों में ही कर सकते हैं;—अर्थात् इस तरह के उपनिवेश जब कभी क़ायम होंगे, गोरखा युद्ध के प्रताप से ही क़ायम होंगे।"†

ज़ाहिर है कि भारत में अङ्गरेज़ी उपनिवेश बनाने के लिए इन पहाड़ी इलाक़ों की जरूरत थी और ये इलाक़े बिना युद्ध नैपाल से प्राप्त न हो सकते थे। किन्तु युद्ध का ज़ाहिरा कारण कुछ और बताया गया। सारन और गोरखपुर के ज़िलों में भारत तथा

* Cunningham's *History of the Sikhs.*

† "Under a climate more congenial to European organisation than the sultry plains of India, and with space through which they may freely spread, the descendants of a northern race may be able to aggregate and multiply; and if British Colonies be ever formed in the East, with a chance of preserving the moral and physical energies of the parent country, it is to the vales and mountains of the Indian Alps that we must look for their existence, it will be to the Gorkha War that they will trace their origin."—Mill's *History of British India*, vol. viii, pp. 59, 60.

वास्तव में झगड़ा कुछ जमींदारों और नैपाल के बीच था और इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यदि अङ्गरेज़ चाहते तो पहले झगड़ों के समान इस झगड़े का भी शान्ति के साथ निवटारा हो जाता।'

किन्तु इस बार हेस्टिंग्स की इच्छा कुछ दूसरी थी। हेस्टिंग्स के भारत पहुँचने से पहले इस तरह का एक झगड़ा मौजूद था, और उस झगड़े के फ़ैसले के लिए एक कमीशन भी नियुक्त था। इस कमीशन पर मेजर ब्रेडशा कम्पनी का वकील था। मालूम होता है मेजर ब्रेडशा को हेस्टिंग्स का इशारा मिल गया। मार्च सन् १८१४ में एक दिन अचानक और अकारण मेजर ब्रेडशा ने अपने साथ के नैपाली कमिश्नरों का अपमान कर डाला। प्रोफ़ेसर विलसन लिखता है—

"नैपाली कमिश्नर मेजर ब्रेडशा से मिलने आए, मेजर ब्रेडशा ने उनके साथ अशिष्ट भाषा का उपयोग किया; इस पर वे लोग चुप रह गए; और यह देख कर कि कोई काम उनके सामने पेश नहीं किया गया, उठ कर चले आए।"*

हेस्टिंग्स को बहाना मिल गया। जिस ज़मीन के विषय में झगड़ा था वह उस समय नैपाल के क़ब्ज़े में थी। हेस्टिंग्स ने बजाय मामले को तय करने के फ़ौरन् महाराज नैपाल को एक ज़ोरदार पत्र लिखा कि विवादग्रस्त भूमि तुरन्त ख़ाली कर दीजे। यह पत्र गोरखपुर के मैजिस्ट्रेट द्वारा नैपाल दरबार के पास भेजा गया।

* *History of British India*, by Mill and Wilson, vol. viii, p. 12, footnote

उसी दिन हेस्टिंग्स ने एक पत्र गोरखपुर के अङ्गरेज मैजिस्ट्रेट को लिखा कि यदि महाराजा नैपाल को पत्र भेजने के २५ दिन के अन्दर नैपाली उस जमीन को खाली न कर दें तो गोरखपुर से कम्पनी की सेना भेज कर उस भूमि पर जबरदस्ती क़ब्ज़ा कर लिया जाय।

छेड़छाड़

नैपाली समझ गए कि अङ्गरेज़ युद्ध के लिए कटिबद्ध हैं। नैपाली जाति एक वीर जाति है। उस समय तक अपने समस्त इतिहास में उन्हें कभी भी पराधीनता अथवा पराजय तक का सामना न करना पड़ा था। उन्होंने लड़ाई के इस आह्वान को स्वीकार कर लिया। तथापि उन्होंने अत्यन्त शिष्ट भाषा में गवरनर-जनरल के अशिष्ट पत्र का उत्तर दिया, जिसमें नैपाल दरबार ने अपनी ओर से मित्रता क़ायम रखने की इच्छा प्रकट की। उधर गोरखपुर के मैजिस्ट्रेट ने २५ दिन समाप्त होते ही विवादग्रस्त भूमि पर क़ब्ज़ा करने के लिए तीन कम्पनी गोरे सिपाहियों की रवाना कर दीं। गोरखे अभी तक इसके लिए तैयार न थे। वे अङ्गरेज़ी सेना का बिना विरोध किए पीछे हट गए। अङ्गरेज़ी सेना उस इलाक़े में कुछ थाने क़ायम करके वापस आगई। किन्तु अङ्गरेज़ी सेना अभी गोरखपुर पहुँची भी न थी कि २९ मई सन् १८१४ को सवेरे गोरखा सेना ने नए अङ्गरेज़ी थानों पर हमला करके उस इलाक़े पर फिर से क़ब्ज़ा कर लिया। अङ्गरेज़ों के लिए इस हमले का जवाब देना आवश्यक था। किन्तु हेस्टिंग्स के मार्ग में अभी दो

कठिनाइयाँ बाक़ी थीं। एक तो प्रिन्सेप के अनुसार गवरनर-जनरल चाहता था कि युद्ध के एलान से पहले जो अङ्गरेज़ उस समय नैपाल के साथ तिजारत कर रहे थे उन्हें अपनी पूँजी सहित वापस बुला लिया जाय। दूसरे निस्सन्देह इतने विशाल युद्ध के लिए काफ़ी धन की आवश्यकता थी।

नवाब अवध और नैपाल-युद्ध

जून सन् १८१४ में मार्किस ऑफ़ हेस्टिंग्स धन की तलाश में कलकत्ते से उत्तर-पूर्वीय प्रान्तों की ओर रवाना हुआ। कम्पनी की आर्थिक स्थिति उस समय ख़ासी गिरी हुई थी। कम्पनी की हुण्डियाँ बाज़ार में बारह फ़ीसदी बट्टे पर बिकती थीं। किन्तु कम्पनी और उसके अङ्गरेज़ अफ़सरों की पुरानी कामधेनु अवध का नवाब अभी तक मौजूद था। नवाब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर उस समय मसनद पर था। कहते हैं कि अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट मेजर बेली के बुरे व्यवहार के कारण नवाब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर ज़िन्दगी से बेज़ार हो रहा था। यहाँ तक कि गवरनर-जनरल के पास इसकी शिकायत पहुँची, और गवरनर-जनरल फ़ौरन् कलकत्ते से लखनऊ के लिए चल दिया।

स्वयं लॉर्ड हेस्टिंग्स ने १३ अक्तूबर सन् १८१४ के अपने निजी रोज़नामचे में लिखा है—

"नवाब-वज़ीर मेजर बेली के उद्धत प्रभुत्व के नीचे हर घण्टे आहें भरता था। उसे यह आशा थी कि मैं इस अन्याय से उसे छुटकारा दिला

दूँगा, किन्तु मैंने उसके ऊपर मेजर बेली के प्रभुत्व को रिवट लगा कर और भी अधिक पक्का कर दिया। मेजर बेली अत्यन्त छोटी से छोटी बातों में नवाब पर हुकूमत चलाता था। जब कभी मेजर बेली को नवाब से कुछ कहना होता था वह चाहे जिस समय बिना सूचना दिए नवाब के महल में जा धमकता था, अपने आदमियों को बड़ी बड़ी तनख़ाहों पर ज़बरदस्ती नवाब के यहाँ नौकर रखा देता था, और ये ही लोग नवाब के समस्त कार्यों की ख़बर देने के लिए मेजर बेली को जासूसों का काम देते थे। इस सब से बढ़ कर मेजर बेली जिस हाकिमाना शान के साथ हमेशा नवाब से बातचीत करता था उसके कारण उसने नवाब को उसके कुटुम्बियों और उसकी प्रजा तक की नज़रों में गिरा रक्खा था।"*

इस पर भी कहा जाता है कि नवाब ग़ाज़ीउद्दीन लॉर्ड हेस्टिंग्स से इतना ख़ुश हुआ कि अपनी "कृतज्ञता प्रकट करने के लिए"† उसने अङ्गरेज़ गवरनर-जनरल को ढाई करोड़ रुपए क़र्ज़ दे दिए।

---

* "Nawab-Vazier had reckoned on being emancipated from the imperious domination of Major Baillie under which His Excellency groaned every hour, but that I had riveted him in his position, Major Baillie dictated to him in the merest trifles, broke in upon him at his palace without notice, whensoever he (Major Baillie) had anything to prescribe, fixed his (Major Baillie's) creatures upon His Excellency with large salaries, to be spies upon all his actions; and above all, lowered His Excellency in the eyes of his family and his subjects by the magisterial tone which he constantly assumed."—*Private Journal of the Marquess of Hastings*, Panini Office, Allahabad, p. 97.

† "out of gratitude"

मेजर बर्ड ने विस्तार के साथ बयान किया है कि यह ढाई करोड़ की नई रक़म नवाब ग़ाज़ीउद्दीन को किस प्रकार सता सता कर और किस प्रकार की यातनाएँ दे देकर वसूल की गई।* इस यात्रा में ही हेस्टिंग्स ने नैपाल युद्ध के लिए अपनी विस्तृत योजना तैयार की, और लखनऊ से ही पहली नवम्बर सन् १८१४ को नैपाल के साथ युद्ध का बाज़ाब्ता एलान कर दिया।

युद्ध की विशाल तैयारी

नैपाल का राज्य कम्पनी के राज्य से कहीं छोटा था। दोनों राज्यों के बीच पञ्जाब में सतलज नदी से लेकर बिहार में कोशी नदी तक लगभग ६०० मील की लम्बी सरहद थी। युद्ध का एलान करने से पहले गवरनर-जनरल ने इस सरहद के पाँच अलग अलग स्थानों से पाँच सेनाओं द्वारा नैपाल पर हमला करने का प्रबन्ध कर लिया। इन पाँच सेनाओं का बटवारा इस प्रकार किया गया—

(१) सबसे पहली सेना करनल ऑक्टरलोनी के अधीन लुधियाने में नियुक्त की गई। यह वही ऑक्टरलोनी था जिसका ज़िक्र पहले कई बार आ चुका है, जो दिल्ली में मुसलमानी तर्ज़ से रहता था, और जिसने अनेक हिन्दोस्तानी रण्डियाँ रख रक्खी थीं, जिनसे वह गुप्तचरों का काम लिया करता था। ऑक्टरलोनी के अधीन लगभग छै हज़ार हिन्दोस्तानी पैदल और तोपख़ाने के सैनिक थे।

---

* *Dacoitee in Excelsis or Spoliation of Oudh, by the East India Company*, by Major Bird, chap. iv, pp. 58-76.

यह सेना सतलज के निकट की पहाड़ियों पर से नैपाल पर हमला करने के लिए थी।

(२) दूसरी सेना मेजर-जनरल जिलैस्पी के अधीन मेरठ में थी, जिसका काम देहरादून, गढ़वाल, श्रीनगर और नाहन पर हमला करना था। इस सेना में लगभग एक हज़ार गोरे सिपाही और ढाई हज़ार देशी पैदल थे।

(३) तीसरी सेना मेजर-जनरल वुड के अधीन बनारस और गोरखपुर में जमा की गई। इस सेना में लगभग एक हज़ार गोरे और तीन हज़ार देशी सिपाही थे। इसका काम बूटवाल के रास्ते पाल्पा में प्रवेश करना था।

(४) चौथी सेना मेजर-जनरल मॉरले के अधीन मुर्शिदाबाद से जमा की गई। इस में ९०७ गोरे और लगभग ७००० देशी सिपाही थे। नैपाल पर हमला करने के लिए यही मुख्य सेना थी। इस का काम गण्डक और बागमती के बीच के दर्रों से होकर नैपाल की राजधानी काठमण्डू पर हमला करना था।

(५) पाँचवीं सेना और अधिक पूरब में कौशी नदी के उस पार मेजर लैटर के अधीन जमा की गई। इस सेना में लगभग दो हज़ार सिपाही थे। मेजर लैटर का मुख्य कार्य पूर्निया की सरहद की रक्षा करना और सिकिम के राजा को नैपाल के विरुद्ध अपनी ओर फोड़ना था।

इस प्रकार अङ्गरेज़ सरकार ने तीस हज़ार सेना मय तोपों आदिक के नैपाल पर हमला करने के लिए तैयार कर ली। इस

सेना के मुक़ावले के लिए नैपाल दरवार मुश्किल से १२ हज़ार सेना जमा कर सका। धन भी नैपाली अङ्गरेज़ों के मुक़ावले में खर्च न कर सकते थे, न उनके हथियार इतने वढ़िया थे, और न वे कूटनीति में अङ्गरेज़ों की टक्कर के थे।

वीरवल भद्रसिंह

सवसे पहले मेजर-जनरल जिलैस्पी की सेना ने नैपाल की सरहद के अन्दर प्रवेश किया। नाहन तथा देहरादून दोनों उस समय नैपाल के राज्य में थे। नाहन का राजा अमरसिंह थापा नैपाल दरवार का एक प्रसिद्ध सेनापति था और अमरसिंह थापा का भतीजा सेनापति वलभद्रसिंह केवल ६०० आदमियों सहित देहरादून की रक्षा के लिए नियुक्त था। अङ्गरेज़ी सेना के आने की ख़वर पाते ही वलभद्रसिंह ने वड़ी शीघ्रता के साथ देहरादून से क़रीव साढ़े तीन मील दूर नालापानी की सव से ऊँची पहाड़ी के ऊपर कलङ्गा नाम का एक छोटा सा दुर्ग खड़ा कर लिया। वलभद्रसिंह के आदमी अभी वड़े वड़े क़ुदरती पत्थरों और जङ्गली लकड़ियों की सहायता से इस दुर्ग की चहारदीवारी तैयार कर ही रहे थे कि जिलैस्पी की सेना का अधिकांश भाग करनल मॉवी के अधीन २४ अक्तूवर को देहरादून पहुँच गया। लिखा है कि 'खेरी के ज़मींदारों' और 'वहादुरसिंह के वेटे राना जीवनसिंह' ने देहरादून तक पहुँचने में अङ्गरेज़ों को वहुत मदद दी। जिलैस्पी स्वयं कुछ पीछे रह गया। हमें स्मरण रखना चाहिए कि इसके आठ दिन के वाद १ नवम्वर को हेस्टिंग्स ने नैपाल के साथ वाज़ाव्ता युद्ध का एलान किया।

तथापि सेनापति बलभद्रसिंह ने इस अवसर पर अपने से नौ गुनी और कहीं अधिक सन्नद्ध अङ्गरेज़ी सेना का अपने नाम मात्र के दुर्ग में जिस वीरता के साथ मुक़ाबला किया, वह वीरता संसार भर के इतिहास में सदा के लिए स्मरणीय रहेगी।

कलङ्गा के दुर्ग के अन्दर बलभद्रसिंह के पास केवल तीन सौ सिपाही और तीन सौ ही स्त्रियाँ और बच्चे थे। करनल मॉबी को विश्वास था कि बलभद्रसिंह उस छोटे से अधकचरे दुर्ग के अन्दर, मुट्ठी भर आदमियों के सहारे, अङ्गरेज़ी सेना के मुक़ाबले का साहस न करेगा। २४ अक्तूबर की रात को मॉबी ने बलभद्रसिंह को लिख भेजा कि दुर्ग अङ्गरेज़ों के हवाले कर दो। बलभद्रसिंह ने मॉबी के दूत के सामने पत्र को पढ़ कर फाड़ डाला और उसी दूत की ज़बानी अङ्गरेज़ी सेना को तुरन्त युद्ध के लिए आमन्त्रित किया।

२५ तारीख़ को सवेरे करनल मॉबी अपनी सेना सहित नालापानी की तलहटी में जा पहुँचा। दुर्ग के चारों ओर तोपें लगा दी गईं। दुर्ग के भीतर से नैपाली बन्दूक़ों की गोलियाँ बराबर अङ्गरेज़ी तोपों का जवाब देती रहीं। मॉबी ने जब देखा कि शत्रु को वश में कर सकना इतना सरल नहीं है, तो उसने जनरल जिलैस्पी को ख़बर दी। जिलैस्पी उस समय सहारनपुर में था। २६ अक्तूबर को जिलैस्पी नालापानी पहुँचा। तीन दिन जिलैस्पी को तैयारी में लगे। उसके बाद उसकी आज्ञानुसार चारों ओर से चार अङ्गरेज़ी पलटनों ने एक साथ दुर्ग पर हमला किया। एक ओर की पलटन करनल कारपेण्टर के, दूसरी ओर की कप्तान फ़ास्ट के, तीसरी

ओर की मेजर कैली के, और चौथी ओर की कप्तान कैम्पबेल के अधीन थी। एक पाँचवीं पलटन मेजर लडलो के अधीन खास जरूरत के समय के लिए पीछे रखी गई।

चारों ओर से ज़ोरों के साथ कलङ्गा के दुर्ग पर गोलेबारी शुरू हुई। अङ्गरेजी तोपों ने बलभद्रसिंह के केवल तीन सौ बहादुरों में से अनेकों को खेत कर दिया। तथापि दुर्ग के भीतर से बन्दूकों की गोलियाँ लगातार तोप के गोलों का जवाब देती रहीं; और अङ्गरेजी सेना में से जो योधा बार बार दुर्ग तक पहुँचने की कोशिश करते थे उन्हें हर बार वहीं पर खत्म करती रहीं। कप्तान बन्सीटार्ट लिखता है कि गोलियों की इस बौछार में अनेक बार साफ़ दिखाई दिया कि नैपाली स्त्रियाँ बेधड़क चहारदीवारी पर खड़ी होकर वहाँ से शत्रुओं के ऊपर पत्थर फेंक रही थीं; यहाँ तक कि बाद में दीवार के खण्डहरों में अनेक स्त्रियों की लाशें मिलीं। अङ्गरेजी सेना ने अनेक बार ही दुर्ग की दीवार तक पहुँचने के प्रयत्न किए, किन्तु ये सब प्रयत्न निष्फल गए। इन में अनेक ही अङ्गरेजी अफ़सरों और सिपाहियों की जानें गईं। इन्हीं में से एक प्रयत्न में मेजर-जनरल जिलैस्पी ने भी कलङ्गा की दीवार के नीचे अपने प्राण दिए।

जिलैस्पी की मृत्यु वास्तव में अत्यन्त करुणाजनक थी। उसका मुख्य कारण गोरे सिपाहियों की कायरता थी। इतिहास-लेखक विलसन लिखता है कि बार बार की हार से चिढ़कर जनरल जिलैस्पी स्वयं तीन कम्पनियाँ गोरे सिपाहियों को साथ लेकर दुर्ग

के फाटक की ओर बढ़ा। दुर्ग के अन्दर से गोलियों और पत्थरों की बौछार शुरू होते ही ये तीन सौ गोरे सिपाही पीछे हट गए। वीर जिलैस्पी अकेला आगे बढ़ा। उसने अपनी नङ्गी तलवार घुमा कर और ललकार कर अपने सिपाहियों को आगे बुलाना चाहा। किन्तु व्यर्थ! इतने ही में एक गोली दुर्ग के फाटक से ३० गज़ पर जिलैस्पी की छाती में आकर लगी। जिलैस्पी वहीं पर ढेर होगया।

लिखा है कि कलङ्गा के ठीक फाटक के ऊपर गोरखों की एक तोप थी जिसकी आग से होकर शत्रु को आगे बढ़ने की हिम्मत न होती थी। गोरखों की पैनी तीरों ने भी अङ्गरेज़ी सेना के अन्दर भयङ्कर संहार जारी कर रक्खा था। इसके अतिरिक्त विलियम्स साफ़ लिखता है कि गोरखे इस भयङ्कर वीरता के साथ दुर्ग की रक्षा कर रहे थे कि अङ्गरेज़ी सेना को दुर्ग की दीवार तक बढ़ने का साहस न होता था। भारत के अन्दर प्रायः प्रत्येक ऐसे ख़तरे के अवसर पर अङ्गरेज़ सिपाहियों ने हद दरजे की कायरता का परिचय दिया है। भरतपुर के मुहासरे के समय के उनके लज्जास्पद व्यवहार को इस पुस्तक में एक दूसरे स्थान पर वर्णन किया जा चुका है।

जिलैस्पी की मृत्यु के बाद थोड़ी देर के लिए सेना का नेतृत्व फिर करनल मॉबी के हाथों में आया। मॉबी ने मुहासरे को जारी रखने की अपेक्षा अब जल्दी से पीछे हट आने में ही अधिक बुद्धिमत्ता समझी। पीछे हट कर उसने इस बार सहायता के लिए दिल्ली पत्र लिखा। एक महीने में और अधिक फ़ौज और तोपें दिल्ली से देहरादून पहुँचीं। २५ नवम्बर को फिर एक बार अङ्गरेज़ी सेना ने

आगे बढ़ कर कलङ्गा के दुर्ग को विजय करने का प्रयत्न किया, किन्तु इस बार भी उन्हें पूर्ववत् हार खाकर पीछे हट जाना पड़ा। मुहासरा अब जारी रहा और अङ्गरेजी तोपें बराबर रात और दिन दुर्ग के ऊपर गोलों की वर्षा करती रहीं।

इस बीच दुर्ग के अन्दर पानी का काल पड़ गया। पानी वहाँ नीचे की पहाड़ियों के कुछ झरनों से जाता था। ये झरने इस समय अङ्गरेजी सेना के हाथों में थे, और अङ्गरेजों ने दुर्ग के अन्दर पानी का जाना बिलकुल बन्द कर दिया था। बलभद्रसिंह और उसके बचे हुए साथियों की हालत इस समय वास्तव में अत्यन्त करुणाजनक थी। अङ्गरेजी तोपों के गोले दुर्ग के भीतर लगातार अपना काम कर रहे थे। इस बौछार में जख़्मियों की चीख़ें और पानी की एक एक बूँद के लिए स्त्रियों और बच्चों की तड़पन और इस सब पर एक छोटा सा नाम मात्र का दुर्ग जिसके चारों ओर की दीवारों में सूराख हो चुके थे, तथा दुर्ग के बाहर असंख्य शत्रु। शत्रु के गोलों की शायद वे इतनी परवा न करते, किन्तु पानी की प्यास ने उन्हें लाचार कर दिया।

तीस नवम्बर को सवेरे, जब कि अङ्गरेजी तोपों से गोलेबारी बराबर जारी थी और उनके जवाब में गोरखा बन्दूकों की गोलियाँ भी लगातार अपना काम कर रही थीं, एकाएक दुर्ग के अन्दर की बन्दूकें और कमानें चन्द मिनिट के लिए शान्त होगईं। अचानक दुर्ग का लोहे का फाटक खुला।

अङ्गरेज समझे कि बलभद्रसिंह अब हमारी अधीनता स्वीकार

कर लेगा। किन्तु उन्हें धोखा हुआ। शायद अब भी शत्रु की अधीनता स्वीकार करने का विचार तक वीर बलभद्रसिंह अथवा उसके साथी गोरखों के चित्त में न आया होगा। कलङ्गा के भीतर के लगभग ६०० प्राणियों में से ७० उस समय तक जिन्दा बचे थे, जिनमें कुछ स्त्रियाँ भी थीं। ये सब प्यास से बेताब थे। दुर्ग का फाटक खुलते ही ये ७० गोरखे स्त्री और पुरुष नङ्गी तलवारें हाथों में लिए, बन्दूकें कन्धों पर रक्खे, कमर से खुकरियाँ लटकाए, सरों पर फौलादी चक्र लपेटे, वीर बलभद्रसिंह के नेतृत्व में शान्ति और शान के साथ फाटक से बाहर निकले। बलभद्रसिंह का शरीर सीधा, चेहरा हँसता हुआ और चाल एक सच्चे सिपाही की तरह नपी हुई थी। पेश्तर इसके कि अङ्गरेज अफ़सर यह समझ सकें कि क्या हो रहा है, बलभद्रसिंह अङ्गरेजी सेना के बीच से रास्ता काटता हुआ अपने ७० साथियों सहित नालापानी के झरनों पर पहुँचा। जी भर कर उन सब ने चश्मों का ताजा पानी पिया, और फिर वहाँ से ललकार कर कहा—"दुर्ग को विजय कर सकना किसी की मजाल न थी, किन्तु अब मैं अपनी इच्छा से दुर्ग छोड़ता हूँ।"*

इसके बाद शत्रु के देखते देखते एक क्षण भर के अन्दर बलभद्रसिंह और उसके साथी पास की पहाड़ियों में गुम होगए।

जिस समय अङ्गरेज दुर्ग के भीतर पहुँचे वहाँ सिवाय मुर्दों,

---

* ". . . On abandoning his strong-hold, the Gorkha Leonidas triumphantly exclaimed in a loud voice; 'to capture the fort was a thing forbidden, but now I leave it of my own accord.' "—*Memoir of Dehra Dun*, by G. R. C. Williams.

औरतों और बच्चों की लाशों के और कुछ न था। कप्तान वन्सीटार्ट लिखता है कि इस दुर्ग के मुट्ठी भर संरक्षकों ने अङ्गरेजों की पूरी एक डिवीज़न सेना को एक महीने से ऊपर तक रोके रक्खा।* जनरल जिलैस्पी को मिला कर अङ्गरेजों के ३१ अफ़सर और ७१८ सिपाही इस संग्राम में काम आए। अंङ्गरेजों ने कलङ्गा के दुर्ग पर क़ब्ज़ा करते ही उसे ज़मीन से मिला कर बराबर कर दिया। इस समय उस स्थान पर साल वृक्षों का एक घना जङ्गल है। आर० सी० विलियम्स इस घटना के सम्बन्ध में लिखता है—"कलङ्गा के दुर्ग की रक्षा का इस प्रकार अन्त हुआ। यह रक्षा का कार्य वीर से वीर जाति के इतिहास को अलङ्कृत करने वाला था और उस वीरता के साथ उसका सम्पादन किया गया जो लगभग हमारी अपनी पराजयों की ज़िल्लत को धोने के लिए काफ़ी था।"† देहरादून के जङ्गलों में रीचपाना नदी के किनारे अभी तक एक छोटा सा स्मारक बना हुआ है जिस पर खुदा हुआ है—"हमारे वीर शत्रु बलभद्रसिंह और उसके वीर गोरखों की स्मृति में सम्मानोपहार × × ×।"‡

---

* *Notes on Nepal*, by Captain Vansittart.

† "Such was the conclusion of the defence of Kulunga, a feat of arms worthy of the best days of chivalry, conducted with a heroism almost sufficient to palliate the disgrace of our own reverses."—G. R. C. Williams' *Memoir of Dehra Dun*.

‡ ". . . As a tribute of respect for our gallant adversary Balabhadra Singh . . . And his brave Gorkhas . . .".

वलभद्रसिंह कलङ्गा से निकल कर अपने आदमियों सहित एक दूसरे नैपाली दुर्ग जौंतगढ़ की रक्षा के लिए पहुँच गया।

जौंतगढ़ में मेजर वेलडॉक ने एक हज़ार सेना सहित दुर्ग पर हमला किया। वलभद्रसिंह के पास पाँच सौ से कम सैनिक थे। तथापि विलियम्स लिखता है कि अङ्गरेज़ी सेना को ज़िल्लत के साथ हार खाकर पीछे हट जाना पड़ा। बलभद्रसिंह इसके बाद जौंतगढ़ की रक्षा का काम केवल साठ आदमियों को सौंप कर अपने शेष आदमियों सहित जयटक के दुर्ग की रक्षा के लिए पहुँचा।

साज़िशें

कम्पनी के अफ़सर समझ गए कि केवल सेना और तोपों के बल बिना अपने सुपरिचित "गुप्त उपायों" के गोरखों को जीत सकना असम्भव है। कलङ्गा के दुर्ग पर क़ब्ज़ा करने के बाद करनल मॉबी ने अपने एक मातहत करनल कारपेण्टर को जमना नदी के दाहिनी ओर नैपाल के इलाक़े में भेजा, इसलिए कि वह वहाँ की पहाड़ी क़ौमों को भड़का कर नैपाल दरबार के विरुद्ध उनसे विद्रोह करवा दे। इतिहास-लेखक विलसन लिखता है कि करनल कारपेण्टर के प्रयत्नों से जौनसर इलाक़े की प्रजा बग़ावत कर बैठी, जिसके कारण बैराठ के दुर्ग की मुट्ठी भर गोरखा सेना को दुर्ग छोड़ कर पीछे हट जाना पड़ा। करनल मॉबी स्वयं सिरमौर की राजधानी नाहन पहुँचा। सिरमौर नैपाल की एक सामन्त रियासत थी। हाल में नैपाल दरबार ने सिरमौर के पुराने

राजा को किसी अपराध में गद्दी से उतार कर अमरसिंह थापा को वहाँ का शासन सौंप दिया था। अमरसिंह थापा उस समय श्रीनगर के दुर्ग की रक्षा के लिए नियुक्त था। अमरसिंह का पुत्र रणजूर-सिंह नाहन में था। करनल मॉबी ने अमरसिंह की अनुपस्थिति में पदच्युत राजा को अपनी ओर फोड़ लिया। अमरसिंह ने अपने पुत्र रणजूरसिंह को आज्ञा दी कि तुम नाहन छोड़ कर कुछ दूर उत्तर की ओर जयटक के दुर्ग में आ जाओ और आस पास की पहाड़ियों को अपनी सेना से घेर लो। जयटक के दुर्ग में रणजूर-सिंह के अधीन लगभग दो हज़ार नैपाली सेना थी। २० दिसम्बर सन् १८१४ को जनरल जिलैस्पी की जगह जनरल मारटिण्डल उस ओर की अङ्गरेज़ी सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त हुआ। २५ को जनरल मारटिण्डल ने अपनी समस्त सेना सहित जयटक के दुर्ग पर हमला किया। वीर बलभद्रसिंह भी उस समय जयटक के दुर्ग में मौजूद था। मारटिण्डल की सेना दुर्ग की नैपाली सेना से कई गुनी थी।

अङ्गरेज़ों की हारें

मारटिण्डल कलङ्गा के दुर्ग की कहानी सुन चुका था। उसे पता लगा कि जयटक के दुर्ग के अन्दर पीने का पानी नीचे के कुछ कुओं से जाता है। उसने अपनी मुख्य सेना को दो अलग अलग दलों में बाँट कर एक मेजर लडलो के अधीन और दूसरा मेजर रिचर्ड्स के अधीन दो ओर से इन कुओं को घेर लेने के लिए भेजा। किन्तु गोरखों ने इन दोनों सैन्यदलों को बुरी तरह

परास्त किया। और मेजर लडलो तथा मेजर रिचर्ड्स दोनों को अपने अनेक अफ़सर तथा सैकड़ों सिपाही मैदान में छोड़ कर और अनेक शत्रु के हाथों क़ैद करा कर पीछे लौट आना पड़ा। प्रोफ़ेसर विलसन लिखता है कि इस हार के बाद जनरल मारटिण्डल को जयटक के क़िले पर दोबारा हमला करने का साहस न हो सका। जनरल जिलैस्पी वाली सेना की कहानी यहीं पर समाप्त हो जाती है। कुल जितनी सेना मेरठ से रवाना हुई थी उसमें से एक तिहाई इस समय तक खत्म हो चुकी थी।

दो और सेनाएँ, जिनमें लगभग बारह हज़ार सिपाही थे, गोरखपुर और बिहार में जमा की गई थीं। इन दोनों सेनाओं का कार्य पूर्व की ओर से नैपाल में प्रवेश करके राजधानी काठमण्डू पर हमला करना था। किन्तु इन दोनों दलों को और भी अधिक लज्जास्पद पराजयों का सामना करना पड़ा। अनेक स्थानों पर नैपाली सेना के साथ इन के संग्राम हुए, और हर संग्राम में बुरी तरह हार खाकर इन्हें पीछे हट जाना पड़ा। इन दोनों विशाल सैन्यदलों के कई अङ्गरेज़ सेनापति इतने अयोग्य और कायर साबित हुए कि गवरनर-जनरल को उन्हें बरख़ास्त कर देना पड़ा। अभी तक जितने युद्ध अङ्गरेज़ों ने भारत में लड़े थे, उनमें शायद सबसे अधिक प्रचण्ड और रक्तमय यह नैपाल-युद्ध ही था। इस युद्ध में पद पद पर नैपालियों ने अपने शत्रुओं से कहीं बढ़ कर वीरता और युद्ध-कौशल का परिचय दिया। हमें इस युद्ध के समस्त संग्रामों को विस्तार से बयान करने की आवश्यकता

नहीं है। इतिहास-लेखक प्रिन्सेप पूर्वोक्त दोनों सेनाओं की पराजयों के विषय में लिखता है—

"अवध की सरहद से लेकर रङ्गपुर तक गोरखों ने हमारी सेनाओं को वन के उस पार जाने से पूरी तरह रोके रक्खा; जब कि वे बेधड़क हमारे इलाक़े में घुस आते थे और हम कुछ न कर पाते थे, और देश भर में हमारे विरुद्ध ख़ूब बढ़ बढ़ कर अफ़वाहें उड़ी हुई थीं।"*

अमरसिंह और ऑक्टरलोनी

चौथी सेना ऑक्टरलोनी के अधीन लुधियाने में थी। पाँचों मुख्य सेनापतियों में केवल एक ऑक्टरलोनी ही ऐसा था जिसने किसी न किसी अंश में सफलता प्राप्त की। ऑक्टरलोनी पाश्चात्य कूटनीति में प्रवीण था, और इस कूटनीति द्वारा ही उसने थोड़ी बहुत सफलता प्राप्त की।

ऑक्टरलोनी नैपाल की सबसे अधिक पश्चिमी सरहद पर था। सतलज के पास से उसने नैपाली इलाक़े में प्रवेश किया। सतलज के बाएँ किनारे से तीन अलग अलग पंक्तियाँ पहाड़ियों की शुरू होती हैं। इन तीनों पर गोरखों ने नालागढ़, रामगढ़ और मालम नाम के तीन क़िले बना रक्खे थे। इन क़िलों के बीच में और उनके पार कई छोटी छोटी रियासतें थीं जो सब नैपाल के

* "From the frontier of Oudh to Rangpur, our armies were completely held in check on the outside of the forest; while our territory was insulted with impunity and the most extravagant alarms spread through the country."—Prinsep's *History of the Political and Military Transactions in India, etc.*

अधीन थीं। जनरल ऑक्टरलोनी ने पहले इन रियासतों को अपनी ओर फोड़ना शुरू किया।

३१ अक्तूबर सन् १८१४ को ऑक्टरलोनी अपनी सेना लेकर इन पहाड़ियों पर चढ़ा। २ नवम्बर को उसने नालागढ़ के दुर्ग के सामने तोपें लगा दीं। नालागढ़ और उसके पास तारागढ़ के दुर्गों में मुशकिल से ५०० गोरखा सिपाही थे। ऑक्टरलोनी की सेना लगभग ६ हज़ार थी। चार दिन के प्रयत्न के बाद ६ नवम्बर को ये दोनों दुर्ग ऑक्टरलोनी के हाथों में आगए। इसके बाद १३ नवम्बर को ऑक्टरलोनी रामगढ़ की ओर बढ़ा। रामगढ़ में बलभद्र-सिंह का चचा सुप्रसिद्ध सेनापति अमरसिंह कुछ कम तीन हज़ार सेना सहित ऑक्टरलोनी के मुक़ाबले के लिए मौजूद था। ऑक्टर-लोनी के पास उस समय कम से कम सात हज़ार सेना थी। तथापि अमरसिंह ने अपने तीन हज़ार सैनिकों से अङ्गरेज़ों के सात हज़ार सैनिकों को न केवल दुर्ग से बाहर ही रोके रक्खा, वरन् कई बार स्वयं दुर्ग से निकल कर उन्हें ज़बरदस्त शिकस्त दी और दूर तक खदेड़ दिया। इतिहास-लेखक प्रिन्सेप लिखता है कि इन विजयों के समय भी गोरखों ने पराजित शत्रु के साथ उस उदारता का व्यवहार किया जो एशियाई क़ौमों का एक विशेष गुण है। उन्होंने अङ्गरेज़ों को अपने मुरदे मैदान से ले जाने और उन्हें दफ़न करने इत्यादि की पूरी इजाज़त दे दी। प्रिन्सेप तथा अन्य यूरोपियन लेखकों के अनुसार गोरखे इस समस्त युद्ध में शत्रु की ओर इससे भी बढ़ कर वीरोचित उदारता का परिचय देते रहे।

गवरनर-जनरल के नाम ऑक्टरलोनी के एक पत्र से मालूम होता है कि इस समय ऑक्टरलोनी को अपनी सफलता में भारी सन्देह हो गया। तथापि वह नैपाल दरबार के विरुद्ध आस पास के पहाड़ी राजाओं के साथ साजिशों में लगा रहा। इन राजाओं में सबसे पहले उसने हिन्दुर (नालागढ़) के राजा रामसरन को अपनी ओर फोड़ा। कनिङ्घम ने अपने सिखों के इतिहास में लिखा है कि राजा रामसरन की सहायता उस समय अङ्गरेजों के लिए सब से अधिक लाभदायक सिद्ध हुई। रामसरन ने ऑक्टरलोनी को आदमियों और रसद दोनों की मदद दी। राजा रामसरन ही ने अपने आदमियों से अङ्गरेज़ों की तोपों के जाने के लिए मकराम से नाहर तक सड़क बनवा दी। दूसरा पहाड़ी राजा, जिसे ऑक्टरलोनी ने अपनी ओर फोड़ा, अमरसिंह का एक सम्बन्धी बिलासपुर का राजा था। इसके अतिरिक्त गवरनर-जनरल ने ऑक्टरलोनी का पत्र पाते ही और अधिक सेना उसकी सहायता के लिए भेज दी।

इस प्रकार ऑक्टरलोनी के पास अब एक तो अमरसिंह से दुगुनी से अधिक सेना थी, दूसरे उसने नैपाल राज्य के सामन्तों और वहाँ की प्रजा को भी झूठे लोभ दे देकर अमरसिंह के विरुद्ध फोड़ लिया।

इस सब के होते हुए भी नवम्बर सन् १८१४ से अप्रेल सन् १८१५ तक अर्थात् तमाम सरदी भर ऑक्टरलोनी ने अमरसिंह की सेना पर जितनी बार हमले किए उतनी बार ही उसे हार खाकर

पीछे हट जाना पड़ा। इतिहास-लेखक प्रिन्सेप ने इन तमाम लड़ाइयों में अमरसिंह की वीरता और उसके युद्ध-कौशल की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

नैपालियों की ओर इस समय सब से बड़ी कमी इस बात की रही कि गोरखा सेनापतियों का केवलमात्र लक्ष्य अपने इलाक़े की रक्षा करना था। उन्होंने एक बार भी आगे बढ़ कर अङ्गरेज़ी इलाक़े पर हमला करने का इरादा न किया। इसका कारण चाहे यह रहा हो कि संख्या में, धन में तथा युद्ध के सामान में वे अङ्गरेज़ों से कम थे और उन्हें आगे बढ़ने का साहस न हो सका, अथवा यह कि वे वृथा रक्तपात के विरुद्ध थे, किन्तु इस से अङ्गरेज़ों को अपने "गुप्त उपायों" के लिए काफ़ी समय मिल गया।

कुमायूँ और गढ़वाल

पश्चिम में ऑक्टरलोनी की साज़िशें जारी रहीं और पूरब में मेजर लैटर ने, जो पाँचवीं सेना का प्रधान सेनापति था, सिकिम के राजा को नैपाल के विरुद्ध अपनी ओर कर लिया, और उसकी मदद से नैपाल के मोराङ्ग प्रान्त पर क़ब्ज़ा कर लिया।

गवरनर-जनरल को इस समय पता लगा कि नैपाल की सरहद का सब से अधिक नाज़ुक हिस्सा कुमायूँ और गढ़वाल की ओर का है। कुमायूँ का प्रान्त उस समय नैपाल के अधीन चौतरा बामशाह नामक एक सूबेदार के शासन में था। गवरनर-जनरल ने करनल गार्डनर को चौतरा बामशाह के साथ साज़िश करने के लिए नियुक्त किया। इस गार्डनर ने सन् १७९८ में होलकर के यहाँ नौकरी की

थी, और विश्वासघात के अपराध में होलकर के यहाँ से निकाला जा चुका था। गार्डनर ने इसलाम की विधि के अनुसार एक मुसलमान स्त्री के साथ निकाह कर रक्खा था। साज़िशें करने में वह ऑक्टरलोनी के समान सिद्धहस्त था। गार्डनर की मदद के लिए एक और अङ्गरेज डॉक्टर रथरफ़ोर्ड को नियुक्त किया गया, जो गढ़वाल और कुमायूँ में कम्पनी का व्यापारिक एजण्ट और मुरादाबाद में सिविल सर्जन रह चुका था। लिखा है कि डॉक्टर रथरफ़ोर्ड ने तमाम कुमायूँ और गढ़वाल भर में अनेक पण्डितों, देशी सिपाहियों तथा अन्य लोगों को तनख़ाहें दे देकर उनसे जासूसों का काम लिया। कुछ इतिहास-लेखकों की राय है कि नैपाल युद्ध के अन्त में अङ्गरेजों की सफलता का सब से अधिक श्रेय ऑक्टर-लोनी और डॉक्टर रथरफ़ोर्ड, इन दो सज्जनों को ही मिलना चाहिए। गार्डनर और रथरफ़ोर्ड दोनों को पूरी सफलता हुई। कुमायूँ और गढ़वाल के मातहत शासक और वहाँ की अधिकांश प्रजा नैपाल दरबार के विरुद्ध अङ्गरेजों से मिल गई, और अन्त में अप्रेल सन् १८१५ में थोड़ी सी सेना करनल निकोलस के अधीन भेज कर बिना अधिक रक्तपात के हेस्टिंग्स ने कुमायूँ और गढ़वाल दोनों पर क़ब्ज़ा कर लिया। निस्सन्देह अवध के ढाई करोड़ रुपयों ने इस काम में हेस्टिंग्स को ख़ूब मदद दी।

इस प्रकार नैपाली साम्राज्य के दो सबसे अधिक उर्वर प्रान्त केवल रिशवतों के बल उस साम्राज्य से तोड़ लिए गए। नैपाल दरबार के लिए यह एक जबरदस्त धक्का था।

जो शर्तें पेश कीं उनको स्वीकार करना किसी भी आत्म-सम्मानी नरेश के लिए सम्भव न था। संक्षेप में वे शर्तें ये थीं—

जितने इलाक़े पर अङ्गरेज़ों ने इस समय तक क़ब्ज़ा कर लिया है वह सब और उसके अलावा नैपाली सरहद के बराबर और बहुत सा इलाक़ा अङ्गरेज़ों को दे दिया जाय, काठमण्डू में एक अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट दल बल सहित रहा करे और बिना अङ्गरेज़ों की इजाज़त के नैपाल दरबार न किसी यूरोपनिवासी को अपने यहाँ आने दे और न नौकर रक्खे, इत्यादि।

महाराजा नैपाल ने गवरनर-जनरल से इन शर्तों पर फिर विचार करने की प्रार्थना की, किन्तु व्यर्थ। इस बीच गवरनर-जनरल बराबर तमाम सरहद पर फ़ौजें बढ़ाता रहा। सेनापति अमरसिंह ने मार्च सन् १८१५ में, जब कि लड़ाई जारी थी, अपने स्वामी महाराजा नैपाल के नाम एक पत्र लिखा जिससे अमरसिंह की नीतिज्ञता और वीरता दोनों का परिचय मिलता है। इस पत्र में अमरसिंह ने महाराजा नैपाल को सलाह दी कि—"अङ्गरेज़ों पर किसी तरह का विश्वास न किया जाय, नैपाल के सामन्तों के साथ साज़िशें करके ये लोग सदा नैपाल को निर्बल करने के प्रयत्न करते रहेंगे, काठमण्डू में अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट को स्थायी तौर पर रहने की इजाज़त देना अत्यन्त ख़तरनाक है, इससे धीरे धीरे नैपाल के ऊपर 'सबसीडीयरी' सेना का लादा जाना और अन्त में नैपाल का पराधीन हो जाना अनिवार्य हो जायगा।" भरतपुर के राजा, टीपू सुलतान इत्यादि की मिसालें देकर अमरसिंह ने महाराजा नैपाल को सलाह

दी कि—"नैपाल के अन्दर अङ्गरेज़ों को रिआयतें देकर सुलह करने की अपेक्षा मरदाना वार लड़ते रहने में देश का अधिक हित है ।" इत्यादि ।*

इसमें सन्देह नहीं कि अमरसिंह ने उस समय के अङ्गरेज़ों के चरित्र को पूरी तरह समझ लिया था । एक ओर अङ्गरेज़ गवरनर-जनरल की असम्भव माँगें, दूसरी ओर अमरसिंह जैसों की सलाह और नैपालियों का स्वाभाविक आत्म-सम्मान, परिणाम यह हुआ कि सात महीने से ऊपर युद्ध बन्द रहने के बाद जनवरी सन् १८१६ में नए सिरे से अङ्गरेज़ों और नैपालियों के बीच युद्ध शुरू हो गया । किन्तु दोनों पक्ष थक चुके थे, इस बार मुशकिल से दो महीने युद्ध जारी रह सका ।

अन्त में मार्च सन् १८१६ में दोनों पक्षों के बीच सन्धि हो गई, जिसमें नैपाल की स्वाधीनता क़ायम रही, किन्तु नैपालियों की भावी राजनैतिक आकांक्षाओं को एक ओर से चीनी साम्राज्य और तीन ओर से ब्रिटिश साम्राज्य के बीच परिमित कर दिया गया । नैपाल का कुछ दक्षिणी हिस्सा, जिसकी वार्षिक आय लगभग एक करोड़ रुपए की थी, अङ्गरेज़ी इलाक़े में मिला लिया गया और एक अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट नैपाल की राजधानी में रहने लगा ।

लिखा है कि इस सन्धि के बाद बलभद्रसिंह ने अपने मुट्ठी भर साथियों सहित महाराजा रणजीतसिंह के यहाँ जाकर नौकरी

* Prinsep, vol. i, p. 192.

कर ली, और रणजीतसिंह तथा अफ़ग़ानों के एक संग्राम में लड़ते लड़ते अपने प्राण दिए।

यद्यपि इस युद्ध द्वारा नैपाली साम्राज्य का एक अङ्ग उससे तोड़ लिया गया और बहुत दिनों तक अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट के कारण नैपाली राजधानी के अन्दर नई तरह की साज़िशों और दल-बन्दियों का एक सिलसिला जारी रहा ;* तथापि नैपालियों की स्वाभाविक वीरता, नैपाल के अन्दर अङ्गरेज़ों की अनेक कठिनाइयों और नैपालियों के भारत के अनुभव से शिक्षा ग्रहण करने के कारण अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट के पैर नैपाल में जमने न पाए, और न सन् १८१६ से आज तक नैपाली साम्राज्य की स्वाधीनता अथवा देशफल में किसी तरह का ज़ाहिरा अन्तर पड़ने पाया।

लगभग १०० वर्ष के बाद सन् १९१२ में १८१४—१६ के नैपाल युद्ध का सिंहावलोकन करते हुए एक अङ्गरेज़ अफ़सर करनल शेक्सपीयर ने नैपालियों की वीरता, उनकी सुजनता और उनकी उदारता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है, और अन्त में अमरसिंह थापा की बुद्धिमत्ता का ज़िक्र करते हुए लिखा है—

"अमरसिंह ने अत्यन्त गम्भीरता के साथ उस समय नैपाल दरबार ऊपर इस बात के लिए ज़ोर दिया कि जिस तरह भी हो सके, अङ्गरेज़ों को नैपाल से बाहर रक्खा जाय। यह बात ध्यान देने योग्य है कि अमरसिंह की इस नीति पर नैपाल में आज तक बराबर अमल किया जाता है ; और

* *History of Nepal*, by Dr. Daniel Wright, p. 54.

कौन यह कहने का साहस कर सकता है कि अमरसिंह की सलाह बुद्धिमत्तापूर्ण न थी ?"*

---

* "It is also worthy of note that Amar Singh's policy of keeping out the English at all costs from Nepal, so gravely impressed by him on Durbar then, is still kept up; and who shall say that he was not wise?"—Colonel L. W. Shakespeare, in the *United Service Journal* for October, 1912.

इकतीसवाँ अध्याय

हेस्टिंग्स के अन्य कृत्य

इस अध्याय में हम लॉर्ड हेस्टिंग्स के शासन-काल की कुछ छोटी छोटी घटनाओं को वर्णन करना चाहते हैं। इनमें सब से पहली घटना कच्छ की स्वाधीनता का अपहरण थी।

कच्छ

कच्छ सिन्ध के दक्षिण और काठियावाड़ के पश्चिम तथा उत्तर में एक छोटी सी स्वाधीन रियासत थी। अभी तक जाड़ेजा कुल के राजपूत राव कच्छ पर शासन करते हैं। लॉर्ड हेस्टिंग्स ने इस रियासत की स्वाधीनता को अपहरण कर लेने का इरादा किया। बहाना ढूँढ़ लेना कुछ भी कठिन न था। डकै-तियाँ उन दिनों भारत में जगह जगह होती रहती थीं। कहा जाता है कि नैपाल युद्ध के दिनों में कच्छ के कुछ डाकुओं ने काठियावाड़ के किसी हिस्से पर डाका डाला। काठियावाड़ के राजा पेशवा और गायकवाड़ के सामन्त थे, और पेशवा और गायकवाड़ दोनों

सन्धियों द्वारा कम्पनी सरकार के मित्र थे। बस, कच्छ पर हमला करने के लिए यही काफ़ी वजह समझी गई। करनल ईस्ट के अधीन एक सेना कच्छ पर चढ़ाई करने के लिए भेजी गई। कच्छ जैसी छोटी सी रियासत को विजय कर लेना कम्पनी के लिए अधिक कठिन न था। करनल ईस्ट ने थोड़ी सी लड़ाई के बाद अञ्जार के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया। इसके बाद कच्छ के राजपूत राजा को डराया गया कि सिन्ध के मुसलमान अमीर तुम पर हमला करने वाले हैं और यदि तुमने अङ्गरेज़ कम्पनी के संरक्षण में आना स्वीकार न किया तो अङ्गरेज़ तुम्हारे विरुद्ध सिन्ध के अमीरों को मदद देने पर मजबूर हो जायँगे। इस विचित्र न्याय के औचित्य पर बहस करने की आवश्यकता नहीं है, और न यह बताने की आवश्यकता है कि कच्छ पर सिन्ध के हमले की बात सर्वथा झूठ थी। लाचार होकर सन् १८१६ में कच्छ के राव ने कम्पनी के साथ सन्धि कर ली। पश्चिमी भारत में अङ्गरेज़ों का प्रभाव बढ़ गया, और उसी दिन से कच्छ की स्वाधीनता का ख़ात्मा होगया।

हाथरस और मुरसान

लगभग इतनी ही छोटी कहानी हाथरस और मुरसान नामक जाट रियासतों की है। गङ्गा और जमना के बीच की जाट रियासतें इस समय तक स्वाधीन थीं। इनमें मुख्य भरतपुर की रियासत थी, जिसे परास्त करने के प्रयत्न में लॉर्ड लेक दो बार ज़िल्लत उठा चुका था। लॉर्ड हेस्टिंग्स को तीसरी बार भरतपुर के साथ युद्ध

छेड़ने में बुद्धिमत्ता दिखाई न दी। किन्तु दोआब के जाट राजाओं और वहाँ की प्रजा के दिलों से कम्पनी की ज़िल्लत को दूर करना भी ज़रूरी था। इसलिए लॉर्ड हेस्टिंग्स ने हाथरस और मुरसान की छोटी छोटी रियासतों पर हमला करके उन्हें अपने अधीन कर लेना आवश्यक समझा।

इतिहास-लेखक प्रिन्सेप साफ़ लिखता है कि हाथरस पर हमला करने के लिए अङ्गरेज़ों के पास कोई भी बहाना न था। हाथरस का क़िला हिन्दोस्तान के खासे मज़बूत क़िलों में गिना जाता था। ११ फ़रवरी सन् १८१७ को अचानक कम्पनी की सेना ने पहुँच कर चारों ओर से हाथरस के क़िले को घेर लिया। हाथरस के राजा दयाराम से कहा गया कि चूँकि हाथरस का क़िला उसी नमूने का है, जिस नमूने का कि भरतपुर का, इसलिए गवरनर-जनरल की इच्छा है कि अङ्गरेज़ अफ़सरों को हाथरस का क़िला भीतर से देखने की इजाज़त दी जाय, ताकि उसके बाद वे फिर आवश्यकता पड़ने पर भरतपुर के क़िले को विजय करने का प्रयत्न कर सकें। राजा दयाराम भरतपुर के प्रसिद्ध राजा रणजीतसिंह का एक निकट सम्बन्धी था। उसने इस अनुचित माँग को पूरा करने से इनकार कर दिया। राजा से यह भी कहा गया कि आप क़िले का एक दरवाज़ा अङ्गरेज़ों के हवाले कर दें और उन्हें उस दरवाज़े को ढाने की इजाज़त दे दें। राजा दयाराम अङ्गरेज़ों के इरादे को समझ गया। उसने कम्पनी के किसी भी आदमी को क़िले के अन्दर आने की इजाज़त न दी। वह

अपने मुट्ठी भर आदमियों सहित क़िले की रक्षा के लिए तैयार हो गया।

किन्तु राजा दयाराम के पास न कम्पनी का सा सामान था और न उतनी विशाल सेना। हाथरस के क़िले और नगर दोनों के ऊपर गोलेबारी शुरू हुई। २३ फ़रवरी को एक ओर से नगर की दीवार का कुछ टुकड़ा टूटा। दूसरी मार्च को कहा जाता है कि किसी अङ्गरेज़ी तोप का एक गोला क़िले के भीतर बारूद के मेग-ज़ीन में जाकर पड़ा, जिससे मेगज़ीन में आग लग गई और क़िले को बहुत बड़ी हानि हुई। मालूम होता है, इस क़िले के अन्दर भी कम्पनी के 'गुप्त उपाय' अपना कुछ काम कर चुके थे। तथापि क़िले के अन्दर की तोपें बराबर अङ्गरेज़ी तोपों का जवाब देती रहीं। किन्तु कब तक? अन्त में जब राजा दयाराम ने देख लिया कि अधिक देर तक कम्पनी की सेना से क़िले को बचा सकना असम्भव है तो एक दिन आधी रात को अपने दो चार साथियों सहित क़िले से बाहर निकल गया। मार्ग में कुछ गोरे सिपाहियों ने उसे घेर लिया, किन्तु उनका खात्मा करता हुआ राजा दयाराम अङ्गरेज़ी सेना के हाथों से बच कर अपनी राजधानी छोड़ कर निकल गया।

हाथरस का क़िला अङ्गरेज़ों के हाथों में आ जाने के बाद मुरसान के राजा भगवन्तसिंह की हिम्मत और भी टूट गई। कहा जाता है कि उसने बिना लड़े अपना क़िला तथा राज्य दोनों अङ्गरेज़ों के सुपुर्द कर दिए। इस प्रकार हाथरस तथा मुरसान की जाट रियासतें कम्पनी के इलाक़े में मिला ली गईं।

अवध तथा दिल्ली सम्राट

नैपाल युद्ध के खर्च के लिए ढाई करोड़ रुपए नक़द अवध के नवाव से लिए गए थे। उस ढाई करोड़ के वदले में नवाव को कुछ देना भी आवश्यक था। जो इलाक़ा नैपाल से लिया गया उसका एक टुकड़ा हेस्टिंग्स ने इन ढाई करोड़ के वदले में नवाव ग़ाज़ीउद्दीन हैदर की भेंट कर दिया। इस टुकड़े के विषय में लिखा है कि वह इतना वञ्जर था कि यदि नवाव ग़ाज़ीउद्दीन केवल एक करोड़ रुपए से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हिस्से ख़रीद लेता तो जो आमदनी उसे इन हिस्सों से होने लगती उसका छठा हिस्सा भी इस नए नैपाली इलाक़े से प्राप्त न हो सकता था।*

मार्किस ऑफ़ हेस्टिंग्स अवध के नवाव को और भी वढ़ाना चाहता था। इसका एक मात्र कारण यह था कि अङ्गरेज़ उस समय दिल्ली सम्राट के रहे सहे प्रभाव को अन्त कर देने के लिए उत्सुक थे। अवध का नवाव दिल्ली सम्राट का एक सूवेदार और मुग़ल दरवार का वज़ीर था। हेस्टिंग्स ने अक्तूबर सन् १८१९ में लखनऊ में एक दरवार करवा कर नवाव ग़ाज़ीउद्दीन हैदर को वाज़ाब्ता 'वादशाह' का ख़िताव दिया। इसका मतलव यह था कि अवध का नवाव अव से दिल्ली सम्राट के अधीन नहीं रहा। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि न था कि नवाव की अपनी स्वाधीनता वास्तव में कुछ वढ़ गई हो। ग़ाज़ीउद्दीन को 'वादशाह' स्वीकार करने से पहले गवरनर-जनरल ने उससे यह साफ़ शर्त

* *Dacoitee in Excelsis etc*, by Major Bird.

कर ली थी कि कम्पनी के साथ आपके सम्बन्ध में इससे कोई अन्तर न पड़ने पाएगा। वास्तव में इस हास्योत्पादक घटना से उस समय के अवध के नवाबों की बेबसी का खासा परिचय मिलता है।

सम्राट अकबरशाह दूसरा उस समय दिल्ली के तख्त पर था। सम्राट की ओर लॉर्ड हेस्टिंग्स के भावों का और अधिक पता हेस्टिंग्स के २२ जनवरी सन् १८१५ के रोज़नामचे से लगता है। उस समय तक यह प्रथा चली आती थी कि प्रायः प्रत्येक गवरनर-जनरल दिल्ली जाकर सम्राट से भेंट करता था। अङ्गरेज़ दिल्ली सम्राट को भारत का सम्राट और स्वयं कम्पनी सरकार का न्याय्य अधिराज स्वीकार करते थे। सम्राट के साथ पत्र-व्यवहार करने, मिलने तथा बातचीत करने में समस्त अङ्गरेज़ अफ़सर प्राचीन मान मर्यादा का पालन करते थे। लिखा है कि सम्राट अकबरशाह ने हेस्टिंग्स को मिलने के लिए दिल्ली बुलाना चाहा। सम्राट का उद्देश सम्भवतः उन अनेक वादों की याद दिलाना था जो हेस्टिंग्स के पूर्वाधिकारियों ने अपने मतलब के लिए सम्राट शाहआलम से किए थे। किन्तु हेस्टिंग्स ने यह कह कर जाने से इनकार किया कि मुझे मुलाक़ात में ऐसे नियमों के पालन करने में एतराज़ है, जिनका अर्थ यह हो कि दिल्ली सम्राट कम्पनी सरकार का अधिराज है। इस एतराज़ का कारण हेस्टिंग्स ने अपने रोज़नामचे में इस प्रकार दर्ज किया है। वह लिखता है—

"हमारा यह स्वीकार कर लेना कि दिल्ली का बादशाह हमारा न्याय्य

अधिराज है, एक ऐसे अस्तित्व को क़ायम रखना है कि जिसके झण्डे के नीचे कभी भी चारों ओर से मुसलमान आ आ कर जमा हो सकते हैं। ऐसा करना ख़तरनाक है।"*

निस्सन्देह हेस्टिंग्स का 'ख़तरा' सच्चा था। इसके केवल ४२ वर्ष के बाद ही न केवल मुसलमानों, बल्कि भारत के हिन्दू और मुसलमान दोनों ने दिल्ली सम्राट के झण्डे के नीचे जमा होकर एक बार भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य के अस्तित्व को ख़तरे में डाल दिया।

---

* "It is dangerous to uphold for the Musalmans a rallying point, sanctioned by our own acknowledgment that a just title to supremacy exists in the King of Delhi . . ."—*Private Journal of the Marquess of Hastings*, 22nd January, 1815.

बत्तीसवाँ अध्याय

तीसरा मराठा युद्ध

हेस्टिंग्स की नीति

नेपाल युद्ध के समाप्त होते ही लॉर्ड हेस्टिंग्स की साम्राज्य-पिपासा और अधिक बढ़ गई। हेस्टिंग्स ने ६ फ़रवरी सन् १८१४ के निजी रोज़नामचे में अपनी उस समय की नीति को इस प्रकार वर्णन किया है—

"हमारा उद्देश यह होना चाहिए कि यदि ज़ाहिरा तौर पर नहीं, तो कम से कम व्यवहार में अङ्गरेज़ सरकार को इस देश का अधिराज बना दिया जाय। देश की बाक़ी रियासतें यदि कहने के लिए न भी सही तो भी वास्तव में हमारी सत्ता के अधीन हमारे सामन्तों की तरह रहनी चाहिएँ; × × × एक तो उन सब का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि जिस समय उन्हें बुलाया जाय वे अपनी तमाम सेनाओं सहित अङ्गरेज़ सरकार की मदद करें। दूसरे जब कभी उन रियासतों में कोई आपसी झगड़े हों, वे बिना एक दूसरे पर हमला किए उन झगड़ों को हमारी सरकार के सामने पेश करें × × × यदि दिल्ली के दरबार को अपने अधिराज होने का कोई दावा है तो उस दावे

को नष्ट करना भी हमारी इस योजना का निस्सन्देह एक अङ्ग होगा। इस योजना को पूरा करने के लिए समय तथा उचित परिस्थिति की आवश्यकता है।"*

बात यह थी कि नैपाल युद्ध के साथ साथ कम्पनी की आर्थिक कठिनाई बहुत दरजे दूर हो चुकी थी। ढाई करोड़ की रक़म, जो नैपाल युद्ध के लिए अवध के नवाब से ली गई थी, कुछ खर्च हो चुकी थी और कुछ शायद अभी तक बाक़ी थी। इसके अतिरिक्त नैपाल का जो इलाक़ा कम्पनी को मिला था उसे युद्ध समाप्त होते ही कम्पनी के अफ़सरों ने जी भर कर लूटा। इस लूट के अतिरिक्त कम्पनी की सालाना आमदनी में भी नए इलाक़े के कारण लगभग एक करोड़ वार्षिक की वृद्धि हो चुकी थी। हेस्टिंग्स के पास अब नई सेनाएँ जमा करने और कम्पनी की साम्राज्य-पिपासा को शान्त करने के लिए काफ़ी धन मौजूद था।

भारत के अन्दर सब से बड़ी ताक़त, जिसे अपने अधीन

---

* "Our object ought to be, to render the British Government paramount in effect, if not declaredly so. We should hold the other states as vassals, in substance, though not in name. . . First, they should support it with all their forces in any call. Second, they should submit their mutual differences to the head of the confederacy (our Government) without attacking each other's territories. . . . The completion of such a system, which must include the extinction of any pretention to pre-eminence in the Court of Delhi, demands time and favourable coincedences." —*Private Journal of the Marquess of Hastings*, February 6th, 1814, p. 30.

करना अथवा जिसके उर्वर प्रान्तों को कम्पनी के साम्राज्य में मिलाना इस समय आवश्यक था, मराठों की ताक़त थी। इस लिए सब से पहले मराठों ही की ओर हेस्टिंग्स का ध्यान गया। नैपाल युद्ध से छुटकारा पाते ही उसने पेशवा, भोंसले, सींधिया तथा होलकर की सरहदों के बराबर बराबर विशाल सेनाएँ जमा करनी शुरू कर दीं। इस समस्त तैयारी के वास्तविक उद्देश को मराठा नरेशों से छिपाए रखने के लिए बहाना यह लिया गया कि यह सब केवल पिण्डारियों की लूट मार से अङ्गरेज़ी इलाक़े की रक्षा करने के लिए किया जा रहा है। किन्तु हेस्टिंग्स का वास्तविक उद्देश देर तक छिपा न रह सका।

पिण्डारियों का दमन

हेस्टिंग्स की तैयारी और तीसरे मराठा युद्ध की प्रगति को वर्णन करने से पहले इस स्थान पर पिण्डारियों और उनके दमन के विषय में कुछ कहना आवश्यक है। ऊपर एक अध्याय में लिखा जा चुका है कि पिण्डारी दक्षिण की एक वीर, युद्ध-प्रेमी जाति थी, जो शिवाजी के समय से लेकर १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक मराठा नरेशों की सेना का एक विशेष और महत्वपूर्ण अङ्ग बनी रही।

उस समय के अनेक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों ने पिण्डारियों को डाकू, लुटेरे, हत्यारे और निर्दय बयान किया है। किन्तु इतिहास से पता चलता है कि पिण्डारियों का पेशा डकैती न था और न वे स्वभाव से निर्दय थे। ऊपर लिखा जा चुका है कि ये लोग

अधिकतर नर्वदा के किनारे किनारे रहते थे, और ईमानदारी के साथ परिश्रम करके अपना तथा अपने बाल बच्चों का पेट भरते थे। शान्ति के समय ये लोग खेती वाड़ी करके टट्टू तथा बैलों पर माल लाद कर उसे बेच कर अपना गुज़ारा करते थे और युद्ध के समय मराठा नरेशों के यहाँ जाकर उनकी सेना में शामिल हो जाते थे। इतिहास-लेखक मैलकम लिखता है—

"मलहरराव होलकर और तुकाजी होलकर के समय में पिण्डारियों को × × × प्रति मनुष्य चार आने रोज़ दिए जाते थे; और इसके अतिरिक्त वे अपने टट्टुओं और बैलों पर नाज, चारा और लकड़ी लाद कर अपना गुज़ारा करते थे। इन चीज़ों के लिए पिण्डारी बाज़ार एक बड़ी मण्डी होता था।"*

उस समय के चार आने इस समय के लगभग ढाई रुपए के बराबर हैं।

यही अङ्गरेज लेखक पिण्डारियों के स्वभाव के विषय में लिखता है—

"यह एक विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि × × × जो असंख्य क़ैदी पिण्डारियों के हाथों में आते थे, जिन क़ैदियों में कि पुरुष और स्त्री और हर आयु के लोग शामिल होते थे, उनसे यद्यपि पिण्डारी सेवा का काम लेते थे, उन्हें अपने सरदारों को दे देते थे और उनके रिश्तेदारों से रुपए लेकर उन्हें छोड़ भी देते थे; तथापि वे कभी किसी क़ैदी को गुलाम बना कर दूसरों के हाथ न बेचते थे, और न बआरों की तरह कभी गुलामों के क्रय-विक्रय का काम करते थे।"

---

* Malcoim's *Report on Centeral India*, vol. i, p. 436.

प्रोफ़ेसर विलसन ने यह भी लिखा है कि—"आम तौर पर पिण्डारी लोग वीर होने के अतिरिक्त ईमानदार और वफ़ादार भी होते थे, और जिन जिन ग्रामों से वे गुज़रते थे उनमें अपने व्यवहार के कारण इतने सर्वप्रिय हो जाते थे कि बाद में गाँव वाले उनके विरुद्ध किसी तरह की ख़बर देने अथवा मदद देने के लिए हरगिज़ राज़ी न होते थे।"

हम एक पिछले अध्याय में दिखा चुके हैं कि स्वयं कम्पनी के अफ़सरों ही ने इन वीर पिण्डारियों को उत्तेजना तथा धन दे देकर उनसे अनेक बार अपने मराठा स्वामियों के साथ विश्वासघात कराया और देशी नरेशों के इलाक़ों को लुटवाया। पिण्डारियों का इस प्रकार का उपयोग उन दिनों कम्पनी के अफ़सरों की एक साधारण नीति थी। किन्तु अङ्गरेज़ों के संसर्ग से पहले न पिण्डारियों का कभी डकैती पेशा था, न वे स्वभाव से निर्दय थे, और न उन्होंने कभी अपने मराठा स्वामियों के साथ विश्वासघात किया था।

पिण्डारी आम तौर पर मराठा नरेशों के सब से अधिक वीर तथा वफ़ादार अनुयायी थे। यही कारण है कि लॉर्ड हेस्टिंग्स मराठों पर तीसरी बार हमला करने से पहले पिण्डारी जाति को विध्वंस कर देना चाहता था। अपने इस कार्य को न्याय्य ठहराने के लिए कहा गया कि पिण्डारी लोग कम्पनी और उसके मित्रों के इलाक़ों में निरन्तर लूटमार करते रहते हैं। पिण्डारियों की लूट मार और उनकी निर्दयता के अनेक क़िस्से चारों ओर फैलाए गए, जिनमें से अधिकांश झूठे और कल्पित थे।

जब कि उस समय कम्पनी के अफ़सरों ने अनेक बार ही मराठों तथा राजपूतों और विशेष कर जयपुर इत्यादि के इलाक़ों को पिण्डारियों को उकसा कर उनसे लुटवाया, दूसरी ओर पिण्डारियों के कम्पनी के इलाक़े पर हमला करने की केवल दो ख़ास मिसालें मिलती हैं। एक सन् १८०८—१८०९ में, जब कि पिण्डारियों ने गुजरात के किसी भाग पर धावा किया; और दूसरे सन् १८१२ में, जब कि उन्होंने मिरज़ापुर और शाहाबाद में कुछ लूट मार की। किन्तु इन दोनों बार अङ्गरेज़ों ने कोई विशेष प्रयत्न उनके विरुद्ध नहीं किया। यदि डकैतियों से प्रजा की रक्षा करना ही लॉर्ड हेस्टिंग्स का वास्तविक उद्देश होता तो ब्रिटिश भारत के अन्दर उन दिनों असंख्य डाकू अपने भयङ्कर कृत्यों से ब्रिटिश भारतीय प्रजा को दुखी कर रहे थे, जिसका वृत्तान्त एक पिछले अध्याय में दिया जा चुका है। लॉर्ड हेस्टिंग्स ने उन डाकुओं को दमन करने का कभी कोई उपाय नहीं किया।

पिण्डारियों से झगड़ा मोल लेने के लिए अक्तूबर सन् १८१५ में मेजर फ़्रेज़र ने निस्सन्देह गवरनर-जनरल की आज्ञा से बिना किसी कारण पिण्डारियों के एक जत्थे पर हमला कर दिया। इस पर बिरझाकर पिण्डारियों ने कृष्णा नदी के किनारे किनारे समस्त अङ्गरेज़ी इलाक़े में ख़ूब लूटमार की। इसके बाद पिण्डारियों तथा अङ्गरेज़ों के अनेक संग्राम हुए, जिन्हें विस्तार से वर्णन करना अनावश्यक है। पिण्डारियों के अलग अलग जत्थे होते थे, जो 'दुर्रे' या 'लब्बर' कहलाते थे। जब तक ये समस्त दुर्रे

मेल से कार्य करते रहे, अङ्गरेजों के लिए उन्हें जीत सकना असम्भव दिखाई दिया। किन्तु ज्योंही कम्पनी की कूटनीति के कारण विविध पिण्डारी दुरों के अन्दर फूट फैल गई, ये दुरें एक एक कर बरबाद होगए। जो पिण्डारी सरदार अपने साथियों के साथ विश्वासघात करके अङ्गरेज़ों से मिल गए, उन्हें कम्पनी की ओर से हज़ारों रुपए सालाना की जागीरें दे दी गईं। जो अपनी आन पर डटे रहे अथवा जिन्होंने मराठा नरेशों के साथ विश्वास-घात करने से इनकार किया वे या तो युद्ध में मारे गए अथवा जङ्गलों में चीतों का शिकार हुए। इस प्रकार धीरे धीरे कम्पनी के प्रति-निधियों ने उन वीर पिण्डारियों के अस्तित्व को मिटा डाला, जिनका अपने साम्राज्य-निर्माण के कार्य में वे हाल ही में सीढ़ी की तरह उपयोग कर चुके थे।

युद्ध की तैयारी

किन्तु लॉर्ड हेस्टिंग्स ने तमाम मराठा साम्राज्य की सरहद के बराबर बराबर इस समय एक लाख से ऊपर सेना जमा कर ली थी। यह विशाल तैयारी केवल तीस हज़ार पिण्डारियों के दमन के लिए ही न थी। इस तैयारी के विषय में इतिहास-लेखक सर जॉन के ने लिखा है—

"हमारी सैनिक तैयारियाँ इतने ज़बरदस्त पैमाने पर थीं × × ×

"पाठक को चाहिए कि भारत का कोई सा नक़शा अपने सामने रख ले, और सोचे कि कृष्णा और गङ्गा नदियों के बीच में कितनी लम्बी और विस्तृत भूमि है। इसके बाद दक्खिण-पश्चिम में पूना से लेकर उत्तर-पूर्व में

कानपुर तक नज़र डाले ; मुख्य मुख्य देशी दरबारों की जगहों को ध्यान में रक्खे, और फिर उन विशाल सेनाओं की कल्पना करे जो तीनों बड़े बड़े प्रान्तों से चुन कर ली गई थीं, और जो हिन्दोस्तान और दक्षिण दोनों को घेरते हुए और पिण्डारी जत्थों तथा स्वाधीन रियासतों दोनों को एक साथ अपने जाल में लपेटते हुए, इस विस्तृत भू-भाग के ऊपर फैलती जा रही थीं। वास्तव में, उस समय के (अङ्गरेज़ राजनैतिक) शिकारी इसे भारत के राजों, महाराजों का एक ज़बरदस्त आखेट समझते थे ; और यदि वे राजा महाराजा भी इस मामले को लगभग इसी दृष्टि से देखते थे और यह समझते थे कि बहुत दिनों तक आराम करने के बाद, फ़िरङ्गी लोग अब फिर एक ज़बरदस्त युद्ध के लिए तैयारी कर रहे हैं और अपनी समस्त विशाल सैनिक शक्तियों को लगा कर देशी रियासतों को पृथ्वी पर से मिटा देने का एक व्यापक प्रयत्न करने वाले हैं, तो हमें उनके ऐसा समझने पर आश्चर्य नहीं हो सकता।

"मराठे जाग उठे। वे पहले से बेचैन थे ही। अब वे सशङ्क हो गए।× × ×

"मुझे मालूम होता है कि पेशवा और बरार के राजा का यही हाल हुआ। हमारी सेनाओं के जमा होने और बढ़ने से वे चौंक गए। उन्हें विश्वास न हुआ कि ये ज़बरदस्त सैनिक तैयारियाँ केवल पिण्डारियों को वश में करने के लिए की जा रही हैं। उन्होंने सोचा कि जिस युद्ध को स्वयं गवरनर-जनरल एक विशाल सेना लेकर अपने नेतृत्व में चला रहा है, उसका शुरू में और ज़ाहिरा उद्देश चाहे कुछ भी हो, किन्तु अन्त में वह युद्ध स्वाधीन मराठा रियासतों के विरुद्ध लड़ा जायगा। और उनका यह सन्देह बेबुनियाद न था। पिण्डारियों के दमन के बाद ही नए मराठा युद्ध

की सम्भावना पर बड़े बड़े सरकारी पत्र व्यवहार हो रहे थे, और हमारी छावनियों में इस विषय की बातचीत होती रहती थी। राजनीतिज्ञ लोग कौन्सिल की मेज़ पर बैठ कर सञ्जीदगी के साथ इस विषय की बहसें करते थे, और सिपाही लोग खाने की मेज़ पर बैठ कर खुश हो होकर इसकी पेशीनगोइयाँ करते थे। × × × निस्सन्देह हम यह आशा नहीं कर सकते कि जिस समय हम अपनी तोपों में गोले भर कर, उनके मुँह पर बारूद रख कर, जलता हुआ फ़लीता हाथ में लिए खड़े हों, उस समय तमाम दुनिया अपनी तोपें उतार कर अलग कर दे।"*

एक दूसरा अङ्गरेज़ लेखक लिखता है—

"सन् १८१७ की गर्मी और पतझड़ के दिनों में विविध सेनाएँ अपनी अपनी जगह जमा हुईं। एक ज़बरदस्त सेना स्वयं लॉर्ड हेस्टिंग्स के नेतृत्व में लगभग ३४,००० स्थायी सैनिकों की थी। इस सेना की तीन डिवीज़नें की गईं और शेष कुछ सेना बचा कर रिज़र्व में रक्खी गई। तीन डिवीज़नों में से एक आगरे में, दूसरी कालपी के नज़दीक जमना के किनारे सिकन्दरे में, और तीसरी कलिञ्जर बुन्देलखण्ड में; और बाक़ी सेना दिल्ली के दक्षिण-पश्चिम रेवाड़ी में नियुक्त की गई।

"दक्खन की सेना लेफ़्टेनेण्ट-जनरल सर टॉमस हिसलप के अधीन पाँच डिवीज़नों और एक रिज़र्व में बाँटी गई; जिसमें ५७,००० स्थायी सैनिक थे। यह सेना इस प्रकार नियुक्त की गई कि हँडिया और होशङ्गाबाद के रास्ते तमाम सेना एक साथ नर्बदा पार कर बरार और ख़ानदेश के इलाक़े पर क़ब्ज़ा कर सके और आवश्यकतानुसार कार्य कर सके;

---

* *Life and Correspondence of Sir John Malcolm*, by Sir John Kaye, vol. ii, p. 187.

गुजरात से एक डिवीज़न दोहद के रास्ते मालवा में प्रवेश करने के लिए नियुक्त की गई। इतनी अधिक विशाल सेना पहले कभी भी अङ्गरेज़ी इलाक़े से न निकली थी। इस बाज़ाब्ता विशाल सेना के अतिरिक्त २३,००० अनस्थायी सवार और थे, जिनमें से १३,००० दक्खन की सेना के साथ थे और १०,००० बङ्गाल की सेना के साथ।"*

आगे चल कर इस लेखक ने स्पष्ट लिखा है कि इस तमाम सेना का उद्देश समस्त मराठा रियासतों को घेर कर उनके स्वाधीन अस्तित्व को सदा के लिए मिटा देना था।

करनल टॉड

दूसरे मराठा युद्ध के समय अङ्गरेजों की पराजयों का एक कारण यह भी था कि उस समय तक अङ्गरेज़ मध्य भारत की भूमि से बहुत ही कम परिचित थे। सन् १८१५ से पहले कम्पनी के दफ़्तरों में हिन्दोस्तान के जो नक़शे होते थे वे अत्यन्त ग़लत और हास्यजनक होते थे। यहाँ तक कि राजपूताने के नक़शे में चित्तौड़ उदयपुर के पश्चिम में होता था और राजपूताने की नदियों का प्रवाह प्रायः उलटा दिखाया जाता था। नए युद्ध से पहले अङ्गरेजों ने राजपूताना और मध्यभारत के भूगोल का ठीक ठीक पता लगा लेना आवश्यक समझा। इसलिए सन् १८०६ में 'राजस्थान' नामक ग्रन्थ का सुप्रसिद्ध रचयिता करनल जेम्स टॉड उस प्रदेश की भौगोलिक जाँच के लिए नियुक्त किया गया।

करनल टॉड का नाम भारत और विशेष कर राजपूताने के इति-

* *Memoirs of Colonel Skinner*, vol. ii, pp. 124—129.

हास में बहुत दिनों तक क़ायम रहेगा। सन् १८१५ में करनल टॉड ने मध्य भारत का एक सच्चा और विस्तृत नकशा तैयार किया। इसके बाद करनल टॉड राजपूताने के प्राचीन इतिहास की खोज करता रहा। सन् १८१७ में वह मेवाड़, मारवाड़, जयपुर, कोटा और बूँदी की पाँच राजपूत रियासतों के लिए कम्पनी का एजण्ट नियुक्त हुआ और सन् १८२३ तक उस पद पर काम करता रहा।

करनल टॉड जितना कुशल कूटनीतिज्ञ था उतना ही विद्वान भी था। कम्पनी के एजण्ट की हैसियत से उसका मुख्य कार्य यह था कि राजपूत राजाओं को वढ़ा वढ़ा कर मराठों और मुसलमानों दोनों के विरुद्ध सदा उनके कान भरता रहे, ताकि राजपूतों के चित्तों में मराठों और मुसलमानों की ओर से काफ़ी घृणा उत्पन्न हो जाय; और ये तीनों जातियाँ भारत की स्वाधीनता के नाम पर विदेशियों के विरुद्ध मिलने न पाएँ। करनल टॉड ने अपना कार्य वड़ी सुन्दरता और सफलता के साथ पूरा किया। उसका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'राजस्थान' इसी उद्देश को सामने रख कर लिखा गया, और मराठों तथा मुसलमानों दोनों के विरुद्ध अनेक भ्रान्त तथा कल्पित वृत्तान्तों से भरा हुआ है।* करनल टॉड ने भारत के योग्य से योग्य, महान से महान, और कर्त्तव्यनिष्ठ सम्राट अकवर के चरित्र पर भी सर्वथा झूठा कलङ्क लगाने में सङ्कोच नहीं किया। किन्तु अपना राजनैतिक उद्देश पूरा करने में करनल टॉड को निस्सन्देह

---

* Mahadeva Govinda Ranade, in the *Journal of the Puna Sarvajanik Sabha*, vol. 1.

आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई। सर डेविड ऑक्टरलोनी लिखता है कि करनल टॉड राजपूताने के राजाओं और सरदारों से जी भर कर नज़रें और रिशवतें भी वसूल किया करता था।

टॉड के बनाए हुए मध्य भारत के नक़्शे से लॉर्ड हेस्टिंग्स को तीसरे मराठा युद्ध में बहुत बड़ी सहायता मिली।

इसके पूर्व शुरू से मराठों तथा राजपूतों के बीच अधिकतर अच्छा सम्बन्ध रह चुका था। इतिहास से पता चलता है कि राजपूतों ही की मदद से मराठों ने मालवा प्रान्त को विजय किया, बल्कि यदि राजपूतों की सहायता न होती तो सम्भव है कि मराठे मध्य भारत में एक चप्पा ज़मीन भी प्राप्त न कर पाते। विशेष कर जयपुर के राजा जयसिंह ने मालवा तथा उत्तरीय हिन्दोस्तान को विजय करने में मराठों को बहुत बड़ी सहायता दी। समस्त राजपूताना मराठा साम्राज्य का एक अङ्ग था। पेशवाओं ने भी अपनी शक्ति भर राजपूताने के पुराने राजकुलों को उनके पैतृक सिंहासनों पर क़ायम रक्खा। निस्सन्देह हाल के दिनों में सींधिया और होलकर की सेनाओं ने राजपूतों के साथ युद्ध किए और उनकी रियासतों को भी कहीं कहीं लूटा। किन्तु इस तरह के कार्यों में अधिकतर उस समय की कम्पनी सरकार का हाथ होता था। अमीर ख़ाँ की सेना से जयपुर को लुटवाना अङ्गरेज़ों ही की कूटनीति का काम था। तथापि किसी मराठा नरेश ने कभी भी किसी राजपूत घराने के स्वतन्त्र अस्तित्व को नहीं मिटाया और न किसी से उसकी गद्दी छीनी।

सींधिया के साथ नई सन्धि

जिस समय का ज़िक्र हम कर रहे हैं उस समय जयपुर इत्यादि राजपूत रियासतें महाराजा सींधिया की सामन्त थीं। दूसरे मराठा युद्ध के बाद अङ्गरेज़ों और सींधिया के बीच जो सन्धि हुई थी उसमें कम्पनी ने सींधिया और राजपूतों के इस सम्बन्ध को स्वीकार किया था; और सन्धि में यह एक साफ़ शर्त कर दी गई थी कि कम्पनी सरकार राजपूत रियासतों के साथ न किसी तरह का पत्र व्यवहार करेगी और न उनके साथ कोई पृथक सम्बन्ध क़ायम करेगी। करनल टॉड की नियुक्ति निस्सन्देह इस सन्धि का स्पष्ट उल्लङ्घन थी। इतना ही नहीं, वरन् करनल टॉड ने राजपूतों और मराठों के कभी कभी के पुराने झगड़ों को बढ़ाकर तथा अन्य झूठे सच्चे उपायों द्वारा मराठों की ओर से राजपूतों के चित्त में घृणा उत्पन्न कर दी; यहाँ तक कि करनल टॉड ही की कूटनीति की सहायता से लॉर्ड हेस्टिंग्स ने महाराजा सींधिया के साथ की उस दस वर्ष पूर्व की सन्धि के विरुद्ध राजपूत नरेशों के साथ सींधिया से ऊपर ही ऊपर पृथक सन्धियाँ कर लीं और उनका सम्बन्ध महाराजा सींधिया से तोड़ कर उन्हें कम्पनी के साथ सबसीडीयरी सन्धि के जाल में फँसा लिया।

इसके पश्चात् महाराजा सींधिया से कम्पनी तथा राजपूत नरेशों के इस नए सम्बन्ध को स्वीकार कराना आवश्यक था। सींधिया राज्य के उत्तर में कम्पनी की काफ़ी सेना तैयार हो चुकी थी। इस सेना की सहायता से हेस्टिंग्स ने जिस प्रकार

महाराजा सींधिया पर दबाव डाल कर उससे नई सन्धि स्वीकार कराई उसे हेस्टिंग्स ही के शब्दों में बयान करना उचित है। लॉर्ड हेस्टिंग्स का कथन है—

"सींधिया के साथ हमारी पहली सन्धि × × × में एक शर्त हमारे लिए अपमानजनक और बाधक थी। इस शर्त के अनुसार हम राजपूत रियासतों के साथ किसी तरह का पत्र व्यवहार न कर सकते थे, × × इस तरह के हानिकर बन्धन को तोड़ कर मैंने इन तमाम रियासतों को अङ्गरेज़ सरकार की सामन्त बना लिया। यद्यपि इनमें से हर एक रियासत के पास बहुत सी सेना थी, तथापि अपने आपस के झगड़ों के कारण (जो झगड़े कि मुख्य कर व्यर्थ की छोटी छोटी बातों और प्रायः इन नरेशों के पैतृक विवादों से उत्पन्न होते थे) वे कभी मिल कर एक न हो सकते थे।

* * *

"निस्सन्देह यदि सींधिया, जो अन्य देशी नरेशों से कहीं अधिक शक्तिशाली था, उस समय अपनी अभ्यस्त सेनाओं और सुन्दर तथा सुव्यवस्थित तोपख़ाने सहित मैदान में उतर आता तो मराठा मण्डल के अन्य नरेशों को इतने अधिक स्थानों पर शस्त्र उठाने का समय मिल जाता और साहस हो जाता कि उससे हमें अपनी काररवाइयों में बहुत सावधान रहना पड़ता, हमें बहुत देर लग जाती, और हमारा ख़र्च बहुत बढ़ जाता। × × × सींधिया ग्वालियर में अर्थात् अपने राज्य के सबसे अधिक धनसम्पन्न इलाक़े के बीचोंबीच में था; किन्तु × × × सींधिया की स्थिति में सैनिक दृष्टि से एक और दोष था जिसकी तरफ़ मालूम होता है कि महाराजा सींधिया ने कभी ध्यान न दिया था। ग्वालियर से क़रीब २० मील दक्षिण में छोटी सिन्धु नदी से लेकर चम्बल तक अत्यन्त ढालू

पहाड़ियों की एक पंक्ति है, जो भारतीय ढङ्ग के घने जङ्गलों से ढकी हुई है। × × × केवल दो रास्ते हैं जिन पर से कि गाड़ियाँ और शायद सवार सेना इन पहाड़ियों को पार कर सकती है। एक छोटी सिन्धु नदी के बराबर से, और दूसरा चम्बल नदी के पास से। मैंने अपनी सेना की बीच की डिवीज़न द्वारा एक ऐसी जगह घेर ली कि जिससे छोटी सिन्धु के बराबर के रास्ते से सींधिया का आ सकना असम्भव हो गया; और दूसरे रास्ते के पीछे मेजर-जनरल डनकिन की डिवीज़न को खड़ा कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि सींधिया के सामने सिवाय इसके और कोई चारा न रहा कि या तो जो सन्धि-पत्र मैंने उसके सामने रक्खा उस पर दस्तख़त कर दे; और या अपने शानदार तोपख़ाने को जिसमें सौ से ऊपर पीतल की तोपें थीं, उसके साथ के तमाम सामान को, और अपने सबसे अधिक क़ीमती इलाक़ों को हमारे हाथों में छोड़ कर अपने इतने थोड़े से साथियों सहित, जो उसके साथ जा सकें, पगडण्डियों के रास्ते इन पहाड़ियों को पार करके निकल जायँ। जो शर्तें मैंने सींधिया के सामने पेश कीं उनका सार उसका अङ्गरेज़ कम्पनी की पूर्ण अधीनता स्वीकार कर लेना था; यद्यपि इन शर्तों को इस प्रकार रङ्ग दिया गया था जिससे जन साधारण की दृष्टि में सींधिया को ज़िल्लत अनुभव न हो।"*

अर्थात् इस प्रकार घेर कर मराठा साम्राज्य के एक मुख्य स्तम्भ महाराजा दौलतराव सींधिया से एक नए सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करा लिए गए। इस नई सन्धि द्वारा सींधिया राज्य की आन्तरिक स्वाधीनता में फ़रक़ न आया, न महाराजा दौलतराव

---

* *Lord Hastings' Summary, etc.*, pp. 97, 100.

ने कम्पनी के साथ सबसीडीयरी सन्धि स्वीकार की, किन्तु सींधिया का साम्राज्य परिमित होगया। राजपूताने के नरेश, जो अभी तक महाराजा सींधिया के सामन्त थे, इस नई सन्धि के अनुसार कम्पनी के अधीन हो गए, और सींधिया ने पिण्डारियों के दमन में अङ्गरेजों को सहायता देने का वादा कर लिया, राजपूत नरेशों की नई सबसीडीयरी सेनाएँ भी अब पिण्डारियों और मराठों दोनों के दमन के लिए कम्पनी के हाथ आ गईं।

चार मुख्य मराठा नरेशों, सींधिया, पेशवा, भोंसले और होलकर, में से सींधिया को इस प्रकार बिना युद्ध के ही नीचा दिखा दिया गया। शेष तीनों को वश में करना अब लॉर्ड हेस्टिंग्स के लिए बाक़ी रह गया।

पेशवा बाजीराव और अङ्गरेज़

पेशवा बाजीराव, बसई की सन्धि, और दूसरे मराठा युद्ध का वर्णन एक पिछले अध्याय में किया जा चुका है। बाजीराव अन्तिम पेशवा था। किन्तु अङ्गरेजों के साथ उसके अन्तिम संग्राम को वर्णन करने से पूर्व दूसरे मराठा युद्ध से उस समय तक के बाजीराव और कम्पनी के सम्बन्ध को वर्णन कर देना आवश्यक है।

कम्पनी ही ने अपने हित के लिए बाजीराव को दोबारा पूना की मसनद पर बैठाया और बाजीराव में अन्य चाहे कोई भी दोष क्यों न रहा हो, किन्तु अङ्गरेजों की ओर उसका व्यवहार सदा

सच्चा रहा। बाजीराव डरपोक था। राजनीति की शतरञ्ज का वह अत्यन्त कच्चा खिलाड़ी था। अपनी अदूरदर्शिता के कारण कई बार विदेशियों के हाथों में खेल कर वह मराठा सत्ता के नाश का कारण बना। किन्तु अपने विदेशी मित्रों का वह सदा वफ़ादार रहा। इसके अतिरिक्त उसकी सचाई, उसकी धर्मनिष्ठा और एक सामान्य शासक की हैसियत से उसकी योग्यता की अनेक अङ्गरेज़ लेखकों तथा यात्रियों ने प्रशंसा की है।* यहाँ तक कि रेज़िडेण्ट करनल क्लोज़ तक ने बाजीराव की सच्चाई को स्वीकार किया है, और बम्बई के विद्वान चीफ़ जस्टिस सर जेम्स मैकिन्टॉश ने तो दक्षिण के इस ब्राह्मण शासक को इङ्गलिस्तान के तीसरे जॉर्ज और फ्रान्स के नैपोलियन दोनों से कहीं अधिक योग्य शासक बताया है।† मैकिन्टॉश इन तीनों नरेशों से भली भाँति परिचित था।

जिस समय का ज़िक्र हम कर रहे हैं उस समय पेशवा बाजीराव क्रियात्मक दृष्टि से अङ्गरेज़ों के हाथों में क़ैदी था। तथापि अङ्गरेज़ उसकी इस स्थिति से सन्तुष्ट न थे। दूसरे मराठा युद्ध के बाद से ही उसकी बेड़ियों को और अधिक जकड़ने, उसे भड़काने और उसे बरबाद करने के प्रयत्न बराबर जारी थे।

कम्पनी के अङ्गरेज़ अफ़सर बाजीराव को अपना मित्र कहते थे। तथापि जनरल वेल्सली ने, जो बाद में ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन के

---

* *Origin of the Pindaries, etc.*,—by an Officer in the Service of Honourable East India Company, 1818, Allahabad reprint.

† *Poona Gazetteer.*

नाम से प्रसिद्ध हुआ, बाजीराव के दरबार की सब ख़बरें रखने के लिए पूना के अन्दर रिशवतों का बाज़ार गरम कर रक्खा था। बाजीराव के मन्त्रियों से लेकर महल के नौकरों तक को अङ्गरेज़ों की ओर से गुप्त तनख़ाहें दी जाती थीं। सर बैरी क्लोज़ के बाद सन् १८११ में एलफ़िन्सटन पूना का रेज़िडेण्ट नियुक्त हुआ। मार्किस ऑफ़ हेस्टिंग्स की ख़ास नज़र इस समय बाजीराव के उर्वर प्रान्तों की ओर थी, जिनकी वार्षिक आय लगभग डेढ़ करोड़ थी। रेज़िडेण्ट एलफ़िन्सटन इस काम के लिए हेस्टिंग्स के हाथों में उपयोगी साबित हुआ।

पेशवा बाजीराव को कम्पनी के विरुद्ध अनेक शिकायतें थीं। उदाहरण के लिए, पेशवा काठियावाड़ के नरेशों का अधिराज था, तथापि कम्पनी ने पेशवा की इजाज़त के बिना काठियावाड़ के सामन्त नरेशों के साथ युद्ध किया और नवानगर तथा जूनागढ़ के नरेशों से बड़ी बड़ी रक़में बतौर दण्ड के वसूल कीं, जिसकी पेशवा को सूचना तक नहीं दी गई।

एलफ़िन्सटन ने कई ऐसे काम किए जिनसे बाजीराव के दिल में एलफ़िन्सटन और कम्पनी की नियत पर सन्देह बढ़ता चला गया। मसलन् पेशवा का निज़ाम और गायकवाड़ दोनों के साथ अरसे से कुछ हिसाब का झगड़ा चला आता था। निज़ाम और गायकवाड़ दोनों अङ्गरेज़ों के हाथों में थे। बाजीराव ने एलफ़िन्सटन से अनेक बार कहा कि ये झगड़े तय करा दिए जायँ, किन्तु एलफ़िन्सटन सदा टालता रहा।

बाजीराव और गायकवाड़

इनमें गायकवाड़ के साथ पेशवा के झगड़े को कुछ विस्तार के साथ वर्णन करने की आवश्यकता है। सन् १७५१ में दूमाजी गायकवाड़ और पेशवा बालाजीराव के बीच एक सन्धि हुई थी, जिसके अनुसार दूमाजी ने गुजरात का आधा इलाक़ा पेशवा को दे दिया था। इसी इलाक़े में अहमदाबाद भी शामिल था। पेशवा ने अपने इस इलाक़े का मियादी पट्टा फिर से गायकवाड़ के नाम लिख दिया। दूमाजी गायकवाड़ ने वादा किया कि आवश्यकता के समय में पेशवा की मदद के लिए १०,००० सवार अपने यहाँ सदा तैयार रक्खूँगा, सवा पाँच लाख रुपए सालाना पेशवा को ख़िराज दिया करूँगा, और एक पृथक रक़म सतारा के राजा के ख़र्च के लिए हर साल भेजूँगा। दूमाजी के उत्तराधिकारियों की ओर इस ख़िराज की तथा अहमदाबाद की मालगुज़ारी की कुछ बक़ाया वर्षों से चली आती थी, जो इस समय तक बढ़ते बढ़ते लगभग एक करोड़ रुपए के पहुँच चुकी थी। फ़तहसिंह गायकवाड़ इस समय बड़ोदा की गद्दी पर था और सर्वथा अङ्गरेज़ों के प्रभाव में था। इसलिए बाजीराव ने अनेक बार एलफ़िन्सटन से कहा कि गायकवाड़ के साथ इस मामले का निबटारा करा दिया जाय, किन्तु एलफ़िन्सटन बराबर टालता रहा।

अन्त में अहमदाबाद के इलाक़े की बाबत गायकवाड़ के नाम के पट्टे की मियाद ख़त्म होने के क़रीब आई। उस पट्टे को फिर

से नया करवाना आवश्यक था। इसलिए अङ्गरेज़ों के कहने के अनुसार फ़तहसिंह गायकवाड़ ने गङ्गाधर शास्त्री नामक एक मनुष्य को इस सब कार्य के लिए अर्थात् पेशवा के साथ पिछला हिसाब साफ़ करने और नया पट्टा प्राप्त करने के लिए अपना वकील नियुक्त करके पूना भेजा। यह गङ्गाधर शास्त्री एक अत्यन्त चतुर ब्राह्मण और अङ्गरेज़ों का धनक्रीत था। वह पूना के आस पास का रहने वाला था। एक साधारण घर के चाकर से वढ़ते बढ़ते वह इस पद को पहुँचा था। वड़ोदा तथा पूना दोनों दरबारों में वह अङ्गरेज़ों के गुप्तचर की हैसियत से दोनों राज्यों के सर्वनाश के उपाय किया करता था। "वड़ोदा गज़ेटियर" का अङ्गरेज़ रचयिता गङ्गाधर शास्त्री के विषय में लिखता है—

"गङ्गाधर शास्त्री मेजर ए० वाकर के साथ वड़ोदा गया। सन् १८०२ में उसने अङ्गरेज़ सरकार की नौकरी कर ली। जून सन् १८०३ में सूरत की अट्ठवीसी के चौरासी परगने में दन्दोल का गाँव सदा के लिए उसके और उसके वंशजों के नाम कर दिया गया। इस गाँव की वार्षिक आमदनी पाँच हज़ार रुपए थी। × × ×

"१२ जनवरी सन् १८०५ को गङ्गाधर शास्त्री की लड़की की शादी के मौक़े पर बम्बई सरकार ने उसे चार हज़ार रुपए दिए। १५ मई सन् १८०६ को गङ्गाधर को एक पालकी दी गई और उसके ख़र्च के लिए १२०० रुपए सालाना मन्ज़ूर किए गए।"*

---

* *Baroda Gazetteer*, p. 210, footnote.

मेजर ए० वाकर, जिसका ऊपर ज़िक्र है, कम्पनी सरकार की ओर से बड़ोदा भेजा गया था। कारण यह था कि उस समय अङ्गरेज़ महाराजा आनन्दराव गायकवाड़ पर इस बात के लिए ज़ोर डाल रहे थे कि आप अपने दरबार की रही सही सेना को बरखास्त करके राज्य की रक्षा का कार्य केवल कम्पनी की सबसीडीयरी सेना के सुपुर्द कर दें। आनन्दराव इसके लिए किसी प्रकार राज़ी कर लिया गया। किन्तु बड़ोदा दरबार की सेना में उस समय अधिकतर अरब सिपाही और अरब जमादार थे। ये लोग वीर और राज्य के सच्चे हितचिन्तक थे। अपने तथा रियासत, दोनों के नाश को वे इतनी आसानी से सहन न कर सके। महाराजा को इन वफ़ादार अरबों के विरुद्ध ख़ूब भड़काया गया। किन्तु महाराजा का एक सम्बन्धी मलहरराव गायकवाड़ भी महाराजा की इस घातक नीति के विरुद्ध खड़ा हो गया। अङ्गरेज़ों को मलहरराव और इन अरबों दोनों को दमन करने के लिए सेना भेजनी पड़ी। सेना भेजने से पहले "स्थिति को देखने और ठीक करने" के लिए मेजर वाकर को बड़ोदा भेजा गया। गायकवाड़ पेशवा का सामन्त था। तथापि मेजर वाकर ने पेशवा से ऊपर ही ऊपर बड़ोदा दरबार के साथ एक सन्धि कर ली। निस्सन्देह पेशवा के अधिकारों पर यह स्पष्ट आक्रमण था।

गायकवाड़ के दीवान को नामज़द करने इत्यादि के अधिकार अरसे से पेशवा को प्राप्त थे। कम्पनी ने अब पेशवा के इन सब अधिकारों से इनकार किया। बड़ोदा गज़ेटियर के अनुसार अब

पेशवा को केवल यह अधिकार रह गया था कि जो नया महाराजा बड़ोदा की गद्दी पर बैठे उसका अभिषेक बिना एतराज़ किए पेशवा अपनी ओर से कर दे। अङ्गरेज़ उन दिनों अपनी सुविधा के अनुसार कभी गायकवाड़ को पेशवा का सामन्त मान लेते थे, और कभी फिर एक स्वाधीन नरेश के समान उसके साथ व्यवहार करने लगते थे। करनल वैलेस ने बड़ी सुन्दरता के साथ गायकवाड़ की ओर कम्पनी की उस समय की नीति को वर्णन किया है। उसका कथन है—

"गायकवाड़ की रियासत कम्पनी के हाथों का एक खिलौना थी। जब ज़रूरत पड़ती थी उसे मित्रवत् छाती से लगा लिया जाता था; और जब ज़रूरत न रहती थी तब अलग कर दिया जाता था। गायकवाड़ रियासत के सम्बन्ध में इस तरह की सन्धियाँ की गईं जिनमें रियासत से पूछा तक नहीं गया। स्वयं रियासत के साथ इस तरह की सन्धियाँ की गईं जिनको तोड़ने में जब कभी कम्पनी को लाभ दिखाई दिया, तोड़ डाली गईं। कभी उसे एक स्वाधीन रियासत कह कर पेशवा से युद्ध करने के लिए उकसाया गया; और फिर युद्ध समाप्त होने पर उसे मराठा साम्राज्य का केवल एक सामन्त माना गया। रियासत की बाह्य नीति बिलकुल इसी तरह चलाई जाती रही।"*

* "The Gaikwad state had been the utensil of the Honorable Company; it had been embraced as an ally when required, and dismissed when no longer wanted; treaties had been made respecting it, in which it was not consulted; treaties had been made with it which had been abrogated when it suited the

अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक स्वीकार करते हैं कि इस तमाम कार्य में और ख़ास कर बड़ोदा राज्य को कम्पनी के अधीन करने में अङ्गरेज़ों को सब से अधिक सहायता गङ्गाधर शास्त्री से प्राप्त हुई; और उस समय से लेकर अपनी मृत्यु के समय तक गुजरात तथा दक्षिण में कम्पनी की सत्ता को पक्का करने के कार्य में सब से अधिक महत्त्वपूर्ण भाग गङ्गाधर शास्त्री ने लिया।*

स्वभावतः पेशवा बाजीराव और पूना तथा बड़ोदा के अनेक समझदार नीतिज्ञ गङ्गाधर शास्त्री को देशद्रोही समझते थे। बाजीराव ने गङ्गाधर की इस नियुक्ति पर एतराज़ किया, किन्तु एलफ़िन्सटन ने इसकी बिलकुल परवा न की। १९ अक्तूबर सन् १८१२ को गङ्गाधर शास्त्री बड़ोदा से पूना के लिए रवाना हो गया।

ख़ुरशेदजी जमशेदजी मोदी की हत्या

गङ्गाधर शास्त्री के पूना पहुँचने के समय एक प्रसिद्ध पारसी नीतिज्ञ ख़ुरशेदजी जमशेदजी मोदी पूना में रहा करता था। ख़ुरशेदजी पेशवा बाजीराव और मराठा सत्ता का सच्चा हित-

---

Company's convenience; sometimes it had been induced to wage war with the Peshwa as an independent state and then again, on the return of peace, it had been acknowledged as a vassal merely of the Maratha Empire, thus its external policy had been altogether dictated."

* *History of the Rise, Decline and Present state of the Shastree Family*, published from Bombay 1868, pp. 6-8.

चिन्तक था। इससे पूर्व के रेज़िडेण्ट सर वैरी क्लोज़ के समय से पेशवा और उसके दरबार के साथ रेज़िडेण्ट का जो कुछ कारबार होता था सब ख़ुरशेदजी ही द्वारा होता था। सर वैरी क्लोज़ और पेशवा बाजीराव दोनों ख़ुरशेदजी के कार्य से सन्तुष्ट थे।

गङ्गाधर शास्त्री के पूना पहुँचते ही एलफ़िन्सटन ने गङ्गाधर के साथ मिल कर पेशवा के विरुद्ध साज़िशें शुरू कीं। बड़ोदा गज़ेटियर* में लिखा है कि ख़ुरशेदजी मोदी और पेशवा का एक मन्त्री त्रयम्बक जी पेशवा को इन साज़िशों की ओर से सावधान करते रहते थे। यह भी लिखा है कि ख़ुरशेदजी पेशवा को बराबर समझाता रहता था कि बसई की सन्धि से अङ्गरेज़ों को कितना लाभ हुआ है और मराठा सत्ता को कितनी हानि हुई है। मई सन् १८१४ में गङ्गाधर ने एलफ़िन्सटन को ख़ुरशेदजी की ओर से आगाह किया।

एलफ़िन्सटन ने सब से पहले ख़ुरशेदजी जमशेदजी मोदी को अलग करके पेशवा और उसके दरबार के साथ स्वयं पत्र-व्यवहार करना शुरू कर दिया। ख़ुरशेदजी को अलग करने का एक कारण एलफ़िन्सटन ने यह लिखा है कि—"बाजीराव ने ख़ुरशेद-जी को अपने पक्ष में कर लिया था और ख़ुरशेदजी पेशवा का सच्चा हितचिन्तक था।" ख़ुरशेदजी का इस प्रकार अलग किया जाना पेशवा बाजीराव को भी बुरा मालूम हुआ। इसके बाद एलफ़िन्सटन के निजी पत्रों से साबित है कि बाजीराव और

* *Bombay Gazetteer*, p. 219.

उसके मन्त्रियों के साथ एलफ़िन्सटन का व्यवहार दिन प्रतिदिन धृष्ट और अपमानजनक होता चला गया। ख़ुरशेदजी अभी पूना में मौजूद था। एलफ़िन्सटन की नज़रों में वह अधिकाधिक खटकने लगा। एलफ़िन्सटन ने हुकुम दिया कि ख़ुरशेदजी को दक्षिण से निकाल कर गुजरात भेज दिया जाय। निर्बल बाजीराव में इनकार करने का साहस न था। ख़ुरशेदजी पूना छोड़ने के लिए तैयार हो गया। किन्तु ठीक जिस समय कि ख़ुरशेदजी जमशेदजी मोदी पूना से रवाना होने वाला था, एक दिन अचानक उसे ज़हर देकर मार डाला गया।

अङ्गरेज़ों का कथन है कि ख़ुरशेदजी ने या तो ख़ुद ज़हर खा लिया अथवा पेशवा ने उसे ज़हर दिलवा दिया। ये दोनों बातें इतनी लचर हैं कि किसी को भी उन पर एक क्षण के लिए विश्वास नहीं हो सकता। निस्सन्देह ख़ुरशेदजी उस समय एलफ़िन्सटन के मार्ग में सब से भारी कण्टक था। उसका गुजरात में रहना अङ्गरेज़ों और गङ्गाधर की योजनाओं के लिए उतना ही खतरनाक हो सकता था जितना पूना में। इस समस्त परिस्थिति में अधिक सम्भावना यही है कि एलफ़िन्सटन ने अपने किसी गुप्तचर द्वारा ख़ुरशेदजी की हत्या करवा डाली।

पेशवा बाजीराव ने ख़ुरशेदजी की सेवाओं के लिए उसे गुजरात में कुछ जागीर प्रदान की थी, जो आज तक ख़ुरशेदजी जमशेदजी मोदी के वंशधरों के पास है।

गङ्गाधर शास्त्री की हत्या

ऊपर आ चुका है कि गङ्गाधर शास्त्री के पूना जाने के दो उद्देश थे। एक पेशवा और गायकवाड़ के पिछले हिसाब को साफ़ करना और दूसरा अहमदाबाद के इलाक़े का पट्टा फ़तहसिंह गायकवाड़ के नाम नया करवाना। किन्तु पेशवा फ़तहसिंह गायकवाड़ के हाल के व्यवहार, उसके ऊपर अङ्गरेज़ों के अनुचित प्रभाव, और स्वयं अपने साथ कम्पनी के व्यवहार को देखते हुए फिर से अहमदाबाद का पट्टा गायकवाड़ को देना न चाहता था। पेशवा को पूर्ण अधिकार था कि अपने इलाक़े का पट्टा जिसके नाम चाहे जारी करे। पेशवा बाजीराव ने नया पट्टा अपने वफ़ादार मन्त्री त्रयम्बक जी के नाम कर दिया।

जब अहमदाबाद का नया पट्टा गायकवाड़ के नाम जारी न हो सका तो गङ्गाधर ने बिना पिछले हिसाब का निबटारा किए बड़ोदा लौट जाना चाहा। एलफ़िन्सटन ने भी उसके तुरन्त बड़ोदा लौट जाने पर ज़ोर दिया। कारण यह था कि अङ्गरेज़ चाहते थे कि पेशवा तथा गायकवाड़ दरबारों में वैमनस्य बराबर जारी रहे। बाद में मालूम हुआ कि वे अहमदाबाद के इलाक़े का पट्टा भी कम्पनी के नाम करवाना चाहते थे। त्रयम्बक जी और पेशवा बाजीराव दोनों समझ गए कि गङ्गाधर के इस प्रकार लौटने का परिणाम अच्छा नहीं। इन दोनों ने अब गङ्गाधर शास्त्री को पूना में रोकने और किसी प्रकार उसे अपनी ओर करने की पूरी कोशिश की।

बॉम्बे गजेटियर* में लिखा है कि त्रयम्बक जी इस समय वास्तव में गङ्गाधर के साथ मेल चाहता था। पेशवा ने भी इसकी पूरी कोशिश की। किन्तु गङ्गाधर कम्पनी के हाथों में था। एल-फ़िन्सटन ने त्रयम्बक जी तथा पेशवा के मेल के प्रयत्नों को सफल न होने दिया। पेशवा ने गङ्गाधर को अपना मन्त्री नियुक्त करना चाहा, किन्तु बॉम्बे गजेटियर में साफ़ लिखा है कि एलफ़िन्सटन के खास कहने पर गङ्गाधर ने पेशवा के इस प्रेम-प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इसके बाद पेशवा ने यह तजवीज़ की कि गङ्गाधर के पुत्र के साथ पेशवा की साली का विवाह किया जाय। शास्त्री ने इस तजवीज़ को स्वीकार कर लिया। नासिक में विवाह के रचे जाने की तजवीज़ की गई। तैयारियाँ होने लगीं। किन्तु ठीक उस समय जब कि दोनों ओर से तैयारी हो चुकी थी, शास्त्री ने बिना कोई कारण बताए विवाह से इनकार कर दिया। निस्सन्देह इस इनकार का कारण एलफ़िन्सटन था। गङ्गाधर की पत्नी इस समय पेशवा के महल में आने जाने लगी थी। एलफ़िन्सटन ने शास्त्री पर ज़ोर देकर उसका आना जाना भी बन्द करवा दिया। इस सब का एकमात्र कारण यह था कि अङ्गरेज़ सरकार उस समय बड़ोदा और पूना दरबारों के बीच किसी तरह का मेल न चाहती थी। बड़ोदा गजेटियर में लिखा है—

"यह बात बड़े महत्व की थी कि बड़ोदा और पूना दरबारों के बीच

---

* *Bombay Gazetteer*, Baroda vol., p. 222,

नए राजनैतिक सम्बन्ध पैदा करने के बाजीराव जितने भी प्रयत्न करे, उन्हें सफल न होने दिया जाय।"*

इस पर भी मालूम होता है कि धीरे धीरे पेशवा दरबार को अपने प्रयत्नों में कुछ दरजे तक सफलता प्राप्त हुई। धन अथवा वैभव के लोभ में आकर अथवा सम्भव है किसी अधिक उच्च भाव से प्रेरित होकर गङ्गाधर शास्त्री अब त्रयम्बक जी, बाजीराव तथा फ़तहसिंह गायकवाड़ तीनों में मेल कराने के पक्ष में होगया। अहमदाबाद का पट्टा गायकवाड़ को नहीं मिल सका। तथापि गङ्गाधर शास्त्री ने अब पिछले हिसाब का निबटारा पेशवा की इच्छा के अनुसार और ईमानदारी के साथ करना चाहा। बड़ोदा गज़ेटियर में लिखा है—

"शास्त्री ने इस बात को स्वीकार कर लिया कि उन्तालीस लाख रुपए मय सूद के गायकवाड़ को पेशवा के देने निकलते हैं, और पेशवा की अन्य समस्त माँगों के बदले में, जिनमें कि पेशवा के अनुसार एक करोड़ रुपए बक़ाया और चालीस लाख रुपए ख़िराज़ के थे, शास्त्री ने यह तजवीज़ की कि गायकवाड़ सात लाख रुपए सालाना का इलाक़ा पेशवा को दे दे। साथ ही शास्त्री ने × × × रेज़िडेण्ट एलफ़िन्सटन से यह प्रार्थना की कि आप बड़ोदा दरबार को राज़ी करने में मेरी मदद कीजिए।"†

गङ्गाधर ने हिसाब की एक नक़ल और अपनी तजवीज़ गायक-

* ". . . it was important to thwart every attempt of Baji Rao to create fresh political ties between the Courts of Baroda and Poona."—*Baroda Gazetteer*, p. 219.

† *Ibid*, p. 221.

वाड़ दरबार को भेज दी। फ़तहसिंह गायकवाड़ अङ्गरेज़ों के कहने में था। कई महीने तक बड़ोदा से कोई जवाब न आया। अन्त में फ़तहसिंह ने अङ्गरेज़ों के कहने में आकर अपने प्रतिनिधि गङ्गाधर शास्त्री की तजवीज़ को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। पेशवा तथा गङ्गाधर शास्त्री को निराशा हुई। किन्तु गङ्गाधर के इस प्रकार बड़ोदा लौट जाने का परिणाम पेशवा तथा गायकवाड़ में वैमनस्य का बढ़ जाना होता। इसलिए गङ्गाधर पूना में ठहर कर मेल के प्रयत्न करता रहा। एलफ़िन्सटन उस पर बराबर बड़ोदा लौट जाने के लिए ज़ोर देता रहा। इस बीच एक दिन गङ्गाधर पेशवा के साथ पण्ढरपुर की यात्रा को गया। १४ जुलाई सन् १८१५ को अचानक कुछ अपरिचित लोगों ने आकर तीर्थस्थान पण्ढरपुर में गङ्गाधर को क़त्ल कर डाला।

एलफ़िन्सटन और उसके साथी अङ्गरेज़ों ने यह ज़ाहिर किया कि बाजीराव के मन्त्री त्रयम्बक जी ने पेशवा की आज्ञा से गङ्गाधर को मरवा डाला।

पेशवा बाजीराव एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण था, जिसने बॉम्बे गज़ेटियर के अनुसार पूना के आस पास कई लाख आम के वृक्ष लगवाए थे। ब्राह्मणों और धार्मिक संस्थाओं को वह खूब धन और जागीरें दिया करता था। पण्ढरपुर में विठोबा के मन्दिर का वह विशेष भक्त था। उस समय भी वह पण्ढरपुर की यात्रा के लिए गया हुआ था। गङ्गाधर शास्त्री भी ब्राह्मण था। इस सब के अतिरिक्त इस हत्या से महीनों पहले गङ्गाधर शास्त्री, बाजीराव

तथा त्रयम्बकजी तीनों में मेल हो चुका था। और यही मेल कम्पनी के प्रतिनिधियों की नजरों में खास तौर पर खटक रहा था। इस समस्त स्थिति में गङ्गाधर की हत्या का इलजाम बाजीराव अथवा त्रयम्बकजी पर लगाना सर्वथा अन्याय है। त्रयम्बकजी के चरित्र और समस्त जीवन में भी कोई बात ऐसी नहीं मिलती जिससे उसे इस हत्या के लिए उत्तरदाता माना जा सके। वास्तव में गङ्गाधर उस समय एलफ़िन्सटन के हाथों से निकल चुका था, दक्षिण तथा गुजरात के अन्दर कम्पनी के काले कारनामों के अनेक रहस्य गङ्गाधर को मालूम थे। गङ्गाधर वर्षों उनका भेदी रह चुका था और इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि एलफ़िन्सटन ने इस हत्या द्वारा अपने मार्ग से एक नए तथा खतरनाक कण्टक को दूर कर दिया।

गङ्गाधर की मृत्यु से अङ्गरेजों को दुहरा लाभ हुआ। एक ओर पूना तथा बड़ोदा में मेल अब और अधिक कठिन होगया, और दूसरे पेशवा बाजीराव और उसके मन्त्री त्रयम्बकजी को गङ्गाधर की हत्या के लिए ज़िम्मेदार ठहरा कर एलफ़िन्सटन ने अब उन दोनों के विरुद्ध शोर मचाना और उन दोनों के नाश के उपाय करना शुरू कर दिया। इतिहास-लेखक प्रिन्सेप लिखता है—

"शास्त्री की हत्या द्वारा जो स्थिति पैदा हो गई उसमें हम एक ब्राह्मण राजदूत की हत्या का बदला लेने वाले बन बैठे, और पेशवा की प्रजा में भी सार्वजनिक राय पूरी तरह हमारे पक्ष में हो गई। लोगों पर यह हितकर असर इस के बाद भी जारी रहा, क्योंकि दो साल बाद जब

लगभग समस्त मराठा राज्यों से हमारा युद्ध छिड़ गया उस समय यह याद करके कि सारे झगड़े की जड़ एक ब्राह्मण की निरपराध हत्या थी, जनता कि राय में अङ्गरेज़ों के पक्ष को बहुत बड़ा नैतिक बल प्राप्त हुआ। बाद में पेशवा-कुल के पतन पर लोगों ने जो उदासीनता प्रकट की उसका भी बहुत दरजे तक यही कारण था कि लोग इस पतन को पेशवा बाजी-राव के इस पाप-कर्म का दण्ड समझते थे × × ×।"*

कहा जाता है कि रेज़िडेण्ट एलफ़िन्सटन ने तहक़ीक़ात करके यह नतीजा निकाला कि शास्त्री की हत्या करने वालों को त्रयम्बकजी ने नियुक्त किया था। मालूम नहीं वह तहक़ीक़ात किस ढङ्ग की थी और अपराधी त्रयम्बकजी को जवाबदेही का अवसर दिया गया या नहीं। थोड़ा सा धन ख़र्च करके एलफ़िन्सटन जैसे आदमी के लिए गवाह खड़े कर लेना कोई कठिन कार्य न था। स्वयं अङ्गरेज़ों के उस समय के लेखों से साबित है कि एलफ़िन्सटन की यह तहक़ीक़ात केवल एक ढकोसला थी।

वास्तव में त्रयम्बकजी भी अङ्गरेज़ों के मार्ग में एक काँटा था। वह एक योग्य और जागरूक मराठा नीतिज्ञ था। गुजरात का जो इलाक़ा पेशवा ने हाल में उसे दिया था वह कम्पनी की सरहद से मिला हुआ था और अङ्गरेज़ों के स्वयं उस इलाक़े पर दाँत थे! एलफ़िन्सटन के पत्रों में इधर से उधर तक भरा पड़ा है कि त्रयम्बकजी अङ्गरेज़ों के विरुद्ध पेशवा को सदा सावधान करता

---

* Prinsep's *History of the Political and Military Transactions*, vol. i, p. 321.

रहता था। मराठों के साथ नया युद्ध छेड़ने से पहले किसी प्रकार उसे पूना से अलग कर देना आवश्यक था। एलफ़िन्सटन ने अब पेशवा पर ज़ोर दिया कि त्रयम्बकजी को फ़ौरन् अङ्गरेज़ों के हवाले कर दो। यदि त्रयम्बकजी दोषी भी होता तो भी एल-फ़िन्सटन की यह माँग सर्वथा न्यायविरुद्ध थी। बाजीराव ने इनकार कर दिया। एलफ़िन्सटन अपनी ज़िद पर डटा रहा। यहाँ तक कि उसने पूना के नगर को अङ्गरेज़ी सेना से घेरने और उसका बाज़ाब्ता मुहासरा करने की धमकी दी। बाजीराव स्वभाव से भीरु था। कम्पनी की सबसीडीयरी सेना पूना में मौजूद थी। मजबूर होकर बाजीराव ने अपने प्रिय मन्त्री निरपराध त्रयम्बकजी को अङ्गरेज़ों के हवाले कर दिया, और अङ्गरेज़ों ने त्रयम्बकजी को थाने के क़िले में क़ैद कर दिया। पेशवा बाजीराव भी इस समय अपनी ज़िल्लत और परवशता को अच्छी तरह अनुभव करने लगा।

इसके बाद नैपाल युद्ध के अन्त और तीसरे मराठा युद्ध की विशाल तैयारियों का समय आया। बिना किसी कारण ७ अप्रेल सन् १८१७ को लॉर्ड हेस्टिंग्स ने सेनापति सर ईवन नेपियन को लिखा कि—"पेशवा और अङ्गरेज़ों के बीच युद्ध होने वाला है, और आप पेशवा के गुजरात के हिस्से और कोकण के उत्तरीय भाग पर क़ब्ज़ा जमाने के लिए तैयार रहें।"*

---

* *Bombay Gazetteer* Baroda. vol p. 225.

बाजीराव को जब इन तैयारियों का सुराग़ मिला, उसने अप्रेल सन् १८१७ में एक दिन एलफ़िन्सटन को अपने यहाँ बुला कर बहुत देर तक कम्पनी की ओर अपनी सच्चाई और वफ़ादारी साबित करने का प्रयत्न किया। किन्तु इसका कोई असर न हो सका। अङ्गरेज़ अब बाजीराव को बहुत ही सरल चारा समझ रहे थे, और युद्ध की पूरी तैयारी कर चुके थे।

बाजीराव के विरुद्ध साज़िश

अपने पुराने स्वभाव के अनुसार एलफ़िन्सटन ने अब पूना के अन्दर पेशवा बाजीराव के विरुद्ध "गुप्त उपाय" शुरू किए। इन गुप्त उपायों के सम्बन्ध में दो मराठा देशद्रोहियों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने एलफ़िन्सटन को पेशवा राज्य का अन्त करने में सब से अधिक मदद दी। इनमें पहला बालाजी पन्त नातू था।

बालाजी शुरू में सतारा जिले के अन्दर किसी साधारण घराने में पाँच या छै रुपए माहवार का नौकर था। सन् १८०३ में उसने पूना आकर रेज़िडेण्ट के यहाँ नौकरी कर ली। बढ़ते बढ़ते वह एलफ़िन्सटन का सब से पक्का जासूस बन गया। पेशवा के तमाम कामों की वह एलफ़िन्सटन को खबर देता रहता था। वह एक अत्यन्त नीच प्रकृति का और चालबाज़ मनुष्य था। कुछ समय बाद सतारा के पदच्युत राजा के वकील रङ्गोबापूजी ने बालाजी के नीच कृत्यों को संसार के सामने प्रकट किया, जिन्हें पढ़ कर कोई

भी भारतवासी बालाजी से घृणा अनुभव किए बिना नहीं रह सकता। पेशवा के पतन के बाद एलफ़िन्सटन ने ५ सितम्बर सन् १८१८ को गवरनर-जनरल के नाम बालाजी की सेवाओं की ख़ूब तारीफ़ की और उसे एक जागीर तथा पेनशन दिए जाने की सिफ़ारिश की। गवरनर-जनरल ने एलफ़िन्सटन की सिफ़ारिश को ख़ुशी से मञ्जूर कर लिया।

एलफ़िन्सटन के दूसरे विश्वस्त मित्र का नाम यशवन्तराव घोरपड़े था। पेशवा के विरुद्ध झूठी सच्ची शहादतें जमा करने में यशवन्तराव ने एलफ़िन्सटन को बहुत बड़ी सहायता दी।

एलफ़िन्सटन अब पेशवा के साथ युद्ध का कोई बहाना ढूँढ़ रहा था। एलफ़िन्सटन ने अपने ६ अप्रेल सन् १८१७ के रोज़-नामचे में साफ़ लिखा है—"मैं समझता हूँ, पेशवा के साथ कोई झगड़ा हो जाना बड़ा अच्छा है।"*

कहा गया कि त्रयम्बकजी थाने के क़िले से भाग कर फिर पेशवा के इलाक़े में छिपा हुआ है। एलफ़िन्सटन ने कम्पनी की ओर से पेशवा बाजीराव के सामने यह माँग पेश की कि एक महीने के अन्दर त्रयम्बकजी अङ्गरेज़ों के हवाले कर दिया जाय और इस दरमियान बतौर ज़मानत पेशवा के तीन क़िले सिंहगढ़, पुरन्धर और रायगढ़ फ़ौरन् कम्पनी के सुपुर्द कर दिए जायँ।

किन्तु इस बार भी एलफ़िन्सटन और लॉर्ड हेस्टिंग्स की

* "I think a quarrel with the Peshwa desirable."—Elphinston's *Diary*, 6th Aripl, 1817.

वास्तविक इच्छा पूरी न हुई। एलफिन्सटन दूसरी बार अङ्गरेज़ी सेना से पूना के नगर को घेरने वाला ही था जब कि ८ मई सन् १८१७ को कायर बाजीराव ने, जो युद्ध के लिए बिलकुल तैयार न था, सिंहगढ़, पुरन्धर और रायगढ़ तीनों क़िले कम्पनी के नाम लिख दिए और अपने क़िलेदारों के नाम आज्ञापत्र जारी कर दिए। पेशवा बाजीराव के साथ अङ्गरेज़ों की इससे आगे की काररवाइयों को बयान करने से पहले हम इस स्थान पर त्रयम्बकजी का शेष जीवन वृत्तान्त दो चार शब्दों में दे देना चाहते हैं।

त्रयम्बकजी का अन्त

या तो त्रयम्बकजी के थाने से भागने का सारा क़िस्सा ही झूठा था अथवा वह सन् १८१८ में फिर गिरफ़्तार कर लिया गया। इस बार वह बनारस के निकट चुनार के क़िले में रक्खा गया। अनेक यूरोपियन यात्री यहाँ समय समय पर उससे मिलने के लिए आए। इनमें पादरी (बिशप) हीबर सन् १८२४ में त्रयम्बकजी से मिला। बिशप हीबर ने लिखा है कि—

"त्रयम्बकजी बड़ी सख़्ती के साथ क़ैद था। उस पर एक यूरोपियन और एक हिन्दोस्तानी गारद रहती थी, उसे सन्तरियों की आँखों से कभी ओझल होने न दिया जाता था। उसके सोने के कमरे में भी तीन खिड़कियाँ थीं, जो बरामदे की तरफ़ खुलती थीं और जिनमें लोहे के सीख़चे लगे हुए थे। इस बरामदे ही में गारद मौजूद रहती थी। × × ×"

एक दूसरा यात्री मेजर आर्चर, जो १६ फ़रवरी सन् १८२९

को त्र्यम्बकजी से मिलने गया, लिखता है कि—"त्र्यम्बकजी सन् १८१८ से लगातार क़ैद है, किन्तु उसके क़ैद की मियाद उसके महान शत्रु काल ने क़रीब क़रीब नियत कर दी है। उसका इलाज करने वाले वैद्य कहते हैं कि वह चन्द महीने से अधिक नहीं जी सकता। जब हम लोग मिलने गए तो उसका जिगर इतना बढ़ा हुआ था कि क़रीब आधी डबलरोटी के बराबर उसके पेट से एक ओर को निकला हुआ दिखाई देता था। वह अत्यन्त दुर्बल हो गया था और सचमुच उसे देखकर दया आती थी। उसने यह प्रार्थना की कि मुझे मरने के लिए काशी जाने दिया जाय। किसी ने इस प्रार्थना पर ध्यान न दिया × × ×"

त्र्यम्बकजी अनपढ़ था, तथापि वह एक दूरदर्शी नीतिज्ञ और मराठा सत्ता का सच्चा हितचिन्तक था। उसका अपराध केवल यह था कि वह अपने स्वामी पेशवा बाजीराव का जीवन भर वफ़ादार रहा और एलफ़िन्सटन जैसों की चालों की ओर से बाजीराव को सावधान करता रहा। इस अपराध के दण्ड में उसे अपमान और कष्टों के साथ चुनार के क़िले के एक कोने में वर्षों सड़ सड़ कर प्राण देने पड़े और अन्त में उसकी यह अन्तिम इच्छा भी कि मेरी काशी में मृत्यु हो, पूरी न होने दी गई।

बाजीराव से छेड़छाड़

सिंहगढ़, पुरन्धर और रायगढ़ के क़िले कम्पनी को मिल चुके थे। तथापि बाजीराव से कम्पनी की माँगें भेड़िये और मेमने

की सुप्रसिद्ध आख्यायिका में, भेड़िए की माँगों के समान क्षण क्षण बढ़ती और बदलती चली गईं ।

सिंहगढ़ इत्यादि पर कम्पनी का क़ब्ज़ा हुए एक महीना भी न बीता था कि दो वर्ष पूर्व की गङ्गाधर शास्त्री की मृत्यु के मामले को फिर से उखाड़ा गया। उस समय केवल त्रयम्बकजी को इस हत्या के लिए दोषी ठहराया गया था। किन्तु अब पेशवा बाजीराव को भी उसके लिए ज़िम्मेवार बताया गया, और इस कल्पित अपराध के बदले में पेशवा के अधिकांश उर्वर प्रान्त, जिनमें पेशवा का गुजरात का हिस्सा भी शामिल था, पेशवा से तलब किए गए।

यह इलाक़ा गायकवाड़ को देने के लिए अथवा गङ्गाधर के कुटुम्बियों को देने के लिए नहीं माँगा गया, वरन् अङ्गरेज़ कम्पनी बहादुर के लिए। किसी प्रकार पूना में पेशवा को घेर लिया गया और सङ्गीनों के बल १३ जून सन् १८१७ को कातर बाजीराव से एक नए सन्धिपत्र पर दस्तख़त करा लिए गए। इस सन्धि-पत्र के अनुसार पेशवा ने अपना गुजरात का तमाम भाग, जिस पर अङ्गरेज़ों की वर्षों से नज़र थी, कम्पनी के हवाले कर दिया।

कहा जाता है कि इस अवसर पर बाजीराव ने यह भी स्वीकार कर लिया कि गङ्गाधर शास्त्री की हत्या में मेरा हाथ था।

सङ्गीनों अथवा कूटनीति के बल इस प्रकार किसी से अपराध स्वीकार करा लेना कम्पनी के भारतीय इतिहास में कोई अपूर्व बात नहीं थी। शिवाजी के वंशज सतारा के राजा प्रतापसिंह पर जब यह दोष लगाया गया कि तुम अङ्गरेज़ों के विरुद्ध साजिश कर रहे हो,
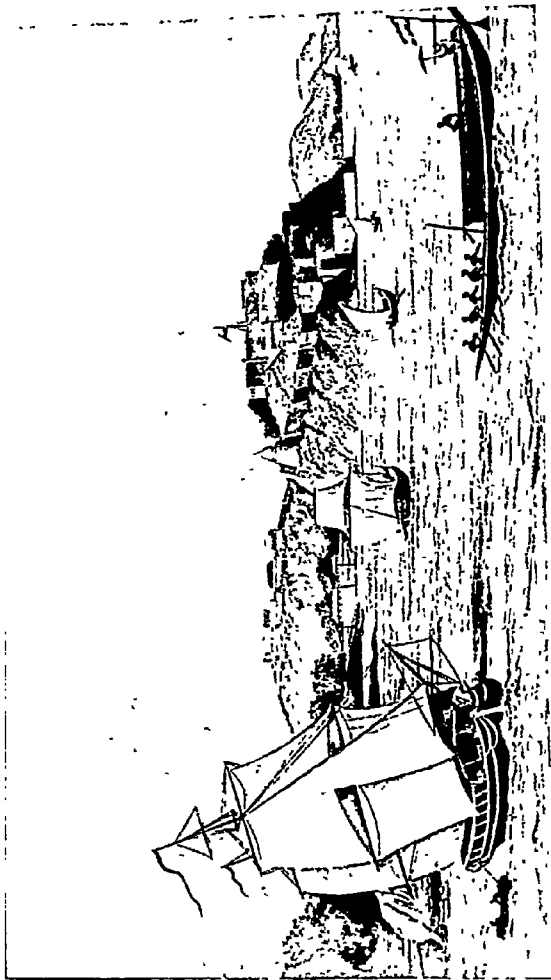
चुनार का क़िला

इस क़िले में त्र्यम्बक जी डांगलिया कैद रहकर घुल-घुलकर मर गया

[विक्टोरिया-मेमोरियल कलकत्ता, के क्यूरेटर की कृपा द्वारा]

तो उस से यह साफ़ कहा गया था कि यदि तुम यह लिख कर दे दो कि तुम वास्तव में इस अपराध के दोषी हो तो तुम्हें तुम्हारी गद्दी पर बहाल रक्खा जायगा। मेजर वामनदास वसु ने अपनी पुस्तक "दी स्टोरी ऑफ़ सतारा" में दिखलाया है कि राजा प्रतापसिंह ने अपनी गद्दी से हाथ धो लिए, किन्तु इस झूठे स्वीकृतिपत्र पर दस्तखत करना स्वीकार न किया। भेद केवल यह था कि वाजीराव में प्रतापसिंह जैसी आन की कमी थी। तथापि एक वात ध्यान देने योग्य इस सम्बन्ध में यह है कि वाजीराव ने अङ्गरेजों के कहने में आकर अथवा डर कर अपने तईं दोषी स्वीकार कर लिया, प्रतापसिंह ने झूठा दोष स्वीकार न किया तथापि परिणाम दोनों का एक ही हुआ। प्रतापसिंह और वाजीराव दोनों को अपनी अपनी गद्दियाँ छोड़ कर कम्पनी की क़ैद में प्राण देने पड़े।

पेशवा वाजीराव अब वेहद घबरा गया। १३ जून की सन्धि के वाद ही वह पूना छोड़ कर पण्ढरपुर चला गया। वहाँ से वह सतारा के निकट माहुली नामक तीर्थ पर पहुँचा जहाँ कि कृष्णा और यन्ना नदियों का सङ्गम है। यहाँ उसने सर जॉन मैल-कम को मिलने के लिए बुलाया। वाजीराव ने मैलकम से साफ़ कहा कि सङ्गीनों के बल मुझसे पूना की सन्धि पर दस्तखत कराए गए हैं, और वह सन्धि मेरे लिए कितनी हानिकर है। वाजीराव ने इस अवसर पर मैलकम से एलफ़िन्सटन की जो जो शिकायतें कीं उनमें से एक यह भी थी कि एलफ़िन्सटन के जासूस ऐसी बुरी तरह से मेरी देख रेख करते हैं कि एलफ़िन्सटन को यहाँ तक पता

होता है कि मैंने किस दिन क्या क्या खाना खाया।* साथ ही बाजीराव ने अपने और कम्पनी के बीच फिर से सच्ची मित्रता क़ायम करने की अभिलाषा प्रकट की। सर जॉन मैलकम ने इलाज के तौर पर बाजीराव को यह सलाह दी कि आप एक सेना जमा करके पिण्डारियों के दमन में अङ्गरेज़ों को सहायता देने के लिए भेजिए। भोले बाजीराव ने पूना लौट कर मैलकम की सलाह के अनुसार अङ्गरेज़ों की मदद के लिए सेना जमा करनी शुरू कर दी।

एक ओर मैलकम ने बाजीराव को सेना जमा करने की सलाह दी, दूसरी ओर एलफ़िन्सटन ने इसी सेना के आधार पर गवरनर-जनरल को यह लिखना शुरू कर दिया कि बाजीराव अङ्गरेज़ों पर हमला करने की तैयारी कर रहा है! एलफ़िन्सटन ने गवरनर-जनरल को यह भी लिखा कि बाजीराव के मुक़ाबले के लिए कम्पनी की और अधिक सेना फ़ौरन् पूना भेजी जाय। यह बात ध्यान देने योग्य है कि एलफ़िन्सटन ने एक बार भी बाजीराव से यह नहीं पूछा कि आप यह सेना क्यों जमा कर रहे हैं, और न उसके सेना जमा करने पर कोई एतराज़ किया।

३० अक्तूबर सन् १८१७ की शाम को जनरल स्मिथ और करनल बर के अधीन एक पूरी अङ्गरेज़ी पलटन ने अचानक पूना की छावनी में प्रवेश किया। एलफ़िन्सटन ने फ़ौरन् शहर से चार मील

---

* Memorandum of Lieut. General Briggs.

की दूरी पर एक ऊँची जगह इस सारी सेना को खड़ा कर दिया। मराठे अब अच्छी तरह समझ गए कि अङ्गरेज फिर लड़ने पर कटिबद्ध हैं।

खड़की का संग्राम

५ नवम्बर सन् १८१७ को पूना के निकट खड़की नामक स्थान पर अङ्गरेज़ों तथा पेशवा की सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ। बापू गोखले पेशवा की सेना का प्रधान सेनापति था। अनेक अङ्गरेज इतिहास-लेखकों ने सेनापति गोखले के युद्ध-कौशल और मराठा सेना की वीरता की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। गोखले के विषय में एक विद्वान अङ्गरेज, जो स्वयं खड़की की लड़ाई में मौजूद था, लिखता है—"गोखले के भावों का आदर न करना असम्भव है। × × × इतिहास की देवी अपने देश के लिए सच्ची भक्ति और सेवा का सेहरा गोखले के सर से बाँधेगी।"*

किन्तु गोखले की देशभक्ति, उसके युद्ध-कौशल अथवा उसकी वीरता किसी से भी काम न चल सका। बालाजी पन्त नातू और यशवन्तराव घोरपड़े जैसों के प्रताप से पेशवा की सेना अनेक विश्वासघातकों से छलनी छलनी हो चुकी थी। ये लोग न केवल पद पद पर अपने यहाँ की खबरें ही अङ्गरेजों को पहुँचाते रहते थे,

* "It is impossible not to respect the spirit of Gokhale . . . the Muse of history will encircle his name with a laurel for fidelity and devotion in his country's cause."—*Fifteen Years in India, etc.*, pp. 304, 505.

वरन् गोखले के प्रयत्नों को असफल करने की भी अपनी शक्ति भर कोशिश कर रहे थे। जनरल स्मिथ की सेना पहले मैदान में पहुँची। करनल बर की सेना इसके कुछ बाद आकर मिली। गोखले की इच्छा थी कि करनल बर की सेना के आने से पहले ही जनरल स्मिथ की सेना पर हमला कर दिया जाय। किन्तु उसके कुछ नमकहराम साथियों ने उसकी इस इच्छा को पूरा न होने दिया। इसके अतिरिक्त पूर्वोक्त अङ्गरेज़ लिखता है कि—"× × × गोखले की फ़ौजें ऐन मौक़े पर उसका साथ छोड़ कर चल दीं।"*

परिणाम यह हुआ कि खड़की के सुप्रसिद्ध संग्राम में अङ्गरेज़ों की विजय रही; और पेशवा बाजीराव को बापू गोखले तथा कुछ सेना सहित मैदान से हट जाना पड़ा। इसके उपरान्त पेशवा तथा कम्पनी की सेनाओं में कई और छोटे मोटे संग्राम हुए जिनमें विजय कभी इस ओर और कभी उस ओर रही। इन्हीं में से एक संग्राम में बापू गोखले की मृत्यु हुई, जिससे पेशवा बाजीराव का साहस और भी टूट गया।

दूसरी ओर एलफ़िन्सटन जानता था कि महाराष्ट्र देश में अङ्गरेज़ इस समय काफ़ी बदनाम हैं। सम्भव था कि मराठे इस प्रकार चुपचाप पेशवाई का अन्त न देख सकते और चारों ओर से आ आकर बाजीराव के झण्डे के नीचे जमा हो जाते। इस आपत्ति से बचने के लिए एलफ़िन्सटन ने देशद्रोही बालाजी पन्त नातू

---

* ". . . his troops . . . deserted him in the hour of rial."—Ibid, p. 492.

द्वारा उस समय के सतारा के राजा के साथ साज़िश शुरू की। पार्लिमेण्ट के काग़ज़ों से पता चलता है कि सतारा के राजा से यह झूठा वादा किया गया कि इस युद्ध के बाद पेशवा के तमाम अधिकार और मराठा साम्राज्य की बाग आपके हाथों में दे दी जायगी।* पार्लिमेण्ट के काग़ज़ों से यह भी मालूम होता है कि सतारा के राजा के साथ अङ्गरेज़ों की साज़िशें कम से कम गङ्गाधर शास्त्री के समय से जारी थीं। सतारा के दरबार में भी ऐसे आदमियों की कमी न थी जो धन के बदले में अङ्गरेज़ों के इस षड्यन्त्र में शामिल होने को तैयार थे। सतारा का राजा प्रतापसिंह इस समय नाबालिग़ था। अन्त में एलफ़िन्सटन और बालाजी पन्त नातू की चालों में आकर नाबालिग़ प्रतापसिंह की माँ ने शिवाजी के वंशज और मराठा साम्राज्य के वास्तविक अधिराज सतारा के राजा की ओर से समस्त महाराष्ट्र प्रजा के नाम यह एलान प्रकाशित कर दिया कि पेशवा बाजीराव के साथ कोई किसी प्रकार का सम्बन्ध न रक्खे और इस संग्राम में सब अङ्गरेज़ों को मदद दें। निस्सन्देह सतारा दरबार की इस ग़लती ने पेशवा बाजीराव के हाथ पैर तोड़ दिए।

पेशवा राज्य का अन्त

बाजीराव ने विवश होकर जून सन १८१८ में सर जॉन मैलकम से सुलह की बात चीत की। उस समय भी बाजीराव के पास

---

* *The Story of Satara*, by Major B. D. Basu.

लगभग ६,००० सवार और ५,००० पैदल सेना मौजूद थी ; और असीरगढ़ का क़िला अभी तक उसके हाथों में था। अन्त में सर जॉन मैलकम ने गवरनर-जनरल की आज्ञानुसार बाजीराव को आठ लाख रुपए सालाना की पेनशन देकर कानपुर के निकट गङ्गा के किनारे बिठूर नामक स्थान में भेज दिया। पेशवा के इलाक़े में से एक छोटी सी फाँक बतौर जागीर के सतारा के राजा को दे दी गई, और शेष समस्त इलाक़ा कम्पनी के राज्य में मिला लिया गया, जो आज कल के बम्बई प्रान्त में शामिल है। इस प्रकार पेशवा राज्य का अन्त हुआ, और अन्तिम पेशवा बाजीराव का ३२ वर्ष पदच्युत रहने के बाद सन् १८५० में ७५ वर्ष की आयु में देहान्त हुआ। सन् १८५७ के विप्लव का सुप्रसिद्ध नेता नाना साहब बाजीराव का दत्तक पुत्र था।

आठ लाख रुपए सालाना की उदार पेनशन का कारण बताते हुए सर जॉन मैलकम ने गवरनर-जनरल के नाम जो पत्र लिखा उसका सार इस प्रकार है—

"मैं राजा से लेकर रङ्क तक इस देश के सब लोगों के भावों से भली भाँति परिचित हूँ, इसलिए मैं निस्सङ्कोच कह सकता हूँ कि अङ्गरेज़ सरकार का यश और उसकी कुशल दोनों इसी में हैं कि बाजीराव को क़ैद करने या मार डालने के बजाय रज़ामन्दी से उससे पदत्याग करवा कर पेनशन देकर कहीं भेज दिया जाय। यदि उसे मार डाला गया तो लोगों को उस पर दया आयगी, कुछ की आकांक्षाएँ जागेंगी और विदेशी शासन से असन्तुष्ट लोग कभी भी किसी भी नए हक़दार के झण्डे के नीचे जमा

हो जायँगे। यदि बाजीराव को क़ैद कर लिया गया तो भी लोगों की सहानुभूति उसके साथ रहेगी और मराठों के चित्तों में एक न एक दिन बाजीराव के भाग निकलने और फिर से अपने देश को आज़ाद करने की आशा बनी रहेगी। किन्तु यदि बाजीराव अपनी सेना आदिक को बरख़ास्त करके स्वयं पद त्याग कर दे तो लोगों पर हमारे हित में बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा।"*

अन्तिम पेशवा बाजीराव के समय में पूना की मनुष्य-संख्या लगभग ८ लाख अर्थात् इस समय से चौगुनी थी। उस समय के पूना निवासियों की ख़ुशहाली के विषय में एक अङ्गरेज़ यात्री लिखता है—

"जब मैं दक्षिण गया तो मैं यह देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और चकित रह गया कि पूना का शहर निहायत ही ख़ुशहाल दिखाई देता था। हाल में जो बरबादी, लूट और अकाल वहाँ हो चुके थे उनके कारण उस समय की यह ख़ुशहाली और भी अत्यन्त आश्चर्यजनक मालूम होती थी। तमाम मुख्य मुख्य गलियों और बाज़ारों में इस तरह के लोग भरे हुए थे जिनकी पोशाक और जिनकी शकल से यह मालूम होता था कि जितना आराम, जितना सुख, जितना व्यापार और जितनी दस्तकारियाँ उनके यहाँ हैं उससे अधिक हमारे (यूरोप के) किसी भी बड़े से बड़े व्यापारिक नगर में नहीं हैं। चारों ओर सर्वव्यापी ख़ुशहाली और बहुतायत का हँसता हुआ दृश्य दिखाई देता था। जब मैंने रेज़िडेण्ट से इसका ज़िक्र किया तो उसने मुझे इत्तला दी कि जब से पेशवा पूना लौट कर आया है उसने पूना

---

* Kaye's *Life of Malcolm*, vol. ii, p. 24.

की समृद्धि को बढ़ाने के उद्देश से पूना और उसके आस पास के प्रदेश में हर प्रकार के टैक्स माफ़ कर दिए हैं ; और इसलिए ताकि पेशवा के अज्ञान में भी कोई राजकर्मचारी प्रजा के साथ ज़बरदस्ती न कर सके, उसने कोतवाल का पद तक उड़ा दिया है ।"*

भोंसले राज्य और अङ्गरेज़

सींधिया से राजपूताना छीना जा चुका था, पेशवा की गद्दी का ख़ात्मा हो चुका था, गायकवाड़ अरसे से अङ्गरेजों की अधीनता स्वीकार कर ही चुका था, अब केवल दो और मराठा राज्य बाक़ी थे, नागपुर का भोंसले राज्य और इन्दौर का होलकर राज्य।

---

* "On a late excursion into the Deccan I was exceedingly pleased and surprised to observe the great appearance of prosperity which the city of Poonah exhibited, and which was the more remarkable after the scenes of desolation, plunder and famine, it had been so lately subjected to: all the principal streets and bazars were crowded with people, whose dress and general appearance displayed symptoms of comfort and happiness, of business and industry, not to be exceeded in any of our own great commercial towns. The whole, indeed, was a smiling scene of general welfare and abundance. On noticing this to the Resident, he informed me that the Peshwa, since his return, with a view of promoting the prosperity of Poonah, had exempted it and the surrounding country from every description of tax; and to prevent the possibility of exactions unknown to himself, had even abolished the office of Cutwal."—R. Richards, 23rd July, 1801, quoted by William Digby in his *Prosperous British India—A Revelation*, page 450.

नागपुर के राजा को आम तौर पर वरार का राजा कहा जाता था, किन्तु वरार का प्रान्त दूसरे मराठा युद्ध के बाद अङ्गरेज़ों ने मराठों से छीन कर निज़ाम को दे दिया था। नागपुर का नगर भोंसले राज्य की राजधानी था। इसलिए इसके बाद से भोंसले कुल के राजाओं को नागपुर के राजा कहना अधिक उचित है।

दूसरे मराठा युद्ध के समय राघोजी भोंसले नागपुर का राजा था। युद्ध के बाद वही एलफ़िन्सटन, जो बाद में पूना का रेज़िडेण्ट नियुक्त हुआ, चार वर्ष नागपुर का रेज़िडेण्ट रहा। एलफ़िन्सटन ने अगणित बार ही राघोजी भोंसले को यह समझाने का प्रयत्न किया कि आपको कम्पनी के साथ सबसीडीयरी सन्धि कर लेनी चाहिए, किन्तु राघोजी ने जीते जी कम्पनी के साथ इस प्रकार का सम्बन्ध स्वीकार न किया।

नागपुर में एलफ़िन्सटन के कारनामे उसके नाम जनरल वेल्सली के केवल दो पत्रों से ज़ाहिर हो सकते हैं। जनरल वेल्सली ने एक बार एलफ़िन्सटन के उत्तर में उसे लिखा—

"आपके ६ तारीख़ के पत्र के उत्तर में मेरी प्रार्थना है कि ख़बरें हासिल करने के लिए आपको जो कुछ भी करना पड़ जाय, कीजेगा। अगर आप यह समझें कि जयकिशन राम आपको ख़बरें ला लाकर देगा या दूसरों से मँगवा देगा, तो आप गवरनर-जनरल से उसकी सिफ़ारिश करने का वादा कर लें, और गवरनर-जनरल को इस विषय की इत्तला दे दें।"*

* "In answer to your letter of the 6th, I beg you will do whatever you think necessary to procure intelligence. If you

एक दूसरे पत्र में जनरल वेल्सली ने एलफ़िन्सटन को लिखा—

"रामचन्द्र राव ने जाने से पहले हमारा काम करने का वादा किया। मैं आपसे उसकी सिफ़ारिश करता हूँ। वह चलता पुरज़ा आदमी मालूम होता है, और इसमें सन्देह नहीं कि राजा अपनी ओर से अत्यन्त महत्व-पूर्ण मामलों की बातचीत उसकी मारफ़त कर चुका है। मैंने गवरनर-जनरल से सिफ़ारिश की है कि उसे ६,००० रुपए सालाना पेन्शन दी जाय। मैं समझता हूँ, उससे आपको बड़ी काम की ख़बरें मिलेंगी।"*

लॉर्ड हेस्टिंग्स अपने पहली फ़रवरी सन् १८१४ के रोज़नामचे में उस समय के अङ्गरेज़ रेज़िडेण्टों के कर्तव्यों को बयान करते हुए लिखता है—

"देशी नरेशों के साथ सन्धियाँ करते समय हम उन्हें स्वाधीन नरेश स्वीकार कर लेते हैं। फिर हम उनके दरबारों में अपने रेज़िडेण्ट भेजते हैं। ये रेज़िडेण्ट बजाय केवल राजदूत का कार्य करने के दरबार के ऊपर अपना ही अनन्य अधिकार जमा बैठते हैं; वहाँ के नरेश के तमाम निजी कारबार में दख़ल देने लगते हैं; प्रजा के विद्रोही लोगों को राज्य के विरुद्ध भड़काते

---

think that Jaykishen Ram will procure it for you or give it to you, promise to recommend him to the Governor-General, and write to His Excellency on the subject,"—Colebrooke's *Life of the Duke of Wellington*, vol. i, p. 113.

* "Before Ram Chandra went away he offered his services. I recommend him to you. He appears a shrewd fellow, and he has certainly been employed by the Raja in his most important negotiations. I have recommended him to the Governor-General for a pension of 6,000 Rupees a year. I think he will give you useful intelligence."—Ibid

हैं, और अपने अधिकार का बड़े ज़ोरों के साथ प्रदर्शन करते हैं। अङ्गरेज़ सरकार की सहायता प्राप्त करने के लिए ये रेज़िडेण्ट कोई न कोई नया झगड़ा (या गद्दी का नया अधिकारी) खड़ा कर लेते हैं। और उस पर इस तरह का रङ्ग चढ़ाते हैं कि अङ्गरेज़ सरकार पूरे बल से उस मामले को अपने हाथ में ले लेती है; न केवल उस एक बात पर ही, बल्कि रेज़िडेण्ट के समस्त व्यवहार पर अपने रेज़िडेण्ट की हर बात का अङ्गरेज़ सरकार पूरी तरह पक्ष लेती है।"*

एलफ़िन्सटन का मुख्य कार्य नागपुर में राजा के आदमियों को रिशवतें देकर अपनी ओर फोड़ना, साज़िशें करना और झूठी ख़बरें और गवाहियाँ तैयार कराना था। तथापि राजा राघोजी के जीते जी कम्पनी को नागपुर में अधिक सफलता प्राप्त न हो सकी।

अप्रेल सन् १८१६ में राघोजी का देहान्त हुआ। एलफ़िन्सटन की जगह उस समय जेनकिन्स रेज़िडेण्ट था। राघोजी के एक पुत्र

---

* "In our treaties with them we recognise them as independent sovereigns. Then we send a Resident to their courts Instead of acting in the character of ambassador, he assumes the functions of a dictator; interferes in all their private concerns; countenances refractory subjects against them; and makes the most ostentatious exhibition of this exercise of authority. To secure to himself the support of our Government, he urges some interest which, under the color thrown upon it by him, is strenuously taken up by our Council; and the Government identifies itself with the Resident not only on the single point but on the whole tenor of his conduct."
—*Private Journal of the Marquess of Hastings*, February 1st, 1814, Panini Office reprint.

था जिसका नाम पुरुषाजी था और जिसे वाला साहब भी कहते थे। वाला साहब दिमाग़ का कुछ कमज़ोर था और कहा जाता है कि शासनकार्य चला सकने के अयोग्य था। राघोजी के अप्पा साहब नामक एक भतीजा था जो बहुत होशियार था। अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट ने अप्पा साहब को बहका कर उसे अपनी साज़िशों का केन्द्र बनाया।

राघोजी भी इस बात को थोड़ा बहुत समझता था। एक बार अप्पा साहब की कुछ निजी जागीर के विषय में राजा राघोजी और उसके भतीजे अप्पा साहब में कुछ मतभेद हुआ। कम्पनी को इस मामले में दख़ल देने का कोई अधिकार न था। तथापि रेज़िडेण्ट ने अप्पा साहब के पक्ष में राघोजी पर दबाव डाला और राघोजी को रेज़िडेण्ट की इच्छा के अनुसार उस मामले का निबटारा कर देना पड़ा। राजा राघोजी ने, जो इन सब बातों को देख रहा था, अपना अन्त समय निकट आने पर अपने इकलौते बेटे बाला साहब और भतीजे अप्पा साहब दोनों को अपने पास बुलाया और बाला साहब का हाथ अप्पा साहब के हाथ में देकर गम्भीर किन्तु करुण स्वर से अप्पा साहब से कहा—"इस कुल की तथा इस राज्य की इज़्ज़त अब तुम्हारे हाथों में है।"

राघोजी के मरते ही बाला साहब नागपुर की गद्दी पर बैठा, और अप्पा साहब बाला साहब की ओर से राज्य का समस्त कारबार चलाने के लिए नियुक्त किया गया। रेज़िडेण्ट जेनकिन्स ने अङ्गरेज़ सरकार की ओर से दरबार में पहुँच कर बाला साहब और अप्पा साहब दोनों को बधाई दी।

राघोजी की मृत्यु से अङ्गरेजों को बड़ी ख़ुशी हुई। इतिहास-लेखक प्रिन्सेप लिखता है—

"उस दरबार में जो साज़िशें जारी थीं और जो घटनाएँ उस समय हो रही थीं उन सबसे यह आशा की जाती थी कि नागपुर राज्य के साथ सबसीडीयरी सन्धि करने के लिए जिस अवसर को इतने दिनों से प्रतीक्षा थी, वह अब आ पहुँचा।"*

आधी रात की सन्धि

राघोजी की मृत्यु का समाचार पाते ही हेस्टिंग्स ने जेनकिन्स को लिखा कि तुम जिस तरह भी हो सके, अप्पा साहब को सबसीडीयरी सन्धि के जाल में फँसाने की कोशिश करो। इस समय नागपुर के अन्दर जो साज़िशें जारी थीं उन्हें प्रिन्सेप ने अपने इतिहास में विस्तार के साथ बयान किया है। हमें इन साज़िशों के गोरखधन्धे में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। इन साज़िशों में ही २४ अप्रेल सन् १८१६ को ठीक आधी रात के समय किसी प्रकार अप्पा साहब को घेर कर और डरा कर उससे असहाय राजा परसोजी भोंसले की ओर से सबसीडीयरी सन्धि पर हस्ताक्षर करा लिए गए। अप्पा साहब की आयु उस समय केवल २० वर्ष की थी। प्रिन्सेप ने अपनी पुस्तक में दस पृष्ठों के अन्दर बयान

* "The intrigues and passing occurrences of that court likewise promised equally to give the long sought opportunity of establishing a subsidiary connection with the Nagpur State."—*History of Political and Military Transactions in India*, by Prinsep.

किया है कि यह घोर अत्याचार रात्रि के अन्धकार में किस प्रकार किया गया। इस पाप-कर्म में अङ्गरेजों के मुख्य सहायक अप्पा साहब के दो मन्त्री नागू पण्डित और नारायण पण्डित थे। इस नई सन्धि द्वारा अप्पा साहब ने भोंसले राज्य के अन्दर राज्य की अधिकांश सेना को बरख़ास्त करके कम्पनी की सेना को उनकी जगह क़ायम कर देने और कम्पनी की सेना के ख़र्च के लिए २० लाख से ३० लाख तक सालाना देने का वादा किया।

जब इस सन्धि की सूचना हेस्टिंग्स के पास पहुँची तो उसने बड़े हर्ष के साथ अपने निजी रोज़नामचे में दर्ज किया—

"१ जून सन् १८१६—आज के दिन मेरे पास वह सन्धिपत्र पहुँचा है जिसके द्वारा नागपुर वास्तव में हमारे संरक्षण में कम्पनी की एक सामन्त रियासत बन गया। पिछले राजा राघोजी भोंसले की अकस्मात् मृत्यु के कारण वहाँ के दरबार में इस तरह के अपूर्व आपसी झगड़े खड़े हो गए कि जिनसे मुझे वह कार्य पूरा करने का मौक़ा मिल गया जिसके लिए हम पिछले बारह वर्ष से निष्फल प्रयत्न कर रहे थे। यद्यपि चतुराई से काम लेना पड़ा है और धन द्वारा अनेक बाधाएँ दूर की गई हैं, तथापि मैं यह कह सकता हूँ कि मेरी सन्धि के असूल अत्यन्त पवित्र हैं × × ×।"*

---

* "June 1st (1816). This day has brought to me the treaty of alliance by which Nagpur in fact ranges itself as a feudatory state under our protection. A singular contention of personal interests at the court of that country, resulting from the unexpected death of Raghuji Bhonsla, the late Raja, has enabled me to effect that which has been fruitlessly laboured at for the last

इसी तारीख़ के रोज़नामचे में हेस्टिंग्स ने विस्तार के साथ लिखा है कि अप्पा साहब के विरुद्ध महल के अन्दर किस प्रकार एक दल खड़ा किया गया, किस प्रकार उसे यह लोभ दिया गया कि चूँकि बाला साहब के कोई पुत्र नहीं है, इसलिए यदि तुम अङ्गरेज़ों का कहना मान लोगे तो अङ्गरेज़ बाला साहब को कोई पुत्र गोद न लेने देंगे और अन्त में नागपुर की गद्दी तुम्हें दिलवा देंगे, किस प्रकार अप्पा साहब को राज्य के भीतर से तथा बाहर से तरह तरह के झूठे डर दिखाए गए, इत्यादि।

अङ्गरेज़ों ही के पत्रों से यह भी ज़ाहिर होता है कि नागपुर महल के अन्दर उस समय दो दल थे। पुरुपाजी और उसके पक्ष के लोग भोंसले, सींधिया और पेशवा में सच्चा मेल क़ायम करना चाहते थे। अङ्गरेज़ अप्पा साहब को सामने करके उसे पुरुपाजी, सींधिया और पेशवा तीनों की ओर से बहका रहे थे और इस नए दल द्वारा उस मेल को रोकने के प्रयत्नों में लगे हुए थे।

जो नई सबसीडीयरी सन्धि कम्पनी और अप्पा साहब के बीच हुई उसके अनुसार अप्पा साहब ने भोंसले राज्य की ओर से बीस लाख से लेकर तीस लाख रुपए सालाना तक कम्पनी को देने का वादा किया; किन्तु राज्य की कुल वार्षिक आय लगभग साठ लाख रुपए थी। इतिहास-लेखक विलसन लिखता है—

---

twelve years. Though dexterity has been requisite, and money has removed obstructions, I can affirm, that the principles of my engagement are of the purest nature."—*Private Journal of the Marquess of Hastings*, pp. 254, et. seq

"इस सन्धि की शर्तें कुछ सख़्त थीं, और सबसीडी की रक़म राज्य की वार्षिक आय के मुनासिब औसत से ज़्यादा थी। यही बोझ रियासत के लिए बहुत अधिक था और इस पर विशेष कण्टिनजेण्ट सेना का ख़र्च और बढ़ा दिया गया। राजा को इस बात की शिकायत करने की काफ़ी वजह थी कि उसके नए मित्रों की मित्रता उसे मँहगी पड़ी।"*

राजा पुरुषाजी भोंसले की हत्या

स्वभावतः नागपुर के सभी समझदार नीतिज्ञ और दरबारी इस सन्धि के विरुद्ध हो गए। पुरुषाजी के पक्ष वालों की संख्या बढ़ने लगी। रेज़िडेण्ट जेनकिन्स को डर हो गया कि जब तक पुरुषाजी जीवित है, सम्भव है कि उसके पक्ष के लोग किसी दिन इस सन्धि को रद्द कराने का प्रयत्न करें। अचानक पहली फ़रवरी सन् १८१७ को प्रातःकाल, जबकि अप्पा साहब किसी कारण नागपुर से बाहर था, पुरुषाजी अपने बिस्तरे पर मरा हुआ पाया गया। उसके मृत शरीर की दशा से ज़ाहिर था कि रात को उसकी हत्या की गई है। नागपुर भर में यह आम अफ़वाह फैल गई कि पुरुषाजी की हत्या कराने वाला रेज़िडेण्ट जेनकिन्स है। किन्तु

* "The conditions of the treaty were somewhat severe, and the amount of the subsidy exceeded a due proportion of the revenues of the country. The charge of the contingent was an addition to a burthen already too weighty for the state, and the Raja had some grounds for complaining of the costliness of his new friends."—Mill, vol. viii, p. 186.

जेनकिन्स ने इसकी कुछ भी परवा न की, और न गवरनर-जनरल को इसकी सूचना तक दी।

राजा अप्पा साहब भोंसले

बाला साहब (पुरुषाजी) की मृत्यु के बाद अप्पा साहब नागपुर लौट आया और अप्पा साहब ही अब नागपुर की गद्दी पर बैठा।

किन्तु अङ्गरेजों की ओर राजा अप्पा साहब भोंसले का रुख अब बदलने लगा। इसके मुख्य कारण दो थे। एक बाला साहब की हत्या और दूसरे सबसीडीयरी सन्धि। अप्पा साहब अब इस बात को अनुभव करने लगा कि उस सन्धि का बोझ रियासत के ऊपर असह्य है। उसे पता चला कि मेरे दो मन्त्रियों नागू पण्डित और नारायण पण्डित ने अङ्गरेजों के साथ मिल कर मुझे सबसीडीयरी सन्धि के जाल में फँसवाया है। अप्पा साहब ने इन दोनों मन्त्रियों को बरख़ास्त कर दिया और उस सन्धि के बदलने के लिए रेज़िडेण्ट जेनकिन्स और गवरनर-जनरल हेस्टिंग्स दोनों से प्रार्थनाएँ करनी शुरू कीं। रेज़िडेण्ट और उसके साथियों ने इसके जवाब में राजा अप्पा साहब का तरह तरह से अपमान करना और उसे दिक़ करना शुरू किया।

इसी समय मराठा मण्डल के प्राचीन नियम के अनुसार पेशवा बाजीराव ने राजा अप्पा साहब के पास एक खिलअत भेजी। पेशवा से अभी तक अङ्गरेजों की लड़ाई शुरू न हुई थी। इसलिए

यह ख़िलअत पूना के रेज़िडेण्ट एलफ़िन्सटन की जानकारी में और उसकी अनुमति से भेजी गई। नवम्बर सन् १८१७ में ख़िलअत नागपुर पहुँची। ख़िलअत के पहिने जाने के लिए जो विशेष दरबार होने वाला था उसमें राजा अप्पा साहब ने विधिवत् जेनकिन्स को भी निमन्त्रित किया। जेनकिन्स ने दरबार में जाने से इस बिना पर इनकार कर दिया कि पेशवा की ख़िलअत को स्वीकार करना नागपुर के राजा के लिए कम्पनी की ओर शत्रुता दर्शाने के तुल्य है। अप्पा साहब ने इसके उत्तर में रेज़िडेण्ट को विश्वास दिलाया कि आपकी आशङ्का निर्मूल है। किन्तु जेनकिन्स पर इसका कोई असर न हुआ। दरबार हुआ, ख़िलअत पहनी गई, किन्तु जेनकिन्स दरबार में न पहुँचा।

अप्पा साहब ने इस समय रेज़िडेण्ट के व्यवहार की कुछ शिकायतें गवरनर-जनरल को लिख कर भेजीं। उनसे मालूम होता है कि कम्पनी की विशाल सेना के उपयोग के लिए जितना अनाज तथा अन्य सामान नागपुर आता जाता था उस पर अङ्गरेज़ एक पाई महसूल की न देते थे; जितनी सबसीडीयरी सेना अङ्गरेज़ों ने नागपुर में रख रक्खी थी और जिसका तमाम ख़र्च वे अप्पा साहब से माँगते थे वह २४ अप्रैल सन् १८१६ वाले सन्धिपत्र से भी कहीं अधिक थी; इत्यादि। अप्पा साहब की प्रार्थना केवल यह थी कि इस तरह की शिकायतें दूर कर दी जायँ और राज्य की आर्थिक स्थिति को देख कर सबसीडीयरी सेना के ख़र्च की रक़म को इतना कर दिया जाय जिससे राजशासन के अन्य

कार्य भी चल सकें। सितम्बर सन् १८१७ के अन्त में सर जॉन मैलकम इस सम्बन्ध में अप्पा साहब से मिला। अप्पा साहब ने मैलकम का खूब सत्कार किया। मुलाक़ात के बाद सर जॉन मैलकम ने गवरनर-जनरल को लिखा कि अप्पा साहब की हार्दिक इच्छा अङ्गरेज़ों के साथ मित्रता क़ायम रखने की है। किन्तु गवरनर-जनरल और रेज़िडेण्ट दोनों का पक्का इरादा भोंसले राज्य को अन्त कर देने का था। रेज़िडेण्ट ने २६ नवम्बर सन् १८१७ को गवरनर-जनरल को साफ़ लिख दिया कि अप्पा साहब का इस तरह की शिकायतें पेश करना ही अङ्गरेज़ सरकार के साथ उसकी शत्रुता का अकाट्य प्रमाण है!

२६ नवम्बर से पहले ही जेनकिन्स युद्ध की पूरी तैयारी कर चुका था। प्रोफ़ेसर विलसन रेज़िडेण्ट की इन तैयारियों के विषय में लिखता है—

"बरार की सबसीडीयरी सेना का अधिकांश भाग इससे पहले ही युद्ध के मैदान में पहुँच चुका था, और एक सैन्यदल लगभग तेरह मील दूर लेफ़्टिनेण्ट करनल स्कॉट के अधीन रामटेक में मौजूद था, जिसे जब चाहे, बुलाया जा सकता था; इस दल में दो पलटन मद्रासी सिपाहियों की, × × × एक पैदल पलटन गोरों की और एक पलटन देशी सवार तोपख़ाने की, और तीन पलटन नम्बर छै बङ्गाल सवारों की शामिल थीं। पलटनें रेज़िडेण्ट की आज्ञानुसार २५ तारीख़ को रेज़िडेन्सी के मैदान में आ पहुँचीं, और वहाँ पर लगभग चार सौ और सैनिक, दो तोपें और दो कम्पनी बङ्गाल पैदलों की और कुछ मद्रासी सवार उनमें आकर मिल गए।

२६ तारीख़ को प्रातःकाल सीताबल्डी की पहाड़ियों पर ये तमाम सेना लाकर बाज़ाब्ता खड़ी कर दी गई ।"*

अप्पा साहब और अङ्गरेज़ों में युद्ध

इस विशाल सैन्यदल को ठीक राजधानी के सामने देख कर नागपुर के नीतिज्ञों का घबरा उठना स्वाभाविक था। दरबार के अन्दर तुरन्त दो दल पैदा होगए। एक राजा अप्पा साहब और उसके कुछ साथी, जो अभी तक युद्ध से बचना चाहते थे, और दूसरे वे लोग जो युद्ध को अनिवार्य देख कर फ़ौरन् अङ्गरेज़ी सेना पर हमला करने के पक्ष में थे। कहा जाता है कि इस वाद विवाद के अन्दर ही अप्पा साहब की इच्छा के विरुद्ध उसकी कुछ सेना ने २६ नवम्बर की शाम को सीताबल्डी की अङ्गरेज़ी सेना पर हमला कर दिया। किन्तु अङ्गरेज़ी सेना व्यवस्थित और तैयार थी। दूसरी ओर की सेना में अव्यवस्था और अनिश्चितता। परिणाम यह हुआ कि मराठा सेना को हार कर पीछे हट जाना पड़ा।

राजा अप्पा साहब ने रेज़िडेण्ट को कहला भेजा कि मेरी सेना ने मेरी इच्छा के विरुद्ध कार्य किया है, मुझे इसका दुख है और आप इसके लिए जो शर्तें तजवीज़ करें, मुझे मञ्ज़ूर होंगी। जेनकिन्स ने अप्पा साहब के उत्तर में लिख भेजा कि मामला मेरे हाथों से अब गवरनर-जनरल के हाथों में चला गया है, तथापि यदि आप अपनी सेना को फ़ौरन् अमुक अमुक स्थान से पीछे

* Mill, vol. viii, p. 188.

हटा लें तो मैं गवरनर-जनरल की आज्ञा आने तक युद्ध बन्द रखने के लिए तैयार हूँ। अप्पा साहब ने रेजिडेण्ट की यह शर्त स्वीकार कर ली, और २७ तारीख़ की रात को तमाम मराठा सेना, जिस जिस स्थान से जेनकिन्स ने कहा था, हटा ली गई।

हेस्टिंग्स के एक पत्र में लिखा है कि इस प्रकार युद्ध को स्थगित करने में जेनकिन्स का उद्देश केवल यह था कि उसकी थकी हुई सेना को विश्राम मिल जाय, और और अधिक सेना नागपुर पहुँच जाय। अप्पा साहब ने बार बार सुलह की प्रार्थना की, किन्तु रेजिडेण्ट ने इसकी ओर ध्यान न दिया।

२९ तारीख़ को सुबह कम्पनी की कुछ और पलटनें नागपुर पहुँचीं। उसी दिन शाम को राजा ने जेनकिन्स को लिखा कि मैं अपनी अधिकांश सेना बरख़ास्त करने के लिए तैयार हूँ, मेरी प्रार्थना है कि सबसीडीयरी सन्धि क़ायम रक्खी जाय और मेरी सामान्य शिकायतों का समाधान कर दिया जाय। जेनकिन्स ने फिर वही उत्तर दिया कि मामला अब मेरे अधिकार से बाहर है। एक पर एक अङ्गरेज़ी सेनाएँ बराबर नागपुर पहुँचती रहीं, अन्त में १४ दिसम्बर सन् १८१७ को जेनकिन्स ने नीचे लिखी शर्तें अप्पा साहब के पास भेजीं, और साथ ही यह लिख दिया कि यदि १६ तारीख़ को प्रातःकाल चार बजे तक इन शर्तों को पूरा न किया गया तो फ़ौरन् मराठा सेना के ऊपर चारों ओर से हमला कर दिया जायगा। शर्तों का सार इस प्रकार था—

(१) राजा अप्पा साहब इस बात को स्वीकार करे कि उसकी

सेना के अङ्गरेज़ी सेना पर हमला कर बैठने के कारण तमाम रियासत अङ्गरेज़ों की हो चुकी और अप्पा साहब केवल अंङ्गरेज़ कम्पनी की दया से अपने लिए कुछ आशा कर सकता है।

(२) राजा की तमाम युद्ध सामग्री तोपख़ाना इत्यादि कम्पनी के हवाले कर दिए जायँ और बाद में जब रियासत की सेना की संख्या निश्चित हो जायगी तो इस सामान का एक भाग वापस कर दिया जायगा।

(३) रेज़िडेण्ट के साथ मिल कर राजा अपनी तमाम अरब सेना को तथा अन्य सेना को, जितनी जल्दी हो सके, बरख़ास्त कर दे।

(४) राजा की सेना फ़ौरन्, जिस स्थान पर अङ्गरेज़ कहें, चली जाय।

(५) नागपुर का नगर ख़ाली कर दिया जाय और कम्पनी की सेना उस पर क़ब्ज़ा कर ले। बाद में सन्धि हो जाने पर नगर वापस दे दिया जायगा।

(६) राजा स्वयं अङ्गरेज़ों की छावनी में चला आए और जब तक सब मामला तय न हो जाय वहीं रहे। इत्यादि।

इसके बदले में जेनकिन्स ने यह वादा किया कि यदि अप्पा साहब इन सब शर्तों को स्वीकार कर लेगा तो नागपुर का तमाम राज्य ज्यों का त्यों अप्पा साहब को दे दिया जायगा और अङ्गरेज़ अप्पा साहब के शत्रुओं से उसकी रक्षा करेंगे।

निस्सन्देह ये शर्तें अत्यन्त अपमानजनक थीं। किन्तु अप्पा

साहब नातजरुबेकार, परवश तथा कायर था। विशेष कर नारायण पण्डित जैसे विश्वासघातक मन्त्री उसे जिस तरह चाहे खिला रहे थे। अप्पा साहब ने ये सब शर्तें मन्जूर कर लीं। किन्तु नागपुर की सेना में थोड़े बहुत इस तरह के लोग मौजूद थे जो जान बूझ कर आत्महत्या करने के लिए तैयार न थे। इन लोगों ने अङ्गरेजों के साथ लड़ने का निश्चय कर लिया, और अप्पा साहब तक को अङ्गरेज़ी छावनी में जाने से ज़बरदस्ती रोकने की कोशिश की। विशेष कर भोंसले राज्य में उस समय अनेक अरब सिपाही और जमादार थे। इन लोगों की वीरता और स्वामिभक्ति दोनों अत्यन्त ऊँचे दरजे की थीं। नागपुर के महल की रक्षा अधिकतर इन अरबों ही के सुपुर्द थी।

१६ तारीख़ को ६ बजे राजा का यह सन्देश रेज़िडेण्ट के पास पहुँचा कि अरब लोग मुझे आने नहीं देते और हथियार अङ्गरेजों के हवाले करने में कुछ देर लगेगी, किन्तु दो तीन दिन के अन्दर सब ठीक कर दिया जायगा। इस पर जेनकिन्स ने राजा को लिख भेजा कि यदि आप ९ बजे तक हमारी छावनी में आ जायँ तो बाक़ी शर्तों के पूरा करने के लिए अधिक समय दे दिया जायगा। ९ बजे से कुछ पहले राजा अप्पा साहब स्वयं अङ्गरेज़ी छावनी के अन्दर पहुँच गया।

अप्पा साहब की इस विचित्र कातरता का ठीक भेद नहीं खुलता। तथापि कुछ समय बाद राजा अप्पा साहब ने बयान किया कि इस अवसर पर उसका मन्त्री नारायण पण्डित, जो

अङ्गरेज़ों से मिला हुआ था, अप्पा साहब को किसी तरह धोखा देकर अङ्गरेज़ी छावनी में ले गया।

इस पर भी राज्य की सेना ने अप्पा साहब की आज्ञा मानने से इनकार कर दिया। यह सेना अपने स्थान से न हटी। १६ दिसम्बर को १२ बजे दिन के जब अप्पा साहब की इजाज़त से अङ्गरेज़ी सेना तोपों पर कब्ज़ा करने के लिए पहुँची तो राज्य की सेना ने अङ्गरेज़ी सेना पर गोलियाँ चलाईं। युद्ध शुरू होगया। राज्य की सेना में कोई योग्य सेनापति न था। उनका राजा तक शत्रु के हाथों में था। तथापि अङ्गरेज़ी सेना इस वफ़ादार सेना को उसके स्थान से न हटा सकी, और बिना अपना कार्य पूरा किए हार कर अपने ख़ेमों की ओर लौट आई।

इस संग्राम के बाद अङ्गरेज़ों ने देख लिया कि इतनी विशाल सेना के होते हुए भी लड़ाई में अरबों को परास्त कर सकना इतना सरल न था। जेनकिन्स ने अब फिर अपनी कूटनीति से काम लिया। लिखा है कि १७ और १८ दो दिन अरब सेना के सरदारों को समझाने बुझाने में खर्च किए गए, किन्तु व्यर्थ। अरबों ने नगर ख़ाली करने से साफ़ इनकार किया। मजबूर होकर अङ्गरेज़ सेनापति जनरल डवटन को फिर युद्ध की तैयारी करनी पड़ी। नागपुर नगर पर चढ़ाई करने के लिए एक नया तोपख़ाना अकोला से मँगाया गया। दोबारा मैदान गरम हुआ। २४ दिसम्बर को जनरल डवटन के अधीन अङ्गरेज़ी सेना ने पूरा ज़ोर लगा कर अरबों को महल से हटाने का प्रयत्न किया। किन्तु अङ्गरेज़ी सेना को बेहद

नुक़सान उठाना पड़ा और वीर तथा वफ़ादार अरब अपने स्थान से न हिले । कम्पनी की सेना को दूसरी वार हार कर पीछे हट जाना पड़ा ।

इसके बाद फिर ५ दिन तक अरबों के साथ समझौते की बात चीत होती रही । अप्पा साहब ने भी अरबों पर महल छोड़ देने के लिए काफ़ी जोर दिया। अन्त में मालूम नहीं किन शर्तों पर ३० दिसम्बर को प्रातःकाल नागपुर महल की संरक्षक अरब सेना महल से बाहर निकली । एक अङ्गरेज़ अफ़सर अरबों और उनके कुटुम्बियों को पहुँचाने के लिए मलकापुर तक उनके साथ गया । ३० दिसम्बर के दोपहर को कम्पनी की सेना ने अरक्षित नगर और महल पर क़ब्ज़ा कर लिया । निस्सन्देह भोंसले राज्य के अन्त होने के दृश्य में इन वीर अरबों की अदम्य स्वामिभक्ति ही एक मात्र तेज की किरण थी ।

गवरनर-जनरल हेस्टिंग्स और रेज़िडेण्ट जेनकिन्स की सनन्त इच्छाएँ पूरी हो गईं । किन्तु राजा अप्पा साहब की आशाएँ फिर एक बार झूठी साबित हुईं । अप्पा साहब के रेज़िडेन्सी में आने से पूर्व उससे यह स्पष्ट वादा कर लिया गया था कि आपके राज्य का कोई भाग आप से न लिया जायगा । किन्तु अब इस वादे के साफ़ विरुद्ध राजा अप्पा साहब से कहा गया कि आप केवल निम्नलिखित शर्तों पर नागपुर का तख़्त वापस ले सकते हैं—

(१) नर्वदा के उत्तर का अपना तमाम इलाक़ा और उसके साथ कुछ इलाक़ा नर्वदा के दक्षिण का, और बरार, गाविलगढ़,

सरगूजा और जशपुर में जो कुछ आपके अधिकार हैं, वे सब आप कम्पनी को दे दें

(२) आपके शेष राज्य का समस्त शासन-प्रबन्ध जिन मन्त्रियों द्वारा चलाया जाय वे कम्पनी सरकार के विश्वासपात्र हों और रेज़िडेण्ट की सलाह के अनुसार कार्य करें।

(३) आप और आपका कुटुम्ब नागपुर के महल में कम्पनी की सेना के संरक्षण में रहें।

(४) २४ अप्रेल सन् १८१६ की आधी रात को, जो तीस लाख सालाना की रक़म सबसीडीयरी सेना के खर्च के लिए नियत की गई थी, उसकी तमाम बक़ाया अदा की जाय और जब तक ऊपर लिखा इलाक़ा कम्पनी के हवाले न कर दिया जाय तब तक यह रक़म बराबर अदा की जाती रहे।

(५) भोंसले राज्य के जो जो क़िले अङ्गरेज़ चाहें, वे उनके हवाले कर दिए जायँ।

(६) राज्य के जिन जिन लोगों को अङ्गरेज़ बतावें वे पकड़ कर अङ्गरेज़ों के हवाले कर दिए जायँ। और

(७) सीताबल्डी की दोनों पहाड़ियाँ, उसके पास का बाज़ार और आस पास की काफ़ी ज़मीन अङ्गरेज़ों के हवाले कर दी जाय, ताकि वे जिस तरह आवश्यक समझें, उसके ऊपर क़िलेबन्दी कर लें।

राजा अप्पा साहब को अब इसके सिवाय और कोई चारा दिखाई न दिया कि इन लज्जाजनक शर्तों को स्वीकार करके

अङ्गरेज़ों की क़ैद से अपने महल में आने की इजाज़त हासिल करे। राजा ने स्वीकार कर लिया, और ९ जनवरी सन् १८१८ को वह अपने महल में पहुँचा। महल और नगर दोनों पर अङ्गरेज़ी सेना का पहरा जारी रहा।

वास्तव में जिन शर्तों पर राजा अप्पा साहब ने नागपुर की गद्दी फिर से प्राप्त की वे केवल लज्जाजनक ही नहीं, वरन् असम्भव भी थीं; अर्थात् जो इलाक़ा राजा के पास बाक़ी छोड़ दिया गया था उसकी आय से क़ैदी राजा के लिए कम्पनी की नक़दी की माँग को पूरा कर सकना और शासन का ख़र्च चला सकना सर्वथा असम्भव था।

अप्पा साहब ने महल में पहुँचते ही इस बात को अनुभव कर लिया। उसने अब रेज़िडेण्ट से प्रार्थना की कि मेरा शेष समस्त राज्य भी मुझसे ले लिया जाय और मेरे गुज़ारे के लिए एक सालाना पेनशन नियत कर दी जाय। किन्तु गवरनर-जनरल ने स्वीकार न किया।

कारण यह था कि गवरनर-जनरल युवक अप्पा साहब का राज्य ले लेने के लिए अवश्य लालायित था, किन्तु पेनशन की फ़ुज़ूल-ख़र्ची करना न चाहता था। यह बात जानने योग्य है कि अप्पा साहब, जिसकी आयु इस समय केवल २२ वर्ष की थी, मार्किस ऑफ़ हेस्टिंग्स को अपना 'बाप' और रेज़िडेण्ट जेनकिन्स को अपना 'बड़ा भाई' कहा करता था।

गवरनर-जनरल ने अप्पा साहब की इस अन्तिम प्रार्थना को

अस्वीकार करने का जो कारण कम्पनी के डाइरेक्टरों को लिख कर भेजा वह यह था कि इस प्रार्थना को स्वीकार करने में कम्पनी को धन की हानि है !

अप्पा साहब पर झूठे दोष

किन्तु समस्त राज्य हड़पने के लिए किसी नए बहाने की आवश्यकता थी । तुरन्त रेज़िडेण्ट जेनकिन्स ने क़ैदी और पङ्गुल अप्पा साहब पर एक नया इलज़ाम लगाया कि अप्पा साहब और उसके दो मुख्य मन्त्री नागूपण्डित और रामचन्द्र वाग चौरागढ़ और मण्डला के क़िलेदारों, रतनपुर के सूबेदार और पेशवा बाजी-राव के साथ अङ्गरेज़ों के विरुद्ध साज़िश कर रहे हैं । इस इलज़ाम के थोथेपन पर बहस करने की आवश्यकता नहीं है । जो सुबूत जेनकिन्स ने इन इलज़ामों के लिए पेश किए वे लॉर्ड हेस्टिंग्स तक को काफ़ी मालूम नहीं हुए ।

इस पर जेनकिन्स ने नागपुर की पुरानी घटनाओं में से अप्पा साहब के विरुद्ध एक और नया इलज़ाम खोद निकाला । वह यह कि अप्पा साहब ही ने आज्ञा देकर पिछले राजा पुरुषाजी 'बाला साहब' की हत्या करवाई थी । इस नए इलज़ाम के सुबूत में बयान और शहादतें तैयार कर ली गईं और इसी इलज़ाम की बिना पर जेनकिन्स ने १५ मार्च सन् १८१८ को अप्पा साहब और उसके दोनों मन्त्रियों को महल से गिरफ़्तार करवा कर फ़ौरन् अपने यहाँ क़ैद कर लिया ।

गवरनर-जनरल को जब इस घटना का पता लगा तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने डाइरेक्टरों को लिखा कि जो इलज़ाम रेज़िडेण्ट ने इससे पहले अप्पा साहब पर लगाया था उसके सुबूत किसी को भी सन्तोषजनक मालूम न होते, किन्तु इस नए इलज़ाम से काम चल जायगा। उसके कुछ शब्द ये हैं—

"मुझे यह अनुभव हुआ कि अपनी कीर्ति बनाए रखने की दृष्टि से हमें अप्पा साहब को गद्दी से उतारने के लिए इससे अधिक ज़ोरदार वजह और कोई न मिल सकती थी कि उस पर इस तरह की हत्या का इलज़ाम लगाया जाय। यदि मुक़दमा चलाया जाता तो उसे दोषी साबित करने के लिए सुबूत आसानी से पेश किए जा सकते थे।"*

इस तरह के सुबूतों के विषय में एक स्थान पर लॉर्ड मैकॉले ने लिखा है—

"लोग उसे एक हारा हुआ आदमी समझते थे, और उन्होंने उसके साथ इस तरह का व्यवहार किया जैसा कि हमारे कुछ पाठकों ने भारत में देखा होगा कि बहुत से कौवे मिल कर किसी बीमार गिद्ध को चोंच मार मार कर ख़त्म कर डालते हैं। उस देश में जब जब भाग्य किसी ऐसे आदमी का साथ छोड़ देता है जो पहले कभी महान रह चुका हो और जिससे लोग डरते रहे हों, तब तब उस मनुष्य की जो गति होती है

* "It appeared, however, that for our reputation, we could not go on stronger grounds in deposing him than those of such a murder. The proofs for conviction were easily producible, should the case be tried; . . ."—Marquess of Hastings' Despatch to the Secret Committee of the Court of Directors, dated 21st August, 1820.

उसकी यह कौवों और गिद्ध वाली मिसाल कुछ बेजा मिसाल नहीं है। एक क्षण के अन्दर वे तमाम ख़ुशामदी, जो कुछ समय पहले उस मनुष्य के लिए झूठ बोलने को तैयार थे, जालसाज़ी करने को तैयार थे, उसकी विषय-वासना के सामान जमा कर देने को तैयार थे, उसके लिए दूसरों को ज़हर दे देने को तैयार थे, वे सब अब उसके विजयी शत्रुओं के अनुग्रह-पात्र बनने के लिए लपक लपक कर उस पर दोष लगाते हैं। कोई भारतीय गवरमेण्ट यदि किसी ख़ास आदमी को बरबाद कर देना चाहे तो गवरमेण्ट के लिए अपनी इस इच्छा को केवल प्रकट कर देना काफ़ी है, और २४ घण्टे के अन्दर गवरमेण्ट के पास उस आदमी के विरुद्ध गहरे इलज़ाम और उनके साथ साथ इस तरह को पूरी पूरी और मौक़े की गवाहियाँ पहुँच जायँगी कि जिन्हें देख कर कोई भी ऐसा मनुष्य, जो एशियाई झूठ से परिचित न हो, उन पर पक्का विश्वास कर लेगा। ग़नीमत समझना चाहिए यदि उस अभागे के जाली दस्तख़त किसी ख़िलाफ़ क़ानून पट्टे के नीचे न बना लिए जायँ, और यदि कोई ख़िलाफ़ क़ानून काग़ज़ उसके मकान के किसी छिपे हुए कोने में चुपके से न डाल दिया जाय।"*

---

* "They considered him a fallen man, and they acted after the kind some of our readers may have seen in India, a crowd of crows pecking a sick vulture to death. No bad type of what happens in that country, as often as fortune deserts one who had been great and dreaded. In an instant, all the sycophants who had lately been ready to lie for him, to forge for him, to pander for him, to poison for him, hasten to purchase the favor of his victorious enemies by accusing him. An Indian Government has only to let it be understood that it wishes a particular man to be

निस्सन्देह प्रत्येक ऐसा भारतवासी, जो अपने देश की पुलिस और कचहरियों से परिचित है, जानता है कि लॉर्ड मैकॉले का उपरोक्त कथन अक्षरशः सत्य है। किन्तु भारत के पिछले दो सौ वर्ष के इतिहास में क्लाइव, वारन हेस्टिंग्स, हॉलवेल, सर एलाइजाह इम्पे, एलफिन्सटन और जेनकिन्स जैसे सैकड़ों छोटे बड़े अङ्गरेज़ों के कारनामों से यह पूरी तरह साबित है कि इस तरह का झूठ और जालसाज़ी कोई विशेष 'एशियाई' गुण हो नहीं है। इतिहास से यह भी ज़ाहिर है कि भारतीय चरित्र में यह रोग कब से, और कैसे और किनके संसर्ग से चमका।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि बाला साहब की हत्या का मुख्य अपराधी रेज़िडेण्ट जेनकिन्स था। उस समय के तमाम हालात और उल्लेखों से मालूम होता है कि अप्पा साहब इस विषय में सर्वथा निर्दोष था। अप्पा साहब को दोषी ठहराने का विचार तक अङ्गरेज़ों के चित्त में हत्या के कम से कम एक वर्ष बाद पैदा हुआ। तथापि यदि अप्पा साहब दोषी भी होता तो भी जेनकिन्स और उसके साथियों को अथवा कम्पनी सरकार को उसे दण्ड देने का

---

ruined, and in twenty-four hours it will be furnished with grave charges, supported by depositions so full and circumstantial, that any person, unaccustomed to Asiatic mendacity, would regard them as decisive It is well if the signature of the destined victim is not counterfeited at the foot of some illegal compact, and if some illegal paper is not slipped into a hiding place in the house."—Macaulay's *Essay on Warren Hastings.*

कोई अधिकार न था। इस पर अप्पा साहब को अपने तई निर्दोष साबित करने का कोई मौक़ा नहीं दिया गया और न अप्पा साहब के सामने कोई सुबूत पेश किए गए। वास्तव में पेशवा बाजीराव और राजा अप्पा साहब दोनों के मामलों में क़िस्सा 'भेड़िए और मेमने' का था। अप्पा साहब को दोषी ठहरा कर फ़ैसला किया गया कि उसे इलाहाबाद के क़िले में क़ैद कर दिया जाय। उसकी जगह नागपुर की दिखावटी गद्दी पर राघोजी भोंसले का एक दुधमुँहा नाती राजा बना कर बैठा दिया गया, और यह तय कर दिया गया कि नए राजा की नाबालग़ी में राज्य का समस्त प्रबन्ध रेज़िडेण्ट के हाथों में रहे।

भोंसले राज्य का बटवारा

जो सन्धि हाल में अप्पा साहब के साथ की गई थी और जो नए दुधमुँहे राजा के साथ क़ायम रही, उसके अनुसार भोंसले राज्य का लगभग आधा और अत्यन्त उर्वर भाग कम्पनी के शासन में आ गया। इस भाग में गढ़ामण्डला का प्रान्त, जिसमें मुख्य नगर जबलपुर है, और सोहागपुर, होशङ्गाबाद, सिवनी, छपारा, और गाडरवाड़ा (?) के ज़िले, जो नर्बदा के दक्षिण में हैं, शामिल थे। भोंसले राज्य की कुल सालाना आमदनी क़रीब साठ लाख थी, इसमें से वह हिस्सा, जो कम्पनी को मिला, अट्ठाइस लाख रुपए सालाना से ऊपर का था, जिसमें से कि गवरनर-जनरल के बयान के अनुसार वसूली के ख़र्च को निकाल कर साढ़े बाईस लाख रुपए सालाना नक़द कम्पनी को बचने लगे।

निस्सन्देह पेशवा बाजीराव और राजा अप्पा साहब दोनों के साथ कम्पनी के प्रतिनिधियों का व्यवहार इङ्गलिस्तान के प्रसिद्ध वक्ता एडमण्ड बर्क के निम्नलिखित शब्दों को बड़ी सुन्दरता के साथ चरितार्थ करता है। बर्क ने पहली दिसम्बर सन् १७८३ को इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सामने वक्तृता देते हुए कहा था—

"ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने देश की अन्य रियासतों के साथ जो विश्वासघात किया है उसके सम्बन्ध में मैं आपके सामने नीचे लिखी तीन बातें साबित करने का आप से वादा करता हूँ। पहली बात मैं यह कहता हूँ कि इमास पहाड़ (हिमालय पर्वत) से लेकर × × × रासकुमारी तक × × × भारत में एक भी राजा, या राज्य या नवाब, छोटा या बड़ा, ऐसा नहीं है जिसके साथ अङ्गरेज़ों का वास्ता पड़ा हो और जिसे उन्होंने बेच न डाला हो, मैं फिर कहता हूँ कि बेच न डाला हो, यद्यपि कभी कभी ऐसा भी हुआ है कि अङ्गरेज़ों ने जो कुछ सौदा किया उसे वे अपनी ओर से पूरा न कर सके। दूसरी बात मैं यह कहता हूँ कि एक भी ऐसी सन्धि नहीं है जो अङ्गरेज़ों ने कभी की हो और जिसे फिर उन्होंने तोड़ा न हो। तीसरी बात मैं यह कहता हूँ कि एक भी राजा या राज्य ऐसा नहीं है जिसने कभी भी कम्पनी के ऊपर किसी तरह का एतबार किया हो और जो बिलकुल बरबाद न हो गया हो; और कोई भी राजा या राज्य यदि किसी दरजे तक भी सुरक्षित या ख़ुशहाल है तो वह ठीक उस दरजे तक ही सुरक्षित या ख़ुशहाल है जिस दरजे तक कि उसने अङ्गरेज़ी क़ौम पर लगातार अविश्वास किया और उस क़ौम के साथ अदम्य शत्रुता जारी रक्खी।

"मेरी यह तीनों बातें निरपवाद हैं; मैं कहता हूँ कि पूरे अर्थों में निरपवाद हैं। ये बातें केवल दूसरी रियासतों के साथ कम्पनी के सम्बन्ध की

हैं, किन्तु ठीक इसी प्रकार की दूसरी बातें मैं कम्पनी के अपने इलाक़े के विषय में भी पेश करूँगा।"*

नागपुर पर क़ब्ज़ा करने और राजा अप्पा साहब को क़ैद कर लेने के बाद अङ्गरेजों के लिए केवल भोंसले राज्य के आधे इलाक़े तथा अनेक छोटे बड़े क़िलों पर क़ब्ज़ा करना बाक़ी रह गया था। मध्यभारत के इन क़िलों में से अनेक इतने दुर्गम थे कि कई अङ्गरेज सेनापतियों ने उनकी मजबूती की अत्यन्त प्रशंसा की है। एक अङ्गरेज़ लिखता है कि—"मालूम होता है कि प्रकृति ने इन क़िलों की भूमि को इसीलिए बनाया है कि स्वतन्त्रता और स्वाधीनता के

---

* "With regard, therefore, to the abuse of the external federal trust, I engage myself to you to make good these three positions: First, I say, that from Mount Imaus . . . to Cape Comorin . . . that there is not a single prince, state or potentate, great or small, in India with whom they have come into contact, whom they have not sold, I say sold, though sometimes they have not been able to deliver according to their bargain. Secondly, I say that there is not a single treaty they have ever made, which they have not broken. Thirdly, I say that there is not a single prince or state who ever put any trust in the Company who is not utterly ruined; and that none are in any degree secure or flourishing but in the exact proportion to their settled distrust and irreconcilable enmity to this nation.

"These assertions are universal : I say, in the full sense universal. They regard the external and political trust only, but I shall produce others fully equivalent in the internal."—Burke's Speech on Fox India Bill, 1st December, 1783.

संग्राम वहाँ पर सफलता के साथ लड़े जा सकें।"* इनमें से कुछ क़िलों के भारतीय संरक्षकों ने काफ़ी वीरता और आत्मोत्सर्ग के साथ आख़ीर दम तक अपने क़िलों की रक्षा की। तथापि एक दूसरे के पश्चात् राजदीर और त्रयम्बक, तालनेर और असीरगढ़ जैसे लगभग तीस मज़बूत क़िले देखते देखते विदेशियों के हाथों में आगए। कहीं पर, जैसे राजदीर में, क़िलेदार और उसके सिपाहियों में झगड़ा होगया और सिपाहियों ने अपने ही क़िले को आग लगा दी। कहीं पर, जैसे त्रयम्बक में, राजा अप्पा साहब के भाग जाने का समाचार सुन कर सेना के हाथ पाँव ढीले होगए। कहीं पर, जैसे तालनेर में, क़िलेदार ने अङ्गरेज़ों की अधीनता स्वीकार कर ली, तथापि अङ्गरेज़ी सेना ने शरणागत शत्रुओं का क़त्ले आम कर डाला। अनेक जगह क़िलेदारों को धन का लोभ देकर उनसे अपने स्वामी और राज्य के विरुद्ध विश्वासघात कराया गया। प्रायः सब जगह नागपुर के नए दुधमुँहे राजा की ओर से कम्पनी के पक्ष में एलान बँटवाए गए। सबसे अधिक देर असीरगढ़ के क़िले ने ली। इस क़िले के अन्दर अधिकांश अरब सेना थी, जिसने एक वर्ष से ऊपर तक अर्थात् ७ अप्रेल सन् १८१९ तक शत्रु की अधीनता स्वीकार न की। अन्त में असीरगढ़ के पतन के साथ

---

* "She (Nature) seems to have marked them out as a theatre, on which the battles of freedom and independence might be successfully fought;"—*Journal of the Sieges of the Madras Army*, by Lieut. Lake, p. 107.

साथ वह समस्त इलाक़ा कम्पनी के अधीन हो गया जो हाल की सन्धि द्वारा उसे प्राप्त हुआ था।

अप्पा साहब का अन्त

इसके बाद हमारे लिए केवल अप्पा साहब की शेष कहानी को संक्षेप में बयान करना बाक़ी रह गया है। १५ मार्च सन् १८१८ को नागपुर में गिरफ़्तार होने के समय से लेकर मृत्यु के समय तक अप्पा साहब की कहानी अत्यन्त करुणाजनक, और उपन्यास के समान मालूम होती है। अप्पा साहब को कम्पनी की कई सौ पैदल और कुछ सवार सेना की निगरानी में जबलपुर के रास्ते नागपुर से इलाहाबाद के लिए रवाना किया गया। मालूम होता है कि अप्पा साहब के साथ अङ्गरेज़ों का व्यवहार उस समय हद दरजे का बुरा था। मार्ग में एक दिन रात को दो बजे के लगभग राचूरी नामक स्थान से अप्पा साहब अपनी गारद की आँख बचा कर और उसी गारद में से छै विश्वस्त हिन्दोस्तानी सिपाहियों और तीन सवारों को साथ लेकर एक सिपाही की पोशाक में भाग निकला। कम्पनी की ओर से फ़ौरन् उसकी गिरफ़्तारी के लिए बड़े बड़े इनामों का एलान किया गया और अनेक प्रयत्न किए गए। तथापि कई छोटे बड़े स्थानों में ठहरता हुआ अप्पा साहब महादेव पहाड़ पर पहुँचा, जहाँ पर कि गोंड़ जाति के लोग उसका स्वागत करने और उसकी सहायता करने के लिए तैयार थे। इन गोंडों की मदद से अप्पा साहब ने चौरागढ़ के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया। कहते हैं कि उस समय नागपुर में

भी अनेक लोग अप्पा साहब के पक्ष में थे, जो गुप्त रीति से उसे धन इत्यादि की सहायता पहुँचा रहे थे। बरहानपुर में भी कुछ अरब सेना अप्पा साहब के इन्तजार में मौजूद थी। अङ्गरेजों को जब उसे फिर से गिरफ़्तार करने में सफलता प्राप्त न हो सकी तो उन्होंने एलान किया कि यदि अप्पा साहब लौट आए तो उसे एक लाख रुपए सालाना की पेनशन पर कम्पनी के इलाक़े के अन्दर किसी भी स्थान पर रहने दिया जायगा। किन्तु अप्पा साहब ने अब स्वीकार न किया। उसने अब छत्तीसगढ़ के लोगों, राजा कीरतसिंह और भोपाल के कुछ सरदारों इत्यादि को अपनी ओर करने की कोशिश की। अन्त में करनल ऐडम्स के अधीन अङ्गरेजी सेना अप्पा साहब को गिरफ़्तार करने के लिए कई ओर से महादेव पहाड़ पर पहुँची। अप्पा साहब अब अपने विश्वस्त अनुचर प्रसिद्ध चीतू पिण्डारी और कुछ सवारों सहित असीरगढ़ के क़िले में जा पहुँचा। अङ्गरेजी सेना ने उसका पीछा किया। असीरगढ़ के क़िले के ठीक नीचे दोनों ओर की सेनाओं में लड़ाई हुई। सम्भव है कि अप्पा साहब उस समय गिरफ़्तार कर लिया जाता, किन्तु ठीक समय पर क़िले के अन्दर से जसवन्तराव लार की सेना ने निकल कर अङ्गरेजी सेना से अप्पा साहब को बचा लिया। इसके कुछ समय बाद ही वफ़ादार चीतू पिण्डारी किसी चीते का शिकार होगया। असीरगढ़ के क़िले के अन्दर से अप्पा साहब और अङ्गरेजों में फिर कुछ पत्र व्यवहार हुआ। अङ्गरेजों ने उसे अधीनता स्वीकार कर लेने के लिए कहा, किन्तु अप्पा साहब

ने फिर इनकार कर दिया। इसके बाद अप्पा साहब फ़क़ीर के वेश में केवल एक अनुचर सहित बरहानपुर की ओर निकल गया। बरहानपुर उस समय सींधिया की रियासत में था और सींधिया अङ्गरेज़ों के प्रभाव में आ चुका था। अप्पा साहब को बरहानपुर छोड़ कर लाहौर की राह लेनी पड़ी। कुछ दिनों वह एक साधारण व्यक्ति के समान लाहौर में रणजीतसिंह का मेहमान रहा। उसके बाद अप्पा साहब को लाहौर भी छोड़ना पड़ा। लाहौर से चल कर वह हिमालय पहाड़ के अन्दर कई बरस तक मण्डी की रियासत में वहाँ के राजा का मेहमान रहा। इसके पश्चात् वह फिर मध्य भारत की ओर लौटा। इस बार उसने जोधपुर रियासत के अन्दर महामन्दिर नामक सुप्रसिद्ध मन्दिर में आश्रय लिया। अङ्गरेज़ों ने जोधपुर के राजा पर ज़ोर दिया कि अप्पा साहब को कम्पनी के हवाले कर दिया जाय। किन्तु जोधपुर के राजा मानसिंह ने मन्दिर के मान और एशियाई आतिथ्यधर्म की मर्यादा को उल्लङ्घन करने से इनकार कर दिया। अन्त में जोधपुर के महामन्दिर में ही राजा मानसिंह के आतिथ्य में नागपुर के निर्वासित राजा अप्पाजी भोंसले ने अपनी ऐहिक जीवन-यात्रा का अन्त किया।

होलकर के साथ युद्ध

केवल एक और स्वाधीन मराठा राज्य बाक़ी रह गया था। दस वर्ष पूर्व अङ्गरेज़ों को जसवन्तराव होलकर के साथ जो सन्धि करनी पड़ी थी वह किसी तरह भी अङ्गरेज़ों की कीर्ति को बढ़ाने

वाली न थी। किन्तु इस बीच वीर जसवन्तराव होलकर पागल होकर मर चुका था, और होलकर राज्य के मुख्य कर्ता धर्ता अमीर ख़ाँ के साथ कम्पनी की उन साज़िशों ने, जिनका ऊपर ज़िक्र आ चुका है, होलकर राज्य में चारों ओर फूट, कुशासन और अराजकता फैला रक्खी थी। लॉर्ड हेस्टिंग्स को होलकर राज्य पर हमला करने का यह अच्छा अवसर दिखाई दिया। कम्पनी की सेना ने बिना किसी कारण होलकर राज्य पर हमला किया। २० दिसम्बर सन् १८१७ को महीदपुर नामक स्थान पर राज्य की सेना तथा कम्पनी की सेना में युद्ध हुआ। इस कुशासन की हालत में भी होलकर की सेना के मुसलमान प्रधान सेनापति रोशन बेग ने अपने तोपख़ाने की मदद से बड़ी वीरता के हाथ दिखलाए; यहाँ तक कि लिखा है, एक बार अङ्गरेज़ी सेना के पैर उखड़े हुए नज़र आने लगे। किन्तु होलकर सेना के अन्दर अभी विश्वासघातक अमीर ख़ाँ का दामाद सेनापति नवाब अब्दुल ग़फ़ूर ख़ाँ भी मौजूद था। एक मुसलमान लेखक लुत्फ़ुल्लाह लिखता है—

"यदि विदेशी उस लड़ाई में हार जाते तो लगभग दस हज़ार हथियार बन्द लोगों की सेना उनका सर्वनाश कर देने के लिए मौजूद थी, किन्तु ये तमाम उम्मीदें ख़ाक में मिल गईं। × × × उन्हें यह मालूम न था कि ठीक उस समय, जब कि होलकर के तोपख़ाने के मुख्य सेनापति रोशन बेग की वफ़ादारी और उसके वीर प्रयत्नों द्वारा अङ्गरेज़ हारने ही को थे, उसी समय नवाब अब्दुल ग़फ़ूर ख़ाँ अपने स्वामी के साथ विश्वासघात करके अपने साथ की तमाम सेना सहित मैदान छोड़ कर भाग गया।

जब तक अब्दुल ग़फ़ूर ज़िन्दा रहा, यह कलङ्क का टीका उसके माथे पर लगा रहा × × × ।"*

ज़ाहिर है कि विजय अङ्गरेज़ों की ओर रही। मॉंडेश्वर नामक स्थान पर सन्धि हुई। होलकर का बहुत सा इलाक़ा कम्पनी के राज्य में मिला लिया गया। बालक महाराजा ने कम्पनी के साथ सबसीडीयरी सन्धि कर ली। और अब्दुल ग़फ़ूर की सेवाओं के बदले में आज तक उसके वंशजों को कम्पनी की ओर से मालवा में जाओरा की रियासत मिली हुई है।

तीसरे मराठा युद्ध का अन्त

सींधिया के प्रधान सामन्तों को उससे अलग कर लिया गया। होलकर का बहुत सा इलाक़ा छीन कर उसे कम्पनी का सामन्त बना लिया गया। भोंसले का आधा राज्य छीन लिया गया और सबसी-

---

* "There would have been a host of about ten thousand armed men to destroy the foreigners, had they lost the battle, but all these hopes were frustrated. . . . Little did they know that Nawab Abdul Ghafoor Khan played the part of a traitor to his master, and deserted the field of battle with the force under his command, just at the moment when the English were on the point of loosing the battle, through the loyal and gallant exertions of Roshan Beg, the Captain-General of Holkar's artillery. The stain of this disgrace clung too firmly to the name of Abdul Ghafoor as long as he lived, . . ."—*The Autobiography of Lutufullah*, pp. 103, 104.

डीयरी सेना नागपुर में क़ायम कर दी गई। मराठा सत्ता के प्रधान स्तम्भ पेशवा और उसके राज्य दोनों का सदा के लिए खात्मा कर दिया गया। इस प्रकार तीसरे मराठा युद्ध के साथ साथ मराठा साम्राज्य का अन्त हो गया और हेस्टिंग्स और उसके साथियों की आशाएँ पूरी हुईं।

यह युद्ध मराठा जाति के साथ कम्पनी का अन्तिम महान युद्ध था। इस युद्ध द्वारा कम्पनी के भारतीय राज्य में ५०,००० वर्ग-मील से अधिक की वृद्धि हुई; जिसमें सतारा के राजा के लिए थोड़े से इलाक़े को छोड़ कर पेशवा के शेष समस्त राज्य और सींधिया, होलकर तथा भोंसले तीनों के अनेक उर्वर प्रान्त शामिल थे। इन पिछले तीन नरेशों के ये प्रदेश ही बाद में 'मध्यप्रान्त और मध्य-भारत' के नाम से विख्यात हुए और आज तक इन्हीं नामों से पुकारे जाते हैं। राजपूत राजाओं से भी उस रक्षा के बदले में, जो अङ्गरेजों ने इस युद्ध के समय में उनकी की (?), बहुत सा धन और बहुत सी भूमि ले ली गई। इस प्रकार अजमेर के नए ब्रिटिश प्रान्त की रचना हुई।

मराठा रियासतों के अतिरिक्त मछेरी, रीवाँ, सावन्तवाड़ी और करनूल जैसी छोटी छोटी रियासतों के साथ भी हेस्टिंग्स ने कई छोटे मोटे संग्राम किए, जिनमें उसे अपनी कूटनीति के बल काफ़ी सफलता प्राप्त हुई।

हेस्टिंग्स के कृत्यों में केवल एक और वर्णन करने योग्य है। मद्रास प्रान्त में उसने रय्यतवाड़ी तथा अनस्थायी बन्दोबस्त की

इस प्रथा को प्रचलित किया, जिसके कारण वहाँ की प्रजा दिन प्रतिदिन अधिकाधिक दरिद्र होती चली गई ।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों ने तीसरे मराठा युद्ध की विजय के उपलक्ष में लॉर्ड हेस्टिंग्स को इङ्गलिस्तान में ज़मींदारी ख़रीदने के लिए साठ हज़ार पाउण्ड अर्थात् लगभग ९ लाख रुपए नक़द इनाम में दिए ।

तैंतीसवाँ अध्याय

लॉर्ड ऐमहर्स्ट

१८२३—१८२८

पहला बरमा युद्ध

ऐडम्स

लॉर्ड हेस्टिंग्स के पश्चात् सात महीने ऐडम्स भारत का गवरनर-जनरल रहा। ऐडम्स के समय की एकमात्र उल्लेखनीय घटना यह थी। कलकत्ते की एक अङ्गरेज़ी पत्रिका 'कैलकटा जरनल' के अङ्गरेज़ सम्पादक जे० एस० बकिङ्घम ने अपने पत्र में कुछ ऐसी बातें लिख दीं जो ऐडम्स को नापसन्द थीं। ऐडम्स ने तुरन्त ज़बरदस्ती उसका बँधना बोरिया बँधवा कर जहाज़ में बैठा कर यूरोप भिजवा दिया।

ऐमहर्स्ट

१ अगस्त सन् १८२३ को लॉर्ड ऐमहर्स्ट भारत का गवरनर-

जनरल नियुक्त होकर कलकत्ते पहुँचा। ऐमहर्स्ट को भारत में आए चन्द महीने ही हुए थे कि उसने ब्रह्म देश के साथ, जिसे बरमा भी कहते हैं, युद्ध शुरू कर दिया।

बरमा के इलाके में लूट मार

ब्रह्म देश उन दिनों एक विशाल, स्वाधीन तथा अत्यन्त समृद्ध साम्राज्य था। बङ्गाल की सरहद पर आसाम और अराकान के प्रान्त बरमी साम्राज्य में सम्मिलित थे। बहुत दिनों से अङ्गरेज़ों की उस साम्राज्य के ऊपर नज़र थी। १८ वीं शताब्दी के अन्त से ही छेड़ छाड़ जारी थी। अराकान की सरहद बङ्गाल के ज़िले चट्ट-ग्राम की सरहद से मिली हुई थी। अराकान का राजा बरमा के महाराजा का सामन्त था। अङ्गरेज़ों ने अराकान की प्रजा के एक विद्रोही, किन्तु बलवान सरदार किङ्गबेरिङ्ग को अपनी ओर फोड़ा।

इतिहास-लेखक विलसन ने लिखा है कि सन् १७९७ और १७९८ में लगभग तीस चालीस हज़ार अराकान-निवासी अपना देश छोड़ कर किङ्गबेरिङ्ग के साथ चट्टग्राम जिले में आ बसे। मालूम नहीं, किन किन उपायों से और क्या क्या लोभ देकर बरमी प्रजा के इन लोगों को भड़का कर चट्टग्राम लाया गया। किन्तु लिखा है कि कम्पनी सरकार की ओर से इन लोगों के गुज़ारे के लिए उन्हें मुफ़्त ज़मीनें दी गईं; एक विशेष अफ़सर कप्तान कॉक्स इनके प्रबन्ध के लिए नियुक्त किया गया, और जहाँ पर वे आकर बसे

उस बस्ती का नाम कॉक्स बाज़ार रक्खा गया। विलसन लिखता है—

"बङ्गाल की सरकार ने यह निश्चय कर लिया था कि इन नए आगन्तुकों का एक स्थायी उपनिवेश बना कर उन्हें हर तरह की सुविधाएँ दी जायँ, और ज़िले के दक्षिणी भाग में जो ख़ाली ज़मीनें पड़ी हुई थीं, वे उन्हें दे दी गईं।"*

इसके बाद इन्हीं अराकानियों के ज़रिए कम्पनी के प्रतिनिधियों ने बरमा के अराकान प्रान्त पर हमले कराना और लूट मार कराना शुरू कर दिया। लॉर्ड मिण्टो के समय में, मई सन् १८११ में, इन लोगों ने किङ्गबेरिङ्ग के अधीन कम्पनी के इलाक़े से निकल कर बरमा के इलाक़े पर धावा मारा और बहुत सा सामान लूट का साथ लेकर फिर कम्पनी के इलाक़े में लौट आए। लॉर्ड मिण्टो ने डाइरेक्टरों के नाम अपने २३ जनवरी सन् १८१२ के पत्र में किङ्गबेरिङ्ग और उसके हमले का पूरा हाल दिया है, जिसमें बरमा के महाराजा और किङ्गबेरिङ्ग के परस्पर वैमनस्य का भी ज़िक्र किया गया है। इस पत्र में साफ़ लिखा है कि किङ्गबेरिङ्ग अङ्गरेज़ी इलाक़े में रह कर सन् १७९७ से इस हमले की तैयारी कर रहा था और चट्टग्राम में उसने ज़बरदस्त दल बल जमा कर रक्खा था।

इस पर बरमा के दरबार का यह समझना कि किङ्गबेरिङ्ग का

* "The Government of Bengal had resolved to admit the emigrants to the advantages of permanent colonisation, and assigned them unoccupied lands in the southern portion of the district."—Mill, vol. ix. p. 11.

हमला अङ्गरेजों के उकसाने और उनकी मदद से हुआ, यथार्थ था। वरमा के साथ उस समय तक अङ्गरेजों का किसी तरह का कोई झगड़ा न था। उस देश के महाराजा ने कम्पनी सरकार को लिखा कि या तो किङ्गबेरिङ्ग और उसके साथियों को वरमा दरबार के हवाले कर दिया जाय, और या वरमा की सेना को कम्पनी के इलाक़े में जाकर उन्हें गिरफ़्तार करने की इजाज़त दी जाय। अङ्गरेजों ने इस पर किङ्गबेरिङ्ग को हवाले करने का झूठा वादा कर लिया। इसके बाद किङ्गबेरिङ्ग लगभग प्रति वर्ष वरमी इलाक़े पर धावे मारता रहा। कई बार वरमा की सेना ने उस पर हमला किया। हर वार हार खाकर किङ्गबेरिङ्ग फिर भाग कर अङ्गरेजी इलाक़े में चला आता था। अङ्गरेज़ सरकार ने न वरमा की सेना को अपने इलाक़े में प्रवेश करने दिया और न किङ्गबेरिङ्ग को उनके हवाले किया। अन्त में सन् १८१५ में किङ्गबेरिङ्ग की मृत्यु हो गई।

किन्तु किङ्गबेरिङ्ग की मृत्यु के साथ वरमा की प्रजा की मुसीबतें ख़त्म न हुईं। उसके स्थान पर अब उसी तरह के दूसरे लोग खड़े कर दिए गए और बरमा की प्रजा पर बरावर धावे जारी रहे। वरमा दरवार ने फिर अङ्गरेजों से प्रार्थना की कि इन डाकुओं को हमारे हवाले कर दिया जाय। लॉर्ड मिण्टो ने डाइरेक्टरों के नाम अपने पत्रों में स्वीकार किया है कि इन धावों के कारण अराकान की प्रजा की वास्तव में बहुत बड़ी हानि हो चुकी थी और बरमा दरबार की शिकायत और उनकी माँग सर्वथा न्याय्य थी। तथापि इस बार भारत की अङ्गरेज़ सरकार ने यह कह कर साफ़ इन-

कार कर दिया कि ये लोग अब अङ्गरेज सरकार की प्रजा हैं, इसलिए इन्हें दूसरों के हवाले करना अङ्गरेज सरकार के असूलों के खिलाफ़ है।*

कच्छ की स्वाधीन रियासत पर हमला करने और उसकी स्वाधीनता को अन्त कर देने का एक मात्र कारण अङ्गरेज़ों ने यह बतलाया था कि कच्छ के कुछ डाकुओं ने काठियावाड़ के कुछ इलाक़े पर धावा मारा था, काठियावाड़ पेशवा के अधीन था और पेशवा अङ्गरेज़ों का मित्र था। पिण्डारी डाकुओं के दमन के नाम पर ही अङ्गरेज़ों ने समस्त मराठा साम्राज्य के साथ युद्ध छेड़ दिया था। किन्तु अब लगभग १५ वर्ष तक लगातार सहस्रों हथियारबन्द डाकू हर साल अङ्गरेज़ी इलाक़े से निकल निकल कर बरमी इलाक़े में लूट मार मचाते रहे और कम्पनी सरकार ने उन्हें 'अपनी प्रजा' कह कर उनका पक्ष लिया।

किन्तु बरमा दरबार को किसी प्रकार सन्तुष्ट करना और उस ओर भविष्य में अपना साम्राज्य बढ़ाने के अभी से प्रयत्न करना भी आवश्यक था। इस काम के लिए कप्तान कैनिङ्ग नामक एक अङ्गरेज़ को कुछ उपहारों सहित बरमा की राजधानी आवा भेजा गया। कैनिङ्ग ने बरमा के महाराजा को यह समझाने का प्रयत्न किया कि अङ्गरेज़ों का इन धावों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं और कम्पनी सरकार बरमा के महाराजा की सच्ची मित्र है।

---

* Papers relating to East India affairs; *viz.*, Discussions with the Burmese Government, p. 116, para 23.

वरमा को पराधीन करने की तजवीज़ें

लॉर्ड मिण्टो के पत्रों में साफ़ ज़िक्र आता है कि कप्तान कैनिङ्ग ने वरमा में वहाँ के राज्य के विरुद्ध उपद्रव खड़े करने, वरमा दरबार को अङ्गरेज़ कम्पनी के साथ सबसीडीयरी सन्धि में फाँसने और वरमा की स्वाधीनता का अन्त करने के काफ़ी प्रयत्न किए। वरमा की सैनिक शक्ति का पता लगाने में भी कैनिङ्ग ने जासूस का ख़ासा अच्छा काम किया। उसने एक पत्र में लॉर्ड मिण्टो को लिखा—

"यदि गवरमेण्ट का यह विचार हो कि वरमा के राज्य के अन्दर अपना प्रभुत्व क़ायम किया जाय तो निस्सन्देह इसके लिए यह बहुत ही अच्छा अवसर है, क्योंकि यहाँ की सरकार की निर्बलता और लोगों के आम असन्तोष के कारण समस्त देश एक छोटी सी अङ्गरेज़ी सेना के क़ाबू में आ जायगा।"*

इसका साफ़ मतलब यह है कि कप्तान कैनिङ्ग ने वरमा के लोगों में 'असन्तोष' पैदा करना और वहाँ के महाराजा के विरुद्ध साज़िशें करना शुरू कर दिया। कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम लॉर्ड मिण्टो ने १ अगस्त सन् १८१२ के पत्र में लिखा—

---

* ". . . Should it enter into the views of Government to obtain a preponderating influence in the Burmese dominions, the present was certainly the most favourable moment, as the weakness of the Government and general discontent of the people would put the whole country at the disposal of a very small British force."—Minto's Despatch to the Court of Directors, 4th March, 1812.

"कप्तान कैनिङ्ग का यह कहना कि इस समय आवा के राज्य के साथ युद्ध छेड़ कर अङ्गरेज़ सरकार अमुक अमुक लाभ उठा सकती है, निस्सन्देह युक्ति-सङ्गत है। उस देश के समुद्र-तट और प्रान्त हमारे हमले के लिए खुले हैं, और उनकी रक्षा का कोई सामान नहीं है। हमारे इलाक़े का केवल एक हिस्सा है जिस तक बरमी सेनाएँ पहुँच सकती हैं, उसकी हम आसानी से और सफलता के साथ रक्षा कर सकते हैं। इसलिए इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि युद्ध में हमें पूरी तरह और शीघ्र विजय प्राप्त होगी।"*

स्पष्ट है कि कम्पनी सरकार क्या चाहती थी और कप्तान कैनिङ्ग को भेजने का वास्तविक उद्देश क्या था। यह भी स्पष्ट है कि उस समय तक कोई किसी प्रकार का बहाना बरमा दरबार की ओर से युद्ध का न मिल सकता था।

अन्य छेड़ छाड़

इन धावों और लूट मार के अतिरिक्त और भी कई तरह की छेड़ छाड़ अङ्गरेजों और बरमा के बीच जारी थीं। उदाहरण के लिए कम्पनी ने उन दिनों हाथी का शिकार करने के लिए अनेक लोग अपने यहाँ नौकर रख रक्खे थे। ये लोग बार बार कम्पनी की सरहद के उस पार बरमा की रामू नामक पहाड़ियों में ज़बरदस्ती घुस कर वहाँ से हाथी पकड़ लाते थे। अनेक बार बरमा दरबार के कर्मचारियों ने इनमें से कुछ लोगों को गिरफ़्तार भी कर लिया। तथापि इस तरह की ज़बरदस्तियाँ बराबर जारी रहीं और सन् १८२१ में भी जारी थीं।

---

* Lord Minto to the Directors, 1st August, 1812.

तीसरा एक और झगड़ा तिजारती माल के महसूल के विषय में था। अङ्गरेज़ों की अनेक किश्तियाँ माल से लदी हुई बरमा की नाफ़ नामक नदी में प्रवेश करती रहती थीं। बरमा के कर्मचारी माल पर बाक़ायदा महसूल माँगते थे। अङ्गरेज़ यह बहाना लेकर इनकार कर देते थे कि नाफ़ नदी का एक किनारा बरमा के राज्य में है और दूसरा अङ्गरेज़ों के राज्य में।

अन्त में जनवरी सन् १८२३ में अङ्गरेज़ों की एक नाव ने, जिसमें चावल भरे हुए थे, नाफ़ नदी में प्रवेश किया। बरमी अफ़सरों ने महसूल माँगा। नाव वालों ने देने से इनकार कर दिया। इस पर नाव वालों और बरमी अफ़सरों में कुछ झगड़ा हुआ, जिसमें कहा जाता है कि बरमियों ने गोलियाँ चलाईं और अङ्गरेज़ी नाव का माँझी मारा गया। इस पर अङ्गरेज़ी सेना ने जाकर शाहपुरी नामक एक बरमी टापू पर क़ब्ज़ा कर लिया। बरमा वालों ने एतराज़ किया। अङ्गरेज़ों ने न सुना। इस पर बरमा की सेना ने आकर अङ्गरेज़ों को निकाल कर शाहपुरी के टापू पर फिर से क़ब्ज़ा कर लिया।

दो कम्पनी हिन्दोस्तानी सिपाहियों की कलकत्ते से रवाना की गईं। २१ नवम्बर सन् १८२३ को वे शाहपुरी पहुँचीं। बरमी सेना ने उनका ज़रा भी विरोध न किया। शाहपुरी पर फिर से अङ्गरेज़ों ने क़ब्ज़ा कर लिया। ये दोनों कम्पनियाँ, कुछ तोपें, कुछ हथियारबन्द किश्तियाँ और कुछ और सेना अब शाहपुरी में छोड़ दी गई। वहाँ की प्रजा को अपनी ओर करने के लिए उनमें एक झूठा एलान प्रकाशित कर दिया गया।

बरमा दरबार ने एतराज़ किया। अङ्गरेज़ों ने कहा कि शाहपुरी का टापू हमारा है। तय हुआ कि सरहद के प्रश्न का निबटारा करने के लिए एक संयुक्त कमीशन बैठे। कम्पनी सरकार ने अपनी ओर से रॉबर्टसन और चीप दो प्रतिनिधि नियुक्त किए। अराकान के राजा ने, जो बरमा के महाराजा का एक सामन्त था, चार प्रतिनिधि अपनी ओर से नियुक्त करके भेजे। अराकान के प्रतिनिधियों ने यह अत्यन्त उचित तजवीज़ पेश की कि पञ्चायत के बैठने से पहले दोनों ओर की सेनाएँ एक बार उस टापू से चली आवें। अङ्गरेज़ प्रतिनिधियों ने इस बात को स्वीकार न किया। मजबूर होकर बरमा के प्रतिनिधि बिना कुछ तय किए अपने देश लौट गए।

इसके बाद बरमा सरकार ने शाहपुरी टापू पर से अङ्गरेज़ी जहाज़ 'सोफ़िया' के कप्तान च्यू और उसके कुछ आदमियों को किसी अपराध में गिरफ़्तार कर लिया। बरमा दरबार ने अङ्गरेज़ों से कहला भेजा कि ये लोग उस समय रिहा किए जायँगे जब अङ्गरेज़ चटग्राम से बरमी इलाक़े पर धावा मारने वाले मुख्य मुख्य डाकुओं को बरमा सरकार के हवाले कर दें। अङ्गरेज़ों ने बिलकुल ध्यान न दिया। मजबूर होकर १३ फ़रवरी सन् १८२४ को बरमा वालों ने च्यू और उसके साथियों को रिहा कर दिया।

अङ्गरेज़ बरमा के साथ युद्ध करने के लिए पूरी तैयारी कर चुके थे। कप्तान च्यू की गिरफ़्तारी से उन्हें बहाना मिल गया।

बरमी जाति

किन्तु उस समय की बरमी जाति भारतवासियों की तरह जाति पाँति और मत मतान्तरों में बँटी हुई न थी। उस देश के रहने वाले एक संयुक्त क़ौम थे। सभ्यता के अनेक अङ्गों में वे उस समय के यूरोप-निवासियों से कहीं बढ़े हुए थे। शिक्षा का प्रचार जितना उस समय उनमें था उतना यूरोप के किसी भी ईसाई देश में न था। वे वीर, महत्वाकांक्षी और युद्ध-प्रेमी थे। उनकी वीरता के विषय में इतिहास-लेखक विलसन लिखता है—

"अपनी सरकार की प्रबल और अनियमित सत्ता और लोगों के पराक्रम और आत्म-विश्वास के कारण बरमियों को हर लड़ाई में विजय प्राप्त होती थी, और आधी शताब्दी से ऊपर तक प्रत्येक संग्राम में, चाहे बरमियों ने अपने किसी शत्रु पर हमला किया हो, और चाहे किसी शत्रु के हमले का मुक़ाबला किया हो, विजय सदा बरमी सेना की ओर ही रहती थी। पगू पर हमला करने के थोड़े दिनों बाद ही बरमी लोग उस राज्य के मालिक बन गए। इसके बाद उन्होंने तेनासरईं तट के धनसम्पन्न ज़िले स्याम से छीने। चीन ने बरमा पर एक बार ज़बरदस्त हमला किया, किन्तु बरमियों ने बड़ी वीरता के साथ चीनियों के मुँह मोड़ दिए। अन्त में अराकान, मनीपुर और आसाम के प्रान्त अपने साम्राज्य में मिला कर बरमी लोग उस समस्त तङ्ग, किन्तु दूर तक फैले हुए देश के मालिक बन गए, जो चीन के पश्चिमी प्रान्तों और हिन्दोस्तान की पूर्वीय सरहद के बीच में है।"*

---

* "The vigorous despotism of the Government, and the con-

आसाम के अन्दर इससे पूर्व परस्पर झगड़े, विद्रोह और कुशासन फैला हुआ था। बरमा के महाराजा ने सेना भेज कर इन विद्रोहों को शान्त किया और मेंजी महासिल्व नामक एक सरदार को वहाँ का प्रान्तीय शासक नियुक्त कर दिया। लिखा है कि मेंजी महासिल्व का व्यवहार अपने पड़ोसी अङ्गरेज़ों के साथ बड़ी मित्रता का था। इस पर भी गवरनर-जनरल ने १२ सितम्बर सन् १८२३ के एक पत्र में मेंजी महासिल्व के मित्रता के व्यवहार को स्वीकार करते हुए डाइरेक्टरों को लिखा—"तथापि जो निर्बल शासन इससे पहले आसाम में था उसकी जगह एक वीर और उसके मुक़ाबले में बलवान शासन का वहाँ क़ायम हो जाना"*

---

fident courage of the people, crowned every enterprise with success, and for above half a century the Burman arms were invariably victorious, whether wielded for attack or defence. Shortly after their insurrection against Pegu, the Burmans became the masters of that Kingdom. They next wrested valuable districts of the Tenasserim coast from Siam. They repelled with great gallantry, a formidable invasion from China, and by the final annexation of Arakan, Manipur, and Assam, to the Empire, they established themselves throughout the whole of the narrow, but extensive tract of the country, which separates the Western provinces of China along the Eastern boundaries of Hindustan."—*Narrative of the Burmese War*, by H. H. Wilson, pp. 1,2.

* ". . . yet the substitution of a war-like, and, comparatively speaking, powerful Government, in the place of the feeble administration that formerly ruled Assam . . ."—Despatch of

अङ्गरेज़ों के लिए अहितकर है। इसी पत्र में लिखा है कि अङ्गरेज़ों ने अब आसाम की प्रजा को वरमा दरबार के विरुद्ध भड़काना और उनके साथ साज़िशें करना शुरू कर दिया। विलसन ने भी उस समय के वरमियों की पराक्रमशीलता और आसाम की अवस्था को वर्णन करते हुए लिखा है कि—"एक ऐसे निर्बल राज्य की जगह, जिसमें फूट पड़ी हुई थी, एक बलवान और महत्वाकांक्षी पड़ोसी का आ जाना" अङ्गरेज़ों के लिए ख़तरनाक है।

कहा गया कि बरमा का महाराजा हिन्दोस्तान की विविध रियासतों और ख़ास कर मराठों के साथ मिल कर अङ्गरेज़ों को भारत से निकालने की तजवीज़ें कर रहा है।

पहला बरमा युद्ध

५ मार्च सन् १८२४ को लॉर्ड ऐमहर्स्ट ने बरमा दरबार के साथ युद्ध का बाज़ाब्ता एलान कर दिया। सर एडवर्ड पैजेट उस समय कम्पनी की सेनाओं का प्रधान सेनापति था। दो ओर से बरमा पर हमला करने का निश्चय किया गया। एक ज़मीन के रास्ते आसाम की ओर से और दूसरे जलमार्ग से रङ्गून से होकर सन् १८२३ के अन्त में अर्थात् युद्ध का एलान करने से महीनों पहले एक अत्यन्त विशाल सेना जनरल कैम्पबेल और कप्तान कैनिङ्ग के अधीन ज़मीन के रास्ते बरमा की सरहद पर भेज दी गई।

---

the Governor-General in Council to the Court of Directors, dated 12th September, 1823.

सब से पहले अङ्गरेजों ने सिलहट और मनीपुर के बीच की एक छोटी सी स्वतन्त्र रियासत कछाड़ को अपने क़ाबू में किया। ५ मार्च को युद्ध का एलान किया गया और ६ मार्च सन् १८२४ को कछाड़ के भोले राजा गोविन्दचन्द्र नारिन ने अङ्गरेजों की चालों में आकर अपनी स्वाधीनता एक सन्धि द्वारा उनके हाथ बेच दी। बरमा दरबार अङ्गरेजों के इन समस्त कार्यों को देख रहा था। कछाड़ ही में अङ्गरेजों तथा बरमी सेना के बीच लड़ाई शुरू होगई। जलमार्ग से रङ्गून पर क़ब्ज़ा करने के लिए कुछ सेना कलकत्ते से भेजी गई और कुछ मद्रास से। मद्रास की सेना करनल मैकबीन के अधीन थी जिसमें तीन पलटन गोरे सिपाहियों की और दस हिन्दोस्तानी सिपाहियों की थीं। ये दोनों सेनाएँ मार्ग में मिल-कर १० मई सन् १८२४ को रङ्गून बन्दर के सामने जा पहुँचीं।

रङ्गून में उस समय कोई क़िलेबन्दी न थी। वहाँ के बरमी शासकों को शायद इतने बड़े अङ्गरेज़ी जहाज़ी बेड़े की आशा भी न थी। थोड़ीसी गोलाबारी के बाद लगभग बिना संग्राम ही रङ्गून पर अङ्गरेजों का क़ब्ज़ा हो गया।

किन्तु रङ्गून पर क़ब्ज़ा करते ही अङ्गरेज़ी सेना को एक अत्यन्त विचित्र स्थिति का सामना करना पड़ा। अङ्गरेजों को आशा थीकि रङ्गून में हमें काफ़ी रसद का सामान, बोझ ले जाने के लिए जानवर और गाड़ियाँ और ऐरावती नदी में आगे बढ़ने के लिए नावें मिल जायँगी, और हम नदी के रास्ते बरमा की राजधानी आवा तक पहुँच सकेंगे। इसके लिए कुछ समय पहले से अङ्गरेज़

स्याम के वाशिन्दों और ख़ास रङ्गून के बाशिन्दों के साथ साज़िश कर रहे थे। ऐमहर्स्ट के पत्रों से मालूम होता है कि अङ्गरेज़ स्याम के लोगों को उकसा कर उनसे यह चाहते थे कि वे दक्षिण की ओर से बरमा पर हमला कर दें, और रङ्गून-निवासियों को यह समझा रहे थे कि आप "रङ्गूनी" हैं "बरमी" नहीं! किन्तु अङ्गरेज़ों की ये सब आशाएँ झूठी साबित हुईं। स्याम-निवासी उनके चक्कर में न आए और बरमा दरबार का व्यवहार अपनी समस्त प्रजा के साथ इतना उदार और अच्छा था कि प्रजा ने अङ्गरेज़ों के साथ पूरा असहयोग किया।

अङ्गरेज़ों के रङ्गून पहुँचते ही रङ्गून की समस्त प्रजा तुरन्त नगर ख़ाली करके अपने सामान, बाल बच्चों, पशुओं, गाड़ियों और किश्तियों सहित कुछ दूर की झाड़ियों में चली गई। अङ्गरेज़ी सेना को नगर बिलकुल ख़ाली मिला। यहाँ तक कि रङ्गून से आगे बढ़ सकना तो दूर रहा, अङ्गरेज़ी सेना को नगर के अन्दर कहीं एक दाना भी रसद का न मिल सका। इसके अतिरिक्त बरमी सेना ने, जो अपने कार्य में काफ़ी होशियार थी, प्रतिदिन रात को झाड़ियों से निकल निकल कर अङ्गरेज़ी सेना पर धावे मारने शुरू किए। अङ्गरेज़ न पीछे हट सकते थे और न आगे बढ़ सकते थे। रङ्गून में उनके पास खाने के लिए रसद तक न थी। वास्तव में उनकी हालत अत्यन्त करुणाजनक हो गई।

स्नॉडग्रास नामक लेखक लिखता है—

"विशेषकर यह मालूम था कि रङ्गून में किश्तियाँ बहुत हैं; और

बहुतों को यह आशा थी कि × × × रङ्गून शहर से काफ़ी सामान इस तरह का मिल जायगा जिसकी सहायता से हम राजधानी को विजय करने के योग्य काफ़ी सेना नदी के मार्ग से ऊपर भेज सकेंगे, और इस प्रकार हम फ़ौरन् लड़ाई को ख़त्म कर सकेंगे।

* * *

"अपनी इन योजनाओं में हम यह भूल गए थे कि बरमा दरबार जिन प्रान्तों को विजय कर लेता था उनकी ओर उसकी शासन-नीति अत्यन्त विचारपूर्ण और न्यायपूर्ण होती थी। बरमी क़ौम के वीर और अभिमानी चरित्र का भी हमें इतना कम बोध था कि हम इस बात का ठीक ठीक अनुमान न कर सके कि रङ्गून में हमारा स्वागत किस तरह का होगा।"*

दूसरी ओर जो सेना स्थलमार्ग से बरमा की सरहद पर भेजी गई थी उसकी हालत और भी अधिक ख़राब हुई। लॉर्ड ऐमहर्स्ट के २ अप्रेल सन् १८२४ के एक पत्र में लिखा है कि इस सेना ने आसाम

---

* "In boats, especially, Rangoon was known to be well supplied; and it was by many anticipated, . . . that city would afford the means of pushing up the river a force sufficient to subdue the capital, and bring the war at once to a conclusion.

* * *

"But in these calculations, the well considerated power and judicious policy of the Government towards its conquered provinces were overlooked, and the warlike and haughty character of the nation was so imperfectly known, that no correct judgement could be formed of our probable reception."—*Narrative of the Burmese War*, by Snodgrass, pp. 17, 18.

निवासियों को लोभ देकर बरमियों के विरुद्ध भड़काने के पूरे प्रयत्न किए। विलसन लिखता है कि अङ्गरेजी सेना के आसाम में प्रवेश करते ही आसाम-निवासियों तथा आस पास की अन्य जातियों के नाम एक एलान कम्पनी की ओर से प्रकाशित किया गया, जिसमें उनसे झूठे सच्चे वादे करके उन्हें अङ्गरेज़ों की ओर करने का प्रयत्न किया गया। अङ्गरेज़ यह सब कतर ब्योंत कर ही रहे थे कि बरमा के महाराजा ने अपने प्रसिद्ध सेनापति महामेंजी बन्दूला के अधीन लगभग बारह हजार सेना अङ्गरेजों के मुक़ाबले के लिए भेजी। मई सन् १८२४ के शुरू में इस सेना के एक दल ने नाफ़ नदी पार कर रामू पहाड़ से १४ मील दक्षिण में रत्नपुल्ङ्ग नामक स्थान पर डेरे डाले। कम्पनी की विशाल सेना तैयार थी ही, दोनों सेनाओं में एक घमासान युद्ध हुआ, जिसमें अङ्गरेजी सेना के अनेक अफ़सर और असंख्य सिपाही मारे गए। शेष अङ्गरेजी सेना को जबरदस्त हार खाकर पीछे हट आना पड़ा। अङ्गरेजी सेना की इस हार से कलकत्ते में और वास्तव में समस्त भारत में एक तहलका मच गया। मेजर आरचर लिखता है—

"कलकत्ते की सरकार को वास्तव में यह डर हो गया कि कहीं बरमी सेना सुन्दरबन के मार्ग से आकर कलकत्ते पर हमला न कर बैठे।"*

इस पराजय के सम्बन्ध में सर चार्ल्स मेटकाफ़ ने गवरनर-

* "The Supreme Government was actually afraid of a Burmese invasion in Calcutta, by way of the Sundarbuns, . . ."
Major Archar

महा वन्दूला

[बाबू रामानन्द चट्टोपाध्याय की कृपा द्वारा—एक प्रचलित चित्र से]

जनरल के नाम ८ जून सन् १८२४ को एक पत्र लिखा जिसके कुछ वाक्य ये हैं—

"हर समय समस्त भारत हमारे पतन की बाट जोहता रहता है। हर जगह लोग हमारे नाश को देख कर सुखी होंगे × × × और इस तरह के अनेक लोगों की भी कमी नहीं है जो अपनी शक्ति भर हर तरह से हमारे नाश में सहायता देंगे। यदि कभी भी हमारा नाश शुरू हुआ तो सम्भवतः अत्यन्त वेग के साथ और एकाएक होगा। × × × पहाड़ की चोटी से गिर कर ख़न्दक़ तक पहुँचने में हमें शायद एक ही क़दम लेना पड़े।

"हमारी हिन्दोस्तानी सेना की वफ़ादारी पर हमारा अस्तित्व निर्भर है, और यह वफ़ादारी हमारी लगातार विजयों पर निर्भर है। × × ×

"बरमियों ने हमारे साथ युद्ध के शुरू ही में वह कर दिखाया जिसकी शायद हमें बिलकुल आशा न थी। पहली विजय का लाभ उनको हुआ और पहली पराजय की आपत्ति हमारी ओर रही, सम्भव है कि इससे × × × संसार की किसी भी दूसरी शक्ति के लिए इतने बुरे नतीजे पैदा न होते जितने हमारे लिए हो सकते हैं। × × ×

"× × × शत्रु की विजय से ढाका में और कलकत्ते तक में वह तहलका मच गया है जो सिराजुद्दौला और ब्लैक होल के समय से लेकर आज तक न हुआ था।

* * *

"× × × मालूम होता है कि हमारे शत्रु न संख्या में कम हैं और न वीरता में; × × × सचमुच हमारा समस्त भारतीय साम्राज्य अब ख़तर में है। हमारी हार की ख़बर जङ्गल की आग की तरह फैल जाती है और फ़ौरन् उससे उन करोड़ों मनुष्यों की आशाएँ और कल्पनाएँ जाग उठती

हैं जिन्हें हमने पराधीन कर रक्खा है × × × इस आपत्ति से बचने के लिए और उसे अधिक फैलने तथा अधिक हानि पहुँचाने से रोकने के लिए हमें अपनी तमाम शक्ति लगा देनी चाहिए।"*

अङ्गरेजी सेना को रामू की पहाड़ी से पीछे भाग कर कई महीने भदरपुर में पड़ा रहना पड़ा। इतिहास-लेखक विलसन लिखता है कि यदि बरमी सेनापति महा बन्दूला उस समय अपनी विजयी सेना सहित आगे बढ़ आता तो शायद कलकत्ते और बङ्गाल को विजय कर लेना उसके लिए अधिक कठिन न होता। किन्तु अङ्गरेजों के सौभाग्य से बन्दूला को उसी समय अपने महाराजा की आज्ञा के अनुसार बजाय आगे बढ़ने के अपनी अधिकांश सेना सहित रङ्गून की ओर चला जाना पड़ा।

कम्पनी सरकार के पास भारत के नरेशों और भारतीय

---

* "All India is at all times looking out for our downfall. The people everywhere would rejoice, . . . at our destruction; and numbers are not wanting who would promote it by all means in their power. Our ruin, if it be ever commenced, will probably be rapid and sudden . . . From the pinnacle to the abyss might be but one step.

"The fidelity of our native army, on which our existence depends, depends itself on our continued success. . . .

"The Burmans have commenced the war with us in a manner which perhaps was little expected. They have the advantage of first success, and we have the disadvantage of disaster, which is likely, . . . to be of worse consequence to us than it would be to any other power in the world, . . .

प्रजा से कमाए हुए धन की कमी न थी। और अधिक सेनाएँ, जिनमें अधिकांश हिन्दोस्तानी थे, तमाम भारत से बरमियों के नाश के लिए भेजी गईं।

बैरकपुर का हत्याकाण्ड

इसी समय के निकट एक और अत्यन्त भीषण घटना हुई, जिसे बयान करने के लिए हमें कुछ देर को बरमा युद्ध के प्रसङ्ग से हटना पड़ेगा।

ऊपर के उद्धरण में सर चार्ल्स मेटकाफ़ ने स्वीकार किया है कि अङ्गरेज़ों के भारतीय साम्राज्य का मुख्य आधार अङ्गरेज़ों की हिन्दोस्तानी सेनाएँ हैं। अधिकतर हिन्दोस्तानी सिपाहियों ही के रक्त से ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य की नींव रक्खी गई, और उन्हीं

". . . the progress of the enemy has carried alarm to Dacca and even to Calcutta, where alarm has not been felt from an external enemy since the time of Sirajudoula and the Black Hole.

* * *

". . . Our enemies appear not to be deficient in either spirit or numbers; . . . thère is real danger to our whole Empire in India . . . The intelligence spreads like wild fire, and immediately excites the hopes and speculations of the millions whom we hold in subjugation . . . Let us put forth our strength to prevent further misfortune, and crush the evil before it be fraught with more extensive injury and greater peril."—Sir Charles Metcalfe's papers to the Governor-General, June 8th, 1824.

की वीरता और वफ़ादारी के कारण यह साम्राज्य क़ायम है। वास्तव में हिन्दोस्तानी सिपाहियों के गुण ही उनके देश की स्वाधीनता के लिए घातक सिद्ध हुए। सुप्रसिद्ध इतिहास-लेखक लैकी लिखता है—

"जो जाति आज्ञा मानने वाली, विनीत और राजभक्त होती है, वह अपने इन्हीं गुणों के कारण दूसरों के स्वेच्छाचारी शासन का शिकार बन जाती है।"*

अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों और अङ्गरेज़ शासकों ने हिन्दोस्तानी सिपाहियों के इन गुणों की सदा मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। तथापि हिन्दोस्तानी सिपाहियों के साथ उनके अङ्गरेज़ मालिकों ने प्रायः कभी भी उचित व्यवहार नहीं किया। बरमा युद्ध के दिनों में भी हिन्दोस्तानी सिपाहियों के साथ और अङ्गरेज़ सिपाहियों के साथ दो तरह का व्यवहार होता था। उदाहरण के लिए प्रत्येक अङ्गरेज़ रङ्गरूट को भरती होते ही बाउण्टी की एक रक़म मिलती थी, हिन्दोस्तानी सिपाही को भरती के समय कुछ न मिलता था। अङ्गरेज़ सिपाहियों को छावनियों में रहने के लिए बनी बनाई बारग मिलती थी, हिन्दोस्तानी सिपाहियों को अपने झोपड़े ख़ुद बनाने पड़ते थे। अङ्गरेज़ सिपाहियों के लिए फ़ौज का ऊँचे से ऊँचा ओहदा खुला हुआ था, किन्तु तीन लाख देशी सिपाहियों में से कभी कोई सूबेदार-मेजर से बढ़ कर रुतबा प्राप्त न कर सकता था। देशी

* "A people who are submissive, gentle, and loyal, fall by reason of these very qualities under a despotic Government."—Lecky.

सिपाहियों की बन्दूकें गोरे सिपाहियों की बन्दूकों की अपेक्षा अधिक भारी होती थीं। बन्दूकें और साठ कारतूसों के अतिरिक्त हर देशी सिपाही को एक भारी थैला अपने कन्धे पर ले जाना पड़ता था, जिसमें उसकी तमाम आवश्यक चीज़ें होती थीं। इसके मुक़ाबले का कोई बोझ अङ्गरेज़ सिपाहियों को ले जाना न पड़ता था। दोनों की तनख़ाह, फ़रलो, पेनशन और भत्ते के क़ायदों में बहुत बड़ा अन्तर था। एक स्थान से दूसरे स्थान बदली होने पर देशी सिपाहियों को अपने रहने का प्रबन्ध अपने ख़र्च से करना होता था, गोरे सिपाहियों को नहीं। देशी सिपाहियों के धार्मिक तथा सामाजिक भावों का बहुत कम ख़याल रक्खा जाता था। उनसे अङ्गरेज़ सिपाहियों की अपेक्षा कई गुना अधिक काम लिया जाता था।

बङ्गाल के हिन्दोस्तानी सिपाहियों के साथ बम्बई और मद्रास के हिन्दोस्तानी सिपाहियों से भी अधिक बुरा व्यवहार किया जाता था। बङ्गाल के सिपाहियों की इन विशेष शिकायतों की गाथा कुछ लम्बी और हमारे प्रसङ्ग से बाहर है।

बङ्गाल के हिन्दोस्तानी सिपाहियों की यह सब शिकायतें दिन प्रति दिन बढ़ती चली गईं। अनेक बार ये शिकायतें अङ्गरेज़ अफ़सरों के सामने पेश की गईं, किन्तु किसी ने इन पर ध्यान न दिया। इस परिस्थिति में बैरकपुर की ४७ नम्बर देशी पलटन को बरमा जाने की आज्ञा दी गई। इन सिपाहियों को जब कभी एक स्थान से दूसरे स्थान जाने की आज्ञा मिलती थी तो उन्हें अपने सामान के लादने ले जाने का ख़र्च अपने पास से देना होता था और स्वयं ही

उसका प्रबन्ध करना होता था ; जब कि इतिहास-लेखक थॉर्न-टन लिखता है कि गोरे सिपाही ऐसे अवसरों पर "अपना थैला भी स्वयं लेकर न चलते थे।" सर मार्क कथन स्वीकार करता है कि सन् १८५८ तक हिन्दोस्तानी सिपाहियों का थैला इतना भारी था कि वह उनकी जान का बवाल था।*

इतिहास-लेखक थॉर्नटन लिखता है कि बैरकपुर की हिन्दोस्तानी पलटन को जब कूच की आज्ञा दी गई तो सामान के ले जाने के लिए उन्हें बैल अथवा गाड़ियाँ तक न मिल सकीं। सिपाहियों ने अपने अङ्गरेज़ अफ़सरों से मदद माँगी। जवाब मिला कि तुम्हें अपना प्रबन्ध स्वयं करना होगा। इस सब के अतिरिक्त कहा गया कि इस पलटन को समुद्र के रास्ते कलकत्ते से रङ्गून जाना होगा। पलटन के सिपाही सब उच्च जाति के हिन्दू थे। इन लोगों ने केवल भारत के अन्दर स्थल-सेवा के लिए कम्पनी की नौकरी की थी। समुद्र-यात्रा करने पर वे सदा के लिए अपनी अपनी जाति से बाहर कर दिए जाते। सिपाहियों ने अपनी सब शिकायतों की एक लम्बी, किन्तु विनयपूर्ण अरजी लिख कर कमाण्डर-इन-चीफ़ की सेवा में भेजी। किन्तु इस पर भी कुछ ध्यान न दिया गया। लिखा है कि इन तमाम सिपाहियों ने तुलसी और गङ्गाजल हाथ में लेकर इस बात की शपथ खाई कि हममें से कोई जहाज़ के ऊपर पैर न रक्खेगा। वे ख़ुश्की पर कहीं भी जाने और लड़ने के लिए तैयार थे।

---

* "The present knapsack . . . is the curse of the native army."—Sir Mark Cubbun, K. C. B. 1858.

३० अक्तूबर सन् १८२४ को सारी पलटन परेड के लिए बुलाई गई। उनके थैले उस समय उनके कन्धों पर न थे। थैले फट चुके थे। उन्होंने अपनी तमाम शिकायतें कमाण्डिङ्ग अफ़सर के सामने पेश कीं। न उन्हें कोई जवाब दिया गया और न उनकी कोई शिकायत दूर की गई। उस दिन परेड बरख़ास्त कर दी गई। कलकत्ते में कमाण्डर-इन-चीफ़ को सूचना दी गई। फ़ौरन् दो पलटन पैदल गोरे सिपाहियों की, एक तोपख़ाना और कुछ गवरनर-जनरल की बॉडी गार्ड सेना कलकत्ते से बैरकपुर भेजी गई।

पहली नवम्बर को सवेरे ४७ नम्बर हिन्दोस्तानी पलटन को फिर परेड के लिए बुलाया गया। परेड पर आते ही एकाएक इन लोगों ने देखा कि उनके चारों ओर गोरी पलटनें खड़ी हुई हैं। हिन्दोस्तानी सिपाहियों से कहा गया कि या तो जहाँ कहा जाय, कूच के लिए राज़ी हो और या हथियार रख दो। इन लोगों को अभी तक यह मालूम न था कि भरा हुआ तोपख़ाना गोरी पलटनों के पीछे तैयार खड़ा है। वे कुछ समझे और कुछ न समझे। के लिखता है कि उन्हें किसी तरह की सूचना नहीं दी गई और न सावधान किया गया। फ़ौरन् तोपख़ाने को पीछे से उनके ऊपर गोले बरसाने की आज्ञा दे दी गई। असहाय हिन्दोस्तानी सिपाही इतना डर गए कि अपने हथियार फेंक कर वे नदी की ओर भागे। अधिकांश वहीं खेत हो गए, कुछ नदी में डूब गए और जो बच निकले उन्हें बाद में कमाण्डर-इन-चीफ़ की आज्ञा से फाँसी पर लटका दिया गया। के लिखता है कि इन लोगों ने अपनी ओर से शस्त्र चलाने

का ज़रा भी प्रयत्न न किया; उन्हें इसका विचार तक न था; उनकी बन्दूक़ें तक ख़ाली थीं। के लिखता है कि सम्भवतः उस समय के अङ्गरेज़ अफ़सरों का उद्देश इस प्रकार समस्त हिन्दोस्तानी सेना के दिलों में अङ्गरेज़ी सत्ता की ढाक बैठा देना होगा। के यह भी लिखता है कि इस हत्या-काण्ड की ख़बर उन हिन्दोस्तानी सेनाओं तक पहुँच गई, जो बरमा की सरहद की ओर भेजी जा चुकी थीं और उनके दिलों पर इसका ख़ासा बुरा प्रभाव पड़ा।

बाद में उस पलटन का नाम हिन्दोस्तान की पलटनों की सूची से काट डाला गया।

मेटकाफ़ लिखता है—

"अपनी सेनाओं को अपने ही तोपख़ाने से उड़ा देना, ख़ास कर उन सेनाओं को, जिनकी वफ़ादारी पर हमारे साम्राज्य का अस्तित्व निर्भर है, अत्यन्त भीषण कार्य है।"*

बैरकपुर के इस हत्याकाण्ड की ओर सङ्केत करते हुए प्रसिद्ध तत्ववेत्ता हरबर्ट स्पेन्सर ने हाल में लिखा था—

"आज हम लोगों के समय तक वह कपटी निष्ठुर शासन बराबर जारी है जो देश की पराधीनता को क़ायम रखने और उसे बढ़ाने के लिए देशी सिपाहियों ही का उपयोग करता है—इसी निष्ठुर शासन के नीचे अभी बहुत अधिक वर्ष नहीं हुए कि देशी सिपाहियों की एक पूरी पलटन इस-

---

* "It is an awful thing to mow down our own troops with our own artillery, specially those troops on whose fidelity the existence of our Empire depends."—Kaye's *Selections from the Papers of Lord Metcalfe*, p. 153.

लिए जान बूझ कर बध कर डाली गई, क्योंकि सिपाहियों ने बिना उचित कपड़ों के कूच करने से इनकार किया।'*

बरमा में कम्पनी की साज़िशें

अब हम फिर बरमा युद्ध की ओर आते हैं। अङ्गरेज़ों ने जब देख लिया कि केवल वीरता अथवा युद्ध-कौशल के बल हम बरमियों को विजय नहीं कर सकते, तो उन्होंने बरमी साम्राज्य के विविध प्रान्तीय शासकों और वहाँ की प्रजा को अपनी ओर करने के लिए पानी की तरह धन बहाना शुरू कर दिया। विलसन लिखता है कि ८ अगस्त सन् १८२४ को डल्ला नामक बरमी ज़िले के लोगों को बरमा दरबार के विरुद्ध भड़का कर अपनी ओर फोड़ने के लिए करनल कैली को डल्ला भेजा गया। विलसन यह भी लिखता है कि रङ्गून की अङ्गरेज़ी सेना ने जब यह देखा कि आवा की ओर बढ़ सकना असम्भव है तो उसने समुद्र तट के कुछ प्रान्तों को अपनी ओर करना चाहा। इसके लिए तेनासईं का ज़िला, जिसमें टेवाय और मरगुई शामिल हैं, चुना गया। २० अगस्त को रङ्गून से कुछ सेना तेनासईं की ओर गई। पहली सितम्बर को यह सेना तेनासईं पहुँची। लिखा है कि क़िले के अन्दर की संरक्षक

---

* "Down to our own day continues the cunning despotism which uses native soldiers to maintain and extend native subjection—a despotism under which, not many years since a regiment of sepoys was deliberately massacred, for refusing to march without proper clothing!"—Herbert Spencer.

बरमी सेना के एक मातहत बरमी अफ़सर ने अङ्गरेज़ों से मिल कर अपने सेनापति अर्थात् क़िलेदार और उसके कुटुम्बियों को स्वयं गिरफ़्तार करके अङ्गरेज़ों के हवाले कर दिया और अङ्गरेज़ों ने बिना संग्राम नगर पर क़ब्ज़ा कर लिया। मालूम नहीं कि उस मातहत बरमी अफ़सर को इस विश्वासघात का इनाम क्या दिया गया!

इसी प्रकार की और भी कई लड़ाइयाँ हुईं, जिनके विस्तार में पड़ने की आवश्यकता नहीं है और जिनमें से अधिकांश में ऐसी ही रिशवतों और साज़िशों के बल अङ्गरेज़ों ने विजय प्राप्त की। निस्सन्देह कूटनीति में वीर बरमी भी अङ्गरेज़ों से टक्कर न ले सके। इन्हीं पराजयों का हाल सुन कर महा बन्दूला को अराकान छोड़ कर रङ्गून की ओर लौटना पड़ा था। इतने ही में बरमा के दुर्भाग्य से महा बन्दूला पहली अप्रेल सन् १८२५ को दूनूब्यू के क़िले में शत्रु का मुक़ाबला करते हुए एक बम के फूटने के कारण अचानक वीर गति को प्राप्त हुआ। बन्दूला की मृत्यु बरमा दरबार के लिए अत्यन्त अशुभ सूचक थी। अनेक अङ्गरेज़ लेखकों ने बन्दूला की देशभक्ति, उसकी स्वामिभक्ति, उसकी वीरता, और उसके युद्ध-कौशल की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। मेजर स्नॉडग्रास लिखता है कि दूनूब्यू में बन्दूला ने यह कह दिया था कि मैं या तो शत्रु पर पूर्ण विजय प्राप्त करूँगा और या इसी प्रयत्न में प्राण दे दूँगा।

मालूम होता है कि अङ्गरेज़ इस समय युद्ध बन्द करने के

लिए अत्यन्त उत्सुक थे। यद्यपि उस समय तक अङ्गरेज बरमी साम्राज्य के कई प्रान्तों में विद्रोह खड़े करवा चुके थे। तथापि वे बरमियों की वीरता से काफ़ी लाचार हो गए थे। इतिहास-लेखक विलसन लिखता है कि अङ्गरेज़ों ने अब अपनी ओर से सुलह की इच्छा प्रकट की, इस शर्त पर कि बरमा दरबार अङ्गरेज़ों की उस समय तक की हानि को पूरा कर दे।

विलसन लिखता है—

"उस समय बहुत सी ऐसी अफ़वाहें उड़ी हुई थीं जिनसे आशा की जाती थी कि हमारा सुलह का प्रयत्न सफल होगा। कहा जाता था कि बरमी साम्राज्य के अनेक भागों में विद्रोह खड़े हो गए हैं; और मालूम होता है कि यह अफ़वाह भी दूर दूर तक फैल गई थी कि बरमा का महाराजा गद्दी से उतार दिया गया है। ये सब ख़बरें झूठी साबित हुईं × × ×।"*

बरमा दरबार ने अङ्गरेज़ों की शर्तों को स्वीकार न किया; और लड़ाई जारी रही।

अङ्गरेज़ों ने दूसरी बार सुलह के लिए कोशिश की। इस बार एक बरमी पुरोहित द्वारा, जिसे राजगुरु कहते थे, अङ्गरेज सेनापति की ओर से एक पत्र बरमा के महाराजा के नाम राजधानी आवा भेजा गया। इस पत्र में अङ्गरेज सेनापति ने अपनी ओर से सुलह की तत्परता प्रकट की। राजगुरु के प्रयत्न से कुछ दिनों के लिए लड़ाई फिर बन्द हो गई और ३० दिसम्बर सन् १८२५ की शाम को दोनों

* *Narrative of the Burmese War*, p. 199.

ओर के प्रतिनिधियों में बातचीत शुरू हुई। २ जनवरी सन् १८२६ तक एक सन्धिपत्र तैयार कर लिया गया, जिसमें यह भी तय हो गया कि कम से कम १८ जनवरी तक युद्ध बन्द रहे। किन्तु बरमा के महाराजा ने इस सन्धिपत्र को भी स्वीकार न किया और लड़ाई फिर शुरू हो गई।

इस बीच उत्तरीय भारत के अन्दर एक और विशेष घटना हुई जिसका बरमा युद्ध पर ज़बरदस्त प्रभाव पड़ा। इस घटना को बयान करने के लिए हमें फिर थोड़ी देर के वास्ते बरमा युद्ध के वृत्तान्त को छोड़ देना होगा।

भरतपुर का पतन

भरतपुर के ऐतिहासिक क़िले के सन्मुख लॉर्ड लेक की पराजय का वर्णन पहले किया जा चुका है। इसी असफलता के विषय में सन् १८१४ में मेटकाफ़ ने लिखा था—

"भरतपुर में चार बार के हमले और बङ्गाल तथा बम्बई की संयुक्त सेनाओं की हद दरजे की कोशिशें भी सफल न हो सकीं × × ×।"

भरतपुर की हार अङ्गरेज़ों के दिलों में काँटे की तरह खटक रही थी। मेटकाफ़ ने दुख के साथ लिखा कि—"हमारी सैनिक कीर्ति का अधिकांश भाग भरतपुर में ही दफ़न हो गया।" ख़ास कर दोआब और उत्तरीय भारत में उस हार से अङ्गरेज़ों की कीर्ति को बहुत बड़ा धक्का पहुँचा। अङ्गरेज़ बराबर अपनी उस ज़िल्लत को धोने का मौक़ा ढूँढ़ रहे थे। बरमा युद्ध की हारों ने

और भी आवश्यक कर दिया था कि अङ्गरेज कहीं न कहीं कुछ करके दिखला दें।

सन् १८२५ में भरतपुर के महाराजा की मृत्यु हुई। दो चचेरे भाइयों में. गद्दी के लिए झगड़ा हुआ। लॉर्ड ऐमहर्स्ट को मौक़ा मिला। उनमें से एक उम्मेदवार राजा बलवन्तसिंह का पक्ष लेकर कम्पनी का कमाण्डर-इन-चीफ़ जनरल कॉटन पच्चीस हज़ार सेना और बहुत सी तोपें साथ लिए १० दिसम्बर सन् १८२५ को भरतपुर के क़िले के सामने जा धमका। जिस भरतपुर की दीवारों ने बीस वर्ष पहले लॉर्ड लेक और उसकी विशाल सेना के दाँत खट्टे कर दिए थे, वह भरतपुर एक दिल और एक मत था, किन्तु आज भरतपुर का दरबार फूट का घर बना हुआ था। राजा बलवन्तसिंह और उसके साथी अर्थात् लगभग आधा भरतपुर इस समय विदेशियों की विजय में सहायक था। हाथरस के क़िले से अङ्गरेज़ों को भरतपुर के क़िले की रचना का भी काफ़ी पता चल चुका था। तथापि सवा महीने तक भरतपुर का मुहासरा फिर जारी रहा। सवा महीने के मुहासरे के बाद १८ जनवरी सन् १८२६ को भरतपुर का ऐतिहासिक क़िला एक बार अङ्गरेज़ी सेना के हाथों में आ गया। इतिहास-लेखक करनल मालेसन अपनी पुस्तक "डिसाइसिव बैटल्स ऑफ़ इण्डिया" में लिखता है कि भरतपुर की इस लड़ाई में अङ्गरेज़ों के १,०५० आदमी मरे और ज़ख्मी हुए, जिसमें सात अफ़सर मरे और ४१ अफ़सर घायल हुए।

करनल स्किनर लिखता है कि भरतपुर के क़िले को विजय

करने में अङ्गरेज़ों ने जिस तरह की सुरङ्गों से काम लिया उस तरह की सुरङ्गें लगाना उन्होंने मराठों से सीखा था। एक दूसरा अङ्गरेज़ वेल्स लिखता है कि उन दिनों भारतवासियों में यह अफ़वाह गरम थी कि अङ्गरेज़ों ने भरतपुर का क़िला भीतर की सेना के कुछ लोगों को रिशवतें देकर धन के वल विजय किया।*

भरतपुर के इस संग्राम की न्याय्यता के विषय में मेटकाफ़ स्वीकार करता है कि अङ्गरेज़ों को भरतपुर की गद्दी के मामले में दख़ल देने का कोई अधिकार न था; और न इस विषय की कोई सन्धि अङ्गरेज़ों और भरतपुर के बीच मौजूद थी। मेटकाफ़ यह भी साफ़ लिखता है कि भरतपुर पर हमला करना केवल इसलिए आवश्यक था, क्योंकि पिछली हार की ज़िल्लत को धोना और फिर से अङ्गरेज़ी सत्ता की ढाक को क़ायम करना उस समय अङ्गरेज़ों के लिए जरूरी था।† सम्भव है कि गद्दी का झगड़ा भी अङ्गरेज़ों ही का खड़ा किया हुआ हो और उसे वढ़ाने में "गुप्त उपायों" से ख़ूब

---

* "Even after it was taken, no native would believe it was captured by storm; and to the last hour of my residence in India, they persisted in asserting that it was bought, not conquered."—Welsh's *Military Reminiscences*, vol. ii, pp. 240, 241.

† "It is . . . acknowleged as a general principle, that we ought not to interfere in the internal affairs of other states;

. . .

* * *

". . . the capture of Bharatpur, . . . would do us more honour throughout India, by the removal of the hitherto

काम लिया गया हो। भरतपुर के क़िले के इस समय के पतन से भारत में कम्पनी का इलाक़ा नहीं बढ़ा, किन्तु कम्पनी की सैनिक कीर्ति अवश्य फिर से क़ायम हो गई।

भरतपुर के पतन के बाद गोरे अफ़सरों और सिपाहियों ने नगर के असहाय लोगों के ऊपर जो अत्याचार किए उनका कुछ अनुमान नीचे लिखे दो उद्धरणों से किया जा सकता है। मेजर आरचर २९ जनवरी सन् १८२८ को लिखता है—

"हम लोगों के खाना खाने के बाद कुछ भाँड आए, और उन्होंने हमारी भरतपुर विजय की अत्यन्त हास्योत्पादक नक़ल करके हमें हँसाया। इस नक़ल में उन्होंने यह दिखलाया कि अङ्गरेज़ों ने इतनी बेदर्दी के साथ नगर को लूटा कि लोगों के सरों से बाल तक उखाड़ लिए।"*

कप्तान मण्डी इसी तरह की एक दूसरी घटना का ज़िक्र करता है, जिससे मालूम होता है कि अङ्गरेज़ों ने भरतपुर विजय के बाद वहाँ के निर्धन किसानों तक को बड़ी निर्दयता के साथ लूटा।

धन वसूल करने का तरीक़ा

बरमा युद्ध और भरतपुर के संग्राम का ख़र्च पूरा करने के लिए लॉर्ड ऐमहर्स्ट ने भारत के विविध नरेशों से क़र्ज़ के नाम पर ख़ूब धन वसूल किया। जॉन मैलकम लडलो लिखता है—

---

unfaded impressions caused by our former failure, than any other event that can be conceived."—Kaye's *Selections from the Papers of Lord Metcalfe*, pp. 122-131.

* *Tours in Upper India*, p. 101.

"देशी नरेशों को खुल्लम खुल्ला लूटने का समय वारन हेस्टिंग्स के साथ ख़त्म हो गया था। तथापि इस समय देखा जाता है कि इन नरेशों से क़र्ज़ लेने की प्रथा बेहद फैली हुई थी। सन् १८२५ के अन्त में अवध के बादशाह ने अङ्गरेज़ों को दस लाख पाउण्ड क़र्ज़ दिए; और अगले साल, दो साल के लिए, पाँच लाख पाउण्ड फिर क़र्ज़ दिए। सींधिया की मृत्यु के बाद महारानी बैजाबाई ने आठ लाख पाउण्ड क़र्ज़ दिए। और आम तौर पर जो क़र्ज़ लिए गए उनसे मालूम होता है कि छोटे छोटे नरेशों ने भी अपना हिस्सा अदा किया। नागपुर के राजा ने पचास हज़ार पाउण्ड दिए। बनारस के राजा ने बीस हज़ार पाउण्ड, यहाँ तक कि अभागे पद-च्युत पेशवा बाजीराव ने भी एक ख़ासी बड़ी रक़म बतौर क़र्ज़ अपनी पेनशन से बचा कर अङ्गरेज़ों को दे दी।"*

इसी समय के निकट इसी तरह के उपायों से लॉर्ड ऐमहर्स्ट ने अलवर की रियासत को भी अपने अधीन कर लिया।

---

* "The time for openly plundering native princes was gone with Warren Hastings. One observes, however, at this time, the extreme prevalence of the practice of obtaining loans from them. At the end of 1825, the King of Oudh lends £ 1,000,000 sterling; £ 500,000 for two years the next year. The Baiza Bai, after Scindhia's decease, lent £ 800,000. In the general loans which were contracted, we find smaller chiefs contributing their quota, the Raja of Nagpur £ 50,000, the Raja of Beneras £ 20,000; even the unfortunate Baji Rao, the Ex-Peshwa refunding a very considerable sum for the purpose out of the savings from his pension."—John alcolm Ludlow in his *British India,* vol. ii, p. 65.

बरमा के साथ सन्धि

भरतपुर के पतन के समाचार ने बरमा दरबार की हिम्मतों पर भी अपना असर डाला। उस दरबार के कई सामन्तों को इस बीच अङ्गरेज़ अपनी साज़िशों द्वारा फोड़ चुके थे। अन्त में यन्दाबू नामक स्थान पर अङ्गरेज़ कम्पनी और बरमा दरबार के बीच सन्धि हो गई। इतिहास-लेखक विलसन लिखता है कि इस युद्ध से दोनों पक्षों को गहरी हानि उठानी पड़ी। अङ्गरेज़ों को बेहद धन खर्च करना पड़ा और उनकी ओर असंख्य जानें गईं। बरमा दरबार की धन और जन की हानि के अतिरिक्त उस साम्राज्य के कई सामन्त नरेश जो बरमा दरबार को खिराज देते थे और जिनके प्रान्त उस साम्राज्य का एक अङ्ग थे, अब सदा के लिए उससे पृथक हो गए।

दिल्ली सम्राट का मान भङ्ग

बरमा युद्ध के पश्चात् लॉर्ड ऐमहर्स्ट ने दिल्ली जाकर मुग़ल सम्राट से भेंट करने का विचार किया। इस भेंट से लॉर्ड ऐमहर्स्ट का एक मात्र उद्देश यह था कि दिल्ली सम्राट को भारत तथा संसार की नज़रों में गिरा दिया जाय। उस समय तक अङ्गरेज़ दिल्ली सम्राट की प्रजा समझे जाते थे और स्वयं दिल्ली सम्राट को भारत का सम्राट और अपने तईं उसकी प्रजा स्वीकार करते थे। ऐमहर्स्ट ने यह चाहा कि इस विचार का अब धीरे धीरे अन्त कर दिया जाय। सम्राट से इस तरह की भेंटों की जो पुरानी

रीति चली आती थी, जिसके अनुसार उस समय तक के गवरनर-जनरल तथा अन्य समस्त भारतीय नरेश दिल्ली सम्राट से भेंट किया करते थे, ऐमहर्स्ट ने उसे बदल कर नई रीति बरतना चाहा।

लिखा है कि सम्राट अकबरशाह को पहले से राज़ी कर लेने के लिए उससे यह साफ़ झूठा वादा किया गया कि यदि आप इस तरीक़े को स्वीकार कर लेंगे तो लॉर्ड लेक ने आपके पिता सम्राट शाहआलम से जो कुछ वादे किए थे, कम्पनी उन सब को तुरन्त पूरा कर देगी और इस नए तरीक़े की भेंट से आपके प्राचीन आदाब व अलक़ाब में कोई फ़रक़ न आएगा।* सम्राट अकबरशाह ने स्वीकार कर लिया।

लॉर्ड ऐमहर्स्ट १५ फ़रवरी सन् १८२७ को दिल्ली पहुँचा। १७ फ़रवरी को सम्राट तथा ऐमहर्स्ट में भेंट हुई। "सम्राट तख्त ताऊस पर बैठा हुआ था। ऐमहर्स्ट सम्राट के सामने दाहिनी ओर एक शाही कुरसी पर बैठा। ऐमहर्स्ट का रुख़ सम्राट की बाईं ओर था। रेज़िडेण्ट, और सब अफ़सर और समस्त बड़े बड़े दरबारी खड़े हुए थे।"†

सम्राट ने अपनी सारी शिकायतें और कम्पनी के वादे लॉर्ड ऐमहर्स्ट के सामने बयान किए; किन्तु लॉर्ड ऐमहर्स्ट ने बजाय इन शिकायतों और वादों की ओर ध्यान देने के सम्राट के "आदाब

---

* *Tours in Upper India*, by Major Archer, p. 347.

† *Punjab Government Records, Delhi Residency and Agency*, 1807-1857, vol. i, p. 338.

व अलक़ाब" को भी बदल दिया और अपने इस उद्धत व्यवहार से असहाय सम्राट को दरबारियों की नज़रों में नीचा दिखाया। ऐमहर्स्ट ने सम्राट पर प्रकट कर दिया कि कम्पनी के समस्त वादे केवल राजनैतिक चालें थीं। इसके बाद से सम्राट के साथ पत्र व्यवहार करने में भी अङ्गरेजों ने पुराने आदाब व अलक़ाब का बरतना बन्द कर दिया।

सम्राट अकबरशाह का चित्त इस घटना से इतना दुखी हुआ कि बाद में इन्हीं सारी बातों की शिकायत के लिए लॉर्ड लेक का दस्तख़ती "इक़रारनामा" देकर अकबरशाह ने सुप्रसिद्ध राजा राममोहन राय को इङ्गलिस्तान भेजा, किन्तु वहाँ कौन सुनता था।

पीटर आवर नामक एक अङ्गरेज लिखता है कि इस मुलाक़ात द्वारा लॉर्ड ऐमहर्स्ट ने—

"इससे पूर्व की इस कल्पना का अन्त कर दिया कि अङ्गरेज़ सरकार दिल्ली के सम्राट की प्रजा हैं। अत्यन्त स्वाभाविक था कि इस घटना ने उस समय ज़बरदस्त सनसनी पैदा कर दी, क्योंकि यह पहला अवसर था जब कि हमने खुले और निश्चिंत तौर पर ब्रिटिश सत्ता की स्वाधीनता का प्रतिपादन किया। लोग आम तौर पर यह कहते थे कि हिन्दोस्तान का ताज दिल्ली सम्राट के सर से उठा कर अब अङ्गरेज़ क़ौम के सिर पर रख दिया गया।

"कहा जाता है कि शाही ख़ानदान और उसके आश्रितों ने इस घटना पर गहरा शोक मनाया। उन्होंने अनुभव किया कि इससे पहले उन्हें मराठों के कारण और तकलीफ़ें चाहे कुछ भी क्यों न सहनी पड़ी हों, किन्तु

मराठे दिल्ली सम्राट को सदा समस्त भारत का न्याय्य अधिराज स्वीकार करते रहे। अब पहली वार उनका यह रुतबा भी छीन लिया गया।"*

निस्सन्देह दिल्ली सम्राट का इस प्रकार का निरादर चुपचाप सहन कर लिया जाना इस बात को साबित करता है कि उस समय भारतवासियों में राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रीय आत्माभिमान का शोकजनक अभाव था!

यह भी कहा जाता है कि सन् १८२७ की यह घटना ३० वर्ष वाद के ग़दर के कारणों में से एक कारण थी।

भारत सम्राट का मान भङ्ग करने के बाद मानी ऐमहर्स्ट ने शिमले में गर्मियाँ गुज़ारीं। इसके बाद मार्च सन् १८२८ में ऐमहर्स्ट ने इङ्गलिस्तान की राह ली।

---

* Peter Aubur in his *Rise and Progress of the British Power India*, vol. ii, p. 606.

चौंतीसवाँ अध्याय

लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क

[१८२८—१८३५]

कम्पनी की शासन-नीति

स्वयं लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क ने एक स्थान पर पहले के मुसलमान नरेशों और उस समय के अङ्गरेज़ों के शासन की तुलना इस प्रकार की है—

"अनेक बातों में मुसलमानों का शासन हमारे शासन से बढ़ कर था; मुसलमान जिन देशों को विजय करते थे उन्हीं में बस जाते थे; वे देशवासियों के साथ मेल जोल और विवाह-सम्बन्ध पैदा कर लेते थे; देशवासियों को हर तरह के अधिकार दे देते थे; इन विजेताओं को शासितों के हित में अपना हित दिखाई देता था और दोनों के हृदयों में एक समान भाव उत्पन्न होते थे। इसके विरुद्ध हमारी नीति इसके ठीक विपरीत रही है—अर्थात् स्नेह-शून्य, स्वार्थमय और निर्दय।"*

* "In many respects the Mohammadens surpassed our rule; they settled in the countries which they conquered; they inter-

किन्तु लॉर्ड विलियम वेण्टिङ्क का अपना शासन उतना ही 'स्नेहशून्य, स्वार्थमय और निर्दय' था जितना किसी भी दूसरे गवरनर-जनरल का।

गवरनर-जनरल बनने से पहले वेण्टिङ्क कुछ दिनों मद्रास का गवरनर रह चुका था। उस समय वेण्टिङ्क ने, अपनी कौन्सिल के एक प्रसिद्ध सदस्य विलियम थैकरे की लेखनी द्वारा भारत के अन्दर अङ्गरेज़ों की शासन-नीति को इन स्पष्ट शब्दों में बयान किया था—

"इङ्गलिस्तान के अन्दर यह बहुत ही उचित है कि वहाँ की भूमि से जितनी पैदावार हो उसका एक विशेष भाग कुछ ख़ास ख़ास कुटुम्बों को ख़ुशहाल और धनसम्पन्न बनाए रखने में ख़र्च किया जाय, ताकि उनमें से देश की सेवा और रक्षा के लिए शासन-सभाओं के सदस्य, तत्ववेत्ता और वीर योधा उत्पन्न हो सकें, × × ×। इस प्रकार की आमदनी के प्रताप से जो अवकाश, जो आज़ादी और जो उच्च विचार मनुष्य में पैदा होते हैं उन्हीं के बल इस श्रेणी के लोगों ने इङ्गलिस्तान को गौरव के शिखर तक पहुँचाया है। ईश्वर करे कि वे चिरकाल तक इस आनन्द को भोगते रहें;—किन्तु भारत में उस गर्व को, उस स्वाधीनता को और उस तरह के गहरे विचारों को जो प्रायः अधिक धन के कारण उत्पन्न होते हैं, दबा देना

---

mixed and intermarried with the natives; they admitted them to all privileges; the interests and the sympathies of the conquerors and the conquered became identified. Our policy, on the contrary, has been the reverse of this,—cold, selfish and unfeeling."—Lord William Bentink.

आवश्यक है। ये चीज़ें हमारी सत्ता और हमारे हित के स्पष्ट विरुद्ध हैं × × ×। हमें यहाँ सेनापतियों, राजनीतिज्ञों और क़ानून बनाने वालों की ज़रूरत नहीं है, हमें इस देश में केवल परिश्रमी किसानों की आवश्यकता है।"*

वास्तव में कम्पनी के भारतीय शासन की आरम्भ से यही सीधी और सच्ची नीति थी। इस नीति को सामने रख कर गवरनर-जनरल बेंटिङ्क की कारवाइयों को समझना अत्यन्त सरल होगा।

एक दूसरा निष्पक्ष अङ्गरेज फ़ेड्रिक शोर लॉर्ड बेंटिङ्क के समस्त शासन-काल का सार वर्णन करते हुए लिखता है—

"× × × उसके नेक इरादों से भारत की ब्रिटिश सरकार के मूल सिद्धान्त में कभी भी अन्तर पड़ने नहीं पाया, वह सिद्धान्त यह है कि हिन्दोस्तान के लोगों से धन चूस कर अपने को तथा अपने (इङ्गलिस्तान

---

* "*It* is very proper that in England, a good share of the produce of the earth should be appropriated to support certain families in affluence, to produce senators, sages, and heroes for the service and defence of the state, . . . The leisure, independence, and high ideas, which the enjoyment of this rent affords, has enabled them to raise Britain to the pinnacle of glory. Long may they enjoy it ;—but in India, that haughty spirit, independence, and deep thought, which the possession of great wealth sometimes gives, ought to be suppressed. They are directly adverse to our power and interest . . . We do not want generals, statesmen, and legislators ; we want industrious husbandmen."—Minute of Mr. William Thackeray, Member Madras Council.

निवासी) मालिकों को धनवान बनाया जाय × × × रसद और बेगार की घृणित प्रथाएँ अभी तक पूरे ज़ोरों पर जारी हैं। चुङ्गी और महसूलों की कष्टकर प्रणाली द्वारा देश का व्यापार और उद्योग धन्धे दिन प्रतिदिन नष्ट होते जा रहे हैं, और यह प्रणाली अभी तक जारी है। × × × लोग न पहले की अपेक्षा अधिक सुखी हैं और न अधिक धनी—वास्तव में लोगों की दरिद्रता बढ़ती जा रही है—क्योंकि जब कि एक ओर ऊपर लिखी कुप्रथाएँ पूरे ज़ोर से जारी हैं, दूसरी ओर लगान के जिस शिकञ्जे ने प्रजा को कस रक्खा है उसके सैकड़ों पेंचों में से आधा पेंच भी ढीला नहीं किया गया × × ×"*

अब हम लॉर्ड बेण्टिङ्क के मुख्य मुख्य कृत्यों को वर्णन करते हैं।

कुर्ग की स्वाधीनता का अन्त

सब से पहले लॉर्ड बेण्टिङ्क की नजर मैसूर के निकट कुर्ग की

---

* ". . . . his good intentions were never to interfere with the main principle of the British Indian Government, profit to themselves and their masters at the expense of the people of India. . . . The abominable system of purveyance and forced labour is still in full force. The commerce and manufactures of the country are daily deteriorated by the vexatious system of internal duties which is still preserved . . . the people are neither happier nor richer than they were before—indeed, their impoverishment has been progressive—for while the evils inumerated have continued in full force, the revenue screw has scarcely been relaxed half a thread of the many hundreds of which it is composed; . . ."—*Notes on Indian Affairs*, by Frederick Shore, vol. ii, pp. 223, 224.

छोटी सी रियासत की ओर गई। शायद भारत का कोई भी दूसरा भाग इतना सुन्दर रमणीय और मानव स्वास्थ्य के लिए हितकर न होगा जितना कुर्ग का पहाड़ी इलाक़ा। सन् १७९० में जब कि अङ्गरेज़ टीपू सुलतान के साथ युद्ध करने वाले थे, कम्पनी और कुर्ग के राजा के बीच एक सन्धि हुई, जिसकी शर्तें ये थीं—

"(१) जब तक सूर्य और चन्द्रमा क़ायम हैं, सन्धि करने वाले दोनों पक्ष अपने वचन पर क़ायम रहेंगे।

"(२) टीपू और उसके साथियों को दोनों अपना शत्रु समझेंगे। कुर्ग का राजा अपनी पूरी शक्ति भर टीपू को हानि पहुँचाने में अङ्गरेज़ों को मदद देगा।

"(३) जितना रसद इत्यादि का सामान कुर्ग राज्य में पैदा होता है वह सब उचित क़ीमत पर राजा अङ्गरेज़ों को देगा, और दूसरे टोपी वालों (अर्थात् फ़्रान्सीसी इत्यादि) से राजा किसी तरह का सम्बन्ध न रक्खेगा।

"(४) कम्पनी इस बात का वचन देती है कि यदि टीपू के साथ सुलह हो गई तो भी कुर्ग की स्वाधीनता क़ायम रक्खी जायगी और राजा के हितों की पूरी रक्षा की जायगी।

"(५) शान्ति होने के समय तक के लिए वादा किया जाता है कि राजा और उसके कुटुम्बियों को टेलिचरी में आश्रय दिया जायगा और हर तरह से उनकी ख़ातिरदारी की जायगी।

"ईश्वर, सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी हमारे साक्षी हैं!"

किन्तु कम्पनी के अङ्गरेज़ प्रतिनिधियों ने अपनी सन्धियों का मूल्य कभी भी एक रद्दी काग़ज़ के मूल्य से अधिक नहीं समझा।

बेरिटङ्क जानता था कि विशेष कर दक्षिणी भारत में अङ्गरेज़ों के उपनिवेश के लिए कुर्ग से अधिक उपयुक्त स्थान कोई नहीं मिल सकता था। इसलिए यद्यपि कुर्ग के राजाओं ने सदा अङ्गरेज़ों को लाभ ही पहुँचाया, तथापि बेरिटङ्क ने किसी न किसी बहाने कुर्ग के साथ युद्ध करने का सङ्कल्प कर लिया। मालूम होता है कि कुर्ग के राजा और प्रजा दोनों को वीर तथा मानी सुलतान टीपू के विरुद्ध विदेशियों का साथ देने के पाप का इस प्रकार प्रायश्चित्त करना पड़ा।

कुछ वर्ष पहले लॉर्ड हेस्टिंग्स के समय में कुर्ग के राजा वीरराजेन्द्र की मृत्यु हुई। कुर्ग की प्रथा के अनुसार वीरराजेन्द्र की पुत्री देवम्माजी अपने पिता के बाद गद्दी की अधिकारिणी थी। राजा वीरराजेन्द्र भी अपनी इस पुत्री ही को गद्दी देना चाहता था। अङ्गरेज़ सरकार ने राजा के जीते जी उससे वादा कर लिया था कि हम देवम्माजी के अधिकार का समर्थन करेंगे। किन्तु पिता के मरते ही देवम्माजी को छोड़ कर उसके एक भाई को गद्दी पर बैठा दिया गया। कम्पनी सरकार ने उसे राजा स्वीकार कर लिया, और इस प्रकार राजा वीरराजेन्द्र के साथ अपने वचनों का साफ़ उल्लङ्घन किया।

बेरिटङ्क को अब फिर कुर्ग के मामले में हस्तक्षेप करने की सूझी। फिर एक बार देवम्माजी और उसके पति को उभारा गया। कहा गया कि कुर्ग का राजा क्रूर और अन्यायी है और अपने आमोद के लिए अपने सम्बन्धियों तथा प्रजा का संहार

किया करता है ! यहाँ तक कहा गया कि राजा अपनी बहिन और बहनोई दोनों को क़त्ल करना चाहता है ! देवम्माजी और उसके पति ने भाग कर मैसूर के अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट के यहाँ शरण ली। मालूम नहीं कि देवम्माजी अङ्गरेज़ों की मदद से गद्दी प्राप्त करना चाहती थी, अथवा अङ्गरेज़ अफ़सर देवम्माजी को अपनी साज़िश का एक साधन बना रहे थे। यह भी मालूम नहीं कि असहाय राजा के अत्याचारों के अनेक झूठे क़िस्से देवम्माजी के गढ़े हुए थे अथवा अङ्गरेज़ों के। जो हो, अङ्गरेज़ों ने कुर्ग के शासन में दख़ल देने का मौक़ा निकाल लिया। ज़ाहिर है कि वे कुर्ग की स्वाधीनता को नष्ट करने का केवल बहाना ढूँढ़ रहे थे।

युद्ध का एलान कर दिया गया। एक सेना अङ्गरेज़ अफ़सरों के अधीन कुर्ग को विजय करने के लिए भेजी गई। राजा इस युद्ध के लिए बिलकुल तैयार न था और अन्त समय तक असमञ्जस में रहा। पादरी डॉक्टर मोगलिङ्ग अपने कुर्ग के इतिहास में लिखता है—

"राजा ने, कुछ इस आशा में कि अभी सम्भव है फिर से सुलह हो जाय, और कुछ इस डर से कि यदि मामला हद को पहुँचा तो सम्भव है मुझे अपना सब कुछ खो देना पड़े, चारों ओर यह आज्ञाएँ जारी कर दीं कि कोई कुर्गनिवासी कम्पनी की सेनाओं को न रोके और न उनका मुक़ाबला करे। अङ्गरेज़ी सेना की कई डिवीज़नें इस समय कुर्ग में प्रवेश कर रही थीं। उन सब की सफलता का, बल्कि उनकी जान बचने तक का

अधिकतर श्रेय राजा की इस असमञ्जसता को मिलना चाहिए, न कि अङ्गरेज़ सेनापतियों के युद्ध-कौशल अथवा उनकी योग्यता को ।"*

निस्सन्देह कुर्ग के दरबार में उस समय एक से अधिक मनुष्य लॉर्ड बेण्टिङ्क या उसके गुप्तचरों के खरीदे हुए थे, जिन्होंने राजा को तरह तरह से धोखे में रक्खा। अन्यथा राजा की इस भयङ्कर असमञ्जसता और कुर्ग-निवासियों के नाम उसकी घातक आज्ञाओं का और कोई कारण आसानी से समझ में नहीं आ सकता।

संक्षेप यह कि राजा को गद्दी से उतार कर क़ैद करके बनारस भेज दिया गया; देवम्माजी और उसके पति को, जिनके नाम पर यह सब स्वाँग रचा गया था, ताक़ पर रख दिया गया; और कुर्ग का रमणीय प्रान्त कम्पनी के इलाक़े में मिला लिया गया। इस प्रकार कुर्ग की स्वाधीनता का अन्त कर दिया गया।

इस अवसर पर कपट और झूठ से भरा हुआ एक

---

* "The Raja, incited partly by the hope . . . that a reconciliation was yet possible, partly by the fear, that he might lose all, if matters went to extremities, sent orders prohibiting the Coorgs from encountering the troops of the Company. To this vacillation of the Raja, the several divisions of the British Expedition, then marching into Coorg, were more indebted for their success and even safety, than to the skill and talents of their commanders."—Revd. Dr. Moegling, in his History of Coorg published in the *Calcutta Review* for September, 1856, p. 199

एलान कुर्ग की प्रजा के नाम प्रकाशित किया गया, जिसके शुरू में ही लिखा था—

"चूँकि समस्त कुर्गनिवासियों की यह इच्छा है कि हमें अङ्गरेज़ सरकार की रक्षा में ले लिया जाय, इसलिए × × × इत्यादि इत्यादि।"

इसी एलान में आगे चल कर लिखा है कि—"कुर्गनिवासियों को विश्वास दिलाया जाता है कि उन्हें फिर कभी भी देशी शासन के अधीन न होने दिया जायगा, इत्यादि!" प्रायः समस्त अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक स्वीकार करते हैं कि कुर्ग युद्ध द्वारा विजय नहीं किया गया। करनल फ़्रेज़र ने इस एलान में कम्पनी सरकार की ओर से कुर्गनिवासियों के साथ स्पष्ट झूठा वादा किया कि कुर्ग के इलाक़े के अन्दर कभी भी पशु-वध न किया जायगा। कुर्ग के देशी राजाओं के अधीन ज़मीन का लगान पैदावार के रूप में वसूल किया जाता था। एलान में वादा किया गया कि यह रिवाज न तोड़ा जायगा। किन्तु थोड़े ही दिनों बाद लगान नक़दी की सूरत में वसूल किया जाने लगा। दुखित प्रजा ने लाचार हो कर नए विदेशी शासकों के विरुद्ध विद्रोह किया। इस विद्रोह को बड़ी निर्दयता के साथ कुचल डाला गया।

पदच्युत राजा के साथ बाद में इतना बुरा व्यवहार किया गया कि उसे अपनी शिकायतों के दूर करने के लिए सन् १८५२ में इङ्गलिस्तान जाना पड़ा। इङ्गलिस्तान में उसकी इकलौती बेटी ईसाई हो गई और एक अङ्गरेज़ के साथ ब्याह दी गई। अङ्गरेज़ क़ौम ने राजा की शिकायतों की ओर कुछ भी ध्यान न दिया।

कुर्ग पर क़ब्ज़ा करते ही अङ्गरेज़ अफ़सरों ने उस देश को जी भर कर लूटा, यहाँ तक कि लूट का कुछ हिसाब न था। यह लूट का धन सेना के अङ्गरेज़ अफ़सरों में बाक़ायदा बाँटा गया। सेनापति लिण्डसे को कुल रक़म का सोलहवाँ हिस्सा मिला। शेष अफ़सरों को इस प्रकार भाग दिया गया—

प्रत्येक करनल को २५,००० रुपए,

प्रत्येक लेफ़्टेनेण्ट-करनल को १५,००० रु०,

प्रत्येक मेजर को १०,००० रु०,

प्रत्येक कप्तान को ५,००० रु०,

और प्रत्येक सबआल्टर्न [अर्थात् कप्तान से छोटे अफ़सर] को २,५०० रु०।*

इसके बाद कुर्ग को विजय करने में कम्पनी का जो मुख्य उद्देश था वह भी शीघ्र ही पूरा हो गया। कुर्ग की भूमि क़हवे (काफ़ी) की पैदावार के लिए अत्यन्त उपयुक्त थी। अनेक अङ्गरेज़ों को वहाँ बसा दिया गया और जङ्गल के जङ्गल उन्हें इस कार्य के लिए मुफ़्त दे दिए गए। सन् १९०४ में वहाँ लगभग ५०,००० एकड़ ज़मीन क़हवे की खेती में लगी हुई थी और हज़ारों अङ्गरेज़ क़हवे की खेती कराने वाले वहाँ बसे हुए थे।

कछाड़ की रियासत का अन्त

पिछले अध्याय में आ चुका है कि सन् १८२४ में ऐमहर्स्ट

---

* *Asiatic Journal*, May, 1836, p. 33.

ने बरमा-युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए कछाड़ के राजा गोविन्दचन्द्र नारिन के साथ सन्धि कर ली थी। कहा जाता है कि सन् १८३० में किसी ने (?) राजा गोविन्दचन्द्र को क़त्ल कर दिया। राजा के कोई पुत्र न था। बेण्टिङ्क ने इसी बिना पर शान्ति के साथ कछाड़ की रियासत को कम्पनी के इलाक़े में मिला लिया।

भारत छोड़ने से थोड़े दिनों पहले बेण्टिङ्क ने जैन्तिया के राजा का कुछ इलाक़ा इसलिए ज़ब्त कर लिया कि राजा ने कम्पनी के साथ सन्धि की कुछ शर्तों का उल्लङ्घन किया था!

मैसूर

कुर्ग और कछाड़ के अतिरिक्त और कोई रियासत बेण्टिङ्क ने बाक़ायदा कम्पना के इलाक़े में नहीं मिलाई, किन्तु अनेक अन्य रियासतों के शासन-प्रबन्ध में उसने बलात् हस्तक्षेप किया। इनमें से मुख्य मैसूर की रियासत थी।

हैदरअली और टीपू सुलतान ने अपनी वीरता द्वारा मैसूर की प्राचीन हिन्दू रियासत को बढ़ा कर एक बहुत बड़ी सल्तनत बना दिया था। सन् १७९९ में टीपू की वीरगति के बाद अङ्गरेज़ों ने उस विशाल सल्तनत का एक टुकड़ा अनेक कठिन शर्तों के साथ मैसूर के राजकुल को लौटा दिया। राजा तथा कम्पनी के बीच सबसीडीयरी सन्धि हो गई। मैसूर के राजा सन् १७९९ से १८३१ तक उस सन्धि की शर्तों का ईमानदारी के साथ पालन करते रहे और प्रति वर्ष सबसीडी की रक़म ठीक समय पर कम्पनी को अदा करते रहे।

मैसूर को खुले तौर पर कम्पनी के राज्य में मिलाने में एक और बड़ी कठिनाई थी। कम्पनी और निज़ाम में यह समझौता हो चुका था कि यदि मैसूर की रियासत को कभी समाप्त किया जायगा तो आधा मैसूर कम्पनी के पास रहेगा और आधा निज़ाम को दिया जायगा। निज़ाम के बल को बढ़ाना लॉर्ड बेण्टिङ्क को पसन्द न हो सकता था। किन्तु निज़ाम की मित्रता बनाए रखना भी कम्पनी के लिए आवश्यक था। इस लिए बेण्टिङ्क ने एक और चाल चली।

मैसूर के शासन-प्रबन्ध में अनेक झूठे सच्चे दोष निकाले गए, और ७ सितम्बर सन् १८३१ को लॉर्ड बेण्टिङ्क ने अचानक मैसूर के असहाय राजा को पत्र लिख दिया कि आपके शासन के अमुक अमुक दोषों के कारण राज्य का समस्त प्रबन्ध आपके हाथों से लेकर अमुक अमुक अङ्गरेज़ अफ़सरों के हाथों में दे दिया गया है। राजा को इस पत्र का उत्तर देने या बेण्टिङ्क के इलज़ामों को ग़लत साबित करने का मौक़ा नहीं दिया गया। अङ्गरेज़ अफ़सर काम सँभालने के लिए पहुँच गए और राजा को अपना समस्त कार-भार उनके हाथों में सौंप देना पड़ा। जो दोष मैसूर के शासन में निकाले गए उनकी सत्यता या असत्यता के विषय में हम केवल एक विद्वान अङ्गरेज़ मेजर ईवन्स बेल के शब्द नीचे उद्धृत करते हैं—

"लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क का मैसूर देश को क़ुर्क कर लेना न तो सन्धि की शर्तों के अनुसार सर्वथा न्याय्य था, और न सदाचार की दृष्टि से उचित था; क्योंकि कोई विशेष बात मनुष्यत्व के विरुद्ध राजा की ओर से न हुई

थी, और न इसी बिना पर क़ुर्की आयज़ थी कि हमारे पास के प्रान्तों की शान्ति को किसी प्रकार का ख़तरा रहा हो। × × × सच यह है कि सबसीडी की सालाना रक़म सदा अत्यन्त ठीक समय पर अदा की जाती थी, और जिस दिन गवरनर-जनरल ने राजा को पत्र लिखा उस दिन कोई क़िस्त भी कम्पनी को राजा से लेनी बाक़ी न थी।

"इस प्रकार जो दलीलें मैसूर की उस शुरू की क़ुर्की के लिए दी जाती हैं वे न केवल सन्धि की शर्तों के सर्वथा विरुद्ध हैं, बल्कि × × × सत्य के भी कहीं अधिक विरुद्ध मालूम होती हैं।"*

इसके बाद ५० वर्ष तक अर्थात् सन् १८८१ तक अङ्गरेज़ अफ़सरों का एक कमीशन मैसूर का समस्त शासन करता रहा। सन् १८८१ में फिर पहले से भी अधिक कठिन शर्तों के साथ मैसूर का शासन प्राचीन हिन्दू राजकुल को सौंप दिया गया।

जयपुर और जोधपुर

जयपुर में लॉर्ड बेण्टिङ्क ने जूठाराम नामक अपने एक आदमी को वहाँ का मन्त्री नियुक्त करके जबरदस्ती महाराजा के शिर मढ़ दिया। लिखा है कि जूठाराम की नियुक्ति कम्पनी और जयपुर के बीच की सन्धि के विरुद्ध थी और इस नियुक्ति से समस्त राज्य में अराजकता फैल गई।

जोधपुर के महाराजा के ज़िम्मे अङ्गरेज़ों की सबसीडी की

* ". . . thus the grounds alleged for the original attachment of the country are not only unsustainable by the terms of the treaty, but are found to be even more opposed to truth . . . "
—*The Mysore Reversion*, by Major Evans Bell, pp, 21-24.

कुछ रक़म बाक़ी थी। तुरन्त सेना भेज कर साँभर का ज़िला तथा साँभर झील का कुछ भाग बतौर जमानत महाराजा से ले लिया गया।

इसी अवसर पर लॉर्ड वेण्टिङ्क ने साँभर झील और साँभर ज़िले के उस हिस्से पर भी ज़बरदस्ती क़ब्ज़ा कर लिया जो जयपुर की रियासत में था। लडलो लिखता है कि इस ज़बरदस्ती के कारण जयपुर के राजा और प्रजा दोनों में गहरा असन्तोष फैल गया और ४ जून सन् १८३५ को लोगों ने रेज़िडेण्ट के ऊपर हमला करके उसके असिस्टेण्ट मिस्टर ब्लैक को मार डाला।

वास्तव में लॉर्ड वेण्टिङ्क धीरे धीरे इन तमाम रियासतों को ख़त्म करने के लिए तैयारी कर रहा था।

अवध

सन् १८३१ में लॉर्ड वेण्टिङ्क ने अवध का दौरा किया। अवध के नवाब को, जिसे अङ्गरेज़ उन दिनों अवध का बादशाह कहते थे, ख़ूब डराया धमकाया, और राज्य के एक एक महकमे में इस प्रकार का अनधिकार हस्तक्षेप तथा राज्य के कर्मचारियों में मनमाने उलट-फेर करने शुरू किए कि उन दिनों यह एक आम अफ़वाह थी, यहाँ तक कि कलकत्ते के समाचार पत्रों तक में प्रकाशित होगया था, कि अङ्गरेज़ नवाबी का ख़ातमा करके अवध की सल्तनत को अपने इलाक़े में मिला लेना चाहते हैं। नवाब ने घबरा कर इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट से अपील करने का इरादा

किया और करनल दूवॉय नामक एक फ्रान्सीसी को इङ्गलिस्तान भेजना चाहा। दूवॉय यूरोप के लिए रवाना होगया। इस पर वेण्टिङ्क ने नवाब को डरा कर उससे ज़बरदस्ती दूवॉय की बर-ख़ास्तगी का परवाना लिखा कर फ़ौरन् विलायत भेज दिया। इस मामले में नवाब और दूवॉय दोनों के साथ वेण्टिङ्क की ज़बरदस्ती और दूवॉय के विरुद्ध उसके षड्यन्त्र का विस्तृत वृत्तान्त एक लेखक ने वेरीटस (Veritas) के नाम से अप्रेल सन् १८४७ की "इण्डियन एक्ज़ॉमिनर एण्ड यूनिवर्सल रिव्यु" नामक पत्रिका में प्रकाशित किया था।

दिल्ली सम्राट

सम्राट अकबरशाह का जो अपमान लॉर्ड ऐमहर्स्ट ने किया था उसकी शिकायत के लिए राजा राममोहन राय के विलायत भेजे जाने का वर्णन पिछले अध्याय में आ चुका है। लॉर्ड वेण्टिङ्क ने दिल्ली के रेज़िडेण्ट द्वारा सम्राट अकबरशाह पर ज़ोर दिया कि राजा राममोहन राय को शाही दूत के पद से बरख़ास्त कर दिया जाय। सम्राट ने स्वीकार न किया, तथापि राजा राममोहन राय की इङ्गलिस्तान में कौन सुन सकता था। देहली सम्राट की ओर वेण्टिङ्क का समस्त व्यवहार अपमान जनक रहा।

ग्वालियर

सींधिया कुल की गद्दी पर उस समय एक बालक जङ्कोजी सींधिया नामक विराजमान था। रियासत के अन्दर अङ्गरेज़

ने अपनी साज़िशों द्वारा अनेक तरह के उपद्रव खड़े करवा रक्खे थे। इस रियासत की ओर वेल्टिङ्ग की नियत और प्रयत्नों के विषय में एक अङ्गरेज़ लेखक जॉन होप लिखता है—

"किन्तु यदि अपनी राजधानी के अन्दर महाराजा जङ्को सींधिया को इन आपत्तियों ने घेर रक्खा था तो बाहर भी कलकत्ते की अङ्गरेज़ कौन्सिल से उसे कुछ कम आपत्ति की आशङ्का न थी। कलकत्ते में इस बात का पता लगाने के लिए गुप्त सलाहें हो रही थीं कि इस निर्बल, किन्तु अत्यन्त वफ़ादार नौजवान नरेश की आपत्तियों से क्या क्या फ़ायदा उठाया जा सकता है × × × गवरनर-जनरल के चीफ़ सेक्रेटरी ने रेज़िडेण्ट के नाम एक गुप्त पत्र लिखा जिसमें उसे हिदायत की कि आप निजी तौर पर महाराजा से मिल कर इधर उधर की बातों में यह पता लगाने की कोशिश करें कि क्या महाराजा उन गम्भीर आपत्तियों से घिरा हुआ होने के कारण, जो अधिकतर हमारी ही सरकार की खड़ी की हुई हैं, पदत्याग करना पसन्द करेगा या नहीं। यदि वह कर ले तो महाराजा का देश ब्रिटिश सरकार को मिल जायगा और महाराजा को एक सुन्दर पेनशन दे दी जायगी जो उसी की रियासत की आमदनी में से अदा की जायगी।"*

---

* "But if these dangers surrounded him (Maharaja Junko Scindia) in his capital, he was threatened with no less danger from the council of Calcutta. Secret deliberations were there being held, with a view to discover what profit could be made out of the troubles of this weak but most faithful young prince. . . . A demiofficial letter was written to the Resident by the Chief Secretary of the Foreign Department, desiring him to learn, at a *private interview*, by way of a feeler, if the

रेज़िडेण्ट कैवेनडिश लॉर्ड वेण्टिङ्क की इच्छा को पूरा न कर सका। इस पर जॉन होप लिखता है—

"फ़ौरन् एक दूसरा गुप्त पत्र पहुँचा × × × जिसमें मिस्टर कैवेनडिश, को लानत मलामत की गई, और अन्त में यह अर्थ सूचक वाक्य लिखा गया कि—'इस प्रकार तुमने वम्बई प्रान्त को आगरा प्रान्त के साथ जोड़ देने का एक बहुत अच्छा मौक़ा हाथ से खो दिया।",

जॉन होप इस सम्बन्ध में एक और अत्यन्त मनोरञ्जक घटना सुनाता है। वह लिखता है—

"कोई यह न समझे कि × × × दूसरी रियासतों के साथ लॉर्ड विलियम वेण्टिङ्क की नीति को इस प्रकार संक्षेप में चित्रित करने में हमने थोड़ा बहुत भी उस पर अपना रङ्ग चढ़ाया है। हम मिसाल के तौर पर एक मनोरञ्जक घटना बयान करते हैं, जो कि इस समय के जीवित लोगों में केवल तीन या चार को मालूम है और जिससे हमारे इस कथन का काफ़ी समर्थन होगा कि देशी रियासतों के अधिकारों के विषय में लॉर्ड वेण्टिङ्क हज़रत मूसा की उस दसवीं आज्ञा की बिलकुल परवा न करता था जिसमें कहा गया है कि—'अपने पड़ोसी का माल कभी न छीनना।' बात यह थी कि मिस्टर कैवेनडिश की जगह मेजर सदरलैण्ड रेज़िडेण्ट नियुक्त हुआ। × × ×

Maharajah, encircled as he was by serious troubles—*troubles mainly caused by our government*—would like to resign; assigning over the country to the British Government, and receiving a handsome pension, which would be paid out of his own revenues. . . ."—*The House of Scindia, a Sketch*, by John Hope, published in 1863, by Messrs Longman, Green, Longman, Roberts and Green.

मेजर सदरलैंयड यह जानने के लिए कि ग्वालियर पहुँच कर किस नीति का पालन किया जाय, अर्थात् वहाँ के रियासत के मामलों में हस्तक्षेप किया जाय या न किया जाय, गवरनर-जनरल से मिलने के लिए कलकत्ते गया। लॉर्ड बेंटिङ्क को × × × मज़ाक़ का शौक़ था। उसने फ़ौरन् जवाब दिया—'मेजर इधर देखो।' यह कह कर लॉर्ड बेंटिङ्क ने अपनी गरदन पीछे को लटका दी, मुँह खोल दिया और अँगूठा और एक उँगली इस प्रकार मुँह में देकर, जिस प्रकार कि कोई लड़का मिठाई मुँह में डालने लगता है, चकित मेजर से मुख़ातिब होकर कहा—'यदि ग्वालियर की रियासत आपके मुँह में आकर गिरने लगे तो आप मिस्टर कैवेनडिश की तरह अपना मुँह बन्द न कर लीजिएगा, बल्कि उसे निगल जाइएगा; यही मेरी नीति है।'"*

---

* "Presently another demiofficial letter arrived . . . strongly expostulating with Mr. Cavendish upon his proceedings, and concluding with this significant remark: 'You have thus allowed a favourable chance to escape of connecting the Agra to the Bombay Presidency.' . . .

"Lest it should be thought by any one . . . that in this little sketch of his (Lord William Bentinck's) foreign policy, we have given even the slightest touch of colouring, we will relate, by way of illustration, an amusing anecdote, which is known to three or four persons now living, and which sufficiently confirms our statement that, in respect of the rights of native states, His Lordship entirely overlooked the tenth commandment. It happened that Major Sutherland was selected to fill the office vacated by Mr. Cavendish . . . He therefore waited on the Governor-General in Calcutta to learn what the policy was to be at

इस घटना पर टीका करने की आवश्यकता नहीं है। भारतीय रियासतों की ओर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीति का यह एक खासा सच्चा चित्र है। बेण्टिङ्क को आशा थी कि जो गहरी आपत्तियाँ अङ्गरेज़ अफ़सरों ने सींधिया के चारों ओर खड़ी कर रक्खी थीं उनसे घबरा कर महाराजा सींधिया चुपचाप अपना राज्य बेण्टिङ्क के हवाले कर देगा। किन्तु इस विषय में उसकी आशा पूरी न हुई।

झाँसी

सन् १८३५ में झाँसी के राजा की मृत्यु हुई। राजा ने एक पुत्र गोद ले रक्खा था। तथापि लॉर्ड बेण्टिङ्क ने बिना किसी तरह की तहक़ीक़ात या किसी तरह के अधिकार के युवराज के विरुद्ध पिछले राजा के एक चचा रघुनाथराव का पक्ष लेकर उसे गद्दी पर बैठा दिया। उसी समय से झाँसी में कम्पनी की साज़िशें शुरू हो गईं।

इन्दौर

इसी तरह सन् १८३४ में इन्दौर के महाराजा मलहरराव

Gwalior; was it to be intervention? Lord Bentinck . . . loved a joke, quickly replied: 'Look here, Major,' and His Lordship threw back his head, opened wide his mouth, and placed his thumb and finger together like a boy about to swallow a sugar-plum. Then turning to the astonished Major he said: 'If the Gwalior State will fall down your throat, you are not to shut your mouth, as Mr. Cavendish did, but swallow it: that is my policy . . . —"Ibid.

होलकर की मृत्यु हुई। मलहरराव के भी एक दत्तक पुत्र मौजूद था। तथापि दो हक़दार और खड़े होगए। वेण्टिङ्क ने दत्तक पुत्र के विरुद्ध इन दोनों में से किसी एक से सौदा करना चाहा। दुर्भाग्यवश सौदा न हो सका। वेण्टिङ्क के पत्रों से ज़ाहिर है कि वह अन्त समय तक यह न तय कर पाया कि कम्पनी का अधिक हित किस का पक्ष लेने में है। अन्त में लॉर्ड विलियम वेण्टिङ्क की इच्छा और गुप्त प्रयत्नों के विरुद्ध दत्तक पुत्र ही उस समय गद्दी पर बैठा; इस पर वेण्टिङ्क ने इन्दौर के रेज़िडेण्ट को नए राजा के राजतिलक के समय दरबार में जाने तक की मनाही कर दी।

सिन्ध और पञ्जाब

लॉर्ड विलियम वेण्टिङ्क के कार्यों में शायद सबसे महत्वपूर्ण कार्य सिन्धु नदी में जहाज़ और सेना भेज कर उसके जल इत्यादि की थाह लेना था। उद्देश यह था कि भविष्य में सिन्धु नदी पर से सेना ले जाने इत्यादि की कठिनाइयों और सम्भावनाओं का पहले से पता लगा लिया जाय, क्योंकि अरसे से सिन्ध, पञ्जाब और अफ़ग़ानिस्तान तीनों पर कम्पनी की नज़र रह चुकी थी। सर जॉन मैलकम ने एक पत्र भारत सरकार तथा इङ्गलिस्तान के डाइरेक्टरों के सामने पेश किया, जिसमें उसने दिखलाया कि हैदराबाद तथा सिन्धु नदी दोनों पर अङ्गरेज़ सरकार का क़ब्ज़ा होना कितने अधिक महत्व का है। इस पर सबसे पहले इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई कि सिन्धु नदी की थाह ली जाय और जहाज़ों के आने जाने के लिए नदी की उपयोगिता का ठीक ठीक पता

लगा लिया जाय; विशेष कर क्योंकि पञ्जाब और अफ़ग़ानिस्तान इन दोनों पर हमला करने में भी इस नदी का उपयोग किया जा सकता था। किन्तु सिन्ध एक स्वाधीन देश था। सिन्ध के अमीर अङ्गरेजों को इस प्रकार अपने देश में क्यों घुसने देते। इसलिए एक बाज़ाब्ता कपट-प्रबन्ध रचा गया। कहा गया कि इङ्गलिस्तान के बादशाह विलियम चतुर्थ की ओर से पञ्जाब के महाराजा रणजीतसिंह के पास उपहारस्वरूप एक घोड़ागाड़ी भेजनी है जिसे केवल जलमार्ग से ही पञ्जाब पहुँचाया जा सकता है। इतिहास-लेखक प्रिन्सेप लिखता है कि—"तय किया गया कि इस उपहार को भेजने के बहाने सिन्धु नदी की सब बातों और उस नदी द्वारा यात्रा की सुविधाओं तथा असुविधाओं का पता लगाया जाय।"* कम्पनी के डाइरेक्टरों ने गवरनर-जनरल को साफ़ लिख दिया कि यदि सिन्ध के अमीर राज़ी न हों तो उनकी कुछ परवा न की जाय।

सर चार्ल्स मेटकाफ़ उस समय गवरनर-जनरल की कौन्सिल का एक सदस्य था। उसे डर था कि यदि यह भेद सिन्ध के अमीरों पर खुल गया और यदि वे अङ्गरेजों के विरुद्ध होगए तो भविष्य में बाहर के किसी भी शत्रु को अङ्गरेजों के विरुद्ध उनसे सहायता

---

* "It was resolved to make the transmission of this present, a means of obtaining information in regard to the Indus, and the facilities, or the contrary it might offer to navigation."—*Origin of the Sikh Power in the Punjab and Political Life of Maharaja Ranjit Singh*, chapter x.

मिल सकेगी। इसलिए मेटकाफ़ इस समस्त कपट-प्रबन्ध के विरुद्ध था। उसने अक्तूबर सन् १८३० को गवरनर-जनरल को लिखा—

"राजा रणजीतसिंह को उपहार भेजने के बहाने सिन्धु नदी की सरवे करने की योजना मुझे अत्यन्त अनुचित प्रतीत होती है।

"मेरी सम्मति में यह एक ऐसी चाल है जो हमारी सरकार को शोभा नहीं देती, जिसका भेद बहुत सम्भव है कि कभी न कभी खुल जायगा, और जब भेद खुलेगा तो जिन ताक़तों को हम इस समय धोखा दे रहे हैं उनके हम क्रोध और ईर्षा के पात्र बने बिना न रह सकेंगे।*

* * *

"× × × हमें बीच की रियासतों को इस तरह के कामों से नाराज़ नहीं कर लेना चाहिए, जिनसे हमारे विरुद्ध उनकी शत्रुता भड़कने की सम्भावना हो, बल्कि हमें उनके साथ मित्रता क़ायम करनी चाहिए × × ×"

"जिन बातों का पता लगाना है यदि वे क़तई ज़रूरी हों और खुले तौर पर तथा ईमानदारी के साथ उनका पता नहीं लगाया जा सकता तो मैं समझता हूँ कि मामूली तरीक़े से गुप्तचर भेज कर चुपचाप पता लगा लेना चाहिए, और दूसरों को धोखा नहीं देना चाहिए, क्योंकि हमारा

---

* "The scheme of surveying the Indus, under the pretence of sending a present to Raja Ranjit Singh, seems to me highly objectionable.

"It is a trick, in my opinion, unworthy of our Government, which cannot fail when detected, as most probably it will be, to excite the jealousy and indignation of the powers on whom we play it."—Minute of Sir Charlse Metcalf, October, 1830.

असली उद्देश कुछ और है और ऊपर से हम बहाना दूसरा ले रहे हैं, जब कि हम जानते हैं कि सच्ची बात कहने से हमें इजाज़त न मिलेगी।"*

सर चार्ल्स मेटकाफ़ के इन शब्दों के बाद इस सम्बन्ध में बेण्टिङ्क के कपट के और अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है।

सिन्धु नदी की सरवे के साथ साथ एक दूसरी योजना इस समय यह हो रही थी कि काबुल में कम्पनी का एक व्यापारिक एजण्ट रहा करे। मेटकाफ़ ने इस योजना का भी विरोध किया। इतिहास-लेखक के लिखता है—

"सिन्धु नदी की सरवे और काबुल में व्यापारिक एजन्सी का क़ायम करना, ये दोनों मानो भावी अफ़ग़ान युद्ध के महाकाव्य की प्रस्तावना थी।"

वास्तव में लॉर्ड बेण्टिङ्क की ये दोनों योजनाएँ केवल सन् १८३९—१८४२ के अफ़ग़ान युद्ध और उसके बाद के सिन्ध और पञ्जाब के युद्धों की तैयारी थी।

जाहिर है कि लॉर्ड बेण्टिङ्क की नज़र सिन्ध, पञ्जाब और

* "If the information wanted is indispensable, and can not be obtained by fair and open means, it ought, I conceive, to be sought by the usual mode of sending unacknowledged emissaries, and not by a deceitful application for a passage under the fictitious pretence of one purpose when the real object is another, which we know would not be sanctioned."—Kaye's *Selections from the Writings of Lord Metcalf*, pp. 211-217.

अफ़ग़ानिस्तान तीनों पर थी। इतिहास-लेखक मेसन ने इस सम्बन्ध में लॉर्ड वेण्टिङ्क के कपट को बड़े विस्तार के साथ दिखलाया है।* विक्टर जैकमॉण्ड ने लिखा है कि वेण्टिङ्क ने सिन्ध के अमीरों को यह डर दिखाया कि यदि आप लोग अङ्गरेज़ी जहाज़ों के जाने में बाधक होंगे तो कम्पनी सरकार और महाराजा रणजीतसिंह दोनों आप से नाराज़ हो जायँगे और फिर मजबूर होकर अङ्गरेज़ों को रणजीतसिंह को सिन्ध के विजय करने में सहायता देनी पड़ेगी। दूसरी ओर अमीरों को यह भी विश्वास दिलाया गया कि इस कार्य द्वारा अङ्गरेज़ों का कोई इरादा सिन्ध को हानि पहुँचाने का नहीं है, और यदि आप लोगों ने इजाज़त दे दी तो सिन्ध तथा कम्पनी के बीच मित्रता सदा के लिए पक्की हो जायगी। इस प्रकार डरा कर तथा बहका कर वेण्टिङ्क ने अमीरों से इजाज़त हासिल कर ली। अमीरों ने कम्पनी के जहाज़ों के लिए सिन्धु नदी के तट के बराबर बराबर हर तरह की सुविधाएँ कर दीं। मेसन लिखता है कि इस उपहार भेजने के बहाने सिन्धु नदी के किनारे फ़ौजें भेज दी गईं और लगभग छै सशस्त्र जहाज़ नदी में पहले से भेज दिए गए।

महाराजा रणजीतसिंह स्वयं बहुत दिनों से सिन्ध विजय करने की इच्छा कर रहा था। सन् १८०९ में कम्पनी और रणजीतसिंह के बीच जो सन्धि हुई थी उसमें यह साफ़ शर्त थी कि सतलज के इस पार का तमाम इलाक़ा कम्पनी के लिए छोड़ दिया जाय और

* Masson's *Travells*, vol. iii, p. 432.

सतलज के दूसरी ओर महाराजा रणजीतसिंह चाहे जितना अपना साम्राज्य बढ़ाने का प्रयत्न करे, अङ्गरेज़ उसमें बाधक न होंगे। रणजीतसिंह ने इस सन्धि का ईमानदारी के साथ पालन किया और धीरे धीरे समस्त काशमीर, मुलतान और पेशावर के इलाक़ों को विजय करके अपने साम्राज्य में मिला लिया। रणजीतसिंह की विशाल सेना उस समय भारत की सब से अधिक वीर और सुसन्नद्ध सेनाओं में गिनी जाती थी। उसका साम्राज्य विशाल, समृद्ध और उर्वर था। पेशावर तक पहुँचने के बाद उसने सिन्ध विजय करने का इरादा किया। किन्तु दूसरी ओर कम्पनी की भी सिन्ध पर नज़र थी, इसलिए सन् १८०९ की सन्धि के विरुद्ध बेण्टिङ्क ने अब रणजीतसिंह को सिन्ध विजय करने से रोकने का प्रयत्न किया।

इसी प्रयत्न के सिलसिले में रणजीतसिंह के पास उपहार भी भेजे गए। वेण्टिङ्क ने स्वयं रणजीतसिंह से मिलने की प्रार्थना की। रणजीतसिंह ने इङ्गलिस्तान के बादशाह विलियम की भेजी हुई गाड़ी और घोड़े और वेण्टिङ्क के अन्य उपहारों से प्रसन्न होकर वेण्टिङ्क की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

सन् १८३१ के अन्त में रोपड़ नामक स्थान पर पूर्वीय शानो-शौकत के साथ लॉर्ड वेण्टिङ्क और महाराजा रणजीतसिंह की मुलाक़ात हुई। लॉर्ड वेण्टिङ्क इस मुलाक़ात के समय ख़ासी सेना अपने साथ ले गया। जॉन मैलकम लडलो लिखता है कि अङ्गरेज़ों का अफ़ग़ान राजनैतिक क़ैदी शाहशुजा उस समय लुधियाने में रहता

था। लॉर्ड वेरिटङ्क और महाराजा रणजीतसिंह की इस मुलाक़ात के अवसर पर यह तय हुआ कि शाहशुजा को सामने करके अफ़ग़ानिस्तान पर हमला किया जाय। जनवरी १८३३ में रणजीतसिंह की इजाज़त से तीस हज़ार सेना सहित शाहशुजा ने पहले सिन्ध पर हमला किया। उसके बाद वह क़न्धार की ओर बढ़ा, अन्त में काबुल के बादशाह दोस्त मोहम्मद ख़ाँ ने शाहशुजा को हरा दिया और सन् १८३४ में शाहशुजा को फिर भाग कर लुधियाने में आश्रय लेना पड़ा।

सिन्ध ही के मामले पर रोपड़ में वेरिटङ्क तथा रणजीतसिंह में कुछ मतभेद भी हो गया। वेरिटङ्क ने यह प्रकट किया कि अङ्गरेज़ सिन्धु नदी के नीचे के हिस्से पर क़ब्ज़ा करना चाहते हैं और उस ओर अपना व्यापार बढ़ाना चाहते हैं; इसलिए उन्हें सिन्धु के किनारे किनारे अपनी छावनियाँ बनानी होंगी। रणजीतसिंह ने इसे सुन कर पहले एतराज़ किया। क्योंकि वेण्टिङ्क की माँग सन् १८०९ की सन्धि के विरुद्ध थी। अन्त में किसी न किसी प्रकार लॉर्ड वेरिटङ्क ने महाराजा रणजीतसिंह को राज़ी कर लिया और उसे सिन्ध पर चढ़ाई करने से रोक दिया। रणजीतसिंह अङ्गरेज़ों की इच्छा के विरुद्ध चलने का साहस न कर सका। तथापि इस समय से ही रणजीतसिंह के दिल में अङ्गरेज़ों की ओर से काफ़ी शङ्का उत्पन्न हो गई। उस समय के अनेक पत्रों से यह भी साबित है कि रणजीतसिंह के राज्य के विरुद्ध भी वेरिटङ्क के समय से ही अङ्गरेज़ों में गुप्त सलाहें और तजवीज़ें हो रही थीं।

कप्तान कनिङ्घम लिखता है कि सिख युद्ध के कारणों में से एक कारण यह था कि लॉर्ड वेण्टिङ्क की गवरनर-जनरली के दिनों में अङ्गरेजों ने स्वयं सिन्ध पर क़ब्ज़ा करने के उद्देश से रणजीतसिंह को सिन्ध विजय करने अथवा सिन्ध को अपनी एक सामन्त रियासत बनाने से रोकने के लिए हर तरह के छल, कपट और बहानेबाज़ी का उपयोग किया ।*

संक्षेप में लॉर्ड वेरिटङ्क का व्यवहार भारत की अन्य रियासतों के साथ इस प्रकार रहा। कुर्ग और कछाड़ को उसने कम्पनी के राज्य में मिला लिया। अवध की बादशाहत के आन्तरिक मामलों में उसने अनुचित हस्तक्षेप किया, जिससे बाद में उसके उत्तराधिकारियों को अवध के स्वाधीन अस्तित्व को मिटाने में मदद मिली। उसने दिल्ली सम्राट का अकारण अपमान किया। ग्वालियर की मराठा रियासत को हड़प जाने की उसने भरपूर कोशिश की। मैसूर को उसने बहाना निकाल कर अङ्गरेजों के शासन में कर लिया। और भी कई छोटी बड़ी रियासतों में उसने अनधिकार हस्तक्षेप किया। और सब से बढ़ कर सिन्धु नदी की सरवे के लिए उसने वह कपट-प्रबन्ध रचा जिससे अफ़ग़ानिस्तान, पञ्जाब और सिन्ध तीनों की भावी आपत्तियों की बुनियाद पड़ गई।

पुराने घरानों का नाश

लॉर्ड वेण्टिङ्क की अन्य कारवाइयों में से दो चार उल्लेख करने योग्य हैं—

* *History of the Sikhs*, by Captain Cunningham, chapter, vii.

बेण्टिङ्क के आने के सैकड़ों वर्ष पहले से हजारों पुराने घरानों को, और हजारों धार्मिक, विद्या-प्रचार सम्बन्धी तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओं को मुग़ल सम्राटों तथा अन्य हिन्दू मुसलमान नरेशों की ओर से जगह जगह माफ़ी की जमीनें मिली हुई थीं, जिन्हें 'लाख़िराज' जमीन कहते थे। अभी तक अङ्गरेजों ने ब्रिटिश भारत के अन्दर इन माफ़ी की जमीनों में अधिक हस्तक्षेप न किया था। किन्तु बेण्टिङ्क ने भारत पहुँचते ही हर ज़िले के कलेक्टर को यह अधिकार दे दिया कि वह अपने ज़िले के अन्दर की जिस लाखिराज ज़मीन को उचित समझे कम्पनी के नाम जब्त कर ले। इस अन्याय ने उस समय के सहस्रों ही ख़ुशहाल भारतीय घरानों को बरबाद कर दिया, उनके बाल बच्चों को अपने जीवन निर्वाह के उपाय ढूँढ़ने के लिए घरों से बाहर निकाल फेंका, और सहस्रों प्राचीन धार्मिक तथा अन्य संस्थाओं का अन्त कर दिया।

बेण्टिङ्क भारत के अन्दर कोई पुराना धनाढ्य अथवा सम्मानित घराना बाक़ी छोड़ना न चाहता था। जितनी जागीरों अथवा जायदादों के मालिक पुत्र-विहीन मर जाते थे उन्हें वह कम्पनी सरकार के नाम जब्त कर लेना न्याय्य समझता था। पिछले मालिक के दत्तक पुत्रों अथवा भाई भतीजों के अधिकार की कोई परवा न की जाती थी। अकेले बम्बई प्रान्त के अन्दर अनेक जागीरदारों और सरदारों की रियासतें उनके दत्तक पुत्रों अथवा भाई भतीजों के होते हुए इस प्रकार जब्त कर ली गईं।

लॉर्ड बेण्टिङ्क ने ब्रिटिश भारत की कचहरियों से फ़ारसी तथा

देशी भाषाओं को बिलकुल हटा कर अङ्गरेज़ी को उनका स्थान देने की पूरी कोशिश की। वेरिटङ्क इस बात में विश्वास करता था कि भारतवासियों की भाषा, उनके भेष और उनके रहन सहन में अङ्गरेज़ियत पैदा करके ही उन्हें देश-प्रेम तथा राष्ट्रीयता के भावों से दूर रक्खा जा सकता है और विदेशीय सत्ता के अधिक उपयोगी यन्त्र बनाया जा सकता है। इसी लिए वह भारत में अङ्गरेज़ी शिक्षा तथा ईसाई धर्म दोनों के प्रचार का पक्षपाती था। किन्तु शिक्षा का महान विषय एक दूसरे अध्याय का विषय है।

वेरिटङ्क ने भारत में अङ्गरेज़ों के उपनिवेश क़ायम कराने का भरसक प्रयत्न किया।

समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता का लॉर्ड विलियम वेण्टिङ्क पक्का शत्रु था।

सारांश यह कि लॉर्ड विलियम वेण्टिङ्क के शासन-काल ने ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य को अधिक मज़बूत और भारत की पराधीनता की बेड़ियों को और अधिक पक्का कर दिया।

पैंतीसवाँ अध्याय

सन् १८३३ का चारटर एक्ट

सन् १८३३ का एक्ट

भारत के अन्दर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारों को क़ायम रखने के लिए इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट हर बीस वर्ष के बाद एक नया क़ानून पास किया करती थी; जिसे चारटर एक्ट कहते थे। सन् १८१३ के चारटर एक्ट और उसके द्वारा भारत के प्राचीन व्यापार तथा उद्योग धन्धों के सर्वनाश का ज़िक्र एक पिछले अध्याय में किया जा चुका है। इसके बाद लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क के शासन-काल में सन् १८३३ में फिर नया चारटर एक्ट पास करने का समय आया।

यह समय इङ्गलिस्तान में बढ़ते हुए राष्ट्रीय जीवन का समय था। कारण यह था कि भारतीय साम्राज्य, भारत की लूट और भारतीय उद्योग धन्धों के नाश के प्रताप से इङ्गलिस्तान के उद्योग

धन्धों और इङ्गलिस्तान के व्यापार ने पिछले बीस वर्ष के अन्दर अपूर्व उन्नति की थी। इङ्गलिस्तान का धन बढ़ रहा था। बड़े बड़े शहरों की आबादी बढ़ती जा रही थी। धन की वृद्धि के साथ साथ लोगों के हौसले भी बढ़े हुए थे। राजनैतिक क्षेत्र में प्रजा अधिकाधिक अधिकार माँग रही थी। इसीलिए सन् १८३२ में वहाँ की प्रजा के अधिकारों को बढ़ाने के लिए पार्लिमेण्ट को नया 'रिफ़ॉर्म एक्ट' पास करना पड़ा था।

किन्तु सदा यह देखने में आया कि इङ्गलिस्तान के अन्दर प्रजा के अधिकार और उनके हौसले जब जब, जितने जितने बढ़ते गए, पराधीन भारत की बेड़ियाँ तब तब, उतनी उतनी ही अधिक कसती गईं। स्वाभाविक भी यही है, क्योंकि विदेशीय शासन के अधीन शासक तथा शासित दोनों देशों के हित परस्पर विरोधी होते हैं। भारत की दरिद्रता में इङ्गलिस्तान की समृद्धि, और भारत की जागृति में इङ्गलिस्तान को खतरा। इङ्गलिस्तान की जनता के अधिकार जितने जितने बढ़ते जायँगे, भारतवर्ष के क्रियात्मक शासकों की संख्या उतनी उतनी ही बढ़ती जायगी और भारत की परवशता और दरिद्रता भी उतनी उतनी ही अधिक होती जायगी। लॉर्ड मैकॉले ने एक स्थान पर सत्य लिखा है—

"मुझे विश्वास है कि सब प्रकार के अन्यायों में सब से बुरा अन्याय एक क़ौम का दूसरी क़ौम के ऊपर अन्याय करना है।"*

---

* "Of all forms of tyranny I believe the worst is that of a nation over a nation."—Lord Macaulay.

अमरीका के सुप्रसिद्ध राष्ट्रपति इब्राहीम लिङ्कन ने एक स्थान पर लिखा है—

"कोई क़ौम भी इतनी भली नहीं हो सकती कि जो दूसरी क़ौम पर शासन कर सके।"*

सारांश यह कि सन् १८३२ के 'रिफ़ॉर्म एक्ट' का परिणाम भारत के लिए और बुरा हुआ, और इसी अहितकर परिस्थिति में पार्लिमेण्ट ने सन् १८३३ का 'चारटर एक्ट' पास किया।

इस नए 'चारटर एक्ट' से भारत के ऊपर अङ्गरेज़ी शासन का आर्थिक भार और अधिक बढ़ गया, सन् १८१३ के एक्ट का क्षेत्र और अधिक विस्तीर्ण कर दिया गया, और अङ्गरेज़ों के लिए भारत से धन बटोरने के ज़रिए और अधिक बढ़ा दिए गए। एक्ट के इक्का दुक्का इस तरह के वाक्यों पर, जिनमें भारत की ओर अङ्गरेज़ों की हितचिन्तकता दर्शाई गई है और जो केवल भारतवासियों की आँखों में धूल डालने के लिए दर्ज किए गए थे, समय नष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। न उस एक्ट की पृथक पृथक धाराओं पर बहस करने की आवश्यकता है। यह दर्शाने के लिए कि सन् १८१३ के एक्ट के समान सन् १८३३ का एक्ट भी भारत के लिए कितना नाशकर साबित हुआ, हम केवल इङ्गलिस्तान की 'इण्डिया रिफ़ॉर्म सोसाइटी' की एक पत्रिका के कुछ वाक्य नीचे उद्धृत करते हैं। यह सोसाइटी सन् १८५३ में क़ायम हुई थी। एक पत्रिका

* ". . . there is no nation good enough to govern another nation."—President Abraham Lincoln.

द्वारा इसने इङ्गलिस्तान की प्रजा को यह दिखाने की कोशिश की कि सन् १८३३ के क़ानून के अनुसार जिस तरह का शासन बीस वर्ष तक भारत पर जारी रहा उसका परिणाम भारत के लिए कितना अहितकर रहा। हम ठीक इस पत्रिका के ही शब्दों में सन् १८३३ के चारटर के परिणामों को नीचे बयान करते हैं।

इस पत्रिका में लिखा है—

"× × ×इस जाँच में हमारा पहला काम यह है कि हम भारत के उस शासन को, जो सन् १८३३ की पद्धति के अनुसार चलाया गया, सुशासन की कुछ कसौटियों पर कस कर देखें।

"पहली कसौटी—शान्ति।

"सन् १८३४ से अब तक× × ×१६ साल में से १५ साल भारत की अङ्गरेज़ सरकार के युद्धों में बीते।

"ये युद्ध भारतवासियों की रक्षा के लिए आवश्यक न थे, भारतवासियों की उन्नति इन युद्धों से रुकी है और उनके सुख में बाधा पड़ी है, × × ×किन्तु ये सब युद्ध उस शासन-पद्धति के साधारण परिणाम थे जो सन् १८३३ में क़ायम की गई। × × ×

* * *

"दूसरी कसौटी—सरकार की आर्थिक स्थिति।

* * *

"× × ×पिछले १४ वर्ष के अन्दर भारत के सालाना बजट में लगातार घाटा ही घाटा पड़ता रहा है।

"सन् १८३२ में सेना विभाग का ख़र्च लगभग अस्सी लाख पाउण्ड अर्थात् भारत सरकार की कुल आमदनी का ४१ फ़ीसदी था। × × ×

अब भारत के सेना विभाग का ख़र्च एक करोड़ बीस लाख पाउण्ड से अधिक, और कुल आमदनी का ५६ फ़ीसदी है × × ×।

"तीसरी कसौटी—देश की भौतिक उन्नति।

"× × × भारत सरकार का क़रज़ा बढ़ता जा रहा है × × × सड़कें, पुल, नहरें इत्यादि सार्वजनिक हित के कामों पर सरकार पाँच लाख पाउण्ड सालाना से कम अर्थात् अपनी दो करोड़ दस लाख पाउण्ड सालाना से अधिक की आमदनी में से, × × × कुल आमदनी का सवा दो फ़ीसदी ख़र्च करती है।

"इस रक़म में से भी, जो कहने के लिए सार्वजनिक कामों में ख़र्च होती है, एक हिस्सा गोरे सिपाहियों के लिए उन बारगों पर ख़र्च होता है, जो सिर्फ़ सेना के लिए बनती हैं; और इस रक़म में से कभी कभी ७० फ़ीसदी तक केवल देख भाल करने वालों की तनख़ाहों आदि पर ख़र्च हो जाता है।

"चौथी कसौटी—साधारण प्रजा की अवस्था।

* * *

[इस स्थान पर पत्रिका के लेखक ने सरकारी रिपोर्टों से यह दिखलाया है कि यद्यपि लगान वसूल करने के लिए बङ्गाल में ज़मींदारी पद्धति थी, मद्रास में रय्यतवारी और बम्बई प्रान्त में मिश्रित पद्धति, तथापि तीनों प्रान्त में कम्पनी के शासन में किसानों की अवस्था दिन प्रति दिन कितनी ख़राब होती जा रही थी।]

"जो बयान इस प्रकार संक्षेप में ऊपर दिया गया है, उससे कुछ दरजे तक मालूम हो जायगा कि बङ्गाल में, जिसकी आबादी चार करोड़ है, किसानों की हालत कितनी करुणाजनक है, मद्रास में, जिसकी आबादी

सवा दो करोड़ है, किसानों की हालत और भी ज़्यादा ख़राब है, और बम्बई में, जिसकी आबादी एक करोड़ है, किसानों की स्थिति कितनी बुरी है। केवल किसानों का ही नाश नहीं हुआ है, बल्कि धीरे धीरे समस्त क़ौम का नाश हो रहा है। देश के भद्र लोगों (अर्थात् पुराने ख़ान्दान वालों) की श्रेणी लगभग हर जगह लोप हो चुकी है। × × × नैतिक पतन भी इस शारीरिक पतन का स्वाभाविक परिणाम है। जो लोग इस स्थिति के लिए ज़िम्मेवार हैं वे इसे भले ही 'सन्तोषजनक' समझें, किन्तु भारत के लिए यह बरबादी और सर्वनाश है; इङ्गलिस्तान के लिए इसमें ख़तरा और ज़िल्लत।

"पाँचवीं कसौटी—क़ानून और न्याय।

"× × × बड़े बड़े और महँगे क़ानून।

* * *

"× × × रेगुलेशन प्रान्तों में क़ानून कहलाने योग्य कोई चीज़ है ही नहीं, × × × अदालतों की काररवाई पेचीदा कर दी गई है, और ख़र्च बढ़ा कर असह्य कर दिया गया है। जिन्हें अदालतें कहा जाता है उनमें प्रवेश करने के लिए केवल इतना ही ज़रूरी नहीं है कि मनुष्य को कोई दावा करना हो, बल्कि (वकीलों को नहीं) सरकार को देने के लिए उसके पास धन भी होना चाहिए। कम्पनी की उस समस्त भारतीय प्रजा के लिए, जो न्याय ढूँढ़ने के लिए सरकार को टैक्स नहीं दे सकती, अदालतों के दरवाज़े बन्द हैं। उनके लिए न क़ानून है और न इन्साफ़; और जिनके पास धन है वे अन्दर घुस कर क्या देखते हैं? कैम्पबेल ने स्वीकार किया है कि जज इस तरह के हैं जो अङ्गरेज़ जाति के नाम पर एक कलङ्क हैं।

* * *

"छठी कसौटी—पुलिस।

"××× इस विषय में हम बङ्गाल के १२५२ अङ्गरेज़ तथा अन्य ईसाई बाशिन्दों का यह बयान उद्धृत करते हैं कि वहाँ की पुलिस न केवल जुर्मों के बन्द करने, अपराधियों के गिरफ़्तार करने और जान माल की रक्षा करने में ही असफल रही, बल्कि हमारी पुलिस स्वयं अत्याचार का एक साधन है और लोगों के नैतिक पतन का एक प्रबल कारण बन गई है ××× इस प्रकार क़ानून, इन्साफ़ और जुर्मों की कसौटी पर कसने से मालूम होता है कि १८३३ के क़ानून से भारतवासियों की उन्नति अथवा उनके सुख की वृद्धि नहीं हुई।

"सातवीं कसौटी—शिक्षा।

"××× अब हम सन् १८३३ की पद्धति को शिक्षा की कसौटी पर कसते हैं। ××× जब कि भारतवासियों के अपने शासन के दिनों में हर गाँव में पाठशाला थी, हमने इन ग्रामों की पञ्चायतों का नाश करके उनके साथ साथ वहाँ के स्कूल भी तोड़ डाले और उनकी जगह कोई चीज़ नई क़ायम नहीं की। ××× दो करोड़ बीस लाख की आबादी में से भारत सरकार इस समय हर साल १६० विद्यार्थियों को शिक्षा देती है! ××× जब कि कम्पनी के डाइरेक्टर भारत के टैक्सों की वसूली में से पिछले २० वर्ष के अन्दर ५३,००० पाउण्ड केवल दावतों पर ख़र्च कर चुके हैं। ×××

[प्राचीन भारतीय शिक्षा के सर्वनाश का वर्णन अगले अध्याय में किया जायगा।]

"आठवीं कसौटी—सरकारी नौकरियाँ।

"××× धीरे धीरे योग्य भारतवासियों को निकाल कर हर एक ऐसी

नौकरी, जिसमें तनख़ाह अधिक हो, जिसमें कुछ ज़िम्मेवारी हो और जिसकी कुछ क़द्र हो, अङ्गरेज़ों को दे दी गई है। इससे शासन का ख़र्च बेहद बढ़ गया है। यहाँ तक कि यही हमारी स्थायी नीति हो गई। सन् १८३३ के क़ानून का भी परिणाम यही हुआ कि × × × जो नौकरियाँ पहले भारतवासियों के लिए थीं वे अब यूरोपियनों को दे दी गईं।

"× × × भारतवासी चाहे कितने भी शिक्षित, योग्य और उपयुक्त क्यों न हों, उन्हें तमाम ऊँची और अधिक तनख़ाह की नौकरियों से अलग रक्खा जाता है। × × × १५ करोड़ की आबादी में से तीन या चार हज़ार को छोटी छोटी नौकरियाँ मिल जाती हैं जिनकी औसत तनख़ाह क़रीब ३० पाउण्ड सालाना है। किन्तु शासन के कार्य में, विश्वास और ज़िम्मेवारी के कार्य में, कोई वास्तविक हिस्सा भारतवासियों को नहीं दिया जाता।

[इसके बाद यह दिखाया गया है कि जो व्यवहार अङ्गरेज़ यहाँ पर हिन्दोस्तानियों के साथ कर रहे थे उससे अच्छा व्यवहार वे अफ़रीक़ा में वहाँ की हब्शी जातियों के साथ कर रहे थे।]

* * *

"किन्तु भारत में एक ऐसी क़ौम, जो उस समय सुसभ्य जीवन के समस्त धन्धों में कुशल थी, जब कि हम अभी जङ्गलों में घूमा करते थे, अफ़रीक़ा की फ़ाँती क़ौम से भी ज़्यादा अभागी है और उनकी क़ौम की क़ौम को अयोग्य, असहाय और नालायक़ कह कर सदा के लिए उसी देश के अन्दर नीच बना कर रक्खा जाता है जिसे कि उनके पूर्वजों ने जगत भर में प्रसिद्ध कर रक्खा था।

"नवीं कसौटी—सार्वजनिक सन्तोष।

"क्या भारतवासी सन् १८३३ के क़ानून की कारवाई से सन्तुष्ट हैं ? यदि वे हों तो बड़े आश्चर्य की बात है ; और वे सन्तुष्ट नहीं हैं। वे बलवा नहीं करते ; वे विरोध नहीं करते ; वे भारतीय सरकार के ख़िलाफ़ सिर नहीं उठाते ; × × × क्योंकि अङ्गरेज़ी शासन के अधीन सरकार की ताक़त उनके मुक़ाबले में बहुत ज़बरदस्त और सुसङ्गठित है × × ×।

"मद्रास की प्रजा शिकायत करती है कि उनके समाज का समस्त ढाँचा उलट पुलट कर दिया गया जिससे उनको हानि ही नहीं, बल्कि लगभग उनकी बरबादी है।

* * *

"वे शिकायत करते हैं कि नमक के व्यापार पर, जो कि उनके फीके भात का एक मात्र मसाला है, और जिसके बिना न वे जी सकते हैं और न उनके जानवर, कम्पनी सरकार का ठेका है।

"वे शिकायत करते हैं कि उनसे न केवल शहर की दूकानों पर और सड़क के ऊपर की दूकानों और सायबानों पर ही टैक्स लिया जाता है, बल्कि उनके धन्धों के हर एक औज़ार पर भी ; यहाँ तक कि चाक़ुओं तक पर टैक्स लिया जाता है, उन्होंने पार्लिमेण्ट को लिखा है कि उन्हें चाक़ुओं पर जो टैक्स देना पड़ता है वह कभी कभी चाक़ुओं की क़ीमत के छैगुने से भी अधिक होता है।

"वे शिकायत करते हैं कि शराब के ऊपर कर वसूल करने के लिए सरकार ज़बरदस्ती लोगों को शराब पीने की आदत डाल रही है, जब कि हिन्दू और मुसलमान दोनों के धर्मग्रन्थ शराब पीने का निषेध करते हैं।

* * *

"इसलिए यदि सन्तोष ही सुशासन की एक कसौटी हो तो सन् १८३३ का क़ानून पूरी तरह असफल रहा।

"दसवीं कसौटी—अङ्गरेज़ों द्वारा देश का संरक्षण।

"× × × हिन्दोस्तान के बजट में हर साल घाटा पड़ता है, तथापि कम्पनी के अङ्गरेज़ हिस्सेदारों को बराबर और ठीक ठीक १०$\frac{1}{2}$ फ़ीसदी मुनाफ़ा दिया जाता रहा है × × ×।"*

सन् १८३३ का क़ानून पास होने के बाद से भारत के विदेशी शासक और भी अधिक ज़ोरों के साथ रही सही देशी रियासतों को अङ्गरेज़ी राज्य में मिलाने के प्रयत्नों में लग गए।

लॉर्ड मैकॉले

सन् १८३३ के क़ानून के अनुसार भारत के गवरनर-जनरल की कौन्सिल में एक नया सदस्य बढ़ाया गया, जिसे 'लॉ मेम्बर' कहते थे। लॉ मेम्बर का कार्य ब्रिटिश भारत की जा के लिए क़ानून बनाना बतलाया गया। प्रसिद्ध अङ्गरेज़ विद्वान लॉर्ड मैकॉले को पहला 'लॉ मेम्बर' नियुक्त करके सन् १८३३ में भारत भेजा गया। हिन्दोस्तान की 'ताजीरात हिन्द' (भारतीय दण्ड-विधान) अर्थात् इण्डियन पीनल कोड की रचना और हिन्दोस्तानियों में अङ्गरेज़ी शिक्षा के प्रचार, इन दोनों बातों का श्रेय मैकॉले ही को दिया जाता है।

---

* *The Government of India since 1834*, by The India Reform Society of England, 1853.

मैकॉले एक विद्वान, किन्तु निर्धन अङ्गरेज़ था। उस समय के अन्य अङ्गरेज़ों के समान भारत आने में उसका मुख्य उद्देश भारत से धन कमाना था। उसने स्वयं अपने एक पत्र में लिखा है कि इङ्गलिस्तान के अन्दर अपनी लेखनी द्वारा वह मुश्किल से दो सौ पाउण्ड सालाना कमा सकता था। सन् १८३४ में वह गवरनर-जनरल की कौन्सिल का लॉ मेम्बर नियुक्त होकर भारत पहुँचा। इस नए पद के विषय में उसने १७ अगस्त सन् १८३३ को इङ्गलिस्तान में रहते हुए अपनी बहिन के नाम एक पत्र में लिखा कि लॉ मेम्बर का पद—

"अत्यन्त मान और आमदनी का पद है। वेतन दस हज़ार पाउण्ड सालाना है। जो लोग कलकत्ते से अच्छी तरह परिचित हैं, वहाँ उच्च से उच्च लोगों की श्रेणी के लोगों में मिलते रहे हैं, और उच्च से उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त रह चुके हैं, वे मुझे विश्वास दिलाते हैं कि मैं वहाँ पर पाँच हज़ार पाउण्ड सालाना में शान के साथ रह सकता हूँ, और अपनी बाक़ी तनख़्वाह मय सूद के बचा सकता हूँ। इसलिए मुझे आशा है कि केवल ३६ साल की उम्र में, जब कि मेरे जीवन की शक्तियाँ अपनी शिखर पर होंगी, तीस हज़ार पाउण्ड की रक़म लेकर मैं इङ्गलिस्तान वापस आ सकूँगा। इससे अधिक धन की मुझे कभी इच्छा भी न हुई थी।"

इन दस हज़ार पाउण्ड सालाना के अलावा भारत के ख़ज़ाने से लॉर्ड मैकॉले को लॉ कमिश्नर की हैसियत से पाँच हज़ार पाउण्ड सालाना और दिए जाते थे। इतिहास-लेखक विलसन तथा अन्य अनेक अङ्गरेज़ों ने साफ़ लिखा है कि कोई विशेष कार्य

इस पद के लिए न था, जिसके लिए एक नए आदमी को इतनी बड़ी तनखाह दी जाती।

लॉर्ड मैकॉले का काम भारतवासियों के लिए क़ानून बनाना था; किन्तु वह न भारतवर्ष की कोई भाषा जानता था और न भारतवासियों के इतिहास, उनके रस्मो रिवाज इत्यादि से परिचित था। भारतवासियों, भारत की धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं और समस्त भारतीय चीजों से उसे पूर्ण घृणा थी।

मैकॉले भारतवासियों को अङ्गरेज़ी शिक्षा देने और अङ्गरेज़ी के माध्यम द्वारा शिक्षा देने का पक्षपाती था। किन्तु इसमें उसका उद्देश भारतवासियों का उपकार करना न था। उसका स्पष्ट उद्देश था भारतवासियों में से राष्ट्रीयता के भावों को मिटा कर अङ्गरेज़ी शासन को चिरस्थायी करना। सन् १८३६ में अपने बाप के नाम एक पत्र में उसने लिखा कि—"मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि हमारी शिक्षा की योजनाओं के अनुसार कार्य होता रहा, तो आज से तीस वर्ष के बाद बङ्गाल के बाइज्ज़त लोगों में एक भी मूर्तिपूजक न रहेगा।" इस पर 'दी इण्डियन डेली न्यूज़' का अङ्गरेज़ सम्पादक लिखता है—

"× × × लॉर्ड मैकॉले की जीत वास्तव में भारतवासियों के धार्मिक और सामाजिक जीवन को नाश करने के स्पष्ट सङ्कल्प की जीत थी।"*

---

* "Lord Macaulay's triumph . . . was really the triumph of a deliberate intention to undermine the religious and social life of India."—*The Indian Daily News*, 29th March, 1909.

इसके अतिरिक्त ब्रिटिश भारतीय सरकार को उस समय अपने विशाल साम्राज्य के लिए अनेक वफ़ादार तथा कुशल हिन्दोस्तानी नौकरों की भी ज़रूरत थी।

ताज़ीरात हिन्द

लॉर्ड मैकॉले के बनाए हुए क़ानून 'ताज़ीरात हिन्द' का ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है। हिन्दोस्तान के अन्दर अङ्गरेज़ों का शासन और आयरलैण्ड के अन्दर अङ्गरेज़ों का शासन इन दोनों में बहुत बड़ी समानता है। इसी तरह के आयरलैण्ड के ताज़ीरात के क़ानून (आयरिश पीनल कोड) के विषय में बर्क ने लिखा है—

"आयरिश पीनल कोड एक सुसम्पादित और अपने समस्त भागों की दृष्टि से योग्यता से लिखा हुआ ग्रन्थ है। यह एक चतुर और पेचीदा यन्त्र है, और कभी किसी भी कुशाग्रधी किन्तु सदाचार-रहित मनुष्य ने किसी क़ौम पर अत्याचार करने, उसे दरिद्र बनाने और उसे आचारभ्रष्ट करने, तथा उनके अन्दर से मनुष्यत्व तक का नाश करने के लिए इससे अधिक उपयुक्त यन्त्र न रचा होगा।"*

लगभग यही बात लॉर्ड मैकॉले के इण्डियन पीनल कोड के विषय में कही जा सकती है। इस क़ानून का उद्देश ही भारत-

---

* "Well digested and well disposed in all its parts; a machine of wise and elaborate contrivance, and as well fitted for the oppression, impoverishment and degradation of a people, and the debasement in them of human nature itself, as ever proceeded from the perverted ingenuity of man."—Burke, on the Irish Penal Code.

वासियों को निर्धन बनाना, उन्हें चरित्र भ्रष्ट करना, उनमें बेई-
मानी और मुक़दमेबाज़ी की आदत डालना और उन्हें सर्वथा
बरबाद करना था। मार्किस ऑफ़ हेस्टिंग्स ने सन् १८१९ में
डाइरेक्टरों के नाम एक पत्र लिखा था जिसमें उसने विस्तार के
साथ यह दिखलाया कि किस प्रकार सन् १७८० से लेकर उस
समय तक नई अङ्गरेज़ी अदालतों ने बङ्गाल की जायदादों को
बरबाद कर दिया, देश के सुखी और समृद्ध किसानों को निर्धनता
और दरिद्रता की नीचतम स्थिति तक पहुँचा दिया, उनके सदाचार
का सत्यानाश कर दिया, पुरानी सामाजिक संस्थाओं को तोड़
फोड़ डाला और भारतवासियों की परवशता को और भी बढ़ा
दिया। लॉर्ड मैकॉले के पीनल कोड ने इस स्थिति को सुधारने के
स्थान पर उसे और भी अधिक ख़राब कर दिया। इस क़ानून
के अनेक दोषों को दर्शाना यहाँ पर हमारे लिए अप्रासङ्गिक
होगा। अनेक विद्वान अङ्गरेज़ों की स्पष्ट सम्मतियाँ इस विषय में
देखी जा सकती हैं। मुजरिमों को रिहाई का रास्ता दिखाना और
निर्दोषों को फँसाना, सरकार के हाथ मजबूत करना और प्रजा
को असहाय बना देना इस अनोखे क़ानून के मुख्य लक्षण हैं।
संसार के किसी सभ्य देश में इतनी ज़बरदस्त सज़ाएँ नहीं दी
जातीं जितनी भारत में। वास्तव में लॉर्ड मैकॉले भारतवासियों
को इङ्गलिस्तान की सम्पत्ति समझता था। उसने एक स्थान पर
लिखा है—"हम जानते हैं कि भारतवर्ष को स्वतन्त्र राज्य नहीं
दिया जा सकता। किन्तु इससे उतर कर चीज़ अर्थात् एक

मज़बूत और निष्पक्ष स्वेच्छा-शासन उसे मिल सकता है।" *

नए लॉ मेम्बर का काम था भारतवासियों को क़ानूनों की सुनहरी जञ्जीरों में जकड़ डालना, और यही मैकॉले ने पूरा किया।

लगभग बीस वर्ष तक जितने अङ्गरेज़ भारत की कौन्सिल के लॉ मेम्बर रहे उन्हें कुल मिला कर ३५, ६८, ८०५ रुपए भारत के निर्धन किसानों की जेबों से निकाल कर दिए गए, और इसके बदले में उन्होंने काम किया—अक्षरशः भारतवासियों में नैतिक प्लेग फैला कर उनके रहे सहे चरित्र का नाश करना।

---

* "We know that India can not have a free government. But she may have the next best thing—a firm and impartial despotism."—Lord Macaulay.

छत्तीसवाँ अध्याय

भारतीय शिक्षा का सर्वनाश

अङ्गरेज़ों से पहले भारत में शिक्षा की अवस्था

ङ्गरेज़ों के आगमन से पहले सार्वजनिक शिक्षा और विद्या प्रचार की दृष्टि से भारत संसार के अग्रतम देशों की श्रेणी में गिना जाता था। आज से केवल सवा सौ वर्ष पूर्व तक यूरोप के किसी भी देश में शिक्षा का प्रचार इतना अधिक न था जितना भारतवर्ष में, और न कहीं भी प्रतिशत आबादी के हिसाब से पढ़े लिखों की संख्या इतनी अधिक थी। उन दिनों जन सामान्य को शिक्षा देने के लिए इस देश में मुख्यकर चार प्रकार की संस्थाएँ थीं। एक, असंख्य ब्राह्मण आचार्य अपने अपने घरों पर अपने शिष्यों को शिक्षा देते थे। दूसरे, अनेक मुख्य मुख्य नगरों में उच्च संस्कृत साहित्य की शिक्षा के लिए 'टोल' अथवा विद्यापीठ क़ायम थीं। तीसरे, उर्दू और फ़ारसी की शिक्षा के लिए जगह जगह मकतब और मदरसे थे, जिनमें लाखों हिन्दू और मुसलमान बालक शिक्षा

पाते थे। चौथे, इन सब के अतिरिक्त देश के प्रत्येक छोटे से छोटे ग्राम में ग्राम के समस्त बालकों की शिक्षा के लिए कम से कम एक पाठशाला होती थी। जिस समय तक कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने आकर भारत की सहस्रों वर्षों की पुरानी ग्राम पञ्चायतों को नष्ट नहीं कर डाला उस समय तक ग्राम के समस्त बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध करना प्रत्येक ग्राम पञ्चायत अपना आवश्यक कर्तव्य समझती थी और सदैव उसका पालन करती थी।

इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के प्रसिद्ध सदस्य केर हार्डी ने अपनी पुस्तक 'इण्डिया' में लिखा है—

"मैक्समूलर ने, सरकारी उल्लेखों के आधार पर और एक मिशनरी रिपोर्ट के आधार पर जो बङ्गाल पर अङ्गरेज़ों का क़ब्ज़ा होने से पहले वहाँ की शिक्षा की अवस्था के सम्बन्ध में लिखी गई थी, लिखा है कि उस समय बङ्गाल में ८०,००० देशी पाठशालाएँ थीं, अर्थात् सूबे की आबादी के हर चार सौ मनुष्यों पीछे एक पाठशाला मौजूद थी। इतिहास-लेखक लडलो अपने 'ब्रिटिश भारत के इतिहास' में लिखता है कि—'प्रत्येक ऐसे हिन्दू गाँव में, जिसका कि पुराना सङ्गठन अभी तक क़ायम है, मुझे विश्वास है कि आम तौर पर सब बच्चे लिखना पढ़ना और हिसाब करना जानते हैं; किन्तु जहाँ कहीं कि हमने ग्राम पञ्चायत का नाश कर दिया है, जैसे बङ्गाल में, वहाँ ग्राम पञ्चायत के साथ साथ गाँव की पाठशाला भी लोप होगई है।' "*

---

* "Max Muller, on the strength of official documents and a missionary report concerning education in Bengal prior to the British occupation, asserts that there were then 80,000 native

प्राचीन भारतीय इतिहास के यूरोपियन विद्वानों में मैक्समूलर प्रामाणिक माना जाता है और लडलो एक प्रसिद्ध इतिहास-लेखक था। जो बात जर्मन मैक्समूलर ने बङ्गाल के विषय में कही है उसी का समर्थन अङ्गरेज लडलो ने समस्त भारत के लिए किया है।

प्राचीन भारत के ग्रामवासियों की शिक्षा के सम्बन्ध में सन् १८२३ की कम्पनी की एक सरकारी रिपोर्ट में लिखा है—

"शिक्षा की, दृष्टि से संसार के किसी भी अन्य देश में किसानों की अवस्था इतनी ऊँची नहीं है जितनी ब्रिटिश भारत के अनेक भागों में।"*

यह दशा तो उस समय शिक्षा के विस्तार की थी, अब रही शिक्षा देने की प्रणाली। इतिहास से पता चलता है कि उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में डॉक्टर एण्ड्र्‌ बेल नामक एक प्रसिद्ध अङ्गरेज शिक्षा प्रेमी ने इस देश से इङ्गलिस्तान जाकर वहाँ पर अपने देश के बालकों को भारतीय प्रणाली के अनुसार शिक्षा देना प्रारम्भ

---

schools in Bengal, or one for every 400 of the population. Ludlow, in his 'History of British India,' says that 'in every Hindoo village which has retained its old form I am assured that the children generally or able to read, write, and cipher, but where we have swept away the village system as in Bengal there the village school has also disappeared.' "—Keir Hardie in his work on India, p. 5.

* ". . . the peasantry of few other countries would bear a comparison as to their state of education with those of many parts of British India."—Report of the Select Committee on the Affairs of the East India Company, vol. i. p. 409, published 1832.

किया। ३ जून सन् १८१४ को कम्पनी के डाइरेक्टरों ने बङ्गाल के गवरनर्-जनरल के नाम एक पत्र भेजा, जिसमें लिखा है—

"शिक्षा की जो प्रणाली अत्यन्त प्राचीन समय से भारत में वहाँ के आचार्यों के अधीन जारी है उसकी सबसे बड़ी प्रशंसा यही है कि रेवरेण्ड डॉक्टर बेल के अधीन, जो मद्रास में पादरी रह चुका है, वही प्रणाली इस देश (इङ्गलिस्तान) में भी प्रचलित की गई है; अब हमारी राष्ट्रीय संस्थाओं में इसी प्रणाली के अनुसार शिक्षा दी जाती है, क्योंकि हमें विश्वास है कि इससे भाषा का सिखाना अत्यन्त सरल और सीखना अत्यन्त सुगम हो जाता है।

"कहा जाता है कि हिन्दुओं की इस अत्यन्त प्राचीन और लाभदायक संस्था को सल्तनतों के उलट फेर भी कोई हानि नहीं पहुँचा सके × × ×।"*

आज कल की पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली में जिस चीज़ को "म्यूचुअल ट्यूशन" कहा जाता है वह पश्चिम के देशों ने भारत ही से सीखी थी।

---

* "The mode of instruction that from time immemorial has been practised under these masters has received the highest tribute of praise by its adoption in this country, under the direction of the Reverend Dr. Bell, formerly chaplain in Madras; and it is now become the mode by which education is conducted in our national establishments, from a conviction of the facility it affords in the acquision of language by simplifying the process of instruction.

"This venerable and benevolent institution of the *Hindoos* is represented to have withstood the shock of revolutions . . ."
—Letter from the Court of Directors to the Governor-General in Council of Bengal; dated 3rd June, 1814.

कम्पनी के शासन में भारतीय शिक्षा का ह्रास

भारत के जिस जिस प्रान्त में कम्पनी का शासन जमता गया उस उस प्रान्त से ही यह सहस्रों वर्ष की पुरानी शिक्षा प्रणाली सदा के लिए मिटती चली गई। कम्पनी के शासन से पहले भारत में शिक्षा की अवस्था और कम्पनी का पदार्पण होते ही एक सिरे से उस शिक्षा के सर्वनाश, दोनों का कुछ अनुमान बेलारी ज़िले के अङ्गरेज़ कलेक्टर ए० डी० कैम्पबेल की सन् १८२३ की एक रिपोर्ट से किया जा सकता है। कैम्पबेल लिखता है—

"जिस व्यवस्था के अनुसार भारत की पाठशालाओं में बच्चों को लिखना सिखाया जाता है और जिस ढङ्ग से कि ऊँचे दर्जे के विद्यार्थी नीचे दर्जे के विद्यार्थियों को शिक्षा देते हैं, और साथ साथ अपना ज्ञान भी पक्का करते रहते हैं, वह समस्त प्रणाली निस्सन्देह प्रशंसनीय है, और इङ्गलिस्तान में उसका जो अनुसरण किया गया है उसके सर्वथा योग्य है।"

आगे चल कर कम्पनी के शासन में भारतीय शिक्षा की अवनति और उसके कारणों को बयान करते हुए कैम्पबेल लिखता है—

"इस समय असंख्य मनुष्य ऐसे हैं जो अपने बच्चों को इस शिक्षा का लाभ नहीं पहुँचा सकते, × × × मुझे कहते हुए दुख होता है कि इसका कारण यह है कि समस्त देश धीरे धीरे निर्धन होता जा रहा है। हाल में जब से हिन्दोस्तान के बने हुए सूती कपड़ों की जगह इङ्गलिस्तान के बने हुए कपड़ों को इस देश में प्रचलित किया गया है तब से यहाँ के कारीगरों के लिए जीविका निर्वाह के साधन बहुत कम होगए हैं। हमने अपनी

बहुत सी पलटनें अपने इलाक़ों से हटा कर उन देशी राजाओं के दूर दूर के इलाक़ों में भेज दी हैं, जिनके साथ हमने सन्धियाँ की हैं, हाल ही में इससे भी नाज की माँग पर बहुत बड़ा असर पड़ा है। देश का धन पुराने समय के देशी दरबारों और देशी कर्मचारियों के हाथों से निकल कर यूरोपियनों के हाथों में चला गया है। देशी दरबार और उनके कर्मचारी उस धन को भारत ही में उदारता के साथ व्यय किया करते थे; इसके विपरीत नए यूरोपियन कर्मचारियों को हमने क़ानून द्वारा आज्ञा दे दी है कि वे अस्थायी तौर पर भी इस धन को भारत में व्यय न करें। ये यूरोपियन कर्मचारी देश के धन को प्रति दिन ढो ढो कर बाहर ले जा रहे हैं, इसके कारण भी यह देश दरिद्र होता जा रहा है। सरकारी लगान जिस कड़ाई के साथ वसूल किया जाता है उसमें भी किसी तरह की ढिलाई नहीं की गई, जिससे प्रजा के इस कष्ट में कोई कमी हो सकती। मध्यम श्रेणी और निम्न श्रेणी के अधिकांश लोग अब इस योग्य नहीं रहे कि अपने बच्चों की शिक्षा का ख़र्च बरदाश्त कर सकें, इसके विपरीत ज्योंही उनके बच्चों के कोमल अङ्ग थोड़ी बहुत मेहनत कर सकने के भी योग्य होते हैं, माता पिता को अपनी ज़िन्दगी की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए उन बच्चों से अब मेहनत मज़दूरी करानी पड़ती है।"

अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत की प्राचीन सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली के नाश का एक मुख्य कारण यह था कि प्राचीन भारतीय उद्योग धन्धों के सर्वनाश और कम्पनी की लूट तथा अत्याचारों के कारण देश उस समय तेजी के साथ निर्धन होता जा रहा था, और देश के उन करोड़ों नन्हें बालकों को जो पहले पाठशालाओं में जाकर शिक्षा ग्रहण करते थे, अब अपना

तथा अपने माँ बाप का पेट भरने के लिए मेहनत मजदूरी में माँ बाप का हाथ बटाना पड़ता था।

और आगे चल कर अपने से पहले की शिक्षा की अवस्था और अपने समय की शिक्षा की अवस्था की तुलना करते हुए कैम्पबेल लिखता है—

"इस ज़िले की लगभग दस लाख आबादी में से इस समय सात हज़ार बच्चे भी शिक्षा नहीं पा रहे हैं, जिससे पूरी तरह ज़ाहिर है कि शिक्षा में निर्धनता के कारण कितनी अवनति हुई है। बहुत से ग्रामों में, जहाँ पहले पाठशालाएँ मौजूद थीं, वहाँ अब कोई पाठशाला नहीं है, और बहुत से अन्य ग्रामों, में जहाँ पहले बड़ी बड़ी पाठशालाएँ थीं वहाँ अब केवल अत्यन्त धनाढ्य लोगों के थोड़े से बालक शिक्षा पाते हैं, दूसरे लोगों के बालक निर्धनता के कारण पाठशाला नहीं जा सकते।

"इस ज़िले की अनेक पाठशालाओं की जिनमें देशी भाषाओं में लिखना, पढ़ना और हिसाब सिखाया जाता है, जैसा कि भारत में सदा से होता रहा है, इस समय यह दशा है। × × × विद्या × × × कभी किसी भी देश में राज-दरबार की सहायता के बिना नहीं बढ़ी, और भारत के इस भाग में विज्ञान को देशी दरबारों की ओर से पहले जो सहायता और उत्तेजना दी जाती थी वह अङ्गरेज़ी राज्य के आने के समय से, बहुत दिन हुए, बन्द कर दी गई है।

"इस ज़िले में अब घटते घटते शिक्षा-सम्बन्धी ५२२ संस्थाएँ रह गई हैं और मुझे यह कहते लज्जा आती है कि इनमें से किसी एक को भी अब सरकार की ओर से किसी तरह की सहायता नहीं दी जाती।"

इसके बाद प्राचीन भारत में इन असंख्य पाठशालाओं के ख़र्च की व्यवस्था को वर्णन करते हुए कैम्पबेल लिखता है—

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुराने समय में, विशेष कर हिन्दुओं के शासन-काल में, विद्या प्रचार की सहायता के लिए बहुत बड़ी रक़में और बड़ी बड़ी जागीरें राज्य की ओर से बँधी हुई थीं × × ×।

"× × × पहले समय में राज्य की आमदनी का एक बहुत बड़ा हिस्सा विद्या प्रचार को उत्तेजना और उन्नति देने में ख़र्च किया जाता था, जिससे राज्य का भी मान बढ़ता था, किन्तु हमारे शासन में यहाँ तक अवनति हुई है कि राज्य की इस आमदनी द्वारा अब उलटा अज्ञान को उन्नति दी जाती है। पहले जो ज़बरदस्त सहायता राज्य की ओर से विज्ञान को दी जाती थी उसके बन्द हो जाने के कारण अब विज्ञान केवल थोड़े से दानशील व्यक्तियों की अकस्मात् उदारता के सहारे ज्यों त्यों कर जीवित है। भारत के इतिहास में विद्या के इस तरह के पतन का दूसरा समय दिखा सकना कठिन है × × ×।"*

---

* "The economy with which children are taught to write in the native schools and the system by which the more advanced scholars are caused to teach the less advanced, and at the same time to confirm their own knowledge, is certainly admirable, and well deserved the imitation it has received in England. . . .

". . . there are multitudes who can not even avail themselves of the advantages of the system, . . .

"I am sorry to state, that this is ascribable to the gradual but general impoverishment of the country. The means of the manufacturing classes have been of late years greatly diminished by the introduction of our own English manufactures in lieu of the

यह समस्त कहानी मद्रास प्रान्त की है। ठीक इसी तरह की कहानी, महाराष्ट्र तथा बम्बई प्रान्त के विषय में, एलफ़िन्सटन ने सन् १८२४ की एक सरकारी रिपोर्ट में वर्णन की है, किन्तु उसे दोहराना व्यर्थ है।

Indian cotton fabrics. The removal of many of our troops from our own territories to the distant frontiers of our newly subsidized allies has also, of late years affected the demand for grain; the transfer of the capital of the country from the native government and their officers, who liberally expended it in India, to Europeans, restricted by law from employing it even temporarily in India, and daily draining it from the land, has ikewise tended to this effect, which has not been alleviated by a less rigid enforcement of the revenue due to the state. The greater part of the middling and lower classes of the people are now unable to defray the expenses incident upon the education of their offspring, while their necessities require the assistance of their children as soon as their tender limbs are capable of the smallest labour.

" . . . of nearly a million of souls in this District, not 7,000 are now at school, a proportion which exhibits but too strongly the result above stated. In many villages where formerly there were schools, there are now none, and in many others where there were large schools, now only a few children of the most opulent are taught, others being unable from poverty to attend, . . .

"Such is the state in this District of the various schools in which reading, writing and arithmetic are taught in the vernacular dilects of the country, as has been always usual in India, . . . learning, . . . has never flourished in any country except under the encouragement of the ruling power, and the countenance and

एक और अङ्गरेज विद्वान वॉल्टर हैमिल्टन ने सन् १८२८ में सरकारी रिपोर्टों के आधार पर लिखा था—

"भारतवासियों के अन्दर साहित्य और विज्ञान की दिन प्रति दिन अवनति होती जा रही है। विद्वानों की संख्या घटती जा रही है और जो लोग अभी तक विद्याध्ययन करते हैं उनमें भी अध्ययन के विषय बेहद कम होते जा रहे हैं। दर्शन विज्ञान का पढ़ना लोगों ने छोड़ ही दिया है; और सिवाय उन विद्याओं के, जिनका सम्बन्ध विशेष धार्मिक कर्मकाण्डों अथवा फलित के साथ है, और किसी भी विद्या का अब लोग अध्ययन

---

support once given to science in this part of India has long been withheld.

"Of the 533 institutions for education now existing in this District, I am ashamed to say, not one now derives any support from the State,. ..

"There is no doubt, that in former times, especially under the Hindoo Governments, very large grants, both in money and in land, were issued for the support of learning. . . .

". . . considerable alienations of revenue, which formerly did honour to the state by upholding and encouraging learning, have deteriorated under our rule into the means of supporting ignorance; whilst science, deserted by the powerful aid she formerly received from Government, has often been reduced to beg her scanty and uncertain meal from the chance benevolence of charitable individuals; and it would be difficult to point out any period in the history of India when she stood more in need . . . ."—The Report of A. D. Campbell Collector of Bellary, dated 17th August, 1823, from the Report of the Select Committee etc., vol. i, published 1832.

'नहीं करते। साहित्य की इस अवनति का मुख्य कारण यह मालूम होता है कि इससे पहले देशी राज्य में राजा लोग, सरदार लोग और धनाढ्य लोग सब विद्या प्रचार को उत्तेजना और सहायता दिया करते थे। वे देशी दरबार अब सदा के लिए मिट चुके और अब वह उत्तेजना और सहायता साहित्य को नहीं दी जाती।"*

सारांश यह कि जो कहानी कैम्पबेल ने मद्रास प्रान्त की बयान की है वही कहानी वास्तव में समस्त ब्रिटिश भारत की थी।

भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली और शिक्षा संस्थाओं के इस सर्वनाश के चार मुख्य कारण गिनाए जा सकते हैं—

(१) भारतीय उद्योग धन्धों के नाश तथा कम्पनी की लूट द्वारा देश की बढ़ती हुई दरिद्रता।

(२) प्राचीन ग्राम पञ्चायतों का नाश और उस नाश द्वारा लाखों ग्राम पाठशालाओं का अन्त।

(३) प्राचीन हिन्दू और मुसलमान नरेशों की ओर से शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं को जो आर्थिक सहायता और जागीरें बँधी हुई थीं, कम्पनी के राज्य में उनका छिन जाना। और

(४) नए अङ्गरेज शासकों की ओर से भारतवासियों की शिक्षा का विधिवत् विरोध।

अङ्गरेज़ शासकों की ओर से भारतवासियों की शिक्षा का विरोध

इस चौथे कारण को और अधिक विस्तार के साथ वर्णन

* Walter Hamilton in 1828, Ibid, vol. i. p. 203.

करना आवश्यक है। सन् १७५७ से लेकर पूरे सौ वर्ष तक भारत के अङ्गरेज़ शासकों में इस बात पर लगातार बहस होती रही कि भारतवासियों को शिक्षा देना अङ्गरेज़ों की सत्ता के लिए हितकर है अथवा अहितकर। आरम्भ के दिनों में लगभग समस्त अङ्गरेज़ शासक भारतवासियों को शिक्षा देने के कट्टर विरोधी थे।

जे० सी० मार्शमैन ने १५ जून सन् १८५३ को पार्लिमेण्ट की सिलेक्ट कमेटी के सामने गवाही देते हुए बयान किया—

"भारत में अङ्गरेज़ी राज्य के क़ायम होने के बहुत दिनों बाद तक भारतवासियों को किसी प्रकार की भी शिक्षा देने का प्रबल विरोध किया जाता रहा।"*

मार्शमैन बयान करता है कि सन् १७९२ में जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिए नया चारटर एक्ट पास होने का समय आया तो पार्लिमेण्ट के एक सदस्य विलबरफ़ोर्स ने नए क़ानून में एक धारा इस तरह की जोड़नी चाही जिसका ज़ाहिरा अभिप्राय थोड़े से भारतवासियों की शिक्षा का प्रबन्ध करना था। इस पर पार्लिमेण्ट के सदस्यों और कम्पनी के हिस्सेदारों ने विरोध किया और विलबरफ़ोर्स को अपनी तजवीज़ वापस ले लेनी पड़ी।

---

* "For a considerable time after the British Government had been established in India, there was great opposition to any system of instruction for the natives"—J. C. Marshman, in his evidence before the Select Committee of the House of Lords appointed to enquire into the affairs of the East India Company, 15th June, 1833.

मार्शमैन लिखता है—

"उस अवसर पर कम्पनी के एक डाइरेक्टर ने कहा कि—'हम लोग अपनी इसी मूर्खता के कारण अमरीका हाथ से खो बैठे हैं, क्योंकि हमने उस देश में स्कूल और कॉलेज क़ायम हो जाने दिए, अब फिर भारत के विषय में हमारा उसी मूर्खता को दोहराना उचित नहीं है।' × × × इसके बीस वर्ष बाद तक अर्थात् सन् १८१३ तक भारतवासियों को शिक्षा देने के विरुद्ध ये ही भाव इङ्गलिस्तान के शासकों के दिलों में क़ायम रहे।"*

सन् १८१३ में विलायत के अन्दर सर जॉन मैलकम ने, जो उन विशेष अनुभवी नीतिज्ञों में से था जिन्होंने १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत के अन्दर अङ्गरेज़ी साम्राज्य को विस्तार दिया, पार्लिमेण्ट की तहक़ीक़ाती कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा—

"× × × इस समय हमारा साम्राज्य इतनी दूर तक फैला हुआ है कि जो असाधारण ढङ्ग की हुकूमत हमने उस देश में स्थापित की है उसके बने रहने के लिए केवल एक बात का हमें सहारा है, वह यह कि जो बड़ी बड़ी जातियाँ इस समय अङ्गरेज़ सरकार के अधीन हैं वे सब एक दूसरे से

---

* "On that occasion, one of the Directors stated that we had just lost America from our folly, in having allowed the establishment of schools and colleges, and that it would not do for us to repeat the same act of folly in regard to India; . . . For twenty years after that period, down to the year 1813, the same feeling of opposition to the education of the natives continued to prevail among the ruling authorities in this country."—J. C Marshman, 15th June, 1853, Ibid.

अलग अलग हैं, और जातियों में भी फिर अनेक जातियाँ और उप-जातियाँ हैं ; जब तक ये लोग इस तरह एक दूसरे से बटे रहेंगे, तब तक कोई भी बलवा हमारी सत्ता को नहीं हिला सकता। × × × जितना जितना लोगों में एकता पैदा होती जायगी और उनमें वह बल आता जायगा जिससे वे वर्तमान अङ्गरेज़ी सरकार की अधीनता को अपने ऊपर से हटा कर फेंक सकें, उतना उतना ही हमारे लिए शासन करना कठिन होता जायगा।"

इसलिए—

"मेरी राय है कि कोई इस तरह की शिक्षा, जिससे हमारी भारतीय प्रजा के इस समय के जाति पाँति के भेद धीरे धीरे टूटने की सम्भावना हो, अथवा जिसके द्वारा उनके दिलों से यूरोपियनों का आदर कम हो, अङ्गरेज़ी राज्य के राजनैतिक बल को नहीं बढ़ा सकती × × × ।"*

---

* ". . . In the present extended state of our Empire, our security for preserving a power of so extraordinary a nature as that we have established, rests upon the general division of the great communities under the Government, and their sub-division into various castes and tribes ; while they continue divided in this manner, no insurrection is likely to shake the stability of our power. . .

* * *

" . . we shall always find it difficult to rule in proportion as it (the Indian community) obtains union and possesses the power of throwing off that subjection in which it is now placed to the British Government."

". . . I do not think that the communication of any knowledge, which tended gradually to do away the subsisting distinctions among our native subjects or to diminish that respect which they entertain for Europeans, could be said to add to the poli-

ज़ाहिर है कि सर जॉन मैलकम भारतवासियों को सदा के लिए जाति पाँति तथा मत मतान्तरों के भेदों में फँसाए रखना, आपस में एक दूसरे से लड़ाए रखना और उन्हें अशिक्षित रखना अङ्गरेज़ी राज्य की सलामती के लिए आवश्यक समझता था ।

सन् १८१३ में इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट ने जो चारटर एक्ट पास किया, उसमें एक धारा यह भी थी कि—"ब्रिटिश भारत की आमदनी की बचत में से गवरनर-जनरल को इस बात का अधिकार होगा कि प्रति वर्ष एक लाख रुपए तक साहित्य की उन्नति और पुनरुज्जीवन के लिए और विद्वान भारतवासियों के प्रोत्साहन के लिए काम में लाए ।" किन्तु यह समझना भूल होगी कि यह एक लाख रुपए सालाना की रक़म वास्तव में भारतवासियों की शिक्षा के लिए मन्ज़ूर की गई थी । इस मन्ज़ूरी के साथ साथ जो पत्र डाइरेक्टरों ने ३ जून सन् १८१४ को गवरनर-जनरल के नाम भेजा उसमें साफ़ लिखा है कि यह रक़म "राजनैतिक दृष्टि से भारत के साथ अपने सम्बन्ध को मजबूत रखने के लिए", "बनारस" तथा एक दो अन्य स्थानों के "पण्डितों को देने" के लिए, "अपनी ओर विचारवान भारतवासियों के हृदय के भावों का पता लगाने" के लिए, "प्राचीन संस्कृत साहित्य का अङ्गरेज़ी में अनुवाद कराने के लिए," "संस्कृत पढ़ने की इच्छा रखने वाले अङ्गरेज़ों को सहायता देने के लिए," "उस समय की रही सही भारतीय शिक्षा संस्थाओं

...tical strength of the English Government. . . ."—Sir John Malcolm, before the Parliamentary Committee of 1813

का पता लगाने के लिए," और "अपने साम्राज्य के स्थायित्व की दृष्टि से अङ्गरेज़ों तथा भारतीय नेताओं में अधिक मेल जोल पैदा करने के उद्देश से" मञ्ज़ूर की गई है। इसी पत्र में यह भी लिखा है कि इस रक़म की मदद से कोई "सार्वजनिक कॉलेज न खोले जावें।"*

भारतवासियों की शिक्षा की ओर अङ्गरेज़ शासकों का विरोध इसके बहुत दिनों बाद तक बराबर जारी रहा। सन् १८३१ की जाँच के समय सर जॉन मैलकम के बीस वर्ष पहले के विचारों को दोहराते हुए मेजर-जनरल सर लिओनेल स्मिथ ने कहा—

"शिक्षा का परिणाम यह होगा कि वे सब साम्प्रदायिक और धार्मिक पक्षपात, जिनके द्वारा हमने अभी तक मुल्क को वश में रक्खा है—और हिन्दू मुसलमानों को एक दूसरे से लड़ाए रक्खा है, इत्यादि—दूर हो जायँगे; शिक्षा का परिणाम यह होगा कि इन लोगों के दिमाग़ खुल जायँगे और उन्हें अपनी विशाल शक्ति का पता लग जायगा।"†

राज्य के हित में शिक्षा देने की आवश्यकता

किन्तु १८ वीं शताब्दी के अन्त से ही इस विषय में अङ्गरेज़

* *Affairs of the East India Company*, published 1832, vol. i. pp. 446, 447.

† "The effect of education will be to do away with all the prejudices of sects and religions by which we have hitherto kept the country—the Mussalmans against Hindoos, and so on; the effect of education will be to expand their minds, and show them their vast power."—Major-General Sir Lionel Smith, K. C. B., the enquiry of 1831.

शासकों के विचारों में अन्तर पैदा होना शुरू हो गया। कारण यह था कि धीरे धीरे इङ्गलिस्तान के नीतिज्ञों को भारत के अन्दर दो विशेष कठिनाइयाँ अनुभव होने लगीं। १—चूँकि शिक्षित भारतवासियों की संख्या दिन प्रति दिन घटती जा रही थी, इसलिए अङ्गरेज़ों को अपने सरकारी महकमों और विशेष कर नई अदालतों के लिए योग्य हिन्दू और मुसलमान कर्मचारियों की कमी महसूस होने लगी, जिनके बिना कि उन महकमों और अदालतों का चल सकना सर्वथा असम्भव था। और २—उन्हें थोड़े से इस तरह के भारतवासियों की भी आवश्यकता अनुभव होने लगी जिनके द्वारा शेष भारतीय जनता के हृदय के भावों का पता लगता रहे और जिनके द्वारा वे जनता के भावों को अपनी ओर मोड़ कर रख सकें।

सन् १८३० की पार्लिमेण्टरी कमेटी की रिपोर्ट में इन दोनों आवश्यकताओं का बार बार ज़िक्र आता है और साफ़ लिखा है कि कलकत्ते का 'मुसलमानों का मदरसा' और बनारस का 'हिन्दू संस्कृत कॉलेज' दोनों अठारहवीं शताब्दी के अन्त में ठीक इसी उद्देश से क़ायम किए गए थे। इसी उद्देश से सन् १८२१ में पूना का डेकन कॉलेज, सन् १८३५ में कलकत्ते का मेडिकल कॉलेज और और सन् १८४७ में रुड़की का इञ्जीनियरिङ्ग कॉलेज क़ायम हुए।

डाइरेक्टरों ने ५ सितम्बर सन् १८२७ के पत्र में गवरनर-जनरल को लिखा कि इस शिक्षा का धन—"उच्च तथा मध्यम श्रेणी के उन भारतवासियों के ऊपर व्यय किया जाय, जिनमें से कि आपको

अपने शासन के कार्यों के लिए सब से अधिक योग्य देशी एजण्ट मिल सकते हैं, और जिनका अपने शेष देशवासियों के ऊपर सबसे अधिक प्रभाव है।"*

इसका मतलब यह है कि बिना योग्य भारतवासियों की सहायता के केवल अङ्गरेजों के बल ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य का चल सकना सर्वथा असम्भव था, और इसी लिए थोड़े बहुत भारतवासियों को किसी न किसी प्रकार की शिक्षा देना भारत के विदेशी शासकों के लिए अनिवार्य हो गया। इस काम के लिए सन् १८१३ वाली एक लाख रुपए सालाना की मञ्जूरी को सन् १८३३ में बढ़ा कर दस लाख सालाना कर दिया गया, क्योंकि इन बीस वर्ष के अन्दर भारत का बहुत अधिक भाग विदेशी शासन के रङ्ग में रँगा जा चुका था।

सन् १७५७ से लेकर १८५७ तक भारतवासियों की शिक्षा के विषय में अङ्गरेज शासकों के सामने मुख्य प्रश्न केवल यह था कि भारतवासियों को शिक्षा देना साम्राज्य के स्थायित्व की दृष्टि से हितकर है अथवा अहितकर, और यदि हितकर अथवा आवश्यक है तो उन्हें किस प्रकार की शिक्षा देना उचित है।

---

* ". . . with the superior and middle classes of the natives, from whom the native agents whom you have occasion to employ, in the functions of Government are most fitly drawn, and whose influence on the rest of rheir countrymen is the most extensive."—Letter from the Court of Directors to the Governor-General in Council, dated 5th September, 1827, Ibid, p. 490.

उस समय अनेक अङ्गरेज नीतिज्ञ भारतवासियों में ईसाई धर्म प्रचार के पक्षपाती थे। इन लोगों को ईसाई धर्म-ग्रन्थों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने, इङ्गलिस्तान से आने वाले पादरियों को सहायता देने और सरकार की ओर से मिशन स्कूलों की आर्थिक मदद करने की आवश्यकता अनुभव हो रही थी। यह भी एक कारण था कि जिससे अनेक अङ्गरेज भारतवासियों को शिक्षा देने के पक्ष में हो गए। सन् १८१३ के बाद की बहसों में इस विषय का बार बार जिक्र आता है।

सन् १८५३ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिए अन्तिम चारटर एक्ट पास होने के समय भारतवासियों की शिक्षा के प्रश्न पर अनेक योग्य और अनुभवी अङ्गरेज नीतिज्ञों और विद्वानों की गवाहियाँ जमा की गईं। इन गवाहियों में से नमूने के तौर पर दोनों पक्षों की एक एक या दो दो गवाहियाँ उद्धृत करना काफ़ी है।

४ अगस्त सन् १८५३ को मेजर रॉलेण्डशन ने, जो १७ वर्ष तक मद्रास प्रान्त के कमाण्डर-इन-चीफ़ के साथ फ़ारसी अनुवादक रह चुका था और वहाँ की शिक्षा कमेटी का मन्त्री रह चुका था, पार्लिमेण्ट की कमेटी के सामने इस प्रकार गवाही दी—

प्रश्न—आपने यह राय प्रकट की है कि भारतवासियों को शिक्षा देने का नतीजा यह होता है कि वे अङ्गरेज़ सरकार के विरुद्ध हो जाते हैं, क्या आप यह समझाएँगे कि इसका कारण क्या है और सरकार की ओर उनकी शत्रुता किस ढङ्ग की और कैसी होती है?

उत्तर—मेरा अनुभव यह है कि भारतवासियों को ज्यों ज्यों ब्रिटिश

भारतीय इतिहास के भीतरी हाल का पता लगता है और आम तौर पर यूरोप के इतिहास का ज्ञान होता है, त्यों त्यों उनके चित्त में यह विचार उत्पन्न होता है कि भारत जैसे एक देश का मुट्ठी भर विदेशियों के क़ब्ज़े में होना एक बहुत बड़ा अन्याय है ; इससे स्वभावतः उनके चित्त में लगभग यह इच्छा उत्पन्न हो जाती है कि वे अपने देश को इस विदेशी शासन से स्वतन्त्र करने में सहायक हों ; और चूँकि इस विचार को दूर करने वाली कोई बात नहीं होती और न उनमें आज्ञापालन का भाव ही पक्का होता है, इसलिए ब्रिटिश सरकार की ओर द्रोह का भाव इन लोगों में पैदा हो जाता है । × × × मैंने देखा है कि हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों में यह भाव मौजूद है और मुसलमानों में अधिक है। × × × विशेषकर जब ये लोग ब्रिटिश साम्राज्य के रहस्य को जान जाते हैं तो उनके हृदयों में असन्तोष का भाव पैदा हो जाता है और आशा जाग उठती है, × × ×।*

इसी प्रश्नोत्तर में यह भी साफ़ सुझाया गया कि यदि शिक्षा के साथ भारतवासियों के चित्तों में यह भय उत्पन्न करने का भी प्रयत्न किया जाय कि यदि अङ्गरेज़ भारत से चले गए तो उत्तर की अन्य जातियाँ आकर भारत पर शासन करने लगेंगी, अथवा भारत में अराजकता फैल जायगी, तो इसका परिणाम कहाँ तक हितकर होगा ।

अनेक अङ्गरेज़ों के विचार मेजर रॉलेण्डशन के विचारों से मिलते हुए थे। किन्तु दूसरों के विचार इसके विपरीत थे। उनका

---

* *Sixth Report from the Select Committee on Indian Territories,* 1853, pp. 155-57.

ख़याल था कि अशिक्षित भारतवासी शिक्षित भारतवासियों की अपेक्षा विदेशीय शासन के लिए अधिक ख़तरनाक होते हैं, और भारतवासियों को केवल पश्चिमी शिक्षा देकर ही उन्हें राष्ट्रीयता के भावों से दूर रक्खा जा सकता है और विदेशी शासन के लिए उपयोगी यन्त्र बनाया जा सकता है। प्रसिद्ध नीतिज्ञों में सर फ्रेडरिक हैलिडे की गवाही, जो बङ्गाल का पहला लेफ़्टिनेएट गवरनर हुआ, और मार्शमैन की गवाही इसी अभिप्राय की थीं।

पूर्वी तथा पश्चिमी शिक्षा पर बहस

एक और महत्वपूर्ण प्रश्न जो १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ से भारत के उन अङ्गरेज़ शासकों के सामने उपस्थित था, जो भारतवासियों को शिक्षा देने के पक्ष में थे, वह यह था कि किस प्रकार की शिक्षा देना अधिक उपयोगी होगा। दो भिन्न भिन्न विचारों के लोग उस समय के अङ्गरेज़ों में मिलते हैं। एक वे जो भारतवासियों को प्राचीन भारतीय साहित्य, भारतीय विज्ञान और संस्कृत, फ़ारसी, अरबी तथा देशी भाषाएँ पढ़ाने के पक्ष में थे, और दूसरे वे जो उन्हें अङ्गरेज़ी भाषा, पश्चिमी साहित्य तथा पश्चिमी विज्ञान की शिक्षा देना अपने लिए अधिक हितकर समझते थे। पहले विचार के लोगों को 'ओरियएटलिस्ट' और दूसरे विचार के लोगों को 'ऑक्सिडेएटलिस्ट' कहा जाता है, अनेक वर्षों तक इन दोनों विचार के अङ्गरेज़ों में ख़ूब वाद विवाद होता रहा। इसी बहस के दिनों में सन् १८३४ में भारत के अन्दर लॉर्ड मैकॉले का आगमन

हुआ, जिसके चरित्र का थोड़ा सा वर्णन हम पिछले अध्याय में कर आए हैं। मैकॉले से पहले लगभग १२ वर्ष तक इस प्रश्न के ऊपर अत्यन्त तीव्र वाद विवाद जारी रह चुका था। मैकॉले के विचारों का प्रभाव इस प्रश्न पर निर्णायक साबित हुआ। मैकॉले भारतवासियों को प्राचीन भारतीय साहित्य की शिक्षा देने के विरुद्ध और उन्हें अङ्गरेजी भाषा, अङ्गरेजी साहित्य तथा अङ्गरेजी विज्ञान सिखाने के पक्ष में था। मैकॉले का निर्णय भारतवासियों के लिए हितकर रहा हो अथवा अहितकर, किन्तु मैकॉले का उद्देश केवल यह था कि उच्च श्रेणी के भारतवासियों में राष्ट्रीयता के भावों को उत्पन्न होने से रोका जाय और उन्हें अङ्गरेजी सत्ता के चलाने के लिए उपयोगी यन्त्र बनाया जाय। अपने पक्ष का समर्थन करते हुए मैकॉले ने एक स्थान पर लिखा है—

"हमें भारत में इस तरह की एक श्रेणी पैदा कर देने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए जो कि हमारे और उन करोड़ों भारतवासियों के बीच, जिन पर हम शासन करते हैं, समझाने बुझाने का काम करें; ये लोग ऐसे होने चाहिए जो कि केवल रक्त और रङ्ग की दृष्टि से हिन्दोस्तानी हों, किन्तु जो अपनी रुचि, भाषा, भावों और विचारों की दृष्टि से अङ्गरेज़ हों।"*

बेण्टिङ्क का निर्णय

गवरनर-जनरल लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क मैकॉले का बड़ा दोस्त

---

* "We must do our best to form a class who may be interpreters between us and the millions whom we govern; a class of persons Indian in blood and color, but English in taste, in opinions, words and intellect,"—Macaulay's Minute of 1835.

और उसके समान विचारों का था। मैकॉले की इस रिपोर्ट के ऊपर ७ मार्च सन् १८३५ को वेरिटङ्क ने आज्ञा दे दी कि—"जितना धन शिक्षा के लिए मञ्जूर किया जाय उसका सब से अच्छा उपयोग यही है कि उसे केवल अङ्गरेजी शिक्षा के ऊपर खर्च किया जाय।"*

मैकॉले के विचारों और उन पर लॉर्ड वेरिटङ्क के निर्णय के परिणाम को बयान करते हुए ५ जुलाई सन् १८५३ को प्रसिद्ध इतिहास-लेखक प्रोफ़ेसर एच० एच० विलसन ने पार्लिमेण्ट की सिलेक्ट कमेटी के सामने बयान किया—

"वास्तव में हमने अङ्गरेज़ी पढ़े लिखों की एक पृथक जाति बना दी है, जिन्हें कि अपने देशवासियों के साथ या तो बिलकुल ही सहानुभूति नहीं है और यदि है तो बहुत ही कम।"†

अङ्गरेज़ी भाषा और अङ्गरेज़ी साहित्य की शिक्षा के साथ साथ जहाँ तक हो सके देशी भाषाओं को दबाना भी मैकॉले और वेरिटङ्क दोनों का उद्देश था। इतिहास-लेखक डॉक्टर डफ़ ने, इस विषय में वेरिटङ्क और मैकॉले की नीति की सराहना करते हुए,

---

* ". . . all the funds appropriated for the purposes of education would be best employed on English education alone."—Lord Bentinck's Resolution, dated 7th March, 1835.

† ". . . we created a separate caste of English scholars, who had no longer any sympathy, or very little sympathy with their countrymen;"—Prof. H. H. Wilson, before the Selec Committee of the House of Lords, 5th July, 1863.

तुलना के तौर यह दिखलाते हुए कि जब कभी प्राचीन रोम-निवासी किसी देश को विजय करते थे तो उस देश की भाषा और साहित्य को यथाशक्ति दबा कर वहाँ के उच्च श्रेणी के लोगों में रोमन भाषा, रोमन साहित्य और रोमन आचार विचार के प्रचार का प्रयत्न करते थे, साथ ही यह दर्शाते हुए कि यह नीति रोमन साम्राज्य के लिए कितनी हितकर साबित हुई, अन्त में लिखा है—

"× × × मैं यह विचार प्रकट करने का साहस करता हूँ कि भारत के अन्दर अङ्गरेज़ी भाषा और अङ्गरेज़ी साहित्य को फैलाने और उसे उन्नति देने का लॉर्ड विलियम बेण्टिक का क़ानून × × × भारत के अन्दर अङ्गरेज़ी राज्य के अब तक के इतिहास में कुशल राजनीति की सब से ज़बरदस्त और अपूर्व चाल स्वीकार की जायगी।"*

डॉक्टर डफ़ ने अपने से पूर्व के एक दूसरे अङ्गरेज़ विद्वान के विचारों का समर्थन करते हुए लिखा है कि भाषा का प्रभाव इतना ज़बरदस्त होता है कि जिस समय तक भारत के अन्दर देशी नरेशों के साथ अङ्गरेज़ों का पत्र व्यवहार फ़ारसी भाषा में होता रहेगा, उस समय तक भारतवासियों की भक्ति और उनका प्रेम दिल्ली के सम्राट की ओर बराबर बना रहेगा। लॉर्ड बेण्टिङ्क

* ". . . I venture to hazard the opinion, that Lord William Bentinck's double Act for the encouragement and diffusion of the English language and English literature in the East, . . . the grandest master-stroke of sound policy that has yet characterized the administration of the British Government in India."—Dr. Duff, in the Lords' Committee's Second Report on Indian Territories, 1853, p. 409.

के समय तक देशी नरेशों के साथ कम्पनी का समस्त पत्र व्यवहार फ़ारसी भाषा में हुआ करता था। बेण्टिङ्क पहला गवरनर-जनरल था, जिसने यह आज्ञा दे दी और नियम कर दिया कि भविष्य में समस्त पत्र व्यवहार फ़ारसी के स्थान पर अङ्गरेज़ी भाषा में हुआ करे।

इतिहास से पता चलता है कि आयरलैण्ड के अन्दर भी आइरिश भाषा को दबाने और यदि "सम्भव हो तो आइरिश लोगों को अङ्गरेज़ बना डालने के लिए"* वहाँ की अङ्गरेज़ सरकार ने समय समय पर अनेक अनोखे क़ानून पास किए।

यद्यपि सन् १८३५ के बाद से अङ्गरेज़ शासकों का मुख्य लक्ष्य भारत में अङ्गरेज़ी शिक्षा के प्रचार की ओर ही रहा, तथापि 'ओरियण्टलिस्ट' और 'ऑक्सिडेण्टलिस्ट' दोनों दलों का थोड़ा बहुत विरोध इसके बीस वर्ष बाद तक भी जारी रहा। अङ्गरेज़ शासक भारतवासियों को किसी प्रकार की भी शिक्षा देने में बराबर सङ्कोच करते रहे। यहाँ तक कि लॉर्ड मैकॉले की सन् १८३५ की रिपोर्ट २९ वर्ष बाद सन् १८६४ में पहली बार प्रकाशित की गई। किन्तु अन्त में पल्ला अङ्गरेज़ी शिक्षा के पक्षवालों का ही भारी रहा।

भारत के अङ्गरेज़ शासकों की शिक्षा-नीति और वर्तमान

---

* "for the purpose of changing Irishmen into Englishmen, if that were possible."—Professor H. Holman in his *English National Education*. p. 50.

अङ्गरेज़ी शिक्षा के उद्देश को स्पष्ट कर देने के लिए, हम अङ्गरेज़ी शिक्षा के एक प्रबल और मुख्य पक्षपाती लॉर्ड मैकॉले के बहनोई सर चार्ल्स ट्रेवेलियन के उन विचारों को नीचे उद्धृत करते हैं, जो ट्रेवेलियन ने सन् १८५३ की पार्लिमेण्टरी कमेटी के सामने पेश किए।

वर्त्तमान अङ्गरेज़ी शिक्षा का उद्देश

सर चार्ल्स ट्रेवेलियन ने सन् १८५३ की पार्लिमेण्टरी कमेटी के सामने "भारत की भिन्न भिन्न शिक्षा-प्रणालियों के राजनैतिक परिणाम" शीर्षक एक पत्र लिख कर पेश किया। यह पत्र इतने महत्व का है और ब्रिटिश सरकार की शिक्षानीति का इतना स्पष्ट द्योतक है कि उसके कुछ अंशों का इस स्थान पर उद्धृत करना आवश्यक है। भारतवासियों को अरबी तथा संस्कृत पढ़ाने अथवा उनके प्राचीन विचारों और प्राचीन राष्ट्रीय साहित्य के जीवित रखने के विषय में सर चार्ल्स ट्रेवेलियन लिखता है कि इसका परिणाम यह होगा—

"मुसलमानों को सदा यह बात याद आती रहेगी कि हम विधर्मी ईसाइयों ने मुसलमानों के अनेक सुन्दर से सुन्दर प्रदेश उनसे छीन कर अपने अधीन कर लिए हैं, और हिन्दुओं को सदा यह याद रहेगा कि अङ्गरेज़ लोग इस प्रकार के अपवित्र राक्षस हैं, जिनके साथ किसी तरह का मेल जोल रखना लज्जाजनक और पाप है। हमारे बड़े से बड़े शत्रु भी इससे अधिक और कुछ इच्छा नहीं कर सकते कि हम इस तरह की विद्याओं का प्रचार करें जिनसे मानव स्वभाव के उग्र से उग्र भाव हमारे विरुद्ध भड़क उठें।

"इसके विपरीत अङ्गरेज़ी साहित्य का प्रभाव अङ्गरेज़ी राज्य के लिए हितकर हुए बिना नहीं रह सकता। जो भारतीय युवक हमारे साहित्य द्वारा हमसे भली भाँति परिचित हो जाते हैं, वे हमें विदेशी समझना लगभग बन्द कर देते हैं। वे हमारे महापुरुषों का ज़िक्र उसी उत्साह के साथ करते हैं जिस उत्साह के साथ कि हम करते हैं। हमारी ही सी शिक्षा, हमारी ही सी रुचि और हमारे ही से रहन सहन के कारण इन लोगों में हिन्दोस्तानियत कम हो जाती है और अङ्गरेज़ियत अधिक आ जाती है। × × × फिर बजाय इसके कि वे हमारे तीव्र विरोधी हों, अथवा यदि हमारे अनुयायी भी हों तो उनके हृदय में हमारी ओर क्रोध भरा रहे, वे हमारे होशियार और उत्साही मददगार बन जाते हैं। × × × फिर वे हमें अपने देश से बाहर निकालने के प्रचण्ड उपाय सोचना बन्द कर देते हैं, × × ×।

"× × × जब तक हिन्दोस्तानियों को अपनी पहली स्वाधीनता के विषय में सोचने का मौक़ा मिलता रहेगा, तब तक उनके सामने अपनी दशा सुधारने का एक मात्र उपाय यह रहेगा कि वे अङ्गरेज़ों को तुरन्त देश से निकाल कर बाहर कर दें। पुराने तर्ज़ के भारतीय देशभक्तों के सामने इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है; × × × उनके राष्ट्रीय विचारों को दूसरी ओर मोड़ने का केवल एक ही उपाय है। वह यह कि उनके अन्दर पाश्चात्य विचार पैदा कर दिए जायँ। जो युवक हमारे स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ते हैं वे उस असभ्य स्वेच्छाशासन को, जिसके अधीन उनके पूर्वज रहा करते थे, घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं, और फिर अपनी राष्ट्रीय संस्थाओं को अङ्गरेज़ी ढङ्ग पर ढालने की आशा करने लगते हैं। × × × बजाय इसके कि उनके दिलों में यही विचार सब से ऊपर हो कि हम

अङ्गरेज़ों को निकाल कर समुद्र में फेंक दें, वे इसके विपरीत अब उन्नति का कोई ऐसा विचार तक नहीं कर सकते जो उनके ऊपर अङ्गरेज़ी राज्य को रिवट लगा कर और भी अधिक पक्का न कर दे, और जिसके द्वारा वे अङ्गरेज़ों की शिक्षा और अङ्गरेज़ों की रक्षा पर सर्वथा निर्भर न हो जायँ। × × ×

* * *

"× × × हमारे पास उपाय केवल यह है कि हम भारतवासियों को यूरोपियन ढङ्ग की उन्नति में लगा दें, × × × फिर पुराने ढङ्ग पर भारत को स्वाधीन करने की इच्छा ही उनमें से जाती रहेगी और उनका लक्ष्य ही यह न रह जायगा। देश में अचानक राजक्रान्ति फिर असम्भव हो जायगी और हमारे लिए भारत पर अपना साम्राज्य क़ायम रखना बहुत काल के लिए असन्दिग्ध हो जायगा। × × × भारतवासी फिर हमारे विरुद्ध विद्रोह न करेंगे × × × फिर उनके राष्ट्रीय प्रयत्न यूरोपियन शिक्षा प्राप्त करने और उसे फैलाने तथा अपने यहाँ यूरोपियन संस्थाएँ क़ायम करने में ही पूरी तरह लगे रहेंगे, जिससे हमें कोई हानि न हो पाएगी। शिक्षित भारतवासी × × × स्वभावतः हमसे चिपटे रहेंगे। × × × हमारी समस्त प्रजा में किसी भी श्रेणी के लोगों के लिए हमारा अस्तित्व इतना सर्वथा आवश्यक नहीं है जितना उन लोगों के लिए, जिनके विचार अङ्गरेज़ी साँचे में ढाले गए हैं। ये लोग शुद्ध भारतीय राज्य के काम के ही नहीं रह जाते; यदि जल्दी से देश में स्वदेशी राज्य क़ायम हो जाय तो उन्हें उससे हर प्रकार का भय रहता है; × × ×।

"× × × मुझे आशा है कि थोड़े ही दिनों में भारतवासियों का सम्बन्ध हमारे साथ वैसा ही हो जायगा जैसा किसी समय हमारा रोमन

लोगों के साथ था। रोमन विद्वान टैसीटस लिखता है कि जूलियस ऐग्रीकोला की (जो ईसा से ७८ वर्ष बाद इङ्गलिस्तान का रोमन गवरनर नियुक्त हुआ था और जिसने उस देश में रोमन साम्राज्य की नींवों को पक्का किया) यह नीति थी कि बड़े बड़े अङ्गरेज़ों के लड़कों को रोमन साहित्य और रोमन विज्ञान की शिक्षा दी जाय और उनमें रोमन सभ्यता के ऐश आराम की रुचि पैदा कर दी जाय। हम सब जानते हैं कि जूलियस ऐग्रीकोला की यह नीति कितनी सफल साबित हुई। यहाँ तक कि जो अङ्गरेज़ पहले रोमन लोगों के कट्टर शत्रु थे वे शीघ्र ही उनके विश्वासपात्र और उनके वफ़ादार मित्र बन गए; और उन अङ्गरेज़ों के पूर्वजों ने जितने प्रयत्न अपने देश पर रोमन लोगों के हमले को रोकने के लिए किए थे उससे कहीं अधिक ज़ोरदार प्रयत्न अब उनके वंशज रोमन लोगों को अपने यहाँ क़ायम रखने के लिए करने लगे। हमारे पास रोमन लोगों से कहीं अधिक बढ़ कर उपाय मौजूद हैं, इसलिए हमारे लिए यह शर्म की बात होगी यदि हम भी रोमन लोगों की तरह भारतवासियों के चित्तों में यह भय उत्पन्न न कर दें कि यदि हम जल्दी से देश से निकल गए तो तुम लोगों पर भयङ्कर आपत्ति आ जायगी। × × ×

* * *

"ये विचार मैंने केवल अपने दिमाग़ से सोच कर ही नहीं निकाले, वरन् स्वयं अनुभव करके और देख भाल कर मुझे इन नतीजों पर पहुँचना पड़ा। मैंने कई वर्ष हिन्दोस्तान के ऐसे हिस्सों में व्यतीत किए जहाँ हमारा राज्य अभी नया नया जमा था, जहाँ पर कि हमने लोगों के भावों को दूसरी ओर मोड़ने की अभी कोई कोशिश भी नहीं की थी, और जहाँ पर कि उनके राष्ट्रीय विचारों में अभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। उन

प्रान्तों में छोटे और बड़े, धनी और दरिद्र, सब लोगों के सामने केवल अपनी राजनैतिक दशा सुधारने की ही एक मात्र चिन्ता थी। उच्च श्रेणी के लोगों के दिलों में यह आशा बनी हुई थी कि हम फिर से अपने प्राचीन प्रभुत्व को प्राप्त कर लें; और निम्न श्रेणी के लोगों में यह आशा बनी हुई थी कि यदि देशी राज्य फिर से स्थापित हो गया तो धन और वैभव प्राप्त करने के मार्ग हमारे लिए फिर से खुल जायँगे। जिन समझदार भारतवासियों को औरों की अपेक्षा हमसे अधिक प्रेम था उन्हें भी अपनी क़ौम की पतित अवस्था को सुधारने का इसके सिवा और कोई उपाय न सूझता था कि अङ्गरेज़ों को तुरन्त देश से निकाल कर बाहर कर दिया जाय। इसके बाद मैं कुछ वर्ष बङ्गाल में रहा। वहाँ मैंने शिक्षित भारतवासियों में बिलकुल दूसरी ही तरह के विचार देखे। अङ्गरेज़ों के गले काटने का विचार करने के स्थान पर, वे लोग अङ्गरेज़ों के साथ जूरी बन कर अदालतों में बैठने अथवा बेञ्च मैजिस्ट्रेट बनने की आकांक्षाएँ कर रहे थे। × × ×"*

---

* ". . . would be perpetually reminding the Mohammadans that we are infidel usurpers of some of the fairest realms of the faithful, and the Hindoos, that we are unclean beasts, with whom it is a sin and a shame to have any friendly intercourse. Our bitterest enemies could not desire more than that we should propagate systems of learning which excite the strongest feelings of human nature against ourselves.

"The spirit of English literature, on the other hand, can not but be favourable to the English connection. Familiarly acquainted with us by means of our literature, the Indian youth almost cease to regard us as foreigners. They speak of our great men

सर चार्ल्स ट्रेवेलियन के पूर्वोक्त पत्र के विषय में पार्लिमेण्ट की कमेटी के सदस्यों और ट्रेवेलियन में कई दिन तक प्रश्नोत्तर होता रहा, जिसमें ट्रेवेलियन ने और अधिक स्पष्टता के साथ अपने विचारों को दोहराया और उनका समर्थन किया। इस प्रश्नोत्तर ही में २३ जून सन् १८५३ को ट्रेवेलियन ने कमेटी के सामने बयान किया—

---

with the same enthusiasm as we do. Educated in the same way, interested in the same objects, engaged in the same pursuits with ourselves, they become more English than Hindoos, . . . and from violent opponents, or sullen conformists, they are converted into zealous and intelligent co-operators with us, . . . they cease to think of violent remedies, . . .

". . . As long as the natives are left to brood over their former independence, their sole specific for improving their condition is, the immediate and total expulsion of the English. A native patriot of the old school has no notion of anything beyond this ; . . . It is only by the infusion of European ideas, that a new direction can be given to the national views. The young-men, brought up at our seminaries, turn with contempt from the barbarous despotism under which their ancestors groaned, to the prospect of improving their national institutions on the English model. . . . So far from having the idea of driving the English into the sea uppermost in their minds, they have no notion of any improvement but such as rivets their connection with the English, and makes them dependent on English protection and instruction.

* * *

"अपने यहाँ की शुद्ध स्वदेशी पद्धति के अनुसार मुसलमान लोग हमें 'काफ़िर' समझते हैं, जिन्होंने कि इसलाम की कई सर्वोत्तम बादशाहतें मुसलमानों से छीन ली हैं, × × × उसी प्राचीन स्वदेशी विचार के अनुसार हिन्दू हमें 'म्लेच्छ' समझते हैं, अर्थात् इस तरह के अपवित्र विधर्मी जिनके साथ किसी तरह का भी सामाजिक सम्बन्ध नहीं रक्खा जा सकता; और वे सबके सब मिल कर अर्थात् हिन्दू और मुसलमान दोनों, हमें इस तरह के आक्रमक विदेशी समझते हैं जिन्होंने उनका देश उनसे छीन लिया है और उनके लिए धन तथा मान प्राप्त करने के समस्त मार्ग बन्द कर दिए हैं। यूरोपियन शिक्षा देने का परिणाम यह होता है कि भारतवासियों के विचार एक बिलकुल दूसरी ही ओर मुड़ जाते हैं। पाश्चात्य शिक्षा पाए हुए युवक स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करना बन्द कर देते

"The only means at our disposal . . . is, to set the natives on a process of European improvement, to which they are already sufficiently inclined. They will then cease to desire and aim at independence on the old Indian footing. A sudden change will then be impossible; and a long continuance of our present connection with India will even be assured to us. . . . The natives will not rise against us, . . . The national activity will be fully and harmlessly employed in acquiring and diffusing European knowledge, and naturalising European institutions. The educated classes, . . . will naturally cling to us. . . There is no class of our subjects to whom we are so thoroughly necessary as those whose opinions have been cast in the English mold; they are spoiled for a purely native regime; they have everything to fear from the premature establishment of a native Government; . . .

हैं××× वे हमें फिर अपने शत्रु और राज्यापहारी नहीं समझते, बल्कि हमें अपने मित्र, अपने मददगार और बलवान तथा उपकारशील मनुष्य समझने लगते हैं,××× वे यह भी समझने लगते हैं कि हम भारतवासी अपने देश के पुनरुज्जीवन के लिए जो कुछ इच्छा भी कर सकते हैं वह धीरे धीरे अङ्गरेज़ों ही के संरक्षण में सम्भव हो सकती है। यदि राज्यक्रान्ति के पुराने देशी विचार क़ायम रहे तो सम्भव है, कभी न कभी एक दिन के अन्दर हमारा अस्तित्व भारत से मिट जाय। वास्तव में जो लोग इस ढङ्ग से भारत की उन्नति की आशा कर रहे हैं वे इस लक्ष्य को सामने रख कर हमारे विरुद्ध लगातार षड्यन्त्र और योजनाएँ रचते रहते हैं। इसके विपरीत नई और उन्नत पद्धति के अनुसार विचार करने वाले भारतवासी यह समझते हैं कि हमारा उद्देश अत्यन्त धीरे धीरे पूरा होगा और हमें अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचते पहुँचते सम्भव है युग बीत जायँ।"

". . . The Indians will, I hope, soon stand in the same position towards us in which we once stood towards the Romans. Tacitus informs us, that it was the policy of Julius Agricola to instruct the sons of the leading men among the Britons in the literature and science of Rome and to give them a taste for the refinements of Roman civilization. We all know how well this plan answered. From being obstinate enemies, the Britons soon became attached and confiding friends; and they made more strenuous efforts to retain the Romans, than their ancestors had done to resist their invasion. It will be a shame to us if, with our greatly superior advantages, we also do not make our premature departure be dreaded as a calamity. . . .

*   *   *

"These views were not worked out by reflection, but were

जाँच कमेटी के अध्यक्ष ने ट्रेवेलियन से और अधिक स्पष्ट शब्दों में पूछा कि आप की तजवीज़ का अन्तिम लक्ष्य भारत तथा इङ्गलिस्तान के राजनैतिक सम्बन्ध को तोड़ना है अथवा उसे सदा के लिए क़ायम रखना है ? इस पर ट्रेवेलियन ने फिर उत्तर दिया—

"× × × मुझे विश्वास है कि भारतवासियों को शिक्षा देने × × × का अन्तिम परिणाम यह होगा कि भारत तथा इङ्गलिस्तान का पृथक हो सकना दीर्घ तथा अनन्त काल के लिए टल जायगा, × × × इसके

---

forced on me by actual observation and experience. I passed some years in parts of India, where owing to the comparative novelty of our rule and to the absence of any attempt to alter the current of native feeling, the national habits of thinking remained unchanged. There high and low, rich and poor, had only one idea of improving their political condition. The upper classes lived upon the prospect of regaining their former pre-eminence ; and the lower, upon that of having the evenues to wealth and distinction reopened to them by the reestablishment of a native government. Even sensible and comparatively well-effected natives had no notion that there was any remedy for the existing depressed state of their nation except the sudden and absolute expulsion of the English. After that, I resided for some years in Bengal, and there I found quite another set of ideas prevalent among the educated natives. Instead of thinking of cutting the throats of the English, they were aspiring to sit with them on the grand jury or on the bench of magistrates. . . ."—A paper on The political tendency of the different systems of education in use in India, by Sir Charles, E. Trevelyan, submitted to the Parliamentary Committee of 1853.

विपरीत मेरा विचार है कि यदि इसके विरुद्ध नीति का अनुसरण किया गया × × × तो नतीजा यह होगा कि किसी भी समय हम भारत से निकाले जा सकते हैं, और निस्सन्देह बहुत जल्दी और बड़ी ज़िल्लत के साथ निकाल दिए जायँगे। × × ×

* * *

"मैं एक ऐसा रास्ता बता रहा हूँ जो हमारे राज्य के स्थायित्व के लिए सबसे अधिक हितकर होगा। अनेक वर्षों तक ख़ूब अच्छी तरह सोच समझ कर मैंने ये विचार क़ायम किए हैं। मुझे विश्वास है कि मैं इस विषय को पूरी तरह समझता हूँ। × × × मैं एक परिचित उदाहरण आपके सामने पेश करता हूँ। मैं बारह वर्ष भारत में रहा। इनमें से पहले ६ वर्ष मैंने उत्तरीय भारत में गुज़ारे। मेरा मुख्य स्थान दिल्ली था। शेष छै वर्ष मैंने कलकत्ते में व्यतीत किए। जहाँ पर मैंने पहले छै वर्ष गुज़ारे वहाँ पर पुराने शुद्ध देशी विचारों का राज्य था, वहाँ पर लगातार युद्ध और युद्धों की ही अफ़वाहें सुनने में आती थीं। उत्तरीय भारत में भारतवासियों की देशभक्ति केवल एक ही रूप धारण करती थी, वे हमारे विरुद्ध साज़िशें कर रहे थे, हमारे विरुद्ध विविध शक्तियों को मिलाने की तजवीज़ें सोच रहे थे, इत्यादि। इसके बाद मैं कलकत्ते आया। वहाँ मैंने बिलकुल दूसरी ही हालत देखी। वहाँ पर लोगों का लक्ष्य था—स्वतन्त्र अख़बार निकालना, म्युनिसिपैलिटियाँ क़ायम करना, अङ्गरेज़ी शिक्षा फैलाना, अधिकाधिक हिन्दोस्तानियों को सरकारी नौकरियाँ दिलवाना; और इसी तरह की और अनेक बातें।"

इस पर फिर लॉर्ड मॉण्टीगल ने ट्रेवेलियन से पूछा—

"अब अनुमान कीजिए कि इन दोनों में से एक मार्ग का अनुसरण

किया जाय; पहला यह कि भारतवासियों को शिक्षा देने और नौकरियाँ देने का विचार छोड़ दिया जाय, और दूसरा यह कि उन्हें अधिक शिक्षा दी जाय और उचित अहतियात के साथ उन्हें अधिकाधिक नौकरियाँ दी जायँ। आपकी राय में इन दोनों मार्गों में से किस मार्ग पर चलने से हिन्दोस्तान तथा इङ्गलिस्तान का सम्बन्ध अधिक से अधिक काल तक क़ायम रह सकता है ?"

ट्रेवेलियन ने उत्तर दिया—

"निस्सन्देह शिक्षा को बढ़ाने और भारतवासियों को अधिकाधिक नौकरियाँ देने से; मुझे इस बात में किसी प्रकार का ज़रा सा भी सन्देह नहीं है।"*

---

* "According to the unmitigated native system the Mohammadans regard us as *Kafirs*, as infidel usurpers of some of the finest realms of Islam, . . . According to the same original native views, the Hindoos regard us as *Mlechhas*, that is, impure outcasts with whom no communion ought to be held; and they all of them, both Hindoo and Mohammadan, regard us as usurping foreigners, who have taken their country from them, and exclude them from the avenues to wealth and distinction. The effect of a training in European learning is to give an entirely new turn to the native mind. The young men educated in this may cease to strive after independence . . . They cease to regard us as enemies and usurpers, and they look upon us as friends and patrons, and powerful beneficent persons, under whose protection all they have most at heart for the regeneration of their country will gradually be worked out. According to the original native view of political change, we might be swept off the face of India in a

सर चार्ल्स ट्रैवेलियन अथवा उस विचार के अन्य अङ्गरेज़ शासकों के बयानों से अधिक प्रमाण उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं है। निस्सन्देह ठीक यही विचार वेण्टिङ्क तथा मैकॉले जैसों के थे। भारत के अन्दर वर्त्तमान अङ्गरेज़ी शिक्षा के प्रचार का एक मात्र उद्देश राजनैतिक था और वह उद्देश यह था कि भारत के ऊपर इङ्गलिस्तान के राजनैतिक प्रभुत्व को अनन्त काल तक के लिए क़ायम रक्खा जाय।

---

day, and, as a matter of fact, those who look for the improvement of India according to this model are continually meditating on plots and conspiracies with that object; whereas, according to new and improved system, the object must be worked out by very gradual steps, and ages may elapse before the ultimate end will be attained, . . .

* * *

" . . . Now my belief is, that *the ultimate result of the policy of improving and educating India will be, to postpone the separation for a long indefinite period,* . . . Whereas I conceive that the result of the opposite policy . . . may lead to a separation at any time, and must lead to it at a much earlier period and under much more disadvantageous circumstances . . .

* * *

"I am recommending the course which, according to my most deliberate view which I have held for a great many years, founded, I believe, on a full knowledge of the subject, will be most conducive to the continuance of our dominion, . . . I may mention, as a familiar illustration, that I was 12 years in India, and that the first six years were spent up the country, with Delhi for my

ग़दर और उसके बाद

सन् १८५३ की तहक़ीक़ात के बाद कम्पनी के डाइरेक्टरों ने १९ जुलाई सन् १८५४ को गवरनर-जनरल लॉर्ड डलहौज़ी के नाम वह प्रसिद्ध पत्र भेजा जो सन् १८५४ के 'ऐजूकेशन डिसपैच' के नाम से प्रसिद्ध है, और जिसे 'वुड्स डिसपैच' भी कहते हैं, क्योंकि सर चार्ल्स वुड उस समय कम्पनी के 'बोर्ड ऑफ़ कण्ट्रोल' का

---

headquarters, and the other six at Calcutta. The first six years represent the old regime of pure native ideas, and there were continual wars and rumours of wars. The only form which native patriotism assumed up the country was plotting against us, and meditating combinations against us and so forth. Then I came to Calcutta: and there I found quite a new state of things. The object there was to have a free press, to have municipal institutions, to promote English education and the employments of the Natives, and various things of that sort.

"6724, Lord Monteagle of Brandon. Then, supposing one of two courses to be taken, either the abandonment of the education and employment of the Natives, or an extension, of education, or an extension, with due precaution, of the employment of the Natives, which of those two courses, in your judgment, will lead to the longest possible continuance of the connexion of India with England?

"Decidedly the extension of education and the employment of the Natives; I entertain no doubt whatever upon the question."—Sir Charles E. Trevelyan, before the Parliamentary Committee of 1853.

प्रेसीडेण्ट था; बोर्ड ऑफ़ कण्ट्रोल के प्रेसीडेण्ट का पद आजकल के भारत मन्त्री के पद के समान था।

इस पत्र में डाइरेक्टरों ने अपनी भारत हितैषिता की काफ़ी डींग हाँकी है, किन्तु पत्र में यह भी लिखा है कि शिक्षा की इस नई योजना का उद्देश "शासन के हर महकमे के लिए आपको विश्वसनीय और होशियार नौकर दिलवाना है" और इसका एक उद्देश इस बात को "पक्का कर लेना है कि इङ्गलिस्तान के उद्योग धन्धों के लिए जिन अनेक पदार्थों की आवश्यकता होती है और जिनकी इङ्गलिस्तान की हर श्रेणी के लोगों में खूब खपत होती है वे सब पदार्थ अधिक परिमाण में और अधिक निश्चिन्तता के साथ सदा इङ्गलिस्तान पहुँचते रहें, और इसके साथ ही इङ्गलिस्तान के बने हुए माल के लिए भारत में लगभग अनन्त माँग बनी रहे।"*

सन् १७५७ से लेकर १८५४ तक लगभग १०० वर्ष के अनुभव और परामर्श के बाद इङ्गलिस्तान के नीतिज्ञों को इस बात का विश्वास हुआ कि थोड़े से भारतवासियों को अङ्गरेज़ी शिक्षा देना इस देश में अङ्गरेज़ी साम्राज्य को क़ायम रखने के लिए आवश्यक है।

* ". . . enabling you to obtain the services of intelligent and trustworthy persons in every department of Government;" —Para 72 and

". . . secure to us a larger and more certain supply of many articles necessary for our manufactures and extensively consumed by all classes of our population as well as an almost inexhaustible demand for the produce of British labour."—Para 4, *The Education Despatch of 1854.*

किन्तु इस पर भी ये लोग इतने बड़े प्रयोग के लिए एकाएक साहस न कर सके। ट्रेवेलियन ने अपने पत्र और बयान दोनों में उन्हें साफ़ आगाह कर दिया था कि अशिक्षित अथवा अङ्गरेज़ी शिक्षा से वञ्चित भारतवासियों के दिलों में अपनी पराधीनता के विरुद्ध गहरा असन्तोष भीतर ही भीतर भड़कता रहता था, जिसका विदेशी शासकों को पता तक नहीं चल सकता था। यह स्थिति अङ्गरेज़ों के लिए अत्यन्त ख़तरनाक थी। ट्रैवेलियन के बयान में दिल्ली और उत्तरीय भारत के अन्दर सन् १८५७ से दस वर्ष पूर्व की ग़दर की गुप्त तैयारियों और सम्भावनाओं की ओर साफ़ सङ्केत मिलता है। ट्रैवेलियन की आशङ्काएँ बहुत शीघ्र सच्ची साबित हुईं। सन् १८५७ के ग़दर ने एक बार इस देश के अन्दर ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ों को बुरी तरह हिला दिया।

अङ्गरेज़ शासकों को अब ट्रैवेलियन, मैकॉले जैसों की नीतिज्ञता और दूरदर्शिता में कोई सन्देह न रहा। उनका बताया हुआ उपाय ही इस देश में अङ्गरेज़ी राज्य को चिरस्थायी करने का एक मात्र उपाय था। लॉर्ड कैनिङ्ग उस समय भारत का गवरनर-जनरल था। ठीक ग़दर के वर्ष अर्थात् सन् १८५७ में कलकत्ते, बम्बई और मद्रास में सरकारी विश्वविद्यालय क़ायम करने के लिए क़ानून पास किया गया। सन् १८५९ में इङ्गलिस्तान के प्रधान मन्त्री ने सन् १८५४ के पत्र को फिर से दोहरा कर पक्का किया।

सन् १८५४ का यह प्रसिद्ध डिसपैच ही भारत की वर्तमान अङ्गरेज़ी शिक्षा-प्रणाली और अङ्गरेज़ शासकों की शिक्षा-नीति दोनों का

उद्गम स्थान है। ब्रिटिश सरकार का वर्तमान शिक्षा-विभाग इसी पत्र का परिणाम है।

दिल्ली कॉलेज के शुरू के विद्यार्थी, सर चार्ल्स ट्रेवेलियन के पट्ट शिष्य और प्रथम अफ़ग़ान युद्ध में अङ्गरेज़ों के परम सहायक, पण्डित मोहनलाल से लेकर आज तक के अधिकांश अङ्गरेज़ी शिक्षा पाए हुए भारतवासियों के जीवन, उनके रहन सहन और उनके चरित्र से स्पष्ट है कि लॉर्ड मैकॉले और सर चार्ल्स ट्रेवेलियन जैसों की नीति कितनी दूरदर्शिता की थी। सारांश यह कि लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व तक जो देश संसार के शिक्षित देशों की अग्रतम श्रेणी में गिना जाता था, वह डेढ़ सौ वर्ष के विदेशी शासन के बाद अब संसार के सभ्य कहलाने वाले देशों में, शिक्षा की दृष्टि से, सबसे अधिक पिछड़ा हुआ है। जिस देश में लगभग प्रत्येक मनुष्य लिखना पढ़ना और हिसाब करना जानता था, वहाँ अब लगभग ९४ प्रतिशत अशिक्षित हैं और थोड़े से अङ्गरेज़ी शिक्षा पाए हुए लोग अपने शेष देशवासियों के सुख दुख की ओर से उदासीन, सच्ची राष्ट्रीयता के भावों से कोसों दूर, विदेशी सत्ता के निर्लज्ज पृष्ठपोषक बने हुए हैं।

सैंतीसवाँ अध्याय

पहला अफ़ग़ान युद्ध

र्ड बेण्टिङ्क के बाद मार्च सन् १८३५ से मार्च सन् १८३६ तक सर चार्ल्स मेटकाफ़ ने गवरनर-जनरल का काम किया।

इस बीच इङ्गलिस्तान के शासकों ने प्रसिद्ध अङ्गरेज़ नीतिज्ञ एलफ़िन्सटन को, जिसके कृत्यों का ज़िक्र नागपुर तथा पूना दरबारों के सम्बन्ध में ऊपर किया जा चुका है, पेशवा राज्य का अन्त कर देने के इनाम में भारत की गवरनर-जनरली के पद पर नियुक्त करना चाहा। एलफ़िन्सटन कुछ समय तक बम्बई का गवरनर रह चुका था। किन्तु कहा जाता है, स्वास्थ्य ख़राब होने के कारण वह इस समय अपने मालिकों की इच्छा को पूरा न कर सका। अन्त में सन् १८३६ में लॉर्ड बेण्टिङ्क की राय से लॉर्ड ऑकलैण्ड को गवरनर-जनरल नियुक्त करके भारत भेजा गया।

लॉर्ड वेण्टिङ्क के समय में सिन्धु नदी की जो सरवे महाराजा रणजीतसिंह को उपहार भेजने के बहाने की गई थी उसके गुल अब अफ़ग़ान युद्ध के रूप में आकर खिले। इस दृष्टि से लॉर्ड ऑक-लैण्ड का शासन-काल ब्रिटिश भारतीय इतिहास में एक विशेष सीमा-चिन्ह है। इस शासन-काल में ही ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य की 'वैज्ञानिक सरहद' (साइण्टिफ़िक फ़्रण्टीयर) खोजने का प्रयत्न शुरू हुआ; जिसके फल रूप धीरे धीरे सिन्ध, पञ्जाब, बलूचिस्तान, चितराल और उस समय के अफ़ग़ानिस्तान के कुछ भाग को अपनी स्वाधीनता खोनी पड़ी।

लॉर्ड ऑकलैण्ड के समय में दोस्तमोहम्मद खाँ अफ़ग़ानिस्तान का बादशाह था। उससे पहले का बादशाह शाहशुजा उन दिनों लुधियाने में अङ्गरेज़ों का मेहमान था।

सिन्धु नदी की सरवे करने और महाराजा रणजीतसिंह को बादशाह विलियम की ओर से घोड़े और गाड़ी भेंट करने का कार्य एक चतुर अङ्गरेज़ लेफ़्टेनेण्ट बर्न्स के सुपुर्द था। इन उपहारों को रणजीतसिंह की नज़र करने के बाद बर्न्स को सन् १८३२ में मध्य-एशिया की ओर भेजा गया। कारण यह बताया गया कि चूँकि अङ्गरेज़ों को रूस के हमले का डर है, इसलिए भारत तथा मध्य-एशिया के बीच की ताक़तों को कम्पनी की ओर करने के लिए बर्न्स को भेजा जा रहा है। बर्न्स के साथ एक और अङ्गरेज़ डाक्टर गैरार्ड, एक काश्मीरी पण्डित मुन्शी मोहनलाल और एक मुसलमान सरवेयर मोहम्मदअली भी थे। यह पण्डित मोहनलाल

अत्यन्त चालाक और दिल्ली कॉलेज के सब से पहले विद्यार्थियों में से था। ये लोग सब से पहले अफ़ग़ानिस्तान पहुँचे, अमीर दोस्त-मोहम्मद खाँ ने इनकी खूब ख़ातिर की। उसके बाद एक साल तक मध्य-एशिया में घूमने के बाद सन् १८३३ में ये लोग अनेक पत्रों, मान चित्रों आदि सहित भारत लौट आए। वापस आने पर भारत तथा इङ्गलिस्तान दोनों में बर्न्स की बहुत बड़ी इज्ज़त हुई। वास्तव में बर्न्स की इस यात्रा ने ही पहले अफ़ग़ान युद्ध की बुनियाद डाली। बर्न्स के भारत लौटने के कुछ दिनों बाद लॉर्ड ऑकलैण्ड ने गवरनर-जनरली का पद सँभाला।

अङ्गरेज़ बहुत दिनों से अफ़ग़ानिस्तान तक अपने पैर फैलाने के लिए लालायित थे। रूस का डर अधिकतर केवल एक बहाना था। सन् १८३६ के अन्त में बर्न्स को दूसरी बार 'व्यापारिक मिशन' (कॉमर्शियल मिशन) पर काबुल भेजा गया। इतिहास-लेखक सर जॉन के इस मिशन के सम्बन्ध में लिखता है—

"पूर्व की परिभाषा में 'व्यापार' केवल 'देशविजय' का दूसरा नाम है। × × × और यह व्यापारिक मिशन गम्भीर राजनैतिक कुचक्रों को अपने भीतर छिपाए रखने का एक कपट-वेश था।"*

निस्सन्देह 'पूर्व' का अर्थ यहाँ पर 'पूर्वीय देशों के साथ पश्चिमी क़ौमों के सम्बन्ध' का है।

* "Commerce, in the vocabulary of the East, is only another name for conquere . . . and this commercial mission became the cloak of grave political designs."—Kaye's *Lives of Indian Officers*, vol. ii. p. 33.

दोस्त मोहम्मद खाँ

[From an old portrait with Major B. D. Basu.]

अङ्गरेज़ों के इस व्यापारिक मिशन ने २० सितम्बर सन् १८३७ को काबुल में प्रवेश किया। भोले अफ़ग़ान बादशाह ने बड़े उत्साह के साथ उसका स्वागत किया। मिशन का एक उद्देश यह था कि दोस्तमोहम्मद ख़ाँ को रूस के विरुद्ध अङ्गरेज़ों के पक्ष में कर लिया जाय। किन्तु यह उद्देश पूरा न हो सका और बर्न्स तथा उसके साथियों को असफल भारत लौट आना पड़ा।

इस असफलता का कारण यह था कि अफ़ग़ानिस्तान का कुछ पूर्वीय इलाक़ा, ख़ास कर पेशावर का ज़रखेज़ ज़िला महाराजा रणजीतसिंह ने अफ़ग़ानिस्तान से छीन कर अपने अधीन कर रक्खा था। दोस्तमोहम्मद ख़ाँ ने कहा कि यदि अङ्गरेज़ रूस के विरुद्ध अफ़ग़ानिस्तान की मदद चाहते हैं तो इसके बदले में वे अफ़ग़ानिस्तान का पूर्वीय इलाक़ा रणजीतसिंह से वापस लेने में मुझे मदद दें। दोस्तमोहम्मद ख़ाँ की माँग कदापि बेजा न थी। किन्तु अङ्गरेज़ों की नीति उस समय अफ़ग़ानिस्तान को अधिक मज़बूत करने की न थी। दोस्तमोहम्मद ख़ाँ एक योग्य और बलवान शासक था। अङ्गरेज़ बहुत दिनों पहले से अफ़ग़ानिस्तान के स्वाधीन अस्तित्व को नष्ट कर देने की फ़िक्र में थे। शाहशुजा उनके हाथों में एक ख़ासा अच्छा साधन मौजूद था। वे केवल युद्ध का बहाना ढूँढ़ रहे थे। उस समय के अनेक उल्लेखों से यह भी साफ़ ज़ाहिर है कि अङ्गरेज़ों को इस बात का पूरा विश्वास था कि रणजीतसिंह के मरने के बाद रणजीतसिंह का राज्य आसानी

से कम्पनी के क़ब्ज़े में आ जायगा। बर्न्स ने दोस्तमोहम्मद ख़ाँ की बात न मानी। इसी लिए उसे असफल भारत लौट आना पड़ा।

बर्न्स के भारत पहुँचते ही अफ़ग़ानिस्तान के साथ युद्ध की तैयारियाँ शुरू हो गईं। इतिहास-लेखक के लिखता है कि ठीक उस समय जब कि बर्न्स काबुल में दोस्तमोहम्मद ख़ाँ से दोस्ती करने की दिखावटी कोशिशें कर रहा था—

"हिमालय पहाड़ के ऊपर साज़िशों के उस बड़े अड्डे शिमले में दूसरी तरह की सलाहें हो रही थीं—× × × उन लोगों ने शाहशुजा के पुराने पदच्युत कुल को फिर से काबुल की गद्दी पर बैठाने का इरादा कर लिया और शाहशुजा को लुधियाने की ख़ाक में से उठा कर उसे अपना एक साधन और अपने हाथ की एक कठपुतली बना लिया × × ×।"*

निस्सन्देह इन कुचक्रों के सूत्रधार शिमले में रहने वाले कम्पनी के अङ्गरेज़ प्रतिनिधि थे। पहले अफ़ग़ान युद्ध से अङ्गरेज़ों की राजनीति और उनके राष्ट्रीय चरित्र पर एक आश्चर्य जनक रोशनी पड़ती है। एक ख़ास बात इस युद्ध के समय यह खुली कि इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सरकारी पत्रादिक भी सत्य असत्य की दृष्टि

---

* "Other counsels were prevailing at Simla—that great hotbed of intrigue on the Himalayan hills— . . . They conceived the idea of reinstating the old deposed dynasty of Shah Shuja, and they picked him out of the dust of Ludhiyana to make him a tool and a puppet."—Kaye's *Lives of Indian Officers*, vol ii, p. 36.

से विश्वसनीय नहीं कहे जा सकते। बर्न्स ने दोस्तमोहम्मद ख़ाँ के विषय में काबुल से कुछ पत्र लिखे थे। इन पत्रों में उसने दोस्तमोहम्मद ख़ाँ के चरित्र की प्रशंसा की थी; किन्तु अब अङ्गरेज़ दोस्तमोहम्मद ख़ाँ से युद्ध करना चाहते थे। इसलिए दोस्तमोहम्मद ख़ाँ को जन सामान्य की दृष्टि में गिराना आवश्यक था। बर्न्स के भेजे हुए उन पत्रों में, जो पार्लिमेण्ट की सरकारी रिपोर्टों में दर्ज थे, काट छाँट की गई; यहाँ तक कि जिस दोस्तमोहम्मद ख़ाँ के चरित्र की बर्न्स ने ख़ूब प्रशंसा की थी उसकी बर्न्स ही के क़लम से उन्हीं पत्रों में ख़ूब बुराई दिखला दी गई। इस काट छाँट का भेद कुछ समय बाद अचानक बर्न्स के मर जाने पर उसके पिता ने प्रकट किया और इङ्गलिस्तान के बादशाह के सम्मुख बाज़ाब्ता शिकायत की कि आपके मन्त्रियों ने इस प्रकार जाल बना कर मेरे पुत्र के यश को कलङ्कित करने का प्रयत्न किया है; इसी काट छाँट के विषय में इतिहास-लेखक के लिखता है—

"सार्वजनिक लोगों के सरकारी पत्र व्यवहार में काट छाँट करने की इस प्रथा के प्रति, निस्सन्देह, मैं अपनी घृणा प्रकट किए बिना नहीं रह सकता। × × × जिस बेईमानी के साथ झूठ पर झूठ संसार के सामने पेश कर दिया जाता है उसमें कोई भी भलाई नहीं है। × × × इस मामले में × × × दोस्तमोहम्मद के चरित्र पर झूठे कलङ्क लगाए गए हैं; बर्न्स के चरित्र पर झूठे कलङ्क लगाए गए हैं; बर्न्स के पत्र व्यवहार में काट छाँट करके बर्न्स और दोस्तमोहम्मद दोनों के बयानों में भयङ्कर झूठ मिला दिया गया है—दोनों ने जो जो बातें नहीं कीं वे कहा गया है कि उन्होंने

कीं, और जो बातें उन्होंने कीं, वे कहा गया है कि उन्होंने नहीं कीं। × × ×"*

मई सन् १८३८ में बर्न्स काबुल से शिमले वापस आ गया। कहते हैं कि बर्न्स की अनुपस्थिति में रूसी राजदूत का प्रभाव काबुल के दरबार में बढ़ने लगा।

निरपराध अफ़गानियों के साथ युद्ध छेड़ने के लिए केवल भारत के अङ्गरेज़ ही ज़िम्मेवार न थे। इतिहास-लेखक कीन साफ़ लिखता है कि इङ्गलिस्तान के मन्त्री पहले से अफ़गानिस्तान पर हमला करने का निश्चय कर चुके थे और उनसे ही इस युद्ध का सूत्रपात हुआ। प्रधान मन्त्री लॉर्ड पामर्सटन के कई गुप्त पत्र इस विषय में गवरनर-जनरल के नाम आ चुके थे। कम्पनी के डाइरेक्टरों के चेयरमैन ने गवनर-जनरल को एक पत्र लिखा जिसमें उसने गवरनर-जनरल को पहले पञ्जाब विजय करने और फिर पञ्जाब द्वारा काबुल पर हमला करने की सलाह दी। जनरल जॉन ब्रिग्ज़ ने

---

* "I can not indeed suppress the utterance of my abhorrence of this system of garbling the official correspondence of public men—. . . The dishonesty by which lie upon lie is palmed upon the world has not one redeeming feature. . . . In the case before us. . . the character of Dost Mohammed has been lied away; the character of Burnes has been lied away; both, by the mutilation of the correspondence of the latter, has been fearfully misrepresented—both have been set forth as doing what they did not, and omitting to do what they did. . ."—Kaye's *Lives of Indian Officers*, vol ii.

८ मई सन् १८७२ को मेजर ईवन्स बेल के नाम एक पत्र लिखा जिसमें लिखा है कि लॉर्ड ऑकलैण्ड के समय में लॉर्ड लैन्सडाउन के मकान पर इङ्गलिस्तान के मन्त्रियों और प्रधान नीतिज्ञों की एक गुप्त सभा हुई थी जिसमें यह निर्णय किया गया था कि जिस तरह हो सके भारत की शेष देशी रियासतों को, जो कम्पनी की सामन्त हैं, अन्त करके उनके इलाक़ों को कम्पनी के राज्य में मिला लिया जाय। लिखा है कि इसी निर्णय के अनुसार बम्बई की सरकार ने कोलाबा की रियासत को, जो खासी बड़ी थी, केवल यह बहाना लेकर कम्पनी के राज्य में मिला लिया कि दत्तक पुत्र को गद्दी का कोई अधिकार नहीं है। इसी के अनुसार कुछ समय बाद लॉर्ड डलहौज़ी ने झाँसी, नागपुर इत्यादि रियासतों को हज़म किया। वास्तव में यह अपहरण-नीति इङ्गलिस्तान के मन्त्रियों की निश्चित नीति थी।*

युद्ध शुरू करने से पहले कम्पनी, महाराजा रणजीतसिंह और शाहशुजा· तीनों के बीच एक सन्धि हो गई। इस सन्धि ने सिन्ध के स्वाधीन अस्तित्व को भविष्य के लिए सङ्कट में डाल दिया। अङ्गरेज़ों ने शाहशुजा को ले जाकर काबुल के तख्त पर बैठाने का वादा किया। शाहशुजा ने अङ्गरेज़ों को सिन्ध में आज़ाद छोड़ने का वचन दिया। रणजीतसिंह को इस सन्धि से कोई विशेष लाभ न था। यह भी कहा जाता है कि रणजीतसिंह इस सन्धि के साथ सर्वथा सहमत न था, तथापि ज्यूँ त्यूँ कर उससे हस्ताक्षर करा

* Memoir of General John Briggs, p. 277.

लिए गए। इस सन्धि के थोड़े दिनों बाद ही महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु हो गई।

इसके बाद आगामी अफ़ग़ान युद्ध के विषय में कम्पनी की ओर से एक एलान प्रकाशित किया गया जो इस तरह के अन्य अनेक एलानों के समान आद्योपान्त झूठ से भरा हुआ है।

अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई कर दी गई। बम्बई की सेना सिन्ध और बलूचिस्तान से होती हुई और उत्तरीय भारत की सेना पञ्जाब तथा ख़ैबर के रास्ते अफ़ग़ानिस्तान पहुँचीं। इन सेनाओं की यात्रा को विस्तार से वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। केवल मार्ग में सिन्ध के अमीरों के साथ अङ्गरेज़ों ने जो अत्याचार किए उन्हें थोड़ा बहुत वर्णन करना आवश्यक है।

हैदराबाद सिन्ध के अमीर अपने देश के स्वाधीन नरेश थे। तथापि बिना उनकी अनुमति लिए अङ्गरेज़ी सेना जबरदस्ती सिन्धु नदी से होती हुई अफ़ग़ानिस्तान की ओर बढ़ चली। कम्पनी सरकार की यह कारवाई उस सन्धि के विरुद्ध थी, जो हाल ही में अङ्गरेज़ों और सिन्ध के अमीरों के बीच हो चुकी थी। जिस समय सिन्ध के अमीरों ने अङ्गरेज़ों को सिन्धु नदी से हो कर महाराजा रणजीतसिंह के पास उपहार ले जाने की इजाज़त दी थी तो इस साफ़ शर्त पर दी थी कि कभी किसी तरह का फ़ौजी सामान उस नदी के रास्ते न ले जाया जायगा। अब लॉर्ड ऑकलैण्ड ने उस समय की इस सन्धि को रद्दी काग़ज़ की तरह फाड़ फेंका। केवल इतना ही नहीं, वरन् के लिखता है—

"यह मालूम था कि अमीर निर्बल हैं ; यह भी माना जाता था कि उनके पास ख़ूब धन है ; तय हुआ कि उनका धन ले लिया जाय और उनके देश पर क़ब्ज़ा कर लिया जाय। उनकी सन्धियों को सङ्गीनों के ज़ोर तोड़ देने का निश्चय किया गया, किन्तु साथ ही मित्रता और परस्पर प्रेम के अनेक कपट-वाक्यों की बौछार जारी रक्खी गई।"*

सिन्ध के अमीरों से यह कहा गया कि आयन्दा से आप शाह-शुजा को अपना अधिराज स्वीकार करें और उसको अफ़ग़ानिस्तान की गद्दी पर बैठाने के लिए अङ्गरेज़ों को धन की सहायता दें। अमीरों से तीन लाख रुपए सालाना भविष्य के लिए बतौर ख़िराज के, और इक्कीस लाख रुपया नक़द युद्ध के ख़र्च के लिए तलब किए गए। इस सब के लिए एक नई सन्धि उनके सामने पेश की गई। उस समय की इस समस्त घटना को बयान करते हुए एक इतिहास-लेखक, जो अङ्गरेज़ों के साथ था, लिखता है—

"कप्तान ईस्टविक ने अवसर पाकर अपने मिशन का काला घूँट अपने मेज़बानों के गले से उतार दिया × × × अमीरों ने शान्ति के साथ सुना × × × जब नई सन्धि पढ़ी जा चुकी तब बलूचियों में बड़ी व्याकुलता दिखाई दी। उस समय यदि अमीर थोड़ा सा भी इशारा कर देते तो जो

* "The Amirs were known to be weak; and they were believed to be wealthy. Their money was to be taken; their country to be occupied: their treaties to be set aside at the point of the bayonet but amidst a shower of hypocritical expressions of friendship and good-will."—Kaye's *History of the War in Afghanistan,* vol. i p. 401.

अनेक असभ्य और निर्दय बलूची नङ्गी तलवारें लिए हमारे पीछे खड़े हुए थे, उनकी तलवारें हम सब की ज़िन्दगियों को समाप्त कर देने के लिए काफ़ी थीं। पहले अमीर नूरमोहम्मद ख़ाँ ने अपने दोनों साथियों से बलूची ज़बान में कहा कि—'लानत है उस शख़्स के ऊपर, जो इन फ़िरङ्गियों के वादों का एतबार करे।' इसके बाद गम्भीरता के साथ अङ्गरेज़ प्रतिनिधि की ओर मुख़ातिब होकर उसने फ़ारसी में यह कहा—'मैं समझता हूँ, आप अपनी सन्धियों को जब चाहे अपनी इच्छा और सुविधा के अनुसार बदल सकते हैं; क्या अपने दोस्तों और मेहरबानों के साथ सलूक करने का आपका यही तरीक़ा है? आपने हमसे इस बात की इजाज़त माँगी कि हम आपकी फ़ौज को अपने इलाक़े से होकर जाने दें। हमने आपकी मित्रता और आपके × × × वादों पर विश्वास करके बिना सङ्कोच मञ्ज़ूर कर लिया। यदि हमें यह मालूम होता कि अपनी सेना को हमारे मुल्क में ले आने के बाद आप हमें ही धमकी देंगे और ज़बरदस्ती दूसरी सन्धि हमारे सिर मढ़ेंगे और हमसे तीन लाख रुपए सालाना ख़िराज और इक्कीस लाख रुपए नक़द फ़ौज के ख़र्च के लिए तलब करेंगे, तो हम उस सूरत में अपनी जान और अपने मुल्क की रक्षा के लिए उपाय कर रखते। आप जानते हैं हम लोग बलूची हैं, बनिए नहीं हैं, जिन्हें आप आसानी से डरा लें। × × ×'

"कप्तान ईस्टविक ने ये सब बातें शान्ति से सुनीं और फ़ारसी तथा अरबी कहावतों में संक्षिप्त उत्तर दिए और कहा—'दोस्तों को ज़रूरत के समय अपने दोस्तों की मदद करनी चाहिए।' मीर नूरमोहम्मद ने मुस्करा कर अपने भाइयों से बलूची ज़बान में कुछ कहा × × × फिर आह भर कर कप्तान ईस्टविक से कहा—'आप 'दोस्त' शब्द का जिन माइनों में उप-

योग करते हैं उसे मैं चाहता हूँ कि मैं समझ सकता। हम आपकी इस समय की माँगों का फ़ौरन् फ़ैसला नहीं कर सकते।"*

इसके बाद सिन्ध के अमीरों को वश में करने के लिए अङ्गरेज़ी सेना ने सिन्धी प्रजा को लूटना मारना और उन पर तरह तरह के अत्याचार करना शुरू किया। इस लूट मार का उद्देश शायद अमीरों को यह दर्शाना था कि यदि मित्रता के तौर पर आपने कम्पनी को सहायता न दी तो मजबूर कम्पनी की सेना प्रजा से अपनी आवश्यकताओं को पूरा करेगी।

देश भर में अब स्थान स्थान पर अङ्गरेज़ अफ़सरों ने बलूची प्रजा के साथ जिस तरह के अत्याचार किए, जिस प्रकार निर्दोष बलूची लड़कों के लम्बे बाल एक दूसरे में बाँध कर निर्दयता के साथ अपनी बन्दूक़ों की गोलियों से उनके सिरों के भेजों को निकाल बाहर किया, उस सब की रोमाञ्चकारी कहानी सेना के अङ्गरेज़ अफ़सरों के लिखे हुए बयानों में मौजूद है।†

अन्त में अपने और विशेष कर अपनी प्रजा के इन असह्य कष्टों से विवश होकर और सुलह की इच्छा से जुलाई सन् १८३९ में सिन्ध के अमीरों ने नए सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। अनन्त लूट का माल और २१ लाख नक़द युद्ध के खर्चे के लिए लेकर अङ्गरेज़ी सेना आगे बढ़ी।

---

* *Autobiography of Lutfullah*, pp. 277-279, 294-296.

† *Narrative of the Campaign of the Army of Indus in Sindh and Cabul, in 1838-39*, by P. H. Kennedy, 2 vols.

इसके बाद अङ्गरेज़ी सेना अफ़ग़ानिस्तान पहुँची। थोड़े ही दिनों में केवल अपनी साज़िशों के प्रताप अफ़ग़ानिस्तान के अनेक सरदारों को अपनी ओर फोड़ कर, शाहशुजा के नाम पर अङ्गरेज़ों ने एक बार काबुल पर क़ब्ज़ा कर लिया। शाहशुजा काबुल के तख़्त पर बैठा दिया गया और दोस्तमोहम्मद खाँ को क़ैद करके भारत की ओर रवाना कर दिया गया।

जिस उद्देश को सामने रख कर अङ्गरेज़ों ने अफ़ग़ानिस्तान में प्रवेश किया था वह ज़ाहिरा पूरा होगया। किन्तु अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर युद्ध समाप्त नहीं हुआ। अङ्गरेज़ों की प्रारम्भिक सफलता का कारण केवल यह था कि उन्होंने वहाँ के अनेक सरदारों और बहुत सी प्रजा को, झूठे वादे करके तथा शाहशुजा को सामने रख कर, अपने पक्ष में कर लिया था। जो पक्ष अङ्गरेज़ों और शाहशुजा दोनों के विरुद्ध था, उसने दोस्तमोहम्मद खाँ के वीर पुत्र अकबर खाँ के अधीन बराबर दो वर्ष तक युद्ध जारी रक्खा। इस अरसे में अङ्गरेज़ अधिकारियों की दुरङ्गी चालों, उनके अत्याचारों और दुराचारों को देख कर धीरे धीरे उस पक्ष का हृदय भी अङ्गरेज़ों से फिर गया जो आरम्भ में अङ्गरेज़ों और शाहशुजा के पक्ष में हो गया था।

अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर अङ्गरेज़ों के अत्याचारों के विषय में स्वयं पण्डित मोहनलाल ने, जो उस समय अङ्गरेज़ों के साथ था और उनका एक खास आदमी था, अपनी पुस्तक 'लाइफ़ ऑफ़ दोस्तमोहम्मद खाँ' में साफ़ साफ़ लिखा है कि अङ्गरेज़ों ने राज-

शासन न खुले अपने हाथों में लिया और न शाहशुजा के सुपुर्द किया। ऊपर से दिखाने के लिए उन्होंने तख्त शाहशुजा को दे दिया, किन्तु भीतर ही भीतर वे सल्तनत की छोटी सी छोटी बातों में भी सन्धिपत्र के विरुद्ध हस्तक्षेप करते रहे। परिणाम यह हुआ कि शाहशुजा और उसके आदमी तक अङ्गरेज़ों से असन्तुष्ट हो गए। इसके अतिरिक्त मोहनलाल लिखता है कि अङ्गरेज़ों ने वहाँ के विविध सरदारों के साथ जो गम्भीर वादे किए थे उनमें से एक को भी पूरा न किया। अङ्गरेज़ अफ़सरों की दस्तख़ती चिट्ठियाँ इन तमाम सरदारों के पास मौजूद थीं, किन्तु उनकी ज़रा भी परवा न की गई। परिडत मोहनलाल के शब्द हैं कि—"वास्तव में हमारे अपने वादों को तोड़ने और अपने राजनैतिक व्यवहार में लोगों को धोखा देने की मिसालें, जिनका मुझे पता है, वे इतनी अधिक हैं कि उन्हें एक सिलसिले में जमा कर सकना कठिन है।"*

वास्तव में अङ्गरेज़ उस समय अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर ठीक वही खेल खेलना चाहते थे जो प्लासी के संग्राम के समय वे बङ्गाल में सफलता के साथ खेल चुके थे। दोस्तमोहम्मद ख़ाँ काबुल का सिराजुद्दौला था और शाहशुजा उस देश का मीर जाफ़र था। क्लाइव के मुक़ाबले में इस समय अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर कम्पनी

---

* "There are, in fact, such numerous instances of violating our engagements and deceiving the people in our political proceedings, within what I am acquainted with, that it would be hard to assemble them in one series."—*Life of Dost Mohammad Khan*, pp. 208, 209.

सरकार का प्रतिनिधि विलियम मैकनॉटन था, जो अपनी रीति नीति में ठीक क्लाइव का अनुकरण करने का प्रयत्न कर रहा था।

मैकनॉटन और उसके साथियों ने अपनी साज़िशों द्वारा अफ़-ग़ानिस्तान के लोगों में सदा के लिए फूट डालने का भरसक प्रयत्न किया। इस काम के लिए काशमीरी पण्डित मोहनलाल उनके हाथों में एक अत्यन्त उपयोगी यन्त्र साबित हुआ। इतिहास-लेखक के लिखता है—

"मालूम होता है कि मुन्शी मोहनलाल में देशद्रोही पैदा करने की असाधारण योग्यता थी, उसकी इस योग्यता की दमक युद्ध के अन्त तक फीकी नहीं पड़ी।"*

मोहनलाल का मुख्य कार्य था रिशवतें देकर अफ़ग़ान सरदारों को अपने देश के विरुद्ध फोड़ना, अफ़ग़ानियों में फूट डालना, शिया और सुन्नियों को एक दूसरे से लड़ाना और जो सरदार अङ्गरेज़ों के हाथों में न आवें, धन खर्च करके उन सब की गुप्त हत्याओं का प्रबन्ध करना। अङ्गरेज़ अफ़सर लेफ़्टेनेण्ट जॉन कोनोली ने ५ नवम्बर सन् १८४१ को बालाहिसार के क़िले से मोहनलाल के नाम निम्नलिखित पत्र लिखा—

"क़ज़िलबाश सरदारों, शीरीनख़ाँ, नायबशरीफ़, और शिया मज़हब के तमाम सरदारों से कहो कि विद्रोहियों के विरुद्ध हमसे मिल जायँ।

---

* "The Munshi (Mohanlal) seems to have been endowed with a genius for traitor-making, the lustre of which remained undimmed to the very end of the war."—*History of the Afghan War*, by Kaye, vol. i, p. 459.

कप्तान जॉन कॉनोली (अफ़ग़ान वेश में)

[मोहनलाल की 'लाइफ़ ऑफ़ अमीर दोस्तमुहम्मद ख़ाँ' से]

ख़ान शीरीन को आप एक लाख रुपए देने का वादा कर सकते हैं, इस शर्त पर कि वह विद्रोहियों को मार डाले या गिरफ़्तार कर ले; और तमाम शियाओं को हथियार देकर उन्हें लेकर फ़ौरन् तमाम विद्रोहियों पर हमला करे। शियाओं के लिए ख़ैरख़्वाही दिखाने का यही वक्त है। जो सरदार हमारी तरफ़ झुके हुए हैं उनसे कहिए कि वे (अङ्गरेज़) एलची के पास अपनी ओर से वाइज़्ज़त एजण्ट भेज दें। कोशिश कीजिए और विद्रोहियों के अन्दर 'निफ़ाक़' (फूट) फैला दीजिए। आप जो कुछ करें, मुझसे सलाह कर लें और मुझे अक्सर लिखते रहें।

"मुख्य मुख्य विद्रोही सरदारों में से हर एक के सिर के लिए मैं दस दस हज़ार रुपए देने का वादा करता हूँ।"*

मालूम होता है, मुन्शी मोहनलाल काफ़ी चालाक था। वह यह चाहता था कि अङ्गरेज़ एलची मैकनॉटन के क़लम से

---

* "Tell the Kuzzil Bash chiefs, Shereen Khan, Nayab Sheriff, in fact, all the chiefs of Shiyah persuasion, to join against the rebels. You can promise one lakh of rupees to Khan Shereen on the condition of his killing and seizing the rebels and arming all the Shiyas, and immediately attacking all rebels. This is the time for the Shiyas to do good service. Tell the chiefs who are well disposed, to send respectable agents to the Envoy. Try and spread "Nifak" among the rebels. In everything that you do consult me, and write very often.

"I promise ten thousand rupees for the head of each of the principal rebel chiefs."—Kaye's *History of the Afghan War*, vol i, p. 202.

भी यह बात स्पष्ट करा ली जाय। अङ्गरेज़ एलची के नाम उसने एक पत्र में लिखा—

"लेफ़्टेनेण्ट कोनोली के पत्र से मैं यह नहीं समझ सका कि विद्रोहियों को किस तरह क़त्ल किया जाय, किन्तु जिन लोगों को मैंने अब इस काम के लिए नियुक्त किया है वे वादा करते हैं कि वे इन लोगों के घरों में जाकर ऐसे मौक़ों पर, जब वे अकेले हों, उनके सिर काट डालेंगे।"

लिखा है कि सब से पहले सरदार अब्दुल्ला ख़ाँ और मीर मसजिद जी को इन गुप्त हत्यारों की कटारों का शिकार बनाया गया।

केवल इतना ही नहीं, वरन् इन दो वर्ष में अङ्गरेज़ राजदूतों और अङ्गरेज़ अफ़सरों की घृणित पाशविक वृत्तियों ने अफ़ग़ान भले घरों के अन्दर त्राहि त्राहि मचा दी। अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक सर जॉन के लिखता है—

"हमारे अङ्गरेज़ अफ़सर उन प्रलोभनों को भी न जीत सके, जिनका जीतना कि सबसे अधिक कठिन है। काबुल की स्त्रियों के आकर्षणों का वे मुक़ाबला न कर सके। अफ़ग़ानों को अपनी औरतों की इज़्ज़त का बड़ा ज़बरदस्त ख़याल रहता है; और काबुल के अन्दर इस तरह की काररवाइयाँ की गईं, जिनके कारण वे लोग शरम से पानी पानी हो गए और बदले के लिए उतारू हो गए। × × × पूरे दो साल तक यह शरम काबुलियों के दिलों में आग की तरह धधकती रही; कुछ प्रभावशाली और प्रसिद्ध आदमियों के घरों की भी इस प्रकार इज़्ज़त ली गई। उन्होंने शिकायतें कीं, किन्तु व्यर्थ। यह कलुषित कार्य खुले किया जा रहा था, सब पर प्रकट था और

प्रसिद्ध था। इसका कोई चारा न था। पाप कम होता दिखाई न दिया। बल्कि उस समय तक जारी रहा जब तक कि वह असह्य न हो गया। तब अत्याचार-पीड़ितों ने देखा कि हमारे दुख का एक मात्र इलाज हमारे अपने हाथों में है। इस दुखकर घटना को केवल इन मोटे शब्दों में बयान कर देना ही काफ़ी है।"*

अफ़ग़ान भोले थे। वे इन विदेशियों के चरित्र को न समझते थे। शुरू में वे उनकी साज़िशों के चक्कर में फँस गए। किन्तु वे वीर थे, उनमें आत्माभिमान था। वे एक सुसङ्गठित क़ौम थे। उनके राष्ट्रीय चरित्र में अभी तक वे घातक दोष उत्पन्न होने न पाए थे जिनके कारण उनसे कहीं अधिक प्राचीन और कहीं अधिक सभ्य

---

* "The temptations which are most difficult to withstand, were not withstood by our English officers. The attractions of the women of Cabul they did not know how to resist. The Afghans are very jealous of the honour of their women; and there were things done in Cabul which covered them with shame and roused them to revenge. . . . For two long years, now had this shame been burning itself into the hearts of the Cabulies; and there were some men of note and influence among them who knew themselves to be thus wronged, complaints were made; but they were made in vain. The scandal was open, undisguised, notorious. Redress was not to be obtained. The evil was not in course of suppression. It went on till it became intolerable and the injured then began to see that the only remedy was in their own hands. It is enough to state broadly this painful fact."—Kaye's *History of the Afghan War*, vol. i, pp. 143, 144.

भारतवासी अपने प्यारे देश की आज़ादी से हाथ धो चुके थे। अफ़ग़ानों ने अब अच्छी तरह देख लिया कि इन विदेशियों के हाथों हमें सिवाय दग़ा, बेईमानी, लूट, हत्या और अपनी स्त्रियों के सतीत्वनाश के और कुछ न मिल सका। उनकी आँखें खुल गईं। विदेशियों के चरित्र को अब वे पूरी तरह समझ गए। अपनी क़ौमी आज़ादी के साथ साथ क़ौमी इज़्ज़त तक का उन्हें निकटवर्ती भविष्य में ख़ात्मा दिखाई देने लगा। उनका ख़ून खौलने लगा। वे बदले के लिए कटिबद्ध हो गए।

अफ़ग़ानियों ने अब एक दिल होकर अङ्गरेज़ों को अपने देश से बाहर निकाल देने का सङ्कल्प कर लिया। वे समझ गए कि शाहशुजा हमारी समस्त आपत्तियों का मूल कारण है। शाहशुजा को पता लग गया। वह डर गया। उसने फिर एक बार काबुल से भाग कर भारत में आश्रय लेने का इरादा किया। किन्तु इसी बीच ५ अप्रेल सन् १८४२ को एक जोशीले अफ़ग़ान ने अपनी बन्दूक़ से उस अफ़ग़ानी मीर जाफ़र के पापमय जीवन का अन्त कर दिया।

दूसरा मनुष्य, जिससे अफ़ग़ानी इस समय हद दरजे की घृणा करने लगे थे, अङ्गरेज़ राजदूत बर्न्स था। अफ़ग़ानों ने देख लिया कि जिस बर्न्स की अफ़ग़ान बादशाह और वहाँ की जनता ने इतनी ज़बरदस्त ख़ातिर की थी वह वास्तव में एक जासूस था। उसने अफ़ग़ान क़ौम के साथ विश्वासघात किया। एक दिन दिन-दहाड़े कुछ अफ़ग़ानियों ने बर्न्स के टुकड़े टुकड़े कर डाले।

तीसरा मनुष्य, जो कि अफ़ग़ानिस्तान का साहब बनना चाहता था, अङ्गरेज़ एलची मैकनॉटन था। मैकनॉटन को शुरू में यह पता न था कि अफ़ग़ानिस्तान बङ्गाल न था। अब हवा बिगड़ी हुई देख कर मैकनॉटन ने नए गवरनर-जनरल लॉर्ड एलेनब्रु की इजाज़त से दोस्तमोहम्मद ख़ाँ के बेटे अकबर ख़ाँ से यह वादा कर लिया कि हम दोस्तमोहम्मद ख़ाँ को फिर वापस अफ़ग़ानिस्तान लाकर यहाँ के तख़्त पर बैठा देंगे। इस अहदनामे पर मैकनॉटन के दस्तख़त तक होगए। इस पर भी मैकनॉटन के दिल से दग़ा न गई। उसने अकबर ख़ाँ को एक पत्र लिखा, जिसमें अपनी मित्रता का विश्वास दिलाते हुए लिखा कि मैं आप से मिलना चाहता हूँ। इसी पत्र के अन्त में उसने अकबर ख़ाँ को सलाह दी कि आपके अमुक अमुक सरदार आपके साथ दग़ा करने वाले हैं, आप उनका ख़ात्मा कर डालिए। ठीक उसी समय मैकनॉटन ने उन सरदारों को अलग अलग पत्र लिखे, जिनमें उन्हें अकबर ख़ाँ के विरुद्ध भड़काने की कोशिश की। अकबर ख़ाँ ने पत्र पाते ही अपने समस्त सरदारों को जमा किया। इनमें वे लोग भी शामिल थे, जिनके विरुद्ध मैकनॉटन ने अकबर ख़ाँ को आगाह किया था। इन सरदारों के सामने अकबर ख़ाँ ने मैकनॉटन का पत्र रख दिया। उन सरदारों के हाथों में भी वे पत्र मौजूद थे जो मैकनॉटन ने उनके नाम भेजे थे। इन लोगों ने ये पत्र भी अपने देश भाइयों के सामने पेश कर दिए। अन्त में सब लोग मैकनॉटन के इस छल को देख कर आश्चर्य और क्रोध से भर गए।

अकबर ख़ाँ उस समय चुप रहा। बाद में शीघ्र ही उसने मैकनॉटन की प्रार्थना के अनुसार मैकनॉटन को मुलाक़ात के लिए बुलाया। किन्तु मालूम होता है कि मैकनॉटन इस समय अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर अङ्गरेज़ों के सब से बड़े शत्रु मोहम्मद अकबर ख़ाँ की हत्या की गुप्त योजना कर रहा था।

लॉर्ड एलेनब्रु ने ५ अक्तूबर सन् १८४२ को मलका विक्टोरिया के नाम एक पत्र लिखा, जिसमें स्पष्ट लिखा है कि उन दिनों गवरनर-जनरल ने यह एलान कर दिया था कि जो मनुष्य अकबर ख़ाँ का सिर काट कर लाएगा उसे एक बहुत बड़ी रक़म नक़द बतौर इनाम के दी जायगी। निस्सन्देह इस एलान की सूचना मैकनॉटन को मिल चुकी थी। मैकनॉटन जब अकबर ख़ाँ से मिलने गया तो अपने कुछ सिपाही छिपा कर साथ ले गया। इन सिपाहियों को उसने अकबरख़ाँ के ख़ेमे के बाहर घात में छिपे रहने की आज्ञा दी और यह हुक्म दे दिया कि एक ख़ास इशारा पाते ही तुम लोग फ़ौरन् अपने गुप्त स्थानों से निकल कर अकबर ख़ाँ पर टूट पड़ना। जिस समय कि मैकनॉटन और अकबर ख़ाँ में बातचीत हो रही थी और अकबर ख़ाँ मैकनॉटन से उसके दुरङ्गी पत्रों का उद्देश पूछ रहा था, अकस्मात् एक अफ़ग़ान दौड़ता हुआ अकबर ख़ाँ के सामने आया। आते ही उसने अकबर ख़ाँ को घात में छिपे हुए अङ्गरेज़ी सिपाहियों का समाचार दिया। इस पर अकबर ख़ाँ और मैकनॉटन दोनों खड़े होगए। कुछ बात चीत हुई। पहली गोली मैकनॉटन ने चलाई। वार ख़ाली गया। दूसरा वार

मोहम्मद अकबर ख़ाँ

[From the "Life of Amir Dost Mohammed Khan," by Mohan Lal. Vol. I, London 1846.]

अकबर ख़ाँ का हुआ और मैकनॉटन अपने घृणित पापों के प्राय-श्चित्त रूप उसी ख़ेमे के अन्दर गिर कर ढेर होगया।*

इन घटनाओं के होते हुए भी अनेक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक लिखते हैं कि अकबर ख़ाँ ने दग़ा करके मैकनॉटन को मार डाला।

इस प्रकार अफ़ग़ानियों की राष्ट्रीय आपत्तियों के तीन मुख्य कर्ता शाहशुजा, बर्न्स और मैकनॉटन तीनों का अन्त हुआ। इसके बाद और असंख्य अङ्गरेज़ों को शीघ्र ही अफ़ग़ानी तलवारों के घाट उतरना पड़ा। बाक़ी की अङ्गरेज़ी सेना ने अकबर ख़ाँ से प्रार्थना की कि हमें भारत लौटने की इजाज़त दी जाय और वादा किया कि हम यहाँ से जाते ही तुरन्त दोस्तमोहम्मद ख़ाँ को अफ़ग़ा-निस्तान लौटा देंगे। अकबर ख़ाँ ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। कुछ अङ्गरेज़ अफ़सर अपनी स्त्रियों सहित बतौर बन्धकों के काबुल में रख लिए गए। शेष बची खुची अङ्गरेज़ी सेना ऐन कड़ी सरदी के अन्दर भारत की ओर लौटी। यह यात्रा इन लोगों के लिए युद्ध के मैदान की निस्बत भी कहीं अधिक नाशकर साबित हुई। मार्ग भर में असंख्य अफ़ग़ानी और बलूची दो वर्ष पूर्व अङ्गरेज़ी सेना के अत्याचारों का अनुभव प्राप्त कर चुके थे। इन लोगों ने अब जी खोल कर बदला लिया। अनेक को मार्ग की सरदी और यात्रा के थकान के कारण सरहद की पहाड़ियों में सदा के लिए विश्राम

---

* *Nairang-i-Afghanistan* by Syed Fida Husain, Reviewed in the Modern Review for Feb. 1907, p. 224.

लेना पड़ा। जितने पुरुष, स्त्री और बच्चे काबुल से चले थे, अथवा यह कहना चाहिए कि सोलह हज़ार की उस विशाल सेना में से, जो अफ़ग़ानिस्तान विजय करने के लिए भारत से निकली थी, केवल एक व्यक्ति डॉक्टर ब्राइडन थका माँदा जलालाबाद तक बच कर ज़िन्दा पहुँचा।

इसी बीच फ़रवरी सन् १८४२ में लॉर्ड ऑकलैण्ड की जगह लॉर्ड एलेनब्रु भारत का गवरनर-जनरल नियुक्त होकर कलकत्ते पहुँच चुका था। शाहशुजा, बर्न्स और मैकनॉटन तीनों की हत्याएँ लॉर्ड एलेनब्रु ही के शासन-काल में हुईं।

शासन नीति में लॉर्ड एलेनब्रु के आदर्श वे दोनों वेल्सली भाई थे, जिनमें से एक गवरनर-जनरल मार्किस ऑफ़ वेल्सली के नाम से और दूसरा जनरल वेल्सली—और बाद में ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन—के नाम से ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में सदा के लिए प्रसिद्ध हैं। अफ़ग़ान युद्ध के वृत्तान्त से हट कर हम एक क्षण के लिए एलेनब्रु के विचार दर्शा देना चाहते हैं। गवरनर-जनरल नियुक्त होने से ९ वर्ष पहले ५ जुलाई सन् १८३३ को लॉर्ड एलेनब्रु ने इङ्गलिस्तान के हाउस ऑफ़ लॉर्डस में वक्तृता देते हुए कहा था—

"कोई मनुष्य, जिसका होश क़ायम है, हिन्दोस्तान के अन्दर राजनैतिक और सैनिक शक्ति, हिन्दोस्तानियों के हाथों में देने की तजवीज़ नहीं कर सकता। × × ×

"हिन्दोस्तान के अन्दर हमारा अस्तित्व ही इस बात पर निर्भर है कि उस देश में देशवासियों को सैनिक और राजनैतिक अधिकार से बिलकुल

डॉक्टर ब्राइडन

अकेला अंगरेज़ जो १६,००० की सेना में से जिन्दा बचकर जलालाबाद के फाटक तक पहुँचा

[चित्रकार—लेडी बटलर । विक्टोरिया-मेमोरियल, कलकत्ता के क्यूरेटर की कृपा द्वारा]

दूर रक्खा जाय। × × × हमने भारतीय साम्राज्य तलवार से जीता है और तलवार से ही हमें उसे क़ायम रखना होगा। × × ×"*

इन वाक्यों से तथा वेलसली बन्धुओं के नाम लॉर्ड एलेनब्रु के अनेक पत्रों से भारतवासियों के प्रति लॉर्ड एलेनब्रु के विचार और भाव स्पष्ट विदित हैं। इङ्गलिस्तान छोड़ने से पहले १५ अक्तूबर सन् १८४१ को ऐलेनब्रु ने ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन के नाम एक पत्र लिखा, जिससे पता चलता है कि उसकी मुख्य नजर उस समय पञ्जाब और नैपाल इन दो राज्यों के ऊपर थी। वह जिस तरह बन पड़े इन दोनों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लेने के लिए उत्सुक था। उसके अनेक पत्रों से यह भी साबित है कि भारतीय नरेशों के साथ जब चाहे सन्धियों को तोड़ देना वह इतना ही न्याय्य समझता था जितना कि उससे पूर्व का कोई भी और गवरनर-जनरल।

अफ़ग़ान युद्ध की हारों और विपत्तियों का प्रभाव भारत के नरेशों और भारतीय प्रजा के ऊपर अङ्गरेजों के लिए हितकर न था। लॉर्ड एलेनब्रु ने १७ मई सन् १८४२ को ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन के नाम एक पत्र में गर्व के साथ स्वीकार किया है कि इस

---

* "No man in his senses would propose to place the political and military power in India in the hands of the natives. . . .

"Our very existence in India depended upon the exclusion of the natives from military and political power in that country. . . . We had won the Empire of India by the sword, and we must preserve it by the same means, . . ."—Lord Ellenborough in the House of Lords, July 5th, 1833.

अहितकर प्रभाव को दूर करने के लिए मैंने भारतवर्ष भर में एलानों के ज़रिए झूठी ख़बरों के फैलाने में तनिक भी सङ्कोच नहीं किया। इस तरह के झूठे एलान विशेषकर हैदराबाद दक्षिण में, सिन्ध में, नैपाल में, सागर ज़िले में और बुन्देलखण्ड में प्रकाशित कराए गए।

पहले अफ़ग़ान युद्ध से सम्बन्ध रखने वाली लॉर्ड एलेनब्रु के समय की एक और घटना उल्लेख करने योग्य है। यूरोप के अन्दर लगभग एक हज़ार वर्ष से मुसलमानों और ईसाइयों में युद्ध चले आते थे। लॉर्ड एलेनब्रु मुसलमानों को अङ्गरेज़ों का विशेष शत्रु समझता था। उसका विचार था कि मुसलमान कभी अङ्गरेज़ों का साथ न देंगे। इसलिए वह हिन्दुओं को ख़ुश करके उन्हें मुसलमानों के विरुद्ध अङ्गरेज़ों की ओर मिलाए रखना चाहता था। अफ़ग़ान युद्ध के समय हिन्दुओं को प्रसन्न करने का लॉर्ड एलेनब्रु को एक बड़ा सुन्दर अवसर हाथ आया।

सोमनाथ का फाटक और युद्ध का अन्त

ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में महमूद ग़ज़नवी सोमनाथ के मन्दिर के फाटक के दो सुन्दर जड़ाऊ किवाड़ उखड़वाकर अपने साथ ग़ज़नी ले गया था। इन किवाड़ों की चित्रकारी इतनी सुन्दर थी कि वे बाद में महमूद के मक़बरे पर लगा दिए गए। लॉर्ड एलेनब्रु ने हुक्म दिया कि ये प्राचीन किवाड़ ग़ज़नी से भारतवर्ष लाकर एक शानदार जुलूस के साथ समस्त हिन्दोस्तान में फिराए जायँ, और

अन्त में सोमनाथ के मन्दिर में पहुँच कर अपनी प्राचीन जगह पर फिर से क़ायम कर दिए जायँ।

एलेनब्रु की आज्ञा पालन की गई। सोमनाथ के किवाड़ अफ़ग़ानिस्तान से भारत लाए गए। तमाम पञ्जाब में से इन किवाड़ों का शानदार जुलूस निकाला गया। लॉर्ड एलेनब्रु ने १६ नवम्बर सन् १८४२ को भारत के समस्त हिन्दू सरदारों, राजाओं, महाराजाओं और समस्त हिन्दू प्रजा के नाम एक विचित्र एलान प्रकाशित किया, जिसमें अङ्गरेज़ सरकार को हिन्दुओं और हिन्दू धर्म का विशेष समर्थक वतलाया और उन्हें यह सूचना दी कि सोमनाथ के किवाड़ फिर से उसी मन्दिर में लाकर लगा दिए जाएँगे। तथापि जो किवाड़ अफ़ग़ानिस्तान से आए थे, वे आगरे से आगे न वढ़ सके।

इसका कारण यह था कि उस समय के अङ्गरेज़ शासकों में दो विचारों के लोग मौजूद थे। एक वे जो लॉर्ड एलेनब्रु के समान मुसलमानों की परवा न करके हिन्दुओं को अपनी ओर मिलाए रखने के पक्ष में थे; दूसरे वे, जो मुसलमानों को इस प्रकार नाराज़ कर लेना भी अङ्गरेज़ी राज्य के लिए हितकर न समझते थे। लॉर्ड मैकॉले इस दूसरे पक्ष का था। सोमनाथ के इन किवाड़ों के विषय में १८ जनवरी सन् १८४३ को लॉर्ड एलेनब्रु ने ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन को लिखा—

"मुझे हर तरह से विश्वास है कि सोमनाथ के मन्दिर के किवाड़ फिर से स्थापन करने के एलान से असंख्य हिन्दू जनता प्रसन्न तथा सन्तुष्ट हो

गई है। मुझे कोई वजह यह मानने की नज़र नहीं आती कि मुसलमान इससे नाराज़ हुए हों ; किन्तु मैं इस विश्वास की ओर से अपनी आँखें बन्द नहीं कर सकता कि मुसलमान जाति जड़ से ही हमारी दुश्मन है, इसलिए हमारी सच्ची नीति हिन्दुओं को अपनी ओर मिलाए रखने की होनी चाहिए, × × ×।"*

इसी तरह के विचार लॉर्ड एलेनब्रु के दूसरे पत्रों में भी भरे हुए हैं, अनेक पत्रों से यह भी साफ़ साफ़ मालूम होता है कि वह औरङ्गज़ेब जैसे मुसलमानों के कृत्यों की याद दिला दिला कर उन्हें हिन्दू धर्म का शत्रु, और अङ्गरेज़ सरकार को हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति का रक्षक दिखलाना चाहता था।

सोमनाथ के किवाड़ अभी आगरे तक भी पहुँचने न पाए थे कि कई अङ्गरेज़ों ने एलेनब्रु की इस काररवाई के विरुद्ध शोर मचाना शुरू कर दिया। लॉर्ड मैकॉले ने इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट में वक्तृता देते हुए कहा—

"मुसलमानों की संख्या कम है, किन्तु उनका महत्व उनकी संख्या के हिसाब से कहीं अधिक है ; कारण यह है कि मुसलमान जाति संयुक्त,

---

* "I have every reason to think that the restoration of the gates of the temple of Somnath has conciliated and gratified the great mass of the Hindoo population. I have no reason to suppose that it has offended the Mussalmans, but I can not close my eyes to the belief that, that race is fundamentally hostile to us, and therefore our true policy is to conciliate the Hindoos, . . ." —Lord Ellenborough to the Duke of Wellington, January 18, 1843.

जोशीली, महत्वाकांक्षी और युद्धप्रेमी है। × × × जो मनुष्य हिन्दोस्तान के मुसलमानों के विषय में कुछ भी जानकारी रखता है उसे इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि इस प्रकार उनके धर्म का अपमान करने से उनमें अत्यन्त भयङ्कर क्रोध भड़क उठेगा।"*

लॉर्ड एलेनब्रु पर यह इलज़ाम लगाया गया कि उसने मूर्ति-पूजा का समर्थन करके ईसाई धर्म को कलङ्कित किया। वास्तव में न लॉर्ड एलेनब्रु को हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा से विशेष प्रेम था और न लॉर्ड मैकॉलि को मुसलमानों के धर्म से। किन्तु उस समय से ही भारत के हिन्दू और मुसलमानों को एक दूसरे से लड़ाए रखना अङ्गरेज़ शासकों की भारतीय नीति का एक विशेष अङ्ग रहा है।

लॉर्ड मैकॉले जैसों के विरोध के कारण लॉर्ड ऐलेनब्रु की बात न चल सकी। हम ऊपर लिख चुके हैं कि सोमनाथ के मन्दिर के किवाड़ आगरे में रोक दिए गए।

पाठकों को आश्चर्य होगा कि जब कि अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने वाली समस्त अङ्गरेज़ी सेना में से केवल एक अङ्गरेज़ ज़िन्दा बच कर हिन्दोस्तान लौट सका, यह प्राचीन किवाड़ अफ़-ग़ानिस्तान से यहाँ तक किस प्रकार आ सके। निस्सन्देह इस

---

* "The Mohammedans are a minority, but their importance is much more than proportioned to their number: for they are an united, a zelous, an ambitious, a war-like class. . . . Nobody who knows anything of the Mohammedans of India can doubt that this affront to their faith will excite their fiercest indignation."—Lord Macaulay, March 1843.

सम्बन्ध में सब से अधिक चमत्कारिक बात यही है कि जो किवाड़ इतनी धूमधाम के जुलूस के साथ आगरे लाए गए, वह सोमनाथ के मन्दिर के किवाड़ थे ही नहीं। यह समस्त ढोंग और बनावटी किवाड़ों का जुलूस केवल एक राजनैतिक छल था। कम्पनी के शासकों की कूटनीति का इससे सुन्दर उदाहरण और क्या मिल सकता है?

इसके बाद प्रथम अफ़ग़ान युद्ध की केवल थोड़ी सी कहानी बाक़ी रह जाती है। युद्ध का खर्च दो वर्ष से कम्पनी सरकार के लिए असह्य हो रहा था। १५ सितम्बर सन् १८४१ को लॉर्ड एलेनब्रु ने मलका विक्टोरिया के नाम एक पत्र में लिखा कि अफ़ग़ान युद्ध का खर्च इस समय कम्पनी सरकार को साढ़े बारह लाख पाउण्ड (अर्थात् लगभग सवा करोड़ रुपए) सालाना देना पड़ रहा है। इसके अतिरिक्त लगभग साढ़े ग्यारह लाख पाउण्ड सालाना उस समय सिन्धु नदी के इस पार नई फ़ौजों पर खर्च करना पड़ता था। ब्रिटिश भारतीय सरकार के बजट में सन् १८३९-४० में २४ लाख पाउण्ड का घाटा हुआ, जो सन् १८४०-४१ में बीस लाख पाउण्ड और बढ़ गया।

तथापि एशिया के अन्दर कम्पनी की सेना की इस ज़बरदस्त ज़िल्लत को धोना आवश्यक था। दोस्तमोहम्मद खाँ अभी तक भारत में क़ैद था और अनेक अङ्गरेज़ बन्धक अफ़ग़ानिस्तान में मौजूद थे। युद्ध बन्द करने के लिए अफ़ग़ानिस्तान के साथ कोई बाज़ाब्ता सन्धि भी न हुई थी।

जनरल पोलक एक नई विशाल सेना सहित अफ़ग़ानिस्तान भेजा गया। अङ्गरेज़ी सेना का व्यवहार अफ़ग़ानिस्तान में फिर कलङ्कर रहा। लॉर्ड एलेनब्रु के नाम ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन के एक पत्र में लिखा है कि काबुल पहुँच कर जनरल पोलक ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि काबुल के मुख्य बाज़ार और वहाँ की दो सुन्दर मसजिदों को आग लगा दी जाय। जनरल पोलक की आज्ञा का पालन किया गया। उसके बाद कहा जाता है, कम्पनी की सेना ने काबुल के नगर को लूटा और कई इमारतों को ज़मीन से मिला दिया।

किन्तु अन्त में अङ्गरेज़ों को फिर एक बार अफ़ग़ानों के हाथों हार स्वीकार करनी पड़ी। अकबर ख़ाँ और उसके अफ़ग़ानियों ने इस बार भी अङ्गरेज़ों के साथ काफ़ी उदारता का व्यवहार किया। सन्धि हो गई। दोस्तमोहम्मद ख़ाँ और उसके साथ के अन्य अफ़ग़ान क़ैदी काबुल पहुँचा दिए गए। दोस्तमोहम्मद ख़ाँ फिर अफ़ग़ानिस्तान के तख़्त पर बैठा। युद्ध के समस्त अङ्गरेज़ बन्धक छोड़ दिए गए। पोलक को अपने शेष आदमियों सहित अफ़ग़ानिस्तान की सरहद छोड़ कर चले आने की इजाज़त मिल गई। इस प्रकार अफ़ग़ानिस्तान की राष्ट्रीय स्वाधीनता को हरने का अङ्गरेज़ों का पहला प्रयत्न निष्फल गया। इतिहास-लेखक सर जॉन के इस युद्ध के परिणाम के विषय में लिखता है—

"एक महान सचाई पाठकों की आँखों के सामने आ जाती है। जब कभी हमारे किसी पाप-कार्य के ऊपर परमात्मा का भारी श्राप होता है

तो हमारे राजनीतिज्ञों की बुद्धिमत्ता मूर्खता साबित होती है, और हमारी सेनाओं की शक्तिमत्ता निर्बलता बन जाती है। क्योंकि सब के कर्मों का फल देने वाला परमात्मा अवश्य हमें भी हमारे पापों का बदला देगा।"*

---

* ". . . The reader recognises one great truth, that the wisdom of our statesmen is but foolishness, and the might of our armies is but weakness, when the curse of God is sitting heavily upon an unholy cause. 'For the Lord God of re-compenses shall surely requite.' "—Kaye's *History of the Afghan War.*
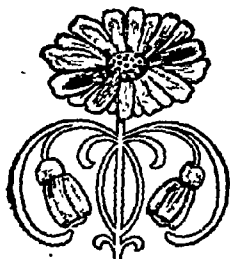
अड़तीसवाँ अध्याय

सिन्ध पर अङ्गरेज़ों का क़ब्ज़ा

सम्राट हुमायूँ के समय से सन् १७४९ तक अर्थात् दो सौ वर्ष से ऊपर सिन्ध भारतीय मुग़ल साम्राज्य का एक सूबा था। सन् १७४० में नादिरशाह ने सिन्ध पर हमला किया। १७४९ में सिन्ध के अमीर दिल्ली सम्राट के स्थान पर अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह को ख़िराज भेजने लगे। इसके बाद लगभग ९० वर्ष तक के अधिकांश समय में सिन्ध के अमीर अपने देश के सर्वथा स्वाधीन शासक बने रहे।

सिन्ध के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सम्बन्ध १८वीं सदी के मध्य में प्रारम्भ हुआ। सन् १७५८ ईसवी में अमीर ग़ुलामशाह कल्होर ने कम्पनी को ठट्टा और औरङ्गबन्दर में कोठियाँ बनाने की इजाज़त दे दी। ठट्टा उस समय सिन्ध के अन्दर कपड़े के व्यवसाय का एक विशेष केन्द्र था। सर हेनरी पॉटिञ्जर लिखता है कि उन दिनों नफ़ीस कपड़ों और लुङ्गियों के बुनने वाले ४०,००० कारीगर ठट्टा में रहते थे, २०,००० अन्य कई प्रकार के कारीगर थे, और

इनके अतिरिक्त ६०,००० महाजन, साहूकार, नाज के व्यापारी तथा अन्य दूकानदार थे। किन्तु कम्पनी की कोठी क़ायम होने के पचास वर्ष के अन्दर अर्थात् सन् १८०९ में ठट्टे की कुल आबादी घटते घटते २०,००० रह गई।*

अमीर ग़ुलामशाह ने कम्पनी को व्यापार के लिए अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्रदान कर दी थीं। किन्तु कम्पनी के एजण्टों का व्यवहार इतना अनुचित होने लगा कि सन् १७७५ में ग़ुलामशाह के बेटे सरफ़राज़ ने कम्पनी की कोठियाँ बन्द करवा दीं। सन् १७९९ में कम्पनी का एक नया एजण्ट नैथन क्रो हैदराबाद पहुँचा। क्रो की प्रार्थना पर उस समय के अमीर फ़तह्अली ख़ाँ ने अङ्गरेज़ों को सिन्ध में व्यापार करने की फिर इजाज़त दे दी। और कराची में क्रो को अपने लिए मकान बनाने की भी अनुमति मिल गई। किन्तु फिर क्रो और उसके गुमाश्तों का व्यवहार सिन्ध के कारीगरों और वहाँ की प्रजा के साथ इतना असह्य हो गया कि सन् १८०२ में क्रो को आज्ञा मिली कि दस दिन के भीतर सिन्ध छोड़ कर चले जाओ।

इसके बाद सन् १८०७ में बम्बई के अङ्गरेज़ गवरनर ने फिर कम्पनी की ओर से एक एलची सिन्ध भेजा। अमीर ग़ुलामअली, अमीर करमअली और अमीर मुरादअली उस समय सिन्ध के शासक थे। सिन्ध के अमीरों में प्रायः यह विचित्र प्रथा चली आती थी कि कई कई भाई मिल कर प्रेम के साथ एक साथ देश पर

* *Sind Gazetteer*, vol, A. p. 116.

शासन करते थे। अङ्गरेज़ एलची की प्रार्थना पर अमीरों ने अब अंङ्गरेज़ कम्पनी के साथ मित्रता की एक सन्धि कर ली, जिसमें लिखा था—

"यह सन्धि पीढ़ी दर पीढ़ी क़यामत के दिन तक क़ायम रहेगी और अङ्गरेज़ सरकार कभी सिन्ध के अमीरों की एक फ़ुट ज़मीन की भी इच्छा न करेगी।"* इत्यादि।

इस सन्धि में लिखा था कि अङ्गरेज़ सरकार और सिन्ध की सरकार दोनों एक दूसरे के शत्रुओं के विरुद्ध एक दूसरे की मदद करेंगे। किन्तु गवरनर-जनरल को यह शर्त पसन्द न थी, इसलिए इस सन्धि पर हस्ताक्षर हुए अभी दो वर्ष भी न हुए थे कि सन् १८०९ में एक दूसरा अङ्गरेज़ स्मिथ सन् १८०७ की सन्धि को रद्द कराने और एक दूसरी सन्धि करने के लिए सिन्ध पहुँचा।

२२ अगस्त सन् १८०९ को अङ्गरेज़ों और सिन्ध के अमीरों के दरमियान फिर एक सन्धि हुई, जिसकी चार धाराएँ इस प्रकार थीं—

१—अङ्गरेज़ सरकार और सिन्ध की सरकार के बीच सदा के लिए दोस्ती (Eternel friendship) क़ायम रहेगी × × × इत्यादि।

२—इन दोनों बादशाहतों के बीच कभी शत्रुता उत्पन्न न होगी।

३—अङ्गरेज़ सरकार और सिन्ध सरकार दोनों एक दूसरे के यहाँ अपने वकील भेजती रहेंगी। और

४—सिन्ध की सरकार सिन्ध में फ़्रान्सीसी क़ौम को बसने न देगी।

---

* *Dry Leaves from Young Egypt*, by W. J. Eastwick M. P., p. 334.

इस दूसरी सन्धि के विषय में कप्तान ईस्टविक, जो बाद में अंङ्गरेज़ कम्पनी की ओर से सिन्ध में असिस्टेण्ट रेज़िडेण्ट नियुक्त हुआ, लिखता है—

"ठीक उस समय जब कि हम अपनी मित्रता और शुभ कामना दर्शाने के लिए सिन्ध के दरबार में अपना एक राजदूत भेज रहे थे, उसी समय हमारा जो राजदूत काबुल गया हुआ था, वह गवरनर-जनरल के सामने यह योजना पेश कर रहा था कि सिन्ध को विजय कर लिया जाय × × × और सिन्ध का इलाक़ा भारतीय ब्रिटिश राज्य में मिला लिया जाय।"*

किन्तु सिन्ध को अङ्गरेज़ी राज्य में मिलाने का अभी समय न आया था। गवरनर-जनरल लॉर्ड मिण्टो ने अपने राजदूत की सलाह को अस्वीकार किया।

सन् १८१६ में अङ्गरेज़ों ने कच्छ पर हमला किया। तीन वर्ष बाद कच्छ पर क़ब्ज़ा कर लिया गया। कच्छ की सरहद सिन्ध से मिली हुई है, इसलिए सिन्ध के साथ फिर नई सन्धि की आवश्यकता अनुभव हुई। सन् १८२० में तीसरी बार सिन्ध के अमीरों के साथ मित्रता की सन्धि की गई।

---

* ". . . at the very moment we were sending an ambassador to the court of Sindh with expressions of friendship and good will, our envoy at Kabul was proposing to the Governor-General to subjugate the country, . . . and incorporate the territory with the British possessions in India."—*Dry Leaves from Young Egypt*, by an Ex-political, p. 243.

हमें इन सन्धियों और अङ्गरेज़ों की ओर से उनके हर बार के उल्लङ्घन को विस्तार से बयान करने की आवश्यकता नहीं है। कप्तान ईस्टविक साफ़ लिखता है—

"हम उस समय तक के लिए नित्यस्थायी मित्रता की क़सम खा लेते थे, जब तक कि हमें देश पर क़ब्ज़ा करने और अपने मित्रों का नाश करने और उन्हें क़ैद कर लेने का सुविधाजनक अवसर न मिल जाय।"*

इसके बाद वह समय आया जब जनवरी सन् १८३१ में सर अलेक्ज़ेण्डर बर्न्स, जो उस समय लेफ़्टेनेण्ट बर्न्स था, महाराजा रणजीतसिंह के लिए उपहार लेकर सिन्ध पहुँचा। ऊपर एक अध्याय में वर्णन किया जा चुका है कि उपहार ले जाने के बहाने बर्न्स और उसको भेजने वालों का गुप्त उद्देश सिन्धु नदी के मार्ग की थाह लेना था। सर जेम्स मैकिण्टॉश लिखता है कि सिन्ध का एक हिन्दू व्यापारी, जिसका नाम दरियाना था, बराबर सिन्ध के अमीरों को आगाह करता रहता था कि अङ्गरेज़ों पर विश्वास न किया जाय और उन्हें मुल्क में घुसने न दिया जाय। वह अमीरों से कहता था—

"इस क़ौम ने जब कभी जिस किसी के साथ शुरू में दोस्ती की, अन्त

---

* ". . . we swore perpetual amity until a convenient opportunity for appropriating the country, and the destruction and imprisonment of our allies."—*Dry Leaves from Young Egypt*, p. 244.

में वे उसके दुश्मन साबित हुए, जिस देश में भी वे अत्यन्त मित्रता की प्रतिज्ञाएँ करते हुए घुसे उसी पर अन्त में उन्होंने क़ब्ज़ा कर लिया।"*

सर जेम्स मैकिण्टॉश इस हिन्दू व्यापारी के विषय में लिखता है कि वह 'एक चालाक कुत्ता'† था।

सिन्ध के अमीर भी बर्न्स की इस सिन्धु-यात्रा पर सन्देह करते थे। वे बर्न्स को इजाज़त देने के विरुद्ध थे। तथापि अमीरों ने एशियाई तरीक़े पर बर्न्स और उसके साथियों की ख़ूब ख़ातिर तवाज़ो की और उन्हें अन्त में जिस प्रकार बहका कर और डरा कर उनकी रज़ामन्दी हासिल कर ली गई, उसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। बर्न्स अपनी यात्रा के वृत्तान्त में लिखता है कि जिस समय वह महाराजा रणजीतसिंह के लिए उपहार लिए हुए अपने जहाज़ों में नदी के ऊपर की ओर चढ़ा चला जा रहा था, एक सिन्धी नदी के किनारे खड़ा हुआ अपने पास के साथी से कहने लगा—

"अफ़सोस! सिन्ध अब जाता रहा, क्योंकि अङ्गरेज़ों ने दरिया का रास्ता देख लिया है, और यही सिन्ध को विजय करने का मार्ग है!"‡

कप्तान ईस्टविक लिखता है—

"यह पता लगा लिया गया कि सिन्धु नदी से जहाज़ आ सकते हैं;

---

* Sir James Mackintosh in his Journal, dated 9th February, 1812.

† "A shrewd dog."

‡ "Alas! Sindh is now lost, since the English have seen the river which is the road to its conquest."—Burnes' *Travels*, vol. iii

सर अलेक्ज़ेण्डर बर्न्स—बोख़ारा की पोशाक में

[From the Life of Amir Dost Mohammad Khan. by Mohan Lal, Vol. I. London 1846.]

अमीरों के जवाहरात को देख कर और जो नज़रें उन्होंने अपने यूरोपियन मेहमानों को भेंट कीं उन्हें देख कर यह भी मालूम हो गया कि सिन्ध के अमीरों के पास ख़ूब धन है।"*

मित्रता बढ़ाने के लिए सन् १८३२ और सन् १८३४ में और नई नई सन्धियाँ की गईं। सिन्धु नदी से अङ्गरेज़ी जहाजों के आने जाने का अधिकार प्राप्त कर लिया गया। सन् १८३४ की सन्धि में लिखा गया—

"दोनों शक्तियाँ, जिनके बीच यह सन्धि हो रही है, प्रतिज्ञा करती हैं कि हम पीढ़ी दर पीढ़ी कभी भी एक दूसरे के इलाक़े को लोभ की दृष्टि से न देखेंगे।"†

इसके बाद २६ जून सन् १८३८ को अङ्गरेज़ कम्पनी, महाराजा रणजीतसिंह और शाहशुजा इन तीनों के बीच एक सन्धि हुई। इस सन्धि का जिक्र पहले अफ़ग़ान युद्ध के सम्बन्ध में किया जा चुका है। सिन्ध के अमीरों से इसमें कोई सलाह नहीं ली गई। तथापि इस सन्धि में ऊपर ही ऊपर यह तय कर लिया गया कि सिन्ध के साथ अङ्गरेज़ जो भी व्यवहार करें शाहशुजा व रणजीतसिंह को कोई एतराज़ न होगा। इस सन्धि के विषय में इतिहास-लेखक सर जॉन के लिखता है—

---

* *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 249.

† "The two contracting powers bound themselves from generation to generation never to look with the eye of covetousness on the possessions of each other."—Ibid p. 249.

"२६ जून सन् १८३८ की उस घड़ी से सिन्ध के अमीरों का सर्वनाश शुरू होता है। उस घड़ी से ही वास्तव में सिन्ध के अमीरों की स्वाधीनता ख़त्म हो जाती है।"

उस समय तक जितनी सन्धियाँ सिन्ध के अमीरों के साथ की जा चुकी थीं वे सब अब रद्द क़रार दी गईं। अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने के लिए अङ्गरेज़ी सेना सिन्ध भेज दी गई। सिन्ध के अमीरों से कहा गया कि इस सेना को अपने देश में से होकर अफ़ग़ानिस्तान जाने दो, कम्पनी के जहाज़ों के लिए जलाने की लकड़ी और मार्ग में सेना के लिए तमाम रसद इत्यादि का प्रबन्ध करो, मार्ग के ख़ास ख़ास क़िले अङ्गरेज़ी सेना के हवाले कर दो, और चूँकि यह युद्ध अफ़ग़ानिस्तान के पदच्युत बादशाह शाहशुजा को फिर से गद्दी पर बैठाने के लिए किया जा रहा है और चूँकि पहले किसी समय सिन्ध अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह को ख़िराज दिया करता था, इस लिए युद्ध के ख़र्च के लिए २१ लाख रुपए नक़द और आयन्दा हमेशा के लिए ३ लाख रुपए प्रति वर्ष तुम अङ्गरेज़ कम्पनी को दिया करो, इत्यादि।

इससे पूर्व सन् १८०९ की सन्धि के समय गवरनर-जनरल स्वीकार कर चुका था कि अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह को सिन्ध के अमीरों से ख़िराज लेने का कोई हक़ नहीं। इसके अतिरिक्त सिन्ध के अमीरों ने इस समय अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह के लिखे हुए दो प्रतिज्ञापत्र पेश किए, जिन पर अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह के दस्तख़त और मोहर मौजूद थी और जिनमें लिखा था कि भविष्य

में सिन्ध के अमीरों से कभी किसी तरह का कोई ख़िराज न लिया जायगा।*

किन्तु इनमें से किसी बात का कोई ख़याल नहीं किया गया। सिन्ध के अमीरों से कहा गया कि अङ्गरेज़ों को इस समय ज़रूरत है और दोस्ती केवल इसी शर्त पर क़ायम रह सकती है कि तुम अङ्गरेज़ों की मदद करो। इस अनुचित व्यवहार पर इतिहास-लेखक सर जॉन के लिखता है—

"और इसी का नाम अङ्गरेज़ों की ईमानदारी है! × × × सबसे पहले अङ्गरेज़ों ने अपने वादों को तोड़ा। उन्होंने सिन्ध के अमीरों को सिखा दिया कि सन्धियों का केवल उस समय तक पालन करना चाहिए जिस समय तक कि उनका पालन करने में फ़ायदा हो। × × × भेड़िये और मेमने के क़िस्से में मेमने को खा जाने के लिए भेड़िये ने जो बहाने गढ़े वे उन बहानों से अधिक चतुराई के न थे जिनका अङ्गरेज़ सरकार ने अमीरों के साथ अपने समस्त व्यवहार में उपयोग किया।"†

जनवरी सन् १८३९ में हैदराबाद के अमीर नूरमोहम्मद ख़ाँ

---

* Blue Book, p. 31.

† "And this is British justice! . . . The British were the first to perpetrate a breach of good faith. They taught the Amirs of Sindh that treaties were to be regarded, only so long as it was convenient to regard them. . . . The wolf in the fable did not show greater cleverness in the discovery of a pretext for devouring the lamb than the British Government has shown in all its dealings with the Amirs."—Kaye, *The Calcutta Review*, vol. i, pp. 220-223

और कप्तान ईस्टविक के बीच इस सम्बन्ध में जो बात चीत हुई उसका वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है।

सिन्ध का राज्य उस समय दो मुख्य भागों में बँटा हुआ था। ऊपर के भाग की राजधानी ख़ैरपुर था। नीचे का हिस्सा हैदराबाद दरबार के शासन में था। दोनों में हैदराबाद के अमीर मुख्य समझे जाते थे। तथापि हैदराबाद के अमीरों और ख़ैरपुर के अमीरों में प्रेम और समानता का व्यवहार था। दोनों एक ही कुल से थे। कप्तान ईस्टविक की बात चीत हैदराबाद के तीनों अमीरों के साथ हुई थी। इसके बाद ख़ैरपुर के अमीर मीर रुस्तम ख़ाँ की बारी आई।

मीर रुस्तम ख़ाँ एक अस्सी वर्ष का बूढ़ा और अत्यन्त शान्ति-प्रिय बलूची नरेश था। हैदराबाद के अमीर, जिसका वह चचा लगता था, उसका बड़ा आदर करते थे। सर अलेक्ज़ेण्डर बर्न्स अपने यात्रा-वृत्तान्त में लिखता है कि अमीर रुस्तम ख़ाँ ने बड़े प्रेम और आदर भाव के साथ बर्न्स और उसके साथियों का स्वागत किया। उसने अपने बूढ़े वज़ीर फ़तहमोहम्मद ख़ाँ गोरी को अस्सी मील, पालकियों, घोड़ों और उपहारों सहित बर्न्स का स्वागत करने के लिए भेजा। तीन सप्ताह तक उसने अङ्गरेज़ एलची को अपनी राजधानी में रोक कर उसकी ख़ूब ख़ातिरदारी की। बड़ी बड़ी दावतें हुईं। मीर रुस्तम ख़ाँ के चरित्र के विषय में सर अलेक्ज़ेण्डर बर्न्स लिखता है कि उसकी बात चीत अत्यन्त मीठी थी, और वह स्वभाव से उदार, सुशील तथा सब पर विश्वास करने वाला मनुष्य था।*

* Burnes' *Travels*, vol. iii.

मीर रुस्तम ख़ाँ के साथ इससे पूर्व अङ्गरेज़ कम्पनी की यह स्पष्ट सन्धि हो चुकी थी कि सिन्धु नदी के दाईं ओर अथवा बाईं ओर अङ्गरेज़ कभी किसी भी स्थान अथवा क़िले पर क़ब्ज़ा करना न चाहेंगे। किन्तु अब अङ्गरेज़ों को अफ़ग़ान युद्ध की सफलता के लिए भक्खर का क़िला लेने की आवश्यकता अनुभव हुई। यह क़िला सिन्धु नदी के बीच में एक टापू पर बना हुआ था। मीर रुस्तम ख़ाँ ने पिछली सन्धि की याद दिलाई। गवरनर-जनरल ने लिखा कि केवल युद्ध के लिए कम्पनी को भक्खर के क़िले की आवश्यकता है और वादा किया कि अफ़ग़ान युद्ध समाप्त होते ही क़िला मीर रुस्तम ख़ाँ को वापस कर दिया जायगा। ईस्टविक लिखता है कि इस गम्भीर और स्पष्ट वादे पर ही क़िला अङ्गरेज़ों के सुपुर्द कर दिया गया और गवरनर-जनरल ने बड़ी प्रशंसा के शब्दों में अमीर मीर रुस्तम ख़ाँ को धन्यवाद दिया। किन्तु यह क़िला फिर कभी भी मीर रुस्तम ख़ाँ को वापस नहीं दिया गया।

२४ दिसम्बर सन् १८३८ को गवरनर-जनरल के वादे के ऊपर १० धाराओं की एक नई सन्धि मीर रुस्तम ख़ाँ के साथ और बहुत समझाने बुझाने के बाद ११ मार्च सन् १८३९ को १४ धाराओं की एक नई सन्धि हैदराबाद के अमीरों के साथ होगई।

जिस समय यह नई सन्धि अङ्गरेज़ों की ओर से पेश की गई तो उनमें से एक अमीर पिछली तमाम सन्धियाँ सामने रख कर कहने लगा—

"इन सब का अब क्या होगा? जिस दिन से हमने पहली सन्धि की

है, हमेशा कोई न कोई नई चीज़ पेश की जाती है। हम आपके साथ दोस्ती क़ायम रखना चाहते हैं, किन्तु हम इस प्रकार लगातार दिक़ किया जाना नहीं चाहते। हमने आपकी सेना को अपने मुल्क में से रास्ता दे दिया और अब आप अपनी सेना को यहाँ क़ायम करना चाहते हैं × × ×।"*

तथापि दोनों सन्धियाँ हो गईं।

ख़ैरपुर की सन्धि में मुख्य मुख्य बातें ये थीं—

१—अङ्गरेज़ कम्पनी और ख़ैरपुर दरबार में सदा के लिए मित्रता क़ायम रहेगी।

२—अङ्गरेज़ ख़ैरपुर के राज्य की रक्षा करेंगे और ख़ैरपुर दरबार हर काम में अङ्गरेज़ों की सहायता करेगा।

३—अन्य विदेशी सल्तनतों के साथ ख़ैरपुर के अमीर बिना कम्पनी की सलाह इत्यादि के किसी तरह का समझौता या पत्र व्यवहार न करेंगे।

४—मीर रुस्तम ख़ाँ के विरुद्ध अङ्गरेज़ उसके किसी रिश्तेदार या कुटुम्बी या प्रजा की कोई शिकायत न सुनेंगे और न राज्य के भीतर के मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करेंगे।

५—दोनों सरकारों के एलची एक दूसरे के दरबारों में रहा करेंगे, इत्यादि।†

सन्धि पत्र पर दोनों ओर के हस्ताक्षर हो गए। अङ्गरेज़ी सेना ने भक्खर के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया। जगह जगह अङ्गरेज़ी

---

* Torrens' *Empire in Asia*, p. 295.

† *Dry Leaves from Young Egypt*, pp. 252-53.

छावनियाँ पड़ गईं। अङ्गरेज राजदूत ख़ैरपुर के दरबार में पहुँच गए। बूढ़े तथा भोले मीर रुस्तम ख़ाँ के साथ अङ्गरेजों का व्यवहार अब अधिकाधिक धृष्टता का होता गया। ख़ैरपुर के बूढ़े और सम्मानित वज़ीरों का अपमान किया गया। नित्य नई ज़्यादतियाँ होने लगीं, जिनको विस्तार से बयान करना अनावश्यक है। ईस्ट-विक लिखता है—

"प्रत्येक ऐसा कार्य अर्थात् प्रत्येक इस प्रकार की ज़्यादती, जो हम बिना ख़तरे में पड़े कर सकते थे, हमने करनी शुरू कर दी। अधिक उग्र अन्याय, जिनमें यह साफ़ डर था कि हमें सिन्ध के साथ कुसमय युद्ध करना पड़ जायगा, उस समय तक के लिए मुलतवी कर दिए गए जिस समय तक कि सिन्ध में हमारा प्रभाव क़ायम न हो जाय, अर्थात् दूसरे शब्दों में जिस समय तक कि सिन्ध अङ्गरेज़ी सत्ता के अधीन न हो जाय। और इसी को हम मित्रता की सन्धि करना कहते हैं।"*

सिन्ध के अन्दर अब तेज़ी के साथ उसी प्रकार की साज़िशें शुरू हो गईं जिस प्रकार कि समय समय पर भारत के अन्य समस्त राज दरबारों में की जा चुकी थीं। मीर रुस्तम ख़ाँ के एक छोटे भाई मीर अलीमुराद को चुपचाप, मीर रुस्तम ख़ाँ के विरुद्ध

* "Every step, *i. e.*, every encroachment that could be made without hazard was made; and the more violent aggressions, which obviously could not be inflicted without risking an inopportune war, were suspended until our own influence should be substituted in Sindh; in other words, until Sindh was reduced to a British dependency. And this is what we call making an alliance."—*Dry Leaves from Young Egypt*, pp. 253-54.

फ़ोड़ा गया। भारत से बड़े बड़े अभ्यस्त कूटनीतिज्ञ इस काम के लिए सिन्ध के दरबारों में पहुँचे। धीरे-धीरे २४ दिसम्बर सन् १८३८ की सन्धि के स्पष्ट विरुद्ध अङ्गरेज़ों ने मीर अलीमुराद का पक्ष लेकर बात बात में मीर रुस्तम खाँ से झगड़ना शुरू किया।

सिन्ध के अमीरों पर कई नए नए इलज़ाम लगाए गए। कहा गया कि हैदराबाद के अमीर मीर नसीर खाँ ने मुलतान के दीवान सावनमल को अङ्गरेज़ों के विरुद्ध कोई पत्र लिखा है। इसी प्रकार कहा गया कि मीर रुस्तम खाँ ने शेरसिंह को अङ्गरेज़ों के विरुद्ध एक पत्र लिखा है। इन पत्रों और इलज़ामों के विस्तार में हमें पड़ने की आवश्यकता नहीं है। इतिहास-लेखक ईस्टविक, जिसे सिन्ध में अङ्गरेज़ों की राजनैतिक चालों का व्यक्तिगत अनुभव था, लिखता है—

"यह सारा मामला दोपहर की धूप से भी अधिक स्पष्ट है! मीर अली-मुराद ने इन जाली पत्रों को तैयार किया था।"*

ईस्टविक ने बड़ी विस्तृत दलीलें उन सब पत्रों के जाली होने की बयान की हैं, जिन की बिना पर इस समय सिन्ध के अमीरों की रियासत छीनने की योजना की जा रही थी।

इस बीच ३ दिसम्बर सन् १८४० को हैदराबाद के अमीर नूरमोहम्मद खाँ की मृत्यु हो गई।

---

* "Why the whole matter is clearer than the Sun at noon! Mir Ali Murad forged those letters. . . ."—*Dry Leaves from Young Egypt*, by Eastwick, M. P., p. 259.

सिन्ध पर क़ब्ज़ा करने की अङ्गरेज़ों की प्रबल उत्कण्ठा के उस समय पाँच मुख्य कारण थे।

पहला और सब से मुख्य कारण यह था कि इतने दिनों सिन्ध में रह कर अङ्गरेज नीतिज्ञ पता लगा चुके थे कि अमीरों के ख़ज़ाने सोने, चाँदी और जवाहरात से लबालब हैं। सर चार्ल्स डिल्क लिखता है—

"अङ्गरेज़ कौम का निकास प्राचीन स्कैनडिनेविया के समुद्री लुटेरों से है, सैकड़ों वर्षों की शिक्षा ने भी अङ्गरेज़ों के ख़ून से उस दोष को दूर नहीं किया। भारत में पहुँचते ही हमें अपनी उत्पत्ति याद आ जाती है। वहाँ पर हमारे आदमी ज्योंही कि किसी देशी नरेश अथवा हिन्दू महल पर दृष्टि डालते हैं, तुरन्त वे विवश होकर चिल्ला पड़ते हैं, 'सेंध लगाने के लिए यह कैसी अच्छी जगह है!' अथवा, 'लूटने के लिए यह कैसा अच्छा मनुष्य है!'"*

दूसरा कारण यह था कि सिन्ध पर क़ब्ज़ा करके कभी भी आवश्यकता के समय सिन्धु नदी के ज़रिये भारत की उत्तर पश्चिमी सीमा पर फ़ौज भेजी जा सकती थी। लॉर्ड एलेनब्रु ने ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन के नाम अपने पत्रों में इस कारण को बयान किया है।

---

* "It is in India . . . we begin to remember our descent from Scandinavian sea-king robbers. Centuries of education have not purified the blood; our men in India can hardly set eyes on a native prince or a Hindoo palace before they cry, 'What a place to break up!' 'What a fellow to loot!'"—*Greater Britain*, by Sir Charles Dilke.

तीसरा कारण रूस इत्यादि के हमले से अपने भारतीय साम्राज्य को सुरक्षित रखने की चिन्ता थी ।

चौथा कारण इतिहास-लेखक सर जॉन के ने निम्नलिखित शब्दों में बयान किया है—

"किन्तु सिन्ध के अमीरों को इस प्रकार दण्ड देने का असली कारण यह था कि हाल में अफ़ग़ानों ने अंग्रेज़ों को दण्ड दिया था। अपनी महान राजनैतिक यात्रा के इस अवसर पर अंग्रेज़ों को आवश्यक मालूम हुआ कि संसार को यह दिखा दिया जाय कि अंग्रेज़ भी किसी न किसी को पीट सकते हैं, इसीलिए सिन्ध के अमीरों को पीटने का निश्चय किया गया। × × × गवरनर-जनरल ने तय कर लिया कि उन अमीरों को इस उदारनीति का शिकार बनाया जाय, जिन्होंने कि कुछ महीने पहले ऐसे अवसर पर हमारी सेना को छोड़ दिया था, जिस अवसर पर यदि वे चाहते तो उसे निर्मूल कर सकते थे।"*

ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन ने ३० मार्च सन् १८४२ को एक पत्र में लॉर्ड एलेनबरा को सलाह दी कि अफ़ग़ानिस्तान की हार और

---

* "But the real cause of this chastisement of the Amirs consisted in the chastisement which the British had received from the Afgans. It was deemed expedient at this stage of the great political journey, to show that the British could beat some one, and so it was determined to beat the Amirs of Sindh . . . the Governor-General resolved, that the Amirs who a few months before had spared our army, when they might have annihilated it, should be the victims of this generous policy."—Sir John Kaye in *the Calcutta Review*, vol. i, p. 232.

शर्म को दूर करने और अङ्गरेज़ों की कीर्ति फिर से क़ायम करने के लिए किसी न किसी भारतीय नरेश पर फ़ौरन् हमला करके उसके राज्य को कम्पनी के राज्य में मिला लिया जाय।

पाँचवाँ कारण मुसलमानों के प्रति एलेनब्रु का विशेष द्वेष और उन पर उसका अविश्वास था।

लॉर्ड एलेनब्रु ने २२ मार्च सन् १८४३ को ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन के नाम एक पत्र लिखा जिसमें उसने स्पष्ट स्वीकार किया है कि सिन्ध के अमीरों पर पत्र व्यवहार के सम्बन्ध में जो इल-ज़ाम लगाए गए थे वे बे बुनियाद थे। कुछ दिनों बाद इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सामने भी यह बात साबित हो गई कि वे सब पत्र जाली थे।

तथापि २६ अगस्त सन् १८४२ को लॉर्ड एलेनब्रु ने सिन्ध के अमीरों को दण्ड देने के लिए जनरल नेपियर को एक विशाल सेना देकर सिन्ध भेज दिया। ९ सितम्बर सन् १८४२ को सर चार्ल्स नेपियर सिन्ध पहुँचा। हैदराबाद होते हुए वह अलीमुराद के साथ साज़िश पक्की करने के लिए सक्खर पहुँचा। ईस्टविक लिखता है कि—"तुरन्त अङ्गरेज़ सेनापति ने अलीमुराद के पास उसके हौसले को बढ़ाने के लिए पत्र भेजे। अङ्गरेज़ सेनापति ने पहले मीर रुस्तम खाँ से गद्दी छीनने का सङ्कल्प कर लिया। उसने × × × उस बूढ़े अमीर को, जो अङ्गरेज़ों का मित्र था, पदच्युत करने और उसका राज्य छीन लेने का इरादा कर लिया।"*

* *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 264.

नेपियर की सेना के मार्ग में न रोके जाने का कारण यह था कि अभी तक नेपियर ऊपर से अमीरों के साथ मित्रता की दुहाई दे रहा था। १ दिसम्बर सन् १८४२ को अचानक सिन्ध में एक एलान प्रकाशित किया गया जिसमें पूर्वोक्त जाली पत्रों की बिना पर लोगों को यह सूचना दी गई कि रोहरी से लेकर सब्ज़ल-कोट तक का मीर रुस्तम ख़ाँ का इलाक़ा कम्पनी सरकार ने ज़ब्त कर लिया। कप्तान ईस्टविक और करनल ऊटरम दोनों ने अपनी अपनी पुस्तकों में इस घोर अन्याय को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है। मीर रुस्तम ख़ाँ अथवा अन्य अमीरों को जवाबदेही का कोई मौक़ा नहीं दिया गया, न उन्हें उनके अपराध की सूचना तक दी गई। अलीमुराद के ज़रिये अनेक झूठी सच्ची शिकायतें मीर रुस्तम ख़ाँ के विरुद्ध जमा कर ली गईं। कप्तान ईस्टविक लिखता है कि—"जनरल नेपियर ने खुले तौर पर यह प्रकट किया कि मुझे अमीरों को दमन करने के लिए किसी बहाने की आवश्यकता है; फिर इसमें क्या आश्चर्य हो सकता है कि कुछ न कुछ इस प्रकार के अधम और नीचतम लोग मिल गए, जिन्होंने अपने नरेशों के दुर्व्यवहार की शिकायत की, अथवा अलीमुराद के एजण्टों ने इस सार्वजनिक प्रोत्साहन से लाभ उठा कर जाल-साज़ियाँ शुरू कर दीं।"*

---

* "The general openly avowed his anxiety to obtain a pretext for coercing them; and can we wonder that there were found—among the basest and lowest of the people-some to

इसी प्रकार हैदराबाद के अमीरों के विरुद्ध भी २४ इलजामों की एक नई सूची तैयार कर ली गई, जिनके विषय में ईस्टविक लिखता है कि—"ये सब थोथे इलजाम थे जो केवल एक बहाना ढूँढ़ने के लिए गढ़ लिए गए थे।"*

७ दिसम्बर को बिना अमीरों से बातचीत किए सर चार्ल्स नेपियर ने रोहरी से सब्जलकोट तक के इलाक़े पर क़ब्ज़ा करने के लिए अपनी फ़ौज को तैयार करना शुरू किया। १४ दिसम्बर को अमीर रुस्तम ख़ाँ ने सर चार्ल्स नेपियर को पत्र लिखा कि आपसे जो शिकायतें की गई हैं वे सब झूठी हैं और मैं पूर्ववत् अङ्गरेज़ों के साथ मित्रता क़ायम रखने के लिए उत्सुक हूँ। इस समय एक और नई बात उड़ाई गई कि मीर रुस्तम ख़ाँ ने कहीं पर अङ्गरेज़ों की डाक लुटवा दी। कप्तान ईस्टविक साफ़ लिखता है कि यह डाक लूटने का काम अलीमुराद के ज़रिए कराया गया था, ताकि मीर रुस्तम ख़ाँ पर एक और झूठा इलजाम लगाया जा सके। इस पर ईस्टविक के शब्द हैं—

"यह देख कर कि वे लोग, जो अपने को अङ्गरेज़ कहते थे, इन असभ्य और द्वेषपूर्ण झूठी बातों को सहन करते थे, हम लज्जा और घृणा से मर जाते हैं।"†

---

complain of illtreatment at the hands of their rulers, or that the agents of Ali Murad should have taken advantage of such a general encouragement for their fabrications?"—*Dry Leaves from Young Egypt*, p. 267.

* "Frivolous accusations, which were concocted for the simple purpose of making out a case."—Ibid, p. 269.

† "One feels sick with shame and disgust that such barbar-

गवरनर-जनरल के नाम सर चार्ल्स नेपियर के इस समय के पत्र वास्तव में घृणित और अकथनीय छलों से भरे हुए हैं।

करनल ऊटरम स्पष्ट लिखता है—

"बूढ़े नरेश रुस्तम ख़ाँ ने अथवा उसके किसी भाई ने कभी किसी अङ्गरेज़ के सर के बाल तक को हानि न पहुँचाई थी; इसके विपरीत, उन्होंने उस समय जब हमें सबसे बड़ी आवश्यकता थी, अपना देश और माल हमारी सेवा के लिए उपस्थित कर दिया था।"*

मीर रुस्तम ख़ाँ ने फिर भी शान्ति से निबटारा करना चाहा। उसने कई बार सर चार्ल्स नेपियर से मिलने की इच्छा प्रकट की, किन्तु नेपियर ने स्वीकार न किया।

अलीमुराद के विश्वासघात और अङ्गरेज़ी सेना की सहायता से अब बूढ़े अमीर रुस्तम ख़ाँ को अनेक प्रकार की आपत्तियों में डाला गया, उसका तरह तरह से अपमान किया गया।

इस बीच सक्खर से जनरल नेपियर ने कप्तान स्टेनली को एक नया सन्धि-पत्र देकर हैदराबाद के अमीरों के पास भेजा। इस सन्धि-पत्र की शर्तें अत्यन्त अपमानजनक थीं। हैदराबाद के

---

ous and malignant falsehoods could be winked at by men calling themselves Englishmen."—Ibid, p. 271.

* "Neither the venerable Prince, . . . nor any of his brethren had ever injured the hair of a head of any British subject; but they, had in the hour of our greatest need, placed their country and its resources at our disposal."—*Conquest of Sindh, a commentary*, by Colonel Outram, vol. i, p. 90.

अमीरों ने नए सन्धि-पत्र को देख कर बातचीत के लिए अपने दूत नेपियर के पास भेजे। नेपियर ने दूतों से बात करने तक से इनकार कर दिया। इसी बीच नेपियर ने अपनी सेना और तोपों सहित अकारण ख़ैरपुर पर चढ़ाई की और बूढ़े रुस्तम ख़ाँ से कहला भेजा कि यदि आप अपनी जान बचाना चाहते हैं तो शीघ्र ख़ैरपुर छोड़ कर हैदराबाद चले जाइए, मैं वहीं आकर अन्य अमीरों के साथ आपसे बातचीत करूँगा। बूढ़े रुस्तम ख़ाँ को नगर छोड़ कर अपनी स्त्रियों और बच्चों सहित ऊँटों पर बैठ कर हैदराबाद की ओर भाग जाना पड़ा।

मीर रुस्तम ख़ाँ की आयु इस समय ८५ वर्ष की थी। ईस्टविक दुख के साथ लिखता है कि—"हमने ख़ानदानी नरेशों के विरुद्ध, जो कि हमारे मित्र थे, अनेक झूठी बातों के आधार पर उनका सर्वस्व छीन लिया, उन्हें जगह जगह भगाया, उन्हें क़ैद में डाल दिया, यहाँ तक कि सिवाय मौत के और उनके पास इस आपत्ति से छुटकारा पाने का कोई उपाय न रहा।"

नेपियर की सेना ने ख़ैरपुर के नगर को लूटा। इसके बाद नेपियर ने इमामगढ़ के क़िले पर हमला किया, क़िले को तोड़ डाला और नगर को लूट लिया। इमामगढ़ के बाद नेपियर ने हैदराबाद की ओर बढ़ना शुरू किया।

समाचार पाते ही हैदराबाद के अमीरों ने नेपियर के पास फिर अपने दूत भेजे। नए सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर कर देने की रज़ामन्दी प्रकट की और नेपियर से प्रार्थना की कि आप

हैदराबाद की ओर बढ़ कर वृथा रक्तपात द्वारा देश को बरबाद न कीजिए। खैरपुर और हैदराबाद के बीच में नौशहरा नामक स्थान पर इन दूतों ने नेपियर से भेंट की। नेपियर ने दूतों के उत्तर में उन्हें हैदराबाद के अमीरों के नाम एक पत्र दिया, जिसमें लिखा था कि आप मीर रुस्तम ख़ाँ को हैदराबाद बुला लीजिए, मैं मेजर ऊटरम को यहाँ से भेजता हूँ, मेजर ऊटरम वहाँ पर मीर रुस्तम ख़ाँ के विषय में भी सब बातें तय कर देगा और नए सन्धि-पत्र पर आपके हस्ताक्षर भी करा लेगा, मैं अभी हैदराबाद की ओर न बढ़ूँगा।

८ फ़रवरी सन् १८४२ को मेजर ऊटरम हैदराबाद पहुँचा। मेजर ऊटरम के कहने के अनुसार अमीरों ने युद्ध से बचने की इच्छा से अपनी मोहरें मेजर ऊटरम के हवाले कर दीं।

किन्तु नेपियर बराबर अपनी सेना सहित हैदराबाद की ओर बढ़ता रहा। हैदराबाद के निकट बलूचियों में खलबली मच गई। हैदराबाद के अमीरों ने मेजर ऊटरम से कहा कि आप अपना आदमी भेज कर जनरल नेपियर को रोकिए, नहीं तो बलूची प्रजा में बेचैनी बढ़ रही है। सन्धि के लिए हमारी मोहरें आपके हाथ में हैं। मेजर ऊटरम ने स्वीकार कर लिया और अपनी ओर से एक अङ्गरेज़ इस काम के लिए मीर नसीर ख़ाँ के पास भेजा। मीर नसीर ख़ाँ ने ९ फ़रवरी की रात को इस अङ्गरेज़ को एक तेज़ ऊँट के ऊपर नेपियर के पास रवाना किया। १२ फ़रवरी को सिन्धी ऊँट वाले ने मीर नसीर ख़ाँ को आकर सूचना दी कि ज्यों ही ऊटरम

अमीर नसीर ख़ाँ और उसके दो बेटे

[ईस्टविक की पुस्तक 'ड्राइ लीव्ज़ फ़ॉम यंग इजिप्ट' से]

के दूत और जनरल नेपियर में मुलाक़ात हुई, त्योंही जनरल नेपियर बजाय रुक जाने के अपनी सेना सहित हैदराबाद की ओर बढ़ने लगा।

मीर नसीर ख़ाँ ने तुरन्त ऊटरम को इसकी सूचना दी। उसी दिन तीसरे पहर ऊटरम अमीरों से आकर मिला। ऊटरम ने शपथ खाकर मीर नसीर ख़ाँ को विश्वास दिलाया कि जनरल नेपियर का उद्देश युद्ध करना अथवा अमीरों का राज्य छीनना नहीं है। ऊटरम ने अमीरों से कहा कि आप सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर कर दीजिए, मैं इसी समय जनरल नेपियर के नाम एक पत्र लिख कर आपको दे दूँगा, आप उस पत्र को अपने आदमियों के हाथ नेपियर के पास भेज दीजिए, नेपियर तुरन्त हैदराबाद की ओर आने का इरादा छोड़ कर उत्तर की ओर लौट जायगा।

अमीरों ने स्वीकार कर लिया। उन्होंने नेपियर के भेजे हुए सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। इस सन्धि-पत्र पर अमीर की मुहरें भी लगा दी गईं। ऊटरम ने नेपियर के नाम पत्र लिख कर मीर नसीर ख़ाँ के हवाले किया। तुरन्त एक तेज़ साँड़नी सवार के हाथों यह पत्र नेपियर के पास भेजा गया। साँड़नी सवार ने लौट कर फिर यही आश्चर्यजनक सूचना दी कि ऊटरम के पत्र को पाने के बाद भी जनरल नेपियर ने पूर्ववत् सेना सहित हैदराबाद की ओर अपनी चढ़ाई जारी रक्खी।

इस बीच वृद्ध मीर रुस्तम हैदराबाद पहुँच चुका था। उसकी

विपत्तियों को देख कर हैदराबाद की प्रजा और सेना में क्रोध बढ़ता जा रहा था।

इसी समय जनरल नेपियर ने अपनी यात्रा में एक बूढ़े निरपराध बलूची सरदार हयात ख़ाँ को, जो हैदराबाद की ओर आ रहा था, पकड़ कर क़ैद कर लिया। नगर के अन्दर कुछ बलूचियों ने मेजर ऊटरम पर इसका बदला उतारना चाहा, किन्तु अमीर नसीर ख़ाँ ने उन्हें समझा बुझा कर शान्त कर दिया।

हैदराबाद के अमीरों ने जनरल नेपियर को फिर एक पत्र भेजा, जिसमें उससे पूछा कि हमारे सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर कर देने के बाद भी आप सेना लेकर हैदराबाद की ओर क्यों आ रहे हैं। नेपियर ने कोई उत्तर न दिया। वह बराबर हैदराबाद की ओर बढ़ता रहा। लगभग पाँच हज़ार बलूची नेपियर के मुक़ाबले के लिए हैदराबाद के नगर के बाहर जमा होगए। अमीर नसीर ख़ाँ १५ फ़रवरी को सवेरे फिर अपने महल से निकल कर इन क्रुद्ध बलूचियों को शान्त करने का प्रयत्न किया और कहा कि मैं कल फिर अपना एक वकील नेपियर के पास भेजूँगा और प्रयत्न करूँगा कि बिना प्रजा के रक्तपात और बरबादी के शान्ति से सब मामला तय हो जाय।

उसी दिन दोपहर को मेजर ऊटरम के सिपाहियों के साथ कुछ बलूचियों का झगड़ा होगया, जिसमें दो बलूची और एक सिपाही मेजर ऊटरम का, तीन आदमी मारे गए। मेजर ऊटरम ने इस पर नगर छोड़ कर एक जहाज़ में आश्रय लिया। बलूचियों ने दो

अङ्गरेज़ सिपाहियों को क़ैद कर लिया। मीर नसीर ख़ाँ और मीर मोहम्मद ख़ाँ ने दोनों गोरे सिपाहियों को खाना खिला कर फिर स्वतन्त्र कर दिया।

मीर नसीर ख़ाँ का दूसरा वकील अभी सर चार्ल्स नेपियर से मिलने भी न पाया था कि १७ फ़रवरी सन् १८४३ को मियानी नामक स्थान पर अमीरों की इच्छा के विरुद्ध नेपियर की सेना में और उन बलूचियों में जो हैदराबाद की रक्षा के लिए जमा होगए थे, संग्राम शुरू होगया। मीर नसीर ख़ाँ का बयान है कि पहला वार नेपियर की ओर से हुआ। इन पाँच हज़ार बलूचियों के अतिरिक्त नसीर ख़ाँ के पास हैदराबाद के क़िले के अन्दर उस समय लगभग १२ हज़ार बलूची सेना जमा थी। किन्तु मीर नसीर ख़ाँ ने ऊटरम के बार बार यह विश्वास दिलाने पर कि नेपियर का इरादा शत्रुता करना अथवा अमीरों का राज्य छीनना नहीं है, उन्हें नेपियर के विरुद्ध शस्त्र उठाने से रोके रक्खा।

तथापि मियानी के मैदान में सुबह चार बजे से लेकर सायङ्काल तक अत्यन्त घमासान संग्राम हुआ। अङ्गरेज़ों की ओर कुछ गोरी और शेष हिन्दोस्तानी पलटनें थीं। बलूचियों ने अपनी बन्दूक़ें फेंक कर तलवारों और ढालों से मुक़ाबला करना शुरू किया। एक दूसरे के बाद अनेक अङ्गरेज़ अफ़सर और सहस्रों अङ्गरेज़ सिपाही मैदान में कट कट कर गिरने लगे। बार बार अङ्गरेज़ी सेना को हार कर पीछे हट जाना पड़ा। बलूचियों ने इस वीरता के साथ सामना किया और अङ्गरेज़ों की ओर हताहतों की संख्या इतनी

बढ़ गई कि मेजर वेडिङ्गटन, जो इस समय संग्राम में उपस्थित था, लिखता है कि एक बार जनरल नेपियर को भी अङ्गरेज़ों की विजय में सन्देह हो गया।*

मियानी के बचे हुए अनेक अङ्गरेज़ अफ़सरों ने बलूचियों की वीरता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। करनल वेडिङ्गटन लिखता है कि एक स्थान पर केवल पचास क़दम के अन्दर चार सौ लाशें गिनी गईं। किन्तु अङ्गरेज़ी सेना की संख्या इन बलूचियों से कहीं अधिक थी। बलूचियों की ओर कोई विशेष नेता भी न था। हैदराबाद के अमीर अभी तक कायरतावश अथवा शान्ति-प्रियतावश क़िले के अन्दर बैठे हुए शान्ति के साथ समस्त मामले का निबटारा करने के स्वप्न देख रहे थे। क्योंकि इस बीच मेजर उट्रम बराबर अपने को अमीरों का दोस्त बता कर उन्हें यह समझा रहा था कि यदि आप शान्ति क़ायम रक्खें तो आपका राज्य आपके हाथों में पूर्ववत् क़ायम रहेगा। मीर नसीर ख़ाँ मैदान में पहुँचा, किन्तु अपने योधाओं को प्रोत्साहित करने के लिए नहीं, वरन् उन्हें समझा बुझा कर वापस करने के लिए। अन्त में, इतिहास-लेखक टॉरेन्स के अनुसार ६,०००† वीर बलूचियों की लाशों के ऊपर से १७ फ़रवरी की रात को मियानी के मैदान को तय करते हुए विजयी अङ्गरेज़ी सेना ने अगले दिन सुबह हैदराबाद में प्रवेश किया।

---

* *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 353.

† Torrens' *Empire in Asia*, etc., on the Amirs of Sindh.

अङ्गरेज़ सेनापतियों के बयानों और प्रकाशित सरकारी रिपोर्टों में झूठ की मात्रा इतनी अधिक है कि अङ्गरेज़ सेना के हताहतों की ठीक संख्या का पता नहीं चलता। जनरल नेपियर लिखता है कि अङ्गरेज़ी सेना कुल १,७०० थी, मेजर वेडिङ्गटन इसके विरुद्ध दलीलें देता हुआ लिखता है कि अङ्गरेज़ी सेना ३,००० थी और मियानी के संग्राम में जीवित बचे हुए जिन अफ़सरों और सिपाहियों में लूट मार का माल बाँटा गया, केवल उनकी संख्या, सरकारी रिपोर्ट के अनुसार ४,८५६ थी। जो हो, इसमें सन्देह नहीं, कम्पनी के हज़ारों गोरे तथा देशी सिपाही और अफ़सर मियानी के मैदान में काम आए।

सर रिचर्ड बर्टन ने मियानी के संग्राम में अङ्गरेज़ों की विजय के सम्बन्ध में एक और रहस्य प्रकट किया है। वह लिखता है—

"न तो उस समय के इतिहास-लेखकों से हमें इस बात का पता चलता है, और न हम सरकारी काग़ज़ों से इस बात के जानने की आशा कर सकते हैं कि जिस दोग़ले अफ़सर के सिन्ध के अमीरों की तोपें सुपुर्द थीं उसे किस प्रकार अपनी ओर फोड़ कर तोपों के मुँह इतने ऊँचे करवा दिए गए जिससे गोले अङ्गरेज़ी सेना को बचा कर दूर जाकर गिरें, न यह पता चलता है कि किस प्रकार टालपुर का वह देशघातक, जोकि अमीरों की सवार सेना का प्रधान सेनापति था, खुल्लम खुल्ला अपनी सेना को मैदान से हटा ले गया, और उसने मैदान से निर्लज्ज होकर भागने की मिसाल दूसरों के लिए क़ायम कर दी। जब कभी वह दिन आएगा कि हिन्दोस्तान के अन्दर गुप्त सेवाओं के लिए जो धन व्यय किया जाता है, उसका व्योरे-

वार हिसाब छापा जायगा तब लोगों को अजीब अजीब बातों का पता चलेगा। इस बीच हममें से जो लोग अपनी ज़िन्दगी में यह देख चुके हैं कि इतिहास किस प्रकार लिखा जाता है, वे इस इतिहास का एक घटिया उपन्यास से अधिक मूल्य नहीं कर सकते।"*

इससे मालूम होता है कि भारतवासियों के समान वीर बलूची भी १७ फ़रवरी को अङ्गरेजों की चाँदी की गोलियों का शिकार होने से न बच सके!

१८ फ़रवरी को सवेरे नगर में प्रवेश करने के बाद जनरल नेपियर ने मेजर उट्रम की मौजूदगी में मीर नसीर ख़ाँ को फिर यह विश्वास दिलाया कि सिन्ध के अमीरों की सल्तनत उन्हें वापस दे दी जायगी, इस शर्त पर कि आप अपनी सेना को बरख़ास्त कर दें और उन्हें नगर से बाहर कर दें। मालूम होता है कि नसीर ख़ाँ के दिल से अब भी अङ्गरेजों का विश्वास न हटा था। नसीर ख़ाँ ने स्वीकार कर लिया। उसने अपनी बलूची सेना

---

* "Neither of our authorities tell us, nor can we expect a public document to do so, how the mulatto who had charge of the Amirs' guns had been persuaded to fire high and how the Talpur traitor who commanded the cavalry, openly drew off his men and showed the shameless example of flight. When the day shall come to publish details concerning disbursement of 'Secret Service money in India' the public will learn strange things. Meanwhile those of us who have lived long enough to see how history is written, can regard it as but little better than a poor romance."—*Life of Sir Richard Burton*, by Lady Burton, p. 141.

को वरख़ास्त कर दिया। इसके बाद नेपियर ने मीर नसीर ख़ाँ, मीर शहदाद ख़ाँ और मीर रुस्तम ख़ाँ को क़ैद कर लिया। इसके तीन दिन बाद जनरल नेपियर ने एक पलटन सवार, एक पलटन पैदल, दो तोपों और कुछ अङ्गरेज़ अफ़सरों सहित हैदराबाद के क़िले में प्रवेश किया। क़ैदी मीर नसीर ख़ाँ से नेपियर ने यह कहला भेजा था कि मैं केवल क़िले को देखना चाहता हूँ, आप अपने कुछ आदमी साथ कर दीजे। मीर नसीर ख़ाँ ने दीवान मिठाराम, वहादुर खिदमतगार और अखूँद वाचाल को नेपियर के पास भेज दिया। जो हृदय-विदारक दृश्य अब हैदराबाद के क़िले के अन्दर देखने में आया उसे हम ठीक ठीक दीवान मिठाराम ही के मर्मस्पर्शी शब्दों में नीचे उद्धृत करते हैं। दीवान मिठाराम ने अपने बयान में जिन जिन अङ्गरेज़ अफ़सरों के नाम दिए थे, कप्तान ईस्टविक ने अपनी पुस्तक में उनके नामों का स्थान छोड़ कर केवल 'साहब' सामने लिख दिया है। हम यह बयान कप्तान ईस्टविक की पुस्तक से ज्यों का त्यों उद्धृत कर रहे हैं। दीवान मिठाराम लिखता है—

"इसके बाद—साहब दूसरे अफ़सरों और सिपाहियों के साथ परलोक-वासी मीर करमअली ख़ाँ के ज़नानख़ाने में गया, उसने मिरज़ा ख़ुसरो बेग का गला पकड़ कर उसका अपमान किया, और उसे आज्ञा दी कि ज़नानख़ाने में जो कुछ धन और ज़ेवर हैं वे हमारे हवाले कर दो। इन ज़ेवरों की क़ीमत १९ लाख रुपए थी। मीर करमअली की बेगमों ने यह दृश्य देख कर—साहब से कहला भेजा कि आप हमें पालकियाँ दिलवा

दीजिए और केवल बदलने के लिए तीन तीन जोड़ी कपड़े हर एक के साथ देकर हमें शहर से निकल जाने दीजिए।—साहब ने इनकार कर दिया, मुन्शी अलीअकबर के साथ वह ज़बरदस्ती ज़नानख़ाने में घुस गया, वहाँ पर स्त्रियों के जितने ज़ेवर, जवाहरात, सोने चाँदी के बरतन और कपड़े इत्यादि मिले उसने सब लूट लिए, और जो ज़ेवर स्त्रियाँ अपनी कमर के नीचे और पैरों पर पहने हुई थीं उन तक को उसने खींच कर उतार लिया। अभागी स्त्रियाँ भय और लज्जा के मारे नगर से भाग कर पैदल हैदराबाद से पाँच कोस दूर कहतर पहुँच गईं। और—साहब और—साहब और—साहब ने अमीर मीर नूरमोहम्मद ख़ाँ के ज़नानख़ाने में प्रवेश किया, और उन्हें इसी तरह लूटा, यहाँ तक कि वहाँ की स्त्रियाँ भी इसी प्रकार विवश होकर अपने घरों से भाग कर कुछ दिन बाद पैदल कहतर पहुँच गईं। २२ फ़रवरी सन् १८४३ को अमीर मीरमोहम्मद ख़ाँ को क़िले से लाकर अङ्गरेज़ी कैम्प में क़ैद कर दिया गया, उसके ज़नानख़ाने में भी इसी प्रकार ज़बरदस्ती घुस कर उसे लूट लिया गया। इसके बाद मीर सोबदार की बेगमों को लूटा गया, वे पैदल भाग कर होसरी चली गईं।—साहब ने मीर सोबदार के लड़के फ़तहअली ख़ाँ से दो क़ीमती कड़े माँगे, जो दे दिए गए। मीर सोबदार के ज़नानख़ाने की एक स्त्री ने कुछ रुपए अपने कमरबन्द में बाँध लिए थे। भागते समय इनमें से कुछ रुपए गिर पड़े, तुरन्त उस स्त्री को पकड़ लिया गया, उसका कमरबन्द काट दिया गया, और रुपए उससे ले लिए गए। इसके बाद एक एक स्त्री को अलग ले जाकर उसके हाथों, पैरों, नाक और कान से सब ज़ेवर उतार लिए गए। इसके बाद क़िले में बाहर से आना बन्द कर दिया गया, परलोकवासी मीर नूरमोहम्मद ख़ाँ और मीर नसीर ख़ाँ की स्त्रियाँ अभी उस समय तक

क़िले ही में थीं, दो दिन तक उन्हें लगभग बिना पानी के रक्खा गया। मीर नसीर ख़ाँ के बेटे मीर हुसेनअली ख़ाँ और मीर अब्बासअली ख़ाँ क़िले में क़ैद थे। उन्होंने एक आदमी को—साहब के पास पानी के लिए भेजा। उत्तर मिला कि सर चार्ल्स नेपियर की आज्ञा है कि जिस किसी को पानी पीना हो, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, उसे गारद के कमाण्डिङ्ग अफ़सर के बँगले पर जाकर पानी पीना होगा। पूर्वोक्त अमीरों के ज़नानख़ानों में नौकर चाकर मिला कर कुल पाँच सौ प्राणी थे। अन्त में बड़ी कठिनाई के बाद इन पाँच सौ मनुष्यों के लिए एक मश्क पानी दिया गया, जिससे सब ने अपने गले गीले कर लिए, प्यास किसी की न बुझ सकी। थोड़ी देर बाद—साहब और—साहब कुछ सिपाही लेकर इन ज़नानख़ानों के दरवाज़ों पर पहुँचे। दरवाज़े बन्द थे। इन लोगों ने कुल्हाड़ों से दरवाज़ों को तोड़ा और वहाँ की स्त्रियां के सब ज़ेवर माँगे। स्त्रियों को विवश होकर अपने सब ज़ेवर उतार देने पड़े। अगले दिन—साहब ने आकर ज़नानख़ाने का शेष सब सामान निकाल लिया। एक स्त्री ने बच कर निकल जाना चाहा। अकस्मात् वह रेशमी पाजामा पहने हुए थी; क़िले के दरवाज़े पर सिपाहियों ने उसे रोक लिया और उसके सब कपड़े उतरवा लिए। परलोकवासी नूरमोहम्मद ख़ाँ की बेगम ने कुछ कपड़े अपनी एक दासी को दिए कि इन्हें बेच कर मेरे लिए कुछ खाना ले आओ।—साहब के मुन्शी ने उस स्त्री को पकड़ कर उसे पीटा और उससे कपड़े छीन लिए। इसके बाद दो (अङ्गरेज़) औरतें क़िले के फाटक पर बैठा दी गईं, और भीतर से जो स्त्री बाहर जाती थी ये दोनों औरतें उसकी तलाशी लेती थीं। सारांश यह कि अमीरों की एक एक चीज़ ले ली गई, उनका सर्वस्व लूट लिया गया! इसके बाद मीर सोबदार ख़ाँ को बाहर लाकर अङ्गरेज़ी कैम्प

में क़ैद कर दिया गया, और पहले दिन मीर नसीर ख़ाँ के बेटों को जो तलवारें दी गई थीं वे उनसे छीन ली गईं। इसके बाद मिरज़ा ख़ुसरो बेग का मकान लूटा गया और उसे ले जाकर अङ्गरेज़ी कैम्प में क़ैद कर दिया गया। मिरज़ा ख़ुसरो बेग को फिर क़िले में वापस लाया गया। वहाँ पर उसे इतनी बुरी तरह पीटा गया कि वह बहुत देर तक बेहोश रहा। जब उसे होश आया तो बाँध कर फिर अङ्गरेज़ी कैम्प में पहुँचा दिया गया और वहाँ पर क़ैद कर दिया गया।"*

इतिहास-लेखक जे० पी० फ़ैरियर दीवान मिठाराम के इस कथन का पूरी तरह समर्थन करता है।†

एक और अङ्गरेज़ अफ़सर, जो सन् ५७ के विप्लव में लड़ा था, और जिसका बाप उस समय सिन्ध में जनरल नेपियर के साथ था, लिखता है कि विजयी अङ्गरेज़ों ने सिन्ध की बेगमों के कानों और उनकी नाकों से इस बेदरदी के साथ बालियाँ इत्यादि उतारीं कि उनके नाक और कान बुरी तरह कट गए।‡

---

* Translated from the Eglish translation of Diwan Mitharam's Statement etc., published in, *Dry Leaces from Young Egypt*, by W. J. Eastwick, an ex-political, sometime M. P., pp. 342-44.

† *History of the Afghans*, by J. P. Ferrier, translated by Captain Jesse, London, John Murray, 1858, p. 287.

‡ "The harem ladies were not only plundered of their ornaments they had on their person, but their noses and ears were horribly mutilated."—Captain S—as quoted by a Traveller, in his letter on the *Conquest of Sindh*, in the *Tribune* of Lahore, September, 1893.

मीर नसीर खाँ का बयान है कि हैदराबाद के महलों की समस्त लूट का मूल्य लगभग अठारह करोड़ रुपए था। यह सब धन जहाज़ों में बन्द करके बम्बई भेज दिया गया।

सिन्ध पर अङ्गरेज़ों का क़ब्ज़ा हो गया। मीर रुस्तम खाँ के राज्य का एक भाग विश्वासघातक अलीमुराद को दे दिया गया। शेष समस्त सिन्ध अङ्गरेज़ कम्पनी के राज्य में मिला लिया गया।

इसके सात वर्ष बाद अलीमुराद पर भी यह दोष लगा कर कि तुमने सन् १८४३ में मीर रुस्तम खाँ के विरुद्ध जालसाज़ी की थी, उसका आधा राज्य उससे छीन लिया गया। खैरपुर की शेष छोटी सी रियासत पर अभी तक अलीमुराद के वंशजों का शासन है।

एक अलीमुराद को छोड़ कर सिन्ध के शेष समस्त अमीरों और उनके पुत्रों को क़ैद करके बेड़ियाँ पहना कर जहाज़ पर बैठा कर अपने राज्य और देश दोनों से निर्वासित कर दिया गया। उनमें से कुछ को पूना में और कुछ को कलकत्ते, हज़ारीबाग़ आदि स्थानों में क़ैद करके रक्खा गया। बेटों को उनके बापों से पृथक रक्खा गया। कलकत्ते ही में अङ्गरेज़ों की क़ैद में कुछ दिनों बीमार रह कर मीर नसीर खाँ की मृत्यु हुई। इसी प्रकार पूना में कई वर्ष क़ैद में रहने के बाद बूढ़े मीर रुस्तम खाँ की मृत्यु हुई। टालपुर कुटुम्ब के शेष लोग सूरत तथा अन्य जेलों में धीरे धीरे सड़ सड़ कर मरे।

मीर रुस्तम खाँ का एक लड़का मीर मोहम्मदहुसेन अपने घर की बूढ़ी स्त्रियों तथा अन्य आश्रितों सहित भूखा प्यासा अपने देश से निर्वासित बहुत दिनों गृहविहीन घूमता रहा। उसके कुछ

छोटे भाई सिन्ध में रहे, जिनके विषय में ईस्टविक लिखता है कि—
"भूख और प्यास, नङ्ग और सरदी उनके पल्ले पड़ी।"*

हैदराबाद तथा खैरपुर की बेगमों की हालत और इससे भी अधिक हृदय-विदारक थी। सिन्ध के राजकुल की इस दुर्दशा को अत्यन्त मर्मस्पर्शी शब्दों में वर्णन करते हुए ईस्टविक लिखता है—

"× × × ये लोग हमारे मित्र थे × × × हमने इनके चारों तरफ़ कूटनीति और धूर्तता का एक जाल पूर दिया, और उन्हें इस प्रकार की झूठी बातों के पाश में फँसा लिया जिन्हें यदि इस समय प्रकट किया जाय तो सुन कर दिन में भी डर लगने लगे! इङ्गलिस्तान के पुरुषो! जिस स्वतन्त्रता का तुम्हें घमण्ड है उसका चिन्तन करो, और देखो कि तुम्हारे हृदय में उन लोगों के प्रति वास्तविक सहानुभूति उत्पन्न होती है या नहीं जो अपने देश और अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए तुम्हारी तलवार से कट कर मर गए, और उन थोड़े से, किन्तु कहीं अधिक अभागे अमीरों के लिए, जो किसी समय तुम्हारे मित्र थे, बल्कि किसी समय तुम पर उपकार करते थे, और जो अब दूर दूर के देशों में बड़े दुख के साथ निर्वासन के दिन काट रहे हैं, जिनके आतिथ्य सत्कार और जिनकी मित्रता की एक समय तुम्हें चाह थी उनके क़ैद रखने वाले जेलरों को आज तुम तनख़्वाहें दे रहे हो। इङ्गलिस्तान की स्त्रियो! सोचो कि बादशाहों की माताएँ और बहिनें, जिनके समस्त आभूषण उतार लिए गए हैं, अपने देश से

---

* "Hunger and thirst, cold and nakedness, have been their portion."—*Dry Leaves from Young Eygpt*, p. 298

निर्वासित, गृहविहीन और असहाय, विषैली दलदलों और भीषण जङ्गलों में मारी मारी फिर रही हैं।"*

सिन्ध के मुसलमान अमीरों और उनके बाल-बच्चों के साथ ईसाई विजेताओं के इस भीषण व्यवहार की अमानुषिकता को संसार की दृष्टि में कम करने के लिए जनरल सर चार्ल्स नेपियर के भाई सर विलियम नेपियर ने 'सिन्ध की विजय †' नाम से अङ्गरेज़ी में एक प्रसिद्ध पुस्तक लिख डाली।

प्रसिद्ध इतिहास-लेखक सर जॉन के ने एक स्थान पर लिखा है—

"हम लोगों में यह एक रिवाज है कि पहले किसी देशी नरेश का

---

* ". . . our own allies . . . victims, round whom was woven a web of cunning villainy, and who were trapped with falsehoods which now make day hideous by their revelation! Men of England! think of your boasted freedom, and let your pulse beat quick for those who deed by your sword in defence of their own liberties and homes, and for that smaller, but far more wretched, band, once your friends, once aye! your benefactors, now lingering out a miserable exile in a distant land, whose jailers you now pay, whose hospitality, whose alliance, you once sought. Women of England! think of the mothers and sisters of princes, stripped of their ornaments, torn from their homes, driven to wander houseless and friendless in the wild jungles and poisonous swamps. . . ."—*Dry Leaves from Young Egypt*, by Captain Eastwick, M. P., p. 238

† *The conquest of Sindh*,—by Sir William Napier.

राज्य ले लेते हैं और फिर पदच्युत नरेश या उसके उत्तराधिकारी की बुराइयाँ करने लगते हैं।"*

ब्रिटिश भारत के इतिहास में इसके अनेक ही शोकजनक उदाहरण मिलते हैं। किन्तु शायद अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों के लिखे हुए ब्रिटिश भारत के इतिहासों में भी कहीं पर कल्पित घटनाओं और लज्जास्पद झूठों की इतनी अधिक और इतनी भयङ्कर मिसालें न मिलेंगी, जितनी सर विलियम नेपियर कृत "सिन्ध की विजय" में। अपने भाई चार्ल्स नेपियर और उसके साथियों के कृत्यों को थोड़ा बहुत जायज़ क़रार देने के लिए विलियम नेपियर ने सिन्ध के अमीरों और वहाँ की प्रजा दोनों के ऊपर अनेक कल्पित और अनसुने दोष आरोपित किए हैं। मिसाल के तौर पर, विलियम नेपियर ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि सिन्ध के अमीर लिखने पढ़ने से सर्वथा अनभिज्ञ थे, वे मादक द्रव्यों के व्यसनी थे, बूढ़े मीर रुस्तम ख़ाँ के विषय में उसने लिखा है कि वह निर्बल, शराबी और व्यभिचारी था। प्रजा की अवस्था के विषय में उसने लिखा है कि अमीरों का व्यवहार हिन्दुओं के साथ बहुत बुरा था ; बलूची लोग अपने हाथ से अपने बच्चों को मार डालते थे !† इत्यादि, इत्यादि।

---

* ". . . it is a custom among us . . . to take a native ruler's kingdom and then to revile the deposed ruler or his would be successor"—Sir John Kaye's. *History of the Sepoy War*, vol iii, p. 361.

† "And how did these monsters destroy their own children?

वास्तव में इस प्रकार के मिथ्या कलङ्क न केवल नेपियर और उसके साथियों के अमानुषिक अत्याचारों को ही जायज़ क़रार नहीं देते, बल्कि सिन्ध के अमीरों और वहाँ की प्रजा के जख़्मों के ऊपर नमक का काम करते हैं। हम इनमें से केवल मुख्य मुख्य इलज़ामों की असत्यता को कुछ निष्पक्ष अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों ही के शब्दों में दर्शाने का प्रयत्न करेंगे।

सर अलेक्ज़ेण्डर बर्न्स का भाई प्रसिद्ध डॉक्टर जेम्स बर्न्स, जो बहुत दिनों सिन्ध के अमीरों के साथ रह चुका था, लिखता है—

"जब मैं हैदराबाद जा रहा था तो मार्ग भर में मीर नसीर ख़ाँ के सद्गुणों और उसकी कवित्वशक्ति की प्रशंसा होती रही। मैंने अवसर पाकर मीर नसीर ख़ाँ से प्रार्थना की कि मुझे कृपा कर अपनी रची हुई कविताओं का संग्रह 'दीवाने जाफ़र' देने का अनुग्रह करें।"*

मीर नसीर ख़ाँ 'जाफ़र' के नाम से कविता किया करता था। इतिहास-लेखक ईस्टविक लिखता है कि अमीरों के कुल के न केवल समस्त पुरुष ही, बल्कि प्रत्येक स्त्री भी फ़ारसी और अरबी लिखना पढ़ना जानती थी।†

अमीरों के मादक द्रव्यों के उपयोग के विषय में डॉक्टर बर्न्स, जो महीनों उनमें से एक एक के साथ रहा, लिखता है—

---

etc., etc.,"—*Conquest of Sindh*, by Sir William Napier, part ii, p. 348.

* *Amirs of Sindh*,—by Dr. James Burns, F. R. S.

† *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 68.

"आम तौर पर मुसलमान नरेशों की अपेक्षा सिन्ध के अमीर अय्याशी और आरामतलबी में कम डूबे हुए हैं। × × × मुझे विश्वास है कि इस बात की पूरी तरह जाँच की जा चुकी है कि अमीर कभी भी मदिरा अथवा मादक द्रव्यों का उपयोग नहीं करते। × × × अमीरों के दरबार में कहीं हुक़्क़ा दिखाई नहीं देता और न उनके कुटुम्ब में कोई अफ़ीम तक खाता है।"*

कप्तान ईस्टविक, जिसे वर्षों तक सिन्ध में अमीरों के साथ रहने का अवसर मिला और जो वहाँ की प्रजा के हर श्रेणी के लोगों में पूरी तरह मिलता जुलता रहा, लिखता है —

"मैं सचाई के साथ कह सकता हूँ कि मैंने किसी भी अमीर के विरुद्ध कभी कोई ऐसी बात नहीं सुनी कि जो अधिकांश अङ्गरेज़ भद्र पुरुषों के विरुद्ध न कही जा सकती हो। × × × जहाँ तक मैंने सुना है, केवल एक मिसाल को छोड़ कर उस कुल के किसी भी व्यक्ति के ऊपर कभी किसी जुर्म का इलज़ाम नहीं लगाया गया × × ×।"†

जिस एक मात्र मिसाल का ईस्टविक ने ज़िक्र किया है वह १५ वर्ष पूर्व की यह घटना थी। कोई स्त्री बाहर से पढ़ाने के लिए मीर रुस्तम ख़ाँ के जनानख़ाने में जाया करती थी। राजकुल के एक युवक मोहम्मद ख़ाँ ने उस स्त्री के साथ अनुचित प्रेम दर्शाया। स्त्री के पिता को पता लग गया। उसने महल में घुस कर मोहम्मद ख़ाँ को बुरी तरह घायल कर दिया। मोहम्मद ख़ाँ बच गया। किन्तु मीर रुस्तम ख़ाँ ने इस मामले का पता चलने पर बजाय स्त्री के पिता

* *Amirs of Sindh*,—by Dr. James Burns, p. 67.

† *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 68.

अमीर रुस्तम ख़ाँ

[मूल चित्र सर जेम्स उटरम ने "ड्राइ लीव्ज़ फ्रॉम यंग इजिप्ट" के लेखक को भेंट किया था]

को किसी प्रकार का दण्ड देने के, निर्णय किया कि—'इतने घोर पाप के करने वाले के साथ हम कोई सम्बन्ध नहीं रख सकते।' मोहम्मद ख़ाँ को राजधानी से निकाल दिया गया, और फिर इसके बाद ज़िन्दगी भर उसे ख़ैरपुर लौटने की इजाज़त न मिली।*

यह घटना अमीर रुस्तम ख़ाँ के दरबार की है। हैदराबाद दरबार के अमीर नसीर ख़ाँ के जीवन की भी इस प्रकार की घटनाएँ ईस्टविक ने उद्धृत की हैं, जिनसे मालूम होता है कि स्त्री जाति और उनके सतीत्व और मान का सिन्ध के अमीरों को असाधारण ख़याल रहता था।

जिस बूढ़े अमीर मीर रुस्तम ख़ाँ को सर विलियम नेपियर ने 'शराबी' और 'अय्याश' बयान किया है, उसके विषय में पूना का अङ्गरेज़ सिविल सर्जन डॉक्टर पीयर्ट लिखता है—

"ख़ैरपुर का पदच्युत अमीर रुस्तम ख़ाँ, उसका सबसे छोटा लड़का अलीबख़्श, और भतीजा पदच्युत अमीर नसीर ख़ाँ मार्च सन् १८४४ से अब तक मेरी निगरानी में रहे हैं, और मुझे यह तसदीक़ करते हुए अत्यन्त सन्तोष अनुभव होता है कि इन मुसीबतों में भी उनका आचरण अत्यन्त उदार और उत्कृष्ट था। मैं अच्छी तरह कह सकता हूँ कि जब से मुझे उनके परिचय का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, मैंने कभी कोई बात भी ऐसी नहीं देखी जिससे किसी प्रकार की बदपरहेज़ी अथवा अय्याशी का उन पर अणुमात्र भी सन्देह किया जा सके; और मुझे इस बात की परीक्षा के काफ़ी अवसर मिले हैं, जिस समय चाहा मैं उनके पास पहुँच गया

* Ibid, p. 68.

हूँ। मीर रुस्तम की अवस्था इस समय ८० से ऊपर है, उसकी समस्त शक्तियाँ ज्यों की त्यों बनी हुई हैं, उसकी स्मरण शक्ति बहुत अच्छी है; वह अपनी धार्मिक क्रियाओं का ठीक ठीक पालन करता है, उसका रहन सहन परहेज़गारी का है, वह दिन में केवल एक बार खाना खाता है, और सिवाय पानी या दूध के और कोई चीज़ नहीं पीता।"*

करनल ऊटरम ने उस समय के उन समस्त अङ्गरेज़ राजनैतिक अफ़सरों की, जिन्हें समय समय पर सिन्ध के अमीरों के साथ रहने का अवसर मिला, इस विषय में गवाहियाँ जमा की हैं, और लिखा है कि वे सब गवाह एकमत से इस बात का समर्थन करते हैं कि सर विलियम नेपियर ने अपनी पुस्तक के अन्दर अमीरों के ऊपर जो जो इलज़ाम लगाए हैं वे सब के सब सर्वथा कल्पित हैं।†

इसके बाद हम केवल एक और अङ्गरेज़ कप्तान गॉर्डन की राय नीचे उद्धृत करते हैं जो बहुत दिनों तक हैदराबाद में अमीरों के साथ रहा। वह ऊटरम को लिखता है—

"आपके प्रश्न के उत्तर में मैं लिखता हूँ कि सिन्ध के अमीर हद दरजे के परहेज़गार मनुष्य हैं, वे शराब और हर प्रकार की मदिरा से बहुत सख़्त परहेज़ करते हैं, तम्बाकू से भी उन्हें बड़ी प्रबल घृणा है, वे तम्बाकू की गन्ध तक सहन नहीं कर सकते। इसलिए तम्बाकू और शराब पीने के विषय में हममें से बहुतों के लिए, जिन्हें कि अपनी अधिक उच्च सभ्यता

---

* *The Conquest of Sindh*, a *Commentary*, by Colonel Outram, part, ii, p. 524.

† "Ibid, part, ii.

और अधिक संयमी सदाचार का घमण्ड है, सिन्ध के अमीर एक आदर्श हैं।"*

मीर रुस्तम ख़ाँ के विषय में ईस्टविक लिखता है कि—"मीर रुस्तम प्रेम और आदर के योग्य मनुष्य था × × × उसके अन्दर मानव सहृदयता भरी हुई थी, वह सुशील, शान्त स्वभाव, दयावान और हद दरजे का सहनशील था।"

अमीरों के उच्च और आदर्श चरित्र के विषय में इससे अधिक सम्मतियाँ उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं है। पूना जेल के अन्दर मीर रुस्तम ख़ाँ की शोकजनक मृत्यु को वर्णन करते हुए ईस्टविक लिखता है—

"मीर रुस्तम के जीवन के अन्त के दिनों को उन लोगों के हाथों क़ैद ने कड़वा कर दिया था जिनके ऊपर उसने इतने अधिक उपकार किए थे। शीघ्र ही अत्याचारों के इस ढेर के नीचे दब कर बूढ़ा मीर रुस्तम समाप्त होगया।"

ईस्टविक लिखता है कि मीर रुस्तम ख़ाँ के पिता मीर सोहराब की मृत्यु सौ वर्ष की आयु में गिर कर हुई थी। मीर सोहराब कभी

---

* "I observe, therefore, in reply to your query, that the Amirs are the most temperate of men, rigidly abstaining from wine and every kind of liquor; while to smoking also, they have a strong aversion and can not even endure the smell of tobacco. In regard, therefore, to smoking and drinking, the Amirs are examples to most of us, who boast a higher civilization, and a more self-denying morality."—*Dry Leaves from Young Egypt* p. 286.

सिवाय पानी के और कोई चीज़ न पीता था, और वह भी दिन में केवल एक बार। "निस्सन्देह मीर रुस्तम उसी आयु को प्राप्त होता किन्तु अङ्गरेज़ों के हाथों उसने जो अन्याय सहन किए, उन अन्यायों ने उसके अन्यथा सबल शरीर को तोड़ डाला।" तथापि मीर रुस्तम की आयु मृत्यु के समय ८५ से ऊपर थी।

"अपने यहाँ के न्यायशासन में", ईस्टविक लिखता है कि, "अमीर दया की ओर अधिक झुकते थे, रक्त बहाने के वे अत्यन्त विरुद्ध थे।"*

हेड्ल ने बम्बई सरकार के नाम अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि सिन्ध में व्यापारियों की इतनी अच्छी तरह रक्षा की जाती है और उनके व्यापार को इतनी उत्तेजना दी जाती है कि दूसरे प्रान्तों और दूसरे देशों से व्यापारी लोग जा जा कर इन अमीरों के राज्य में बसते हैं।†

सिन्ध का समस्त व्यापार हिन्दुओं के हाथों में था, जिसमें ख़ास कर कराची के अन्दर मोतियों का व्यापार अत्यन्त लाभदायक था।

ईस्टविक लिखता है—

"सिन्ध के अमीरों के शासन में हैदराबाद का नगर अत्यन्त धन-सम्पन्न और आबाद होगया। × × × और उस समय, जब कि भारत के

---

* "In the administration of justice the Amirs erred on the side of clemency. They were most averse to the shedding of blood."—Ibid, p. 68.

† *Amirs of Sindh*, by Dr. J. Burnes, p. 16.

अन्दर स्वयं हमारे इलाक़ों में चारों ओर लूट और रक्तपात का दौर था, सिन्ध में शान्ति और सुशासन क़ायम था।"*

ईस्टविक के अनुसार सिन्ध के अमीरों की प्रजा ख़ुशहाल और सन्तुष्ट थी। किसान से लगान अधिकतर नाज के रूप में लिया जाता था और राज्य का भाग सदा के लिए नियत था। इसी कारण उन दिनों सिन्ध की समस्त भूमि हरी भरी और पैदावार से लहलहाती हुई नज़र आती थी।

आबपाशी के लिए सिन्ध के मुसलमान अमीरों की बनवाई हुई सिन्धु नदी की लम्बी नहर, जिसे फुलैली कहते हैं, अभी तक मौजूद है। यह नहर निर्माण कला का एक अत्यन्त सुन्दर नमूना है। इसका एक चमत्कार यह है कि इसमें जगह जगह इस तरह पर ढाल दिया गया है कि ब्रिटिश भारत की अन्य नहरों के समान इसे समय समय पर साफ़ कराने और मिट्टी निकलवाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

अमीरों की तुच्छ से तुच्छ प्रजा भी दाद फरियाद लेकर अपने नरेश के पास तक पहुँच सकती थी। हैदराबाद में अधिकांश आबादी मुसलमानों की थी, तथापि कच्छ, गुजरात और राजपूताने के अनेक धनाढ्य हिन्दू व्यापारी हैदराबाद में रहते थे। उन सबके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया जाता था। दिवाली के रोज़ हैदराबाद के समस्त नगर में यहाँ तक कि प्रत्येक मसजिद और मक़बरे में और सिन्धु नदी के दोनों तटों पर बड़े ज़ोर की रोशनी की

* *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 242

जाती थी। ईस्टविक लिखता है कि दिवाली की रात को भक्खर के क़िले का दृश्य अत्यन्त मनोरम होता था और चारों ओर जल में दीपक और लक्ष्मी की मूर्तियाँ तख़्तों के ऊपर बहती हुई दिखाई देती थीं।*

इस सब के विपरीत कम्पनी का शासन प्रारम्भ होते ही सिन्ध का सारा नक़शा बदल गया। "ज़मीन की पैदावार कम होने लगी, जगह जगह खेती बन्द हो गई, सैनिक शासन प्रारम्भ हो गया, हर श्रेणी के लोगों में असन्तोष फैल गया, जो लगान अमीर बिना किसी प्रयत्न के वसूल कर लेते थे, उसे वसूल करने में नए शासकों को कठिनाई होने लगी।"†

बड़े बड़े सिन्धी कर्मचारियों की जगह अङ्गरेज़ अफ़सर नियुक्त कर दिए गए। जनरल नेपियर सिन्ध का पहला गवरनर हुआ। ईस्टविक लिखता है कि—"चारों ओर दग़ाबाज़ी और लूट शुरू हो गई।"‡ प्रजा के जान माल की कोई हिफ़ाज़त न रही। लगान की पद्धति अत्यन्त बिगड़ गई। किसान के ऊपर भार इतना बढ़ा दिया गया कि जो लगान सन् १८४३ में ९, ३७, ९३७ रुपए था वह १८४४ में २७, ४०, ७२२ रुपए हो गया और सन् १८५० में २९, ८३, ७५०।

सर हेनरी पॉटिञ्जर, जिसकी अपेक्षा सिन्ध के साथ अङ्गरेज़ों

* " *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 89.

† Ibid, p. 71.

‡ "Then began a system of universal fraud and peculation." —*Dry Leaves from Young Egypt*, p. 306.

के सम्पर्क और व्यवहारों से कोई दूसरा अङ्गरेज़ अधिक परिचित न था और जो बाद में मद्रास का गवरनर हुआ, लिखता है—

"मेरी राय में चाहे हम किसी तरह की भी दलील क्यों न दें, सिन्ध के अमीरों के साथ हमारे व्यवहार से जो कलङ्क हमारी ईमानदारी और हमारी आबरू पर लग चुका है वह किसी तरह नहीं धुल सकता।"*

अन्त में हम सिन्ध के विजेता जनरल सर चार्ल्स नेपियर के ही कुछ शब्द उसके अपने कृत्य के विषय में उद्धृत करते हैं। जनरल नेपियर लिखता है—

"भारत में ज़्यादती अङ्गरेज़ों की ओर से की गई × × × कभी किसी भी बड़ी क़ौम ने इससे अधिक नीच और क्रूर अन्याय के लिए अपनी शक्ति का उपयोग नहीं किया। भारत (सिन्ध ?) को विजय करने में हमारा लक्ष्य, हमारे समस्त अत्याचारों का लक्ष्य धन था—पैसा था; कहा गया है कि पिछले साठ वर्ष के अन्दर एक हज़ार मिलियन पाउण्ड (अर्थात् लगभग दस अरब रुपया) भारत से निचोड़ा जा चुका है। इस धन का एक एक शिलिङ्ग ख़ून में से उठाया गया है, उसे पोंछा गया है और हत्यारों ने उसे अपनी जेबों में रख लिया है; किन्तु हम इस धन को चाहे कितना भी क्यों न पोंछें और धोवें उस पर से 'ख़ून का दाग़' नहीं 'मिट सकता'। यह दाग़ उसपर सदा के लिए क़ायम रहेगा; और यदि आसमान पर कोई ख़ुदा है, जिसके सामने कि किसी 'क़ौम के व्यापारिक हित' नहीं

* "No reasoning can, in my opinion, remove the fowl stain it (the case of the Amirs) has left on our faith and honour;"—Sir Henry Pottinger's letter to the *Morning Chronicle*, 8th January 1844.

देखे जाते तो निस्सन्देह हमें कभी न कभी अपने पाप का दण्ड मिलेगा, अन्यथा हम ख़ुदा को जो कुछ समझ बैठे हैं और आशा करते हैं वह सब मिथ्या है। 'तिजारती माल बनाने वाली एक महान क़ौम' की दृष्टि में न्याय और धर्म मज़ाक़ की चीज़ें हैं, इस तरह की क़ौम का सच्चा ख़ुदा 'धन' है। सम्भव है, मेरा विचार विचित्र प्रतीत हो, किन्तु वास्तव में मैं, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्वेच्छाचारियों की अपेक्षा, स्वेच्छाचारी नैपोलियन को अधिक पसन्द करता हूँ। जो मनुष्य चक्रवर्ती राज्य का आकांक्षी होता है वह आम तौर पर पराजित क़ौमों के भले के लिए शासन करता है; किन्तु जिन लोगों को चक्रवर्ती लूट की आकांक्षा होती है वे केवल अपने को धनी बनाने के लिए शासन करते हैं, उन्होंने दस करोड़ मनुष्यों के सुख का नाश कर दिया है। पहला मनुष्य स्वर्ग से गिरा हुआ फ़रिश्ता हो सकता है; किन्तु दूसरा मनुष्य नरक में पैदा हुआ शैतान है!"*

---

* "The English were the aggressors in India, . . . and a more base and cruel tyranny never wielded the power of a great nation. Our object in conquering India (Sindh?), the object of all our cruelties, was money—lucre; a thousand millions sterling are said to have been squeezed out of India in the last sixty years. Every shilling of this has been picked out of blood, wiped, and put into the murderers' pockets; but, wipe and wash the money as you will, the 'damned spot' will not 'out.' There it sticks for ever, and we shall yet suffer for the crime, as sure as there is a God in heaven, where the 'commercial interests of the nation' find no place, or, heaven is not what we hope and believe it to be. Justice and religion are mockeries in the eyes of 'a great manufacturing country,' for the true God of such a nation is Mammon. I may be singular, but, in truth, I prefer

ईस्टविक चकित होकर लिखता है कि—"क्या ये उसी मनुष्य के शब्द हो सकते हैं जो रक्त की नदी में से चल कर हैदराबाद के खज़ानों तक पहुँचा था।"

जो हो, सिन्ध की स्वाधीनता का अन्त हो गया और अङ्गरेज़ी माल की पखत के लिए एक नई विशाल मण्डी तथा इङ्गलिस्तान के 'लड़कों' की जीविका के लिए एक नया क्षेत्र तैयार हो गया।

इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट ने गवरनर-जनरल एलेनब्रु, सर चार्ल्स नेपियर और अङ्गरेज़ी सेना के लिए अङ्गरेज़ क़ौम की ओर से धन्यवाद का प्रस्ताव पास किया।

---

the despotic Napoleon to the despots of the East India Company. The man ambitious of universal power generally rules to do good to subdued nations; but the men ambitious of univeral peculation rule only to make themselves rich, to the destruction of happiness among a hundred-millions of people. The one may be a fallen angel; the other is a hell-born devil!"—*Lights and Shades of Military Life*, edited by Sir Charles Napier, pp. 297, 298.

उन्तालीसवाँ अध्याय

अन्य भारतीय नरेशों के साथ एलेनब्रु का व्यवहार

सींधिया

मराठा मण्डल के पाँच मुख्य स्तम्भों में सब से अधिक बलवान सींधिया था। माधोजी सींधिया के अधीन एक बार लगभग समस्त मुग़ल साम्राज्य के शासन की बाग इस कुल के हाथों में आ गई थी। कम्पनी के शासकों की सदा से इस राज्य पर आँखें थीं। माधोजी सींधिया के उत्तराधिकारी दौलतराव सींधिया को पङ्गुल करने के जो अनेक प्रयत्न किए गए, उनका ज़िक्र पिछले अध्यायों में किया जा चुका है। ग्वालियर राज्य के विरुद्ध लॉर्ड वेण्टिङ्क की साज़िशों का ज़िक्र भी ऊपर आ चुका है। तथापि सन् १८४३ तक महाराजा सींधिया अङ्गरेज़ कम्पनी का बाजगुज़ार न था। सन् १८३२ की पार्लिमेण्ट की एक रिपोर्ट में दर्ज है—

"द्वीपप्राय के अन्दर अकेला सींधिया ही एक ऐसा नरेश है

जिसने अभी तक अपनी ज़ाहिरा स्वाधीनता क़ायम रक्खी है।"*
उस समय तक अङ्गरेज़ों और सींधिया के बीच जितनी सन्धियाँ हुई थीं उनसे महाराजा सींधिया की स्वाधीनता में कोई अन्तर न पड़ता था, और न कम्पनी सरकार को महाराजा सींधिया के शासन में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार था।

७ फ़रवरी सन् १८४३ को महाराजा जङ्कोजी सींधिया की अचानक मृत्यु हो गई। जङ्कोजी के कोई औलाद न थी। कहा जाता है, विधवा महारानी की आयु केवल ११ वर्ष की थी। महारानी ने समस्त ग्वालियर दरबार की सम्मति से अपने एक निकट सम्बन्धी भागीरथराव को, जिसकी आयु उस समय आठ वर्ष की थी, गोद ले लिया। भागीरथराव जयाजीराव सींधिया के नाम से ग्वालियर की गद्दी पर बैठा। महारानी बालक जयाजीराव की ओर से रीजण्ट नियुक्त हुई। किन्तु महारानी की आयु भी कम थी, इसलिए राज्य का समस्त प्रबन्ध दरबार के सुपुर्द किया गया। उस समय के ऐतिहासिक उल्लेखों से स्पष्ट है और स्वयं लॉर्ड एलेनब्रु ने अपने पत्रों में स्वीकार किया है कि ग्वालियर दरबार बड़ी योग्यता और सफलता के साथ राज्य का समस्त कारबार चला रहा था।

तथापि इतिहास-लेखक जॉन होप लिखता है—

* "Within the Peninsula, Sindhia is the only Prince who preserves the semblance of independence."—*Report of the Select Committee of the House of Commons, 1832.*

"चूँकि लॉर्ड एलेनब्रु ने इस बात का पक्का इरादा कर लिया था कि पहले सींधिया राज्य के अधिकारों की अवहेलना की जाय और फिर उस राज्य की स्वाधीनता छीन ली जाय, इसलिए ज़रूरी तौर पर लॉर्ड एलेनब्रु के लिए पहला काम यह था कि महारानी की बाल्यावस्था का बहाना लेकर उसे अलग कर दे और उसकी जगह किसी ऐसे मनुष्य को रीजण्ट बना दे, जो ख़ुशी से हर बात में अङ्गरेज़ सरकार का कहना मान ले। शुरू में लॉर्ड एलेनब्रु ने अपना यह इरादा दूसरों पर ज़ाहिर नहीं किया। रीजण्ट चुनने का अधिकार ग्वालियर दरबार को था। दरबार की कौन्सिल के अन्दर उस समय केवल एक व्यक्ति ऐसा था जो अपनी क़ौम के हित के विरुद्ध कारवाई करने को राज़ी हो सकता था। यह व्यक्ति मामा साहब कहलाता था। इसलिए यद्यपि अभी तक यह उसूल चला आता था कि रेज़िडेण्ट रियासत के इस तरह के मामलों में हस्तक्षेप न करे, तथापि अब इस उसूल का उल्लङ्घन करके मामा साहब के चुने जाने के लिए एलेनब्रु ने अपनी शक्ति भर कोशिश की।"*

---

* "As Lord Ellenborough had firmly resolved, though his resolution was not then made known, first to disregard the rights of this state, and afterwards deprive it of its independence, the preliminary step would necessarily be to set aside the Maharanee on the ground of her infancy, and to put up in her place as Regent a person who would cheerfully do the bidding of the British Government. The election was in the hands of the Durbar. Now there was only one individual in that council who would lend himself to carry out an anti-national policy, and he was called the Mama Saheb. Accordingly the Resident laid aside the principle of non-intervention which hitherto had guided

महाराजा जङ्कोजी की मृत्यु का समाचार सुनते ही लॉर्ड एलेनब्रु ने आगरे की ओर प्रस्थान किया ; और विना किसी कारण आगरे के निकट ग्वालियर राज्य की सरहद पर कम्पनी की फ़ौजें जमा कर लीं। आगरे में बैठ कर वहाँ से लॉर्ड एलेनब्रु ने ग्वालियर दरबार के अन्दर साज़िशें शुरू कीं।

ग्वालियर दरबार उस समय नाबालिग़ महाराजा और रीजएट महारानी की ओर से राज्य-प्रबन्ध करने के लिए दादा ख़ासजीवाला नामक एक मनुष्य को सर्वसम्मति से प्रधान मन्त्री नियुक्त करना चाहता था। दादा ख़ासजीवाला योग्य, ईमानदार और सर्वप्रिय था। इसके विरुद्ध जिस मनुष्य को एलेनब्रु बढ़ाना चाहता था वह अयोग्य, अविश्वास्य और ग्वालियर के लोगों में अत्यन्त अप्रिय था। तथापि ठीक उस समय जब कि प्रधान मन्त्री का चुनाव होने वाला था, लॉर्ड ऐलेनब्रु का एक पत्र ग्वालियर पहुँचा, जिसमें लिखा था—

"गवरनर-जनरल ख़ुश होगा, यदि रीजएट का पद मामासाहब को दे दिया जाय।"*

राज्य की अवस्था उस समय निर्बल थी। कोई प्रौढ़ और प्रभावशाली नीतिज्ञ दरबार में न था। अङ्गरेज़ी सेना सरहद पर पड़ी हुई थी। इस सब पर दरबार के अन्दर अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट की,

---

his conduct and strained every nerve to effect this man's election." —*Sketch of the House of Sindhia*, by John Hope p. 42.

* "The Governor General would gladly see the Regency conferred upon the Mama Saheb."—Lord Ellenborough.

साज़िशें। परिणाम यह हुआ कि रीजण्ट के रूप में नहीं, किन्तु प्रधान मन्त्री के रूप में राज्य की वाग एक वार मामासाहव के हाथों में दे दी गई। किन्तु मामासाहव अधिक दिनों तक राज्य-सत्ता अपने हाथों में न रख सका। अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट के साथ उसकी साज़िशों के कारण शीघ्र ही सारा दरवार उसके विरुद्ध हो गया। महारानी की इच्छा के विरुद्ध रेज़िडेण्ट के उकसाने पर उसने अपनी एक छै वर्ष की भतीजी का महाराजा जयाजीराव के साथ विवाह कर देना चाहा। लगभग पन्द्रह दिन इस पर दरवार के नीतिज्ञों में परामर्श होता रहा। अन्त में २० मई सन् १८४३ को समस्त दरवारियों और महारानी ने एक मत से मामासाहव को पदच्युत कर दिया। मामासाहव को महारानी की आज्ञानुसार ग्वालियर छोड़ कर चला जाना पड़ा। २४ मई सन् १८४३ को मामासाहव ग्वालियर से रवाना हुआ। २६ मई को महारानी ने राज्य के समस्त दरवारियों और सरदारों को आज्ञा दी कि आप लोग मिल कर मामासाहव की जगह दूसरा मन्त्री चुनें। दरवार ने दादा खासजी-वाला को सर्व-सम्मति से मन्त्री नियुक्त किया।

लॉर्ड एलेनबरु ने अब यह एक नया वहाना गढ़ा कि सींधिया राज्य और अङ्गरेज़ी इलाक़े की मिली हुई सरहद पर कई जगह विद्रोह खड़े हो रहे हैं और डाके पड़ रहे हैं, जिन्हें ग्वालियर दरवार दमन करने में असमर्थ है। इतिहास-लेखक जॉन होप ने इस वहाने के थोथेपन और उसके झूठ को वड़ी सुन्दरता के साथ सावित किया है। उसने लिखा है कि ठीक उस समय जव कि लॉर्ड

एलेनब्रु ने सींधिया राज्य के प्रवन्ध में यह दोष निकाला, बुन्देलखण्ड में जो कि अङ्गरेज़ों के अधीन था और सागर व नरवदा के अङ्गरेज़ी इलाक़ों में जिनकी सरहदें सींधिया की सरहद से मिली हुई थीं पिछले दो वर्ष से अनेक विद्रोह हो रहे थे, और जगह जगह डाके पड़ रहे थे। यहाँ तक कि सींधिया की राजधानी ग्वालियर से केवल सौ मील दूर कुछ लोग खिमलासा नामक एक धन-सम्पन्न नगर को जो अङ्गरेज़ी इलाक़े में था, नाश कर देना चाहते थे और सींधिया की दो हज़ार सवसीडीयरी सेना द्वारा अङ्गरेज़ खिमलासा की रक्षा करने में लगे हुए थे। इसी समय अङ्गरेज़ी इलाक़े के एक दूसरे नगर वालावेहूत (?) को कुछ विद्रोही जला देना चाहते थे और ग्वालियर की विधवा महारानी की सेना वालावेहूत की रक्षा कर रही थीं। निस्सन्देह यदि विद्रोहियों अथवा डाकुओं का दमन करने की अयोग्यता के कारण किसी राज्य के शासन-प्रवन्ध में एक पड़ोसी नरेश को हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया जा सकता है तो लॉर्ड एलेनब्रु को ग्वालियर के शासन में हस्तक्षेप करने के वजाय ग्वालियर दरवार को कम्पनी के शासन में हस्तक्षेप करने का अधिकार मिलना चाहिए था। किन्तु लॉर्ड एलेनब्रु के लिए कोई भी वहाना काफ़ी था।

ग्वालियर का अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट करनल स्पायर्स एलेनब्रु के दिल का आदमी न था। इसलिए स्पायर्स को फ़ौरन् ग्वालियर से हटा कर उसकी जगह करनल स्लीमैन को, जिसकी वावत उस समय के इतिहास से साफ़ पता चलता है और उन दिनों यह वात

मशहूर थी कि उसका भारत के ठगों और डाकुओं पर वहुत बड़ा प्रभाव था, रेज़िडेण्ट नियुक्त करके ग्वालियर भेजा गया। यह स्लीमैन आगे चल कर अवध के अन्दर भी अपनी कूटनीति के लिए ख़ासा प्रसिद्ध हुआ।

लॉर्ड एलेनब्रु ने मलका विक्टोरिया के नाम १३ अगस्त सन् १८४३ के एक पत्र में स्वीकार किया है कि दादा ख़ासजीवाला एक अत्यन्त योग्य शासक था। ग्वालियर की सेना की तनख़ाहें कुछ दिनों से चढ़ी हुई थीं। दादा ख़ासजीवाला ने तमाम पिछली तनख़ाहें अदा कर दीं और भविष्य में ठीक समय पर सब को तनख़ाहें मिलने का प्रवन्ध कर दिया। मामासाहब ने राज्य के अनेक योग्य पदाधिकारियों को लॉर्ड एलेनब्रु के इशारे पर बरख़ास्त कर दिया था। दादा ख़ासजीवाला ने इन सब को फिर से अपने अपने पदों पर बहाल कर दिया। ग्वालियर राज्य की सेना में उस समय कई यूरोपियन और आधे यूरोपियन अफ़सर थे। इनमें से कुछ ने अपनी मातहत सेना को दरवार के विरुद्ध भड़काना शुरू किया। कहीं कहीं छोटे मोटे विद्रोह भी हो गए। दादा ख़ासजीवाला ने इनमें से कई अफ़सरों को बरख़ास्त करके रियासत से वाहर निकाल दिया। राज-माता और महाराजा जयाजीराव ये दोनों भी दादा से प्रसन्न थे। यही सब वातें थीं जिनके कारण दादा ख़ासजीवाला अङ्गरेज़ों की नज़रों में खटक रहा था। लॉर्ड एलेनब्रु ने अपने पूर्वोक्त पत्र में महारानी विक्टोरिया को सूचना दी कि मैंने दादा ख़ासजीवाला और ग्वालियर दरवार

को दमन करने के लिए लगभग बारह हज़ार सेना और तोपख़ाना आगरे में जमा कर लिया है, तथा और अधिक सेना जमा की जा रही है।

दादा ख़ासगीवाला पर अब एक और विचित्र इलज़ाम लगाया गया। वह यह कि तुमने रीजण्ट महारानी के नाम एलेनब्रु के किसी एक पत्र को बीच में रोक लिया। इस इलज़ाम की बिना पर लॉर्ड एलेनब्रु ने महारानी और ग्वालियर दरबार को लिखा कि दादा ख़ासगीवाला को फ़ौरन् अङ्गरेज़ों के हवाले कर दिया जाय। निस्सन्देह एक स्वाधीन राज्य के प्रधान मन्त्री पर इस तरह का इलज़ाम अत्यन्त लचर और बेमाइने था। लॉर्ड एलेनब्रु की माँग भी न्याय, नीति और सन्धियों सब के विरुद्ध थी।

महारानी ने और ग्वालियर दरबार ने दोनों ने एक मत से लॉर्ड एलेनब्रु की इस माँग पर एतराज़ किया, और लॉर्ड एलेनब्रु से उस पर फिर से विचार करने की प्रार्थना की। एलेनब्रु अपनी ज़िद पर डटा रहा। वह काफ़ी सेना सरहद पर जमा कर चुका था। स्वयं ग्वालियर के अन्दर करनल स्लीमैन की साज़िशें जारी थीं। महारानी की प्रार्थना के उत्तर में एलेनब्रु ने साफ़ युद्ध की धमकी दी। कातर महारानी ने एलेनब्रु को सन्तुष्ट करने के लिए अपने योग्य मन्त्री और संरक्षक निर्दोष दादा ख़ासगी-वाला को क़ैद तक कर लिया और उसकी जगह रामराव फल-क्रिया को मन्त्री नियुक्त कर दिया। तथापि लॉर्ड एलेनब्रु को सन्तोष न हो सका। उसने दो विशाल सेनाएँ एक सींधिया राज्य

के उत्तर में और दूसरी पूर्व में जमा कीं। युद्ध में अब कोई कसर बाक़ी न रही थी। ग्वालियर दरबार युद्ध से बचना चाहता था। विवश होकर दरबार ने दादा ख़ासगीवाला को लॉर्ड ऐलेनब्रु के सुपुर्द कर दिया। लॉर्ड एलेनब्रु ने दादा को क़ैद कर लिया। दस वर्ष बाद बनारस में अङ्गरेज़ों की क़ैद के अन्दर सींधिया के इस वफ़ादार मन्त्री दादा ख़ासगीवाला की मृत्यु हुई।

एलेनब्रु की माँग अब पूरी हो चुकी थी। तथापि उसे सन्तोष न हुआ। मलका विक्टोरिया के नाम एलेनब्रु के १९ दिसम्बर सन् १८४३ के पत्र से पता चलता है कि वह शुरू से पञ्जाब पर हमला करना चाहता था और इस विचार से कि पञ्जाब पर हमला करने के समय सींधिया की सन्नद्ध सेना अङ्गरेज़ों को पीछे से दिक़ न करे, वह जिस तरह हो सके, पहले सींधिया की सेना का नाश कर देना चाहता था।

नया मन्त्री रामराव फलकिया एलेनब्रु से मिलने के लिए आगरे भेजा गया। एलेनब्रु ने रामराव फलकिया से एक और नई बात छेड़ी। उसने कहा कि कुछ वर्ष हुए बरहानपुर में दौलतराव सींधिया और अङ्गरेज़ों के दरमियान जो सन्धि हुई थी उसमें यह तय होगया था कि यदि किसी समय महाराजा सींधिया अपने यहाँ के किसी विद्रोह को दमन करने अथवा अपने शत्रुओं को परास्त करने के लिए अङ्गरेज़ सरकार से सेना की सहायता माँगे तो अङ्गरेज़ उसकी मदद करेंगे। इस धारा के अनुसार लॉर्ड एलेनब्रु ने रामराव फलकिया को सूचना दी

कि चूँकि ग्वालियर राज्य में इस समय विद्रोह मौजूद है, इसलिए अङ्गरेज़ सरकार ने महाराजा जयाजीराव सींधिया की सहायता के लिए अपनी सेना ग्वालियर भेजने का निश्चय कर लिया है। किन्तु न महाराजा सींधिया पर उस समय कोई आपत्ति थी और न महाराजा जयाजीराव ने या उसकी माता महारानी ने या ग्वालियर दरबार में किसी ने भी अङ्गरेज़ों से सहायता माँगी थी। इसके जवाब में लॉर्ड एलेनब्रु ने रामराव फ़लकिया से कहा कि महाराजा के नाबालिग़ होने के कारण महाराजा की आवश्यकताओं को समझने का अधिकार केवल अङ्गरेज़ गवरनर-जनरल को है। रामराव फलकिया इस उत्तर को सुन कर चकित रह गया। इसका अर्थ केवल यह था कि अब तक की तमाम सन्धियों और प्रतिज्ञापत्रों को रद्दी के टोकरे में फेंक कर लॉर्ड एलेनब्रु एक स्वाधीन, किन्तु नाबालिग़ नरेश के राज्य पर हमला करने के लिए कटिबद्ध था, और उसका कुछ न कुछ इलाक़ा हज़म कर लेना चाहता था।

इतिहास-लेखक होप ने लिखा है कि बरहानपुर की जिस सन्धि का लॉर्ड एलेनब्रु ने ज़िक्र किया था वह सन्धि तक अङ्गरेज़ों ही की इच्छा के अनुसार कुछ समय पहले रद्द क़रार दी जा चुकी थी। अर्थात् एलेनब्रु का सारा बहाना सिर से पाँव तक झूठा था।

इस प्रकार बिना किसी कारण के लॉर्ड एलेनब्रु ने महाराजा सींधिया के राज्य में घुस कर राजधानी ग्वालियर पर हमला किया। ग्वालियर दरबार इस हमले के लिए तैयार न था। २९ दिसम्बर

सन् १८४३ को महाराजपुर और पनियार नामक स्थानों पर दो प्रसिद्ध संग्राम हुए जिनमें टॉरेन्स के अनुसार अङ्गरेजी सेना को असाधारण हानि सहनी पड़ी। तथापि एलेनब्रु ने कम्पनी की पुरानी पद्धति के अनुसार कुछ अपनी सेना के बल और कुछ कूट-नीति के बल जयाजीराव सींधिया की सेना पर अन्त में विजय प्राप्त की। इतिहास-लेखक होप लिखता है कि सींधिया की सब-सीडीयरी सेना, जिसके कुछ सैनिक ठीक उसी गाँव के रहने वाले थे, जिस गाँव में महाराजा जयाजीराव सींधिया का जन्म हुआ था, अपने स्वामी के विरुद्ध अङ्गरेजों की ओर लड़े। जॉन होप ने यह भी बयान किया है कि किस प्रकार इन दोनों लड़ाइयों के बाद अङ्ग-रेजों ने सींधिया की सेना और प्रजा के साथ अनेक तरह के अत्या-चार किए, किस प्रकार लोगों को मकानों के अन्दर बन्द करके बाहर से आग लगा दी गई और सींधिया के इस तरह के अफ-सरों को जिन्होंने हार स्वीकार कर ली थी, दग़ा देकर मरवा डाला गया। होप ने इस समस्त मामले के सम्बन्ध में लॉर्ड एलेनब्रु के झूठ, उसकी कूटनीति और उसकी स्वार्थमय भूपिपासा को अच्छी तरह प्रकट किया है।

लॉर्ड एलेनब्रु ने अपने १६ फ़रवरी सन् १८४४ के एक पत्र में बतलाया है कि यदि इस समय वह समस्त सींधिया राज्य को अङ्ग-रेज़ी राज्य में मिलाने का प्रयत्न करता तो उसे डर था कि अन्य भारतीय नरेश कम्पनी के विरुद्ध भड़क उठेंगे, इसलिए एक नई सन्धि कर ली गई। ग्वालियर की सबसीडीयरी सेना की संख्या

बढ़ा दी गई। उसके ख़र्च के लिए सींधिया से कई नए जिले ले लिए गए। विधवा महारानी के हाथों से सब सत्ता छीन ली गई। तय कर दिया गया कि जब तक महाराजा जयाजीराव नाबालिग़ है, एक कौन्सिल राज्य का समस्त प्रबन्ध करे। कौन्सिल के लिए अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट की आज्ञाओं का मानना आवश्यक कर दिया गया। महारानी के लिए उसके अधिकारों के बदले में तीन लाख रुपए सालाना की पेनशन मञ्ज़ूर कर दी गई। इस प्रकार कम से कम दस साल के लिए ग्वालियर के राज्य का प्रबन्ध अङ्गरेज़ शासकों के हाथों में आ गया।

कैथल

जिन अन्य भारतीय नरेशों के साथ लॉर्ड एलेनब्रु का व्यवहार उल्लेखनीय है, उनमें से एक कैथल का राजा था। कैथल सतलज के इस पार करनाल से ३० मील पर एक सिख रियासत थी जिसने दुर्भाग्यवश सन् १८०९ में कम्पनी सरकार के साथ मित्रता की सन्धि कर ली थी। कैथल के राजा की मृत्यु होगई। उसके कोई पुत्र न था। किन्तु रानी को गोद लेने का अधिकार था। लॉर्ड एलेनब्रु ने फ़ौरन् तीन सौ सिपाहियों का एक दस्ता कैथल पर ज़बरदस्ती क़ब्ज़ा करने के लिए भिजवा दिया। एलेनब्रु लिखता है कि राजकुल के लोगों और दरबारियों ने अङ्गरेज़ी सेना को अकस्मात् अपनी राजधानी में देख कर सत्याग्रह शुरू कर दिया। इतने में आस पास की प्रजा शस्त्र लेकर राजधानी में जमा हो गई। उन्होंने

अङ्गरेजी सेना को मार कर पीछे हटा दिया। बचे खुचे अङ्गरेज़ सिपाहियों को करनाल लौट आना पड़ा।

यह घटना १० अप्रेल सन् १८४३ की थी। १४ अप्रेल को अठारह सौ नई सेना थानेश्वर में जमा की गई। १६ अप्रेल को इस सेना ने कैथल में प्रवेश किया। किन्तु मलका विक्टोरिया के नाम लॉर्ड एलेनब्रु के एक पत्र में लिखा है कि १५ तारीख़ ही को कैथल की सशस्त्र प्रजा विधवा महारानी का साथ छोड़ कर वहाँ से चल दी और कैथल दरबार के कुछ मन्त्री और नगर के कुछ व्यापारी अङ्गरेज़ों की ओर चले आए। सारांश यह कि कैथल पर अङ्गरेज़ कम्पनी का क़ब्ज़ा हो गया।

पञ्जाब

इससे कहीं अधिक विशाल राज्य जिसमें लॉर्ड एलेनब्रु ने अपने षडयन्त्र रचने शुरू किए, पञ्जाब का राज्य था। सन् १८३९ में महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु हुई। रणजीतसिंह का एक पुत्र खड्गसिंह पञ्जाब का राजा हुआ। किन्तु रणजीतसिंह के मरते ही समस्त पञ्जाब में विद्रोहों, हत्याओं और अराजकता का बाज़ार गरम हो गया। इस अराजकता के सम्बन्ध में दिसम्बर सन १८४३ की 'ब्रिटिश फ्रेण्ड ऑफ़ इण्डिया' नामक लन्दन की एक पत्रिका ने लिखा था—

"× × × हमें ज़बरदस्त सन्देह है कि कम्पनी ने रिशवतें दे दे कर इन उपद्रवों को खड़ा करवाया है और उन्हें भड़काया है। × × × एक धन-लोलुप कम्पनी जिसके पास किराए की एक सेना है, बिना लूट मार के नहीं

रह सकती × × × चूँकि इस समय ज़रूरी तौर पर इङ्गलिस्तान की तमाम शक्ति इन उपद्रवों की जड़ में है, इसलिए हमें बिलकुल साफ़ दिखाई दे रहा है कि लाहौर का नगर लूटा जायगा और वहाँ के राज्य के टुकड़े टुकड़े किए जायँगे।"*

ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन, और लॉर्ड एलेनब्रु के अनेक पत्रों से स्पष्ट है कि बहुत दिनों पहले से पञ्जाब के ऊपर अङ्गरेज़ों के दाँत थे और लॉर्ड एलेनब्रु ने महाराजा खड़गसिंह और शेरसिंह के अनुयायियों, कर्मचारियों और सरदारों को सिख राज्य के विरुद्ध अपनी ओर फोड़ने के अनेक प्रयत्न किए। अफ़ग़ानों और सिखों को एक दूसरे के विरुद्ध भड़काया गया और लड़ाया गया। एक पत्र में लॉर्ड एलेनब्रु ने लिखा है कि मैंने जलालाबाद पर सिखों को इसलिए क़ब्ज़ा कर लेने दिया ताकि प्रधान सिख सेना लाहौर और अमृतसर से हट कर जलालाबाद की ओर चली जाय और मुझे राजधानी लाहौर पर हमला करने का मौक़ा मिल जाय। जनरल वेन्चुरा नामक एक यूरोपियन अफ़सर उन दिनों पञ्जाब की सेना में अङ्गरेज़ों का गुप्तचर था। २० अक्तूबर सन् १८४३ को लॉर्ड एलेनब्रु ने ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन को लिखा कि मुझे आशा

* ". . . we strongly suspect the Company's corrupt influence has been employed in framing and fomenting these plots, . . . a mercenary Company, wielding a hireling army, can not live but by plunder. . . we see too clearly, that backed as it necessarily now is, by all the resources of Britain, Lahore will be sacked, the Kingdom rent in pieces."—*The British Friend of India*, December 1843, pp. 247, 248.

है कि एक दो वर्ष के अन्दर ही पञ्जाब हमारे हाथों में आ जायगा। सन् १८४४ में राजा हीरासिंह लाहौर दरबार का प्रधान मन्त्री था। अङ्गरेज़ों ने सिख सेना को राजा हीरासिंह के विरुद्ध भड़काया और जम्मू के राजा गुलाबसिंह को लाहौर दरबार के विरुद्ध उकसाया। लॉर्ड एलेनब्रु को आशा थी कि नवम्बर सन् १८४५ तक मुझे लाहौर पर हमला करने का अवसर मिल जायगा। एलेनब्रु के पत्र इस सम्बन्ध में वास्तव में पढ़ने योग्य और पाश्चात्य कूटनीति का एक सुन्दर नमूना हैं।

मई सन् १८४४ में जब कि बालक दलीपसिंह लाहौर की गद्दी पर था, अङ्गरेज़ों ने भाई भीमसिंह, अतरसिंह और काश्मीरासिंह के अधीन एक सेना थानेश्वर से दलीपसिंह और उसके मन्त्री राजा हीरासिंह पर हमला करने के लिए लाहौर भिजवाई। ७ मई को फ़ीरोज़पुर के निकट इस सेना का लाहौर दरबार की सेना के साथ संग्राम हुआ जिसमें भीमसिंह, अतरसिंह और काश्मीरासिंह तीनों देशद्रोही मारे गए। अतरसिंह उस अजीतसिंह का भाई था, जिसने रणजीतसिंह के पुत्र महाराजा शेरसिंह की हत्या की थी। अङ्गरेज़ हीरासिंह की जगह अतरसिंह को मन्त्री बनाना चाहते थे। काश्मीरासिंह के विषय में कहा जाता है कि वह महाराजा रणजीतसिंह का दत्तक पुत्र था। सम्भव है कि उसे दलीपसिंह की जगह गद्दी देने का विचार रहा हो। अङ्गरेज़ों की यह कारवाई महाराजा रणजीतसिंह के साथ उनकी सन्धि का स्पष्ट उल्लङ्घन थी। लॉर्ड एलेनब्रु के उपद्रव पञ्जाब के अन्दर

इसके बाद भी जारी रहे, किन्तु उनका फल पकने से पहले ही उसे भारत छोड़ कर इङ्गलिस्तान चला जाना पड़ा। तथापि जाने से पहले वह पञ्जाब की सरहद पर देशी और अङ्गरेज़ी फ़ौजों, तोपों, किश्तियों, पुल बाँधने के सामान इत्यादि आगामी युद्ध की समस्त सामग्री का पूरा इन्तज़ाम कर गया था।

निज़ाम

दक्षिण हैदराबाद के विरुद्ध एलेनब्रु ने अनेक साज़िशें कीं। मुसलमानों के वह विरुद्ध था ही। निज़ाम को आर्थिक कठिनाइयों में फँसा कर, और उसे क़रज़े दे देकर एलेनब्रु धीरे धीरे उसके ज़रख़ेज़ राज्य को हड़प लेना चाहता था। हैदराबाद के लगभग आधे क़िले उन दिनों वीर और वफ़ादार अरब सिपाहियों के संरक्षण में थे। एलेनब्रु इन अरबों को निज़ाम के राज्य से निकाल देना चाहता था।

मलका विक्टोरिया के नाम एलेनब्रु के १३ अगस्त सन् १८४३ के एक पत्र में लिखा है—

"निज़ाम की सरकार की आर्थिक कठिनाइयों के कारण पुराने मन्त्री ने इस्तीफ़ा दे दिया है। इन कठिनाइयों का परिणाम यह होता नज़र आता है कि हम निज़ाम को दस लाख रुपए क़र्ज़ देंगे और उसके बदले में निज़ाम का समस्त राज्य यदि सदा के लिए नहीं तो अनेक वर्षों के लिए अङ्गरेज़ों के शासन में आ जायगा। यह क़र्ज़ हमें फ़ौज को देने के लिए और कुछ साहूकारों और दूसरे लोगों के क़र्ज़ अदा करने के लिए देना पड़ेगा। मैंने

कई बातों पर निज़ाम का फ़ैसला पूछा है। चन्द रोज़ के अन्दर उसका फ़ैसला मालूम हो जायगा।"

किन्तु लॉर्ड एलेनब्रु उत्तरीय भारत में इतना फँसा हुआ था कि अपने अल्प शासन-काल के अन्दर वह निज़ाम राज्य के विषय में अपनी इच्छा पूरी न कर सका।

जेतपुर

एक और छोटी सी रियासत जेतपुर नाम की बुन्देलखण्ड में थी, जिसके स्वतन्त्र अस्तित्व को लॉर्ड एलेनब्रु ने समाप्त कर दिया। केवल जिसकी लाठी उसकी भैंस के सिद्धान्त पर २७ नवम्बर सन् १८४२ को लॉर्ड एलेनब्रु ने जेतपुर के दोनों क़िलों पर क़ब्ज़ा कर लिया और ७ दिसम्बर को जेतपुर का राज्य अपने हाथों में लेकर बुन्देलखण्ड के ही एक दूसरे राजा को, जो अङ्गरेज़ों के कहने में था, सौंप दिया। जेतपुर का पहला राजा लगभग दस साथियों सहित राज्य छोड़ कर भाग गया। इस काम में मेजर स्लीमैन ने एलेनब्रु को सबसे अधिक सहायता दी।

अवध

अपने से पूर्व के अन्य गवरनर-जनरलों के समान एलेनब्रु भी अवध के नवाब से समय समय पर खूब धन चूसता रहा। १६ सितम्बर सन् १८४२ को एलेनब्रु ने ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन को लिखा—

"मैंने अवध के बादशाह से दस लाख और बतौर क़र्ज़ वसूल कर लिए हैं।"

दिल्ली सम्राट

दिल्ली सम्राट की प्राचीन मान मर्यादा को लॉर्ड ऐमहर्स्ट के समय से लेकर प्राय: प्रत्येक गवरनर-जनरल ने थोड़ा बहुत आघात अवश्य पहुँचाया। अङ्गरेज़ शासक इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि यदि उस समय किसी एक व्यक्ति के झण्डे के नीचे भारत के हिन्दू और मुसलमान मिला कर फिर से अपनी स्वाधीनता के लिए हाथ पैर मार सकते थे, तो वह व्यक्ति केवल दिल्ली का मुग़ल सम्राट ही हो सकता था। दिल्ली सम्राट के मान पर वार करना उस समय भारत के राष्ट्रीय मान पर वार करना था। सम्राट बहादुरशाह उस समय दिल्ली के तख़्त पर था। सन् १८४२ तक यह नियम चला आता था कि जो कोई अङ्गरेज़ दिल्ली सम्राट से मिलने जाता था वह अपनी पदवी के अनुसार कुछ न कुछ नज़र सम्राट के सामने पेश करता था। इस नियम के अनुसार प्रत्येक गवरनर-जनरल मुलाक़ात के समय एक सौ एक अशरफ़ी सम्राट की नज़र किया करता था। लॉर्ड एलेनब्रु ने सन् १८४२ में सम्राट के सामने अङ्गरेज़ों की ओर से इस प्रकार नज़रों का पेश किया जाना क़तई बन्द कर दिया।

एलेनब्रु की हार्दिक इच्छा यह भी थी कि यदि हो सके तो दिल्ली के नगर और क़िले पर क़ब्ज़ा करके उसे ब्रिटिश भारत की राजधानी बनाया जाय। किन्तु ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन ने अपने २७ सितम्बर सन् १८४२ के पत्र में उसे आगाह कर दिया कि मुग़ल

सम्राट और उसके कुल के मान में इससे अधिक हस्तक्षेप करना अङ्गरेज़ी राज्य के लिए ख़तरनाक साबित हो सकता है। इस पत्र के उत्तर में १८ दिसम्बर सन् १८४२ को लॉर्ड एलेनब्रु ने ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन को लिखा—

"× × × मैं पहले ही आपके समान इस नतीजे को पहुँच चुका था कि कोई ऐसा काम करना जिससे यह मालूम हो कि हम बूढ़े सम्राट के साथ अत्याचार कर रहे हैं, उचित न होगा। यह सम्भव है कि मेरा उत्तराधिकारी सम्राट के उत्तराधिकारी के साथ कोई ऐसा समझौता कर सके जिससे दिल्ली का क़िला हमारे हाथों में आ जाय। साम्राज्य की पुरानी राजधानी का हमारे हाथों में होना और हमारा वहाँ से बैठ कर शासन चलाना मुझे सदा से एक बहुत बड़ा लक्ष्य प्रतीत हुआ है।"*

लॉर्ड एलेनब्रु की वापसी

केवल ढाई साल गवरनर-जनरल रहने के बाद १ अगस्त सन् १८४४ को लॉर्ड एलेनब्रु ने अपनी पदवी का भार लॉर्ड हार्डिञ्ज को सौंप दिया। जाने से पहले एलेनब्रु ने इस देश की ग़रीब प्रजा के लिए नमक का महसूल तक बढ़ा दिया। फ़ौज के लिए

---

* ". . . I had already come to your conclusion that it would be an unadvisable step to do anything having the appearance of violence towards the old King. With his successor, my successor may be able to make some arrangement for the transfer to us of the citadel. To have in our hands the ancient seat of Empire, and to administer the Government from it, has ever seemed to me to be a very great object."—Ellenborough to the Duke of Wellington, December, 18, 1842.

नई बारगों और छावनियों के बनवाने में उसने इतना अधिक खर्च किया कि कहा जाता है, कम्पनी के डाइरेक्टर उससे असन्तुष्ट हो गए, और यह भी उसके इतने जल्दी वापस बुला लिए जाने का एक कारण था। दूसरा कारण डाइरेक्टरों के उससे नाराज़ होने का यह बताया जाता है कि वह मुसलमानों को नाराज़ करके हिन्दुओं को ख़ुश करना चाहता था। डाइरेक्टरों में सम्भवतः लॉर्ड मैकॉले की राय के आदमी अधिक थे। वास्तव में, इस विषय में अङ्गरेज़ी शासन की तराज़ू का पलड़ा कभी भी देर तक एक ओर को झुका हुआ नहीं रहा। एलेनब्रु के समय से आज तक इस विषय में ब्रिटिश राजनीति बारी बारी कभी एक ओर और फिर कभी दूसरी ओर को झुकती दिखाई दी है।

चालीसवाँ अध्याय

पहला सिख युद्ध

हाराजा रणजीतसिंह के समय से ही कम्पनी के शासकों के पञ्जाब पर दाँत लगे हुए थे। लॉर्ड एलेनब्रु ने रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद पञ्जाब के अन्दर विद्रोह खड़े करने और अराजकता फैलाने का पूरा प्रयत्न किया। सिखों के साथ युद्ध करने की उसने तैयारी भी कर ली थी। किन्तु सिख युद्ध के श्रीगणेश करने का श्रेय गवरनर-जनरल सर हेनरी हार्डिञ्ज को प्राप्त हुआ। यही सर हेनरी हार्डिञ्ज के शासन-काल की सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटना थी।

लॉर्ड एलेनब्रु ने १७ जून सन् १८४४ को एक पत्र में अपने मित्र मेजर ब्रॉडफ़ुट को लिखा—

"तुमने सुना होगा कि डाइरेक्टरों ने मुझे वापस बुला लेना उचित समझा है। मेरा उत्तराधिकारी मेरे तमाम विचारों को पूरा करेगा। वह मेरा अत्यन्त विश्वस्त मित्र है, और पिछले तीस साल से समस्त सार्वजनिक प्रश्नों पर मैं उसके साथ पत्र व्यवहार करता रहा हूँ।"

निस्सन्देह गवरनर-जनरल हार्डिञ्ज ने एलेनब्रु के काम को

ज्यों का त्यों जारी रक्खा। गवरनर-जनरली का पद सँभालते ही उसने पञ्जाब की सरहद पर युद्ध की तैयारी और अधिक ज़ोरों के साथ शुरू कर दी। सतलज नदी के दाईं ओर उस समय महाराजा रणजीतसिंह के बालक पुत्र महाराजा दलीपसिंह का राज्य था, और बाईं ओर फ़ीरोज़पुर, लुधियाना, अम्बाला और मेरठ, चार जगह अङ्गरेज़ों की मुख्य छावनियाँ थीं। एलेनब्रु के जाते समय फ़ीरोज़पुर की छावनी में ४,५९६ सिपाही और बारह तोपें थीं, हार्डिञ्ज ने इसे बढ़ा कर १०,४७२ सिपाही और २४ तोपें कर दीं। लुधियाने की छावनी में ३,०३० सिपाही थे, जिन्हें हार्डिञ्ज ने बढ़ा कर ७,२३५ कर दिए। अम्बाले की छावनी में हार्डिञ्ज से पहले ४,११३ सिपाही और २४ तोपें थीं, जिन्हें हार्डिञ्ज ने बढ़ा कर १२,९७२ सिपाही और ३२ तोपें कर दीं। मेरठ की छावनी में ५,८७३ सिपाही और १८ तोपें थीं, जिनकी जगह हार्डिञ्ज ने ९,८४४ सिपाही और २५ तोपें कर दीं। इस प्रकार इन चार छावनियों के अन्दर १७,६१२ सिपाहियों और ६६ तोपों को बढ़ा कर हार्डिञ्ज ने ४०,५२३ सिपाही और ९४ तोपें कर दीं। खास कर लुधियाना और फ़ीरोज़पुर की छावनियों को, जो दोनों सतलज के ऊपर थीं, उसने खूब मज़बूत कर लिया। सितम्बर सन् १८४५ में उसने ५६ बड़ी बड़ी किश्तियाँ फ़ीरोज़पुर के निकट मँगा कर जमा कर लीं। लॉर्ड एलेनब्रु का विचार नवम्बर सन् १८४५ तक इस सब तैयारी को पूरा कर लेने का था। हार्डिञ्ज ने इस मियाद के अन्दर ही तमाम तैयारी पूरी कर ली।

अब पञ्जाब पर हमला करने के लिए केवल एक बहाने की आवश्यकता थी। महाराजा दलीपसिंह के नाबालिग़ होने के कारण उसकी माता रानी झिन्दाँ राज्य का अधिकतर कारबार चलाती थी। कहा जाता है कि प्रधान मन्त्री राजा लालसिंह महारानी झिन्दाँ का प्रेमपात्र और लाहौर दरबार में सब से अधिक प्रभावशाली था। कम्पनी के प्रतिनिधियों ने अपना मतलब पूरा करने के लिए अब लाहौर दरबार के कई मुख्य मुख्य व्यक्तियों को नाबालिग़ दलीपसिंह, महारानी झिन्दाँ और अपने देश तीनों के विरुद्ध अपनी ओर फोड़ लिया। इनमें सब से पहला व्यक्ति प्रधान मन्त्री राजा लालसिंह था। फ़ीरोज़पुर की छावनी में उन दिनों एक कप्तान निकल्सन रहता था। इतिहास-लेखक कनिङ्घम लिखता है—

"यह बात उस समय काफ़ी असन्दिग्ध और प्रसिद्ध थी कि लालसिंह का फ़ीरोज़पुर के अङ्गरेज़ एजण्ट कप्तान निकल्सन के साथ पत्र व्यवहार था, किन्तु निकल्सन की अकाल मृत्यु के कारण अब यह पक्की तरह मालूम नहीं हो सकता कि लालसिंह से क्या क्या वादे किए गए और उसे क्या क्या आशाएँ दिलाई गईं।"*

---

* "It was sufficiently certain and notorious at the time that Lal Singh was in communication with Captain Nicolson, the British agent at Ferozepur, but owing to the untimely death of that officer, the details of the overtures made and expectation held out, can not now be satisfactorily known."—*History of the Sikhs*, by Captain Cunningham, p. 305.

बहुत सम्भव है कि अदूरदर्शी और स्वार्थी लालसिंह को दलीपसिंह की जगह पञ्जाब की गद्दी का लालच दिया गया हो। जो हो, लालसिंह की विश्वासघातकता के और अधिक सुबूत देने की आवश्यकता नहीं है।

दूसरा प्रमुख व्यक्ति, जिसे अङ्गरेज़ों ने अपनी ओर फोड़ा, सरदार तेजसिंह नाम का सहारनपुर के ज़िले का रहने वाला एक ब्राह्मण था। यह तेजसिंह नाबालिग़ महाराजा दलीपसिंह की समस्त सेनाओं का प्रधान सेनापति था। धन के लोभ में आकर तेजसिंह भी अपने स्वामी तथा देश दोनों को बेचने के लिए तैयार हो गया।

तीसरा ज़बरदस्त देशद्रोही, जिसने पञ्जाब को विदेशियों के हाथों में सौंप दिया, जम्मू का राजपूत राजा गुलाबसिंह था। वास्तव में राजपूत इतिहास के अन्दर दूरदर्शी नीतिज्ञ प्रायः कम देखने में आते हैं। १९ वीं सदी के शुरू तक तरह तरह की अय्याशी और बदचलनी के कारण राजपूतों के चरित्र का पूरी तरह पतन हो चुका था। राजा गुलाबसिंह ने सिख क़ौम, अपने देश और अपने स्वामी महाराजा रणजीतसिंह के नाबालिग़ पुत्र, तीनों के साथ दग़ा करके अङ्गरेज़ों का साथ दिया, जिसके इनाम में उसे और उसके वंशजों को बाद में काशमीर की विशाल रियासत प्रदान की गई।

वास्तव में भारतीय चरित्र का वह पतन, जिसके कारण अङ्गरेज़ों ने इस देश में अपना साम्राज्य क़ायम कर पाया, किसी भी

दूसरे प्रान्त के इतिहास में इतनी बार और इतने ज़ोरों के साथ नहीं चमकता जितना पञ्जाब के इतिहास में। आज से सौ वर्ष पूर्व का एक अङ्गरेज़ अफ़सर लिखता है—

"हमें फ़ौरन् यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि भारत के एक एक संग्राम में हमारी विजय का कारण इतना अधिक हमारे अपने शानदार कारनामे नहीं हैं जितना कि एशियाई चरित्र की निर्बलता। × × × उसी उसूल पर हमें यह निश्चित समझ लेना चाहिए कि जब कभी भारत की आबादी का बीसवाँ हिस्सा भी इतना दूरदर्शी और इतना चालाक हो जायगा जितने कि हम हैं, तो हमें फिर उसी तेज़ी के साथ पीछे हट कर पहले की तरह एक तुच्छ चीज़ बन जाना पड़ेगा।"*

निस्सन्देह पञ्जाब के राजनैतिक पतन का मुख्य कारण पञ्जाब के उस समय के राजनैतिक नेताओं तथा प्रभावशाली कुलों के चरित्र का आश्चर्य जनक पतन था। विशेष कर महाराजा रणजीतसिंह के उत्तराधिकारियों का चरित्र काफ़ी गिर चुका था, जिस पर हम अधिक कहना नहीं चाहते। राजकुल से उतर कर

---

* "We must at once admit that our conquest of India was, through every struggle more owing to the weakness of the Asiatic character than to the bare effect of our own brilliant achievements; . . . on the same principle we may set down as certain, that whenever one twentieth part of the population of India becomes as provident and as scheming as ourselves, we shall run back again, in the same ratio of velocity, the same course of our original insignificance."—Carnaticus, in the *Asiatic Journal*, May, 1821.

लालसिंह, तेजसिंह और गुलावसिंह सिख साम्राज्य के तीन मुख्य स्तम्भ थे और ये तीनों ही स्वार्थ, विश्वासघात, और देशद्रोह की मूर्ति साबित हुए।

तैयारी पूरी करने के बाद हार्डिञ्ज के चित्त में आक्रमण करने का कोई बहाना ढूँढ़ निकालने की चिन्ता उत्पन्न हुई। लुधियाना पञ्जाब और ब्रिटिश भारत की सरहद पर था। मेजर ब्रॉडफ़ुट लुधियाने में गवरनर-जनरल का एजण्ट था। सिखों को भड़का कर अथवा जिस तरह हो सके, आक्रमण का बहाना ढूँढ़ने का काम ब्रॉडफ़ुट को सौंपा गया। एलेनब्रु इङ्गलिस्तान से बैठा हुआ पञ्जाब के मामले में इतना अधिक शौक़ ले रहा था कि ७ मई सन् १८४५ को उसने एक पत्र द्वारा लन्दन से ब्रॉडफ़ुट को सावधान किया कि—"आप जहाँ तक हो सके, लाहौर दरबार के विविध दलों में मेल न होने दें।" ब्रॉडफ़ुट अपने मालिकों की इच्छा को योग्यता के साथ पूरा करता रहा।

सतलज नदी के इस पार कुछ इलाक़ा महाराजा पटियाला इत्यादि कई सिख नरेशों का था और ये सब नरेश अङ्गरेज़ सरकार के संरक्षण में थे। कुछ थोड़ा सा इलाक़ा लाहौर दरबार का था जिससे अङ्गरेज़ों का कोई सम्बन्ध न था। महाराजा रणजीतसिंह के साथ कम्पनी की जो सन्धि हो चुकी थी उसमें अङ्गरेज़ों ने यह वादा किया था कि हम रणजीतसिंह के इस इलाक़े में किसी तरह का हस्तक्षेप न करेंगे। इतिहास-लेखक कप्तान कनिङ्घम लिखता है—

"मेजर ब्रॉडफ़ुट की सब से पहली कारस्वाइयों में से एक यह थी कि

उसने यह एलान कर दिया कि लाहौर दरबार का वह इलाक़ा, जो सतलज के इस पार है, उतना ही अङ्गरेज़ों के संरक्षण में है जितना कि पटियाला तथा अन्य नरेशों के इलाक़े; और यदि महाराजा दलीपसिंह की मृत्यु हुई अथवा उसे तख़्त से उतार दिया गया तो अङ्गरेज़ कम्पनी को इस इलाक़े के ज़ब्त कर लेने का अधिकार होगा। इस बात की सूचना बाज़ाब्ता सिख दरबार को नहीं दी गई, किन्तु सब को इसका पता था, और मेजर ब्रॉडफ़ुट ने इसी पर अमल किया × × ×।

"इसके अलावा (सतलज पर) पुल बाँधने के लिए जो किश्तियाँ बम्बई में तैयार कराई गई थीं वे सन् १८४५ की पतझड़ में फ़ीरोज़पुर की ओर रवाना कर दी गईं। मेजर ब्रॉडफ़ुट ने यह ज़ाहिर करने के लिए कि इन सशस्त्र किश्तियों को हमले का डर है हुकुम दिया कि सिपाहियों की ज़बरदस्त गारदें हिफ़ाज़त के लिए फ़ीरोज़पुर तक इन किश्तियों के साथ जायँ। किश्तियों के फ़ीरोज़पुर पहुँचते ही उसने अपने आदमियों को पुल बनाने का अभ्यास कराना शुरू किया। इन सब बातों से उसने क़रीब क़रीब यह ज़ाहिर कर दिया कि युद्ध शुरू हो गया है।"*

निस्सन्देह ब्रॉडफ़ुट का लक्ष्य किसी तरह सिखों को भड़का कर उनकी ओर से युद्ध शुरू कराना था।

उधर गवरनर-जनरल हार्डिञ्ज युद्ध का बहाना न मिलने से बेचैन हो रहा था।

२३ अक्तूबर सन् १८४५ को उसने लॉर्ड एलेनबरु के नाम एक पत्र में लिखा—

---

* Cunningham's *History of the Sikhs*, pp. 297, et seq.

"किन्तु पञ्जाब या तो सिखों का होना चाहिए और या अङ्गरेज़ों का; × × × देर करना केवल इस प्रश्न के निबटारे को कुछ दिनों के लिए टलाना है; साथ ही हमें याद रखना चाहिए कि अभी तक उन्होंने युद्ध का कोई कारण हमारे हाथों में नहीं दिया।"*

इससे नौ महीने पहले २३ जनवरी सन् १८४५ को उसने लॉर्ड एलेनब्रू को एक और पत्र में लिखा था—

"यदि अपने मित्र (पञ्जाब) को उसकी इस विपत्ति की अवस्था में हड़प जाने के लिए हमारे पास वजह भी हो, तो भी हम इस समय तैयार नहीं हैं और उस समय तक तैयार नहीं हो सकते जब तक कि लू न चलने लगे और सतलज ज़ोर से न बहने लगे। × × × किन्तु यदि यह महीना अक्तूबर का भी होता और हमारी सेना बिलकुल तैयार होती, तो भी हम पञ्जाब पर हमला करने का बहाना क्या ले सकते थे?

"आत्म-रक्षा हमसे यह चाहती है कि हम सिखों की सेना को तितर बितर कर दें; किन्तु × × × हम अपने उस दोस्त के इलाक़े पर क़ब्ज़ा जमा लेने का बहाना क्या बताएँगे, जिसने कि हमारी विपत्ति के समय में हमें अपनी बिगड़ी हुई अवस्था फिर से सुधारने में मदद दी थी?"†

---

* "The Punjab must, however, be Sikh or British ; . . . The delay is merely a postponement of the settlement of the question ; at the same time we must bear in mind that as yet no cause of war has been given."—Sir Henry Harding to Lord Ellenborough, October 23, 1845.

† "Even if we had a case for devouring our ally in his adversity, we are not ready and could not be ready untill the hot winds set in and the Sutlaj becomes a torrent; . . . but on

निस्सन्देह सिख युद्ध करना न चाहते थे, सिख निर्दोष थे, अङ्गरेज़ युद्ध के लिए उत्सुक थे, और आगामी युद्ध का एक मात्र कारण कम्पनी की साम्राज्य-पिपासा थी।

कहा जाता है कि मार्च सन् १८४५ के लगभग पहले सिखों ने अपनी सरहद से निकल कर अङ्गरेज़ी इलाक़े पर हमला किया; अर्थात् सिख सवार सेना सतलज पार करके हरीकेपत्तन के निकट तलवण्डी नामक ग्राम पर आ पहुँची। कम्पनी के अफ़सरों ने और मेजर ब्रॉडफ़ुट ने इस घटना को सिख सेना का कम्पनी के इलाक़े पर हमला करना ज़ाहिर किया है। किन्तु सुप्रसिद्ध इतिहास-लेखक कनिङ्घम से पता चलता है कि वास्तव में यह घटना क्या थी।

कनिङ्घम लिखता है कि सतलज के इस पार कोटकपूरा नाम का एक नगर लाहौर दरबार के राज्य में था। वहाँ पर नगर की रक्षा के लिए लाहौर दरबार की ओर से कुछ सवार पुलिस रहा करती थी। इस पुलिस की समय समय पर तबदीली होती रहती थी। इस मौक़े पर कुछ सिख सवार फ़ीरोज़पुर के निकट सतलज पार करके इन संरक्षकों की जगह लेने के लिए कोटकपूरा जा रहे थे। सतलज पार करने के लिए इन लोगों ने अङ्गरेज़ सरकार से पहले

---

what plea could we attack the Punjab, if this were the month of October, and we had our army in readiness?

"Selfpreservation may require the dispersion of this Sikh army; . . . but . . . how are we to justify the seizure of our friend's territory, who in our adversity assisted us to retrieve our affairs?"—Harding to Ellenborough, January 23, 1845.

से इजाज़त नहीं ली थी। कनिङ्घम का मत है कि इतने थोड़े से सवारों के लिए, जो इस तरह के काम के लिए जा रहे हों, सन्धि के अनुसार इजाज़त की कोई आवश्यकता न थी। तथापि मेजर ब्रॉडफ़ुट ने, जो केवल झगड़ा मोल लेना चाहता था, इन सिख सवारों को सतलज पार कर वापस लौट जाने की आज्ञा दी। सिख अफ़सर लड़ना न चाहते थे। उन्होंने मेजर ब्रॉडफ़ुट का कहना मान लिया। वे पीछे लौट पड़े। इस पर भी मेजर ब्रॉडफ़ुट की तसल्ली न हुई। उसने सेना सहित उनका पीछा किया। ठीक उस समय जब कि सिख सवार नदी को पार कर लौट रहे थे, अङ्गरेज़ी सेना उनके पीछे आ पहुँची। अङ्गरेज़ी सेना ने बिना कारण सिख सवारों पर गोली चला दी। सिख दलपति को इस बात की चिन्ता थी कि मैं अकारण अपने दरबार को अङ्गरेज़ों के साथ युद्ध में घसीटने का कारण न बन जाऊँ। इसलिए बिना अङ्गरेज़ी सेना की गोलियों का जवाब दिए वह शान्ति के साथ नदी पार कर पीछे लौट गया और यह छोटा सा मामला यहीं समाप्त हो गया। तथापि अपने मतलब के लिए इस राई का पहाड़ बनाया गया। यह समस्त बयान कप्तान कनिङ्घम का है।*

लाहौर दरबार अपनी सरहद के ऊपर कम्पनी की युद्ध की तैयारियों को और इन सब बातों को अच्छी तरह देख रहा था। वह अब समझ गया कि अङ्गरेज़ों का इरादा शान्ति क़ायम रखने का नहीं है। लाहौर दरबार को अङ्गरेज़ों के विरुद्ध और भी कई

* Cunningham's *History of the Sikhs*, p. 296.

शिकायतें थीं। उनकी एक शिकायत थी कि कई वार अङ्गरेजों ने पिछली सन्धि का उल्लङ्घन किया। निस्सन्देह ये शिकायतें अत्यन्त गम्भीर थीं। तथापि हमें उनके विस्तार में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। सिखों की शिकायतों में से एक शिकायत यह भी थी कि फ़ीरोज़पुर का नगर वास्तव में लाहौर दरबार का था, और अङ्गरेज़ों की प्रार्थना के अनुसार कुछ शर्तों पर उन्हें दे दिया गया था। इन शर्तों में से एक यह थी कि अङ्गरेज़ एक नियमित संख्या से अधिक सेना वहाँ पर न रक्खेंगे। तथापि अङ्गरेज़ बिना लाहौर दरबार की इजाज़त के फ़ीरोज़पुर की सेना को बेतहाशा बढ़ाते चले गए। लाहौर दरबार का कहना था कि सन्धि के अनुसार सिख कर्मचारियों इत्यादि के सतलज पार करने में अङ्गरेज़ों को किसी तरह की बाधा न डालनी चाहिए थी, किन्तु अङ्गरेज़ इस विषय में लगातार सन्धि का उल्लङ्घन करते रहे और बार बार लाहौर के उन कर्मचारियों का अपमान करते रहे जो सतलज पार करते थे, इत्यादि।

उस समय के सरकारी और ग़ैर सरकारी लेखकों ने अङ्गरेज़ों के ऊपर महाराजा रणजीतसिंह के अनेक एहसानों को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। अङ्गरेज़ों को प्रसन्न करने के लिए रणजीतसिंह ने अपने देशवासियों के साथ तथा आपत्ति में पड़े हुए जसवन्तराव होलकर के साथ विश्वासघात किया; और वह भी ऐसे अवसर पर जब कि यदि रणजीतसिंह होलकर का साथ दे जाता तो बहुत सम्भव, बल्कि लगभग निश्चित है कि अङ्गरेज़ी साम्राज्य

की जड़ें भारत से उसी समय उखड़ गई होतीं ।* दलीपसिंह के गद्दी पर बैठने के समय गवरनर-जनरल ने उसे रणजीतसिंह का न्याय्य उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया था और वादा किया था कि अङ्गरेज़ किसी दूसरे हक़दार का पक्ष न लेंगे। तथापि रणजीतसिंह के साम्राज्य को नष्ट करने, दलीपसिंह को उसके पैतृक राज्य से वञ्चित रखने और पञ्जाब को अङ्गरेज़ी साम्राज्य में मिलाने के लिए इस समय साज़िशों का एक विशाल जाल पूरा जा रहा था।

नवम्बर सन् १८४५ का महीना निकट आ रहा था। लॉर्ड एलेनब्रु के अनुमान के अनुसार अङ्गरेज़ों की तैयारी पूरी हो चुकी थी। अक्तूबर सन् १८४५ में सर हेनरी हार्डिञ्ज ने कलकत्ते से पञ्जाब की ओर प्रस्थान किया। सरहद से ऊपर अङ्गरेज़ी फ़ौजों के जमा होने और गवरनर-जनरल के उस ओर प्रस्थान करने से सिख पूरी तरह समझ गए कि अङ्गरेज़ों का इरादा क्या है। अभी तक भी लाहौर दरबार शान्ति और धैर्य के साथ सब बातों को बरदाश्त कर रहा था। इसी कारण अङ्गरेज़ों को हमला करने का कोई ज़ाहिरा बहाना हाथ न आ रहा था। अब हार्डिञ्ज ने लाल-सिंह और तेजसिंह पर ज़ोर दिया कि जिस तरह हो सके, सिख सेना को भड़का कर उससे अङ्गरेज़ी इलाक़े पर फ़ौरन् हमला करा दिया जाय, ताकि अङ्गरेज़ों को युद्ध छेड़ने का बहाना मिल सके। सिखों को भड़काने के लिए सेना में अनेक गुप्तचर नियुक्त किए गए। अन्त में देशघातक लालसिंह और तेजसिंह ने कुछ सिख सेना

---

* *The Career of Major Broadfoot*, p. 268.

को भड़काकर उससे अङ्गरेज़ी सरहद पर हमला करवा दिया। कप्तान कनिङ्गम इस विषय में लिखता है—

"यदि सिख सेनाओं के चतुर पञ्चों को अङ्गरेज़ों की सैनिक तैयारियाँ दिखाई न दे गई होतीं तो वे लालसिंह और तेजसिंह जैसे धनक्रीत मनुष्यों के कपटपूर्ण भड़काने की ओर कुछ भी ध्यान न देते, सिख सेना से ताने दे देकर पूछा गया कि क्या तुम ख़ालसा राज्य की सीमाओं को कम होते हुए और लाहौर के मैदान पर दूरवर्ती यूरोप के बाशिन्दों का क़ब्ज़ा होते हुए चुपचाप बैठे देखते रहोगे? उन लोगों ने उत्तर दिया कि हम लोग गुरु गोविन्द के राज्य की समस्त प्रजा की रक्षा करने में अपने प्राण न्योछावर कर देंगे, और आगे बढ़ कर हमला करने वालों की सरहद के अन्दर उनसे युद्ध करेंगे।"*

ज़ाहिर है कि सीधे और वीर सिख सिपाहियों के साथ कितनी नीच चाल चली गई। जिन लोगों को वे अपने नेता समझ रहे थे वे ही उनके सर्वनाश के लिए उत्सुक थे और उसकी तदबीरें कर रहे थे।

---

* "Had the shrewd committees of the armies observed no military preparations on the part of the English, they would not have heeded the insidious exhortations of such mercenary men as Lal Singh and Tej Singh, . . . the men were tauntingly asked whether they would quietly look on while the limits of the Khalsa dominion were being reduced, and the planes of Lahore occupied by the remote strangers of Europe, they answered that they would defend with their lives all belonging to the Commonwealth of Govind, and that they would march and give battle to the invaders on their own ground."—*History of the Sikhs*, by Cunningham, p. 299.

कप्तान निकल्सन ने मेजर ब्रॉडफ़ुट के नाम २३ नवम्बर सन् १८४५ के एक पत्र में साफ़ लिखा है कि राजा लालसिंह ने अङ्गरेजों की इच्छा के अनुसार सिख सेना को भड़का कर उससे अङ्गरेजी सरहद पर हमला करवाया। निस्सन्देह उस समय के लाखों ग़रीब सिख सिपाहियों की सच्ची वीरता, उनके बढ़े हुए धार्मिक उत्साह और उनके आत्मोत्सर्ग के मुक़ाबले में सिख नेताओं के कपट, उनके नीच स्वार्थ, उनके देशद्रोह तथा उनके विश्वासघात का दृश्य अत्यन्त दुखकर है।

सारांश यह कि ठीक नवम्बर सन् १८४५ के मध्य में लालसिंह ही के अधीन सिख सेना लाहौर से चल पड़ी। इस सेना ने सतलज नदी को पार किया और अङ्गरेजों को पञ्जाब 'हड़पने' का बहाना हाथ आया। वास्तव में सारा नाटक पहले से निश्चित था।

हैदरअली, दौलतराव सींधिया तथा अन्य भारतीय नरेशों के समान महाराजा रणजीतसिंह ने भी अनेक यूरोपियन अफ़सरों को अपनी सेना में नौकर रख रक्खा था। ये यूरोपियन अफ़सर सङ्कट के समय अपने हिन्दोस्तानी मालिकों की ओर प्रायः कभी भी नमकहलाल साबित नहीं हुए। इन्हीं में एक जनरल वेन्चुरा इस समय लाहौर सेना के अन्दर अङ्गरेजों का ख़ास गुप्तचर था। सिखों की सैनिक कौन्सिल ने सब से पहला दूरदर्शिता का कार्य यह किया कि इस तरह के समस्त यूरोपियन अफ़सरों को अपनी सेना से बरख़ास्त कर दिया। किन्तु अपने घर के भेदियों का उन्हें उस समय तक भी पता न था।

युद्ध का काफ़ी बहाना मिल गया। १३ दिसम्बर सन् १८४५ को गवरनर-जनरल सर हेनरी हार्डिञ्ज ने महाराजा दलीपसिंह के साथ युद्ध का एलान किया और इस एलान द्वारा सतलज के इस पार के दलीपसिंह के तमाम इलाक़े को कम्पनी के राज्य में मिला लिया। पञ्जाब के सरदारों तथा पञ्जाब की प्रजा के नाम गवरनर-जनरल का यह एलान, इस तरह के अन्य राजनैतिक एलानों के समान, झूठ और छल से भरा हुआ था। इस एलान द्वारा पञ्जाब के जागीरदारों ज़मींदारों, सरदारों और वहाँ की प्रजा को बहका कर और प्रलोभन दे देकर बालक दलीपसिंह के विरुद्ध करने की पूरी चेष्टा की गई।

सरकारी उल्लेखों से मालूम होता है कि गवरनर-जनरल हार्डिञ्ज को उस समय सिखों के दिल्ली पर हमला करने की आशङ्का थी। इसलिए दिल्ली में सेना बढ़ा दी गई और चारों ओर की सड़कों की रक्षा का विशेष प्रबन्ध किया गया।

यदि राजा लालसिंह अङ्गरेज़ों से मिला न होता तो सिख सेना के सतलज पार करते ही वह फ़ीरोज़पुर की अङ्गरेज़ी छावनी पर हमला करता। किन्तु वह सिखों को उलटा मुदकी की ओर बढ़ा ले गया। १८ दिसम्बर सन् १८४५ को मुदकी में दोनों ओर की सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ। अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों का कथन है कि जिस भयङ्कर वीरता के साथ सिखों ने अङ्गरेज़ी सेना का मुक़ाबला किया, और जितनी ज़बरदस्त हानि अङ्गरेज़ों को सहनी पड़ी, उससे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि

यदि सिख सेना के साथ विश्वासघात न किया जाता तो मुदकी के ऐतिहासिक मैदान में अङ्गरेज़ी सेना का एक सिपाही भी ज़िन्दा न बचता। किन्तु राजा लालसिंह और तेजसिंह की कोशिशों से सिख सिपाहियों को छर्रे की जगह सरसों और बारूद की जगह रँगा हुआ आटा बोरों में भर कर दे दिया गया। स्वभावतः मुदकी का मैदान अङ्गरेज़ों के हाथों में रहा।

मुदकी की लड़ाई के बाद सिख सेना वहाँ से हट कर फ़ीरोज़-शहर पहुँची। फ़ीरोज़शहर में फिर एक ज़बरदस्त संग्राम हुआ, जिसमें एक बार विजय सिखों की रही। कहा जाता है कि फ़ीरोज़शहर में अङ्गरेज़ों को जितनी भारी हानि सहनी पड़ी उतनी भारत के किसी भी दूसरे मैदान में नहीं सहनी पड़ी थी। स्वयं गवरनर-जनरल हार्डिञ्ज, जो अपनी सेना के साथ था, इतना घबरा गया कि उस दिन रात को उसने अङ्गरेज़ अफ़सरों और उनके बाल बच्चों को पीछे हटा लेने का पूरा प्रबन्ध कर लिया। शेष अङ्गरेज़ अफ़सर इससे भी अधिक घबराए हुए थे। यदि पूरी सिख सेना उस समय आगे बढ़ आती तो अङ्गरेज़ों का पता न चलता, किन्तु देशद्रोही लालसिंह ने इस विजय के बाद सिखों को आगे बढ़ने से रोके रक्खा। इतिहास-लेखक विलियम एडवर्ड्स इस विषय में लिखता है—

"यदि सिख सेना रात को आगे बढ़ आती तो परिणाम हमारे लिए निस्सन्देह अत्यन्त घातक होता, क्योंकि हमारी यूरोपियन सेनाओं की संख्या बहुत घट चुकी थी और तोपों तथा बन्दूकों दोनों के लिए हमारा

गोला बारूद क़रीब क़रीब ख़त्म हो चुका था। उस समय हम लोग यह न समझ सके कि सिखों की नई सेना अपने साथियों की मदद के लिए आगे क्यों न बढ़ी। किन्तु बाद में मुझे लाहौर में पता लगा कि सिखों के नेताओं ने यह बहाना लेकर सेना को रोके रक्खा कि आज का दिन लड़ाई के लिए अशुभ है। कारण यह था कि रीजण्ट राजा लालसिंह का हरगिज़ यह इरादा न था कि उसकी फ़ौजें विजय प्राप्त करें; इसके विपरीत वह यह चाहता था कि अङ्गरेज़ सदा के लिए सिख फ़ौजों का नाश कर डालें।"*

लालसिंह की नीचता और विश्वासघातकता का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है ?

फ़ीरोज़शहर का मैदान भी अन्त में अङ्गरेज़ों ही के हाथ रहा।

कनिङ्घम लिखता है कि गवरनर-जनरल ने इस समय एक नया एलान प्रकाशित किया जिसमें उन सिपाहियों और अफ़सरों को, जो सिख सेना को छोड़ कर अङ्गरेज़ों की ओर आ मिले, तीन तरह के प्रलोभन दिए—एक तात्कालिक नक़द इनाम, दूसरे भविष्य के लिए पेनशनें, और तीसरे सब से अद्भुत प्रलोभन यह कि जो लोग सिख सेना को छोड़ कर अङ्गरेज़ों की ओर चले आएँगे उनके यदि कोई मुक़दमे अङ्गरेज़ी अदालतों के सामने पेश होंगे तो उन मुक़दमों का फ़ैसला तुरन्त (उनके हक़ में ?) कर दिया जायगा !†

फ़ीरोज़शहर की लड़ाई में अनेक बड़े बड़े अङ्गरेज़ अफ़सरों

---

* *Reminiscences of a Bengal Civilian*, by William Edwards p, 97.

† "The anxiety of the Governor-General may be further

और सैनिकों की मृत्यु हुई, जिनमें से एक हमारा सुपरिचित मेजर ब्रॉडफ़ुट भी था।

इस समय के निकट गवरनर-जनरल को डर हुआ कि कहीं पटियाले का राजा इन जोशीले ख़ालसा सिपाहियों के साथ न मिल जाय। महाराजा पटियाले को अपनी ओर रखने के लिए विलियम एडवर्ड्स को उसके पास भेजा गया। पूर्व से आने वाली अङ्गरेज़ी सेना का रास्ता भी पटियाले की रियासत से होकर था, और हार्डिञ्ज को इस बात का डर था कि यदि पटियाला सिखों के साथ मिल गया तो अङ्गरेज़ी सेना के लिए बच कर निकल सकना अथवा पीछे से अपना सम्बन्ध क़ायम रख सकना असम्भव हो जायगा। विलियम एडवर्ड्स ने महाराजा पटियाला से वादा किया कि यदि आपने कम्पनी का साथ दिया तो युद्ध के बाद जो इलाक़ा कम्पनी के हाथ आएगा उसका एक हिस्सा आपको दे दिया जायगा और आपका रुतबा बढ़ा कर न केवल सतलज के इस पार की रियासतों में सब से ऊँचा कर दिया जायगा, बल्कि हिन्दोस्तान के बड़े से बड़े और प्राचीन महाराजाओं के तुल्य आपकी पदवी कर दी जायगी।*

---

inferred from his proclamation encouraging desertion from the Sikh ranks, with the assurance of present rewards and future pensions, and the immediate decision of any law suits in which the deserters might be engaged in the British provinces."—Cunningham's *History of the Sikhs*, page 311.

* *Reminiscences of a Bengal Civilian* pp. 92, 93.

विलियम एडवर्ड्स को अपने उद्देश में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

अङ्गरेज़ी सेना के सतलज पार कर लाहौर की ओर बढ़ने से पहले अलीवाल और सुबराँव नामक स्थानों पर दो और लड़ाइयाँ लड़ी गईं।

इन दोनों लड़ाइयों में अलीवाल की लड़ाई अधिकतर एक कपोलकल्पित लड़ाई थी। बुडीवाल में अङ्गरेज़ी सेना का सामान सिख सेना ने छीन् लिया था। इस घटना को किसी तरह खेंच तान कर भी अङ्गरेज़ों की विजय नहीं कहा जा सकता। थोड़ी देर बाद अलीवाल में सिख सिपाहियों का एक छोटा सा दस्ता चला जा रहा था। अङ्गरेज़ी सेना के कुछ सिपाहियों ने उनके पीछे गोली चला दी। दोनों ओर से थोड़ी सी फट फट हुई। फ़ीरोज़शहर की हार के कारण अङ्गरेज़ों के युद्धबल का उस समय चारों ओर मज़ाक़ उड़ रहा था। फ़ौरन् अलीवाल की इस छोटी सी घटना को बढ़ा कर अङ्गरेज़ों की एक शानदार विजय ज़ाहिर किया गया। एक अङ्गरेज़ लेखक, जो मौक़े पर मौजूद था, लिखता है कि—"अलीवाल की लड़ाई सरकारी पत्रों की लड़ाई थी, क्योंकि जब तक हम लोगों ने सरकारी रिपोर्ट नहीं पढ़ी थी तब तक हममें से किसी को यह भी पता न था कि हम कोई लड़ाई लड़ चुके हैं!"*

* "Aliwal was the battle of the despatch, for none of us knew we had fought a battle until the particulars appeared in a

सुबराँव की लड़ाई नीति की दृष्टि से अङ्गरेजी क़ौम के लिए और भी अधिक लज्जाजनक थी। इतिहास-लेखक विलियम एडवर्ड्स लिखता है कि "जिस समय गवरनर-जनरल फ़ीरोज़पुर में था उस समय राजा लालसिंह के गुप्तचरों ने आकर सिख सेना की स्थिति इत्यादि के विषय में गवरनर-जनरल को बड़ी क़ीमती खबरें दीं। सिखों ने बड़ी वीरता के साथ जान लड़ा कर युद्ध किया। किन्तु उन्हें किश्तियों के पुल की ओर हटा दिया गया। यह बात पहले से तय हो चुकी थी कि संग्राम शुरू होते ही सिखों के नेता राजा लालसिंह और तेजसिंह स्वयं पुल के पार पहुँच कर पुल को तोड़ डालेंगे, उन्होंने ऐसा ही किया।"*

सुबराँव के मैदान में अकेले लालसिंह और तेजसिंह ही असहाय सिख सिपाहियों के साथ विश्वासघात करने वाले न थे। विलियम एडवर्ड्स और आगे चल कर लिखता है—

"मुदकी, फ़ीरोज़शहर और अलीवाल में सिखों की पराजय के बाद सिख सेना का विश्वास राजा लालसिंह, तेजसिंह और अपने अन्य नेताओं पर से बिलकुल उठ गया। वे उन पर यह दोष लगाने लगे कि ये लोग सिखों के नाश के लिए अङ्गरेज़ सरकार के साथ मिले हुए हैं। उन्होंने अब जम्मू के राजा गुलाबसिंह को अपना नेता बनने के लिए बुला भेजा। राजा गुलाबसिंह ने स्वीकार कर लिया और अपनी एक बहुत बड़ी विश्वस्त पहाड़ी सेना लेकर लाहौर आ पहुँचा। लाहौर दरबार को उसने

---

document . . ."—*Wanderings of a Naturalist in India*, by Andrew Leith Adams M. D. etc.

**Reminiscences of a Bengal Civilian*, pp. 99, 100.

यह समझाया कि मैं अपनी इस सेना से लाहौर के क़िले की रक्षा कर लूँगा, क़िले के अन्दर की सिख सेना को सतलज नदी (सुबराँव) की ओर भेज दिया जाय। × × × गुलाबसिंह ने इस सिख सेना से ज़ोर देकर यह भी कह दिया कि जब तक मैं तुमसे न आ मिलूँ तब तक अङ्गरेज़ों पर हमला करने का प्रयत्न न करना। यह कह कर वह एक न एक बहाना लेकर अपना जाना टलाता रहा। वह अच्छी तरह जानता था कि उचित समय पर अङ्गरेज़ हमला करके सुबराँव जीत लेंगे।"*

इतिहास-लेखक कनिङ्घम ने भी साफ़ लिखा है कि अङ्गरेज़ों और सिख सेना के नेताओं में यह पहले से तय हो चुका था कि अङ्गरेज़ों के हमला करने पर सिख नेता अपनी फ़ौज को छोड़ कर अलग हो जायँ, उसे कट जाने दें, सतलज पार करने में अङ्गरेज़ों का विरोध न करें और लाहौर तक की सड़क अङ्गरेज़ी सेना के लिए खोल दें।†

कनिङ्घम ने विस्तार के साथ लिखा है कि किस प्रकार सुबराँव में विश्वासघाती नेताओं ने सिख सेना को ले जाकर ऐसे स्थान पर पहुँचा दिया जहाँ पर कि नदी को पार कर सकना असम्भव था। वहाँ पर अङ्गरेज़ी सेना ने उन्हें दोनों ओर से घेर कर उन पर हमला किया; तथापि एक भी सिख सिपाही विदेशियों की शरण आने के लिए तैयार न हुआ। निर्दय नेताओं ने अपनी इस वीर सेना का सर्वनाश कर देने के उद्देश से तोपख़ाने सहित उन्हें नदी

* Ibid, p. 104.

† *History of the Sikhs*, p. 324.

0

शामसिंह अटारीवाला

[By Courtesy of the Curator Central Museum, Lahore.

के अन्दर वढ़ा दिया और वहाँ पर अपनी आँखों के सामने अङ्ग-रेज़ी सेना के हाथों उनका वध करवाया। यहाँ तक कि नदी लाशों से भर गई और नदी का जल खून से रँग गया। इस प्रकार सुवराँव के मैदान में सतलज नदी के ऊपर देशद्रोही लालसिंह, तेजसिंह और गुलावसिंह ने रणजीतसिंह के क़ायम किए हुए साम्राज्य, पञ्जाव की स्वाधीनता और वीर तथा अजेय सिख क़ौम, तीनों का खून करवा डाला!

उस समय के देशभक्त और वफ़ादार सिख सरदारों में शाम-सिंह अटारी वाले का नाम सदा के लिए स्मरणीय रहेगा। कनिङ्घम लिखता है—

"किन्तु वूढ़े शामसिंह को अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण रहा। उसने शोक की पोशाक, कोरे सफ़ेद वस्त्र, धारण किए और अपने आस पास के तमाम सिपाहियों को यह याद दिला कर कि गुरु ने युद्ध में मरने वाले वीरों से अनन्त सुख का वादा किया है, उसने वार वार उन्हें अपने चारों ओर जमा कर लिया और गुरु के नाम पर प्राण न्योछावर करने के लिए प्रेरित किया। अन्त में अपने इन्हीं देशवन्धुओं की लाशों के ढेर के ऊपर वह स्वयं शहीद होकर गिर पड़ा।"*

प्रथम सिख युद्ध में सिखों की २२० तोपें अङ्गरेजों के हाथ लगीं। इनमें से ८० तोपों के विषय में गवरनर-जनरल ने लिखा कि इतनी वड़ी तोपें उस समय यूरोप में कहीं भी मौजूद न थीं, उनकी मार अङ्गरेजी तोपों के मुक़ावले में कहीं अधिक दूर तक जाती थी,

---

* Ibid, p. 327.

पीछे को धक्का कम लगता था और चलाने के समय जितनी जल्दी अङ्गरेज़ी तोपें गरम हो जाती थीं उतनी जल्दी ये न होती थीं।

सुबराँव की लड़ाई के बाद १२ फ़रवरी सन् १८४६ को गवरनर-जनरल हार्डिञ्ज सतलज पार कर लाहौर की ओर बढ़ा। मेजर ब्रॉडफ़ुट की जगह इस समय मेजर लॉरेन्स था जो बाद में सर हेनरी लॉरेन्स के नाम से विख्यात हुआ। लाहौर में देशद्रोही राजा गुलाबसिंह ने इस सुन्दरता के साथ समस्त प्रबन्ध कर रक्खा था कि मार्ग में किसी ने भी एक गोली अङ्गरेज़ी सेना पर न चलाई। तथापि विलियम एडवर्ड्स लिखता है कि पञ्जाब पर क़ब्ज़ा जमाने के लिए गवरनर-ज़नरल को अङ्गरेज़ी सेना नितान्त अपर्याप्त मालूम हुई। गवरनर-जनरल सिखों की वीरता देख चुका था। इसलिए उसे यह भी विश्वास न था कि देश भर में समस्त सिख क़ौम आसानी से अङ्गरेज़ों की अधीनता स्वीकार कर लेगी। उसने लाहौर दरबार के साथ सन्धि कर लेना ही उचित समझा।

मार्च सन् १८४६ में लाहौर दरबार के साथ पहली सन्धि की गई। पञ्जाब का कुछ इलाक़ा लाहौर दरबार और बालक दलीपसिंह से छीन कर अङ्गरेज़ी राज्य में मिला लिया गया, और शेष के ऊपर देशद्रोही लालसिंह को वज़ीर की हैसियत से शासक नियुक्त कर दिया गया।

किन्तु शीघ्र ही इस सन्धि को तोड़ कर एक दूसरी सन्धि की आवश्यकता अनुभव हुई। मालूम होता है कि लालसिंह को कुछ

और अधिक इनाम की आशा थी। गुलावसिंह को उसके देशद्रोह के पारितोपिक रूप काशमीर का विशाल राज्य, शेख़ इमामुद्दीन से छीन कर, एक करोड़ रुपया लेकर दे दिया गया। लालसिंह का असन्तोप और भी अधिक वढ़ा। कहा जाता है कि उसने गुलाव-सिंह के काशमीर पर क़ब्ज़ा करने में वाधाएँ डालीं। अन्त में लाहौर ही में एक दूसरी सन्धि की गई, जिसे भैरोंवाल की सन्धि कहा जाता है। यह सन्धि १६ दिसम्वर सन् १८४६ को की गई। इस सन्धि के अनुसार रानी झिन्दाँ को पन्द्रह हज़ार पाउण्ड अर्थात् डेढ़ लाख रुपए सालाना की पेनशन देकर राज्य प्रवन्ध से अलग कर दिया गया। लालसिंह की भी सत्ता समाप्त कर दी गई। वाद में उसे क़ैद करके देहरादून भेज दिया गया। दलीपसिंह के नावालिग़ रहने के समय तक के लिए आठ सरदारों की एक कौन्सिल वना दी गई। तेजसिंह इस कौन्सिल का एक सदस्य रहा। यह तय कर दिया गया कि यह कौन्सिल अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट की हिदायतों के अनुसार राज्य का समस्त प्रवन्ध करे। युद्ध के दण्ड रूप एक वहुत वड़ी रक़म लाहौर दरवार से वसूल की गई; दरवार की सेना का एक वड़ा भाग तोड़ दिया गया; और उसकी जगह कम्पनी की सेना पञ्जाव में नियुक्त की गई, जिसका ख़र्च लाहौर दरवार पर डाला गया।

पञ्जाव की स्वाधीनता का इस प्रकार अन्त करने के इनाम में गवरनर-जनरल सर हेनरी हार्डिञ्ज को 'लॉर्ड' की उपाधि और कम्पनी की ओर से असहाय भारतवासियों के दिए हुए टैक्सों

में से तीन हज़ार पाउण्ड सालाना की आजीवन पेनशन अलग की गई।

इस युद्ध में राजा गुलाबसिंह के विश्वासघात की याद में आज तक पञ्जाब के अनेक लोग 'जम्मू' शहर का नाम लेना अपशकुन समझते हैं, और उसे 'बड़ाशहर' कह कर पुकारते हैं।

गवरनर-जनरल लॉर्ड हार्डिञ्ज के शासन-काल की शेष मुख्य मुख्य घटनाएँ बहुत थोड़े में वर्णन की जा सकती हैं। शिवाजी के वंशज सतारा के निर्दोष तथा पदच्युत राजा प्रतापसिंह को उसने बनारस के अन्दर ऐसी बुरी स्थिति में रक्खा कि राजा प्रतापसिंह की रानी बीमार होकर मर गई, प्रतापसिंह का स्वास्थ्य बेहद बिगड़ गया, उसके अङ्गरेज़ जेलर मेजर कारपेण्टर तक ने प्रतापसिंह की निर्दोषता को तसदीक़ करते हुए गवरनर-जनरल से दया की सिफ़ारिश की, तथापि लॉर्ड हार्डिञ्ज ने परवा न की और अक्तूबर सन् १८४७ में राजा प्रतापसिंह घुल घुल कर मर गया। अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक लडलो लिखता है "यह पापकर्म लॉर्ड हार्डिञ्ज के नाम के साथ सदा के लिए लगा रहेगा।"* नैपाल के अन्दर अराजकता, हत्याओं और साज़िशों का लगभग वैसा ही बाज़ार गरम किया गया जैसा सिख युद्ध से पहले पञ्जाब में। उस समय से ही नैपालियों में एक मसल मशहूर है कि—'सौदागर के साथ साथ बन्दूक़ चलती है और इञ्जील के साथ साथ सङ्गीन।'

---

* "With this evil deed Lord Harding's name is inseparably connected."—*British India,* by Ludlow, vol. ii, p. 154.

किन्तु नैपाल में क्षेत्र इतनी आसानी से तैयार न हो सका। अवध के बादशाह को भी 'तम्बीह' करने के लिए लॉर्ड हार्डिञ्ज लखनऊ पहुँचा, किन्तु वहाँ भी मामला पकने में अभी कुछ देर थी।

लॉर्ड हार्डिञ्ज अपने आपको एक धर्मनिष्ठ ईसाई प्रकट करता था। अक्तूबर सन् १८४६ में उसने एक क़ानून पास किया कि रविवार के दिन कोई किसी से काम न ले। यूरोपियन सिपाहियों के लिए उसने हिन्दोस्तान में अनेक नई सुविधाएँ पैदा कर दीं। अन्त में १८ जनवरी सन् १८४८ को उसने भारत से प्रस्थान किया और लॉर्ड डलहौजी उसकी जगह गवरनर-जनरल नियुक्त हुआ।
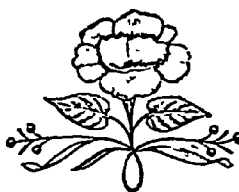
इकतालीसवाँ अध्याय

दूसरा सिख युद्ध

इङ्गलिस्तान के मन्त्रियों की नीति

भारत के अन्दर अङ्गरेज़ी साम्राज्य को विस्तार देने वालों में डलहौज़ी का नाम सबसे अन्तिम है; अर्थात् डलहौज़ी के शासनकाल के पश्चात् भारत के मानचित्र में कोई और हिस्सा लाल नहीं रँगा गया। ऊपर लिखा जा चुका है कि लॉर्ड ऑकलैण्ड के समय में इङ्गलिस्तान के अन्दर लॉर्ड लैण्ड्सडाउन के मकान पर वहाँ के मन्त्रियों और ख़ास ख़ास नीतिज्ञों की एक सभा हुई, जिसमें यह निश्चय किया गया कि हमें भारत में अपने मित्र देशी नरेशों के राज्यों को जिस तरह बन पड़े अपने साम्राज्य में मिला मिला कर अपनी वार्षिक आय को बढ़ाना चाहिए।* इसी निश्चित नीति के अनुसार लॉर्ड डलहौज़ी ने एक एक कर भारत के रहे सहे देशी राज्यों का ख़ात्मा करना शुरू कर दिया।

---

* *Memoir of General John Briggs*, p. 279.

इनमें दो सबसे बड़े राज्य, पञ्जाब और बरमा थे, जिनमें सब से पहले हम पञ्जाब की कहानी संक्षेप में वर्णन करते हैं।

पञ्जाब में असन्तोष

लॉर्ड हार्डिञ्ज अपने समय में पञ्जाब की अवस्था को देखते हुए पञ्जाब को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लेने का साहस न कर सका था। तथापि १६ दिसम्बर सन् १८४६ वाली भैरोंवाल की सन्धि पर जिस प्रकार अमल किया जा रहा था उससे मालूम होता था कि पञ्जाब के लोगों को भड़का कर दूसरे सिख युद्ध के लिए बहाने पैदा किए जा रहे हैं, ताकि अन्त में मौक़ा पाकर पञ्जाब की स्वाधीनता का अन्त कर दिया जाय। सर फ़्रेडरिक करी इस समय लाहौर का रेज़िडेण्ट था। उसके पत्रों से प्रकट है कि वह आरम्भ से ही बालक दलीपसिंह और सिख राज्य दोनों का शत्रु था और दोनों को समूल नष्ट कर देना चाहता था। रेज़िडेण्ट की हैसियत से भैरोंवाल की सन्धि के अनुसार करी ही इस समय पञ्जाब का क्रियात्मक शासक था। राज्य के एक एक महकमे में उच्च और ज़िम्मेवार पदों से देशवासियों को निकाल कर उसने उनकी जगह अङ्गरेज़ भरती करने शुरू कर दिए। पञ्जाबियों में असन्तोष बढ़ने लगा और उन्हें यह सन्देह होने लगा कि अङ्गरेज़ों का इरादा महाराजा दलीपसिंह के बालिग़ हो जाने पर भी सन्धि की शर्तों के अनुसार पञ्जाब का राज्य उसे सौंप देने का नहीं है, वरन् वे पञ्जाब पर स्वयं क़ब्ज़ा करने की फ़िक्र में हैं। रेज़िडेण्ट करी

के समस्त व्यवहार से इस सन्देह को अधिकाधिक पुष्टि मिलती गई।

इस समय की पञ्जाब की घटनाओं में सबसे मुख्य मुलतान की घटना थी। यहाँ तक कि यह घटना ही दूसरे सिख युद्ध का मुख्य कारण बताई जाती है।

दीवान मूलराज

मुलतान का प्रान्त महाराजा रणजीतसिंह ने सन् १८१८ में अपने साम्राज्य में शामिल किया था। दीवान सावनमल को लाहौर दरबार की ओर से वहाँ का शासक नियुक्त किया गया था। मुलतान प्रान्त की आमदनी उस समय ३५ लाख रुपए वार्षिक थी, जिसमें से १७½ लाख वार्षिक सावनमल को लाहौर के खज़ाने में जमा कराने पड़ते थे। अपने प्रान्त के शेष समस्त शासन-प्रबन्ध में दीवान सावनमल पूर्णरूप से स्वतन्त्र था। कम्पनी की सरकारी रिपोर्टों में दर्ज है कि दीवान सावनमल के सुयोग्य शासन में मुलतान की भौतिक तथा आर्थिक स्थिति में बहुत बड़ी उन्नति हुई। उसने कई नहरें खुदवाई, बहुत से बञ्जर इलाक़े को ज़रखेज़ बना दिया, कृषि, व्यापार और कारीगरी को ख़ूब उन्नति दी, यहाँ तक कि आस पास के इलाक़ों से अनेक लोग आ आकर मुलतान प्रान्त में बसने लगे; और उस प्रान्त का वैभव दिनों दिन बढ़ता चला गया।

सावनमल की मृत्यु के बाद उसका बेटा मूलराज मुलतान का शासक हुआ। देशद्रोही लालसिंह उस समय बालक दलीपसिंह

की ओर से लाहौर दरवार का कर्ता धर्ता था। उसने मूलराज से वाप की गद्दी पर वैठने के लिए १८ लाख की रक़म वतौर नजराने के माँगी। दीवान मूलराज ने एक नियत समय के अन्दर यह रक़म पूरी कर देने का वादा किया। किन्तु इसके वाद ही अङ्गरेजों के प्रताप से लाहौर दरवार के अन्दर नित्य नए उपद्रव खड़े होने लगे। कुछ दिनों तक यह भी पता न चलता था कि राज्य की वास्तविक वाग किसके हाथों में है, अङ्गरेजों के अथवा सिखों के। मूलराज ने ऐसी स्थिति में १८ लाख रुपए नजराने के भेजना उचित न समझा। पहले सिख युद्ध और लाहौर की पहली सन्धि के वाद लालसिंह ने अपने भाई भगवानसिंह के अधीन एक सेना मूलराज को जेर करने और उससे यह रक़म वसूल करने के लिए मुलतान भेजी। मालूम होता है कि अङ्गरेज और लालसिंह दोनों मूलराज को हटा कर उसकी जगह भगवानसिंह को मुलतान की दीवानी देना चाहते थे। किन्तु भगवानसिंह की सेना को मूलराज के मुक़ावले में हार खाकर लौट आना पड़ा। तथापि मुलतान प्रान्त का एक इलाक़ा जुन्नक (?), जिसकी आय आठ लाख रुपए सालाना थी, दीवान मूलराज से छीन कर भगवानसिंह को दे दिया गया।

कुछ दिनों वाद दीवान मूलराज को हिसाव साफ़ करने के लिए लाहौर वुलाया गया। मूलराज को सन्देह हुआ। तथापि वह लाहौर आया। सव वातें तय हो गईं। मूलराज अपने पद पर वहाल रक्खा गया और मुलतान लौट गया।

इसके वाद भैरोंवाल की सन्धि हुई। इस सन्धि को चन्द महीने

भी न बीतने पाए थे कि अङ्गरेज़ों ने फिर दीवान मूलराज को हटा-कर उसकी जगह अपना एक आज्ञाकारी अनुचर नियुक्त करने की आवश्यकता अनुभव की। दीवान मूलराज को अब इस उद्देश से दिक़ किया जाने लगा ताकि वह तङ्ग आकर अपने पद से इस्तीफ़ा दे दे। मुलतान प्रान्त की आमदनी इस समय ३६$\frac{3}{8}$ लाख रुपए सालाना थी, जिसमें लाहौर दरबार का ख़िराज १७$\frac{1}{2}$ लाख था। इसे बढ़ा कर अब १९$\frac{3}{8}$ लाख कर दिया गया। और यह तय कर दिया गया कि दो साल बाद १९$\frac{3}{8}$ लाख से बढ़ा कर इस ख़िराज को २५ लाख कर दिया जाय, और उसके तीन साल बाद ३० लाख।* इतना ही नहीं, मुलतान प्रान्त के शासन में दीवान मूलराज की सहायता के लिए ज़बरदस्ती दो अङ्गरेज़ कमिश्नर, नौ अङ्गरेज़ कलेक्टर और सात अङ्गरेज़ जज नियुक्त करके मुलतान भेजने की तजवीज़ की गई। दीवान मूलराज का शासन-प्रबन्ध इतना सुन्दर था; उसकी प्रजा इतनी सुखी, सन्तुष्ट और समृद्ध थी कि उस समय के अङ्गरेज़ लेखकों तक ने इन सब बातों को स्वीकार किया है। मूलराज का वीरोचित आत्मसम्मान और उसकी प्रजापालकता दोनों में से किसी ने भी उसे इजाज़त न दी कि वह अपने यहाँ के शासन में इस अनुचित हस्तक्षेप को गवारा करे। विवश होकर नवम्बर सन् १८४७ में वह लाहौर पहुँचा। वहाँ पर उसने अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट से प्रार्थना की कि दीवानी के पद से मेरा इस्तीफ़ा स्वीकार किया जाय। जॉन लॉरेन्स

---

* *Notes on the Revenues and Resources of the Punjab,* by Elliots, p. 41.

इस समय लाहौर का रेज़िडेण्ट था। किन्तु अङ्गरेज़ अभी तक मुलतान का शासन मूलराज के हाथों से लेने के लिए तैयार न हो पाए थे। दीवान मूलराज को समझा बुझा कर फिर मुलतान वापस कर दिया गया।

इसके बाद सर फ़्रेडरिक करी रेज़िडेण्ट नियुक्त होकर लाहौर पहुँचा। उसने मूलराज को और अधिक दिक़ करना शुरू कर दिया। वास्तव में मुलतान प्रान्त का धन वैभव उस समय अत्यन्त बढ़ा हुआ था। पञ्जाब के समस्त प्रान्तों में अङ्गरेज़ों के सब से अधिक उसी पर दाँत थे। रेज़िडेण्ट करी अब जिस तरह हो सके, दीवान मूलराज से झगड़ा मोल लेने के लिए कृतनिश्चय था। ये सब बातें करी तथा अन्य अङ्गरेज़ों के उस समय के पत्र व्यवहार से स्पष्ट हैं। करी ने लाहौर दरबार द्वारा दीवान मूलराज पर इस्तीफ़ा देने के लिए फिर से ज़ोर दिया। इस बार उसका इस्तीफ़ा मञ्ज़ूर कर लिया गया। काहनसिंह मान नामक एक मनुष्य तीस हज़ार रुपए सालाना तनख़ाह पर मूलराज की जगह मुलतान का शासक नियुक्त किया गया। यह भी तय कर दिया गया कि दो अङ्गरेज़ अफ़सर, एक एगन्यू और दूसरा एण्डरसन, काहनसिंह के साथ मुलतान जायँ और इन दोनों की सलाह से काहनसिंह शासन का समस्त कार्य करे।

मुलतान का संग्राम

काहनसिंह, एगन्यू और एण्डरसन कुछ सेना सहित १८ अप्रेल सन् १८४८ को मुलतान पहुँचे। १९ अप्रेल को दीवान मूलराज

ने शासन का भार बाजाब्ता काहनसिंह के सुपुर्द कर दिया। एगन्यू ने फ़ौरन् नगर के तमाम दरवाज़ों के ऊपर अङ्गरेज़ी गारद नियुक्त कर दी। उसी दिन नगर के लगभग समस्त मुलतानी सिपाहियों को बरख़ास्त करके उनकी जगह गोरे नियुक्त कर दिए गए। मुलतान-निवासी समझ गए कि शासन की बाग काहनसिंह के हाथों में नहीं, बल्कि वास्तव में विदेशियों के हाथों में चली गई। इन विदेशियों के विरुद्ध असन्तोष समस्त पञ्जाब में बढ़ता जा रहा था। १९ अप्रेल ही को जब कि एगन्यू अपने घोड़े पर चढ़ रहा था, दो मुलतानी सवारों ने, जिन्हें उसी दिन बरख़ास्त किया गया था, तेज़ी से आकर एगन्यू पर वार किया। एगन्यू बुरी तरह घायल होगया। किन्तु काहनसिंह ने फ़ौरन् बीच में पड़ कर एगन्यू को मरने से बचा लिया।

एगन्यू और एण्डरसन के रहने के लिए नगर के बाहर एक ईदगाह तजवीज़ की गई। मूलराज नगर छोड़ कर चला गया। किन्तु अनेक मुलतानी सिपाहियों ने, जो १९ तारीख़ को बरख़ास्त किए गए थे, २० अप्रेल की सुबह ईदगाह को आकर घेर लिया। गोरी सेना के अतिरिक्त काहनसिंह के साथ एक हिन्दोस्तानी सेना भी थी। इस सेना के सब सिपाही अब मुलतानियों की ओर जा मिले; किन्तु उनके सरदार अधिकतर काहनसिंह और उसके विदेशी साथियों की ओर रहे। एगन्यू और एण्डरसन दोनों उस दिन के संग्राम में मार डाले गए। काहनसिंह ज़ख़्मी होकर क़ैद कर लिया गया। निस्सन्देह इस दुर्घटना का मुख्य कारण

था मुलतानियों की स्वाधीनता पर हमला और उनमें से सहस्रों निरपराधों की जीविका का छीन लिया जाना।

महारानी झिन्दाँ कौंर के साथ अन्याय

पञ्जाब को हड़प जाने के लिए अभी और अधिक सङ्गीन बहानों की जरूरत थी। लाहौर में बैठे बैठे रेजिडेण्ट करी ने महाराज दलीपसिंह की माता, महारानी झिन्दाँ कौंर पर यह विचित्र इल-ज़ाम लगाया कि मुलतान के विद्रोह में झिन्दाँ कौंर का हाथ था। रेजिडेएट करी ने स्वयं अपने पत्रों में स्वीकार किया है कि महारानी के विरुद्ध उसके पास कोई सुबूत न था। न कोई तहक़ीक़ात की गई और न यह मामला लाहौर दरबार अथवा कौन्सिल के सामने तक पेश किया गया। केवल अङ्गरेज़ रेजिडेएट के हुक्म से १५ मई सन् १८४८ को महाराजा रणजीतसिंह की विधवा महारानी और महा-राजा दलीपसिंह की माता, झिन्दाँ कौंर को शेखपुरे के महल से क़ैद करके तुरन्त बनारस भेज दिया गया। हुक्म दे दिया गया कि महारानी झिन्दाँ कौंर बिना अपने अङ्गरेज़ पहरेदार की इजाज़त के न किसी से पत्र व्यवहार करे और न किसी से किसी तरह का सम्बन्ध रक्खे!

समस्त पञ्जाब और विशेष कर समस्त सिख जाति महारानी झिन्दाँ कौंर को अपनी माता के समान समझती थी। विधवा महा-रानी के साथ इस प्रकार के व्यवहार को देखते ही समस्त सिख जाति में एक आग सी लग गई।

१५ मई को महारानी को क़ैद किया गया। २५ मई को रेज़िडेण्ट करी ने गवरनर-जनरल को लिखा कि ख़ालसा सेना महारानी को गिरफ़्तारी की ख़बर सुनते ही भड़क उठी, सिख सिपाही चिल्लाने लगे कि 'महारानी झिन्दाँ कौर हमसे जुदा कर दी गई, बालक दलीपसिंह अङ्गरेज़ों के हाथों में है, अब हम किसके लिए लड़ें और किसके झण्डे के नीचे जमा हों!' समस्त सिख जाति अब दीवान मूलराज और उसके विद्रोही सिपाहियों के साथ सहानुभूति अनुभव करने लगी।

लाहौर के सिख सरदार भी इस अत्याचार को देख कर क्रोध और दुख से भर गए। लाहौर कौन्सिल के प्रमुख सदस्य राजा शेरसिंह ने समस्त पञ्जाब में एक एलान प्रकाशित किया, जिसके शुरू में लिखा था—

"पञ्जाब के तमाम बाशिन्दों को, तमाम सिखों को, और वास्तव में तमाम दुनिया को अच्छी तरह मालूम है कि फ़िरङ्गियों ने स्वर्गवासी महान् महाराजा रणजीतसिंह की विधवा महारानी के साथ कितने ज़ुल्म, ज़्यादती और बेजा ज़बरदस्ती का व्यवहार किया है।

"लोगों की माता महारानी को क़ैद करके और हिन्दोस्तान भेज कर फ़िरङ्गियों ने सन्धि को तोड़ डाला है, इत्यादि।"

यहाँ तक कि अफ़ग़ानिस्तान के अमीर दोस्तमोहम्मद ख़ाँ की सहानुभूति भी इस समय पञ्जाबियों के साथ थी। दोस्तमोहम्मद ख़ाँ ने कप्तान एबट के नाम एक पत्र में लिखा—

"इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि सिखों में असन्तोष दिन प्रति

दिन बढ़ता जा रहा है। कुछ को नौकरी से बरख़ास्त कर दिया गया है, कुछ को जलावतन करके हिन्दोस्तान भेज दिया गया है, ख़ास कर महाराजा दलीपसिंह की माता को क़ैद कर लिया गया है और उनके साथ बेजा सलूक किया गया है। तमाम मज़हबों के लोग इस तरह के सलूक को बेजा समझते हैं, और छोटे और बड़े दोनों इसकी निस्बत मर जाने को बेहतर समझते हैं, इत्यादि।"

निस्सन्देह महारानी झिन्दाँ कौंर के साथ अङ्गरेज़ों का अत्याचार दूसरे सिख युद्ध के कारणों में से एक मुख्य कारण था।

समस्त सिख साम्राज्य के अन्दर इस समय दो सरदार सबसे अधिक दबङ्ग और स्वतन्त्रताप्रिय मालूम होते थे। एक मुलतान का दीवान मूलराज और दूसरा हज़ारा प्रान्त का शासक सरदार चतरसिंह अटारी वाला। जिस तरह इस समय दीवान मूलराज को दिक़ किया जा रहा था, उसी तरह बूढ़े सरदार चतरसिंह अटारी वाले को भी दिक़ किया जा रहा था।

चतरसिंह अटारी वाला

हज़ारा का प्रान्त पहले काशमीर में शामिल था और राजा गुलाबसिंह को दिया जा चुका था। बाद में कुछ और इलाक़े के बदले यह प्रान्त राजा गुलाबसिंह से लेकर महाराजा दलीपसिंह के अधीन कर दिया गया। लाहौर कौन्सिल के प्रसिद्ध सदस्य राजा शेरसिंह का पिता सरदार चतरसिंह अटारी वाला इस प्रान्त का नाज़िम नियुक्त किया गया। सरदार चतरसिंह का मान उस समय पञ्जाब में अत्यन्त बढ़ा चढ़ा था।

सरदार चतरसिंह की बेटी की सगाई महाराजा दलीपसिंह के साथ हो चुकी थी। जुलाई सन् १८४८ में विवाह की बात चीत होने लगी। रेजिडेण्ट करी ने बिना किसी कारण के चतरसिंह को लिख दिया कि—"बिना रेज़िडेण्ट की रज़ामन्दी व मञ्ज़ूरी के" विवाह नहीं किया जा सकता! रेज़िडेण्ट की ओर से कप्तान ऐबट उस समय सरदार चतरसिंह को सलाह देने के लिए हज़ारा में रहता था। कप्तान ऐबट ने सरदार चतरसिंह के साथ इतना बुरा व्यवहार करना शुरू कर दिया कि जिसे कोई भी सम्माननीय मनुष्य सहन नहीं कर सकता। स्वयं रेजिडेण्ट करी ने अपने पत्रों में कप्तान ऐबट के अनुचित व्यवहार और सरदार चतरसिंह के निर्दोष होने को स्वीकार किया है।

कप्तान ऐबट की शरारतें और साज़िशें हद को पहुँच गईं। हज़ारा प्रान्त में अधिकतर आबादी मुसलमानों की थी। ये सब लोग वीर और सशस्त्र थे। कप्तान ऐबट ने उनमें ख़ूब धन ख़र्च करना शुरू किया, और उन्हें यह समझाया कि सिख क़ौम सदा से मुसलमानों की शत्रु है! कप्तान ऐबट ने इन भोले, किन्तु युद्धप्रेमी मुसलमानों को सिखों के विरुद्ध भड़का कर उनसे यह वादा किया कि यदि तुम सिख राज्य को मिटाने में अङ्गरेज़ों को मदद दोगे तो सिखों से बदला निकालने का तुम्हें काफ़ी मौक़ा दिया जायगा! सरदार चतरसिंह हरीपुर में रहता था। ६ अगस्त सन् १८१८ को कप्तान ऐबट के उकसाने पर आस पास के मुसलमानों ने आकर हरीपुर को घेर लिया। नगर की रक्षा के लिए कुछ सेना चतरसिंह

के अधीन हरीपुर में रहती थी। करनल कैनोरा नामक एक अङ्गरेज़ इस सेना का अफ़सर था। सरदार चतरसिंह ने करनल कैनोरा को नगर की रक्षा का हुक्म दिया। करनल कैनोरा ने चतरसिंह का हुक्म मानने से इनकार कर दिया। इतना ही नहीं, बल्कि करनल कैनोरा ने अपनी तोपें भर कर, स्वयं उनके बीच में खड़े होकर, यह साफ़ कह दिया कि यदि चतरसिंह का कोई आदमी निकट आएगा तो मैं उस पर वार करूँगा। सरदार चतरसिंह ने अपने कुछ पैदल सिपाही करनल कैनोरा से तोपें छीनने के लिए भेजे। कैनोरा ने अपने एक हवलदार को इन सिपाहियों पर गोली चलाने का हुक्म दिया। पञ्जाबी हवलदार ने इनकार कर दिया। इस पर बाग़ी करनल ने हवलदार को क़त्ल कर डाला। इतने ही में दो पैदल सिपाहियों ने अपनी बन्दूकों से नमकहराम करनल कैनोरा का ख़ात्मा कर दिया।

कप्तान ऐबट को और अधिक बहाना मिल गया। उसने चतरसिंह के विरुद्ध मुसलमानों की एक सेना जमा करनी शुरू कर दी। रेज़िडेण्ट करी ने कप्तान ऐबट के नाम अपने एक निजी पत्र में करनल कैबोरा की हत्या के सम्बन्ध में सरदार चतरसिंह को निरपराधं और कैनोरा को साफ़ अपराधी स्वीकार किया है। तथापि करी और ऐबट दोनों भीतर ही भीतर सरदार चतरसिंह और सिख राज्य दोनों के नाश का सङ्कल्प कर चुके थे।

कप्तान ऐबट ने हज़ारा प्रान्त के तमाम मुसलमान सरदारों को जमा किया; उन्हें पुराने मज़हबी झगड़ों की याद दिलाई और

सिख राज्य के नष्ट करने में उनसे स्पष्ट मदद चाही। प्रान्त भर में उसने इस विषय के खुले परवाने जारी कर दिए। कप्तान ऐबट इससे पूर्व दीवान ज्वालासहाय और सरदार झण्डासिंह आदि पञ्जाब के कई अन्य प्रान्तीय शासकों का इसी प्रकार सत्यानाश कर चुका था।

सरदार चतरसिंह ने बार बार लाहौर दरबार और रेज़िडेण्ट करी से कप्तान ऐबट की इन हरकतों की शिकायत की। किन्तु कोई सुनवाई न हुई। लाचार होकर बूढ़े सरदार चतरसिंह को अपने देश, धर्म तथा ख़ालसा राज्य की रक्षा के लिए तैयार हो जाना पड़ा।

मुलतान का मोहासरा

अब हम फिर मुलतान की ओर आते हैं। रेज़िडेण्ट करी ने लाहौर दरबार पर ज़ोर दिया कि दरबार की सेना भेज कर दीवान मूलराज को दण्ड दिया जाय। किन्तु भैरोंवाल की सन्धि के अनुसार दरबार की अधिकांश सेना बरख़ास्त की जा चुकी थी। उसकी जगह लाहौर, जालन्धर और फ़ीरोज़पुर में कम्पनी की सेनाएँ रहती थीं। इन अङ्गरेजी सेनाओं का ख़र्च लाहौर दरबार से लिया जाता था, और सन्धि में यह तय हो चुका था कि देश के अन्दर के विद्रोहों को दमन करने और शान्ति कायम रखने में ये सेनाएँ सदा दरबार को मदद देंगी। इस सहायता के बदले में ही लाहौर दरबार ने इन सेनाओं का ख़र्च देना स्वीकार किया था। इस अव-

सर पर लाहौर दरबार ने रेज़िडेण्ट से प्रार्थना की कि कम्पनी की इन सेनाओं में से जितनी आवश्यक हों, मुलतान के विद्रोह को दमन करने के लिए भेज दी जायँ। रेज़िडेण्ट ने, भैरोंवाल की सन्धि का साफ़ उल्लङ्घन कर कम्पनी की उन फ़ौजों में से जो वास्तव में लाहौर दरबार ही की फ़ौजें थीं, एक भी सिपाही मुलतान भेजने से इनकार कर दिया। साथ ही उसने दरबार को यह धमकी दी कि यदि दरबार की निजी सेना मुलतान के विद्रोह को दमन न कर सकी तो पञ्जाब का राज्य ज़ब्त कर लिया जायगा। वास्तव में रेज़िडेण्ट करी को मुलतान के विद्रोह से बढ़ कर बहाना डलहौज़ी की वास्तविक इष्टसिद्धि का न मिल सकता था। लाहौर, जालन्धर और फ़ीरोज़पुर की फ़ौजें वास्तव में लाहौर दरबार की सहायता के लिए न थीं, वरन् उसके सर्वनाश के लिए रक्खी गई थीं।

रेज़िडेण्ट करी की ज़िद पर लाहौर दरबार ने सरदार चतरसिंह के पुत्र राजा शेरसिंह को दरबार की सेना सहित मूलराज को दमन करने के लिए भेजा। रेज़िडेण्ट की आज्ञा से मेजर एडवर्ड्स शेरसिंह के साथ हो लिया। मेजर एडवर्ड्स ने सरहद के अनेक मुसलमानों को हिन्दुओं और सिखों के ख़िलाफ़ भड़का कर उनकी एक नई सेना तैयार की। नवाब भावलपुर की सेना भी इस समय एडवर्ड्स के साथ आ मिली। मार्ग में मेजर एडवर्ड्स ने सरदार फ़तहख़ाँ तवाना को एक पत्र लिखा कि आप अपने आदमियों को जमा करके डेराग़ाज़ीख़ाँ और बन्नू के सिखों

को लूट लीजिए और उन्हें मार डालिए। फ़तहख़ाँ और मूलराज का पहले से कुछ झगड़ा चला आता था। उसने एडवर्ड्स की बात मान ली। एडवर्ड्स ने फ़तहख़ाँ को डेरागाज़ीख़ाँ और बन्नू का शासक नियुक्त कर दिया। किन्तु ज्योंही फ़तहख़ाँ ने सिखों को लूटने के लिए आदमी जमा किए, सिखों ने उसे मार डाला।

दीवान मूलराज की सेना के साथ एडवर्ड्स और शेरसिंह की सेनाओं के कई संग्राम हुए, जिनके विस्तार में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। किनेरी (?) और सद्दूसाम (?) की लड़ाइयों में मालूम होता है एडवर्ड्स की जीत रही। इसके पश्चात् मुलतान के मोहासरे का समय आया। एडवर्ड्स ने इस मोहासरे के लिए रेज़िडेण्ट करी से सहायता चाही। करी ने सहायता भेजने से इनकार कर दिया। इस बीच भावलपुर और पञ्जाब से हज़ारों हिन्दू, मुसलमान और सिख आ आकर मूलराज के झण्डे के नीचे जमा होने लगे। अन्त में एक दिन मूलराज ने क़िले से निकल कर एडवर्ड्स और उसके साथियों को बुरी तरह शिकस्त दी। एडवर्ड्स को अपनी जान बचा कर मुलतान से भाग आना पड़ा। लिखा है कि यदि एडवर्ड्स के सिख साथी समय पर उसकी सहायता न करते तो एडवर्ड्स के लिए जान बचा कर आ सकना असम्भव था।

राजा शेरसिंह को भी मूलराज के विरुद्ध सफलता प्राप्त न हो सकी। शेरसिंह की सिख सेना मूलराज से जा मिली। मालूम होता है कि शेरसिंह भी मूलराज की ओर जा मिलता, किन्तु

एडवर्ड्स ने बड़ी चाल से शेरसिंह की ओर से मूलराज के चित्त में अविश्वास बनाए रक्खा। एक मुसलमान लेखक सर चार्ल्स नेपियर के नाम अपने ६ अक्तूबर सन् १८४८ के पत्र में लिखता है —

"एडवर्ड्स बड़ी मेहनत से जनरल शेरसिंह की ओर से इस तरह के जाली ख़त लिखता रहा है कि जो मूलराज के हाथों में पड़ जायँ और जिनसे उसके चित्त में शेरसिंह की ओर से सन्देह उत्पन्न हो जाय। इस काम में एडवर्ड्स को थोड़ी बहुत सफलता भी प्राप्त हुई है, और मूलराज एडवर्ड्स पर हमला करने से रुका रहा है।"*

राजा शेरसिंह के लाहौर से चलते समय तक सरदार चतरसिंह और कप्तान ऐबट के बीच झगड़ा अधिक न बढ़ा था। कप्तान ऐबट और उसके साथियों ने इसके बाद हज़ारा-निवासियों से यह वादा किया कि यदि तुम चतरसिंह को बाहर निकालने में अङ्गरेज़ों को मदद दोगे तो तुम्हारा तीन साल का लगान माफ़ कर दिया जायगा। मामला इस हद को पहुँचा कि शेरसिंह को मुलतान छोड़ कर अपने पिता की मदद के लिए उत्तर की ओर चला जाना पड़ा। मुलतान का क़िला एक काफ़ी मज़बूत क़िला था। उसे विजय करना इतना आसान न था। अगस्त सन्

* "Edwardes has been busy, writing false letters from General Sher Singh, to fall into the hands of Mool Raj to create suspicion, in which he partially succeeded and prevented Mool Raj attacking him."—*Life of Sir Charles Napier*, vol. iv, p. 129,

१८४८ में सर चार्ल्स नेपियर ने अपने भाई के नाम एक पत्र में लिखा—

"यदि एडवर्ड्स ने मूलराज को हरा दिया तो उसे कोई ख़तरा नहीं; किन्तु यदि मूलराज जीत गया तो एडवर्ड्स की हालत ख़तरनाक हो जायगी; × × × यदि मूलराज के आदमी ईमानदार रहे तो एडवर्ड्स मुलतान नहीं ले सकता; यदि वे बेईमान साबित हुए तो मुलतान का नगर स्वयं ही अपने दरवाज़े खोल देगा।"*

सितम्बर सन् १८४८ में मुलतान का मोहासरा हटा लिया गया।

युद्ध का प्रारम्भ

मुलतान के मोहासरे की असफलता के कारण सिखों की हिम्मत बढ़ गई। अङ्गरेज़ों के विरुद्ध असन्तोष समस्त पञ्जाब में फैला हुआ था। सब लोग ख़ालसा राज्य की रक्षा के लिए चतरसिंह और शेरसिंह के झण्डे के नीचे आ आ कर जमा होने लगे। यही दूसरे सिख युद्ध का प्रारम्भ था।

पहले सिख युद्ध में लालसिंह, तेजसिंह और गुलाबसिंह जैसे देशद्रोहियों की मदद से अङ्गरेज़ों को सफलता प्राप्त हुई थी। इस बार सिख सरदारों तक को अङ्गरेज़ों की दुरङ्गी चालों का इतना

---

* "If he (Lt., H. B. Edwardes) beats Mool Raj, he will be safe; but if Mool Raj gets an advantage Edwardes' position will be dangerous, . . . If Mool Raj's men are true, Edwardes can not take Multan; if they are false the town will open its gates."—Ibid, vol. iv, p. 106.

काफ़ी परिचय मिल चुका था कि सिखों में अब इस प्रकार के देशद्रोही मिल सकना कठिन था। जिस मुसलमान लेखक का हम ऊपर ज़िक्र कर चुके हैं वह सर चार्ल्स नेपियर के नाम अपने पत्र में लिखता है—

"सन् १८४६ की अपेक्षा इस समय पञ्जाब को क़ाबू में करना कई गुना ज़्यादा कठिन है × × × उस समय × × × सिख सरदारों ने हमारे वादों पर विश्वास कर लिया था, बल्कि हमसे रिशवतें तक ले ली थीं, किन्तु अब वे रिशवतें स्वीकार न करेंगे। जिस तरह का उनके साथ व्यवहार किया गया है उससे उनके चित्तों में ज़बरदस्त घृणा उत्पन्न हो गई है। यदि कोई असाधारण बात, कि जिसकी इस समय मुझे आशा नहीं है, सिखों को रोकने वाली न हुई, तो एक एक सिख हमारे विरुद्ध निकल पड़ेगा।"*

मुसलमानों को भड़काना

इस कमी को पूरा करने के लिए अङ्गरेज़ों ने इस बार पञ्जाब और सरहद के मुसलमानों को सिखों के विरुद्ध भड़काया। सिखों और मुसलमानों के पुराने आपसी झगड़ों के अनेक झूठे और सच्चे क़िस्से उनके सामने रक्खे गए। फ़क़ीर अज़ीज़ुद्दीन महाराजा

---

* "It is now many more times more difficult to subdue Punjab than 1846 . . . then . . . the Sirdars accepted promises, nay took bribes, too, but now they will not take bribes, and animated with great hatred for the way they were treated, . . . the Sikhs will turn out to a man, unless something extraordinary may happen to present, which I can not vouch or at prevent."—Ibid, vol. iv, p. 125.

रणजीतसिंह का एक अत्यन्त विश्वस्त मन्त्री था। अजीजुद्दीन का भाई नूरुद्दीन इस समय लाहौर की रीजन्सी कौन्सिल का एक सदस्य था। यह नूरुद्दीन अङ्गरेज़ों की बातों में आकर उनसे मिल गया। नूरुद्दीन का लड़का शम्सुद्दीन गोविन्दगढ़ के क़िले का थानेदार था। उसने सिख राज्य के साथ विश्वासघात करके दूसरे सिख युद्ध में गोविन्दगढ़ का क़िला अङ्गरेज़ों के हवाले कर दिया, और वह भी ऐसे सङ्कट के समय जब कि कहा जाता है कि यदि शम्सुद्दीन अङ्गरेज़ों से न मिल जाता तो सम्भव है, अङ्गरेज़ों के लिए परिणाम अत्यन्त नाशकर होता।* कहा जाता है कि अधिकतर मुसलमानों ही की सहायता से अङ्गरेज़ों ने दूसरे सिख युद्ध में सिखों पर विजय प्राप्त की।

इस युद्ध के अनेक संग्रामों को विस्तार से वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। अक्तूबर सन् १८४८ में, जब कि मूलराज छै महीने तक सफलता के साथ अङ्गरेज़ों का मुक़ाबला कर चुका था, पञ्जाब के सिख सरदारों ने चतरसिंह के झण्डे के नीचे जमा होकर अपने देश को विदेशियों के पञ्जे से छुड़ाने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। अङ्गरेज़ पहले ही अपनी फ़ौजें चारों ओर जमा कर चुके थे। मुलतान का फिर से मोहासरा शुरू किया गया। उसी पुरानी कूटनीति से काम लिया गया। सब से मशहूर लड़ाइयाँ रामनगर, चिलियानवाला और गुजरात की लड़ाइयाँ थीं। राजा शेरसिंह ने

* *The Punjab Chiefs*, (New Edition) 1890, vol. i, p. 1109.

अपनी वीरता और युद्ध-कौशल द्वारा अङ्गरेज़ कमाण्डर-इन-चीफ़ लॉर्ड गफ़ के छक्के छुड़ा दिए।

चिलियानवाला और गुजरात

जनवरी सन् १८४९ में चिलियानवाला के मैदान में सिख सेना की संख्या अङ्गरेज़ी सेना से कम थी; तथापि अङ्गरेज़ों को बड़ी ज़िल्लत के साथ और ज़बरदस्त हार खानी पड़ी। अङ्गरेज़ों के २३,००० से ऊपर आदमी चिलियानवाला के मैदान में घायल हुए और मारे गए। २६ अङ्गरेज़ अफ़सर मारे गए और ६६ घायल हुए। कम्पनी की कई पैदल रेजिमेण्टें बेकार हो गईं। उनके झण्डे तक उनके हाथों से छीन लिए गए। किन्तु चिलियानवाला की विजय हिन्दोस्तान की भूमि पर सिख जाति की अन्तिम विजय थी। अनेक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों ने इस युद्ध के समय की सिखों की वीरता और उनके युद्ध-कौशल की खुले शब्दों में प्रशंसा की है और इन दोनों गुणों में उन्हें अङ्गरेज़ी सेना से कहीं बढ़ा हुआ स्वीकार किया है। चिलियानवाला के बाद ही न जाने क्यों और कैसे शेरसिंह तथा अन्य सिख सरदारों में ज़बरदस्त मतभेद उत्पन्न होगया। शेरसिंह यदि चाहता तो उस समय रसूल में गफ़ और उसकी सेना के अस्तित्व को खाक में मिला सकता था। किन्तु ऐसा करने के बजाय वह लाहौर की ओर बढ़ा।

मार्ग में गुजरात नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं में फिर एक घमासान युद्ध हुआ। इस बीच अङ्गरेज़ों को अपनी कूटनीति के लिए काफ़ी मौका मिल चुका था। गुजरात के मैदान

ही में पञ्जाब की स्वाधीनता और सिखों का राजसत्ता दोनों का ख़ात्मा होगया। उधर मुलतान में भी ९ महीने तक वीरता के साथ मुक़ाबला करने के बाद दीवान मूलराज को अपने तईं अङ्गरेज़ों के हवाले कर देना पड़ा। कहते हैं कि किसी ने दग़ा से मूलराज के मेगज़ीन में आग लगा दी थी।

पञ्जाब की स्वाधीनता का अन्त

२९ मार्च सन् १८४९ को गवरनर-जनरल लॉर्ड डलहौज़ी ने एक एलान प्रकाशित किया, जिसमें सिखों की हुकूमत का आयन्दा के लिए ख़ात्मा कर दिया गया। पञ्जाब पर अङ्गरेज़ों की हुकूमत क़ायम होगई, और पञ्जाब ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य का एक प्रान्त बन गया।

यह एक बात ध्यान देने योग्य है कि जब कि पञ्जाब के अनेक मुसलमान अङ्गरेज़ों के बहकाए में आकर विदेशी आक्रमकों का साथ दे रहे थे, उसी समय अफ़ग़ानिस्तान का अमीर दोस्तमोहम्मद ख़ाँ सिखों और लाहौर दरबार के साथ पूर्ण सहानुभूति प्रकट कर रहा था। इतना ही नहीं, बल्कि लॉर्ड डलहौज़ी का कथन है कि दोस्तमोहम्मद ख़ाँ और उसके पठान सिखों को मदद तक दे रहे थे। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि ठीक उसी समय भावलपुर तथा अन्य स्थानों के हज़ारों मुसलमान दीवान मूलराज के झण्डे के नीचे आ आकर जमा हो रहे थे। तथापि यदि पहले सिख युद्ध में तेजसिंह और लालसिंह मौजूद थे तो दूसरे सिख युद्ध में शम्सुद्दीन और नूरुद्दीन मौजूद थे। हिन्दू अथवा

दीवान मूलराज का आत्म-समर्पण

[From Cassell's "History of India," by James Grant, Vol II.]

मुसलमान, इसमें सन्देह नहीं कि अन्य भारतवासियों के समान पञ्जावियों और विशेषकर उच्च और मध्यम श्रेणी के पञ्जावियों का चरित्र उस समय अत्यन्त गिरा हुआ था; राष्ट्रीयता के भाव का उनमें लगभग अभाव था; यही कारण था कि शासन की योग्यता, अपूर्व वीरता, युद्ध-कौशल और साहस के होते हुए भी वे अल्पसंख्यक, कायर, अकुशल, किन्तु चालाक विदेशियों के एक दो झोंकों के सामने निस्सत्व होकर गिर पड़े।

मेजर ईवन्स वेल का मत है कि पञ्जाव में जो कुछ उपद्रव खड़े हो गए थे उनके कारण उन्हें शान्त कर लेने के वाद भी पञ्जाव को कम्पनी के राज्य में मिला लेने का डलहौज़ी को कोई अधिकार न था। उसका कथन है—

"सन् १८४६ के युद्ध के वाद ब्रिटिश भारत के साथ पञ्जाव के भावी सम्बन्ध को तय करने में लॉर्ड डलहौज़ी की कारवाई विलकुल इस प्रकार थी—एक आदमी रुपए के वदले में एक कष्टकर और ख़तरनाक जायदाद के प्रवन्ध की ज़िम्मेवारी किसी नावालिग़ मालिक की ओर से अपने ऊपर ले लेता है। उस आदमी को पहले से पूरी तरह वता दिया जाता है और आगाह कर दिया जाता है कि इस जायदाद के प्रवन्ध करने और नावालिग़ की रक्षा करने में तुम्हें अमुक अमुक कष्टों और आपत्तियों का सामना करना पड़ेगा, तथापि उन कष्टों और आपत्तियों के पैदा होते ही वह इस वात का एलान कर देता है कि आयन्दा के लिए अपने प्रयत्नों और अपने संरक्षण के वदले में नावालिग़ की तमाम जायदाद और माल असवाव पर मैं अपना क़ब्ज़ा जमाता हूँ, और यह उस सूरत में जव कि संरक्षक का जो

कुछ ख़र्च हो उसको पूरा करने के लिए और अपने फ़र्ज़ के अदा करने में जो कुछ उसे नुक़सान सहना पड़े उस सबके भरने के लिए उस संरक्षक के हाथों में काफ़ी अमानत पहले ही से दे दी गई हो।"*

इसी विद्वान लेखक ने बड़े विस्तार के साथ दिखलाया है कि लॉर्ड डलहौज़ी का २९ मार्च वाला एलान कल्पित और झूठी बातों से भरा हुआ था। लाहौर दरबार ने सन्धि का अथवा अपने वादों का कभी भी उल्लङ्घन नहीं किया था और लॉर्ड डलहौज़ी का नाबालिग़ महाराजा दलीपसिंह का राज्य छीन कर उसे अङ्गरेज़ी राज्य में मिला लेना एक ज़बरदस्त राजनैतिक अन्याय था।† किन्तु राजनीति में और विशेष कर पाश्चात्य राजनीति में इस तरह के न्याय और अन्याय के विचारों के लिए शायद कोई स्थान नहीं।

* "Lord Dalhousie's procedure in settling the future relations of the Punjab with British India after the Campaign of 1849, just amounts to this :—a guardian, having undertaken for a valuable consideration, a troublesome and dangerous trust, declares, on the first occurrence of those troubles and dangers, of which he had full knowledge and forewarning, that as a compensation for his exertions and a protection for the future, he shall appropriate his Ward's estate and personal property to his own purposes. And this, although the guardian holds ample security in his own hands for the repayment of any outlay, and the satisfaction of any damages he might have incurred, in executing the conditions of the trust."—*Retrospects and Prospects of Indian Policy*, by Major Evans Bell, p. 142.

† Ibid, chapter vi.

बयालीसवाँ अध्याय

दूसरा बरमा युद्ध

र्ड डलहौज़ी के शासन की एक और महत्वपूर्ण घटना बरमा देश के साथ कम्पनी का दूसरा युद्ध था। इस युद्ध के लिए वास्तव में इतना बहाना भी न था जितना दूसरे सिख युद्ध के लिए।

जून सन् १८५१ में 'मॉनर्क' नाम का एक अङ्गरेज़ी जहाज़ मोलमीन से चल कर रङ्गून पहुँचा। जहाज़ के अङ्गरेज़ कप्तान का नाम शैपर्ड था। रङ्गून का बन्दरगाह बरमा के राज्य में था। रङ्गून पहुँचने के बाद दो मुक़दमे रङ्गून की बरमी अदालत में कप्तान शैपर्ड के विरुद्ध दायर किए गए। पहला मुक़दमा चटग्राम के रहने वाले हाजिम नामक एक मनुष्य ने दायर किया। हाजिम की शिकायत यह थी कि कप्तान शैपर्ड ने मोलमीन और रङ्गून के बीच में मेरे एक भाई यूसुफ़ मल्लाह को समुद्र में फेंक दिया। दूसरा मुक़दमा यूसुफ़ के एक दूसरे भाई दीवानअली ने दायर किया। दीवानअली की शिकायत यह थी कि यूसुफ़ को जब समुद्र में फेंका गया उस समय उसके पास ५००) रु० नक़द मौजूद थे, और कप्तान शैपर्ड ने उसे समुद्र में फेंकने से पहले उससे यह रक़म छीन ली।

बरमी अदालत के सामने कप्तान शैपर्ड पर नर हत्या और लूट दोनों का मुक़दमा चलाया गया। जहाज़ के अन्य लोगों की गवाहियाँ ली गईं। अन्त में शैपर्ड दोनों जुर्मों का दोषी साबित हुआ। अदालत ने नरहत्या के अपराध में उस पर ४६ पाउण्ड जुरमाना किया और इसके अतिरिक्त दीवानअली को शैपर्ड से ५५ पाउण्ड हरजाना दिलवाया। इस प्रकार कप्तान शैपर्ड को अपने समस्त अपराध के बदले में कुल १०१ पाउण्ड अर्थात् लगभग एक हज़ार रुपए देकर छुटकारा मिल गया।

अगस्त सन् १८५१ में इसी तरह की एक दूसरी घटना हुई। 'चैम्पियन' नामक एक दूसरा अङ्गरेज़ी जहाज़ मॉरीशस से रङ्गून पहुँचा। इस जहाज़ के कप्तान लुई के विरुद्ध दो बङ्गाली कुलियों ने नरहत्या तथा और कई सङ्गीन जुर्मों की शिकायत की। कप्तान लुई दोषी पाया गया और उस पर ७० पाउण्ड जुरमाना करके छोड़ दिया गया।

इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि रङ्गून की बरमी अदालत को इन दोनों गोरे अपराधियों का मुक़दमा सुनने और उन्हें दण्ड देने का पूर्ण अधिकार था। इसमें भी सन्देह नहीं हो सकता कि जो दण्ड इन्हें दिए गए वे अपराध के मुक़ाबले में बहुत ही हलके थे। तथापि कप्तान शैपर्ड और कप्तान लुई दोनों ने भारत पहुँच कर कम्पनी सरकार से शिकायत की। बरमा एक स्वाधीन देश था। भारत की कम्पनी सरकार को बरमी अदालत के फ़ैसले के विरुद्ध अपील सुनने का कोई अधिकार न था, किन्तु लॉर्ड डलहौज़ी बरमा

के साथ छेड़ छाड़ का बहाना ढूँढ़ रहा था। उसने फ़ौरन् फ़ैसला कर दिया कि इन दोनों अङ्गरेज़ों को मिला कर ९१० पाउण्ड बतौर हरजाने के बरमा सरकार से दिलवाए जायँ; ३५० पाउण्ड कप्तान शैपर्ड को और ५६० पाउण्ड कप्तान लुई को। हमें स्मरण रखना चाहिए कि इन दोनों से मिला कर बरमी अदालत ने केवल १७१ पाउण्ड दण्ड के वसूल किए थे, और वह भी इतने सङ्गीन जुर्मों के लिए।

सन् १८४० से उस समय तक जितना पत्र-व्यवहार अङ्गरेज़ सरकार और बरमा सरकार के दरमियान हुआ करता था वह तनासई के कमिश्नर की मारफ़त हुआ करता था। यह उचित या अनुचित माँग भी तनासई के कमिश्नर की मारफ़त ही बरमा दरबार तक पहुँचाई जा सकती थी। बात इतनी छोटी सी थी कि यदि इसके लिए किसी विशेष दूत की आवश्यकता भी थी तो कोई भी सिविल अफ़सर काफ़ी हो सकता था। किन्तु लॉर्ड डलहौज़ी का उद्देश कुछ और ही था। फ़ौरन् बिना बरमा दरबार के साथ किसी तरह का पत्र-व्यवहार किए या कुछ पूछे गिने दो अङ्गरेज़ी युद्ध के जहाज़ कमाण्डर लैम्बर्ट के अधीन यह ९१० पाउण्ड बरमा दरबार से वसूल करने के लिए कलकत्ते से रङ्गून भेज दिए गए। इन जहाज़ों में से एक का नाम 'फ़ॉक्स' (अर्थात् लोमड़ी) और दूसरे का नाम 'सरपेण्ट' (अर्थात् साँप) था। युद्ध के जहाज़ों का रङ्गून भेजना ही एक प्रकार से युद्ध छेड़ना था।

कमाण्डर लैम्बर्ट के हाथ एक पत्र बरमा के महाराजा के नाम भेजा गया और लैम्बर्ट को यह हिदायत कर दी गई कि यदि रङ्गून का बरमी शासक अङ्गरेज़ सरकार की माँग को पूरा न करे तो वह पत्र महाराजा के पास भेज दिया जाय। इस युद्ध के सम्बन्ध के पार्लिमेण्ट के काग़ज़ों में साफ़ लिखा है कि कमांण्डर लैम्बर्ट के नाम लॉर्ड डलहौजी की प्रकट हिदायतें कुछ और थीं और उसे गुप्त ज़बानी हिदायतें कुछ और दी गईं।

नवम्बर सन् १८५१ के अन्त में कमाण्डर लैम्बर्ट अपने दोनों जहाज़ों सहित रङ्गून पहुँचा। पहुँचते ही उसने रङ्गून के अङ्गरेज़ बाशिन्दों से, जिनमें से अधिकतर व्यापारी थे, रङ्गून दरबार के विरुद्ध अनेक शिकायतें जमा कीं। २७ नवम्बर को उसने रङ्गून के बरमी शासक के पास एक अत्यन्त धृष्टतापूर्ण पत्र भेजा। २८ नवम्बर को उसने रङ्गून के गवरनर की मारफ़त बरमा के महाराजा के नाम कम्पनी सरकार का पत्र रवाना कर दिया। जो शिकायतें कहा जाता है कि रङ्गून के अङ्गरेज़ बाशिन्दों ने बरमा दरबार के विरुद्ध अथवा रङ्गून के गवरनर के विरुद्ध लिख कर लैम्बर्ट के हाथों में दीं उनकी संख्या ३८ थी। कोई भी निष्पक्ष मनुष्य उन शिकायतों का कौड़ीभर मूल्य नहीं कर सकता। इन पर शिकायत करने वालों के कोई हस्ताक्षर न थे। अधिकतर शिकायतों की कोई तारीख तक न थी। प्रसिद्ध अङ्गरेज़ राजनीतिज्ञ कॉबडेन ने, जिसने पार्लिमेण्ट के सरकारी काग़ज़ों से लेकर दूसरे बरमा युद्ध का एक निष्पक्ष इतिहास लिखा है, इन

३८ शिकायतों की सूची को 'बेहूदा' (Absurd) बतलाया है। लॉर्ड एलेनब्रु तक ने ६ फ़रवरी सन् १८५२ को इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सामने कहा कि जिस श्रेणी के लोगों ने लैम्बर्ट के सामने शिकायतें पेश कीं वे किसी तरह भी विश्वसनीय नहीं कहे जा सकते। किसी तरह की कोई जाँच इन 'बेहूदा' शिकायतों की नहीं की गई। कमाण्डर लैम्बर्ट को विश्वास था कि बरमा दरबार मेरी इन शिकायतों को मञ्जूर न करेगा और न हरजाना देना स्वीकार करेगा। इस प्रकार लैम्बर्ट को आशा थी कि डलहौज़ी को बरमा के साथ युद्ध प्रारम्भ करने का आसानी से बहाना मिल जायगा। उसने बरमा दरबार को पत्र में लिख दिया था कि पाँच सप्ताह के अन्दर इसका उत्तर मेरे पास पहुँच जाना चाहिए।

किन्तु कमाण्डर लैम्बर्ट की दिली आशा पूरी न हुई। पाँच सप्ताह के अन्दर अन्दर पहली जनवरी सन् १८५२ को बरमा के महाराजा का उत्तर कमाण्डर लैम्बर्ट के पास पहुँच गया। बरमा का बौद्ध महाराजा अङ्गरेज़ों के साथ लड़ना न चाहता था। उसने बिना जाँच लैम्बर्ट की सब शिकायतों को सच मान लिया, राज्य की ओर से क्षतिपूर्ति का वादा किया, और अपनी सच्चाई और मित्रता प्रकट करने के लिए रङ्गून के शासक को फ़ौरन् बदल कर उसकी जगह दूसरा गवरनर नियुक्त कर दिया। १ जनवरी सन् १८५२ को लैम्बर्ट ने भारत सरकार के नाम एक पत्र में लिखा कि—"बरमा की सरकार ने रङ्गून के शासक को बरख़ास्त कर दिया है और कम्पनी की माँग को पूरा करने का वादा किया है।

मेरी सम्मति में बरमा का बादशाह सच्चा है और उसकी सरकार अपने वादों को पूरा करेगी।"

४ जनवरी सन् १८५२ को नया शासक रङ्गन पहुँचा। कमाण्डर लैम्बर्ट को अब जिस तरह हो सके, नए शासक के साथ झगड़ा मोल लेने की चिन्ता हुई।

५ जनवरी को लैम्बर्ट ने एडवर्ड्स नामक अपने एक आदमी को इस नए शासक के पास भेज कर यह दरयाफ़्त करवाया कि कमाण्डर लैम्बर्ट भारत सरकार की सब शिकायतों और माँगों का एक ब्योरेवार पत्र आपके पास भेजना चाहता है, आप उस पत्र को कब लेने के लिए तैयार होंगे। बरमी शासक ने उत्तर में कहला भेजा कि पत्र कल ही मेरे पास भेज दिया जा सकता है, या जब कमाण्डर लैम्बर्ट को सुविधा हो। एडवर्ड्स के ज़बानी कहने पर नए बरमी शासक ने अङ्गरेज़ों की और कई छोटी छोटी शिकायतें भी हाथ के हाथ दूर कर दीं।

अगले दिन कमाण्डर लैम्बर्ट ने बजाय एक पत्र भेजने के पाँच अङ्गरेज़ फ़ौजी अफ़सरों का एक डेपुटेशन ठीक दोपहर के समय रङ्गून के नए शासक के पास भेजा। बरमी शासक से बातचीत केवल एक पत्र भेजने की हुई थी। वह उस कुसमय डेपुटेशन से मुलाक़ात करने के लिए तैयार न था। तथापि उसने उन्हें मुलाक़ात के लिए बुला लिया। बाद में कमाण्डर लैम्बर्ट ने डलहौज़ी को यह शिकायत लिख कर भेजी कि—"डेपुटेशन के लोगों

.को पूरा पाव घण्टा धूप में इन्तज़ार करना पड़ा।" बस, बरमा के साथ युद्ध छेड़ने के लिए काफ़ी बहाना मिल गया!

कमाण्डर लैम्बर्ट ने रङ्गून के नए शासक से अब किसी तरह का जवाब तलब करने की ज़रूरत महसूस न की; और न बरमा दरबार को किसी तरह की कोई सूचना दी गई। लैम्बर्ट ने तुरन्त रङ्गून के समस्त अङ्गरेज़ बाशिन्दों को सूचना दी कि आप लोग अपनी स्त्रियों और बच्चों समेत आज शाम तक नगर छोड़कर अङ्गरेज़ी जहाज़ों पर आ जायँ। बरमा के महाराजा का एक जहाज़ बन्दरगाह में कुछ दूर ऊपर खड़ा हुआ था। लैम्बर्ट ने उसी दिन शाम को इस बरमी जहाज़ को पकड़ लिया। उसी दिन लैम्बर्ट ने अङ्गरेज़ सरकार की ओर से बरमा सरकार के साथ युद्ध का एलान कर दिया और रङ्गून का मुहासरा शुरू कर दिया। बरमी जहाज़ का पकड़ना ही वास्तव में युद्ध का श्रीगणेश था। कॉबडेन लिखता है—

"रङ्गून के शासक का व्यवहार इसके बाद बहुत कम महत्व का विषय रह जाता है—राजनीतिज्ञ लोग, इतिहास-लेखक, और धर्म अधर्म की विवेचना करने वालों के लिए प्रश्न यह है कि बरमी शासक का व्यवहार चाहे कुछ भी क्यों न रहा हो, जब हम यह जानते थे कि बरमा के महाराजा का भाव हमारी ओर मित्रता का था, तब क्या हमारे लिए बरमी क़ौम के साथ युद्ध प्रारम्भ कर देना न्याय्य था?"*

---

* "The conduct of the Governor of Rangoon is now a subject of minor importance—the question for the statesman, the historian

रङ्गून के बाशन्दे और राज-कर्मचारी लैम्बर्ट के इस व्यवहार को देख कर चकित रह गए। राज-कर्मचारियों ने बड़ी नम्रता के साथ और बार बार लैम्बर्ट से प्रार्थना की कि आप बरमा के सरकारी जहाज़ को छोड़ दें और बरमा दरबार के साथ आपकी जो कुछ शिकायतें हैं, एक बार मित्रभाव से उनके निबटारे का हमें अवसर दें।

किन्तु कमाण्डर लैम्बर्ट ने एक न सुनी। ६ जनवरी को बरमी जहाज़ पकड़ा गया। तीन दिन तक कमाण्डर लैम्बर्ट के आदमियों ने उसे बन्दरगाह के अन्दर रक्खा। इन तीन दिन के अन्दर भी बरमी कर्मचारियों ने अपनी ओर से कोई काररवाई युद्ध की न की। १० जनवरी को लैम्बर्ट ने इस जहाज़ को रङ्गून के बन्दरगाह से बाहर ले जाना चाहा। मजबूर होकर बरमी कर्मचारियों ने लैम्बर्ट को सूचना दी कि यदि जहाज़ को बन्दरगाह से बाहर ले जाने की कोशिश की गई तो उसकी रक्षा के लिए गोली चलाना हमारा पवित्र कर्तव्य हो जायगा। इस पर भी १० जनवरी के साढ़े नौ बजे सुबह अङ्गरेजी जहाज़ 'फ़ॉक्स' बरमी जहाज़ को, जिसे 'यलो-शिप' कहा जाता है, अपने साथ बाँध कर बन्दरगाह से बाहर निकला। बन्दरगाह के बरमी संरक्षकों को विवश होकर गोली चलानी पड़ी। जवाब में जहाज़ 'फ़ॉक्स' के ऊपर से रङ्गून नगर

---

and the moralist is, were we justified, whatever his behavier was, with the known friendly disposition of the King, in commencing war with the Burmese nation? "—*How Wars are Got up in India*, by Cobden, p. 55.]

के ऊपर गोले बरसाए गए। स्वयं अङ्गरेज़ों के सरकारी काग़ज़ों में दर्ज है कि इस गोलेबारी के कारण सहस्रों निरपराध बरमियों की मृत्यु हुई। कॉबडेन लिखता है—

"आशा की जा सकती थी कि एक युद्ध के जहाज़ को ले जाकर और असंख्य बरमियों की हत्या करके ६१० पाउण्ड के दावे का काफ़ी हरजाना अङ्गरेज़ों को मिल चुका था। किन्तु युद्ध का एलान बराबर जारी रहा।"

कॉबडेन ने दिखलाया है कि जो पत्र-व्यवहार इस समय अङ्गरेज़ों और बरमियों के दरमियान हुआ उस सब में बरमियों की ओर से न्याय, निष्कपटता और सुजनता और अङ्गरेज़ों की ओर से इनके विपरीत गुण साफ़ दिखाई देते थे। तथापि गवरनर-जनरल लॉर्ड डलहौज़ी ने इस सब मामले की ख़बर पाते ही एक और ज़बरदस्त सेना बरमा की ओर रवाना की और पिछली माँगों के अतिरिक्त इस बार दस लाख रुपए नक़द बतौर हरजाने के बरमा दरबार से तलब किए। कॉबडेन ने उस पत्र को जो इस समय डलहौज़ी ने बरमा दरबार के नाम भेजा—"राजनीति, धर्म और तर्क तीनों के विरुद्ध"* बतलाया है।

ठीक उस समय जिस समय कि लॉर्ड डलहौज़ी रङ्गून के लिए और अधिक सेना रवाना कर रहा था, बरमा के बौद्ध महाराजा का एक अत्यन्त शान्त, नम्र और मित्रता-सूचक पत्र, लैम्बर्ट के ७ जनवरी के पत्र के उत्तर में, लॉर्ड डलहौज़ी के नाम रङ्गून

* "An unstatesman like, immoral, and illogical production."
—Ibid, p. 78.

से कलकत्ते जा रहा था। किन्तु डलहौजी को इस पत्र का इन्तज़ार कहाँ हो सकता था। ११ अप्रेल सन् १८५२ को ईस्टर रविवार के दिन अङ्गरेज़ी युद्ध के जहाज़ों ने रङ्गून और डाला के तटों के बराबर बराबर गोलेबारी शुरू कर दी।

दूसरे बरमा युद्ध की अनेक लड़ाइयों के विस्तार में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। बरमी जाति इस युद्ध के लिए बिलकुल तैयार न थी। कॉबडेन लिखता है—

"उसे युद्ध कहा ही नहीं जा सकता। युद्ध की अपेक्षा उसे विध्वंस, क़त्लेआम अथवा एक बला कहना अधिक उचित होगा।"*

युद्ध के दिनों में निरपराध बरमी प्रजा का ख़ूब संहार किया गया और ख़ूब लूट खसोट हुई। अन्त में बरमी साम्राज्य का सब से अधिक उपजाऊ और विशाल प्रान्त 'पगू' जिसे प्राचीन पुस्तकों में 'स्वर्ण-भूमि' कहा गया है, जिसमें पृथ्वी के ऊपर धन ही धन और पृथ्वी के नीचे असंख्य सोने की कानें छिपी हुई थीं, बरमा के बौद्ध महाराजा से छीन कर कम्पनी के भारतीय साम्राज्य में मिला लिया गया। यही लॉर्ड डलहौज़ी और उसके साथियों की हार्दिक कामना थी। दिसम्बर सन् १८५२ में यह प्रान्त अङ्गरेज़ों के शासन में आया। ५० वर्ष के अङ्गरेज़ी शासन ने उसे संसार के सब से अधिक धनसम्पन्न प्रदेशों की श्रेणी से गिरा कर सब से अधिक निर्धन देशों की श्रेणी में पहुँचा दिया।

---

* "A war it can'hardly be called. A rout, a massacre, or a visitation, would be a more appropriate term."—*Ibid*, p. 98.

कॉवडेन ने इस युद्ध के कारणों, उसकी प्रगति और उसके परिणाम के विषय में बड़े मार्मिक शब्दों में लिखा है—

"ये युद्ध हिन्दोस्तानियों के ख़र्च से चलाए जाते हैं। × × × बङ्गाल के अर्धनग्न किसानों को कप्तान शैपर्ड और कप्तान लुई के दावों की वसूली से क्या विशेष लाभ था, कि इन दावों के कारण जो युद्ध खड़ा हो गया उसका सब ख़र्च इन किसानों के सर पर डाला जाय?"

"शुरू में लॉर्ड डलहौज़ी ने हज़ार पाउण्ड से कम का बरमियों से दावा किया; इसके बाद रङ्गून के शासक ने हमारे अफ़सरों की जो हतक की उसके लिए गवरनर से माफ़ी माँगने के लिए कहा गया; इसके बाद लॉर्ड डलहौज़ी ने अपनी माँगों को बढ़ा कर एक लाख पाउण्ड नक़द कर दिया और बरमा के महाराजा के वज़ीरों से माफ़ी माँगने के लिए कहा, फिर बरमा के राज्य पर हमला कर दिया गया; इस पर नक़दी और माफ़ियों की सब माँगें एकाएक बन्द हो गईं, और लॉर्ड डलहौज़ी पिछली तमाम बातों के 'बदले' और 'हरजाने' में पगू का प्रान्त ले लेने के लिए राज़ी हो गया।"*

* "These wars are carried on at the expense of the people of India. . . . What exclusive interest had the half-naked peasant of Bengal in the settlement of the claims of Captains Shepperd and Lewis, that he should alone be made to bear the expense of the war which grew out of them?"

"Lord Dalhousi begins with a claim on the Burmese for less than a thousand pounds; which is followed by the additional demand of an apology from the Governor of Rangoon for the insult offered to our officers; next his terms are raised to one hundred thousand pounds, and an apology from the King's

दिसम्बर सन् १८५२ में संयुक्त राज्य अमरीका की सेनेट में वक्तृता देते हुए सेनेट के एक सदस्य जनरल कैस ने इसी युद्ध के विषय में कहा था—

"हिन्दोस्तान की एक और देशी रियासत एक ज़बरदस्त व्यापारी मण्डली की बदौलत का शिकार हो गई। और उसके अस्सी लाख अथवा एक करोड़ लोग अङ्गरेज़ों की असंख्य भारतीय प्रजा में शामिल कर लिए गए। और आप क्या समझते हैं कि इस युद्ध का क्या कारण रहा होगा जिसके परिणाम रूप अङ्गरेज़ अभी हाल ही में बरमा के राज्य को हड़प गए ? × × × यदि हमारे पास अत्यन्त अकाट्य गवाहियाँ न होतीं, तो हम इस सच्ची लूट के क़िस्से पर विश्वास करने से इनकार कर देते। किन्तु यह एक निर्विवाद घटना है कि इङ्गलिस्तान का बरमा के साथ युद्ध करने और बरमा के राजनैतिक अस्तित्व को मिटाने का कारण यह था कि बरमा ने ६१० पाउण्ड की एक विवादास्पद रक़म अदा नहीं की थी। × × × दूसरी क़ौमों को संयम और निस्स्वार्थता का उपदेश देना इस जाति को ख़ूब शोभा देता है !"*

---

ministers; then follows the invasion of the Burmese territory; when, suddenly, all demands for pecuniary compensation and apologies cease, and His Lordship is willing to accept the cession of Pegu as a 'compensation' and 'reparation' for the past."—Ibid, by Cobden, pp. 101-104.

* "Another of the native Powers of Hindostan has fallen before the march of a great commercial corporation and its 8,000,000 or 10,000,000 of people have gone to swell the immense congregation of British subjects in India. And what do you think was the cause of the war which has just ended in

लॉर्ड डलहौज़ी के इस युद्ध का वृत्तान्त हमने कॉबडेन की पुस्तक से लिया है। कॉबडेन ने अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि उसने तमाम हाल पार्लिमेण्ट के सरकारी काग़ज़ों से लिया है। कॉबडेन ने यह भी लिखा है, "मुझे सन्देह है कि दूसरे बरमा युद्ध के सरकारी काग़ज़ों में काट छाँट की गई है।" निस्सन्देह यदि इस युद्ध का सच्चा वृत्तान्त बरमियों से सुना जाय तो वह इससे भी कहीं अधिक भयङ्कर और अन्यायपूर्ण होगा। इतिहास-लेखक लडलो लिखता है कि पगू पर क़ब्ज़ा करना अङ्गरेज़ों के लिए इतना सरल न था। अप्रेल सन् १८५५ तक बरमियों और अङ्गरेज़ों में बराबर लड़ाई झगड़े होते रहे। अन्त में बरमा की राजधानी आवा में किसी तरह (?) एक क्रान्ति हुई। एक दूसरा महाराजा बरमा की गद्दी पर बैठा और पगू का प्रान्त अङ्गरेज़ कम्पनी को हज़म होगया।

---

the swallowing up of the Kingdom of Burmah? . . . Had we not the most irrefragable evidence we might well refuse credence to this story of real rapacity. But the fact is indisputable that England went to war with Burmah, and annihilated its political existence, for the nonpayment of the disputed demand of £s. 910. . . . Well does it become such a people to preach homilies to other nations upon disinterestedness and moderation."—Speech by General Cass in the Senate of the United States, December 1852.

तेंतालीसवाँ अध्याय

डलहौज़ी की भू-पिपासा

"लैप्स" की नीति

सरे सिख युद्ध और दूसरे बरमा युद्ध के अतिरिक्त और कोई युद्ध लॉर्ड डलहौजी के शासन काल में नहीं लड़ा गया; तथापि बिना युद्ध के डलहौजी ने आठ अन्य हिन्दोस्तानी राज्यों के अस्तित्व का अन्त कर दिया और एक और विशाल राज्य को अङ्ग भङ्ग कर डाला। जिस नीति के अनुसार इनमें से सात राज्यों अर्थात् सतारा, नागपुर, झाँसी, सम्बलपुर, जैतपुर, तञ्जोर और करनाटक को अङ्गरेज़ी राज्य में मिलाया गया उसे अङ्गरेज़ी में "लैप्स" कहते हैं। "लैप्स" का अर्थ यह था कि जिन देशी नरेशों ने कम्पनी के साथ मित्रता की सन्धि कर रक्खी थी, अथवा जिनके पूर्वजों की सहायता से कम्पनी ने भारत में अपना राज्य क़ायम किया था, उनमें से किसी के मर जाने पर यदि उसके कोई पुत्र न हो तो उसकी समस्त रियासत

अङ्गरेज़ कम्पनी का हक़ हो जाती थी और कम्पनी तुरन्त उस पर क़ब्ज़ा कर लेती थी।

पुत्र न होने की सूरत में अपने किसी नज़दीकी रिश्तेदार को गोद लेने का हक़ प्रत्येक भारतवासी को धर्मशास्त्रों के अनुसार सदा से प्राप्त रहा है। पति के पुत्रहीन मरने पर उसकी विधवा को गोद ले लेने का हक़ होता है। यह हक़ और गोद लेने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन समय से भारत में चली आती है। किन्तु पूर्वोक्त "लैप्स" की नीति के अनुसार किसी भी भारतीय नरेश को, जिसने दुर्भाग्यवश एक बार अङ्गरेज़ों के साथ मित्रता कर ली हो, अथवा उसकी विधवा महारानी को गोद लेने का कोई हक़ न था। गोद लिए हुए पुत्र को गद्दी का अधिकारी न माना जाता था, और न सिवाय आत्मज पुत्र के किसी भाई, भतीजे, चचा, पुत्री आदिक को गद्दी का हक़दार माना जाता था। इस विचित्र नीति पर अमल करके लॉर्ड डलहौज़ी ने इन रियासतों के साथ कम्पनी की पहली समस्त सन्धियों और अहदनामों को उठा कर ताक़ पर रख दिया।

यह नीति वास्तव में सन् १८३४ से प्रारम्भ हुई। उस वर्ष कम्पनी के डाइरेक्टरों ने भारत सरकार को लिखा—

"जब कभी किसी गोद लेने की क्रिया को मन्ज़ूर करना या न करना आपके हाथों में हो, आपको बहुत ही कम कभी मन्ज़ूरी देनी चाहिए, आम तौर पर नहीं, और जब कभी आप मन्ज़ूरी दें तो वह आपका विशेष अनुग्रह समझा जाना चाहिए।"*

* "Whenever it is optional with you to give or to withhold

इसी नीति के अनुसार लॉर्ड डलहौजी के पूर्व कोलाबा, माण्डवी और अम्बाला की रियासतों पर क़ब्ज़ा किया जा चुका था। लॉर्ड डलहौजी ने और अधिक ज़ोरों के साथ इस नीति पर अमल किया। निस्सन्देह यदि लॉर्ड डलहौजी के बाद ही सन् १८५७ का विप्लव न हुआ होता तो सम्भव है भारत के अन्दर एक भी हिन्दू या मुसलमान देशी रियासत न बची होती।

सतारा

सब से पहला भारतीय राज्य, जिसे इस नीति के अनुसार लॉर्ड डलहौजी ने ज़ब्त किया, सतारा का राज्य था। सन् १८१८ में पेशवा बाजीराव की सत्ता का नाश करने के लिए जो एलान कम्पनी ने प्रकाशित किया था उसमें मराठा मण्डल के शेष समस्त नरेशों और जागीरदारों से यह वादा किया गया था कि आपके और आपके उत्तराधिकारियों के अधिकारों में कभी किसी तरह का हस्तक्षेप न किया जायगा। सतारा के राजा शिवाजी के वंशज थे। सतारा के राजा के नाम का उस समय पेशवा के विरुद्ध उपयोग करने के लिए सतारा के राजा से यह साफ़ वादा किया गया कि पेशवा की सत्ता को अन्त कर मराठा साम्राज्य का आधिपत्य फिर से आपको प्रदान कर दिया जायगा और सतारा

---

your consent to adoptions, the indulgence should be the exception and not the rule, and should never be granted but as a special mark of approbation."—Court of Directors of the East India Company, 1834.

ही को समस्त मराठा साम्राज्य की मुख्य राजधानी बना दिया जायगा ।*

पूर्वोक्त एलान और सतारा के राजा की मदद से ही अङ्गरेज़ों ने पेशवा बाजीराव का नाश किया। बाद में सतारा के राजा के साथ प्रतिज्ञाओं और उस एलान के अन्य सब वादों को तोड़ दिया गया। रॉबर्ट नाइट नामक एक अङ्गरेज़ लिखता है—

"एलान के वादों और सतारा के राजा की पुनः स्थापना, इन दोनों ने मिल कर पेशवा का नाश कर दिया; और अब हमारा जान बूझ कर उन वादों से पीछे हटना, जो हमने उस समय किए थे, एक ऐसा कार्य है जिसे कोई भी ईमानदार आदमी निन्दनीय ठहराए बिना नहीं रह सकता, चाहे इस वचन-भङ्ग के लिए ऊपरी दलीलें कैसी भी क्यों न दी जायँ।"†

राजा का नाम प्रतापसिंह था। प्रतापसिंह उस समय नाबालिग़ था। युद्ध के बाद प्रतापसिंह को महाराजा स्वीकार किया गया और कप्तान ग्राण्ट डफ़ को प्रतापसिंह के बालिग़ होने के समय तक

---

* *The Bakhar or Historical Sketch,* by Balwant Rao Chitnavis, translated into English, by Dr. Milne.

† "The assurances of the proclamation, and the reinstatement of the Raja of Satara, ruined the Peshwa ; and our deliberate withdrawal now from the pledges then given, merits the reprobation of every conscientious man, however spacious the arguments upon which the withdrawal has been recommended."—*The Inam Commission Unmasked,* by Robert Knight. pp. 45, 46.

राज-कार्य चलाने के लिए रेज़िडेण्ट नियुक्त करके सतारा भेज दिया गया। बालिग़ होने पर प्रतापसिंह बुद्धिमान और योग्य शासक निकला। अपनी इस योग्यता और बुद्धिमत्ता के कारण ही वह अपने अङ्गरेज़ मित्रों की नज़रों में और अधिक खटकने लगा। बम्बई के गवरनर सर रॉबर्ट ग्राण्ट ने फ़ैसला किया कि प्रतापसिंह को कुचल दिया जाय। फ़ौरन् एक षड्यन्त्र रचा गया। निरपराध प्रतापसिंह को क़ैद करके बनारस भेज दिया गया और उसके भाई को उसकी जगह सतारा के तख़्त पर बैठा दिया गया।

सन् १८४८ के लगभग दोनों भाइयों की मृत्यु होगई। दोनों में से किसी के भी आत्मज पुत्र न था। किन्तु दोनों के दत्तक पुत्र मौजूद थे। २४ दिसम्बर सन् १८४७ को प्रतापसिंह की मृत्यु पर इङ्गलिस्तान के भारत मन्त्री हॉबहाउस ने लॉर्ड डलहौज़ी को लिखा—

"सतारा के पदच्युत राजा की मृत्यु निस्सन्देह बड़े ही अच्छे अवसर पर हुई है। मैंने सुना है कि वर्तमान राजा का स्वास्थ्य भी बहुत ख़राब है; और यह कदापि असम्भव नहीं है कि हमें शीघ्र ही उसके राज्य के भाग्य का फ़ैसला करना पड़े। मेरी बड़ी ज़बरदस्त राय है कि वर्तमान राजा के पुत्रविहीन मरने पर दत्तक पुत्र को स्वीकार न किया जाय और इस छोटे से राज्य को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया जाय। यदि यह प्रश्न मेरे मन्त्री रहते हुए तय हो गया तो मैं इस कार्य को पूरा करने में कोई कसर उठा न रक्खूँगा।"*

* "The death of the Ex-Raja of Satara certainly comes at a very opportune moment. The reigning Raja is, I hear, in very

इसी आदेश के अनुसार लॉर्ड डलहौजी ने, सतारा के राजा के मरते ही, तमाम पिछली सन्धियों का उल्लङ्घन करके, राजा के पुत्र न होने का वहाना लेकर, और गोद लेने की प्राचीन प्रथा को नाजायज़ कह कर, जवरदस्ती सतारा के राज्य पर कम्पनी का क़ब्ज़ा जमा लिया।

ग़दर के सत्रह वर्ष वाद सन् १८७४ ई० में सतारा की विधवा रानी ने इस अन्याय के विरुद्ध महारानी विक्टोरिया के नाम एक प्रार्थना पत्र भेजा। किन्तु उसका परिणाम क्या हो सकता था!

नागपुर

नागपुर के अन्तिम राजा तीसरे राघोजी भोंसले की मृत्यु ११ दिसम्बर सन् १८५३ को हुई। इतिहास से पता चलता है कि राघोजी समझदार और नेक नरेश था। उसका शासन-प्रवन्ध अत्यन्त सराहनीय था। किन्तु लॉर्ड डलहौजी ने राजा की मृत्यु के वाद ही उसके चरित्र पर अनेक झूठे और लज्जाजनक इलज़ाम लगाने शुरू कर दिए।

---

bad health, and it is not at all impossible we may soon have to decide upon the fate of his territory. I have a very strong opinion that on the death of the present prince without a son, and no adoption should be permitted, this petty principality should be merged in the British Empire; and if the question is decided in my "day of sextonship," I shall leave no stone unturned to bring about that result."—Letter from Hobhouse to Lord Dalhousie, 24th December, 1847.

राघोजी के कोई पुत्र न था। विधवा महारानी ने विधिवत् यशवन्तराव नामक अपने एक नज़दीकी रिश्तेदार को गोद ले लिया। यशवन्तराव ही ने पुत्र की तरह परलोकवासी राजा का श्राद्ध किया।

लॉर्ड डलहौज़ी ने सन् १८२६ की सन्धि की अवहेलना करते हुए २८ जनवरी सन् १८५४ को यह एलान कर दिया कि नागपुर के तख़्त का कोई हक़दार न होने के कारण नागपुर का समस्त राज्य अङ्गरेज़ कम्पनी के क़ब्ज़े में आगया।

मेजर ईवन्स बेल ने इस अन्याय को बयान करते हुए लिखा है कि केवल १० वर्ष पूर्व अर्थात् सन् १८४४ में नागपुर के रेज़िडेण्ट के एक पत्र के उत्तर में गवरनर-जनरल ने यह साफ़ स्वीकार किया था कि पुत्र न होने की सूरत में राजा को और राजा की मृत्यु हो जाने पर उसके कुटुम्बियों को गोद लेने का पूर्ण अधिकार है। किन्तु केवल दस वर्ष के अन्दर अङ्गरेज़ शासकों के उसूल बदल गए थे! राघोजी के कुटुम्बियों और विधवा रानियों से किसी तरह की राय नहीं ली गई और न उनसे कोई पूछ ताछ की गई। उन्हें यह भी नहीं बतलाया गया कि किन कारणों से अङ्गरेज़ सरकार ने उनके और उनके कुल के पैतृक अधिकारों का क्षण भर के अन्दर अन्त कर दिया। उन्हें केवल यह सूचना दे दी गई कि तुम्हारा राज्य अब अङ्गरेज़ी साम्राज्य में मिला लिया गया।

२८ जनवरी सन् १८५४ के एलान में लॉर्ड डलहौज़ी ने यह निर्लज्ज झूठ तक लिख दिया कि "रानियाँ दत्तक यशवन्तराव को गद्दी

देना पसन्द नहीं करतीं और यशवन्तराव को गद्दी न देना अङ्गरेज़ सरकार का रानियों के ऊपर उपकार करना है !"

गवरनर-जनरल की कौन्सिल का एक सदस्य जनरल लो किसी कारण इस अत्याचार के विरुद्ध था। उसने भोंसले कुल की ओर डलहौज़ी के इस अन्याय को वड़े ज़ोरदार शब्दों में स्वीकार किया है। तथापि इङ्गलिस्तान के उदार से उदार नीतिज्ञों ने इस कार्य के लिए लॉर्ड डलहौज़ी की ख़ूब प्रशंसा की।

नागपुर राज्य का एक भाग इससे पूर्व ही अङ्गरेज़ी राज्य में मिला लिया जा चुका था। शेष समस्त भाग अब कम्पनी के भारतीय राज्य में शामिल कर लिया गया।

किन्तु लॉर्ड डलहौज़ी और उसके अङ्गरेज़ साथियों की धन-लोलुपता यहीं पर समाप्त नहीं हुई। इतिहास-लेखक सर जॉन के लिखता है कि नागपुर के राजमहल का समस्त असबाव, यहाँ तक कि घोड़े, हाथी, ऊँट, वैल, गाय, इत्यादि और रानियों के तमाम ज़ेवर और जवाहरात, घर का सामान, वरतन और पहनने के कपड़े तक ज़बरदस्ती वाहर निकाल कर नीलाम कर दिए गए! सर जॉन के लिखता है कि उस दिन सीतावल्डी में शाही हाथी, घोड़े और सवारी के वैल मांस के दामों वेचे गए! अस्सी वर्ष की वृद्धा राजपितामही महारानी वक्काबाई इस अपमान को देख कर इतनी दुखी हुई कि एक वार उसने कह दिया कि यदि महल का सामान वाहर निकाला गया तो मैं महल में आग लगा दूँगी। तथापि सामान वाहर निकाल लिया गया। महल के भीतर

का फ़र्श तक खोद डाला गया। रानियों के ज़ेवर, जवाहरात और सोने चाँदी के जड़ाऊ वर्तन तथा अन्य क़ीमती सामान कलकत्ते ले जाकर नीलाम किया गया। नागपुर में लगभग ६०० हाथी, घोड़े, ऊँट और बैल १३,००० रुपए में नीलाम हुए। यह नीलाम अधिकतर ४ सितम्बर को हुआ। कलकत्ते की 'हैमिल्टन ऐण्ड कम्पनी' नामक एक अङ्गरेज़ कम्पनी को इस नीलाम का ठेका दिया गया। एक एक जोड़ी बैलों की तथा शाही घोड़ों की पाँच पाँच रुपए में बेंची गई। हाथी सौ रुपए में। करोड़ों के जवाहरात लाखों और सहस्रों में नीलाम कर दिए गए।

नागपुर का राजकुल छत्रपति शिवाजी के वंश से था। इसी कुल ने उस समय, जब कि नाना फड़नवीस और हैदरअली जैसे देशभक्त नीतिज्ञ विदेशियों से भारत को स्वाधीन रखने के विकट प्रयत्न कर रहे थे, विदेशियों का साथ देकर कम्पनी के भारतीय साम्राज्य के कोमल अङ्कुरों को नष्ट होने से बचाया था। इसी पाप के प्रायश्चित्त रूप इस कुल के एक नरेश को निर्वासित होकर अकेले देश देश और जङ्गल जङ्गल घूमना पड़ा और दूसरे के कुटुम्बियों, रानियों तथा उत्तराधिकारी को इस प्रकार ज़िल्लत सहनी पड़ी।

एक इतिहास-लेखक लिखता है कि नागपुर राज्य के अन्दर रुई अधिक और उत्तम उत्पन्न होती थी। इङ्गलिस्तान को अपनी बढ़ती हुई कपड़े की कारीगरी के लिए रुई की आवश्यकता थी। इसी लिए नागपुर पर क़ब्ज़ा करना उस समय आवश्यक था।

वही लेखक यह भी लिखता है कि नागपुर पर क़ब्ज़ा जमाने से पहले राज्य के अनेक कर्मचारियों को अङ्गरेज़ों ने रिशवतें देकर अपनी ओर करने का प्रयत्न किया, किन्तु "इसमें आसानी से सफलता न मिल सकी।"*

झाँसी

पेशवा सत्ता के दिनों में पेशवा का एक सूबेदार झाँसी के राज्य पर शासन किया करता था। धीरे धीरे सूबेदार का पद पैतृक हो गया, किन्तु पेशवा का आधिपत्य झाँसी के राजा के ऊपर बराबर बना रहा।

सन् १८१७ में कम्पनी ने झाँसी के राजा रामचन्द्रराव के साथ मित्रता की सन्धि की, जिसमें कम्पनी सरकार ने वादा किया कि झाँसी का समस्त राज्य "सदा के लिए" "राजा रामचन्द्रराव, उसके उत्तराधिकारियों और वंशजों के शासन में पैतृक रूप से रहने दिया जायगा।"†

२१ नवम्बर सन् १८५३ को झाँसी के राजा गङ्गाधरराव का देहान्त हुआ। गङ्गाधरराव की आयु मृत्यु के समय बहुत थोड़ी थी। मृत्यु से पहले उसने विधिवत् दामोदरराव नामक एक बालक को गोद ले लिया। दामोदरराव गङ्गाधरराव के ही कुल का और गङ्गाधरराव का अत्यन्त नज़दीकी रिश्तेदार था।

---

* ". . . They were not easily seduced . . . ."—*Calcutta Review*, vol. 38, 1863, pp. 230-31.

† Aitchison's *Treaties*, etc, revised edition.

मेजर ईवन्स बेल लिखता है—

"× × × गोद लेने का संस्कार बिलकुल ठीक ठीक हिन्दू शास्त्र की मर्यादा के अनुसार किया गया, अङ्गरेज़ अफ़सर संस्कार में मौजूद थे, और राजा ने अपने मरने से पहले बाज़ाब्ता पत्र द्वारा अङ्गरेज़ सरकार को उसकी सूचना दे दी।"*

तथापि लॉर्ड डलहौज़ी ने २७ फ़रवरी सन् १८५४ को फ़ैसला किया कि दत्तक पुत्र को राज्य का कोई अधिकार नहीं। १३ मार्च सन् १८५४ को एक एलान द्वारा झाँसी की रियासत ज़बरदस्ती कम्पनी के राज्य में मिला ली गई। इतिहास-लेखक मेजर ईवन्स बेल ने अपनी पुस्तक 'दी एम्पायर इन इण्डिया' में लॉर्ड डलहौज़ी के इस अन्याय को बड़े स्पष्ट शब्दों में और विस्तार के साथ बयान किया है।

झाँसी की प्रजा और राजकुल के साथ कम्पनी के इस घोर अन्याय का ही फल था कि सन् १८५७-५८ के विप्लव में झाँसी की प्रसिद्ध रानी लक्ष्मीबाई ने शस्त्र धारण कर, अद्भुत वीरता के साथ अङ्गरेज़ी सेना का मुक़ाबला किया। किन्तु रानी लक्ष्मीबाई के चरित्र और इस विषय का अधिक सम्बन्ध एक अगले अध्याय से है।

सम्बलपुर

सम्बलपुर का ज़िला, जो इस समय बिहार और उड़ीसा प्रान्त में है, इससे पूर्व मध्यप्रान्त में शामिल था। सन् १८४९ में लॉर्ड

---

* *Empire in India,*—by Major Evans Bell, pp. 212-13.

डलहौजी ने इसी 'लैप्स' के सिद्धान्त के अनुसार सम्बलपुर के स्वतन्त्र, किन्तु निर्बल राज्य पर अपना क़ब्ज़ा जमाया।

जेतपुर

जेतपुर का छोटा सा राज्य बुन्देलखण्ड में था। सन् १८४९ ही में इसी प्रकार जेतपुर को भी ख़त्म किया गया।

तञ्जोर

तञ्जोर का रहा सहा इलाक़ा सन् १८५५ में इसी प्रणाली के अनुसार कम्पनी के राज्य में मिला लिया गया। तञ्जोर की विधवा महारानी कामाक्षी बाई ने मद्रास गवरमेण्ट के विरुद्ध मद्रास की सुप्रीम कोर्ट में इस बात की नालिश की कि मेरे पति की वैय्यक्तिक सम्पत्ति को भी मद्रास गवरमेण्ट ने ज़ब्त कर लिया है, वह मुझे दिलवा दी जाय। मद्रास की सुप्रीम कोर्ट ने फ़ैसला रानी के हक़ में किया। मद्रास गवरमेण्ट ने इस फ़ैसले के विरुद्ध इङ्गलिस्तान की प्रीवी कौन्सिल के सामने अपील की। प्रीवी कौन्सिल के विद्वान जजों ने फ़ैसला दिया कि यद्यपि अङ्गरेज़ सरकार को तञ्जोर पर क़ब्ज़ा करने का कोई क़ानूनी अधिकार हासिल न था, और रानी के साथ ज़बरदस्त अन्याय किया गया है, तथापि यह मामला राजनैतिक है और अदालत को इसमें दख़ल देने का कोई हक़ नहीं; इसलिए मद्रास सुप्रीम कोर्ट का फ़ैसला रद किया जाता है और रानी का दावा खारिज!

करनाटक

मद्रास का नगर और उसके आस पास का तमाम इलाक़ा किसी समय करनाटक की मुसलमान सल्तनत में शामिल था। सब से पहले मद्रास और कड्लोर कम्पनी ने करनाटक के नवाब से प्राप्त किए। उसके बाद नवाब मोहम्मदअली वालाजाह ने पूना-माली का ताल्लुक़ा और और कई ताल्लुक़े अङ्गरेज कम्पनी को प्रदान कर दिए। सन् १७६३ में नवाब ने चिङ्गलपुट की जागीर, जिसकी आमदनी उस समय १८ लाख रुपए सालाना थी, अपने मित्र अङ्गरेज़ों को दे दी। इन तमाम इलाक़ों के लिए कम्पनी के नाम नवाब के दरबार से बाज़ाब्ता सनदें जारी की गईं। इसके बहुत समय बाद तक अङ्गरेज कम्पनी करनाटक के नवाब को इन तमाम इलाक़ों के लिए ख़िराज देती थी और वहाँ पर रहने वाले अङ्गरेज़ अपने को नवाब की प्रजा कहते थे। नवाब मोहम्मदअली अन्य भारतीय नरेशों के विरुद्ध अङ्गरेज़ों का सदा मददगार रहा। तथापि मोहम्मदअली के बेटे उमदतुलउमरा की मृत्यु पर करनाटक का बहुत सा इलाक़ा और नवाब के अनेक अधिकार ज़बरदस्ती कम्पनी ने अपने हाथों में ले लिए। किन्तु सन् १८०१ की सन्धि में भी कम्पनी और नवाब करनाटक का यह नाम मात्र का सम्बन्ध क़ायम रक्खा गया। सन् १८५५ के अक्तूबर मास में नवाब मोहम्मद ग़ौस का देहान्त हुआ और उसके उत्तराधिकारी अज़ीम जाह को अङ्गरेज़ों ने नवाब स्वीकार करने ही से इनकार कर दिया। मद्रास के गवरनर लॉर्ड हैरिस ने लॉर्ड डलहौज़ी को

लिखा कि—"करनाटक के नवाब की सत्ता केवल एक दिखावटी तमाशा है, किन्तु किसी भी समय वह हमारे विरुद्ध विद्रोह और आन्दोलन का एक केन्द्र बन सकती है। इसलिए इस तमाशे को जारी रखना अब बुद्धिमत्ता नहीं है।" इत्यादि।

डलहौज़ी ने हैरिस की राय को पसन्द किया। करनाटक का समस्त रहा सहा इलाक़ा अङ्गरेज़ी राज्य में मिला लिया गया; और भारत के एक और प्राचीन राजकुल का अन्त हुआ।

इतिहास-लेखक लडलो लिखता है—

"जिस समय से गवरनर-जनरल ने अपनी इस अपहरण-नीति का एलान किया उस समय से ही भारतीय नरेशों में पुत्रविहीन मौतें इतनी अधिक होने लगीं कि जिसे देख कर मनुष्य को आश्चर्य हुए बिना नहीं रह सकता।"*

उस समय की भारतीय रियासतों और उनके अन्दर कम्पनी के कारनामों का कोई सच्चा इतिहास किसी भारतवासी के हाथ का लिखा हुआ नहीं मिलता, इसलिए इतिहास-लेखक लडलो के आश्चर्य को हल कर सकना अब असम्भव है।

बरार

हिन्दू, सिख, बौद्ध अथवा मुसलमान किसी भी धर्म के

---

* "One can not fail to be struck with the frequency of death without heirs among Indian sovereigns from the moment when the policy of annexation is proclaimed by a Governor-General."
—Ludlow's *British India*, vol. ii, p 190

भारतीय नरेश डलहौजी के चङ्गुल से न बच सके। उसके भारत आगमन के समय दो विशाल मुसलमान राज्य भारत में मौजूद थे। उत्तर में अवध का राज्य और दक्षिण में निज़ाम की रियासत। इनमें से प्रत्येक की वार्षिक आमदनी कई करोड़ रुपए थी। अवध हिन्दोस्तान के सब से अधिक ज़रख़ेज़ हिस्सों में गिना जाता था और बरार में अनेक धातुओं की कानें थीं।

रॉबर्ट नाइट ने सन् १८८० में लिखा था कि सन् १८५१ के लगभग अङ्गरेज़ सरकार की प्रधान नीति यह थी कि जब भी मौक़ा मिल सके देशी रियासतों की संख्या को कम किया जाय और हैदराबाद और अवध के नाश में यदि देरी हुई तो केवल पञ्जाब और बरमा के युद्धों के कारण हुई।*

सन् १८०० की सन्धि के अनुसार हैदराबाद के निज़ाम को सबसीडीयरी सेना के ख़र्च के लिए एक बहुत बड़ी रक़म प्रति वर्ष कम्पनी को देनी होती थी। बरार का प्रान्त दूसरे मराठा युद्ध के बाद नागपुर के राजा से छीन कर निज़ाम को दे दिया गया था। उस समय से बराबर बरार के अन्दर निज़ाम के विरुद्ध उपद्रव चले आते थे। कहा जाता है कि बरार के हिन्दू देशमुख प्रायः निज़ाम के विरुद्ध विद्रोह करते रहते थे। इतिहास-लेखक लॉयल लिखता है कि बरार के शहरों में आए दिन ही हिन्दू और मुसलमानों में झगड़े होते रहते थे, किन्तु ये झगड़े निज़ाम के शेष राज्य में और कहीं सुनने में न आते थे। इन उपद्रवों को शान्त

* The *Statesman*, July 1, 1880 p. 162.

करने के लिए गवरनर-जनरल ने सबसीडीयरी सेना देने से इनकार कर दिया; यद्यपि यह सेना वास्तव में निज़ाम ही की सेना थी, निज़ाम ही के ख़र्च से रक्खी गई थी, और जिस सन्धि द्वारा यह सेना निज़ाम के इलाक़े में रक्खी गई थी, उसमें यह साफ़ दर्ज था कि इस सेना का उद्देश निज़ाम के इलाक़े में शान्ति क़ायम रखना और निज़ाम को हर तरह की सहायता देना है। बरार के उपद्रवों को शान्त करने के लिए निज़ाम पर ज़ोर दिया गया कि वह बरार के अन्दर विशेष सेना रक्खे। यह नई सेना भी कम्पनी ही की थी, इसके भी अफ़सर अङ्गरेज़ थे और अङ्गरेज़ों ही के वह नियन्त्रण में थी; तथापि इसका ख़र्च भी निज़ाम पर डाला गया।

इस सब का परिणाम यह हुआ कि निज़ाम का ख़र्च और उसकी मुसीबतें दोनों बढ़ती चली गईं। सबसीडीयरी सेना का ख़र्च अदा करने के लिए निज़ाम को धन की कमी होने लगी। हैदराबाद के अन्दर कई नई अङ्गरेज़ी कम्पनियाँ खोली गईं जो निज़ाम को क़र्ज़ देने के लिए राज़ी होगईं। मजबूरन् इन अङ्गरेज़ बैङ्किङ्ग कम्पनियों से निज़ाम को बार बार क़र्ज़ लेना पड़ा, और अन्य मुसीबतों के साथ साथ निज़ाम का क़र्ज़ा भी बढ़ता चला गया। इन विदेशी साहूकार कम्पनियों का धन भी यदि सब नहीं तो अधिकतर हैदराबाद ही से कमाया हुआ था।

६ जून सन् १८५१ को लॉर्ड डलहौज़ी ने निज़ाम के नाम एक अत्यन्त धृष्टतापूर्ण पत्र लिखा। निज़ाम के राज्य में थोड़े से ऐसे क़िले रह गए थे जो दरबार के वफ़ादार अरब सिपाहियों के हाथों

में थे। ये वीर अरब कहीं भी अङ्गरेज़ों के क़ाबू में न आए थे। लॉर्ड डलहौज़ी ने निज़ाम को धमकी दी कि फ़ौरन् इन अरबों को बरख़ास्त कर दिया जाय। और यद्यपि कम्पनी का एक पैसा क़र्ज़ा भी निज़ाम के ज़िम्मे न था, निज़ाम के जो कुछ क़र्ज़े थे वे व्यक्तिगत कम्पनियों के क़र्ज़े थे, तथापि "अपने क़र्ज़ों की अदायगी में" निज़ाम से उसका एक तिहाई राज्य अर्थात् बरार का उपजाऊ प्रान्त फ़ौरन् कुछ वर्षों के लिए पट्टे पर तलब किया गया। निज़ाम ने बहुतेरे एतराज़ किए, किन्तु अङ्गरेज़ी फ़ौज ने बरार पर क़ब्ज़ा कर लिया। लॉर्ड डलहौज़ी ने सञ्जीदगी के साथ यह एलान किया कि बरार बाद में निज़ाम को लौटा दिया जायगा। इसके लगभग पचास वर्ष बाद गवरनर-जनरल लॉर्ड करज़न ने बरार के पट्टे को मौजूदा अङ्गरेज़ सरकार के नाम स्थायी कर लिया। निज़ाम के पास स्वीकार करने के सिवा कोई चारा न था।

भारत भर में सब से अच्छी रुई बरार के प्रान्त में पैदा होती है।

अवध

सब से अन्तिम भारतीय राज्य, जिसे लॉर्ड डलहौज़ी ने अङ्गरेज़ी राज्य में शामिल किया, अवध का राज्य था। लॉर्ड डलहौज़ी के इस कार्य को वर्णन करने से पहले कुछ वर्ष पूर्व की एक और हास्य-जनक घटना को वर्णन करना अप्रासङ्गिक न होगा। डलहौज़ी का पिता एक समय कम्पनी की भारतीय सेना का कमाण्डर-इन-चीफ़ था। अपने समय के अन्य अङ्गरेज़ अफ़सरों के समान वह एक बार लखनऊ के नवाब से भेंट करने गया। कमाण्डर-इन-चीफ़ ने

अवध के नवाब से अपनी अर्धाङ्गिनी का परिचय कराया। सम्भवतः कमाण्डर-इन-चीफ़ का उद्देश अपनी पत्नी को महल में भिजवा कर बेगमों से कुछ नज़रें कमाना था। पुरुषों से स्त्रियों का इस प्रकार परिचय कराने का रिवाज भारत में न था। अवध-नरेश कमाण्डर-इन-चीफ़ का मतलब न समझ सका। वह यह समझा कि कमाण्डर-इन-चीफ़ अपनी बीबी को नवाब के हाथ बेचना चाहता है। निस्सन्देह अवध के नवाब को इस तरह का सौदा रुचिकर न हो सकता था। थोड़ी देर के बाद उसने अपने मुलाज़िमों से कहा—"काफ़ी हो चुका! इस औरत को यहाँ से हटाओ!"*

अङ्गरेज़ों और अवध का इतिहास पूर्व के कई अध्यायों में दिया जा चुका है। उसे यहाँ पर संक्षेप में दोहराना अप्रासङ्गिक न होगा। आरम्भ में अवध का राज्य विशाल मुग़ल साम्राज्य का एक अङ्ग था। अवध के नवाब दिल्ली सम्राट के पैतृक वज़ीर समझे जाते थे। धीरे धीरे मुग़ल साम्राज्य की निर्बलता के अन्तिम दिनों में अवध नरेश बहुत दरजे तक उस साम्राज्य से स्वतन्त्र होते चले गए।

कम्पनी के साथ अवध के नवाब का सम्बन्ध सन् १७६४ में प्रारम्भ हुआ। आरम्भ में अवध के नवाब को अपनी सल्तनत की रक्षा के लिए सल्तनत के अन्दर कम्पनी की सेना रखने की सलाह

---

* *The Life and Opinions of General Sir Charles James Napier, G. C. B.*,—by Lieutenant-General Sir W. Napier, K. C. B., 2nd Edition 1857, vol. iv, p, 296.

दी गई। इस सेना के ख़र्च के लिए सोलह लाख रुपए वार्षिक नवाब से लिए जाने लगे। धीरे धीरे इस सबसीडीयरी सेना की संख्या बढ़ने लगी। उसके ख़र्च के लिए रक़म भी बढ़ती चली गई। यहाँ तक कि इस विशाल सेना के ख़र्च के लिए रुहेलखण्ड और दोआब का इलाक़ा, जिसकी बचत उस समय दो करोड़ रुपए सालाना थी, नवाब से ले लिया गया।

सन् १८०१ में अवध के नवाब और कम्पनी के बीच एक और नई सन्धि हुई, जिसमें अङ्गरेज़ों ने वादा किया कि नवाब का शेष समस्त राज्य पीढ़ी दर पीढ़ी उसके शासन में क़ायम रहेगा और अङ्गरेज़ उसमें कभी किसी तरह का दख़ल न देंगे। किन्तु इसी सन्धि की एक धारा यह भी थी कि—"अङ्गरेज़ सरकार नवाब-वज़ीर के समस्त इलाक़े की बाहर के आक्रमणों और भीतर के विद्रोहों से रक्षा करने का वादा करती है।" वास्तव में यही धारा अवध की समस्त भावी मुसीबतों की जड़ साबित हुई।

इसके बाद समय समय पर अङ्गरेज़ गवरनर-जनरलों ने अपने भारतीय युद्धों के लिए करोड़ों रुपए, कभी बतौर क़र्ज़ के और कभी बतौर सहायता के, अवध के नवाब से वसूल किए। असंख्य अङ्गरेज़ शासकों और अफ़सरों की व्यक्तिगत आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए भी अवध के ख़ज़ाने ने समय समय पर कामधेनु का काम दिया। वास्तव में अवध तथा करनाटक इन दो राज्यों से धन चूस चूस कर ही अधिकतर कम्पनी के बाल साम्राज्य ने भारत में अपने शरीर को हृष्ट पुष्ट किया।

आए दिन की नित्य नई माँगों के कारण अवध के नवाव की आर्थिक कठिनाई बढ़ती चली गई। एक अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट लखनऊ के दरवार में रहने लगा। शासन के छोटे से छोटे मामलों में नित्य नए हस्तक्षेप होने लगे। कई छोटे छोटे इलाक़ों का शासन नवाव से कह कर अङ्गरेज़ अफ़सरों को सौंप दिया गया। इन अङ्गरेज़ अफ़सरों ने स्थान स्थान पर अपने क़ानून जारी कर दिए। इस अनुचित हस्तक्षेप के कारण प्रजा में दुख और दारिद्रय बढ़ने लगा। नवाव ने प्रजा की दशा सुधारने के अनेक प्रयत्न किए। हर वार कम्पनी के प्रतिनिधियों ने इन प्रयत्नों को सफल होने से रोक लिया।

अवध के शासन में कम्पनी के प्रतिनिधियों के इस अनुचित हस्तक्षेप और उसके परिणामों को वर्णन करते हुए सर हेनरी लॉरेन्स लिखता है—

"हमारे भारतीय इतिहास में अवध का अध्याय हमारे लिए एक कलङ्कर अध्याय है। उससे हमें यह भयङ्कर चेतावनी मिलती है कि जो राजनीतिज्ञ एक वार धर्म अधर्म के सीधे नियम को छोड़ कर उसकी जगह क्षणिक उपयोगिता अथवा अपने विचार के अनुसार 'अपने राष्ट्रीय हित' की दृष्टि से काम करने लगता है तो वह किस हद तक पहुँच सकता है। अवध के इतिहास के प्रत्येक लेखक ने जो घटनाएँ बयान की हैं उन सबसे यही सिद्ध होता है कि उस प्रान्त में अङ्गरेज़ों का दख़ल देना जिस दरजे अङ्गरेज़ों के नाम पर कलङ्क था उस दरजे तक ही अवध दरबार और वहाँ की प्रजा के लिए नाशकर था। × × × हम जिधर भी नज़र डालते हैं, हमें अपने हस्तक्षेप के नाशकर परिणाम स्पष्ट अक्षरों में लिखे हुए

दिखाई देते हैं। × × × यदि कहीं पर भी कुशासन क़ायम रखने के लिए कोई पक्की तरकीब की जा सकती है, तो वह यह है कि नरेश देशी हो, उसका वज़ीर देशी हो, दोनों की पुष्टि के लिए विदेशी सङ्गीनें हों और एक अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट उन्हें पीछे से चलाने वाला हो।"*

जब कि एक ओर अवध के शासन में इस प्रकार पद पद पर हस्तक्षेप किया जा रहा था, दूसरी ओर अवध के नवाब को दिल्ली के दरबार से तोड़ने की पूरी कोशिशें जारी थीं। कम्पनी के प्रतिनिधि इस बात के लिए चिन्तित मालूम होते थे कि अवध के नरेश दिल्ली की ओर से सर्वथा स्वाधीन हों! यहाँ तक कि मार्क्विस ऑफ़ हेस्टिंग्स ने अवध के 'नवाब-वज़ीर' को 'अवध के बादशाह' की उपाधि दी और इसके बाद नवाब के उत्तराधिकारियों को इसी उपाधि से पुकारा गया। किन्तु ज्यों ज्यों मुग़ल दरबार की ओर से

* "Oude affords but a discreditable chapter in our Indian annals, and furnishes a fearful warning of the lengths to which a statesman may be carried, when once he substitutes expediency and his own view of public advantage, for the simple rule of right and wrong. The facts furnished by every writer on Oude affairs all testify to the same point, that British interference with that province has been as prejudicial to its Court and people as it has been disgraceful to the British name. . . . In short, where-ever we turn, we see written in distinct characters the blighting influences of our interference. . . . If ever there was a device for insuring mal government it is that of a Native Ruler and Minister, both relying on foreign bayonets, and directed by a British Resident."—Sir Henry Lawrence, In the *Calcutta Review*, for January, 1845.

अवध के नवाबों की स्वतन्त्रता बढ़ती गई, उतना उतना ही अङ्गरेज़ कम्पनी की ओर से उनकी परतन्त्रता बढ़ती चली गई ; यहाँ तक कि अवध के अदूरदर्शी भारतीय नरेश कम्पनी की मित्रता के चङ्गुल में पड़ कर थोड़े ही दिनों में सर्वथा पङ्गुल होगए।

नवाब पर बार बार यह इलज़ाम लगाया जाने लगा कि तुम्हारा राज्य-प्रबन्ध ठीक नहीं, तुम्हारी प्रजा असन्तुष्ट है। वास्तव में जो कुछ कुप्रबन्ध या असन्तोप उस समय अवध में मौजूद था, वह अङ्गरेज़ों ही का जान बूझ कर पैदा किया हुआ था। लॉर्ड हेस्टिंग्स लिखता है—

"वास्तव में इस प्रकार का शासन क़ायम करने का, जिससे प्रजा सुखी हो, एक मात्र सच्चा और कारगर उपाय यही हो सकता था कि अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट को वापस बुला लिया जाय और नवाब को अपने राज्य के प्रबन्ध में आज़ाद छोड़ दिया जाय। इस प्रकार, उस इलाक़े के असन्तोप का सारा पाप कम्पनी के सर पर है।"*

सन् १८३७ में नवाब के साथ एक नई सन्धि की गई, जिससे नवाब को और भी अधिक जकड़ दिया गया।

---

* "As a matter of fact, the true and effectual way of introduction of an administration which would render the people happy would have been to call British Resident back and to give the Nabob a free hand in the administration of his dominion. Thus the whole guilt of unrest in his territory rests on the head of the Company."—Charles Ball's *History of the Indian Mutiny*, vol. i, p. 152.

सन् १८४७ में नवाब वाजिदअली शाह तख़्त पर बैठा। वाजिदअली शाह नौजवान, उत्साही और समझदार था। उसने अवध के शासन में अनेक सुधार किए। वह समझ गया कि अवध की सल्तनत का वास्तविक रोग क्या है। जिस अभागे वाजिदअली शाह के ऊपर विषय-लोलुपता के असंख्य झूठे और द्वेषपूर्ण इल-ज़ाम लगाए जा चुके हैं, उसने तख़्त पर बैठते ही सबसे पहले अपनी रही सही सेना को सुधारने और उसे फिर से मज़बूत करने के ज़ोरदार प्रयत्न प्रारम्भ किए। सेना के अनुशासन के लिए उसने अनेक नए तथा कठोर नियम बनाए। उसने रोज़ अपने सामने फ़ौज से क़वायद करवानी शुरू की।

लखनऊ दरबार की समस्त पलटनों को प्रति दिन सूर्योदय से पहले क़वायद के मैदान में जमा हो जाना पड़ता था। नवाब वाजिदअली शाह स्वयं सूर्योदय से पूर्व सेनापति की वरदी पहन कर, घोड़े पर सवार होकर मैदान में पहुँच जाता था। यदि किसी पलटन को आने में देर होती थी तो उससे दो हज़ार रुपए जुर-माना वसूल किया जाता था। इतिहास-लेखक मेटकाफ़ लिखता है कि वाजिदअली शाह अपने नियमों का इतना पाबन्द था कि यदि कभी किसी कारणवश उसे देर होती थी तो इतनी ही रक़म जुर-माने की वह स्वयं अदा करता था।* किन्तु वाजिदअली शाह को प्रायः कभी भी देर न होती थी। दोपहर तक सारी पलटनें क़वायद

---

* *Native Narrative of the Mutiny*, by Metcalf, p. 32, 33.

करती थीं, और वाजिदअली शाह बराबर घोड़े पर सवार मैदान में मौजूद रहता था।

कम्पनी के प्रतिनिधियों को अवध के नवाब की ये हरकतें कहाँ पसन्द आ सकती थीं! अनेक तरह से जोर डाल कर नवाब को इस कार्य से रोका गया। यहाँ तक कि वाजिदअली शाह को विवश होकर कवायद के मैदान में जाना बन्द कर देना पड़ा। थोड़े ही दिनों बाद डलहौज़ी का समय आया। अवध की हरी भरी भूमि का प्रलोभन डलहौज़ी के लिए कोई साधारण प्रलोभन न था। अवध के विषय में पार्लिमेण्ट की रिपोर्टों में दर्ज है—

"इस सुन्दर भूमि में हर जगह ज़मीन की सतह से बीस फ़ुट नीचे और कहीं कहीं दस फ़ुट नीचे विपुल जल भरा हुआ है। यह प्रदेश अत्यन्त मनोरम और वैभवपूर्ण है। उसमें लम्बे और ऊँचे बाँसों के जङ्गल के जङ्गल हैं, मैदानों में आम के वृक्षों की ठण्डी छाया है, खेत हरी भरी पैदावार से लहलहाते हैं। स्वयं प्रकृति ने वहाँ की भूमि को अत्यन्त सुन्दर बनाया है; उस पर इमली के वृक्षों का घना साया, सन्तरे के बाग़ों की सुगन्ध, इञ्जीर के दरख्तों का गहरा रङ्ग और फूलों की रज की सुन्दर और व्यापक खुशबू वहाँ के दृश्य को और भी अधिक वैभव प्रदान करती रहती है!"

निस्सन्देह अवध का धन वैभव उस समय कल्पनातीत था। इसी कारण डलहौज़ी के लिए इस प्रलोभन को जीत सकना असम्भव हो गया। किन्तु अवध के अपहरण के लिए उतना भी बहाना न मिल सका जितना नागपुर, झाँसी अथवा सतारा के लिए। अवध के नवाबों ने सदा अङ्गरेज़ों की मदद की थी। सन्धि

का वे सदा ईमानदारी के साथ पालन करते रहे थे। वाजिदअली शाह अपने पूर्वाधिकारी का आत्मज था, और वाजिदअली शाह के अनेक पुत्र लखनऊ के महल में मौजूद थे। तथापि सन् १८५६ में लॉर्ड डलहौज़ी ने अपने इस निश्चय का एलान कर दिया कि अवध की सल्तनत कम्पनी के राज्य में मिला ली जायगी। इसका कारण यह बताया गया कि नवाब अपने शासन में उचित सुधार नहीं कर रहा है अथवा करने के अयोग्य है!

निस्सन्देह डलहौज़ी का यह कार्य सन् १८०१ और १८३७ की सन्धियों का साफ़ उल्लङ्घन था।

लॉर्ड डलहौज़ी की आज्ञा से लखनऊ का रेज़िडेण्ट ऊटरम महल में वाजिदअली शाह से मिलने गया। ऊटरम ने नवाब के सामने एक पत्र पेश किया, जिसमें लिखा था कि मैं ख़ुशी से अपनी सल्तनत कम्पनी को देने के लिए राज़ी हूँ। रेज़िडेण्ट ऊटरम ने उस पत्र पर दस्तख़त करने के लिए नवाब पर ज़ोर दिया। नवाब ने पत्र पढ़ कर दस्तख़त करने से साफ़ इनकार कर दिया। रिशवतों और धमकियों के ज़रिए वाजिदअली शाह के दस्तख़त कराने का प्रयत्न किया गया। तीन दिन गुज़र गए। वाजिदअली शाह ने फिर भी दस्तख़त करने से इनकार किया। इस पर कम्पनी की सबसी-डीयरी सेना ने सब सन्धियों को ख़ाक में मिला कर लखनऊ के महल में ज़बरदस्ती प्रवेश किया। कम्पनी की मर्यादा के अनुसार महलों को लूटा गया, बेगमों का अपमान किया गया, वाजिदअली

शाह को क़ैद करके कलकत्ते भेज दिया गया, और समस्त अवध पर कम्पनी का क़ब्ज़ा होगया।

इसी समय के निकट वाजिद्अली शाह के शासन और उसके चरित्र पर तरह तरह के झूठे कलङ्क लगा कर अनेक पुस्तकें लिखवाई गई। इनमें एक प्रसिद्ध पुस्तक लॉर्ड डलहौजी के जीवनचरित्र के रचयिता आरनॉल्ड की लिखी हुई है। हमें इन रद्दी पुस्तकों और उनके झूठे इलजामों पर बहस करने की आवश्यकता नहीं है। सर जॉन के के शब्दों में कम्पनी की यह एक प्रथा थी कि जिस देशी नरेश का राज्य छीना जाता था उसे जन-सामान्य की दृष्टि में गिराने के लिए उसके चरित्र पर अनेक झूठे दोष लगाए जाते थे। किन्तु दुर्भाग्यवश आरनॉल्ड जैसों की पुस्तकों के आधार पर अनेक उपन्यास रचे गए। वाजिद्अली शाह के कल्पित पाप इतिहास से इतिहास में नक़ल किए जाने लगे और आज तक वाजिद्अली शाह के असंख्य देशनिवासी तक इनमें से अनेक गन्दे इलजामों को सच्चा मानते चले आ रहे हैं।

हमारा कदापि यह अभिप्राय नहीं है कि वाजिद्अली शाह के जीवन में अय्याशी लेशमात्र भी न थी, अथवा यह कि उसका व्यक्तिगत चरित्र सर्वथा एक आदर्श चरित्र था। किन्तु हम केवल उस भारतीय नरेश के साथ न्याय और सत्य की दृष्टि से निम्नलिखित बातों का प्रतिपादन करते हैं—

एक, यह कि वाजिद्अली शाह का अय्याशी का ज़माना केवल उस समय प्रारम्भ हुआ, जिस समय अङ्गरेज़ गवरनर-

जनरल और रेज़िडेण्ट के हस्तक्षेप द्वारा उसे अपनी फ़ौज को क़वायद कराने तक से रोका गया। इस ज़माने में भी वाजिद्-अली शाह की अय्याशी की निस्बत जितनी बातें कही जाती हैं, उनमें ९० फ़ी सदी कल्पित और मिथ्या हैं। और उनमें सत्य की मात्रा कदापि उससे अधिक नहीं है जितनी संसार के ९० फ़ी सदी नरेशों के जीवन में पाई जाती है और जितनी क्लाइव, वारन हेस्टिंग्स जैसे अनेक गवरनर-जनरलों के जीवन में कहीं अधिक पतित और असभ्य रूप में पाई जाती थी। साथ ही इस अनुचित हस्तक्षेप से पहले वाजिद्अली शाह का जीवन एक नरेश की हैसियत से असाधारण संयम का जीवन था।

दूसरी बात, यह कि वाजिद्अली शाह शुजाउद्दौला के बाद अवध का पहला नवाब था जिसने अपनी सल्तनत को अङ्गरेज़ों के प्रभाव से मुक्त करने का विचार किया, और यही उसकी आपत्तियों और उस पर झूठे कलङ्कों का कारण हुआ।

तीसरी बात, यह कि सन् ५७ के विप्लव ने, जिसका ज़िक्र अगले अध्याय में किया जायगा, पूरी तरह साबित कर दिया कि नवाब वाजिद्अली शाह अपनी हिन्दू तथा मुसलमान प्रजा में सर्वप्रिय था, और कम्पनी का हस्तक्षेप अवध के अन्दर किसी भी अवध-निवासी को रुचिकर न था।

अवध के नवाबों के अधीन अधिकांश बड़े बड़े ज़मींदार और ताल्लुक़ेदार हिन्दू थे। कम्पनी की सत्ता जमते ही इनमें से अधिकांश की ज़मीनें छीनी जाने लगीं, उनके गाँव ज़ब्त किए जाने

लगे, उनके क़िले गिराए जाने लगे। सर जॉन के लिखता है कि इन प्राचीन पैतृक ज़मींदारों के साथ 'घोर अन्याय' (a cruel wrong) किया गया। समस्त अवध के अन्दर वह ज़बरदस्ती और बरबादी शुरू होगई जिसका परिणाम सन् ५७ के भयङ्कर विप्लव में दिखाई दिया।

अधिकांश अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों ने अत्यन्त स्पष्ट तथा ज़ोरदार शब्दों में अवध के नरेश तथा अवध की प्रजा के प्रति डलहौज़ी के इस अन्याय की घोरता को स्वीकार किया है।

इनाम कमीशन

भारत की शेष समस्त छोटी बड़ी ज़मींदारियों के लिए लॉर्ड डलहौज़ी ने इनाम कमीशन नाम की एक जाँच कमेटी क़ायम की। इस कमेटी ने समस्त भारत की लगभग ३५ हज़ार जागीरों और इनामों की जाँच की और दस वर्ष के अन्दर उनमें से लगभग २१ हज़ार को ज़ब्त करके कम्पनी के राज्य में मिला लिया।

इसके २३ वर्ष पश्चात् के दूसरे अफ़ग़ान युद्ध और ३० वर्ष पश्चात् के तीसरे बरमा युद्ध से पहले और कोई नया इलाक़ा ब्रिटिश भारतीय राज्य में नहीं मिलाया गया। वास्तव में लॉर्ड डलहौज़ी के अन्तिम दिनों में कम्पनी के राज्य की सीमाएँ उस हद को पहुँच गईं कि जहाँ से दूरदर्शी लोगों को निकटवर्ती महान आपत्ति की झलक दिखाई देने लगी और उस आपत्ति के आते ही भारत के अङ्गरेज़ शासकों की इस अपहरण नीति में एक गहरा परिवर्तन उत्पन्न हो गया।

चवालीसवाँ अध्याय

सन् १८५७ का विप्लव, कारण और तैयारी

प्लासी के समय से

र्च सन् १८५६ में लॉर्ड डलहौजी की जगह लॉर्ड कैनिङ्ग ने भारत की गवरनर-जनरली का पद ग्रहण किया। लॉर्ड कैनिङ्ग के समय की सबसे अधिक महत्त्व की घटना सन् १८५७ का वह प्रसिद्ध विप्लव था, जिसकी प्रचण्ड ज्वाला में एक बार इस देश के अन्दर अङ्गरेजी राज्य और अङ्गरेज क़ौम का अस्तित्व तक भस्मीभूत होता हुआ मालूम होता था।

सन् ५७ का विप्लव भारत में अङ्गरेजी राज्य के इतिहास की सबसे जबरदस्त और सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी। उस विप्लव के कारणों को ठीक ठीक समझने के लिए हमें उससे ठीक सौ वर्ष पूर्व के इतिहास पर एक दृष्टि डालनी होगी। सन् १८५७ के विप्लव की नींव वास्तव में सन् १७५७ में प्लासी के मैदान में

रक्खी गई थी। जो अनेक तरह की आवाजें सन् १८५७ के असंख्य संग्रामों में भारतीय सिपाहियों के मुख से निकलती हुई सुनाई देती थीं, उनमें एक आवाज़ यह भी थी—"आज हम प्लासी का बदला चुकाने वाले हैं!" मई और जून के महीनों में दिल्ली के हिन्दोस्तानी अख़बारों में यह पेशीनगोई छपी थी कि ठीक प्लासी की शताब्दी के दिन अर्थात् २३ जून सन् १८५७ को भारत के अन्दर अङ्गरेज़ी राज्य का अन्त हो जायगा। इस पेशीन-गोई का उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक समस्त भारत में एलान कर दिया गया, और इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि विप्लव में भाग लेने वाले भारतवासियों के दिलों पर इसका बहुत भारी प्रभाव पड़ा।

प्लासी के समय से ही अनेक भारतवासियों के दिलों में अङ्गरेज़ों और अङ्गरेज़ी राज्य के विरुद्ध क्रोध और असन्तोष के भाव बढ़ते जा रहे थे। क्लाइव के समय से लेकर डलहौज़ी के समय तक जिस प्रकार कम्पनी के प्रतिनिधियों ने अपने गम्भीर वादों और दस्तख़ती सन्धि-पत्रों की ख़ाक परवा न कर भारत के अगणित राजकुलों को पददलित किया और उनकी रियासतों को एक एक कर अङ्गरेज़ी राज्य में शामिल किया, जिस प्रकार देश के प्राचीन उद्योग धन्धों को नष्ट कर लाखों भारतवासियों से उनकी जीविका छीनी, जिस प्रकार असहाय बेगमों और रानियों के महलों में घुस कर उन्हें लूटा और उनका अपमान किया, जिस प्रकार ज़मींदारों की ज़मींदारियाँ ज़ब्त करके, असंख्य प्राचीन घरानों का ख़ात्मा किया

और गोरखपुर तथा बनारस के समान लाखों भारतीय किसानों को उनकी पैतृक ज़मीनों से बाहर निकाल कर गृहविहीन बना दिया, इस सबकी शोकास्पद कहानी पिछले अध्यायों में वर्णन की जा चुकी है। निस्सन्देह इन सब बातों के कारण भारतीय नरेशों और भारतीय प्रजा दोनों में अङ्गरेज़ों के विरुद्ध असन्तोष की आग भीतर ही भीतर सुलग रही थी। सन् १७८० के लगभग पूना दरबार के प्रधान मन्त्री नाना फ़ड़नवीस और मैसूर राज्य के स्वामी हैदरअली का मिलकर, दिल्ली सम्राट तथा अन्य भारतीय नरेशों को अपनी ओर कर, अङ्गरेज़ों को भारत से निकालने का प्रयत्न करना इसी असन्तोषाग्नि का एक रूप और सन् १८५७ के विप्लव का पेशख़ेमा था। सन् १८०६ का वेलोर का विद्रोह भी इसी अग्नि का एक छोटा सा स्वरूप था।

इसके बाद डलहौज़ी का समय आया। डलहौज़ी के समय में कम्पनी तथा इङ्गलिस्तान के नीतिज्ञों की साम्राज्य-पिपासा हद को पहुँच गई। डलहौज़ी ने महाराजा रणजीतसिंह के साथ कम्पनी की सन्धियों को ख़ाक में मिला कर पञ्जाब पर हमला किया, लाहौर दरबार के अन्दर फूट डलवाई, दलीपसिंह और उसकी विधवा माता महारानी झिन्दाँ को पञ्जाब तथा भारत दोनों से देश निकाला दिया, और पञ्जाब के उर्वर प्रान्त को कम्पनी के राज्य में शामिल कर लिया। डलहौज़ी ने निरपराध बरमा के साथ युद्ध छेड़ कर पगू के प्रान्त को बरमा राज्य से पृथक कर लिया। भारतीय नरेशों में गोद लेने की प्राचीन प्रथा का तिरस्कार कर डल-

हौज़ी ने सतारा, झाँसी, नागपुर, इत्यादि अनेक रियासतों का अन्त कर उन्हें अङ्गरेज़ी राज्य में शामिल कर लिया। नवाब के 'कुशासन' का बहाना लेकर उसने सन् १८५६ में अवध की ज़रखेज़ सल्तनत को कम्पनी के राज्य में मिला लिया, नवाब वाजिदअली शाह को क़ैद करके कलकत्ते भेज दिया और भारत के सैकड़ों पुराने ताल्लुक़ेदारों और ज़मींदारों की पैतृक जागीरें छीन कर उन्हें कङ्गाल बना दिया।

यह सब व्यवहार तो भारतीय नरेशों और सरदारों के साथ हुआ। किन्तु साधारण प्रजा के साथ भी अङ्गरेज़ों का व्यवहार अनेक प्रकार से दिन प्रति दिन अधिकाधिक धृष्ट तथा असह्य होता जा रहा था। स्थान स्थान पर अङ्गरेज़ अफ़सर अपने सामने से घोड़े पर आने वाले हिन्दोस्तानियों को घोड़े से उतर कर चलने के लिए विवश करते थे। उनके धार्मिक और सामाजिक रिवाज की भी परवा न की जाती थी।

लॉर्ड डलहौज़ी के शुरू के दिनों में सहारनपुर में एक नया अङ्गरेज़ी अस्पताल बना, जिसमें हर मज़हब के पुरुष तथा स्त्री रोगियों को आने की आज्ञा दी गई। सहारनपुर के अङ्गरेज़ हाकिमों ने यह एलान प्रकाशित किया कि हर ज़ात के रोगी, पुरुष तथा स्त्री, यहाँ तक कि परदानशीन स्त्रियाँ भी इलाज के लिए इसी अस्पताल में आवें और कोई देशी हकीम या वैद्य न किसी रोगी को दवा दे और न किसी का इलाज करे।

इस एलान के प्रकाशित होते ही सहारनपुर की जनता में तहलका

मच गया। लोगों के भाव यहाँ तक बिगड़े कि अफ़सरों को अपना एलान वापस ले लेना पड़ा।*

इस तरह के अनुचित व्यवहार की और भी अनेक मिसालें दी जा सकती हैं।

तथापि मोटे तौर पर सन् ५७ के विप्लव के पाँच मुख्य कारण कहे जा सकते हैं।—

१—दिल्ली सम्राट के साथ अङ्गरेज़ों का लगातार अनुचित व्यवहार।

२—अवध के नवाब और अवध की प्रजा के साथ अत्याचार।

३—डलहौज़ी की अपहरण नीति।

४—अन्तिम पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहब के साथ कम्पनी का अन्याय। और

५—भारतवासियों को ईसाई बनाने की आकांक्षा और भारतीय सेना में ईसाई मत प्रचार।

इनमें से एक एक कारण को थोड़े विस्तार के साथ बयान करना आवश्यक है।

दिल्ली सम्राट के साथ अनुचित व्यवहार

सम्राट शाहआलम के समय तक, जो सन् १७५९ से १८०६ तक दिल्ली के तख़्त पर रहा, भारत में रहने वाले समस्त अङ्गरेज़ अपने तईं दिल्ली सम्राट की प्रजा कहा करते थे। सम्राट के फ़रमानों द्वारा ही अङ्गरेज़ कम्पनी को अपनी तिजारती कोठियाँ

**Narrative of the Indian Revolt*, p. 359.

वनाने के लिए कलकत्ता, मद्रास, सूरत आदिक में जागीरें मिलीं। उन जागारों के लिए अङ्गरेज़ दिल्ली दरवार को वरावर ख़िराज देते थे और गवरनर-जनरल से लेकर छोटे से छोटे तक जो अङ्गरेज़ सम्राट के दरवार में जाता था वह शेप दरवारियों के समान आदाव वजा लाता था, सम्राट को नज़र पेश करता था, और अपने स्थान पर अदव के साथ खड़ा रहता था। हर गवरनर-जनरल की मुहर में "दिल्ली के वादशाह का फ़िदवी ख़ास" (अर्थात् विशेप नौकर) ये शब्द खुदे रहते थे। शाहआलम ने सवसे पहले १७६५ में क्लाइव को वङ्गाल और विहार की दीवानी के अधिकार प्रदान किए।

इसके वाद धीरे धीरे दिल्ली सम्राट के दरवार में साज़िशें और खानेजङ्गियाँ वढ़ती गईं, दिल्ली सम्राट का वल घटता गया और अङ्गरेज़ कम्पनी का वल वढ़ता गया। माधोजी सींधिया ने दिल्ली पर चढ़ाई करके भारत सम्राट के वल को फिर से थोड़ा वहुत स्थापित किया और सम्राट, उसकी राजधानी तथा आस पास के इलाक़े की सैनिक रक्षा का भार अपने हाथों में लिया। सम्राट शाहआलम की लिखी हुई एक फ़ारसी कविता अभी तक प्रचलित है, जिसमें उसने माधोजी सींधिया को अपना "फ़रज़न्द जिगरवन्द" कहा है और उसकी दिल से तारीफ़ की है।* कम्पनी ने भारत में अपना राज्य जमाने के लिए मराठों की वढ़ती हुई सत्ता को कुचलना आवश्यक समझा। यह दूसरे मराठा युद्ध का समय था।

* माधोजी सींधिया फ़रज़न्द जिगर वन्दे मन, हस्त मसरूफ़ तलाफ़ी-ए-सितमगारि-ए-मा।

जनरल लेक ने कम्पनी की ओर से एक "इक़रारनामा" लिख कर अपने दस्तख़तों से शाहआलम के सामने पेश किया, जिसमें कम्पनी ने शाहआलम से यह वादा किया कि हम समस्त देश पर आपका प्राचीन क्रियात्मक आधिपत्य फिर से क़ायम कर देंगे, इत्यादि। अभागा, निर्बल और अदूरदर्शी शाहआलम फिर अङ्गरेज़ों की चालों में आ गया। शाहआलम ही की मदद से अङ्गरेज़ों ने सन् १८०४ में मराठों को दिल्ली से निकाल दिया, अपने तईं सम्राट की वफ़ादार और फ़रमाँबरदार प्रजा जाहिर किया, सम्राट के निजी ख़र्च के लिए १२ लाख रुपए सालाना का तुरन्त प्रबन्ध कर दिया और राजधानी की सैनिक रक्षा का भार अपने हाथों में ले लिया। उस समय तक भी अङ्गरेज़ दिल्ली सम्राट के देशव्यापी मान, मराठों और अफ़ग़ानों के बल और अपनी निर्बलता के कारण दिल्ली सम्राट और उसके ऊपरी मान को क़ायम रखना और अपने तईं सम्राट की प्रजा ज़ाहिर करना आवश्यक समझते थे।

भारत सम्राट और उसके हितचिन्तकों को सबसे पहला सन्देह अङ्गरेज़ों की नीयत के विषय में उस समय हुआ जिस समय कि लॉर्ड वेल्सली ने यह तजवीज़ की कि शाहआलम और उसके दरबार को दिल्ली के लाल क़िले से हटा कर मुङ्गेर के क़िले में लाकर रक्खा जाय। लिखा है कि बूढ़ा शाहआलम इस तजवीज़ को सुनते ही क्रोध से भर गया। लॉर्ड वेल्सली को अपनी तजवीज़ के वापस ले लेने में ही कुशल दिखाई दी। किन्तु अनेक दिल्ली-निवासियों के चित्त उसी समय से अङ्गरेज़ों की ओर से सशङ्क

होगए। दिल्ली के अन्दर १८५७ के विप्लव का एक प्रकार यही बीजारोपण था। इसके बाद ही सन् १८०६ में शाहआलम की मृत्यु हुई।

शाहआलम के बाद अकबरशाह दिल्ली के तख्त पर बैठा। इससे पहले सीटन दिल्ली में कम्पनी के रेजिडेण्ट की हैसियत से रहा करता था। सीटन जब कभी दरबार में जाता था तो निम्न श्रेणी के एक भारतीय अमीर के समान सम्राट के सामने बाक़ायदा 'तसलीम, कोरनिश और मुजरा' किया करता था और सम्राट कुल के प्रत्येक बच्चे की ओर यथोचित मान दर्शाता था। किन्तु सीटन के बाद चार्ल्स मेटकाफ़ रेजिडेण्ट नियुक्त हुआ। मेटकाफ़ ने तुरन्त अपने अङ्गरेज़ मालिकों की आज्ञा से सम्राट अकबरशाह की ओर अपना व्यवहार बदल दिया और अनेक ऐसी हरकतें करनी शुरू कर दीं जो सम्राट और उसके दरबार के लिए अपमानजनक थीं। सम्राट और उसके हितचिन्तकों के दिलों में अङ्गरेज़ों की ओर से घृणा बढ़ती चली गई। दिल्ली में अङ्गरेज़ों के विरुद्ध असन्तोष फैलने का यह दूसरा कारण हुआ।

सम्राट अकबरशाह ने अपने एक पुत्र मिरज़ा सलीम को, जिसे मिरज़ा जहाँगीर भी कहते थे, युवराज नियुक्त करना चाहा। कहा जाता है, मिरज़ा सलीम अङ्गरेज़ों से घृणा करता था। अङ्गरेज़ों ने किसी बहाने मिरज़ा सलीम को इलाहाबाद भेज कर वहाँ नज़रबन्द कर दिया। सम्राट दरबार का बल अनेक आन्तरिक कारणों से पहले ही क्षीण हो रहा था। सम्राट ने इसके बाद अपने एक

दूसरे बेटे मिरज़ा नीली को युवराज बनाने का प्रयत्न किया। अङ्गरेज़ों ने इसका भी विरोध किया। सन् १८३७ में सम्राट अकबरशाह की मृत्यु हुई और अन्त में सम्राट बहादुरशाह अपने पिता के सिंहासन पर बैठा।

जनरल लेक ने सम्राट शाहआलम को जो 'इक़रारनामा' लिख कर दिया था वह अभी तक पूरा न किया गया था। सम्राट अकबरशाह ने उस इक़रारनामे की शर्तों को पूरा कराना चाहा, किन्तु उसे भी सफलता न हो सकी। इस पर अकबरशाह ने राजा राममोहन राय को अपना एलची नियुक्त करके इङ्गलिस्तान भेजा। वहाँ पर भी राजा राममोहन राय की किसी ने न सुनी और इङ्गलिस्तान के शासकों ने कम्पनी की मुहर लगे हुए 'इक़रारनामे' की क़दर रद्दी काग़ज़ से अधिक न की। इस बात की खबर जब दिल्ली पहुँची तो वहाँ के लोगों को अङ्गरेज़ों के रहते दिल्ली तथा दिल्ली के सम्राट-कुल के भविष्य के सम्बन्ध में तरह तरह की गहरी शङ्काएँ होने लगीं।

सम्राट बहादुरशाह ने भी 'इक़रारनामे' की एक शर्त के अनुसार अपने खर्च की रक़म को बढ़वाना चाहा। इस बीच दिल्ली और उसके पास के इलाक़े के ऊपर कम्पनी का पञ्जा कसता जा रहा था, और वह दिल्ली सम्राट, जो कुछ समय पहले समस्त भारत के ख़ज़ानों का मालिक समझा जाता था, अब अपने सहस्रों कुटुम्बियों और आश्रितों सहित बड़ी आर्थिक कठिनाई के साथ दिल्ली के क़िले के अन्दर दिन बिता रहा था। सम्राट को उत्तर मिला

कि यदि आप अपने और अपने वंशजों के समस्त रहे सहे अधिकार विधिवत् कम्पनी को सौंप दें तो ख़र्च की रक़म बढ़ा दी जायगी। बहादुरशाह ने स्वीकार न किया। दिल्ली के अन्दर अङ्गरेज़ों के विरुद्ध असन्तोष के बढ़ने का यह तीसरा ज़बरदस्त कारण हुआ।

प्रत्येक ईद को, नौरोज़ को और सम्राट की सालगिरह के दिन गवरनर-जनरल और कमाण्डर-इन-चीफ़ दोनों सम्राट के दरबार में हाज़िर होकर अथवा रेज़िडेण्ट द्वारा सम्राट के सामने नज़रें पेश किया करते थे। सन् १८३७ में बहादुरशाह के तख़्त पर बैठने के समय भी ये नज़रें पेश की गई थीं। किन्तु इसके कुछ वर्ष बाद लॉर्ड एलेनब्रु ने गवरनर-जनरल बनते ही इन नज़रों का पेश किया जाना बन्द कर दिया। यह नज़र का बन्द किया जाना पूर्वोक्त असन्तोष का चौथा कारण गिना जा सकता है। इसी तरह की और भी अनेक बातों में अङ्गरेज़ों ने पद पद पर दिल्ली सम्राट का अपमान करना शुरू कर दिया।

सन् १८३९ में सम्राट बहादुरशाह के पुत्र युवराज दाराबख़्त की मृत्यु हुई। सम्राट उसके बाद बेगम ज़ीनतमहल के पुत्र शहज़ादे जवाँबख़्त को युवराज नियुक्त करना चाहता था। सन् ५७ में साबित हो गया कि ज़ीनतमहल की योग्यता और सङ्गठन-शक्ति दोनों असाधारण थीं और जवाँबख़्त एक होनहार और ख़ुद्दार युवक था। अङ्गरेज़ ज़ीनतमहल और उसके पुत्र दोनों के विरुद्ध थे। रेज़िडेण्ट तथा गवरनर-जनरल के उस समय के पत्रों से ज़ाहिर

है कि वह भविष्य के लिए हिन्दोस्तान के 'बादशाह' की उपाधि को ही तोड़ देने की चिन्ता में थे। गवरनर-जनरल ने गुप्त साज़िश द्वारा बहादुरशाह के एक दूसरे पुत्र मिरज़ा फ़ख़रू से एक अहद-नामा लिखवा लिया, जिसमें एक शर्त यह थी कि यदि मुझे युवराज बनवा दिया गया तो तख़्त पर बैठते ही मैं, दिल्ली का लाल क़िला छोड़ कर, जहाँ अङ्गरेज़ कहेंगे वहाँ जाकर रहने लगूँगा। बहादुर-शाह को जब इसका पता चला तो उसने एतराज़ किया। तथापि कहा जाता है कि बहादुरशाह की इच्छा के विरुद्ध मिरज़ा फ़ख़रू ही के युवराज नियत होने का दिल्ली में एलान कर दिया गया। यह समय लॉर्ड डलहौज़ी का समय था। राजधानी के अन्दर अङ्गरेज़ों के विरुद्ध गहरे असन्तोष का यह पाँचवाँ कारण हुआ।

सन् १८५४ में मिरज़ा फ़ख़रू की भी मृत्यु हो गई। रेज़िडेण्ट टॉमस मेटकाफ़ बहादुरशाह के दरबार में मिलने गया। बहादुर-शाह के उस समय नौ बेटे थे, जिनमें सब से होनहार और होशि-यार मिरज़ा जवाँबख़्त समझा जाता था। बहादुरशाह ने एक पत्र रेज़िडेण्ट को दिया जिसमें लिखा था कि जवाँबख़्त को युवराज बनाया जाय। इस पत्र के साथ एक अलग पत्र था, जिस पर बाक़ी आठों शहज़ादों के दस्तख़त थे, और यह लिखा था कि हम सब जवाँबख़्त के युवराज बनाए जाने में ख़ुश हैं और यही चाहते हैं।

इस पर अङ्गरेज़ों ने इन आठ शहज़ादों में से एक मिरज़ा क़ोयाश को फिर अपनी ओर फोड़ा। मिरज़ा क़ोयाश से गवरनर-

जनरल के नाम एक गुप्त पत्र लिखाया गया। इस अवसर पर गवरनर-जनरल ने रेजिडेण्ट को लिखा—

"सम्राट के ऊपरी वैभव और ऐश्वर्य के अनेक भूषण उतर चुके हैं, जिससे उस वैभव की पहली सी चमक दमक नहीं रही, और सम्राट के वे अधिकार, जिन पर तैमूर के कुल वालों को घमण्ड था, एक दूसरे के बाद छिन चुके हैं, इसलिए बहादुरशाह के मरने के बाद क़लम के एक डोवे में 'बादशाह' की उपाधि का अन्त कर देना कुछ भी कठिन नहीं है। बादशाह की नज़र, जो गवरनर-जनरल और कमाण्डर-इन-चीफ़ देते थे, बन्द हुई। कम्पनी का सिक्का जो बादशाह के नामसे ढाला जाता था वह भी बन्द कर दिया गया। गवरनर-जनरल की मोहर में जो पहले "बादशाह का फ़िदवी ख़ास" (बादशाह का विशेष नौकर) ये शब्द रहते थे वे निकाल दिए गए। और हिन्दोस्तानी रईसों को मनाई कर दी गई कि वे भी अपनी मोहरों में बादशाह के प्रति ऐसे शब्दों का उपयोग न करें। इन सब बातों के बाद अब गवरमेण्ट ने फ़ैसला कर लिया है कि दिखावे की अब कोई बात भी ऐसी बाक़ी न रक्खी जाय जिससे हमारी गवरमेण्ट बादशाह के अधीन मालूम हो। इसलिए दिल्ली के 'बादशाह' की उपाधि एक ऐसी उपाधि है जिसका रहने देना या न रहने देना गवरमेण्ट की इच्छा पर निर्भर है।"*

गवरनर-जनरल ने शहज़ादे जवाँबख़्त के विरुद्ध मिरज़ा क़ोयाश को युवराज स्वीकार किया। सम्राट को इसकी सूचना दे दी गई, और मिरज़ा क़ोयाश से ये तीन शर्तें कर ली गईं—(१) तुम्हें 'बादशाह' के स्थान पर केवल 'शहज़ादा' कहा जाया करेगा (२)

---

*ख़्वाजाहसन निज़ामी कृत "देहली की जांकनी"

तुम्हें दिल्ली का क़िला ख़ाली करना होगा और (३) एक लाख मासिक के स्थान पर तुम्हें १५ हज़ार रुपए मासिक ख़र्च के लिए मिला करेंगे।

इस समाचार को पाते ही सम्राट बहादुरशाह तथा दिल्ली निवासियों के चित्तों में क्रोध की आग भड़क उठी। यह छठा और अन्तिम कारण था जिसने दिल्ली वालों को विप्लव के लिए कटिबद्ध कर दिया, और वे जिस तरह हो, अङ्गरेज़ों के पञ्जे से देश को आज़ाद करने के उपाय सोचने लगे। यह घटना सन् १८५६ की थी। इसके अगले वर्ष ही भारत में इस ओर से उस ओर तक आग लगी हुई दिखाई दी।

अवध के साथ अत्याचार

विप्लव का दूसरा मुख्य कारण था अवध के नवाब और अवध की प्रजा के ऊपर कम्पनी के अत्याचार। विप्लव से केवल एक वर्ष पहले बिना किसी बहाने के अवध की समस्त सल्तनत के अङ्गरेज़ी राज्य में मिला लिए जाने और नवाब वाजिदअली शाह के निर्वासित कर कलकत्ते भेजे जाने का ज़िक्र पिछले अध्याय में किया जा चुका है। लिखा जा चुका है कि किस प्रकार कम्पनी की सेना ने ज़बरदस्ती लखनऊ पर क़ब्ज़ा किया, महल को लूटा और बेगमों का अपमान किया। अवध के मुसलमान नवाब के अधीन अधिकांश बड़े बड़े ज़मींदार और ताल्लुक़ेदार हिन्दू थे। इन असंख्य ज़मींदारों और ताल्लुक़ेदारों की पैतृक ज़मींदारियाँ बिना किसी कारण

छीन ली गईं और उनमें से अनेक को दरबदर घूमने पर विवश किया गया। इतिहास-लेखक के लिखता है कि बहुत कम पुराने जमींदार या ताल्लुक़ेदार इस अन्याय से बच सके। इतिहास से पता चलता है कि अवध के सहस्रों ग्रामों के लाखों किसान नवाब वाजिदअली शाह और उसके कुटुम्बियों की इस विपत्ति का हाल सुन कर रो पड़ते थे और सहस्रों ग्राम-निवासी अपने गृह-विहीन जमींदारों और ताल्लुक़ेदारों से मिल कर उनके साथ सहानुभूति प्रकट करते थे। नवाब से लेकर छोटे से छोटे किसान तक सब कम्पनी की नई अमलदारी से दुखी थे। कम्पनी की फ़ौज के अधिकांश हिन्दोस्तानी सिपाही अवध ही से लिए जाते थे, इसलिए अवध-निवासियों के साथ लॉर्ड डलहौज़ी के अत्याचारों ने समस्त अवध तथा अङ्गरेजी फ़ौज दोनों के अन्दर गहरे असन्तोष के बीज बो दिए।

डलहौज़ी की अपहरण नीति

तीसरा मुख्य कारण लॉर्ड डलहौज़ी की व्यापक अपहरण नीति थी। एक दूसरे के बाद सतारा, पञ्जाब, झाँसी, नागपुर, पगू, सिक्किम, सम्बलपुर इत्यादि रियासतों के अपहरण का ज़िक्र पिछले अध्यायों में किया जा चुका है। इन भारतीय रियासतों को आम तौर पर जिस प्रकार कम्पनी के राज्य में मिलाया जाता था और उसका जो नतीजा होता था उसके विषय में मद्रास कौन्सिल का सदस्य जॉन सलीवन लिखता है—

"जब किसी देशी रियासत का अन्त किया जाता है, तो वहाँ के

नरेश को हटा कर एक अङ्गरेज़ उसकी जगह नियुक्त कर दिया जाता है। उस अङ्गरेज़ को कमिश्नर कहा जाता है। तीन या चार दर्जन ख़ानदानी देशी दरबारियों और मन्त्रियों के स्थान पर कमिश्नर के तीन या चार सलाहकार नियुक्त हो जाते हैं। प्रत्येक देशी नरेश जिन सहस्रों सैनिकों का पालन करता है उनकी जगह हमारी सेना के चन्द सौ सिपाही नियुक्त कर दिए जाते हैं। वह पुराना छोटा सा दरबार लोप हो जाता है। वहाँ का व्यापार ढीला पड़ जाता है। राजधानी वीरान हो जाती है। लोग निर्धन हो जाते हैं। अङ्गरेज़ फलते फूलते हैं, और स्पञ्ज की तरह गङ्गा के किनारे से धन खींच कर उसे टेम्स के किनारे जाकर निचोड़ देते हैं।"*

इन रियासतों के छिनने का ज़िक्र करते हुए इतिहास-लेखक लडलो लिखता है—

"निस्सन्देह, यदि इस तरह के हालात में जिन नरेशों की रियासतें अङ्गरेज़ी राज्य में मिला ली गईं उनके पक्ष में अङ्गरेज़ों के विरुद्ध भारतवासियों के भाव न भड़क उठते तो भारतवासियों को मनुष्यत्व से गिरा

---

* "Upon the extermination of a native state, an Englishman takes the place of the sovereign under the name of Commissioner; three or four of his associates displace as many dozen of the native official aristocracy, while some hundreds of our troops take the place of the many thousands that every native chief supports. The little court disappears, trade languishes, the capital decays, the people are impoverished, the Englishman flourishes, and acts like a sponge, drawing up riches from the banks of the Ganges, and squeezing them down upon the banks of the Thames."—*A plea for the Princes of India,* by John Sullivan, Member of the Madras Council, p. 67.

हुआ कहा जाता। निस्सन्देह एक भी स्त्री ऐसी न होगी जिसे इन रियासतों के अपहरण ने हमारा शत्रु न बना दिया हो, एक भी बच्चा ऐसा न होगा जिसे हमारे इन कार्यों के कारण फ़िरङ्गी राज्य के विरुद्ध आरम्भ से घृणा की शिक्षा न दी जाती हो।"*

निस्सन्देह सन् १८५७ तक भारतवासी 'मनुष्यत्व से इतने गिरे हुए' न थे।

लॉर्ड डलहौज़ी के उस 'इनाम कमीशन' का ज़िक्र भी पिछले अध्याय में किया जा चुका है कि जिसने १० वर्ष के अन्दर भारत की २१ हज़ार प्राचीन ज़मींदारियाँ ज़ब्त कर लीं और समस्त भारत के अन्दर सहस्रों पुराने घरानों को बरबाद कर दिया।

निस्सन्देह इन कारवाइयों ने देश भर के अन्दर लाखों भारतवासियों को अङ्गरेज़ों की ओर से दुखी और बेज़ार कर दिया था।

नाना साहब के साथ अन्याय

चौथा कारण पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र सुप्रसिद्ध नानासाहब के साथ कम्पनी का अन्याय था। सन् १८५१ में अन्तिम पेशवा बाजीराव की मृत्यु हुई। बाजीराव के राज्य के बदले में

---

* "Surely, the natives of India must be less than men if their feelings could not be moved under such circumstances in favour of the victims of annexation, and against the annexer. Surely there was not a woman whom such annexations did not tend to make our enemy, not a child whom they did not tend to train up in hatred to the *Firangee* rule."—Ludlow's *Thoughts on the Policy of the Crown*, pp. 35, 36.

कम्पनी ने सन् १८१८ में उसे "उसके, उसके कुटुम्बियों और उसके आश्रितों के पोषण के लिए" आठ लाख रुपए सालाना देते रहने का वादा किया था। सन् १८२७ में बाजीराव ने नाना धुन्धपन्त को गोद लिया। नाना की आयु उस समय तीन वर्ष की थी। कानपुर के पास बिठूर में पेशवा के साथ उस समय लगभग आठ हज़ार पुरुष, स्त्री और बच्चे रहा करते थे। इन सबका पोषण इसी आठ लाख रुपए सालाना की पेनशन से होता था। बाजीराव के मरते ही गवरनर-जनरल डलहौज़ी ने इस पेनशन को बन्द कर दिया। बाजीराव की मृत्यु के पहले की पेनशन के ६२ हज़ार रुपए कम्पनी की ओर बाक़ी थे। डलहौज़ी ने इसे भी देने से इनकार किया। नाना साहब को यह भी नोटिस दे दिया गया कि बिठूर की जागीर भी तुमसे जिस समय चाहे, छीन ली जायगी।

समस्त अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक स्वीकार करते हैं कि इससे पूर्व युवक नाना साहब का व्यवहार अङ्गरेज़ों के प्रति बहुत ही अच्छा था। सर जॉन के लिखता है कि नाना—"शान्त स्वभाव और आडम्बर रहित युवक था, उसमें कोई भी बुरी आदत नहीं थी और वह अङ्गरेज़ कमिश्नर की सलाह मानने के लिए सदा तैयार रहता था।"*

कानपुर के समस्त अङ्गरेज़ और उनकी मेमें नाना साहब के

* "Quiet, unostentatious young man, not at all addicted to any extravagant habits, and invariably showing a ready disposition to attend to the advice of the British Commissioner."—*History of the Sepoy War* by Sir John Kaye, vol. i, p. 101.

महल में जाकर ठहरती रहती थीं। नाना सदा उनकी खूब खातिर करता था और चलते समय कीमती दुशाले और आभूषण उनकी भेंट करता रहता था। नाना के हाथी, घोड़े और गाड़ियाँ सदा अङ्गरेजों की सेवा के लिए खड़ी रहती थीं। तथापि लॉर्ड डलहौजी ने बाजीराव के मरते ही नाना साहब की पेनशन को बन्द कर दिया। नाना ने अपने खर्च, कठिनाइयों और कम्पनी की सन्धियों को दर्शाते हुए डलहौजी के पास प्रार्थना-पत्र भेजा कि पेनशन जारी रक्खी जाय। नाना ने इङ्गलिस्तान के शासकों से अपील की और अपना एक योग्य वकील अजीमुल्लाँ खाँ इस कार्य के लिए विलायत भेजा। किन्तु वहाँ पर भी नाना के साथ किसी ने न्याय न किया। सर जॉन के, चार्ल्स बॉल, ट्रेवेलियन और मार्टिन चारों प्रसिद्ध अङ्गरेज इतिहास-लेखक स्वीकार करते हैं कि न्याय नाना के पक्ष में था। परिणाम यह हुआ कि उसी समय से युवक नाना साहब के चित्त में अङ्गरेजों की ओर से घृणा उत्पन्न हो गई और वह अपने को तथा अपने देश को अङ्गरेजों के पञ्जे से छुड़ाने की तदबीरें सोचने लगा।

भारतवासियों को ईसाई बनाने की आकांक्षा

विप्लव का पाँचवाँ कारण था भारतवासियों को ईसाई बनाने की आकांक्षा और विशेष कर हिन्दोस्तानी सेनाओं में अङ्गरेज अफ़सरों का ईसाई मत प्रचार। सन् ५७ के बहुत पहले से अनेक बड़े बड़े अङ्गरेज नीतिज्ञों को भारतवासियों के ईसाई हो जाने में ही अपने

राज्य की स्थिरता दिखाई देती थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अध्यक्ष मिस्टर मैङ्गल्स ने सन् १८५७ में पार्लिमेण्ट के अन्दर कहा था—

"परमात्मा ने हिन्दोस्तान का विशाल साम्राज्य इङ्गलिस्तान को सौंपा है, इसलिए, ताकि हिन्दोस्तान के एक सिरे से दूसरे सिरे तक ईसा मसीह का विजयी झण्डा फहराने लगे। हममें से हर एक को अपनी पूरी शक्ति इस काम में लगा देनी चाहिए, ताकि समस्त भारत को ईसाई बनाने के महान कार्य में देश भर के अन्दर कहीं पर भी किसी कारण ज़रा भी ढील न होने पाए।"*

यह वाक्य ब्रिटिश भारतीय राजनीति की दृष्टि से उस समय के सब से अधिक जिम्मेदार अङ्गरेज़ नीतिज्ञ का है। उसी समय के निकट एक दूसरे विद्वान अङ्गरेज़ रेवरेण्ड कैनेडी ने लिखा—

"हम पर कुछ भी आपत्तियाँ क्यों न आएँ, जब तक भारत में हमारा साम्राज्य क़ायम है तब तक हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारा मुख्य कार्य उस देश में ईसाई मत को फैलाना है। जब तक रासकुमारी से लेकर हिमालय तक सारा हिन्दोस्तान ईसा के मत को ग्रहण न कर ले और हिन्दू और मुसलमान धर्मों की निन्दा न करने लगे तब तक हमें लगातार प्रयत्न करते रहना चाहिए। इस कार्य के लिए हम जितने भी प्रयत्न कर

* "Providence has entrusted the extensive Empire of Hindustan to England in order that the banner of Christ should wave triumphant from one end of India to the other. Every one must exert all his strength that there may be no dilatoriness on any account in continuing in the country the grand work of making all India Christian."—Mr. Mangles, Chairman of the Directors of the East India Company, in the House of Commons. 1857.

सकें, हमें करने चाहिएँ और हमारे हाथों में जितने अधिकार और जितनी सत्ता है, उसका इसी के लिए उपयोग करना चाहिए।"*

इसी तरह के और भी वाक्य उस समय के अनेक अङ्गरेज नीतिज्ञों, शासकों और विद्वानों के उद्धृत किए जा सकते हैं। यही विचार लॉर्ड मैकॉले के लेखों में पाया जाता है और यही एक दरजे तक ब्रिटिश भारतीय शिक्षा-प्रणाली की जड़ में मौजूद है।

कारण स्पष्ट है। अङ्गरेज नीतिज्ञ इस बात को समझते थे कि किसी जाति को देर तक पराधीन रखने के लिए उसमें किसी प्रकार का राष्ट्रीय अभिमान अथवा अपनी श्रेष्ठता अथवा अपने प्राचीनत्व की आन का विचार नहीं रहने देना चाहिए; और कम से कम उस समय भारतवासियों को सब से अधिक अभिमान अपने धर्म का था, धर्म ही उनकी मुख्य आन थी; इसलिए भारत-वासियों को धर्मच्युत कर देना उनके राष्ट्रीय अभिमान और हौसलों को एक दीर्घ काल के लिए अन्त कर देना था। अनन्त काल तक उन्हें विदेशी राज्य के भक्त और उसकी विनीत प्रजा बनाए रखने का यही सब से अच्छा उपाय हो सकता था।

---

* "Whatever misfortunes come on us, as long as our Empire in India continues, so long let us not forget that our chief work is the propogation of Christianity in the land until Hindostan, from Cape Comorin to the Himalayas, embraces the religion of Christ and until it condemns the Hindoo and the Moslem religions, our efforts must continue persistently. For this work, we must make all the efforts we can and use all power and all the authority in our hands; . . ."—Rev, Kennedy, M. A.,

मद्रास के गवरनर की हैसियत से लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क ने जिस प्रकार अपने प्रान्त और विशेषकर वहाँ की सेना के अन्दर ईसाई मत प्रचार को सहायता और उत्तेजना दी उसी का परिणाम सन् १८०६ की वेलोर के सिपाहियों की बग़ावत थी, जिसका ज़िक्र ऊपर एक अध्याय में किया जा चुका है। गवरनर-जनरल होने के बाद भी लॉर्ड बेण्टिङ्क की यह नीति इसी प्रकार जारी रही। सन् १८३२ में एक नया क़ानून पास किया गया जिसका मतलब यह था कि जो भारतवासी ईसाई हो जायँ, उनका अपनी पैतृक सम्पत्ति पर पूर्ववत् अधिकार बना रहे। अङ्गरेज़ी राज्य के स्थापन होने के साथ साथ असंख्य प्राचीन मन्दिरों और मस्जिदों की माफ़ी की जागीरें छिन गईं। क़ैदियों के लिए जेलख़ाने में अपने धर्म का पालन कर सकना असम्भव कर दिया गया। लॉर्ड डलहौज़ी ने भारतवासियों की गोद लेने की प्राचीन धार्मिक प्रथा को नाजायज़ क़रार दिया, और भी अनेक इस तरह के कार्य किए गए जो भारतवासियों के धार्मिक नियमों और उनके धार्मिक रस्म-रिवाज के स्पष्ट विरुद्ध थे। स्वयं लॉर्ड कैनिङ्ग ने लाखों रुपए ईसाई मत-प्रचारकों में वितरण किए। भारतीय ख़ज़ाने से पादरी बिशपों और आर्क-बिशपों को बड़ी बड़ी तनख़ाहें मिलने लगीं। दफ़्तरों के अन्दर अनेक अङ्गरेज़ अफ़सर अपने भारतीय मातहतों पर ईसाई होने के लिए ज़ोर देने लगे।

अनेक अङ्गरेज़ ईसाई पादरी अपनी वक्तृताओं और पत्रिकाओं में हिन्दू और मुसलमान धर्मों की घोर निन्दा करने लगे और दोनों

धर्मों के पूज्य पुरुषों के लिए अनुचित शब्दों का उपयोग करने लगे।

. २२ मार्च सन् १८३२ को पार्लिमेण्ट की सिलेक्ट कमेटी के सामने गवाही देते हुए कप्तान टी० मैकेन ने बयान किया—

"× × × बहुत से योग्य भारतीय मुसलमानों ने मुझसे बयान किया है कि गवरमेण्ट ईसाई पादरियों के साथ बड़ी रिआयतें करती है और ये पादरी लोग उनके धार्मिक रिवाजों की गलियों तक में निन्दा करने में हद को पहुँच जाते हैं। इनमें से एक पादरी हिन्दू मुसलमान जनता को व्याख्यान देते हुए कह रहा था—'तुम लोग मोहम्मद के ज़रिए अपने पापों की माफ़ी की आशा करते हो, किन्तु मोहम्मद इस समय दोज़ख़ में है, और यदि तुम लोग मोहम्मद के उसूलों पर विश्वास करते रहोगे तो तुम सब भी दोज़ख़ जाओगे।' "*

ईसाई पादरियों के विरुद्ध इस तरह की शिकायतें उन दिनों बहुत आम थीं।

सन् १८४९ में पञ्जाब पर कम्पनी का क़ब्ज़ा हुआ। उसके बाद पञ्जाब को एक आदर्श ईसाई प्रान्त बनाने के लिए विशेष कोशिशें की गईं। सर हेनरी लॉरेन्स, सर जॉन लॉरेन्स, सर रॉबर्ट मॉण्ट गूमरी, डॉनेल्ड मेक्लिऑड, करनल एडवर्ड्स इत्यादि पञ्जाब के प्रसिद्ध अङ्गरेज़ शासक सब उसी राय के थे। इनमें से अनेक की राय यह थी कि पञ्जाब में शिक्षा का सारा कार्य ईसाई पादरियों

* Evidence by Captain T. Macan, before the Commons Committee, 22nd March, 1832.

के हाथों में दे दिया जाय, सरकार की ओर से ईसाई मदरसों को धन की पूरी सहायता दी जाय और अङ्गरेज़ सरकार अपने स्कूल बन्द कर दे। गवरनर-जनरल लॉर्ड डलहौज़ी और कम्पनी के डाइरेक्टर भी इन लोगों के साथ सहमत थे। इनमें से कुछ की राय यह भी थी कि सरकारी स्कूलों और कॉलेजों में इञ्जील और ईसाई मत की शिक्षा दी जाया करे, अङ्गरेज़ सरकार हिन्दू धर्म और इसलाम को किसी तरह की सहायता, उत्तेजना अथवा स्वीकृति न दे, किसी सरकारी महकमे में किसी भी हिन्दू अथवा मुसलमान त्योहार की छुट्टी न दी जाय, अपने न्यायालयों में अङ्गरेज़ सरकार हिन्दू अथवा मुसलिम धर्मशास्त्रों और धार्मिक रिवाजों को कोई स्थान न दे, हिन्दुओं अथवा मुसलमानों के धार्मिक कीर्तन बन्द कर दिए जायँ, इत्यादि।*

ज़ाहिर है कि भारत की विचित्र परिस्थिति में उस समय के शासकों की यह नीति इस खुले रूप में देर तक न चल सकी; किन्तु ईसाई धर्म प्रचार के पक्ष में प्रयत्न बराबर जारी रहे। धीरे धीरे इन धर्म्मोन्मत्त शासकों का ध्यान हिन्दोस्तानी सिपाहियों की ओर गया। इतिहास-लेखक नॉलेन लिखता है कि अङ्गरेज़ सरकार सिपाहियों के धार्मिक भावों की अवहेलना करने लगी और बात बात में उनके धार्मिक नियमों आदिक का उल्लङ्घन किया

---

* *Memorandum on The Elimination of All Un-Christian Principles from the Government of British India*, by Sir Herbert Edwardes.

जाने लगा। यहाँ तक कि कम्पनी की सेना के अनेक अङ्गरेज़ अफ़सर खुले तौर पर अपने सिपाहियों का धर्म परिवर्तन करने के कार्य में लग गए। बङ्गाल की पैदल सेना के एक अङ्गरेज़ कमाण्डर ने अपनी सरकारी रिपोर्ट में लिखा है कि "मैं लगातार २८ वर्ष से भारतीय सिपाहियों को ईसाई बनाने की नीति पर अमल करता रहा हूँ और ग़ैर-ईसाइयों की आत्माओं को शैतान से बचाना मेरे फ़ौजी कर्तव्य का एक अङ्ग रहा है।" "कॉलेज़ ऑफ़ दी इण्डियन रिवोल्ट" नामक पत्रिका का भारतीय रचयिता लिखता है—

"सन् १८५७ के शुरू में हिन्दोस्तानी सेना के बहुत से करनल सेना को ईसाई बनाने के अत्यन्त घोर तथा दुष्कर कार्य में लगे हुए पाए गए। उसके बाद यह पता चला कि इन जोशीले अफ़सरों में से अनेक × × × न रोज़ी के ख़याल से फ़ौज में भरती हुए थे, न इसलिए भरती हुए थे कि फ़ौज का कार्य उनकी प्रकृति के अत्यन्त अनुकूल था, बल्कि उनका केवल मात्र और एक मात्र उद्देश यही था कि इस ज़रिये से लोगों को ईसाई बनाया जाय। फ़ौज को उन्होंने ख़ास तौर पर इसलिए चुना क्योंकि शान्ति के दिनों में फ़ौज के अन्दर सिपाहियों और अफ़सरों दोनों को हद दरजे की फ़ुरसत रहती है, और वहाँ पर बिना ख़र्च, परिश्रम इत्यादि के अथवा बिना गाँव गाँव भटकने के हर तरफ़ बहुत बड़ी संख्या में ग़ैर-ईसाई मिल सकते हैं। × × × इन लोगों ने हिन्दू और मुसलमान अफ़सरों और सिपाहियों में प्रचार करना और उनमें ईसाई पुस्तकों के अनुवाद तथा पत्रिकाएँ बाँटना शुरू किया। शुरू में सिपाहियों ने, कभी घृणा के साथ और कभी उदासीनता के साथ यह सब बरदाश्त कर लिया। किन्तु जब इन लोगों

का कार्य बराबर जारी रहा, जब इनके ईसाई बनाने के प्रयत्न दिन प्रति दिन अधिकाधिक गहरे और क्लेशकर होते गए, तो दोनों धर्मों के सिपाही चौंक उठे। × × × इस अरसे में ये विचित्र अफ़सर जिन्हें 'मिशनरी करनल' और 'पादरी लेफ़्टेनेण्ट' कहा जाने लगा था, चुप न बैठे। सिपाहियों की सहनशीलता से इनका साहस और बढ़ गया और वे पहले की अपेक्षा और अधिक जोश दिखलाने लगे। हिन्दू धर्म और इसलाम की वह पहले से अधिक ज़ोरदार शब्दों में निन्दा करने लगे। पहले से अधिक जोश के साथ वे इन अविश्वासी लोगों पर ज़ोर देने लगे कि अपने तैंतीस करोड़ कुरूप देवी देवताओं को छोड़ कर उनकी जगह एक सच्चे परमात्मा की, उसके बेटे ईसा के रूप में पूजा करो। मोहम्मद और राम को अभी तक वे केवल ऐसे वैसे मनुष्य कहा करते थे, अब वे उन्हें बड़े दग़ाबाज़ और पक्के धूर्त बतलाने लगे। × × × धीरे धीरे इन धर्म-प्रचारक करनलों ने सिपाहियों को रिशवतें दे दे कर उन्हें ईसाई बनाना शुरू किया, और ईसाई बनने वालों को तरक़्क़ी तथा दूसरे इनामों का भी लालच दिया। इस नापाक काम में उन्होंने निर्लज्जता के साथ अपने अफ़सरी के प्रभाव का उपयोग किया। सिपाहियों ने एतराज़ किया, उनके यूरोपियन अफ़सरों ने वादा किया कि हर सिपाही को, जो अपना धर्म छोड़ देगा, हवलदार बना दिया जायगा, हर हवलदार को सूबेदार मेजर बना दिया जायगा, इत्यादि। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय सिपाहियों में बहुत बड़ा असन्तोष फैलने लगा।"*

---

* "At the beginning of the present year (1857) a great many colonels in the Indian army were detected in a task not *less monstrous and arduous than that of Christianizing it. It has* afterwards transpired that some of these earnest . . . worthies

विप्लव के ठीक वाद पूर्वोक्त पत्रिका लन्दन से प्रकाशित हुई। इसके वाद विप्लव और उसके कारणों के ऊपर असंख्य पुस्तकें, पत्रिकाएँ और लेख इङ्गलिस्तान तथा भारत में प्रकाशित हुए; किन्तु किसी लेखक को भी पूर्वोक्त पत्रिका के गम्भीर इल-ज़ामों को असत्य कहने का साहस न हो सका।

इसी पत्रिका का अङ्गरेज़ सम्पादक मैलकम लुइन, जो मद्रास सुप्रीम कोर्ट का जज और मद्रास कौन्सिल का सदस्य रह चुका था, अपने तजरुबे से भारतवासियों के साथ उस समय के अङ्गरेज़ शासकों के सलूक को वर्णन करते हुए भूमिका में लिखता है—

. . . entered the army; not as a means of subsistence, not as the theatre of exertion most congenial to their temperament, but solely and wholly for the purpose of conversion. The army was specially selected, as in times of peace it affords the utmost leisure to both soldiers and commanders. And as there heathens may be found in great abundance on all sides, without the trouble and expense, and other et cetras, or scampering from village to village. . . . they began preaching and distributing tracts and translations among the Hindoo and Mohammedan officers and soldiers. In the beginning they were tolerated, sometimes with disgust, and sometimes with indifference. When, however, the thing continued, when the evangelizing endeavours became more serious and troublesome day by day, the Sepoys of either presuation felt alarmed . . . In the meantime, the 'Missionary Colonels,' and 'Padre Lieutenants,' as these curious Militaries were called, were not inactive. Emboldened by the toleration of the Sepoys, they grew more violent than ever. They were louder in their denunciations

"समाज के सदस्यों की हैसियत से हम दोनों, अर्थात् अङ्गरेज़ और हिन्दोस्तानी, एक दूसरे से अनभिज्ञ हैं; हमारा एक दूसरे से वही सम्बन्ध रहा है जो कि मालिकों और ग़ुलामों में होता है। हमने हर एक ऐसी चीज़ पर अपना अधिकार जमा लिया है जिससे कि देशवासियों का जीवन सुखमय हो सकता था, प्रत्येक ऐसी वस्तु जो कि देशवासियों को समाज में उभार सकती थी अथवा मनुष्य की हैसियत से उन्हें ऊँचा कर सकती थी, हमने उनसे छीन ली है। हमने उन्हें जाति-भ्रष्ट कर दिया है। उनके उत्तराधिकार के नियमों को हमने रद्द कर दिया है, उनकी विवाह की संस्थाओं को हमने बदल दिया है। उनके धर्म के पवित्रतम रिवाजों की हमने अवहेलना की है। उनके मन्दिरों की जायदादें हमने ज़ब्त कर ली हैं। अपने सरकारी उल्लेखों में हमने उन्हें काफ़िर (हीदन) कह कर कलङ्कित किया है। उनके देशी नरेशों के राज्य हमने छीन लिए हैं और उनके

---

of Hinduism and Islam. They were warmer in their exhortations to the unbelievers, to substitute the worship of the one true God in his son Jesus, or the thirty three millions of their hideous deities, Mohammed and Rama, hitherto mere so-so beings, turned sublime imposters and unmitigated black-guards . . . By and by the proselytizing Colonels tempted the Sepoys to Christianity with bribes and offered promotions and other rewards to converts. They unblushingly used their influence as officers in this unholy affair. The Sepoys protested, and their European officers promised to make every Sepoy that forsook his religion a Havildar, every Havildar, a Subedar Major, and so on ! Great discontent was the consequence."—*Causes of the Indian Revolt*, by A Hindoo of Bengal, Dated Calcutta the 18th August, 1857, published from London, by Edward Stanford, 6 Charing Cross.

अमीरों और रईसों की जायदादें जब्त कर ली हैं। अपनी लूट खसोट से हमने देश को बरबाद कर दिया है, और लोगों को सता सता कर उनसे मालगुज़ारी वसूल की है। हमने संसार के सब से प्राचीन उच्च कुलों को निर्मूल कर देने और उन्हें गिरा कर पैरिया बना देने का प्रयत्न किया है।"

इसके बाद भारतवासियों को ईसाई बनाने के प्रयत्न के अनौचित्य और भारतीय धर्म तथा भारतीय सभ्यता की श्रेष्ठता को वर्णन करते हुए मैलकम लुइन लिखता है—

"× × × नहीं, यदि वृक्ष की परख उसके फलों से की जाती है, यदि इङ्गलिस्तान और भारत के अलग अलग सदाचारों को वहाँ के धर्मों की कसौटी मान लिया जाय, तो भारत का सर मुक़ाबले में ऊँचा रहेगा।"*

---

* "We are ignorant of each other, as members of society; the bond of union has been that of Spartan and Helot. Grasping everything that could render life desirable, we have denied to the people of the country all that could raise them in society, all that could elevate them as men; we have insulted their caste; we have abrogated their laws of inheritance, we have changed their marriage institutions, we have ignored the most sacred rites of their religion; we have delivered up their pagoda-property to confiscation; we have branded them in our official records as 'heathens'; we have seized the possessions of their native princes, and confiscated the estates of their nobles; we have unsettled the country by our exactions, and collected the revenue by means of torture; we have sought to uproot the most ancient aristocrasy of the world, and to degrade it to the condition of pariahs.

* * *

" . . Nay, if a tree be known by its fruits, if the moral

अपने भारतीय सिपाहियों के साथ कम्पनी तथा कम्पनी के अफ़सरों का सामान्य व्यवहार भी बहुत अच्छा न था। सामान, वेतन, रहने के मकान इत्यादि के विषय में सिपाहियों की ओर से अनेक शिकायतें बार बार की जा चुकी थीं, किन्तु उन पर यथोचित ध्यान कभी न दिया गया था। परिणाम यह हुआ कि हिन्दोस्तानी सिपाहियों के दिल अङ्गरेज़ों की ओर से भीतर ही भीतर असन्तोष और क्रोध से भर गए। सन् १८५७ के विप्लव का यह पाँचवाँ और एक तरह सबसे ज़बरदस्त कारण था।

पूर्वोक्त पाँचों कारणों ने मिल कर समस्त भारत के अन्दर अङ्गरेज़ी राज्य के विरुद्ध हर श्रेणी के लोगों में ज़बरदस्त स्फोटक सामग्री जमा कर रक्खी थी। केवल किसी ऐसे योग्य नेता की आवश्यकता थी जो इस सामग्री से लाभ उठा कर समस्त देश को स्वाधीनता के एक महान संग्राम के लिए तैयार कर सके और सौ वर्ष से जमे हुए विदेशी शासन को उखाड़ कर फेंक सके; अथवा कोई अकस्मात् चिनगारी इस मसाले पर पड़ कर देश में एक भयङ्कर आग लगा दे, परिणाम फिर चाहे कुछ भी क्यों न हो।

विप्लव का सच्चा रूप

सन् १८५७ का विप्लव वास्तव में भारत के हिन्दू और मुसलमान नरेशों और भारतीय जनता की ओर से देश को विदेशियों की

of England and of India are to be held as the tests of their respective creeds, India would not loose by the comparison."—Malcolm Lewin in the Preface to *Causes of Indian Revolt.*

राजनैतिक अधीनता से मुक्त कराने का एक महान और व्यापक प्रयत्न था।

लन्दन 'टाइम्स' का विशेष प्रतिनिधि सर विलियम हॉवर्ड रसल, जो सन् ५७ के विप्लव के समय भारत में मौजूद था, उस विप्लव के विषय में लिखता है—

"वह ऐसा युद्ध था जिसमें लोग अपने धर्म के नाम पर, अपनी क़ौम के नाम पर, बदला लेने के लिए, और अपनी आशाओं को पूरा करने के लिए उठे थे। उस युद्ध में समस्त राष्ट्र ने अपने ऊपर से विदेशियों के जुए को फेंक कर उसकी जगह देशी नरेशों की पूर्ण सत्ता और देशी धर्मों का पूर्ण अधिकार फिर से क़ायम करने का सङ्कल्प कर लिया था।"*

विप्लव की योजना

इस राष्ट्रीय प्रयत्न की तह में एक उतनी ही गहरी योजना और उतना ही व्यापक तथा गुप्त सङ्गठन भी था। जहाँ तक मालूम हो सकता है, इस विशाल योजना का सूत्रपात दोनों में से किसी एक स्थान पर हुआ, कानपुर के निकट बिठूर में अथवा इङ्गलिस्तान की राजधानी लन्दन में।

अन्तिम पेशवा बाजीराव का दत्तक पुत्र नाना साहब धुन्धपन्त विप्लव के मुख्यतम नेताओं में से था। ऊपर लिखा जा चुका है कि

* ". . . we had a war of religion, a war of race, and a war of revenge, of hope, of national determination to shake off the yoke of a stranger and to reestablish the full power of native Chiefs and the full sway of native religions."—*My Diary in India in the Year 1858-59*, by Sir William Howard Russell, p. 164.

नाना साहब ने अपनी पेनशन के विषय में अपील करने के लिए अजीमुल्ला खाँ को इङ्गलिस्तान भेजा था। यह अजीमुल्ला नाना का विश्वस्त सलाहकार और विप्लव का दूसरा मुख्य नेता था। अजीमुल्ला अत्यन्त योग्य नीतिज्ञ था। अङ्गरेजी और फ़्रान्सीसी दोनों भाषाओं का वह पूर्ण पण्डित था। विलायत में वह हिन्दोस्तानी वेश में ही रहता था। रूप का वह अत्यन्त सुन्दर था। लन्दन की उच्च समाज के लोगों में उसका आचार व्यवहार इतना आकर्षक रहा कि लिखा है कि उच्चतम श्रेणी के अङ्गरेजों में अनेक स्त्रियाँ तक उसपर मुग्ध हो गईं। तथापि अजीमुल्ला को अपने मुख्य उद्देश में सफलता प्राप्त न हो सकी। अर्थात् नाना की पेनशन के विषय में इङ्गलिस्तान के नीतिज्ञों अथवा शासकों ने उसकी एक न सुनी।

ठीक उन्हीं दिनों सतारा के पदच्युत राजा की ओर से अपील करने के लिए रङ्गो बापूजी नामक एक मराठा नीतिज्ञ भी इङ्गलिस्तान गया हुआ था। रङ्गो बापूजी को भी अपने कार्य में सफलता न हो सकी। लन्दन में अजीमुल्ला और रङ्गो बापूजी की भेंट हुई। सम्भव है कि सन् ५७ के विप्लव की योजना का सूत्रपात भारत से अजीमुल्ला के चलने से पहले बिठूर ही में हो चुका हो। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि रङ्गो बापूजी और अजीमुल्ला खाँ ने लन्दन के कमरों में बैठ कर बहुत दरजे तक इस राष्ट्रीय योजना को रङ्ग और रूप दिया। उसके बाद रङ्गो बापूजी दक्षिण के नरेशों को इस योजना के पक्ष में करने के उद्देश से सतारा वापस आया और

चतुर अज़ीमुल्ला ख़ाँ यूरोप के अन्दर अङ्गरेज़ों के बल और स्थिति को समझने के लिए और भारत के भावी स्वाधीनता संग्राम में अन्य राष्ट्रों की सहायता या सहानुभूति प्राप्त करने के लिए यूरोप के विविध देशों में भ्रमण करने लगा।

अन्य देशों में होते हुए अज़ीमुल्ला ख़ाँ टर्की की राजधानी क़ुस्तुनतुनिया पहुँचा। उन दिनों रूस और इङ्गलिस्तान के बीच युद्ध जारी था। अज़ीमुल्ला ख़ाँ ने सुना कि हाल में सेवस्तेपोल की लड़ाई में रूस ने अङ्गरेज़ों को हरा दिया। अज़ीमुल्ला ख़ाँ रूस पहुँचा। कई अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों ने यह शङ्का प्रकट की है कि अज़ीमुल्ला ख़ाँ नाना साहब की ओर से अङ्गरेज़ों के विरुद्ध रूस के साथ सन्धि करने के लिए रूस गया था। रूस में प्रसिद्ध अङ्गरेज़ विद्वान रसल के साथ, जो लन्दन के अख़बार 'टाइम्स' का सम्वाददाता था, अज़ीमुल्ला ख़ाँ की मुलाक़ात हुई। एक दिन रसल के साथ बैठ कर अज़ीमुल्ला ख़ाँ बड़े शौक़ के साथ दिन भर अङ्गरेज़ों और रूसियों की लड़ाई देखता रहा। रसल ने लिखा है कि रूसी तोप का एक गोला अज़ीमुल्ला के ठीक पैर के पास आकर फूटा, किन्तु अज़ीमुल्ला अपनी जगह से बाल भर भी न हिला। मालूम नहीं कि रूस के बाद अज़ीमुल्ला और कहाँ कहाँ गया। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अज़ीमुल्ला ख़ाँ ने इतालिया, रूस, टर्की, मिश्र इत्यादि देशों की सहानुभूति अपने भावी स्वाधीनता युद्ध की ओर करने की कोशिश की। लॉर्ड रॉबर्ट्स ने अपनी पुस्तक "फ़ॉरटी ईयर्स-इन-इण्डिया" में लिखा है कि उसने अज़ीमुल्ला के कई

पत्र इस सम्बन्ध में टर्की के सुलतान और उमरपाशा के नाम देखे, जिनमें भारत के अन्दर अङ्गरेज़ों के अत्याचारों का वर्णन था।

यह मालूम नहीं कि अज़ीमुल्ला खाँ को अपने इन प्रयत्नों में कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई। किन्तु दो बातें ध्यान में रखने योग्य हैं। एक यह कि विप्लव के दिनों में भारत के अन्दर यह एक आम अफ़वाह उड़ी हुई थी कि नाना साहब ने अङ्गरेज़ों के विरुद्ध रूस के ज़ार के साथ कुछ सन्धि कर ली है। दूसरी यह कि जिन दिनों भारत में विप्लव जारी था उन दिनों इतालिया का प्रसिद्ध देशभक्त सेनापति गैरिबॉल्डी भारतवासियों की सहायता के लिए अपने देश से सेना और सामान लाने की तैयारी कर रहा था। इतालिया की आन्तरिक कठिनाइयों और विद्रोहों के कारण गैरिबॉल्डी को जल्दी वहाँ से चलने का अवकाश न मिल सका; और जिस समय गैरि-बॉल्डी अपने यहाँ के जहाज़ों में सेना और सामान भर कर भारतीय विप्लवकारियों की सहायता के लिए अपने देश से चलने को तैयार हुआ उसी समय उसे मालूम हुआ कि भारत का विप्लव शान्त हो चुका। गैरिबॉल्डी ने बड़े दुख के साथ अपनी सेना को जहाज़ों से उतार लिया।

यूरोप तथा एशिया के अन्य देशों में भ्रमण करने के बाद अज़ीमुल्ला खाँ भारत लौटा। अब एक ओर रङ्गो बापूजी सतारा में बैठा हुआ दक्षिण के नरेशों और वहाँ के लोगों को तैयार कर रहा था और दूसरी ओर अज़ीमुल्ला खाँ और नानासाहब बिठूर में बैठे हुए आगामी विप्लव के नक़शे को पूरा कर रहे थे।

विप्लव की योजना करने वालों का मुख्य विचार यह था कि भारत के समस्त हिन्दू और मुसलमान बूढ़े सम्राट बहादुरशाह के झण्डे के नीचे मिल कर अङ्गरेज़ों को देश से बाहर निकाल दें और फिर सम्राट ही के झण्डे के नीचे अपने देश के सुशासन का नए सिरे से प्रबन्ध करें। इसके लिए एक विशाल और गुप्त सङ्गठन की आवश्यकता थी; और सङ्गठन के बाद इस बात की आवश्यकता थी कि समस्त भारत में एक साथ एक दिन अङ्गरेज़ों के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया जाय।

गुप्त सङ्गठन और तैयारी

इस विशाल गुप्त सङ्गठन की नींव मालूम होता है कि बिठूर ही में रक्खी गई। सङ्गठन इतना विशाल होते हुए भी इतना सम्पूर्ण, सुन्दर और सुव्यवस्थित था और उसे अङ्गरेज़ों जैसी जागरूक क़ौम से बरसों इतनी अच्छी तरह गुप्त रक्खा गया कि इस विषय में अनेक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों तक ने विप्लव के प्रवर्त्तकों और सञ्चालकों की योग्यता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। अधिकतर अङ्गरेज़ों ही की पुस्तकों से हमें इस सङ्गठन के विषय में जो कुछ मालूम हो सकता है, उससे पता चलता है कि सन् १८५६ से कुछ पहले नाना साहब ने बिठूर से बैठे हुए भारत भर में चारों ओर अपने गुप्त दूत और प्रचारक भेजने शुरू कर दिए। नाना के विशेष दूत दिल्ली से लेकर मैसूर तक समस्त भारतीय नरेशों के दरबारों में पहुँचे, और उसके गुप्त प्रचारक कम्पनी की समस्त देशी फ़ौजों

तथा जनता को अपनी ओर करने के लिए निकल पड़े। जो गुप्त पत्र नाना ने इस समय भारतीय नरेशों को लिखे उनमें उसने दिखलाया कि किस प्रकार अङ्गरेज़ एक एक देशी रियासत को हड़प कर समस्त भारत को पराधीन करने के प्रयत्नों में लगे हुए हैं। कुछ समय बाद अङ्गरेज़ों ने नाना के एक दूत को पकड़ा जो मैसूर दरबार के नाम नाना का पत्र लेकर गया था। इसी दूत से अङ्गरेज़ों को पता लगा कि इस प्रकार के कितने ही पत्र नाना अनेक नरेशों को भेज चुका था। इतिहास-लेखक सर जॉन के लिखता है—

"महीनों से बल्कि वर्षों से ये लोग समस्त देश के ऊपर अपनी साज़िशों का जाल फैला रहे थे। एक देशी दरबार से दूसरे दरबार तक, विशाल भारतीय महाद्वीप के एक सिरे से दूसरे सिरे तक, नाना साहब के दूत पत्र लेकर घूम चुके थे, इन पत्रों में होशियारी के साथ और शायद रहस्यपूर्ण शब्दों में भिन्न भिन्न जातियों और भिन्न भिन्न धर्मों के नरेशों और सरदारों को सलाह दी गई थी और उन्हें आमन्त्रित किया गया था कि आप लोग आगामी युद्ध में भाग लें।"*

इस राष्ट्रीय योजना को फूलने फलने के लिए सबसे अच्छा स्थान दिल्ली के लाल क़िले में मिला, जिसके कारण ऊपर वर्णन

---

* "For months, for years indeed, they had been spreading their net-work of intrigues all over the country. From one native court to another, from one extremity to another of the great continent of India, the agents of the Nana Saheb had passed with overtures and invitations discreetly, perhaps mysteriously, worded to princes and chiefs of different races and religions, "—Kaye's *Indian Mutiny*, vol. I, p. 24.

किए जा चुके हैं। सम्राट बहादुरशाह, उसकी योग्य बेगम ज़ीनत-महल और उनके सलाहकारों ने देश और नाना का पूरा साथ देने का निश्चय कर लिया। लिखा है कि इस विषय में दिल्ली के सम्राट और ईरान के शाह के बीच भी कुछ पत्र व्यवहार हुआ। दिल्ली के नगर में भी गुप्त सभाएँ होने लगीं और तदबीरें सोची जाने लगीं।

इसके बाद ही अवध के अङ्गरेज़ी राज्य में मिलाए जाने का समय आया। सर जॉन के लिखता है कि इस एक घटना से नाना को बहुत बड़ी सहायता मिली। सर जॉन के के शब्द हैं—

"अङ्गरेज़ों के इस अन्तिम राज्य-अपहरण का इतना प्रबल प्रभाव पड़ा कि लोग एक दूसरे से पूछने लगे कि अब कौन सुरक्षित रह सकता है! यदि अङ्गरेज़ सरकार ने अवध के नवाब जैसे अपने वफ़ादार दोस्त और मददगार का राज्य छीन लिया जिसने कि आवश्यकता के समय अङ्गरेज़ों को मदद दी थी तो अङ्गरेज़ों के साथ वफ़ादारी करने से क्या लाभ? कहा जाता है कि जो राजा और नवाब उस समय तक (विप्लव से) पीछे हट रहे थे वे अब आगे बढ़ने लगे और नाना साहब को अपने पत्रों का यथेच्छ उत्तर मिलने लगा।"

लखनऊ का निर्वासित नवाब वाजिदअली शाह, उसका होशियार वज़ीर अली नक़ी खाँ, अवध के समस्त ताल्लुक़ेदार, ज़मींदार और वहाँ की समस्त प्रजा अब इस राष्ट्रीय विप्लव की सफलता पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने के लिए तैयार होगई।

वाजिदअली शाह की बेगम हज़रत महल और वज़ीर अली-

नक़ी ख़ाँ दोनों की गणना विप्लव के मुख्य प्रवर्त्तकों में की जाती है। वज़ीर अली नक़ी ख़ाँ ने कलकत्ते से बैठ कर मुसलमान फ़क़ीरों और हिन्दू साधुओं के रूप में अपने गुप्त दूत उत्तरीय भारत की तमाम देशी फ़ौजों में भेजने शुरू किए और उन फ़ौजों के भारतीय अफ़सरों के साथ गुप्त पत्र व्यवहार प्रारम्भ किया। बेगम हज़रत महल ने अवध के तमाम रईसों और जनता को राष्ट्रीय विप्लव के लिए तैयार करना शुरू किया। इतिहास-लेखक के लिखता है कि अली नक़ी ख़ाँ के निमन्त्रण पर हज़ारों हिन्दू सिपाहियों और उनके अफ़सरों ने गङ्गाजल लेकर और मुसलमानों ने क़ुरान हाथ में लेकर राष्ट्रीय संग्राम में भाग लेने और अङ्गरेज़ों को देश से बाहर निकालने की शपथ खाई।

इस विशाल सङ्गठन के लिए धन की कमी न थी। सहस्रों रईसों और साहूकारों ने अपनी थैलियाँ राष्ट्रीय नेताओं के क़दमों पर रख दीं। बैरकपुर से पेशावर तक और लखनऊ से सतारा तक हज़ारों राष्ट्रीय फ़क़ीर और सन्यासी घूम घूम कर एक एक ग्राम और एक एक पलटन में स्वाधीनता के युद्ध का प्रचार करने लगे। सहस्रों मौलवी और सहस्रों पण्डित विप्लव की सफलता के लिए जगह जगह ईश्वर से प्रार्थनाएँ करने लगे।

विप्लव के इस समय पाँच मुख्य केन्द्र थे। दिल्ली, बिठूर, लखनऊ, कलकत्ता और सतारा। निस्सन्देह जिस शीघ्रता और वेग के साथ समस्त भारत और विशेषकर उत्तरीय भारत में विप्लव का प्रचार किया गया वह अत्यन्त आश्चर्यजनक था। तारीफ़

यह कि अङ्गरेज़ों को अन्त समय तक इस तैयारी का कुछ भी ज्ञान न हो सका।

सन् ५७ के इस गुप्त सङ्गठन के विषय में एक अङ्गरेज़ लेखक जैकब लिखता है—

"जिस आश्चर्यजनक गुप्त ढङ्ग से यह समस्त षड्यन्त्र चलाया गया, जितनी दूरदर्शिता के साथ योजनाएँ की गईं, जिस सावधानी के साथ इस सङ्गठन के विविध समूह एक दूसरे के साथ काम करते थे, एक समूह का दूसरे समूह के साथ सम्बन्ध रखने वाले लोगों का किसी को पता न चलता था, और इन लोगों को केवल इतनी ही सूचना दी जाती थी जितनी उनके कार्य के लिए आवश्यक होती थी, इन सब बातों को बयान कर सकना कठिन है। और ये लोग एक दूसरे के साथ आश्चर्यजनक वफ़ादारी का व्यवहार करते थे।"*

इसका एक कारण यह भी था कि अधिकांश अङ्गरेज़ी थानों में पुलिस, अनेक अन्य सरकारी मुलाज़िम और अङ्गरेज़ों के बावर्ची और भिश्ती तक इस राष्ट्रीय योजना में शामिल थे। कहीं कहीं अङ्गरेज़ों

* "But it is difficult to describe the wonderful secrecy with which the whole conspiracy was conducted and the forethought supplying the schemes, and the caution with which each group of conspirators worked apart, concealing the connecting links, and instructing them with just sufficient information for the purpose in view. And all this was equalled only by the fidelity with which they adhered to each other."—*Western India*, by Sir George Le Grand Jacob, K. C. S. I., C. B.

ने किसी प्रचारक को पकड़ भी लिया। एक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक लिखता है कि एक बार मेरठ छावनी के निकट कोई फ़क़ीर ठहरा हुआ विप्लव का प्रचार कर रहा था। अङ्गरेज़ों ने उसे बाहर निकाल दिया। वह फ़क़ीर अपने हाथी पर बैठ कर पास के गाँव में चला गया और वहाँ से अपना काम करता रहा।* इन राज-नैतिक फ़क़ीरों को प्रायः सवारी के लिए हाथी और रक्षा के लिए सशस्त्र सिपाही मिले हुए थे। यहाँ तक कि काशी, प्रयाग और हरिद्वार में अङ्गरेज़ी राज्य के नाश के लिए खुली प्रार्थनाएँ होने लगीं और सहस्रों यात्री भावी विप्लव में भाग लेने का सङ्कल्प उठाने लगे। तमाशों, पवाड़ों, लावनियों, कठपुतलियों, नाटकों आदिक से भी विप्लव के सञ्चालकों ने पूरा लाभ उठाया।† इस प्रकार का व्यापक प्रचार कम या अधिक एक साल से ऊपर तक जारी रहा।

दिल्ली दरबार के राजकवि ने एक राष्ट्रीय गान तैयार किया जो देश भर में स्थान स्थान पर गाया जाने लगा।

धीरे धीरे सङ्गठन के केन्द्रों की संख्या बढ़ने लगी। इन केन्द्रों के बीच गुप्त पत्र-व्यवहार जारी हो गया। जगह जगह विप्लव के एलान प्रकाशित होने लगे, जिनमें लोगों को देश और धर्म के नाम पर शहीद होने के लिए आमन्त्रित किया गया। इस प्रकार का एक एलान सन् १८५७ के प्रारम्भ में मद्रास शहर में भी लगा हुआ

---

* *The Meerut Narrative.*

† Trevelyan's *Cawnpore.*

पाया गया। जगह जगह गुप्त सभाएँ होने लगीं, जिनमें एक एक समय दस दस हज़ार आदमी भाग लेते थे। पत्र-व्यवहार के लिए गुप्त लिपियाँ तैयार हो गईं।*

अन्त में इस गुप्त सङ्गठन के अनेक केन्द्रों को एक सूत्र में बाँधने और देश भर में विप्लव का दिन नियत करने के लिए मार्च सन् १८५७ के प्रारम्भ में नाना साहब और अज़ीमुल्ला ख़ाँ तीर्थ-यात्रा के बहाने बिठूर से निकले। नानासाहब का भाई बाला-साहब भी उनके साथ था। सब से पहले ये लोग दिल्ली पहुँचे। लाल क़िले के दीवान ख़ास में सम्राट बहादुरशाह, बेगम ज़ीनत-महल और दिल्ली के मुख्य मुख्य नेताओं के साथ इन लोगों की गुप्त मन्त्रणाएँ हुईं। इसके बाद नाना अम्बाले गया। अन्य अनेक स्थानों में चक्कर लगाने के बाद १८ अप्रल को नाना और उसके साथी लखनऊ पहुँचे। लखनऊ में नाना का बड़े समारोह के साथ जुलूस निकाला गया। नाना जहाँ जाता था वहाँ के अङ्गरेज़ अफ़-सरों से मिल कर उन्हें तरह तरह के बहाने करके अपनी ओर से निःशङ्क कर देने के पूरे प्रयत्न करता रहता था। इसके बाद कालपी इत्यादि होते हुए नाना अप्रेल के अन्त में बिठूर वापस आ गया। रसल लिखता है कि अपनी इस यात्रा में नाना और अज़ीमुल्ला रास्ते की समस्त अङ्गरेज़ी छावनियों में होते जाते थे।

विप्लव के उन सहस्रों प्रचारकों में, जिन्होंने घूम घूम कर जन सामान्य के हृदयों को अपनी ओर किया, सबसे मुख्य नाम फ़ैज़ा-

* Innes' *Sepoy Revolt*, p. 55.

बाद के एक ज़मींदार मौलवी अहमदशाह का है। लखनऊ और आगरे के शहरों में दस दस हज़ार आदमी मौलवी अहमदशाह का व्याख्यान सुनने के लिए जमा होते थे। हिन्दू और मुसलमान अपनी सौ वर्ष की पराधीनता की कहानी सुन कर मौलवी अहमदशाह के व्याख्यानों से यह शपथ खाकर उठते थे कि हम लोग आगामी स्वाधीनता के संग्राम में अपने प्राणों की बाज़ी लगा देंगे। मौलवी अहमदशाह का वृत्तान्त आगे चल कर दिया जायगा।

सन् ५७ के इस अद्भुत सङ्गठन का वर्णन समाप्त करने से पहले दो और चीज़ों को बयान करना आवश्यक है। विप्लव के नेताओं ने अपने सङ्गठन के दो मुख्य चिन्ह नियत किए। एक कमल का फूल और दूसरा चपाती। कमल का फूल उन समस्त पलटनों में, जो इस सङ्गठन में शामिल थीं, घुमाया जाता था। किसी एक पलटन का सिपाही फूल लेकर दूसरी पलटन में जाता था। उस पलटन भर में हाथों हाथ वह फूल सब के हाथों से निकलता था। जिसके हाथ में वह सब से अन्त में आता था उसका कर्तव्य होता था कि वह अपने पास की दूसरी पलटन तक उस फूल को पहुँचा दे। इसका गुप्त अर्थ यह लिया जाता था कि उस पलटन के सब सिपाही विप्लव में भाग लेने के लिए तैयार हैं। इस प्रकार के सहस्रों कमल पेशावर से बैरकपुर तक विविध पलटनों के अन्दर घुमाए गए।

चपाती (रोटी) एक गाँव का चौकीदार दूसरे गाँव के चौकीदार के पास ले जाता था। उस चौकीदार का कर्त्तव्य होता था कि

वह उस चपाती में से थोड़ी सी स्वयं खाकर शेष गाँव के दूसरे लोगों को खिला दे और फिर गेहूँ या दूसरे आटे की उसी तरह की चपातियाँ बनवा कर वह अपने पास के गाँव तक पहुँचा दे। इसका अर्थ यह होता था कि उस गाँव की जनता राष्ट्रीय विप्लव में भाग लेने के लिए तैयार है। चमत्कार सा मालूम होता है कि चन्द महीने के अन्दर ये अलौकिक चपातियाँ भारत जैसे विशाल देश में इस सिरे से उस सिरे तक लाखों ग्रामों के अन्दर पहुँच गईं। निस्सन्देह सिपाहियों के लिए रक्तवर्ण कमल और जनता के लिए रोटी, दोनों चिन्ह गम्भीर और अर्थसूचक थे।

नाना की इस यात्रा में ही रविवार ३१ मई सन् १८५७ का दिन समस्त भारत में एक साथ विप्लव करने के लिए नियत कर दिया गया।* किन्तु इस तिथि की सूचना प्रत्येक केन्द्र के केवल मुख्य मुख्य नेताओं को और प्रत्येक पलटन के तीन तीन अफ़सरों को दी गई। शेष का कर्तव्य केवल अपने नेताओं की आज्ञा पर कार्य करना था।

विविध देशी पलटनों के बीच भी इस समय खूब पत्र व्यवहार हो रहा था। इस प्रकार के एक पत्र में, जो अङ्गरेज़ों के हाथों में पड़ा, लिखा था—"भाइयो, हम स्वयं विदेशियों की तलवार अपने शरीर

* "From the available evidence I am quite convinced that the 31st of May 1857, had been decided on as the date for simultaneous rising."—J. C. Wilson's *Official Narrative*, and White's *Complete History of the Great Sepoy War*, p. 17.

के अन्दर घोंप रहे हैं। यदि हम खड़े हो जायँ तो सफलता निश्चित है। कलकत्ते से पेशावर तक तमाम मैदान हमारा होगा।" इतिहास-लेखक के लिखता है कि सिपाही लोग रात को अपनी गुप्त सभाएँ किया करते थे जिनमें बोलने वालों के मुँह पर नक़ाब पड़ा होता था।

पैंतालीसवाँ अध्याय

चरबी के कारतूस और विप्लव का प्रारम्भ

दमदम की घटना
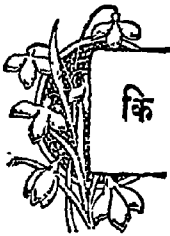
किसी भी विप्लव अथवा क्रान्ति के सफल होने के लिए एक आवश्यक शर्त यह है कि विप्लव सब स्थानों पर नियत समय पर और नियत ढङ्ग से हो। जनवरी सन् १८५७ में कलकत्ते के पास दमदम नामक ग्राम में अकस्मात् एक छोटी सी घटना हुई जिसने सन् ५७ के विप्लव के विषय में यह बात पूरी न होने दी।

सन् १८५३ में एक नई क़िस्म के कारतूस कम्पनी ने अपनी भारतीय सेना के लिए प्रचलित किए। भारत में कई जगह पर इन कारतूसों के बनने के लिए कारख़ाने खोले गए। इससे पहले के कारतूस सिपाहियों को हाथों से तोड़ने पड़ते थे, किन्तु नए कारतूस को दाँत से काटना पड़ता था। आरम्भ में केवल एक दो पलटनों में उन्हें प्रचलित किया गया। भारतीय सिपाहियों ने अज्ञान के

कारण कई जगह नए कारतूसों को दाँत से काटना स्वीकार कर लिया। धीरे धीरे नए कारतूसों का इस्तेमाल बढ़ाया गया।

बैरकपुर के पास इन कारतूसों के बनने के लिए एक कारख़ाना खोला गया। एक दिन दमदम का एक ब्राह्मण सिपाही पानी का लोटा हाथ में लिए बाग की ओर जा रहा था। अकस्मात् एक मेहतर ने आकर पानी पीने के लिए सिपाही से लोटा माँगा। सिपाही ने हिन्दू प्रथा के अनुसार लोटा देने से इनकार किया। इस पर मेहतर ने कहा—"तुम अब जात-पाँत का घमण्ड न करो! क्या तुम्हें मालूम नहीं कि शीघ्र ही तुम्हें अपने दाँतों से गाय का मांस और सुअर की चरबी काटनी पड़ेगी? जो नए कारतूस बन रहे हैं उनमें जान बूझ कर ये दोनों चीज़ें लगाई जा रही हैं।" ब्राह्मण सिपाही इसे सुनते ही क्रोध से भर कर छावनी में गया। जब दूसरे सिपाहियों ने यह समाचार सुना तो वे भी क्रोध से लाल होगए। वे सोचने लगे कि अङ्गरेज़ सरकार इस प्रकार जान बूझ कर हमें धर्म-भ्रष्ट करना चाहती है। उन्होंने अपने अङ्गरेज़ अफ़सरों से पूछा। अफ़सरों ने उन्हें स्पष्ट उत्तर दिया कि यह अफ़वाह बिलकुल झूठी है और नए कारतूसों में इस तरह की कोई चीज़ नहीं है। सिपाहियों को विश्वास न हुआ। उन्होंने बैरकपुर के कारख़ाने में काम करने वाले छोटी जाति के हिन्दोस्तानी मज़दूरों से पता लगाया। उन्हें पता लगा कि वास्तव में नए कारतूसों के अन्दर दोनों चीज़ें, जो हिन्दू और मुसलमान धर्मों में निषिद्ध हैं, लगाई जाती हैं। इस प्रकार अपनी तसल्ली करने के बाद बैरकपुर के

सिपाहियों ने यह ख़बर सारे हिन्दोस्तान में फैला दी। लिखा है कि इसके दो महीने के अन्दर बैरकपुर से पेशावर और महाराष्ट्र तक हज़ारों पत्र इस विषय के भेजे गए और नए कारतूसों का समाचार बिजली के समान भारत के एक एक हिन्दोस्तानी सिपाही के कानों तक पहुँच गया। प्रत्येक हिन्दू और मुसलमान सिपाही अब अङ्गरेज़ों से इस अन्याय का बदला लेने के लिए बेचैन होगया, किन्तु सिपाहियों के नेताओं ने उन्हें ३१ मई तक रोके रखने का हर तरह प्रयत्न किया।

चरबी के कारतूस

अब हमें यह देखना होगा कि नए कारतूसों में गाय और सुअर की चरबी का उपयोग किया जाना कहाँ तक सच था। आज कल प्रायः समस्त अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक और विशेष कर वे अङ्गरेज़ तथा हिन्दोस्तानी लेखक, जो सरकारी स्कूलों के लिए पाठ्य पुस्तकें लिखते हैं, इस अफ़वाह को झूठा बताते हैं और उस पर विश्वास करने वाले सिपाहियों को पागल कहते हैं। सन् १८५७ में गवरनर-जनरल लॉर्ड कैनिङ्ग से लेकर छोटे से छोटे अङ्गरेज़ अफ़सर तक सबने गम्भीरता के साथ यह एलान किया और सिपाहियों को विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि कारतूसों में चरबी का क़िस्सा बिलकुल झूठा है और बदमाश लोगों ने फ़ौज को बरबाद करने के लिए उसे फैलाया है। किन्तु सर जॉन के, जो सन् ५७ के विप्लव का सबसे अधिक प्रामाणिक इतिहास-लेखक माना जाता है, लिखता है—

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस चिकने मसाले के बनाने में गाय की चरबी का उपयोग किया गया था।"*

सर जॉन के यह भी लिखता है कि दिसम्बर सन् १८५३ में करनल टकर ने बहुत साफ़ शब्दों में इस बात को लिखा था कि नए कारतूसों में गाय और सुअर दोनों की चरबी लगाई जाती थी। दमदम के कारख़ाने में जिस ठेकेदार को कारतूसों के लिए चरबी का ठेका दिया गया था उसमें ठेके के काग़ज़ में यह साफ़ शब्दों में लिखा लिया गया था कि "मैं गाय की चरबी लाकर दूँगा" और चरबी का भाव चार आने सेर रक्खा गया था। लॉर्ड रॉबर्ट्स ने, जो विप्लव के समय भारत में मौजूद था, लिखा है—

"मिस्टर फ़ॉरेस्ट ने भारत सरकार के काग़ज़ों की हाल में जाँच की है, उस जाँच से साबित है कि कारतूसों के तैयार करने में जिस चिकने मसाले का उपयोग किया जाता था वह मसाला वास्तव में दोनों निषिद्ध पदार्थों अर्थात् गाय की चरबी और सुअर की चरबी को मिला कर बनाया जाता था, और इन कारतूसों के बनाने में सिपाहियों के धार्मिक भावों की ओर इतनी बेपरवाही दिखाई जाती थी कि जिसका विश्वास नहीं होता।"†

---

* "There is no question that beef fat was used in the composition of this tallow."—Kaye's *Indian Mutiny*, vol. 1, p. 381.

† "The recent researches of Mr. Forrest in the records of the Government of India prove that the lubricating mixture used in preparing the cartridges was actually composed of the objectionable ingredients, cows' fat and lard and that incredible disregard of the soldier's religious prejudices was displayed in the manufacture of these cartridges."—*Forty Years in India* by Lord Roberts, p. 431.

इस पर प्रसिद्ध इतिहास-लेखक विलियम लैकी लिखता है—

"यह एक लज्जाजनक और भयङ्कर सचाई है कि जिस बात का सिपाहियों को विश्वास था, वह बिलकुल सच थी।"*

और आगे चल कर लैकी लिखता है—

"इस घटना पर फिर से दृष्टि डालते हुए अङ्गरेज़ लेखकों को लज्जा के साथ स्वीकार करना चाहिए कि भारतीय सिपाहियों ने जिन बातों के कारण बग़ावत की उनसे ज़्यादा ज़बरदस्त बातें कभी किसी बग़ावत को जायज़ क़रार देने के लिए और हो ही नहीं सकतीं।"*

सिपाहियों में इस असन्तोष के फैलने के थोड़े ही दिनों बाद कम्पनी सरकार की ओर से एक एलान प्रकाशित हुआ कि एक भी इस तरह का कारतूस फ़ौज में नहीं भेजा गया है। किन्तु हाल ही में साढ़े बाईस हज़ार कारतूस अम्बाला डीपो से और चौदह हज़ार कारतूस सियालकोट डीपो से अर्थात् केवल दो डीपो से साढ़े छत्तीस हज़ार कारतूस भारतीय फ़ौज में भेजे जा चुके थे। कई पलटनों में अङ्गरेज़ अफ़सरों ने अब देशी सिपाहियों को धमकाना शुरू किया कि तुम्हें नए कारतूसों का उपयोग करना पड़ेगा। एक दो

* "It is a shameful and terrible truth that as far as the fact was concerned, the Sepoys were perfectly right in their belief. . . . but in looking back upon it, English writers must acknowledge with humiliation that, if mutiny is ever justifiable, no stronger justification could be given than that of the Sepoy troops."—*The Map of Life*, by W. E. H. Lecky, pp. 103, 104.

जगह जब सिपाहियों ने ज़िद की तो सारी रेजिमेण्ट को कड़ी सज़ा भी दी गई।

इस प्रकार इन गाय और सुअर की चरबी से सने हुए कारतूसों ने उस समय की हिन्दोस्तानी फ़ौज के अन्दर स्फोटक मसाले के ऊपर चिनगारी का काम किया।

कोई कोई अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक कारतूसों के मामले को ही विप्लव का एक मात्र अथवा मुख्य कारण बतलाते हैं। इन लोगों के उत्तर में हम केवल दो तीन प्रामाणिक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों की ही राय नीचे उद्धृत करते हैं। जस्टिन मैकार्थी लिखता है—

"सच यह है कि हिन्दोस्तान के उत्तरीय और उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों के अधिकांश भाग में देशी क़ौमें अङ्गरेज़ी सत्ता के विरुद्ध खड़ी हो गईं × × × चरबी की कारतूसों का झगड़ा केवल इस तरह की एक चिनगारी थी जो अकस्मात् इस समस्त स्फोटक मसाले में आ पड़ी। × × × वह एक राष्ट्रीय और धार्मिक युद्ध था!"*

एक दूसरा इतिहास-लेखक मैडले लिखता है—

"किन्तु वास्तव में ज़मीन के नीचे ही नीचे जो स्फोटक मसाला अनेक

---

* "The fact was that throughout the greater part of the northern and north-western provinces of the Indian peninsula, there was a rebellion of the native races against the English power. . . . The quarrel about the greased cartridges was but the chance spark flung in among all the combustible material. . . . a national and religious war!"—*History of Our own Times*, by Justin McCarthy, vol. iii.

कारणों से बहुत दिनों से तैयार हो रहा था, उस पर चरबी लगे हुए कारतूसों ने केवल दियासलाई का काम किया।"*

चार्ल्स बॉल ने अपने विप्लव के इतिहास में लिखा है कि डिज़रेली, जो बाद में इङ्गलिस्तान का प्रधान मन्त्री हुआ, कहा करता था कि कोई भी मनुष्य कारतूसों को विप्लव का वास्तविक कारण नहीं मानता।

एक इतिहास-लेखक लिखता है कि जिन कारतूसों पर भारतीय सिपाही एतराज़ करते थे, उन्हीं को उनमें से अनेक ने बेखटके विप्लव के दिनों में अङ्गरेज़ों के विरुद्ध इस्तेमाल किया।

बैरकपुर

हम ऊपर लिख चुके हैं कि इन नए कारतूसों के कारण विप्लव नियत समय से पहले प्रारम्भ होगया। सन् ५७ के विप्लव का श्रीगणेश एक प्रकार बैरकपुर से हुआ। फ़रवरी सन् '५७ में बैरकपुर की १९ नम्बर पलटन को नए कारतूस उपयोग करने के लिए दिए गए। सिपाहियों ने उन कारतूसों का उपयोग करने से साफ़ इनकार कर दिया। बङ्गाल भर में उस समय कोई गोरी पलटन न थी। इसलिए अङ्गरेज़ अफ़सरों ने फ़ौरन् बरमा से एक गोरी पलटन मँगवा कर १९ नम्बर पलटन से हथियार रखा लेने और सिपाहियों

---

* "But, in fact, the greased cartridge was merely the match that exploded the mine which had, owing to a variety of causes, been for a long time preparing."—Medley's *A Year's Campaigning in India from March, 1857 to March, 1858.*

को बरख़ास्त कर देने का इरादा कर लिया। सिपाहियों को जब इस बात का पता चला तो उनमें से कुछ ने चुपचाप हथियार रख देने के बजाय तुरन्त विप्लव प्रारम्भ कर देने का विचार किया। उनके हिन्दोस्तानी अफ़सरों ने उन्हें ३१ मई तक रुके रहने की सलाह दी। किन्तु १९ नम्बर पलटन का एक नौजवान सिपाही मङ्गल पाँडे अपने आपको न रोक सका।

२९ मार्च १८५७ को पलटन परेड के मैदान में बुलाई गई। जिस समय पलटन आकर खड़ी हुई मङ्गल पाँडे तुरन्त अपनी भरी हुई बन्दूक़ लेकर सामने कूद पड़ा और चिल्ला कर शेष सिपाहियों को अङ्गरेज़ों के विरुद्ध धर्मयुद्ध प्रारम्भ करने के लिए आमन्त्रित करने लगा। एक अङ्गरेज़ अफ़सर सारजेण्ट मेजर ह्यूसन ने जब यह देखा तो उसने सिपाहियों को आज्ञा दी कि मङ्गल पाँडे को गिरफ़्तार कर लो, किन्तु कोई सिपाही आज्ञापालन के लिए आगे न बढ़ा। इतने में मङ्गल पाँडे ने अपनी बन्दूक़ की एक गोली से तुरन्त सारजेण्ट मेजर ह्यूसन को वहीं पर ढेर कर दिया। इस पर एक दूसरा अफ़सर लेफ़्टिनेण्ट बाघ अपने घोड़े पर आगे लपका। उसका घोड़ा अभी कुछ दूर ही था कि पाँडे ने एक दूसरी गोली से घोड़े और सवार दोनों को ज़मीन पर गिरा दिया। मङ्गल पाँडे ने तीसरी बार अपनी बन्दूक़ भरने का इरादा किया। लेफ़्टिनेण्ट बाघ ने उठ कर और आगे बढ़ कर पाँडे पर अपनी पिस्तौल चलाई। पाँडे बच गया। पाँडे ने अब फ़ौरन् अपनी तलवार निकाल कर इस दूसरे अङ्गरेज़ अफ़सर को भी वहीं पर समाप्त कर दिया। थोड़ी देर

बाद करनल व्हीलर ने आकर सिपाहियों को हुकुम दिया कि मङ्गल पाँडे को गिरफ़्तार कर लो। सिपाहियों ने इनकार कर दिया। करनल घबरा कर जनरल के बँगले पर गया। जनरल हीयरसे समाचार पाकर कुछ गोरे सिपाहियों सहित पाँडे की ओर बढ़ा। मङ्गल पाँडे ने यह देख कर स्वयं अपनी छाती पर गोली चलाई। वह जख्मी होकर गिर पड़ा और गिरफ़्तार कर लिया गया।

मङ्गल पाँडे का कोर्ट-मार्शल हुआ। उसे फाँसी की सजा दी गई। ८ अप्रेल का दिन फाँसी के लिए नियत किया गया। किन्तु बैरकपुर भर में कोई मेहतर तक मङ्गल पाँडे को फाँसी देने के लिए राजी न हुआ। अन्त में कलकत्ते से चार आदमी इस काम के लिए बुलाए गए और ८ तारीख के सवेरे मङ्गल पाँडे को फाँसी दे दी गई।

चार्ल्स बॉल और लॉर्ड रॉबर्ट्स दोनों लिखते हैं कि उसी दिन से सन् १८५७-५८ के समस्त विप्लवकारी सिपाहियों को 'पाँडे' के नाम से पुकारा जाने लगा।*

मङ्गल पाँडे की फाँसी के बाद अङ्गरेजों को पता चला कि १९ नम्बर और ३४ नम्बर देशी पलटनें बगावत के लिए गुप्त मन्त्रणाएँ कर रही हैं। तुरन्त इन दोनों पलटनों से हथियार रखा कर सिपा-

---

* "The name has become a recognized distinction for the rebellious Sepoys throughout India."—Charles Ball. "This name was the origin of the Sepoys generally being called 'Pandaye.'"—*Forty-one Years in India*, by Lord Roberts.

हियों को बरख़ास्त कर दिया गया। ३४ नम्बर के सूबेदार को इस अपराध में कि उसके यहाँ गुप्त सभाएँ हुआ करती थीं, फाँसी दे दी गई। तथापि इन दोनों पलटनों के नेताओं ने विप्लव के सञ्चालकों की आज्ञा का ध्यान रखते हुए ३१ मई से पहले विद्रोह की कोई कारर-वाई नहीं की। शीघ्र यह समाचार भी समस्त उत्तरीय भारत में फैल गया। यह बात तय हो चुकी थी कि विप्लव प्रारम्भ करने से पहले हर जगह अङ्गरेज़ों के बँगलों और बारगों में आग लगा दी जाय। अप्रेल के महीने में लखनऊ, मेरठ और अम्बाले में अनेक अङ्ग-रेज़ों के मकान जला दिए गए। अफ़सरों ने इन आकस्मिक घटनाओं के अपराधियों का पता लगाने का भरसक प्रयत्न किया। किन्तु पुलिस भी विप्लवकारियों के साथ मिली हुई थी, इसलिए कुछ पता न चल सका।

मेरठ

इसके बाद मई का महीना आया। ६ मई सन् १८५७ को मेरठ में परीक्षा के तौर पर ९० हिन्दोस्तानी सवारों की एक कम्पनी को नए चरबी लगे कारतूस दिए गए। सवारों से उन्हें दाँत से काटने के लिए कहा गया। ९० में से ८५ सवारों ने साफ़ इनकार कर दिया। इन सिपाहियों का कोर्ट मार्शल हुआ। आज्ञा न मानने के अपराध में उन सबको आठ आठ और दस दस साल की सख्त क़ैद की सज़ा दी गई। ९ मई को सवेरे इन ८५ सिपाहियों को परेड पर लाकर खड़ा किया गया। उनके सामने गोरी फ़ौज और तोपख़ाना था। छावनी के शेष समस्त हिन्दोस्तानी सिपाहियों को

भी यह दृश्य दिखाने के लिए परेड पर बुला लिया गया। ८५ अपराधियों से उनकी वर्दियाँ उतरवा ली गईं, और वहीं परेड पर खड़े खड़े उनके हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ डाल दी गईं। उनसे कहा गया कि तुम्हें दस दस साल की सजा दी गई है। इसके बाद बेड़ियाँ पड़े हुए उन्हें जेलखाने की ओर भेजा गया। उनके साथ के सहस्रों हिन्दोस्तानी सिपाही, जो उन्हें बिलकुल निर्दोष मानते थे, भीतर ही भीतर दुख और क्रोध से बेताब होगए, किन्तु उन्हें अभी तीन सप्ताह और शान्त रहने की आज्ञा थी। वे अपने क्रोध को पीकर बारगों की ओर वापस आगए।*

यह घटना सुबह की थी। शाम को मेरठ के ये हिन्दोस्तानी सिपाही शहर में घूमने के लिए गए। लिखा है कि शहर की स्त्रियों ने स्थान स्थान पर उन्हें यह कह कर लाञ्छना दी—"छिः! तुम्हारे भाई जेलखाने में हैं और तुम यहाँ बाज़ार में मक्खियाँ मार रहे हो! तुम्हारे जीने पर धिक्कार है।"†

सिपाहियों ने अभी तक काफ़ी धैर्य से काम लिया था। अब मेरठ की स्त्रियों के शब्द उनके दिलों में चुभ गए। रात को बारगों में गुप्त सभाएँ हुईं। निश्चय हुआ कि ३१ मई तक चुप बैठना असम्भव है।

९ मई की ही रात को सिपाहियों ने दिल्ली के नेताओं को खबर

---

* Kaye's *History of the Sepoy War*, book iv, chap. ii.

† J. C. Wilson's *Official Narrative*.

भेज दी कि हम कल या परसों तक दिल्ली पहुँच जायँगे। आप लोग तैयार रहें।*

अगले दिन १० मई को इतवार था। मेरठ शहर के अन्दर नगर-निवासी तथा सहस्रों सशस्त्र ग्राम-निवासी बाहर से आ आकर एकत्रित हो रहे थे। उधर छावनी में ज़ोरों की तैयारी जारी थी। सबसे पहले कुछ सवार जेलख़ाने की ओर गए। जेलर भी विप्लवकारियों के साथ मिले हुए थे। जेलख़ाने की दीवारें गिरा दी गईं। समस्त क़ैदियों की बेड़ियाँ काट दी गईं। हिन्दू और मुसलमान, पैदल, सवार और तोपख़ाने के सिपाही इधर उधर मेरठ के तमाम अङ्गरेज़ों का ख़ात्मा करने के लिए दौड़ पड़े। अनेक अङ्गरेज़ मारे गए। बँगलों, दफ़्तरों और होटलों को आग लगा दी गई। 'दीन! दीन!' 'हर हर महादेव!' और 'मारो फ़िरङ्गी को!' की आवाज़ें चारों ओर शहर और छावनी में गूँजने लगीं। नियत योजना के अनुसार तार काट दिए गए और रेलवे लाइन पर विप्लवकारियों का पहरा होगया। जो अङ्गरेज़ बचे उनमें से कुछ अस्तबलों और नालियों में छिप गए और शेष ने अपने हिन्दोस्तानी नौकरों के घरों में पनाह ली। चूँकि शहर और छावनी दोनों में बग़ावत की आग लगी हुई थी, इसलिए जो थोड़ी सी अङ्गरेज़ी सेना मेरठ में मौजूद थी वह भी कर्त्तव्य-विमूढ़ होगई। अनेक अङ्गरेज़, स्त्रियाँ और बच्चे बँगलों के अन्दर जल कर ख़त्म होगए।

---

* *The Red Pamphlet*, by G. B. Malleson.

१० तारीख ही की रात को मेरठ के विद्रोही सिपाही दिल्ली की ओर रवाना होगए।

दिल्ली

मालेसन, व्हाइट और विलसन, ये तीनों इतिहास-लेखक स्वीकार करते हैं कि मेरठ में विप्लव का समय से पहले प्रारम्भ हो जाना अङ्गरेज़ों के लिए बरकत और भारतीय विप्लवकारियों के लिए हानिकर साबित हुआ। मालेसन स्पष्ट लिखता है कि यदि पूर्व निश्चय के अनुसार एक साथ एक तारीख को समस्त भारत में विप्लव खड़ा हुआ होता, तो भारत में एक भी अङ्गरेज़ ज़िन्दा न बचता और भारत में अङ्गरेज़ी राज्य का उसी समय अन्त होगया होता।*

जे० सी० विलसन लिखता है कि वास्तव में मेरठ शहर की स्त्रियों ने वहाँ के सिपाहियों को समय से पहले भड़का कर अङ्गरेज़ी राज्य को ग़ारत होने से बचा लिया।† तथापि मेरठ में बग़ावत शुरू होते ही भारत में इस सिरे से उस सिरे तक एक प्रचण्ड आग भड़क उठी। दो हज़ार सशस्त्र हिन्दोस्तानी सवार मेरठ से चल कर ११ मई को आठ बजे सवेरे दिल्ली पहुँच गए। दिल्ली के नेताओं को उनके आने का पहले से पता था; किन्तु अङ्गरेज़ों को इसका गुमान तक न था। दिल्ली में कम्पनी की फ़ौज का अङ्गरेज़ अफ़सर करनल रिपले समाचार पाते ही

---

* Malleson, vol. v.

† J. C. Wilson's *Official Narrative.*

५४ नम्बर की देशी पलटन को जमा करके मेरठ के विद्रोहियों का मुक़ाबला करने के लिए बढ़ा। आमना सामना होते ही जिस समय मेरठ के सवारों ने 'अङ्गरेजी राज्य की जय !' और 'सम्राट बहादुरशाह की जय !' बोली, दिल्ली के सिपाही तुरन्त बजाय हमला करने के, आगे बढ़ कर अपने मेरठ के भाइयों के साथ गले मिलने लगे। करनल रिपले घबरा गया और तुरन्त वहीं पर मार डाला गया। दिल्ली की सेना के सब अङ्गरेज़ अफ़सर मार डाले गए। संयुक्त सेना ने काशमीरी दरवाज़े से दिल्ली में प्रवेश किया। दरियागञ्ज के अन्दर तमाम अङ्गरेज़ी बँगले जला दिए गए। कुछ अङ्गरेज़ बँगलों में जल गए और शेष तलवार के घाट उतार दिए गए। दिल्ली के क़िले पर तुरन्त विप्लवकारियों का क़ब्ज़ा हो गया। सम्राट बहादुरशाह और बेगम ज़ीनतमहल ने सोचा कि अब ३१ मई तक ठहरे रहना मूर्खता होगी।

इतने में मेरठ की पैदल सेना और तोपखाना भी दिल्ली पहुँच गया। मेरठ के तोपख़ाने ने लाल क़िले में घुसते ही सम्राट बहादुरशाह के नाम पर २१ तोपों की सलामी दी। चार्ल्स बॉल लिखता है कि विद्रोही सेना के भारतीय अफ़सरों ने सम्राट बहादुर शाह को जाकर सलाम किया और मेरठ का सब हाल कह सुनाया। इन अफ़सरों में हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल थे। मेटकाफ़ लिखता है कि सम्राट ने उनसे कहा कि—"मेरे पास कोई ख़ज़ाना नहीं है, मैं आप लोगों को तनख़्वाहें कहाँ से दूँगा।" सिपाहियों ने उत्तर दिया—"हम लोग हिन्दोस्तान भर के अङ्गरेज़ी ख़ज़ाने लूट
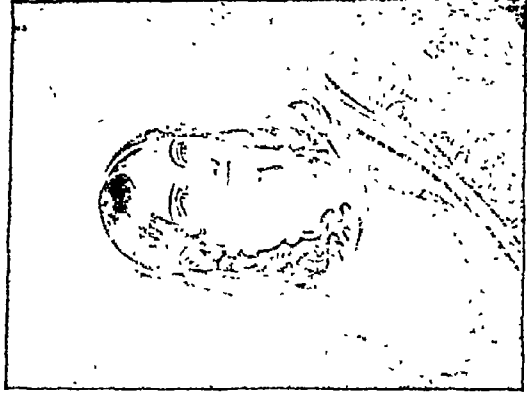
दिल्ली का अन्तिम सम्राट बहादुर शाह और बेगम ज़ीनत महल

[दिल्ली के शाही चित्रकार के बनाए हुए हाथी-दाँत के ऊपर दो चित्र—उस समय की भारतीय चित्रकला के दो सुन्दर नमूने । मॉडर्न रिव्यू, दिसम्बर १९११ से]

लूट कर आपके क़दमों पर लाकर डाल देंगे।" बूढ़े सम्राट ने विप्लव का नेतृत्व स्वीकार कर लिया और समस्त क़िला सम्राट की जयध्वनि से गूँज उठा !

दिल्ली के सहस्रों नगर-निवासी विप्लवकारियों के साथ मिल गए। जो अङ्गरेज़ जहाँ मिला उसे वहीं समाप्त कर दिया गया। लिखा है कि जिस समय मेरठ की फ़ौज दिल्ली पहुँची तो दिल्ली के सहस्रों मुसलमान उनके चारों तरफ़ जमा हो गए और दिल्ली के हिन्दू वाशिन्दे स्थान स्थान पर अपनी कुटियों में मेरठ से आए हुए सिपाहियों को ओलों और बताशों का शरबत पिलाने लगे। दिल्ली का अङ्गरेज़ी बैङ्क लूट लिया गया और जला दिया गया। अन्य अङ्गरेज़ी इमारतों को भी मिसमार कर दिया गया।

दिल्ली के अन्दर उस समय कोई गोरी पलटन न थी। क़िले के पास अङ्गरेज़ों का एक बहुत बड़ा मैगज़ीन था, जिसमें लगभग नौ लाख कारतूस, दस हज़ार बन्दूक़ और बहुत सा गोला बारूद था। विद्रोही सेना मैगज़ीन की ओर बढ़ी। उन्होंने दिल्ली सम्राट के नाम पर मैगज़ीन के अङ्गरेज़ अफ़सर लेफ़्टिनेण्ट विलोबी को सन्देशा भेजा कि मैगज़ीन हमारे हवाले कर दो। विलोबी ने इनकार किया। मैगज़ीन के भीतर नौ अङ्गरेज़ और कुछ हिन्दोस्तानी थे। हिन्दोस्तानियों ने जब लाल क़िले के ऊपर सम्राट बहादुरशाह का हरा और सुनहरा झण्डा फहराते हुए देखा, वे अपने भाइयों से आ मिले। यह हरा झण्डा ही सन् १८५७-५८ के विप्लव में समस्त भारत के अन्दर विप्लवकारियों का युद्ध का झण्डा था। नौ

अङ्गरेजों ने कुछ देर वीरता के साथ शत्रु का मुक़ाबला किया। अन्त में मैगज़ीन को बचा सकना असम्भव देख उन्होंने उसे आग लगा दी। लिखा है कि मैगज़ीन के उड़ने पर एक हज़ार तोपों के एक साथ छूटने का सा शब्द हुआ, जिससे सारी दिल्ली के मकान हिल गए। नौ अङ्गरेज़ वीर उसी आग के अन्दर समाप्त होगए, और उसी के साथ २५ हिन्दोस्तानी सिपाही तथा आस पास की गलियों में लगभग ३०० और नगर-निवासी टुकड़े टुकड़े होकर उड़ गए। बन्दूक़ें सब विप्लवकारियों के हाथ आईं और प्रत्येक सिपाही को चार चार बन्दूक़ें मिल गईं। छावनी के अन्दर सब अङ्गरेज अफ़सर मार डाले गए। शहर के अन्दर अङ्गरेज़ों का क़त्ले आम ११ मई से १६ मई तक जारी रहा। इस बीच सैकड़ों अङ्गरेज़ जान बचा कर दिल्ली से भाग निकले। अनेक ने अपने मुँह काले कर लिए और हिन्दोस्तानी फ़क़ीरों के से कपड़े पहन लिए। अनेक गरमी से और मार्ग की कठिनाई से मर गए और अनेक को आस पास के गाँव वालों ने ख़त्म कर दिया। कुछ को रहमदिल ग्राम वालों ने आश्रय दिया और अपने यहाँ छिपा लिया।

१६ मई सन् १८५७ को भारत की प्राचीन राजधानी दिल्ली पूरी तरह कम्पनी के हाथों से आज़ाद हो गई और सम्राट बहादुरशाह फिर से दिल्ली का क्रियात्मक सम्राट गिना जाने लगा। निस्सन्देह शेष भारत पर इसका बहुत ज़बरदस्त प्रभाव पड़ा। नाना साहब तथा विप्लव के अन्य नेताओं ने बहादुरशाह ही के नाम पर समस्त भारत के नरेशों, सैनिकों और प्रजा को अङ्गरेज़ों के विरुद्ध

युद्ध के लिए आह्वान किया था। बहादुरशाह का झण्डा ही उस समय भारत भर के विप्लवकारियों का झण्डा था।

यह एक बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि मेरठ, दिल्ली और उसके आस पास के ग्रामों में उन दिनों एक एक अङ्गरेज़ को चुन चुन कर मारा गया तथापि एक भी अङ्गरेज़ स्त्री का अपमान, विप्लवकारियों की ओर से नहीं किया गया। इसके प्रमाण में हम केवल कम्पनी की ख़ुफ़िया पुलिस के प्रधान अफ़सर आनरेबल सर विलियम म्योर के० सी० एस० आई० का बयान नीचे देते हैं। वह लिखता है कि—

"चाहे और कितना भी अत्याचार और रक्तपात क्यों न हुआ हो, जो क़िस्से अङ्गरेज़ स्त्रियों की बेइज़्ज़ती के फैल गए थे वे सब, जहाँ तक मैंने देखा और जाँच की, बिलकुल निराधार थे।"*

अलीगढ़

दिल्ली की स्वाधीनता की ख़बर बिजली की तरह सारे देश में फैल गई। अनेक स्थानों के नेता यह निश्चय न कर पाए कि हमें अपने यहाँ तुरन्त विप्लव शुरू कर देना चाहिए अथवा नियत तिथि का इन्तज़ार करना चाहिए; तथापि ११ मई से लेकर ३१ मई तक समस्त उत्तरीय भारत में जगह जगह विप्लव की आग भड़क उठी।

---

* "However much of cruelty and bloodshed there was, the tales which gained currency of dishonour to ladies were, so far as my observation and enquiries went, devoid of any satisfactory proof."—Hon. Sir Wm. Muir. K. C. S I., Head of the Intelligence Dept.

कम्पनी की ९ नम्बर पैदल पलटन अलीगढ़, मैनपुरी, इटावा और बुलन्दशहर में बँटी हुई थी। मई के शुरू में एक ब्राह्मण प्रचारक बुलन्दशहर की छावनी में सिपाहियों को विप्लव का उपदेश देने के लिए पहुँचा। पलटन के तीन सिपाहियों ने मुखबिरी करके उस ब्राह्मण को पकड़वा दिया। पलटन का मुख्य स्थान अलीगढ़ था; उस ब्राह्मण को फाँसी के लिए अलीगढ़ लाया गया। २० मई की शाम को समस्त देशी सिपाहियों के सामने उसे फाँसी पर लटका दिया गया। ब्राह्मण को फाँसी पर लटका हुआ देख कर सिपाहियों का खून खौलने लगा। लिखा है कि तुरन्त एक सिपाही क़तार से निकल कर अपनी तलवार से उसके शरीर की ओर इशारा करके चिल्लाने लगा—"भाइयो! यह शहीद हमारे लिए खून का स्नान कर रहा है!" सिपाहियों के लिए अब ३१ तारीख़ का इन्तज़ार कर सकना असम्भव था। तुरन्त समस्त ९ नम्बर पलटन बिगड़ खड़ी हुई। किन्तु इस पलटन के सिपाहियों ने शान्ति के साथ अपने अङ्गरेज़ अफ़सरों से कहा कि यदि आप लोग अपनी जान बचाना चाहते हैं तो तुरन्त अलीगढ़ छोड़ दीजिए। उसी समय अलीगढ़ के समस्त अङ्गरेज़ अपनी स्त्रियों और बच्चों सहित अलीगढ़ से चल दिए और २० तारीख़ की आधी रात से पहले स्वाधीनता का हरा झण्डा अलीगढ़ के ऊपर फहराने लगा। सिपाही बहुत सा खज़ाना और अस्त्र शस्त्र लेकर दिल्ली की ओर रवाना होगए।

अलीगढ़ का यह समाचार २२ तारीख़ को मैनपुरी पहुँचा।

उसी दिन वहाँ के सिपाही भी बिगड़ खड़े हुए। इन लोगों ने भी तमाम अङ्गरेज़ों की जान बख्श दी और ठीक अलीगढ़ के सिपाहियों के समान गोला बारूद और शस्त्र ऊँटों पर लाद कर २३ मई को राजधानी की ओर रवाना होगए। स्वाधीनता का झण्डा मैनपुरी के ऊपर भी फहराने लगा।

यही हालत इटावे की हुई। इटावे के कलेक्टर मि० ह्यूम ने पुलिस और जनता से मदद चाही। किन्तु इन दोनों ने खुले विप्लव-कारियों का साथ दिया। असिस्टेण्ट मैजिस्ट्रेट डेनियल लड़ाई में मारा गया। २३ मई को हिन्दोस्तानी सिपाहियों ने खज़ाने को लूट लिया, जेलखाने को तोड़ दिया, अङ्गरेज़ों को अपने बच्चों और स्त्रियों समेत भाग जाने का मौक़ा दिया। लिखा है कि ह्यूम साहब एक भारतीय स्त्री का रूप धारण करके इटावे से निकल भागे।* शहर में स्वाधीनता का ढिंढोरा पीट दिया गया। इस प्रकार ९ नम्बर पलटन के समस्त सिपाही अलीगढ़, बुलन्दशहर, मैनपुरी, इटावा और आस पास के इलाक़े को स्वाधीन करके कम्पनी के खज़ाने को लूटते हुए, अङ्गरेज़ों की जान बख्शते हुए, रसद और हथियार साथ लेकर दिल्ली की ओर चल दिए। इन नगरों के शासन का प्रबन्ध नगर-निवासियों को सौंप दिया गया।

नसीराबाद

अजमेर के निकट नसीराबाद में कम्पनी की एक पलटन देशी

---

* *The Red Pamphlet*, Part ii, p. 70.

पैदल की, एक कम्पनी गोरों की और कुछ तोपखाना रहा करता था। मेरठ के सिपाही इस समय दूर दूर तक फैल गए थे जिनमें से कुछ नसीराबाद में भी पहुँचे। २८ मई को वहाँ की हिन्दोस्तानी सेना बिगड़ी। गोरों की कम्पनी से उनका संग्राम हुआ। कुछ अङ्गरेज़ मारे गए और शेष जान बचा कर भाग गए। देशी सिपाहियों के नेता दिल्ली सम्राट के नाम पर नगर के शासन का प्रबन्ध करके, खजाना, हथियार और कई हज़ार सिपाहियों को साथ लेकर दिल्ली की ओर चल दिए।

रुहेलखण्ड

रुहेलखण्ड का प्रान्त कुछ दिन पूर्व ही रुहेला पठानों के स्वाधीन शासन में रह चुका था। बरेली वहाँ की राजधानी थी। अन्तिम रुहेला नवाब का वंशज ख़ानबहादुर ख़ाँ इस समय कम्पनी के अधीन जजी के पद पर नियुक्त था। यह ख़ानबहादुर ख़ाँ ही रुहेलखण्ड में विप्लव का मुख्य नेता था।

बरेली में कम्पनी की ओर से ८ नम्बर देशी सवार, १८ और ६८ नम्बर पैदल पलटनें और कुछ तोपख़ाना रहता था। जनरल सिबल्ड वहाँ का सेनापति था। मेरठ के विप्लव की ख़बर १४ मई को बरेली पहुँची। मेरठ के विप्लव के बाद ही अङ्गरेज़ कमाण्डर-इन-चीफ़ ने हिन्दोस्तान भर की सेनाओं में इस बात का एलान करा दिया था कि नए कारतूस बन्द कर दिए गए और सब सिपाही पुराने कारतूसों का ही उपयोग करें। किन्तु विप्लव पर इसका अब

कोई असर न हो सकता था। देहली से निम्न-लिखित पत्र रुहेल-खण्ड की पलटनों के नाम पहुँचा—

"दिल्ली की सेना के सेनापति की ओर से बरेली और मुरादाबाद की पलटनों के सेनापतियों के नाम, हार्दिक आलिङ्गन! भाइयो! दिल्ली में अङ्गरेज़ों के साथ जङ्ग हो रही है। ईश्वर की कृपा से हमने अङ्गरेज़ों को जो पहली पराजय दी है उससे वे इतने घबरा गए हैं जितने किसी दूसरे समय में दस पराजयों से भी न घबराते। अगणित हिन्दोस्तानी बहादुर दिल्ली में आ आ कर जमा हो रहे हैं। ऐसे मौक़े पर अगर आप वहाँ पर खाना खा रहे हैं तो हाथ यहाँ आकर धोइए। शाहों का बादशाह, जहाँपनाह, हमारा दिल्ली सम्राट आपका बड़ा स्वागत करेगा और आपको सेवाओं का सिला देगा। हमारे कान इस तरह से आपकी ओर लगे हुए हैं जिस तरह रोज़ेदारों के कान अज़ान देने वाले की पुकार की ओर लगे रहते हैं। हम आपकी तोपों की आवाज़ सुनने के लिए बेचैन हैं। हमारी आँखें आपके दीदार की प्यासी उसी तरह सड़क पर लगी हुई हैं जिस तरह क़ासिद की आँखें लगी रहती हैं। आइए! आपका फ़र्ज़ है कि तुरन्त आइए। हमारा घर आपका घर है! भाइयो! आइए, बिना आपकी आमद की बहार के गुलाब में फूल नहीं आ सकते! बिना बारिश के कली नहीं खिल सकती! बिना दूध के बालक नहीं जी सकता!"*

तथापि बरेली के नेता ख़ानबहादुर ख़ाँ ने पूर्व योजना के अनुसार ३१ मई तक प्रतीक्षा करने का निश्चय किया। ख़ान-बहादुर ख़ाँ और बरेली की समस्त देशी पलटनों का व्यवहार

* *Narrative of the Indian Revolt*, p. 33.

अङ्गरेज़ों के साथ इतना सुन्दर रहा कि अङ्गरेज़ों को अन्त समय तक उनकी वफ़ादारी में सन्देह न होने पाया।

ठीक ३१ मई को सवेरे सब से पहले कप्तान ब्राउनलो का बँगला जलाया गया। ठीक ग्यारह बजे दोपहर को अचानक एक तोप छुटी। यही विप्लव के शुरू होने का चिन्ह था। बरेली का सङ्गठन बड़ा अच्छा था। ६८ नम्बर पलटन ने अङ्गरेज़ों के बँगलों में आग लगाना और अङ्गरेज़ों को मारना शुरू कर दिया। अङ्गरेज़ नैनीताल की ओर भागने लगे। जनरल सिबल्ड और अनेक अन्य अफ़सर मारे गए। केवल ३२ अङ्गरेज़ जान बचा कर नैनीताल पहुँचे। ६ घण्टे के अन्दर बरेली के ऊपर स्वाधीनता का हरा झण्डा फहराने लगा। जिस समय अङ्गरेज़ी झण्डा उतार कर उसकी जगह हरा झण्डा लगाया गया उसी समय तोपख़ाने के सूबेदार बख्त ख़ाँ ने विप्लवकारी सेनाओं का प्रधान सेनापतित्व ग्रहण किया। इतिहास-लेखक चार्ल्स बॉल लिखता है कि बख्त ख़ाँ ने सिपाहियों को उपदेश दिया कि स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद तुम्हें शान्ति और न्याय का व्यवहार करना चाहिए। समस्त प्रजा ने ख़ानबहादुर ख़ाँ को सम्राट की ओर से रुहेलखण्ड का सूबेदार स्वीकार किया। उसी दिन सूर्यास्त से पहले पहले ख़ान-बहादुर ख़ाँ की ओर से एक दूत सम्राट को रुहेलखण्ड की स्वाधी-नता की सूचना देने के लिए दिल्ली की ओर रवाना होगया।

बरेली से ४७ मील दूर शाहजहाँपुर में २८ नम्बर पैदल पलटन

थी। ठीक बरेली ही के समान शाहजहाँपुर भी इस पलटन के प्रयत्नों द्वारा ३१ मई की शाम तक स्वाधीन हो गया।

बरेली के दूसरी ओर मुरादाबाद है। वहाँ पर २९ नम्बर देशी पलटन थी। १८ मई को अङ्गरेज़ अफ़सरों को पता चला कि मेरठ के कुछ विद्रोही सिपाही मुरादाबाद के निकट आकर ठहरे हुए हैं। रात के समय २९ नम्बर के सिपाहियों को मेरठ के सिपाहियों पर हमला करने का हुकुम मिला। सिपाहियों ने उन पर हमला किया। लड़ाई के बाद इन सिपाहियों ने अपने अफ़सरों से कह दिया कि सिवाय एक के बाक़ी सब मेरठ वाले भाग गए। कुछ दिनों बाद पता चला कि ये सब मेरठ के सिपाही मुरादाबाद के सिपाहियों के साथ बारगों में आ गए और रात को खाने पीने और बातचीत के बाद वहीं आनन्द के साथ सोए।

३१ मई को सवेरे २९ नम्बर पलटन के सब सिपाही परेड पर जमा हुए। उन्होंने अपने अङ्गरेज़ अफ़सरों को नोटिस दिया कि—"कम्पनी का राज्य समाप्त होगया। आप सब लोग दो घण्टे के अन्दर मुरादाबाद छोड़ दीजिए, नहीं तो आप सब को मार डाला जायगा।" मुरादाबाद की पुलिस और जनता भी विप्लव के साथ थी। कुछ अङ्गरेज़, जिनमें वहाँ का जज, कलेक्टर, और सिविल-सर्जन भी शामिल थे, अपने बाल बच्चों को लेकर मुरादाबाद से भाग निकले। मुरादाबाद का कमिश्नर पॉवेल और उसके कुछ अङ्गरेज़ साथी मुसलमान होगए। उनकी जानें बख्श दी गईं। सिपाहियों ने खज़ाने और तमाम सरकारी माल पर क़ब्ज़ा कर

लिया। सूर्यास्त से पहले पहले मुरादाबाद के ऊपर भी हरा झण्डा फहराने लगा।

बरेली, शाहजहाँपुर और मुरादाबाद के अतिरिक्त रुहेलखण्ड में एक और बड़ा शहर बदायूँ नामक है। पहली जून की शाम को बदायूँ में विप्लव प्रारम्भ हुआ। सिपाहियों, मुख्य मुख्य नगर-निवासियों और पुलिस ने मिल कर ढिंढोरा पिटवा दिया कि अङ्ग-रेज़ी राज्य का अन्त होगया और सूबेदार ख़ानबहादुर ख़ाँ का शासन शुरू होगया। बदायूँ के अङ्गरेज़ जङ्गलों में भाग गए। उनमें से अनेक बड़े कष्टों के साथ जङ्गलों में मरे। इस प्रकार समस्त रुहेलखण्ड दो दिन के अन्दर कम्पनी के शासन से निकल गया। ख़ानबहादुर ख़ाँ ने एक नई फ़ौज बना कर सारे रुहेलखण्ड में शान्ति और सुशासन स्थापित किया। अधिकांश महकमों के हिन्दो-स्तानी मुलाज़िम पूर्ववत् बहाल रक्खे गए और लगान दिल्ली के सम्राट के नाम पर वसूल किया जाने लगा। ख़ानबहादुर ख़ाँ ने अपने हाथ से रुहेलखण्ड की स्वाधीनता का सब हाल लिख कर सम्राट को भेजा।

एक एलान लिख कर उसने तमाम रुहेलखण्ड में बँटवाया, जिसके मुख्य वाक्य ये थे—

"हिन्दोस्तान के रहने वालो! स्वराज्य का पाक दिन, जिसका बहुत अरसे से इन्तज़ार था, आ पहुँचा है! आप लोग इसे स्वीकार करेंगे या इससे इनकार करेंगे? आप इस ज़बरदस्त मौक़े से फ़ायदा उठाएँगे या इसे हाथ से जाने देंगे? हिन्दू और मुसलमान भाइयो! आप सब को मालूम

होना चाहिए कि यदि ये अङ्गरेज़ हिन्दोस्तान में रह गए तो मैं सब को क़त्ल कर देंगे और आप लोगों के मज़हब को मिटा देंगे! हिन्दोस्तान के बाशिन्दे इतने दिनों तक अङ्गरेज़ों के धोखे में आते रहे, और अपनी ही तलवारों से अपने गले काटते रहे हैं। इसलिए अब हमें मुल्क-फ़रोशी के अपने इस गुनाह का प्रायश्चित्त करना चाहिए! अङ्गरेज़ अब भी अपनी पुरानी दग़ाबाज़ी से काम लेंगे। वे हिन्दुओं को मुसलमानों के विरुद्ध और मुसलमानों को हिन्दुओं के विरुद्ध उभारने की कोशिश करेंगे। किन्तु हिन्दू भाइयो! उनके जालों में न पड़ना। हमें अपने होशियार हिन्दू भाइयों को यह बताने की ज़रूरत नहीं है कि अङ्गरेज़ कभी अपने वादे पूरे नहीं करते। ये लोग चाल और दग़ाबाज़ी में ताक़ हैं! ये हमेशा से सिवाय अपने मज़हब के और सब मज़हबों को पृथ्वी से मिटाने की कोशिश करते रहे हैं। क्या उन्होंने गोद लिए हुए बच्चों के हक़ नहीं छीन लिए हैं? क्या उन्होंने हमारे नरेशों के राज्य और मुल्क नहीं हड़प लिए हैं? नागपुर का राज्य किसने ले लिया? लखनऊ की बादशाहत किसने छीन ली? हिन्दू और मुसलमान दोनों को पैरों तले किसने रौंदा? मुसलमानो! यदि तुम क़ुरान की इज़्ज़त करते हो तो, और हिन्दुओ! यदि तुम गो माता की इज़्ज़त करते हो तो, अब अपने छोटे छोटे भेदों को भूल जाओ और इस पाक जङ्ग में मिल जाओ! युद्ध के मैदान में कूद कर एक झण्डे के नीचे लड़ो और ख़ून की नदियों से अङ्गरेज़ों का नाम हिन्दोस्तान से धो डालो! × × × गाय का मारा जाना बन्द कर दिया जाय। इस पाक जङ्ग में जो आदमी स्वयं लड़ेगा अथवा जो धन से लड़ने वालों की सहायता करेगा दोनों को इस लोक में और परलोक में दोनों जगह निजात मिलेगी! किन्तु यदि कोई इस मुल्की जङ्ग की मुख़ालफ़त करेगा तो

वह अपने सर पर कुल्हाड़ी मारेगा और आत्महत्या के पाप का भागी होगा !"

बरेली, शाहजहाँपुर, मुरादाबाद और बदायूँ से कम्पनी की समस्त हिन्दोस्तानी सेना कम्पनी के खज़ानों, तोपों तथा अन्य हथियारों सहित बख्त खाँ के नेतृत्व में राजधानी दिल्ली की ओर रवाना होगई।

खानबहादुर खाँ और बख्त खाँ दोनों की गणना उस विप्लव के सब से अधिक योग्य नेताओं में की जाती है।

रुहेलखण्ड के बाद हमें लखनऊ और कानपुर को कुछ देर के लिए बीच में छोड़ कर बनारस और इलाहाबाद की ओर दृष्टि डालनी होगी।

बनारस

बनारस में कम्पनी की ३७ नम्बर पैदल पलटन, एक लुधियाने की सिख पलटन और एक सवार पलटन थी। वहाँ का तोपखाना गोरों के हाथों में था। आगरे से कलकत्ते तक उस समय केवल दानापुर में एक पूरी गोरी रेजिमेण्ट मौजूद थी। अर्थात् यदि एक साथ सब जगह विप्लव हुआ होता तो अङ्गरेज़ों के लिए कम से कम उत्तरीय भारत में ठहर सकना सर्वथा असम्भव था।

३१ मई को बनारस की बारगों में आग लगी। २ जून को गोरखपुर और आज़मगढ़ के ख़ज़ानों से सात लाख रुपए नक़द बनारस के लिए आ रहे थे। उसी दिन रात को १७ नम्बर पलटन ने, जो आज़मगढ़ में थी, विप्लव प्रारम्भ कर दिया। केवल दो को

छोड़ कर शेप सब अङ्गरेजों की उन्होंने जान बख्श दी। यहाँ तक कि उनके और उनके बाल बच्चों के बनारस जाने के लिए गाड़ियों तक का प्रबन्ध कर दिया। किन्तु सात लाख के उस खज़ाने पर, कम्पनी के गोले बारूद पर और जेलखाने, दफ़्तरों इत्यादि पर विप्लवकारियों ने क़ब्ज़ा कर लिया। आज़मगढ़ की पुलिस ने सिपाहियों का पूरा साथ दिया। आज़मगढ़ के नगर पर उसी रात को हरा झण्डा फहराने लगा।

इस समय तक गवरनर-जनरल लॉर्ड कैनिङ्ग ने मेरठ के विद्रोह और दिल्ली की स्वाधीनता का समाचार पाते ही बम्बई, मद्रास और रङ्गून से मँगा कर बहुत सी गोरी सेना बङ्गाल में जमा कर ली। ठीक उन दिनों ईरान के साथ अङ्गरेजों का युद्ध समाप्त हुआ था, और चीन के ऊपर अङ्गरेज हमला करने वाले थे। भारत के विप्लव के कारण अङ्गरेजों को चीन पर हमला करने का विचार छोड़ देना पड़ा। एक विशाल गोरी सेना ईरान से चीन की ओर जा रही थी। लॉर्ड कैनिङ्ग ने इस समस्त सेना को भारत में रोक लिया। इसमें से बहुत सी सेना लेकर सुप्रसिद्ध जनरल नील बनारस पहुँचा। बनारस के अङ्गरेजों की हिम्मत बँध गई। ४ जून को आज़मगढ़ का समाचार बनारस पहुँचा। उसी दिन तीसरे पहर बनारस के अङ्गरेज अफ़सरों ने देशी सिपाहियों से हथियार रखा लेने का निश्चय किया।

परेड के मैदान में जिस समय देशी सिपाहियों को हथियार रख देने की आज्ञा दी गई, वे बजाय हथियार रख देने के मैगज़ीन

पर और अङ्गरेज़ अफ़सरों पर टूट पड़े। तुरन्त सिख पलटन उनके मुक़ाबले के लिए आ खड़ी हुई। अभी लड़ाई शुरू ही हुई थी कि अङ्गरेज़ी तोपख़ाने ने आकर सब पर गोले बरसाने शुरू किए। यद्यपि सिख अङ्गरेज़ों का साथ दे रहे थे, तथापि उस समय की घबराहट में तोपख़ाने के अङ्गरेज़ अफ़सर हिन्दू और सिखों में तमीज़ न कर सके। उन्होंने दोनों पर गोले बरसाने शुरू किए। विवश होकर सिखों को विप्लवकारियों का साथ देना पड़ा। सन् ५७-५८ के तमाम विप्लव में शायद यही एक मात्र अवसर था जब कि सिख सेना ने हिन्दू और मुसलमानों का साथ दिया।

बनारस की जनता विप्लवकारियों के साथ थी। किन्तु सिखों ने, वहाँ के कई रईसों ने और राजा चेतसिंह के वंशज बनारस के उपाधिधारी राजा ने उस समय अङ्गरेज़ों को पूरी सहायता दी। विप्लवकारियों ने हार स्वीकार न की। वे नगर को छोड़ कर लड़ते लड़ते आस पास के प्रान्त में फैल गए।

५ जून को जौनपुर में विप्लव प्रारम्भ हुआ। कई अङ्गरेज़ मारे गए। शेष को नगर छोड़ने की आज्ञा दे दी गई। विप्लवकारियों ने ख़ज़ाने पर क़ब्ज़ा कर लिया। जौनपुर के बचे हुए अङ्गरेज़ किश्तियों में बैठ कर बनारस की ओर चल दिए।

अपने अपने नगरों को स्वाधीन करने के बाद आज़मगढ़ और जौनपुर दोनों जगह के सिपाही फ़ैज़ाबाद की ओर चल दिए। दोनों नगरों के ऊपर हरा झण्डा फहराने लगा। यद्यपि बनारस नगर पर कम्पनी का क़ब्ज़ा रहा, तथापि आस पास का अधिकांश इलाक़ा

विप्लवकारियों के कब्जे में आ गया। जगह जगह अङ्गरेज़ों के नियुक्त किए हुए नए जमींदारों को हटा कर पुराने पैतृक जमींदार उनकी जगह नियुक्त कर दिए गए। जगह जगह अङ्गरेज़ी अदालतों, अङ्गरेज़ी जेलों और अङ्गरेज़ी दफ़्तरों का ख़ात्मा हो गया। तार काट डाले गए, रेलें उखाड़ कर फेंक दी गईं, गाँव गाँव में हरा झण्डा लिए हुए स्वयंसेवक पहरा देने लगे।

बनारस के प्रान्त भर में विप्लवकारियों ने एक भी अङ्गरेज़ स्त्री को नहीं मारा और जिन अङ्गरेज़ों ने हथियार रख दिए उन्हें शान्ति के साथ स्वयं गाड़ियों में बैठा कर नगर से चले जाने की इजाज़त दे दी।

इलाहाबाद

विप्लवकारियों और अङ्गरेज़ों दोनों की दृष्टि से इलाहाबाद का नगर बनारस की अपेक्षा कहीं अधिक महत्व का था। कलकत्ते से पश्चिमोत्तर प्रदेशों को जाने वाली सब सड़कें इलाहाबाद में मिलती थीं। इलाहाबाद का क़िला भारत के ज़बरदस्त क़िलों में से था। उसमें गोले बारूद और अस्त्र शस्त्रों का एक बहुत बड़ा संग्रह था। लिखा है कि प्रयाग के पण्डे आस पास की हिन्दू जनता के अन्दर स्वाधीनता के युद्ध का प्रचार करने में बहुत बड़ा भाग ले रहे थे। मुसलमानों में हिन्दुओं की अपेक्षा भी कहीं अधिक जोश था। चार्ल्स बॉल लिखता है कि अङ्गरेज़ सरकार के अधिकांश बड़े और छोटे देशी मुलाज़िम इस सङ्गठन में शामिल थे।

जिस समय मेरठ का समाचार इलाहाबाद पहुँचा, इलाहाबाद

में एक भी अङ्गरेज़ सिपाही न था, वहाँ ६ नम्बर देशी पलटन, लगभग २०० सिख सिपाही और मुट्ठी भर अङ्गरेज़ अफ़सर थे। अवध से देशी सवारों की एक पलटन और बुला ली गई। ६ नम्बर पलटन ने अपने अङ्गरेज़ अफ़सरों को इतनी सुन्दरता के साथ बहकाए रक्खा कि अफ़सरों को अन्त समय तक उन पर सन्देह न हो पाया। दिल्ली का समाचार पाकर उन्होंने अपने अफ़सरों से कहा—"आप हमें दिल्ली भेज दीजिए, हम विद्रोहियों के टुकड़े टुकड़े कर डालेंगे।" इस पर गवरनर-जनरल लॉर्ड कैनिङ्ग तक ने ६ नम्बर पलटन को शाबासी दी। लिखा है कि ६ जून को जब उनके अङ्गरेज़ अफ़सर बारगों में उनसे मिलने के लिए गए तो कुछ सिपाहियों ने अपनी ख़ैरख़ाही दर्शाने के लिए लपक कर उन्हें छाती से लगाया और उनके दोनों गालों को चूमा। किन्तु वही रात उनके विद्रोह के लिए नियत थी। ६ नम्बर की बारगें क़िले से बाहर थीं। जिस वक़्त अङ्गरेज़ अफ़सर खाना खा रहे थे, सिपाहियों की बिगुल बजी। अनेक अङ्गरेज़ मारे गए। शेष क़िले में जाकर छिप गए। अङ्गरेज़ों ने सवार पलटन को अपनी मदद के लिए बुलाया। सवार जमा हुए। किन्तु बजाय विप्लवकारियों पर हमला करने के वे मैदान में पहुँचते ही उनके साथ मिल गए। दोनों पलटनों के अधिकांश अफ़सर मारे गए। अङ्गरेज़ों के बँगलों को आग लगा दी गई।

सिख पलटन इस समय क़िले के अन्दर थी। यदि क़िले के सिख उस समय विप्लवकारियों का साथ दे जाते तो आध घण्टे के अन्दर इलाहाबाद का क़िला और उसके अन्दर का तमाम सामान विप्लव-

कारियों के हाथों में आ जाता। किन्तु ठीक उस सङ्कट के समय सिखों ने अङ्गरेज़ों का साथ दिया। अङ्गरेज़ी झण्डा इलाहाबाद के क़िले पर फहराता रहा।

शहर के लोगों ने विप्लवकारी सिपाहियों का पूरा साथ दिया। अङ्गरेज़ों के सब मकान जला दिए गए। जेलख़ाने के क़ैदी रिहा कर दिए गए। खज़ाना लूट लिया गया। रेल और तार तोड़ डाले गए। इलाहाबाद के खज़ाने में विप्लवकारियों को लगभग तीस लाख रुपए मिले। ७ तारीख़ की शाम को शहर और छावनी में हरे झण्डे का जुलूस निकाला गया। नगर-निवासियों और सिपाहियों ने झण्डे को सलामी दी। शहर की कोतवाली के ऊपर हरा झण्डा फहराने लगा।

इलाहाबाद के आस पास के सैकड़ों गाँवों में हिन्दू और मुसलमान रैयत और ज़मींदार सब ने मिल कर अङ्गरेज़ी राज्य के ख़ात्मे का एलान कर दिया और इलाहाबाद के समान एक एक गाँव के ऊपर हरा झण्डा फहराने लगा। जगह जगह अङ्गरेज़ों के नियुक्त किए हुए नए ज़मींदार हटा दिए गए और पुराने ख़ानदानी ज़मींदार उनकी जगह नियुक्त कर दिए गए। लिखा है कि नगर के अन्दर दस दस बारह बारह बरस के लड़के हरे झण्डे हाथों में लेकर जुलूस बना कर निकलने लगे। इतिहास-लेखक सर जॉन के लिखता है—

"न केवल गङ्गा के पार के इलाक़ों में ही, बल्कि गङ्गा और जमना के बीच के इलाक़े में भी देहाती जनता बिगड़ खड़ी हुई। × × × शीघ्र ही

हिन्दू अथवा मुसलमान एक भी मनुष्य न बचा जो हमारे विरुद्ध न हो गया हो।"*

इलाहाबाद के स्वाधीन होने के बाद दो चार दिन थोड़ी बहुत अराजकता रही। उसके बाद शहर के लोगों और आस पास के कुछ ज़मींदारों ने मिल कर मौलवी लियाक़तअली नामक एक योग्य मनुष्य को सम्राट बहादुरशाह की ओर से इलाहाबाद के इलाक़े का सूबेदार नियुक्त किया। लियाक़तअली एक असाधारण योग्यता का मनुष्य था। उसके चरित्र की पवित्रता के कारण सब लोग उसका आदर करते थे। उसने खुसरो बाग़ को अपना केन्द्र बनाया, शहर में पूरी शान्ति स्थापन कर दी और दिल्ली सम्राट को बराबर अपने यहाँ के हालात की सूचना देता रहा। इसके बाद मौलवी लियाक़तअली ने क़िले पर क़ब्ज़ा करने का प्रयत्न किया। क़िले के भीतर के सिखों को उसने स्वाधीनता के युद्ध में भाग लेने के लिए निमन्त्रित किया। किन्तु सिखों पर इसका कोई असर न हुआ।

यद्यपि विप्लवकारियों के सब से अधिक महत्वपूर्ण कृत्यों को बयान करना अभी बाक़ी है, तथापि इस समय से ही अङ्गरेज़ों की ओर से प्रतिकार की आग भड़कनी शुरू हो गई।
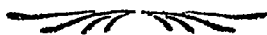
* "For not only in the districts beyond the Ganges but in those lying between the two rivers, the rural population had risen . . , and, soon there was scarcely a man of either faith who was not arrauged against."—Kaye's *Indian Mutiny,* vol. ii, page 195.

छयालीसवाँ अध्याय

प्रतिकार का प्रारम्भ

जनरल नील के अत्याचार

र्ड कैनिङ्ग एक विशाल सेना सहित, जिसमें अधिकांश गोरे, कुछ सिख और कुछ मद्रासी थे, जनरल नील को बनारस की ओर रवाना कर चुका था। बनारस का नगर अङ्गरेजों के हाथों में था। जनरल नील के बनारस पहुँचते ही पहले नगर में बड़ी बड़ी गिरफ़्तारियाँ हुईं। इसके बाद जनरल नील ने आस पास के इलाक़े को फिर से विजय करने के लिए अङ्गरेजों और सिख सिपाहियों के कई अलग अलग दस्ते बनाए। इस अवसर पर जनरल नील की आज्ञा से उसकी सेना ने हिन्दोस्तानी प्रजा के ऊपर जो भयङ्कर अत्याचार किए उन्हें हम अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों ही की पुस्तकों से लेकर इस स्थान पर दे रहे हैं।

जनरल नील के सिपाही एक एक गाँव में घुसते थे। जितने मनुष्य उन्हें मार्ग में मिलते थे उन्हें वे बिना किसी तमीज़ के तलवार

के घाट उतार देते थे या गोली से उड़ा देते थे और या फाँसी पर लटका देते थे। स्थान स्थान पर अनेक फाँसियाँ खड़ी की गईं जिन पर चौबीस चौबीस घण्टे बराबर काम जारी रहता था। जब इनसे भी काम न चला तो अङ्गरेज़ अफ़सरों ने दरख़्तों की शाखों से फाँसी का काम लेना शुरू किया। जिस मनुष्य को फाँसी देनी होती थी उसे प्रायः हाथी पर बैठाया जाता था। हाथी को किसी ऊँची डाल के पास ले जाया जाता था। उस मनुष्य की गरदन रस्सी से डाल के साथ बाँध दी जाती थी। फिर हाथी को हटा लिया जाता था और लटकती हुई लाश को उसी जगह छोड़ दिया जाता था।*

के और मालेसन ने अपने विप्लव के इतिहास में लिखा है कि जो लोग फाँसी पर लटकाए जाते थे, उनके हाथों और पैरों को विनोद की ग़रज़ से अङ्गरेज़ी के अङ्कों आठ और नौ (8 & 9) की शकल में बाँध दिया जाता था।† जब ये उपाय भी काफ़ी दिखाई न दिए तो अङ्गरेज़ अफ़सरों ने गाँव के गाँव जलाने शुरू कर दिए। गाँव के बाहर तोपें लगा दी जाती थीं और समस्त पुरुषों, स्त्रियों, बच्चों और पशुओं समेत गाँव को आग लगा दी जाती थी। अनेक अङ्गरेज़ अफ़सरों ने बड़े उत्साह के साथ इन हृदय-विदारक दृश्यों को अपने मित्रों और सम्बन्धियों के नाम पत्रों में बयान

---

* *Narrative of the Indian Revolt*, p. 69.

† Kaye and Malleson's *History of the Indian Mutiny*, vol. ii, p. 177.

किया है। आग इतनी होशियारी से लगाई जाती थी कि एक भी गाँव वाले को बचने का मौक़ा न मिल सके। चार्ल्स बॉल अपने इतिहास में लिखता है कि माताएँ अपने दुधमुँहे बच्चों समेत और अगणित बूढ़े पुरुष और स्त्रियाँ जो अपनी जगह से हिल न सकते थे, बिछौनों के अन्दर जला कर ख़ाक कर दिए गए।*

एक अङ्गरेज़ अपने एक पत्र में लिखता है—"हमने एक बड़े गाँव को आग लगाई जिसमें लोग भरे हुए थे। हमने उन्हें घेर-लिया और जब वे आग की लपटों में से निकल कर भागने लगे तो हमने उन्हें गोलियों से उड़ा दिया !"†

अनेक स्थानों पर विप्लवकारियों ने अङ्गरेज़ मर्द, औरत और बच्चों की जानें बख़्श दीं। असंख्य ग्रामों में लोगों ने भागे हुए अङ्गरेज़ों को अपने घरों में आश्रय दिया। तथापि मेरठ, दिल्ली आदिक स्थानों में अङ्गरेज़ बच्चों और स्त्रियों का संहार विप्लव-कारियों के चरित्र पर सदा के लिए एक कलङ्क रहेगा। साथ ही यह लिखते हुए दुख होता है कि निर्दोष जनता के संहार में सन् ५७ के अङ्गरेज़ विप्लवकारियों से कहीं आगे बढ़ गए ! यहाँ तक कि जनरल नील ही के अत्याचारों के विषय में एक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक लज्जित होकर लिखता है—

---

* Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. i, pp. 243-44.

† "We set fire to a large village which was full of them. We surrounded them, and when they came rushing out of the flames, we shot them!"—Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. i, pp. 243-44.

"अच्छा यह है कि जनरल नील के प्रतिकार के विषय में कुछ लिखा ही न जाय !"*

इतिहास-लेखक सर जॉन के लिखता है—

"फ़ौजी और सिविल दोनों तरह के अङ्गरेज़ अफ़सर अपनी अपनी ख़ूनी अदालतें लगा रहे थे, अथवा बिना किसी तरह के मुक़दमे का ढोंग रचे और बिना मर्द, औरत या छोटे बड़े का विचार किए भारतवासियों का संहार कर रहे थे। इसके बाद ख़ून की प्यास और भी अधिक भड़की। भारत के गवरनर-जनरल ने जो पत्र इङ्गलिस्तान भेजे उनमें हमारी ब्रिटिश पार्लिमेण्ट के काग़ज़ों में यह बात दर्ज है कि 'बूढ़ी औरतों और बच्चों का उसी तरह वध किया गया है जिस प्रकार उन लोगों का जो विप्लव के दोषी थे।' इन लोगों को सोच समझ कर फाँसी नहीं दी गई, बल्कि उन्हें उनके गाँव के अन्दर जला कर मार डाला गया, शायद कहीं कहीं उन्हें इत्तफ़ाक़िया गोली से भी उड़ा दिया गया। अङ्गरेज़ों को गर्व के साथ यह कहते हुए अथवा पत्रों में लिखते हुए भी सङ्कोच न हुआ कि हमने एक भी हिन्दोस्तानी को नहीं छोड़ा और काले हिन्दोस्तानियों को गोलियों से उड़ाने में हमें बड़ा विनोद और आश्चर्यजनक आनन्द अनुभव होता था। एक पुस्तक में जिसका बड़े बड़े अङ्गरेज़ अफ़सरों ने समर्थन किया है, लिखा है सड़कों के चौरस्तों पर और बाज़ारों में जो लाशें टँगी हुई थीं, उनको उतारने में सूर्योदय से सूर्यास्त तक मुरदे ढोने वाली आठ आठ गाड़ियाँ बराबर तीन तीन महीने तक लगी रहीं, और इस प्रकार [एक स्थान पर] छै हज़ार मनुष्यों को झटपट ख़त्म कर परलोक भेज दिया गया। × × ×

---

* "It is better not to write anything about General Neill's revenge !"

जब कोई अङ्गरेज़ यह पढ़ता है कि किसी काले रङ्ग के बदमाश ने किसी मिस्टर चैम्बर्स या किसी मिस जेनिङ्गस को काट डाला तो क्रोध के मारे उसका दम घुटने लगता है, किन्तु भारतवासियों के इतिहासों में अथवा यदि इतिहास न हुए तो उनके परम्परागत वृत्तान्तों में हमारी कौम के विरुद्ध यह स्मरण रहेगा कि भारत की माताएँ, पत्नियाँ और बच्चे, जिनके नामों से हम इतनी अच्छी तरह परिचित नहीं हैं, अङ्गरेज़ों के प्रतिकार की पहली बाढ़ के निर्दयता के साथ शिकार हुए।"*

---

* "Soldiers and civilians alike were holding Bloody Assizes, or slaying Natives without any assize at all, regardless of sex or age, Afterwords the thirst for blood grew stronger still. It is on the records of our British Parliament, in papers sent home by the Governor-General of India in Council that 'the aged women, and children, are sacrificed, as will as those guilty of rebellion.' They were not deliberately hanged, but burnt to death in their villages, perhaps now and then accident by shot. Englishmen did not hesitate to boast or to record their boasting in writing, that. they had spared no one, and that peppering away at niggers was very pleasant pastime, enjoyed amazingly. And it has been stated, in a book patronised by official authorities that 'for three months eight dead carts daily went their rounds from sunrise to sunset to take down the corpses which hung at the cross roads and market places' and that 'six thousand beings had been thus 'summarily disposed off and launched into eternity.' . . . An Englishman is almost suffocated with indignation when he reads that Mr. Chambers or Mirs Jennings was nacked to death by a dusky ruffian, but in Native histories or, history being wanting, in Native legends and tratitions, it may be recorded against our people, that mothers and

यह दशा कुछ थोड़े बहुत ग्रामों की ही नहीं की गई । जनरल नील ने अपनी फ़ौज को अनेक दस्तों में बाँट दिया था । एक एक दस्ते में कई कई अफ़सर होते थे । इनमें से एक अफ़सर अपने केवल एक दिन के कृत्य को अभिमान के साथ वर्णन करते हुए अपने किसी अङ्गरेज़ मित्र को लिखता है—

"किन्तु आप यह जान कर सन्तुष्ट होंगे कि मैंने बीस ग्रामों को ज़मीन से मिला कर बराबर कर दिया ।"

बनारस से जनरल नील अपनी विजयी सेना सहित इलाहाबाद की ओर बढ़ा । मार्ग में उसने बनारस से इलाहाबाद तक सहस्रों ही ग्रामों को ग्राम-निवासियों सहित जला कर ख़ाक कर दिया ।

इलाहाबाद-निवासियों से बदला

११ जून को जनरल नील इलाहाबाद पहुँचा । यदि इससे पूर्व क़िले के अन्दर के सिख सिपाही विप्लवकारियों से मिल गए होते और क़िले के अन्दर की असंख्य बन्दूक़ें और युद्ध की अन्य सामग्री विप्लवकारियों के हाथों में आगई होती, तो जनरल नील के लिए इलाहाबाद फिर से विजय कर सकना लगभग असम्भव होता । लिखा है कि नील दूर से यह देख कर चकित रह गया कि इलाहाबाद के क़िले पर अभी तक अङ्गरेज़ी झण्डा फहरा रहा है । इस पर भी वह इलाहाबाद जैसे क़िले के लिए किसी भारतवासी का एतबार न

---

wives and children, with less familier names, fell miserable victims to the first swoop of English vengeance, . . . "—Kaye's *History of the Sepoy War*, vol. ii.

कर सकता था। उसने आते ही क़िले के भीतर के सिख सिपाहियों को पास के गाँव जलाने के लिए बाहर भेज दिया और क़िला गोरे सिपाहियों के सुपुर्द कर दिया। सिखों ने संहर्ष नील की आज्ञा का पालन किया। क़िला और क़िले के सामान की सहायता से अङ्गरेज़ों ने १७ जून को ख़ुसरो बाग़ पर हमला किया। दिन भर ख़ूब घमासान संग्राम हुआ। विप्लवकारियों ने बड़ी वीरता के साथ सामना किया। किन्तु अन्त में मौलवी लियाक़तअली ने देख लिया कि नील की विशाल सेना के मुक़ाबले में उनका ठहर सकना असम्भव था, इसके अतिरिक्त लियाक़तअली के पास उस समय तीस लाख का भारी ख़ज़ाना था, जिसे वह शत्रु के हाथ में पड़ने देना न चाहता था। इसलिए लियाक़तअली अपने साथियों और ख़ज़ाने सहित १७ जून की रात को कानपुर की ओर निकल गया। १८ जून को रात को अङ्गरेज़ों ने सिखों की मदद से इलाहाबाद के नगर में प्रवेश किया।

इस अवसर पर इलाहाबाद के नगर-निवासियों से नील और उसके आदमियों ने जिस भयङ्कर रूप में बदला चुकाया उसका कुछ अनुमान इस एक घटना से लगाया जा सकता है कि अनेक छोटे छोटे लड़कों को केवल इस अपराध में फाँसी पर लटका दिया गया कि वे हरे झण्डे हाथ में लेकर ढोल बजाते हुए जुलूस की शकल में शहर की गलियों में घूम रहे थे।*

लन्दन 'टाइम्स' के सम्वाददाता सर विलियम रसल से

* Kaye's *Indian Mutiny*, Book v, chapter, ii.

कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कॉलिन कैम्पबेल ने कहा था कि उन दिनों इलाहाबाद का एक अङ्गरेज़ सौदागर विद्रोहियों का पता लगाने के लिए स्पेशल कमिश्नर नियुक्त किया गया। वह अनेक हिन्दोस्तानी व्यापारियों का क़र्ज़दार था। सब से पहला कार्य उसने यह किया कि अपने सब ऋणदाताओं को पकड़ कर फाँसी दे दी।*

इलाहाबाद के चौक के अन्दर उन सात नीम के वृक्षों में से अभी तक तीन वृक्ष मौजूद हैं, जिनकी शाखों पर, चन्द दिन के अन्दर, कहा जाता है कि लगभग आठ सौ निर्दोष नगर-निवासियों को फाँसी दे दी गई। इस फाँसी के ढङ्ग को बयान करते हुए हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान पण्डित बालकृष्ण भट्ट, जिनकी आयु सन् ५७ में लगभग १५ वर्ष की थी, कहा करते थे कि अहियापुर मुहल्ले का एक मनुष्य समाचार सुन कर फाँसियाँ देखने के लिए चौक में पहुँचा। जो अङ्गरेज़ फाँसी दिलवा रहा था उसने पूछा—तुम क्यों खड़े हो? उसने उत्तर दिया— सुना था यहाँ फाँसियाँ लग रही हैं, इसलिए केवल देखने आया था। साहब ने अपने आदमी को आज्ञा दी, इसे भी फाँसी दे दो। तुरन्त वह निर्दोष और चकित दर्शक एक नीम पर लटका दिया गया। जो काम सात नीम के वृक्षों पर चौक में हो रहा था वही उस समय सैकड़ों अन्य नीम तथा आम के वृक्षों पर इलाहाबाद तथा उसके आस पास के इलाक़े में किया जा रहा था। नगर के कुछ लोगों ने बचने के लिए किश्तियों में

---

* Sir W. H. Russell's private letter to John, Delane, Editor of the *London Times*, written from Lucknow.
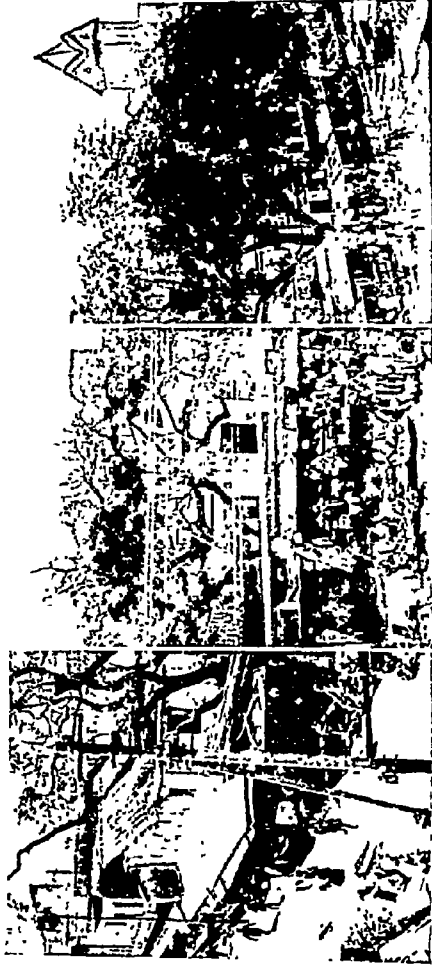
चौक इलाहाबाद के सात नीम के वृक्षों में से चार; जिन पर सन् ५७ में लगभग ८०० निर्दोष नगरनिवासियों को फाँसी पर लटका दिया गया

["भारत में अंगरेज़ी राज्य" के लिए विशेष फ़ोटो]

बैठ कर नगर से भाग जाना चाहा। किन्तु क़िले के नीचे तोपें लगी हुई थीं और अङ्गरेज़ी सेना किनारे पर मौजूद थी। किश्तियों में भागते हुए लोगों पर किनारे से गोलियों और गोलों की बौछार की गई और उन्हें वहीं समाप्त कर दिया गया।

इलाहाबाद के अपने एक दिन के कृत्यों को वर्णन करते हुए एक अङ्गरेज़ अफ़सर लिखता है—

"एक यात्रा में मुझे अद्भुत आनन्द आया। हम लोग एक तोप लेकर एक स्टीमर पर चढ़ गए। सिख और गोरे सिपाही शहर की तरफ़ बढ़े। हमारी किश्ती ऊपर को चलती जाती थी और हम अपनी तोप से दाएँ और बाएँ गोले फेंकते जाते थे। यहाँ तक कि हम बुरे बुरे ग्रामों में पहुँचे। किनारे पर जाकर हमने अपनी बन्दूक़ों से गोलियाँ बरसानी शुरू कीं। मेरी पुरानी दो नली बन्दूक़ ने कई काले आदमियों को गिरा दिया। मैं बदला लेने का इतना प्यासा था कि हमने दाएँ और बाएँ गाँवों में आग लगानी शुरू की। लपटें आसमान तक पहुँचीं और चारों ओर फैल गईं। हवा ने उन्हें फैलने में मदद दी, जिससे मालूम होता था कि दग़ाबाज़ बदमाशों से बदला लेने का दिन आ गया है। हर रोज़ हम लोग विद्रोही ग्रामों को जलाने और मिटा देने के लिए निकलते थे और हमने बदला ले लिया है। × × × लोगों की जान हमारे हाथों में है और मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि हम किसी को नहीं छोड़ते। × × × अपराधी को एक गाड़ी के ऊपर बैठा कर किसी दरख़्त के नीचे ले जाया जाता है। उसकी गर्दन में रस्सी का फन्दा डाल दिया जाता है। फिर गाड़ी हटा ली जाती है और वह लटका हुआ रह जाता है।"*

---

* "One trip I enjoyed amazingly; we got on board a

इलाहाबाद के इस सर्वव्यापी संहार से भी माताएँ अथवा बच्चे, बूढ़े अथवा अपाहज कोई न बच सके। इतिहास-लेखक होम्स दुख के साथ लिखता है—

"बूढ़े आदमियों ने हमें कोई नुक़सान न पहुँचाया था; असहाय स्त्रियों से जिनकी गोद में दूध पीते बच्चे थे, हमने उसी तरह बदला लिया जिस तरह बुरे से बुरे अपराधियों से।"*

जिस स्थान का ज़िक्र चार्ल्स बॉल के पूर्वोक्त उद्धरण में किया गया है, केवल उस एक स्थान के विषय में इतिहास-लेखक के

---

steamer with a gun, while the Sikhs and the fusiliers marched up to the city. *We steamed up throwing* shots right and left till we got up to the bad places, when we went on the shore and peppered away with our guns, my old double-barrel beinging down several niggers. So thirsty for vengeance I was. We fired the places right and left and the flames shot up to the heavens as they spread, fanned by the breeze, showing that the day of vengeance had fallen on the treacherous villains. Everyday, we had expeditions to burn and destroy disaffected villages and we have taken our revenge. . . . We have the power of life in our hands and, I assure you, we spare not. . . . The condemned culprit is placed under a tree, with a, rope round his neck, on the top of carriage, and when it is pulled off he swings."—Charles Ball's, *Indian Mutiny*, vol. i, p. 257.

* "Old men had done us no harm; helpless women, with suckling infants at their breasts, felt the weight our vengeance no less than the vilest malefactiors."—Holmes' *Sepoy War*, pp. 229-30.

किश्तियों में बैठकर इलाहाबाद से भागते हुए हिन्दोस्तानियों पर अङ्गरेज़ी सेना का गोले बरसाना

[चार्ल्स बाल कृत "हिस्टरी ऑफ़ दी इण्डियन म्यूटिनी" से]

स्वीकार करता है कि वहाँ पर छै हज़ार भारतवासियों का संहार किया गया। निस्सन्देह अकेले इलाहाबाद के इलाक़े में नील ने इतने भारतवासियों का संहार किया जितने अङ्गरेज़ पुरुष, स्त्रियों और बच्चों का समस्त भारत के अन्दर भी सन् ५७-५८ भर में विप्लवकारियों ने नहीं किया।

सर जॉर्ज कैम्पबेल लिखता है—

"और मैं जानता हूँ कि इलाहाबाद में बिलकुल बिना किसी तमीज़ के क़त्लेआम किया गया था। × × × और इसके बाद नील ने वे काम किए जो क़त्लेआम से भी अधिक मालूम होते थे, उसने लोगों को जान बूझ कर इस तरह की यातनाएँ दे देकर मारा जिस तरह की यातनाएँ, जहाँ तक हमें सुबूत मिले हैं, भारतवासियों ने कभी किसी को नहीं दीं।"*

बनारस के समान इलाहाबाद के नगर पर भी अङ्गरेज़ों का फिर से क़ब्ज़ा होगया। यद्यपि जनरल नील और उसके साथियों ने इलाहाबाद निवासियों से बदला चुकाने में कोई कसर नहीं की, तथापि चार्ल्स बॉल लिखता है कि शहर और आस पास के गाँव के लोगों ने अङ्गरेज़ों का इतना पूरा बहिष्कार कर रक्खा था कि अपने मुर्दे और ज़ख्मियों को ढोने के लिए उन्हें डोलियें अथवा

* ". . . and I know that at Allahabad there were far too whole-sale executions. . . . And afterwards Neill did things almost more than the massacre, putting to death with deliberate torture, in a way that has never been proved against the natives."—Sir George Campbell, Provisional Civil Commissioner in the Mutiny, as quoted in *The Other Side of the Medal*, by Edward Thompson, p. 81.

मज़दूर तक नहीं मिल रहे थे। कोई गाँव वाला उन्हें रसद देने के लिए तैयार न होता था। चार्ल्स बॉल लिखता है कि जो कोई अङ्गरेज़ों का काम करता था, देहाती उसके हाथ और नाक काट डालते थे अथवा उसे मार डालते थे। इसके ऊपर जून की गरमी। नतीजा यह हुआ कि अङ्गरेज़ी कैम्प में हैज़े की बीमारी शुरू होगई।

कानपुर और नाना साहब

अब हम इलाहाबाद से हट कर सन् ५७ की राष्ट्रीय योजना के उद्भव स्थान कानपुर की ओर आते हैं। नाना साहब, उसके दो भाई बाला साहब और बाबा साहब, नाना साहब का भतीजा राव साहब और चतुर अज़ीमुल्ला खाँ कानपुर में विप्लव के मुख्य नेता थे। इनके अतिरिक्त प्रसिद्ध मराठा सेनापति तात्या टोपी भी, जिसके अद्भुत पराक्रम का वर्णन आगे चल कर किया जायगा, उस समय बिठूर के दरबार में मौजूद था। सर ह्यू व्हीलर कानपुर की अङ्गरेज़ी सेना का सेनापति था। व्हीलर के अधीन तीन हज़ार देशी सिपाही और लगभग एक सौ अङ्गरेज़ सिपाही थे। दिल्ली की स्वाधीनता का समाचार नाना साहब को १५ मई को मिला और सर ह्यू व्हीलर को १८ मई को। इस पर एक अङ्गरेज़ लेखक लिखता है—

"निस्सन्देह विप्लव के अत्यन्त आश्चर्यजनक पहलुओं में से एक यह रहा है कि भारतवासियों को दूर दूर के स्थानों की समस्त महत्वपूर्ण घटनाओं की सूचना अत्यन्त शीघ्र और असन्दिग्ध रूप में मिलती रहती है।

ख़बर ले जाने वाले मुख्यकर हरकारे होते हैं जो असाधारण वेग के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान सन्देश ले जाते हैं।"*

दिल्ली की खबर के आते ही कानपुर शहर में हिन्दू और मुसलमानों के बड़े बड़े जलसे होने लगे। छावनी में सिपाहियों की गुप्त सभाएँ होने लगीं। स्कूलों, बाज़ारों और सार्वजनिक स्थानों में आगामी स्वाधीनता संग्राम का चरचा होने लगा। तथापि नाना साहब ने ३१ मई तक चुप रहने का निश्चय किया, और सर ह्यू व्हीलर ने गङ्गा के दक्षिण में एक नया स्थान घेर कर क़िले-बन्दी शुरू की, ताकि आवश्यकता के समय कानपुर के अङ्गरेज़ उसमें आश्रय ले सकें।

लखनऊ से कुछ और सेना व्हीलर की सहायता के लिए पहुँच गई। आश्चर्य की बात यह है कि उस समय तक भी अङ्गरेज़ों को नाना साहब पर पूर्ण विश्वास था। व्हीलर ने नाना साहब को सन्देशा भेजा कि आप आकर कानपुर की रक्षा करने में अङ्गरेज़ों को मदद दीजिए। २२ मई सन् १८५७ को नाना साहब ने कुछ सेना और दो तोपों सहित बिठूर से निकल कर कानपुर नगर में प्रवेश किया। व्हीलर ने कम्पनी का ख़ज़ाना नाना साहब को सौंप दिया। नाना ने अपने दो सौ सिपाही ख़ज़ाने पर पहरा देने के लिए नियुक्त कर किए।

कम्पनी की देशी सेना के दो मुख्य नेता थे, सूबेदार टीका-सिंह और सूबेदार शम्सुद्दीन ख़ाँ। नाना साहब के दो मुख्य

* *Narrative of the Indian Revolt*, p. 33.

विश्वस्त सहायक ज्वालाप्रसाद और मोहम्मदअली थे। इन चारों और नाना साहब और अज़ीमुल्ला खाँ में प्रायः किश्तियों में बैठकर गङ्गा के ऊपर दो दो घण्टे गुप्त मन्त्रणाएँ हुआ करती थीं। सर ह्यू व्हीलर ने कम्पनी का मैगज़ीन भी नाना साहब की रक्षा में छोड़ दिया।

कानपुर के अन्दर उस समय अङ्गरेज़ इतना डरे हुए थे कि २४ मई को रमज़ान के बाद की ईद थी। उसी दिन मलका विक्टोरिया की सालगिरह थी। साल गिरह के उपलक्ष में सदा तोपों की सलामी दी जाती थी। किन्तु २४ मई सन् १८५७ को कानपुर में इसलिए कोई तोप नहीं छोड़ी गई कि उससे हिन्दोस्तानी सिपाही न भड़क उठें। एक अङ्गरेज़ अफ़सर लिखता है कि जिस समय विप्लव की कोई झूठी अफ़वाह भी नगर में उड़ जाती थी, तुरन्त शहर के सब अङ्गरेज़ भाग कर अपने बाल बच्चों समेत जनरल व्हीलर के नए क़िले में जाकर जमा हो जाते थे।

४ जून की आधी रात को अचानक कानपुर की छावनी में तीन फ़ायर हुए। सिपाहियों को विप्लव प्रारम्भ करने के लिए यही पूर्व निश्चित सूचना थी। सब से आगे सूबेदार टीकासिंह घोड़े पर लपका। उसके पीछे पीछे सैकड़ों सवार और हज़ारों पैदल मैदान में निकल आए। पूर्व निश्चय के अनुसार कुछ ने अङ्गरेज़ी इमारतों को आग लगा दी, कुछ दूसरों को सूचना देने के लिए गए और कुछ ने जगह जगह से अङ्गरेज़ी झण्डों को गिरा कर उनकी जगह हरे झण्डे क़ायम कर दिए। नवाबगञ्ज में

नाना का ख़ेमा था। नाना के सिपाही विप्लवकारियों के साथ मिल गए। ५ जून को सुबह तक अङ्गरेज़ी ख़ज़ाना और मेगज़ीन दोनों विप्लवकारियों के हाथों में आ गए। भारतीय सेना और नगर-निवासियों ने मिल कर दिल्ली सम्राट के अधीन नाना साहब को अपना राजा चुना। फ़ौज के लिए अफ़सर और नगर के लिए शासक भी उसी समय चुने गए। ५ जून ही को हाथी के ऊपर दिल्ली सम्राट के झण्डे का जुलूस बड़े समारोह के साथ शहर तथा छावनी में निकाला गया।

नगर-निवासियों ने बड़े हर्ष के साथ नाना की समस्त आज्ञाओं का पालन किया।

६ जून को सवेरे नाना ने जनरल व्हीलर को चेतावनी दी कि आज आप क़िला हमारे सुपुर्द कर दीजिए, अन्यथा शाम को क़िले पर हमला किया जायगा। उसी दिन शाम को विप्लवकारी सेना ने अङ्गरेज़ी क़िले का मोहासरा शुरू कर दिया। कानपुर के प्रायः समस्त अङ्गरेज़ स्त्री, पुरुष और बच्चे उस समय इस क़िले के अन्दर मौजूद थे।

नोटिस देने के बाद जो अङ्गरेज़ किसी कारण क़िले से बाहर रह गए अथवा कानपुर शहर में मौजूद थे उन्हें मार डाला गया। नाना के साथ तोपों की कमी न थी। नाना की तोपों ने अब कानपुर के क़िले के अन्दर गोले बरसाने शुरू किए। क़िले के अन्दर अङ्गरेज़ इतनी तेज़ी के साथ मरने लगे कि लिखा है, उन्हें दफ़न करना तक कठिन हो गया। क़िले के अन्दर केवल एक कुआँ

था। नाना की सेना ने उस पर इस ढङ्ग से गोले बरसाए कि अनेक अङ्गरेज़ पुरुष और स्त्री पानी न मिलने के कारण तड़पने लगे। २१ दिन तक यह गोलाबारी जारी रही। अनेक लोग, जो गोलों से न मरे, पेचिस, बुख़ार और हैज़े का शिकार हुए। क़िले की दीवारों पर से कम्पनी की तोपें भी साहस और धैर्य के साथ अपना कार्य करती रहीं। विप्लवकारियों के पहरे के कारण अङ्गरेज़ों के लिए कोई सन्देशा बाहर भेज सकना अत्यन्त कठिन होगया। तथापि कम्पनी का एक वफ़ादार हिन्दोस्तानी नौकर जनरल व्हीलर का सन्देशा लेकर लखनऊ पहुँचा। यह सन्देशा एक पत्ती के परों के नीचे बँधा हुआ था। भाषा कुछ अङ्गरेज़ी कुछ लातीनी और कुछ फ़ान्सीसी मिली हुई थी। पत्र का शब्दार्थ केवल यह था—

"Help! Help!! Help!!! Send us help or we are dying! If we get help, we will come and save Lucknow!"

अर्थात्—"मदद! मदद!! मदद!!! हमें मदद भेजो, नहीं तो हम मर रहे हैं! यदि हमें मदद मिल जाय तो हम आकर लखनऊ को बचा लेंगे!"

इस सन्देशे से क़िले के अन्दर के अङ्गरेज़ों की स्थिति का ख़ासा अच्छा पता चलता है। दूसरी ओर नाना के गुप्तचर बड़ी सुन्दरता के साथ अङ्गरेज़ी क़िले के अन्दर की ख़बरें नाना को ला लाकर देते थे।

जब कि अङ्गरेज़ी कैम्प की यह हालत थी, नाना के पास चारों ओर के ज़मींदारों की ओर से धन और जन दोनों की सहायता धड़ाधड़ चली आ रही थी। नाना और उसके साथियों का उत्साह बढ़ा हुआ था। नाना के अधीन इस समय लगभग चार हज़ार सेना थी। लिखा है कि कानपुर की हिन्दू और मुसलमान स्त्रियाँ उस समय अपने घरों से निकल निकल कर गोला बारूद इधर उधर ले जाने, सैनिकों को भोजन पहुँचाने और ठीक अङ्गरेज़ी क़िले की दीवार के नीचे तोपचियों को मदद देने का काम कर रही थीं। इन सब स्त्रियों में उस समय कानपुर की एक वेश्या अज़ीज़न का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। एक इतिहास-लेखक लिखता है कि यह अज़ीज़न हथियार बाँधे हुए घोड़े पर चढ़े हुए बिजली की तरह शहर की गलियों और छावनी में दौड़ती फिरती थी। कभी वह गलियों के अन्दर थके हुए और घायल सिपाहियों को दूध और मिठाई बाँटती थी, और कभी अङ्गरेज़ी क़िले की ठीक दीवार के नीचे लड़ने वालों के हौसले बढ़ाती थी।

ठीक उस समय जब कि अङ्गरेज़ी क़िले का मोहासरा जारी था, नाना ने शहर के शासन का पूरा प्रबन्ध किया। शहर के प्रमुख लोगों को जमा करके उनके बहुमत से हुलाससिंह नामक एक मनुष्य को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया। फ़ौज को रसद पहुँचाने का काम मुल्ला नामक एक मनुष्य के सुपुर्द कर दिया गया। दीवानी के मुक़द्दमों के लिए ज्वालाप्रसाद, अज़ीमुल्ला ख़ाँ और बाबा साहब की एक अदालत क़ायम की गई। इतिहास-लेखक

टॉमसन लिखता है कि अपराधियों को कड़े दण्ड दिए जाते थे और नगर में पूरी तरह अमन चैन था।*

१८ जून और २३ जून को दो गहरे संग्राम हुए। अन्त में कोई चारा न देख २५ जून सन् १८५७ को जनरल व्हीलर ने अपने क़िले के ऊपर सुलह का सफ़ेद झण्डा गाड़ दिया। तुरन्त नाना साहब ने लड़ाई बन्द कर दी। इसके साथ ही नाना ने एक पत्र जनरल व्हीलर के पास भेजा जिसमें लिखा था—

"मलका विक्टोरिया की प्रजा के नाम।—जिन लोगों का डलहौज़ी की नीति के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहा है, और जो हथियार रख देने तथा आत्म समर्पण कर देने के लिए तैयार हैं उन्हें सुरक्षित इलाहाबाद पहुँचा दिया जायगा।"

२६ तारीख़ को दोनों ओर के प्रतिनिधियों में बात चीत हुई। इस बात चीत के सम्बन्ध में यह एक बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि अज़ीमुल्ला ख़ाँ अङ्गरेज़ी भाषा का विद्वान था तथापि ज्योंही अङ्गरेज़ प्रतिनिधि ने अङ्गरेज़ी में बात चीत प्रारम्भ की, अज़ीमुल्ला ने एतराज़ किया। उसने अङ्गरेज़ प्रतिनिधियों को विवश किया कि तमाम बातचीत भारत की भाषा हिन्दोस्तानी में की जाय; और हिन्दोस्तानी में ही बात चीत हुई।

अन्त में क़िले के अन्दर के सब अङ्गरेज़ों ने अपने आपको नाना के सुपुर्द कर दिया। क़िला, तोपख़ाना और भीतर के तमाम अस्त्र शस्त्र और खज़ाना नाना के हवाले कर दिया गया। नाना की

---

* *The Story of Cawnpore*, by M. Thompson

तरफ़ से वादा किया गया कि सब अङ्गरेज़ों को किश्तियों में बैठा कर और मार्ग के लिए रसद देकर इलाहाबाद भेज दिया जायगा।

उसी रात को चालीस किश्तियों का इन्तज़ाम कर दिया गया। उनमें रसद का सामान रख दिया गया। २७ तारीख़ को सवेरे अङ्गरेज़ी झण्डा क़िले पर से उतार दिया गया। सम्राट बहादुरशाह का झण्डा उसकी जगह फहराने लगा और सब अङ्गरेज़ों को हाथियों और पालकियों में बैठा कर क़िले से डेढ़ मील दूर सती-चौरा घाट पर पहुँचा दिया गया।

किन्तु इस बीच इलाहाबाद और उसके आस पास के इलाक़े से असंख्य मनुष्य, जिनके घर द्वार, सम्बन्धियों और बाल-बच्चों को जनरल नील के सिपाहियों ने ज़ला कर ख़ाक कर दिया था, कानपुर नगर में आ आ कर एकत्रित हो रहे थे। इन लोगों के बयानों और इलाहाबाद में कम्पनी की सेना के अत्याचारों को सुन सुन कर कानपुर की जनता और वहाँ के देशी सिपाहियों का क्रोध भड़क रहा था। २७ जून को सवेरे दस बजे किश्तियाँ सती-चौरा घाट से चलने वाली थीं। नाना उस समय अपने महल में था। घाट पर सिपाहियों और जनता की भीड़ थी। कहा जाता है कि क्रोध से उन्मत्त सिपाहियों में से किसी एक ने पहले करनल ईवर्ट पर हमला किया। तुरन्त मार काट शुरू हो गई। लगभग समस्त अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक स्वीकार करते हैं कि ज्योंही नाना को इसका समाचार मिला, उसने तुरन्त आज्ञा भेजी कि—"अङ्ग-

रेज़ पुरुषों को मारो, किन्तु बच्चों और स्त्रियों को कोई हानि न पहुँचाओ !"* नाना की आज्ञा के पहुँचते ही १२५ अङ्गरेज़ स्त्रियाँ और बच्चे क़ैद करके सौदाकोठी पहुँचा दिए गए। अङ्गरेज़ पुरुषों को लाइन बाँध कर सतीचौरा घाट पर खड़ा किया गया। उनमें से एक ने, जो शायद पादरी था, प्रार्थना की कि मरने से पहले मुझे इजाज़त दी जाय कि मैं अपने भाइयों को इञ्जील में से कुछ ईश्वर प्रार्थना पढ़ कर सुना दूँ। उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली गई।† जब वह ईश्वर प्रार्थना कर चुका तो हिन्दोस्तानी सिपाहियों ने समस्त अङ्गरेज़ों के सर तलवार से क़लम कर दिए। अङ्गरेज़ पुरुषों में से केवल चार एक किश्ती में बैठ कर भाग निकले। इस प्रकार ७ जून को कानपुर के अन्दर, जो लगभग एक हज़ार अङ्गरेज़ थे, उनमें से २७ जून की शाम को केवल चार पुरुष अपनी फुरती द्वारा और १२५ स्त्रियाँ और बच्चे नाना की उदारता द्वारा ज़िन्दा बचे।

इसमें सन्देह नहीं सतीचौरा घाट का हत्याकाण्ड किसी तरह भी जायज़ नहीं कहा जा सकता। निःशस्त्र लोगों पर वार करना युद्ध के सदाचार में भी क्षमतव्य नहीं है। इसके अतिरिक्त नाना ने इन लोगों से प्राणदान का वादा कर लिया था। दूसरी ओर हमें यह स्मरण रखना होगा कि सतीचौरा घाट के अत्याचार की

---

* Forrest's *State Papers*, also Kaye and Malleson's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 258.

† Kaye and Malleson's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 263.

ज़िम्मेदारी एक दर्जे तक जनरल नील और उसके साथियों के उन कहीं अधिक बीभत्स अत्याचारों पर है, जिन्होंने कानपुर के हिन्दोस्तानी सिपाहियों के मस्तकों को ठिकाने रहने नहीं दिया।

नाना ने क़ैदी अङ्गरेज़ स्त्रियों और बच्चों के साथ जिस प्रकार का व्यवहार किया उसके विषय में अनेक झूठी अफ़वाहें उन दिनों इङ्गलिस्तान तथा भारत में उड़ाई गईं। हम इन अफ़वाहों को दोहराना उचित नहीं समझते। इतना कह देना काफ़ी है कि बाद में अङ्गरेज़ों ही का एक कमीशन इन इलज़ामों की जाँच करने के लिए नियुक्त हुआ। इस कमीशन ने पूरी जाँच के बाद फ़ैसला दिया कि पूर्वोक्त तमाम अफ़वाहें बिलकुल झूठी थीं।"*

जस्टिन मैकार्थी इन अफ़वाहों के विषय में लिखता है—

"लोगों की क्रोधाग्नि को इस तरह की अफ़वाहें उड़ा उड़ा कर भड़काया गया कि आम तौर पर स्त्रियों की बेइज़्ज़ती की गई और निर्दयता के साथ उनके अङ्ग भङ्ग किए गए। सौभाग्यवश ये अफ़वाहें झूठी थीं। ××× सच यह है कि सिवाय उनसे नाज पिसवाने के और किसी तरह का भी अपमान अङ्गरेज़ स्त्रियों का नहीं किया गया। ××× सामान्य अर्थों में किसी स्त्री पर अत्याचार नहीं किया गया। न किसी अङ्गरेज़ स्त्री के कपड़े उतारे गए, न किसी की बेइज़्ज़ती की गई और न जान बूझ कर किसी को अङ्ग भङ्ग किया गया।"†

---

* Muir's Report and Wilson's Report. Also Kaye and Malleson's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 267.

† "The elementary passions of manhood were inflamed by the stories, happily not true, of the wholesale dishonour and

इतना ही नहीं, सतीचौरा घाट के हत्याकाण्ड की शुरू की गड़बड़ में कुछ हिन्दोस्तानी सिपाही चार अङ्गरेज़ स्त्रियों को पकड़ कर ले गए थे। समाचार पाते ही नाना ने तुरन्त उन सिपाहियों को कड़ा दण्ड दिया और चारों अङ्गरेज़ स्त्रियों को उनसे वापस ले लिया।*

क़ैदी स्त्रियों और बच्चों के साथ नाना का व्यवहार अत्यन्त उदार था, उन्हें खाने के लिए चपाती और गोश्त दिया जाता था। कोई कड़ी मेहनत उनसे न ली जाती थी। बच्चों को दूध मिलता था और दिन में तीन तीन बार उन्हें हवा खाने के लिए बाहर आने की इजाज़त थी। स्वयं जनरल नील अपनी रिपोर्ट में लिखता है—"शुरू में उन्हें बुरा खाना दिया गया, किन्तु बाद में उन्हें अच्छा खाना दिया जाने लगा, साफ़ कपड़े मिलने लगे और ख़िदमत के लिए नौकर दे दिए गए।"†

---

barbarous mutilation of women. . . As a matter of fact, no indignities, other than that of the compulsory corn grinding, were put upon the English ladies. . . . There were no outrages, in the common acceptation of the term, upon women. No English women were stripped or dishonoured, or purposely mutilated."—*History of Our Own Times*, vol iii, by Justin McCarthy.

* Sir George Trevelyan's *Cawnpore*. p, 299.

† "At first they were badly fed but afterwards they got better food and clean clothing and servants to wait upon."—General Neill's Report.

नाना साहब

उस चित्र से जो नवाब-अवध के चित्रकार मि० बीची ने सन् १८५०

में बिठूर जाकर खींचा था ।

[From A Narrative of the Indian Revolt, London 1858.]

इनमें से केवल कुछ स्त्रियों को अपने खाने भर के लिए थोड़ा सा आटा पीसना पड़ता था।

अब हम इन अङ्गरेज़ क़ैदियों से हट कर कानपुर के शेष वृत्तान्त की ओर आते हैं।

२८ जून सन् १८५७ को कानपुर नगर, छावनी और आस पास के इलाक़े पर से अङ्गरेज़ी राज्य के समस्त चिन्ह मिटाने के पश्चात् नाना साहब ने एक बड़ा दरबार किया। छै पलटन पैदल, दो पलटन सवार, अनेक ज़मींदार और असंख्य जनता इस दरबार में उपस्थित थी। सब से पहले सम्राट बहादुरशाह के नाम पर १०१ तोपों की सलामी हुई। इसके बाद २१ तोपों की सलामी नाना साहब की हुई। नाना साहब ने सिपाहियों और जनता को धन्यवाद दिया। एक लाख रुपए बतौर इनाम के फ़ौज में बाँटे गए। दरबार के बाद नाना साहब कानपुर से बिठूर गया। बिठूर में पहली जुलाई सन् १८५७ को नाना साहब धुन्धपन्त विधिवत् पेशवा की गद्दी पर बैठा। इस प्रकार सन् १८५७ के विप्लव में क्षण भर के लिए पेशवा की मृतप्राय सत्ता फिर से जीवन लाभ करती हुई दिखाई देने लगी।

झाँसी और रानी लक्ष्मीबाई

एक पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है कि किस प्रकार लॉर्ड डलहौज़ी ने राजा गङ्गाधर राव के दत्तक पुत्र बालक दामोदर राव के उत्तराधिकार को नाजायज़ कह कर झाँसी की रियासत को ज़बरदस्ती कम्पनी के राज्य में मिला लिया था।

गङ्गाधरराव की मृत्यु के बाद १३ मार्च सन् १८५४ को झाँसी की रियासत के कम्पनी के राज्य में मिलाए जाने का एलान प्रकाशित हुआ। समस्त प्रजा में इससे घोर असन्तोष उत्पन्न हो गया। विधवा रानी लक्ष्मीबाई ने, जिसकी आयु उस समय केवल १८ वर्ष की थी और जिसने अपने बालक पुत्र की ओर से आश्चर्यजनक योग्यता के साथ राज्य का सारा कार्य सँभाल लिया था, एतराज़ किया। किन्तु कोई सुनाई न हो सकी। इतना ही नहीं, राजा गङ्गाधरराव मरते समय लगभग साढ़े चार लाख रुपए के जवाहरात और ढाई लाख रुपए नक़द छोड़ गया था। लॉर्ड डलहौजी ने इस समस्त सम्पत्ति को ज़बरदस्ती छीन कर यह कह कर कम्पनी के खज़ाने में जमा कर लिया कि जब दामोदरराव बालिग़ होगा तो यह धन उसे दे दिया जायगा। डलहौज़ी ने स्पष्ट लिखा कि दत्तक पुत्र को बालिग़ होने पर पिता की इस निजी सम्पत्ति को प्राप्त करने का अधिकार होगा, किन्तु गद्दी का कभी नहीं।*

रानी लक्ष्मीबाई को इस समस्त सम्पत्ति और राज्य के बदले में पाँच हज़ार रुपए मासिक पेनशन देने का वादा किया गया। रानी ने तिरस्कार के साथ अस्वीकार किया। विधवा रानी के साथ एक इससे भी कहीं अधिक अन्याय किया गया। इतिहास-लेखक सर जॉन के लिखता है—

"उस पर दोषारोपण किए गए, क्योंकि हम लोगों में यह एक रिवाज है कि × × × पहले किसी देशी नरेश का राज्य ले लेते हैं और फिर पद-

---

* *Jhansi Papers 1858*, p. 31.

च्युत नरेश अथवा उसके उत्तराधिकारी की झूठी बुराइयाँ करने लगते हैं। कहा गया कि रानी लक्ष्मीबाई केवल बच्चा है और दूसरों के प्रभाव में रहती है, यह भी कहा गया कि रानी को नशे का व्यसन है। यह बात कि रानी केवल बच्चा नहीं है उसकी बातचीत से पूरी तरह साबित है; और उसके नशा करने की बात बिलकुल झूठी कल्पना मालूम होती है।"*

निस्सन्देह किसी भी मनुष्य के साथ और विशेषकर किसी स्त्री के साथ इससे बढ़ कर अन्याय नहीं किया जा सकता। रानी लक्ष्मीबाई के व्यक्तिगत चरित्र के विषय में हम केवल एक विद्वान् अङ्गरेज़ की राय और उद्धृत करते हैं, जो उस समय लक्ष्मीबाई के रहन सहन इत्यादि से पूरी तरह परिचित था। मेजर मैलकम ने १६ मार्च सन् १८५५ को गवरनर-जनरल के नाम एक सरकारी पत्र में लिखा—"रानी का चरित्र अत्यन्त उच्च है और झाँसी में हर मनुष्य उसे अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखता है।"†

उस समय के समस्त इतिहास से साबित है कि लक्ष्मीबाई

---

* "Evil things were said of her, for it is a custom among us odisse quem *caeseris*—to take a Native ruler's kingdom and then to revile the deposed ruler or his would be successor. It was alleged that the Rani was a mere child under the influence of others, and that she was much given to intemperance. That she was not a mere child was demonstrated by her conversation; and her intemperance seems to be a myth."—Sir John Kaye's *History of the Sepoy War*, vol. iii, pp. 361-62.

† ". . . bears a very high character and is much respected by every one at Jhansi."—*Jhansi Papers*, p. 28.

वास्तव में अत्यन्त सुचरित्र, योग्य, वीर और असाधारण बुद्धि की स्त्री थी।* युद्धविद्या में वह अत्यन्त निपुण थी। उसके माता पिता बिठूर में पेशवा के दरबार में रहा करते थे। लिखा है कि बिठूर के दरबार में कुमारी लक्ष्मीबाई अत्यन्त सर्वप्रिय थी। छोटी आयु में ही वह निशानेबाज़ी और शस्त्रों के उपयोग में अत्यन्त निपुण हो गई थी। सात वर्ष की अल्पावस्था में वह घोड़े की बड़ी दक्ष सवार थी और प्रायः नाना साहब और उसके भाइयों के साथ शिकार के लिए जाया करती थी।

वीर लक्ष्मीबाई झाँसी की गद्दी के इस अपमान और झाँसी की प्रजा के साथ इस अन्याय को सहन न कर सकी। सन् ५७ के विप्लव की वह एक मुख्यतम नेत्री थी। पूर्व निश्चय के अनुसार ४ जून सन् १८५७ को झाँसी में विप्लव का प्रारम्भ हुआ। कम्पनी की सेना सन् १८५४ के एलान के बाद ही जबरदस्ती झाँसी पहुँच चुकी थी और कम्पनी का राज्य क़ायम हो चुका था। ४ जून को सब से पहले १२ नं० देशी पलटन के हवलदार गुरुबख्श सिंह ने क़िले के मैगज़ीन और ख़ज़ाने पर क़ब्ज़ा कर लिया। उसके बाद रानी लक्ष्मीबाई ने महल से निकल कर शस्त्र धारण कर स्वयं विप्लव-कारी सेना का सेनापतित्व ग्रहण किया। उस समय लक्ष्मीबाई की आयु केवल २१ वर्ष की थी। ७ जून को रिसालदार काले खाँ और तहसीलदार मोहम्मदहुसेन ने रानी की ओर से क़िले पर हमला किया। क़िले के अन्दर की हिन्दोस्तानी सेना ने भी विप्लव

---

* D. B. Parasnis' *Life of Lakshmi Bai.*

का साथ दिया। ८ जून को कहा जाता है कि रिसालदार काले खाँ की आज्ञा से क़िले के अन्दर के ६७ अङ्गरेज़, जिनमें पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे शामिल थे, क़त्ल कर दिए गए। इतिहास-लेखक सर जॉन के लिखता है कि इस हत्याकाण्ड से रानी लक्ष्मीबाई का कोई सम्बन्ध न था, न उसका कोई आदमी मौक़े पर मौजूद था और न उसने इसकी इजाज़त दी थी।* अन्त में उसी दिन झाँसी पर से कम्पनी का राज्य हटा दिया गया। बालक दामोदर के वली की हैसियत से रानी लक्ष्मीबाई फिर से झाँसी की गद्दी पर बैठी। कम्पनी के झण्डे की जगह दिल्ली सम्राट की पताका झाँसी के क़िले पर फहराने लगी। सारी रियासत में ढिंढोरा पिटवा दिया गया—"खल्क़ ख़ुदा का, मुल्क बादशाह (अर्थात् दिल्ली के बादशाह) का, हुक्म रानी लक्ष्मीबाई का।"

अवध की स्वाधीनता

सन् ५७-५८ के सबसे अधिक भयङ्कर संग्राम अवध की भूमि पर लड़े गए। अवध की सल्तनत के अङ्गरेज़ी राज्य में मिलाए जाने और अवध-निवासियों के दुखों और शिकायतों का वर्णन एक पिछले अध्याय में किया जा चुका है। अवध के ज़मींदारों, वहाँ की पुलिस, वहाँ की फ़ौज और लगभग समस्त जनता ने स्वाधीनता के उस महायुद्ध की सफलता पर अपना सर्वस्व लगा दिया था। वास्तव में विप्लव की तैयारी कहीं भी इतनी अच्छी न

---

* *History of the Sepoy War*, by Sir John Kaye, vol. ii, p, 369.

थी जितनी अवध में। हज़ारों मौलवी और हज़ारों पण्डित एक एक बारग और एक एक गाँव में आगामी युद्ध के लिए लोगों को तैयार करते फिरते थे।

सर हेनरी लॉरेन्स अवध का चीफ़ कमिश्नर था। लखनऊ छावनी के कुछ सिपाही मङ्गल पाँडे की फाँसी के बाद अपने आपको न रोक सके। मई के प्रारम्भ में वहाँ पर अङ्गरेज़ों के कुछ मकान जला दिए गए। चार्ल्स बॉल लिखता है कि ३ मई को सात नम्बर पलटन के सात उच्छृङ्खल सिपाही लैफ़्टिनेण्ट मीकम के खेमे में पहुँचे और कहने लगे,—"हमें आपसे कोई ज़ाती झगड़ा नहीं, किन्तु आप फ़िरङ्गी हैं इसलिए हम आपको मार डालेंगे!" भयभीत, किन्तु चतुर लैफ़्टिनेण्ट ने उनसे दया की प्रार्थना की और कहा,—"मुझ एक ग़रीब आदमी को मारने से आपको क्या लाभ होगा? आपकी शत्रुता तो इस राज्य से है।" सिपाहियों ने दया में आकर उसे छोड़ दिया। किन्तु यह समाचार तुरन्त सर हेनरी लॉरेन्स तक पहुँचा। उसने एक चाल से सात नम्बर पलटन के हथियार रखा लिए।

१२ मई को सर हेनरी लॉरेन्स ने एक बहुत बड़ा दरबार किया, जिसमें उसने हिन्दोस्तानी ज़बान में एक ज़ोरदार वक्तृता दी। इस वक्तृता में उसने हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों को कम्पनी सरकार की वफ़ादारी का महत्व दर्शाया। उसने मुसलमान सिपाहियों से कहा कि पञ्जाब में महाराजा रणजीतसिंह ने इस-लाम धर्म की कितनी तौहीन की थी, और हिन्दुओं को याद दिलाया

कि सम्राट औरङ्गज़ेब ने हिन्दू धर्म पर किस तरह कुठार चलाया था, और दोनों को वतलाया कि केवल अङ्गरेज़ ही एक दूसरे से तुम्हारी रक्षा कर सकते हैं। इसके बाद उसने अपने ख़ैरख़ाह सिपाहियों को दुशाले, तलवारें और पगड़ियाँ इनाम में दीं। किन्तु इन सब बातों का प्रभाव और अधिक बुरा हुआ। हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों को और पूरी तरह दिखाई दे गया कि अङ्गरेज़ किस प्रकार हमें पुराने झगड़ों की याद दिला कर और एक दूसरे से लड़ाकर दोनों को पराधीन वनाए रखना चाहते हैं।

१३ मई को मेरठ के विप्लव का समाचार लखनऊ पहुँचा। १४ मई को दिल्ली की स्वाधीनता की ख़बर आई। सर हेनरी लॉरेन्स ने अब लखनऊ शहर के निकट दो स्थानों में ख़ास तौर पर क़िलेबन्दी शुरू कर दी, ताकि आवश्यकता के समय लखनऊ के अङ्गरेज़ इनमें आश्रय ले सकें। एक मच्छीभवन और दूसरे रेज़िडेन्सी। लखनऊ की समस्त अङ्गरेज़ स्त्रियाँ और वच्चे इन स्थानों में पहुँचा दिए गए और समस्त अङ्गरेज़ पुरुषों को फ़ौजी क़वायद सीखने का हुकुम हो गया।

अवध की सरहद नैपाल से मिली हुई है। सर हेनरी लॉरेन्स ने विशेष दूत भेज कर नैपाल दरवार के प्रधान मन्त्री सेनापति जङ्गबहादुर से प्रार्थना की कि आप इस आपत्ति में सेना से अङ्गरेज़ों की सहायता कीजिए।

ठीक ३० मई की रात को ९ वजे छावनी की तोप छुटी। विप्लव के प्रारम्भ होने का यही चिन्ह नियत था। सब से पहले

७१ नम्बर पलटन की बन्दूकों की आवाज़ सुनाई दी। अङ्गरेजों के बँगले जला दिए गए। जो अङ्गरेज़ मिला, मार डाला गया। ३१ मई को सवेरे हेनरी लॉरेन्स ने कुछ गोरी सेना और ७ नम्बर देशी सवार पलटन साथ लेकर विप्लवकारियों पर हमला किया। उस समय तक ७ नम्बर पलटन अङ्गरेजों की ओर थी, किन्तु मार्ग ही में इस पलटन ने भी कम्पनी का झण्डा फेंक कर हरा झण्डा हाथ में ले लिया। लॉरेन्स को उन्हें छोड़ कर अपने थोड़े से अङ्गरेज़ सिपाहियों सहित रेज़िडेन्सी में आकर शरण लेनी पड़ी। ३१ मई की शाम तक ४८ और ७१ नम्बर पैदल और ७ नम्बर सवार और अन्य देशी पलटनों में भी स्वाधीनता का हरा झण्डा फहराने लगा।

लखनऊ से लगभग ५० मील उत्तर-पश्चिम में सीतापुर है। वहाँ पर कम्पनी की तीन देशी पलटनें थीं। ३ जून को इन पलटनों ने कम्पनी का झण्डा फेंक कर हरा झण्डा हाथ में ले लिया। उन्होंने ख़ज़ाने पर क़ब्ज़ा कर लिया और जो अङ्गरेज़ मिला उसे मार डाला। कहा जाता है कि २४ अङ्गरेज़ सीतापुर में मारे गए और कुछ ने आस पास के ज़मींदारों के यहाँ जाकर पनाह ली।

सीतापुर को स्वाधीन करने के बाद वहाँ के सिपाही फ़र्रुख़ाबाद पहुँचे। कम्पनी ने फ़र्रुख़ाबाद के नवाब तफ़ज़्ज़लहुसेन ख़ाँ को गद्दी से उतार दिया था। फ़र्रुख़ाबाद के क़िले में बहुत से अङ्गरेज़ों ने पनाह ले रक्खी थी। एक ख़ासे ज़बरदस्त संग्राम के बाद विप्लवकारियों ने फ़र्रुख़ाबाद के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया, वहाँ के समस्त अङ्गरेज़ों को मार डाला और पदच्युत नवाब को

फिर से वहाँ की गद्दी पर बैठा दिया। पहली जुलाई तक फ़र्रुखाबाद की रियासत में एक भी अङ्गरेज़ बाक़ी न था।

मोहम्मदी, मालन, बहरायच, गोंडा, सिकरोरा, मेलापुर इत्यादि आस पास के समस्त इलाक़े १० जून सन् ५७ तक पूरी तरह आज़ाद होगए। स्थान स्थान पर अनेक अङ्गरेज़ मारे गए, अनेक भाग निकले, और कुछ को आस पास के ज़मींदारों ने अपने यहाँ शरण दी।

यह बात खास तौर पर ध्यान देने योग्य है कि अवध के जिन ज़मींदारों और ताल्लुक़ेदारों ने इस अवसर पर राष्ट्रीय विप्लव में खुले भाग लिया उनमें से अनेक ने अपने महलों के अन्दर अङ्गरेज़ अफ़सरों और बच्चों को पनाह देने में भी पूरी उदारता दिखलाई। इस समय के बचे हुए अनेक अङ्गरेज़ों के पत्रों और रिपोर्टों में इसका ज़िक्र आता है।

अवध के पूर्वीय भाग में फ़ैज़ाबाद का नगर सबसे मुख्य था। सर हेनरी लॉरेन्स ने स्वीकार किया है कि फ़ैज़ाबाद ज़िले के ताल्लुक़ेदारों के साथ अङ्गरेज़ों ने भारी अन्याय किया था। कुछ की पूरी जागीरें ज़ब्त कर ली गई थीं और कुछ के आधे गाँव छीन लिए गए थे।* मौलवी अहमदशाह, जिसका कुछ परिचय हम ऊपर दे आए हैं, इन्हीं पदच्युत ताल्लुक़ेदारों में से था। अवध की सल्तनत के छिनने के समय से मौलवी अहमदशाह ने अपना सारा समय इस स्वाधीनता महायुद्ध की तैयारी में लगा रक्खा था।

* Kaye and Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iii. p. 266.

फ़ैज़ाबाद से लखनऊ और आगरे तक वह बराबर दौरे करता रहता था। विप्लव पर उसने अनेक वक्तृताएँ दीं और अनेक पत्रिकाएँ लिखीं। अङ्गरेज़ों को जब इसका पता चला, उन्होंने मौलवी अहमद-शाह की गिरफ़्तारी की आज्ञा दी। अवध की पुलिस ने उसे गिरफ़्तार करने से इनकार किया। फ़ौज भेजनी पड़ी। अहमदशाह पर बग़ावत का मुक़द्दमा क़ायम किया गया। उसे फाँसी का हुकुम सुना दिया गया, और फाँसी की तारीख़ तक के लिए फ़ैज़ाबाद जेल में बन्द कर दिया गया।

मौलवी अहमदशाह की गिरफ़्तारी ने फ़ैज़ाबाद के इलाक़े भर में आग लगा दी। फ़ैज़ाबाद शहर में उस समय दो पैदल पलटन, कुछ सवार और कुछ तोपख़ाना था। तुरन्त फ़ैज़ाबाद के सिपाहियों और जनता ने मिल कर आज़ादी का झण्डा खड़ा कर दिया। परेड के ऊपर देशी सिपाहियों ने अपने अङ्गरेज़ अफ़सरों से साफ़ कह दिया कि इस समय के बाद हम केवल अपने हिन्दोस्तानी अफ़सरों की आज्ञा मानेंगे। सूबेदार दलीपसिंह ने फ़ौरन् आगे बढ़ कर तमाम अङ्गरेज़ अफ़सरों को क़ैद कर लिया। जेलख़ाने की दीवारें तोड़ दी गईं। मौलवी अहमदशाह की बेड़ियाँ काट डाली गईं। फ़ैज़ाबाद के समस्त सिपाहियों और जनता ने मौलवी अहमदशाह को अपना नेता चुना। मौलवी अहमदशाह ने फ़ैज़ाबाद के सारे अङ्गरेज़ों को लिख भेजा कि आप सब लोग फ़ौरन् फ़ैज़ाबाद छोड़ दीजिए। उसने सब अङ्गरेज़ों को किश्तियों में बैठा कर फ़ैज़ाबाद से रवाना कर दिया। उन्हें मार्ग के लिए

खाने पीने का सामान और कुछ सफ़रखर्च तक दे दिया गया। फ़ैज़ाबाद शहर में शान्ति क़ायम कर दी गई। ९ जून को सुबह शहर और आस पास के इलाक़े में एलान कर दिया गया कि कम्पनी की हुकूमत ख़त्म हो गई और वाजिदअली शाह की हुकूमत फिर से क़ायम हो गई।

शाहगञ्ज के तअाल्लुक़ेदार राजा मानसिंह को इससे पूर्व मालगुज़ारी के कुछ झगड़े में अङ्गरेज़ क़ैद कर चुके थे। मानसिंह इस समय विप्लव के नेताओं में से था; तथापि उसने विप्लव के अन्य नेताओं की इजाज़त से २९ अङ्गरेज़ स्त्रियों और बच्चों को अपने क़िले के अन्दर अन्त तक सुरक्षित रक्खा। मौलवी अहमदशाह की आज्ञा के अनुसार ख़ास फ़ैज़ाबाद के शहर में एक भी अङ्गरेज़ नहीं मारा गया।

फ़ैज़ाबाद के बाद ९ जून को सुलतानपुर और १० जून को सालोनी में स्वाधीनता का झण्डा फहराने लगा। सालोनी के ज़मींदार सरदार रुस्तमशाह और काला के राजा हनुमन्तसिंह दोनों ने प्रतिज्ञा कर ली थी कि बिना अङ्गरेज़ी राज्य को हिन्दोस्तान से निकाले विश्राम न लेंगे। तथापि इन दोनों भारतीय नरेशों ने आश्रित अङ्गरेज़ों और उनके बाल बच्चों के साथ असाधारण उदारता का व्यवहार किया।

राजा हनुमन्तसिंह के विषय में इतिहास-लेखक मॉलेसन लिखता है—

"इस उदार राजपूत की अधिकांश जागीर अङ्गरेज़ों की नई लगान-

पद्धति के कारण छीनी जा चुकी थी। वह इस अन्याय और अपमान को बहुत महसूस करता था। तथापि वह स्वभाव से इतना उदार था कि जिस क़ौम ने उसको लगभग बरबाद कर दिया था उस क़ौम के भागे हुए अफ़सरों के साथ वह वैसा ही बरताव करता था जैसा किसी भी दुखित मनुष्य के साथ। उसने मुसीबत में उनकी सहायता की। उसने उन्हें उनके स्थानों तक सुरक्षित पहुँचा दिया। किन्तु जब विदा होते समय कप्तान बैरो ने राजा हनुमन्तसिंह से कहा कि—'मुझे आशा है, आप इस विप्लव के शान्त करने में अङ्गरेज़ों को मदद देंगे' तो राजा हनुमन्तसिंह सीधा खड़ा हो गया और बोला—'साहब, तुम्हारे मुल्क के लोग हमारे मुल्क में घुस आए और उन्होंने हमारे बादशाह (वाजिदअली शाह) को निकाल दिया। तुमने अपने अफ़सरों को ज़िलों में भेजा ताकि वे पुराने रईसों और ज़मींदारों के पट्टों की जाँच करें। एक बार में तुमने मुझसे वे सब ज़मीनें छीन लीं जो अनन्त काल से मेरे कुटुम्ब में चली आती थीं। मैंने सह लिया। अचानक तुम पर आफ़त आई। तुमने मुझे बरबाद किया था और तुम मेरे ही पास आए। मैंने तुम्हें बचा दिया। किन्तु अब,—अब मैं अपनी सेना जमा करके लखनऊ जा रहा हूँ और तुम्हें मुल्क से बाहर निकालने की कोशिश करूँगा।' "*

इतिहास से पता चलता है कि उस समय अवध के अन्दर अनेक ही हिन्दू और मुसलमान हनुमन्तसिंह मौजूद थे, जिनमें जितना ज़बरदस्त स्वाधीनता का प्रेम था उतनी ही ज़बरदस्त वीरोचित उदारता भी थी।

सारांश यह कि ३१ मई और १० जून के बीच केवल लखनऊ शहर के एक भाग को छोड़ कर समस्त अवध अङ्गरेज़ी राज्य

* Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iii, p. 273. (footnote).

क़े चङ्गुल से निकल गया। प्रसिद्ध इतिहास वेत्ता फ़ॉरेस्ट लिखता है—

"इस प्रकार दस दिन के अन्दर अवध से अङ्गरेज़ी राज्य स्वप्न की तरह मिट गया। उसका कोई अवशेष तक बाक़ी न रहा। फ़ौज ने हमारे विरुद्ध विद्रोह किया। जनता ने पराधीनता की बेड़ियाँ तोड़ कर फेंक दीं। किन्तु उनमें से किसी ने बदला नहीं लिया, किसी ने अन्याय नहीं किया। एक दो अपवादों को छोड़ कर शेष समस्त वीर और विद्रोही जनता ने भागते हुए अङ्गरेज़ों के साथ स्पष्ट दयालुता का व्यवहार किया। अवधनिवासियों के जिन शासकों (अर्थात् अङ्गरेज़ों) ने अपनी सत्ता के दिनों में, अत्यन्त अच्छी (?) नीयत से, अनेक लोगों के साथ घोर अन्याय किया था उन शासकों का जब पतन हो गया तो अवधनिवासियों ने उनके साथ अपने व्यवहार में उच्च श्रेणी की उदारता और दयालुता बरती। अवधनिवासियों के ये गुण साफ़ चमकते हुए दिखाई दे रहे थे।"*

लॉर्ड डलहौज़ी का बयान है कि वाजिदअली शाह के अत्याचारों से अवध की प्रजा दुखी थी! किन्तु जिस प्रकार सन् ५७ में

---

* "Thus in the course of ten days, the English administration in Oudh vanished like a dream and left not a wreck behind. The troops mutinied, the people threw off their allegiance. But there was no revenge, no cruelty. The brave and turbulent population, with a few exceptions, treated the fugitives of the ruling race with marked kindness, and the high courtesy and chivalry of the people of Oudh was conspicuous in their dealings with their fallen masters who, in the days of their power, had, from the best (?) of motives, inflicted on many of them a grave wrong."—Sir George W. Forrest's *State Papers*, vol. ii. p. 37.

समस्त अवध के ज़मींदारों, जागीरदारों, राजाओं, सिपाहियों, किसानों, सौदागरों, सारांश यह कि समस्त हिन्दू और मुसलमानों ने मिल कर वाजिदअली शाह को फिर से अवध के सिंहासन पर बैठाने के लिए दस दिन के अन्दर अङ्गरेजी राज्य को उखाड़ कर फेंक दिया, उससे वाजिदअली शाह के शासन की सर्वप्रियता और कम्पनी के शासन की अप्रियता दोनों का साफ़ पता चल जाता है। अवध के अन्दर उस समय एक ग्राम भी ऐसा न बचा होगा जिसने कम्पनी के झण्डे को तोड़ कर न फेंक दिया हो।

अवध के विविध भागों से ज़मींदारों के सिपाही और स्वयं-सेवक सहस्रों की संख्या में अब लखनऊ में बेगम हज़रत महल के झण्डे के नीचे आ आकर जमा होने लगे। लखनऊ शहर का एक भाग अभी तक अङ्गरेज़ों के हाथों में था। दो पलटन सिखों की, एक पलटन गोरों की और कुछ तोपख़ाना इस समय लॉरेन्स के पास था। कानपुर के अङ्गरेज़ी क़िले का मोहासरा उस समय जारी था। कानपुर में अङ्गरेज़ों के हारने का समाचार २८ जून को लखनऊ पहुँचा। लखनऊ के विप्लव-कारियों ने अङ्गरेज़ों पर हमला करने के लिए चिनहट नामक स्थान पर चढ़ाई की। कानपुर की पराजय का समाचार सुन कर सर हेनरी लॉरेन्स की हिम्मत टूटी हुई थी। २९ जून को लोहे के पुल के पास कम्पनी की सेना जमा हुई। एक अत्यन्त घमासान संग्राम हुआ। अन्त में हार कर सर हेनरी लॉरेन्स को पीछे हटना पड़ा। अङ्गरेज़ों की तीन तोपें मैदान में रह गईं। सर

हेनरी लॉरेन्स को लौट कर रेज़िडेन्सी में आश्रय लेना पड़ा। इसके बाद विप्लवकारियों ने मच्छीभवन और रेज़िडेन्सी दोनों को घेर लिया। अङ्गरेज़ों ने मच्छीभवन के "मैगज़ीन को आग लगा दी। मच्छीभवन भी विप्लवकारियों के हाथों में आ गया।

लखनऊ के अन्दर समस्त अङ्गरेज़ी सत्ता अब रेज़िडेन्सी के मकान में क़ैद हो गई। उसमें लगभग एक हज़ार अङ्गरेज़ और आठ सौ हिन्दोस्तानी थे। अस्त्र शस्त्र और रसद का सामान काफ़ी था। विप्लवकारियों ने चारों ओर से रेज़िडेन्सी को घेरे रक्खा। लखनऊ के शेष नगर और समस्त अवध पर वाजिदअली शाह के पुत्र शहज़ादे बिरजिस क़द्र की ओर से बेगम हज़रत महल का शासन स्थापित हो गया।

एक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक लिखता है—

"समस्त अवध ने हमारे विरुद्ध हथियार उठा लिए थे। न केवल बाज़ाब्ता फ़ौज ही, बल्कि पदच्युत नवाब की फ़ौज के साठ हज़ार आदमी, ज़मींदार, उनके सिपाही, ढाई सौ क़िले—जिनमें से बहुतों पर भारी तोपें लगी हुई थीं—सब के सब हमारे विरुद्ध खड़े हो गए। इन लोगों ने कम्पनी के शासन को अपने नवाबों के शासन के साथ तोल कर देख लिया था और लगभग एक मत से यह फ़ैसला कर दिया था कि उनके अपने नवाबों का शासन कम्पनी के शासन से बेहतर था। जो पेन्शनर हमारी सेना में काम कर चुके थे उन तक ने साफ़ साफ़ हमारे राज्य के विरुद्ध फ़ैसला दे दिया था और उनमें से प्रत्येक विप्लव में शामिल था।"*

* *Red Pamphlet*, by G. B. Malleson.

सैंतालीसवाँ अध्याय

दिल्ली, पञ्जाब और बीच की घटनाएँ

दिल्ली का महत्व

किन्तु सन् ५७ के महान विप्लव की योजना करने वालों के लक्ष्य की दृष्टि से समस्त महायुद्ध का मर्मस्थान उस समय दिल्ली था। सम्राट बहादुरशाह के नाम पर विप्लव का प्रारम्भ हुआ था। सम्राट बहादुरशाह ही विप्लवकारियों की आशाओं का मुख्य केन्द्र था और बहुत दरजे तक दिल्ली की सफलता पर भारत की स्वाधीनता निर्भर थी। इसीलिए भारत भर के अङ्गरेज़ों और विप्लवकारियों दोनों की नज़रें दिल्ली पर लगी हुई थीं। समस्त भारत से विद्रोही सेनाएँ दिल्ली में आ आकर जमा हो रही थीं और स्थान स्थान से कम्पनी के ख़ज़ाने ला लाकर सम्राट बहादुरशाह के क़दमों पर रख देती थीं। इसी प्रकार अङ्गरेज़ों ने भी दिल्ली को फिर से विजय करने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा रक्खी थी। किन्तु दिल्ली के महत्वपूर्ण संग्रामों को वर्णन करने से

पहले हमें दिल्ली के उत्तर-पश्चिम में पञ्जाब की ओर एक दृष्टि डालनी होगी ; विशेषकर क्योंकि उस ओर से ही अङ्गरेज़ों ने दिल्ली पर हमला किया ।

सिखों को अपनी ओर करने के प्रयत्न

लॉर्ड कैनिङ्ग ने मेरठ और दिल्ली के अशुभ समाचार पाते ही एक ओर मद्रास, कलकत्ता, रङ्गून इत्यादि से फ़ौज जमा करके जनरल नील के अधीन बनारस और इलाहाबाद की ओर भेजी और दूसरी ओर कमाण्डर-इन-चीफ़ ऐनसन को, जो उस समय शिमले में था, पञ्जाब से सेना जमा करके तुरन्त दिल्ली पर चढ़ाई करने और दिल्ली फिर से विजय करने की आज्ञा दी। इसी समय लॉर्ड कैनिङ्ग ने भारतीय सिपाहियों को सान्त्वना देने के लिए समस्त भारत में एक एलान प्रकाशित करवाया, जिसका सार यह था कि कम्पनी सरकार का विचार न कभी किसी के धर्म में हस्तक्षेप करने का था और न है, सिपाही यदि चाहें तो अपने कारतूस स्वयं बना सकते हैं और जिन लोगों ने कम्पनी का नमक खाया है उनके लिए विप्लव में भाग लेना पाप है, इत्यादि । किन्तु इस तरह के एलानों का अब क्या प्रभाव हो सकता था ।

जनरल ऐनसन को दिल्ली फिर से विजय करने के लिए सेना केवल पञ्जाब से मिल सकती थी। यदि पञ्जाब ने उस समय विप्लव का उसी प्रकार साथ दिया होता जिस प्रकार अवध और रुहेलखण्ड ने, तो अङ्गरेज़ों के लिए दिल्ली अथवा भारत को फिर

से विजय कर सकना सर्वथा असम्भव होता। पञ्जाब का चीफ़-कमिश्नर सर जॉन लॉरेन्स इस बात को अच्छी तरह समझता था। इसलिए पञ्जाब को और विशेषकर सिक्खों को उस सङ्कट के समय अङ्गरेज़ सरकार का भक्त बनाए रखने के लिए सर जॉन लॉरेन्स ने जो जो उपाय किए वे अत्यन्त महत्वपूर्ण थे।

सिक्खों को यह समझाया गया कि मुसलमान बादशाह तुम्हारे धर्म पर किस तरह हमले करते रहे हैं, और किस प्रकार औरङ्गज़ेब ने दिल्ली के अन्दर गुरु तेग़बहादुर का सर क़लम करवा दिया था। सिक्खों को बताया गया कि अब तुम्हें अङ्गरेज़ों की सहायता से अपने धर्म के शत्रुओं से बदला लेने और दिल्ली के नगर को ज़मीन से मिला देने का मौक़ा मिला है। इतना ही नहीं, वरन् वृद्ध सम्राट बहादुरशाह के नाम से एक जाली एलान उन दिनों जगह जगह दीवारों पर लगा हुआ दिखाई दिया जिसमें लिखा था कि बहादुरशाह का पहला फ़रमान यह है कि सब सिक्खों को मार डाला जाय। इतिहास-लेखक मेटकाफ़ लिखता है कि जिस समय यह झूठा एलान प्रकाशित किया गया, ठीक उसी समय बूढ़ा बहादुरशाह हाथी पर बैठ कर दिल्ली की गलियों में अपने मुख से यह एलान करता फिर रहा था कि यह युद्ध केवल फिरङ्गियों के साथ है और किसी भी भारतवासी को किसी तरह की हानि न पहुँचाई जाय।

सर जॉन लॉरेन्स की इन चालों का यथेष्ट प्रभाव पड़ा। सम्राट बहादुरशाह और विप्लव के अन्य नेताओं ने सिक्खों और सिक्ख

राजाओं को अपनी ओर करने के भरसक प्रयत्न किए, किन्तु उन्हें सफलता न हो सकी। बहादुरशाह ने अपना एक विशेष दूत ताजुद्दीन पटियाला, नाभा और झींद के राजाओं तथा अन्य सिख सरदारों के पास भेजा। सिख राजाओं से मिलने के बाद ताजुद्दीन ने सम्राट को एक पत्र लिखा, जिसके कुछ वाक्य ये थे—

"पञ्जाब के सिख सरदार सब सुस्त और कायर हैं। बहुत कम आशा है कि वे विप्लवकारियों का साथ दें। ये लोग फ़िरङ्गियों के हाथों के खिलौने बने हुए हैं। मैं स्वयं इन लोगों से एकान्त में मिला। मैंने उनसे बात चीत की और उनके सामने अपना कलेजा पानी कर दिया। मैंने उनसे कहा, 'आप लोग फ़िरङ्गियों का साथ क्यों देते हैं और मुल्क की आज़ादी के साथ विश्वासघात क्यों करते हैं? क्या स्वराज्य में आप इससे अच्छे न रहेंगे? इसलिए कम से कम अपने फ़ायदे के लिए ही आपको दिल्ली के बादशाह का साथ देना चाहिए!' इस पर उन्होंने जवाब दिया, 'देखिए, हम सब मौक़े के इन्तज़ार में हैं। ज्योंही हमें सम्राट का हुकुम मिलेगा हम एक दिन के अन्दर इन काफ़िरों को मार डालेंगे।' × × × किन्तु मेरा ख़याल है कि उन पर बिलकुल एतबार नहीं किया जा सकता।"

कुछ दिनों बाद चन्द सवार सम्राट का सन्देशा लेकर इन सिख राजाओं के पास पहुँचे। इस बीच लॉर्ड कैनिङ्ग और सर जॉन लॉरेन्स के तीर भी सिख राजाओं के दिलों और दिमाग़ों पर चल चुके थे। सिख राजाओं ने दिल्ली सम्राट के सन्देशे का तिरस्कार किया और पत्र लाने वाले सवारों को मरवा डाला।

पञ्जाब की प्रजा को अपनी ओर रखने के लिए सर जॉन

लॉरेन्स ने एक और छोटा सा उपाय यह भी किया कि उसने प्रारम्भ ही में पञ्जाब के विविध जिलों से ६ फ़ीसदी पर कम्पनी के नाम से क़र्ज़ा लेना शुरू किया। इसके दो मुख्य परिणाम हुए। एक यह कि यह रक़म बड़े सङ्कट के समय कम्पनी के काम आई और दूसरा यह कि पञ्जाब के जिन हज़ारों साहूकारों और जमींदारों ने कम्पनी को क़र्ज़ दिया उन्हें कम्पनी के शासन के बने रहने ही में अपना हित दिखाई देने लगा।

लखनऊ के विप्लवकारी नेताओं का कुछ पत्र व्यवहार उस समय काबुल के अमीर दोस्तमोहम्मद ख़ाँ के साथ जारी था। मालूम नहीं अफ़ग़ानिस्तान में उसके मुक़ाबले के लिए अङ्गरेजों ने क्या क्या किया, किन्तु सरहद की मुसलमान क़ौमों को अपनी ओर रखने के लिए सर जॉन लॉरेन्स ने ख़ूब धन व्यय किया और उनमें प्रचार करने के लिए अनेक मुल्ला नौकर रक्खे।

हिन्दोस्तानी पलटनों से हथियार रखाया जाना

पञ्जाब के अन्दर सिख और गोरी पलटनों के अतिरिक्त हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों की भी अनेक पलटनें थीं। ये लोग राष्ट्रीय विप्लव में भाग लेने की क़समें खा चुके थे। इनके अतिरिक्त पञ्जाब के अनेक नगरों की साधारण हिन्दू और मुसलमान जनता भी विप्लव के साथ पूरी सहानुभूति रखती थी। इसलिए अब हमें यह देखना होगा कि इन सब के प्रयत्नों को विफल करने के लिए अङ्गरेज़ अफ़सरों ने क्या क्या उपाय किए और उनमें उन्हें कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई।

पञ्जाब की सब से बड़ी छावनी उन दिनों लाहौर के निकट मियाँमीर में थी। मियाँमीर में हिन्दोस्तानी सिपाही गोरे सिपाहियों से ठीक चौगुने थे। पञ्जाब की हिन्दोस्तानी सेना ने यह तय कर रक्खा था कि सब से पहले मियाँमीर के सिपाही लाहौर के क़िले पर चढ़ाई करके उस पर क़ब्ज़ा कर लें, और फिर पेशावर, अमृतसर, फ़िलौर तथा जालन्धर की पलटनें एक साथ विप्लव प्रारम्भ कर दें। मियाँमीर की पलटनें रॉबर्ट मॉण्टगुमरी के अधीन थीं। मेरठ का समाचार पाते ही मॉण्टगुमरी सावधान होगया। उसे अपने एक गुप्तचर द्वारा सूचना मिली कि मियाँमीर के सिपाही भी विप्लव के लिए तैयार हैं। तुरन्त १३ मई को सवेरे मॉण्टगुमरी ने लगभग एक हज़ार हिन्दोस्तानी सिपाहियों को परेड पर जमा किया। गोरे सवार तोपख़ाने सहित उनके चारों ओर खड़े कर दिए गए। सिपाहियों से हथियार रख देने के लिए कहा गया। सिपाहियों ने और कोई चारा न देख, तुरन्त हथियार रख दिए। उसके बाद वे चुपचाप अपनी बारगों में चले आए।

उसी समय एक पलटन गोरों की लाहौर के क़िले में भेजी गई जिसने वहाँ पहुँच कर वहाँ के तोपख़ाने की मदद से क़िले के अन्दर के देशी सिपाहियों से हथियार रखा लिए, उन्हें क़िले से बाहर बारगों में भेज दिया और लाहौर के क़िले पर स्वयं क़ब्ज़ा कर लिया।

निस्सन्देह मॉण्टगुमरी के ठीक समय के साहस और उसकी फ़ुरती ने पञ्जाब को कम्पनी के हाथों से निकल जाने से बचा लिया और समस्त विप्लव की भावी प्रगति पर बहुत बड़ा प्रभाव डाला।

सर जॉन लॉरेन्स लिखता है—

"यदि पञ्जाब चला जाता तो हम अवश्य बरबाद हो जाते। उत्तरीय प्रान्तों तक सहायता पहुँच सकने से बहुत पहले पहले समस्त अङ्गरेज़ों की हड्डियाँ धूप में पड़ी सूखती होतीं। इङ्गलिस्तान कभी उस आफ़त से न पनप सकता था और न एशिया में फिर से अपनी सत्ता को क़ायम कर सकता था।"*

फ़ीरोज़पुर में कम्पनी का एक बहुत बड़ा मैगज़ीन था। १३ मई को यह देखने के लिए कि वहाँ के सिपाहियों के भाव क्या हैं, अङ्गरेज़ों ने उन्हें परेड पर बुलाया। सिपाहियों का व्यवहार इतना सुन्दर रहा कि अङ्गरेज़ अफ़सरों का सन्देह उन पर से जाता रहा। किन्तु उसी दिन चन्द घण्टे बाद फ़ीरोज़पुर के सिपाहियों ने विप्लव शुरू कर दिया। अङ्गरेज़ों ने मैगज़ीन को आग लगा दी। नगरनिवासियों ने विप्लव में पूरा साथ दिया। अङ्गरेज़ों के मकान जला डाले गए। जो अङ्गरेज़ मिला, मार डाला गया। इसके बाद वहाँ की भारतीय सेना दिल्ली की ओर रवाना होगई। गोरी पलटन ने कुछ दूर तक उसका पीछा किया, किन्तु अन्त में उसे असफल फ़ीरोज़पुर लौट आना पड़ा।

---

* "Had the Punjab gone, we must have been ruined. Long before reinforcements could have reached the upper provinces, the bones of all Englishmen would have been bleaching in the sun. England could never have recovered from the calamity and retrieved her power in the East."—*Life of Lord Lawrence*, vol. ii. p. 335.
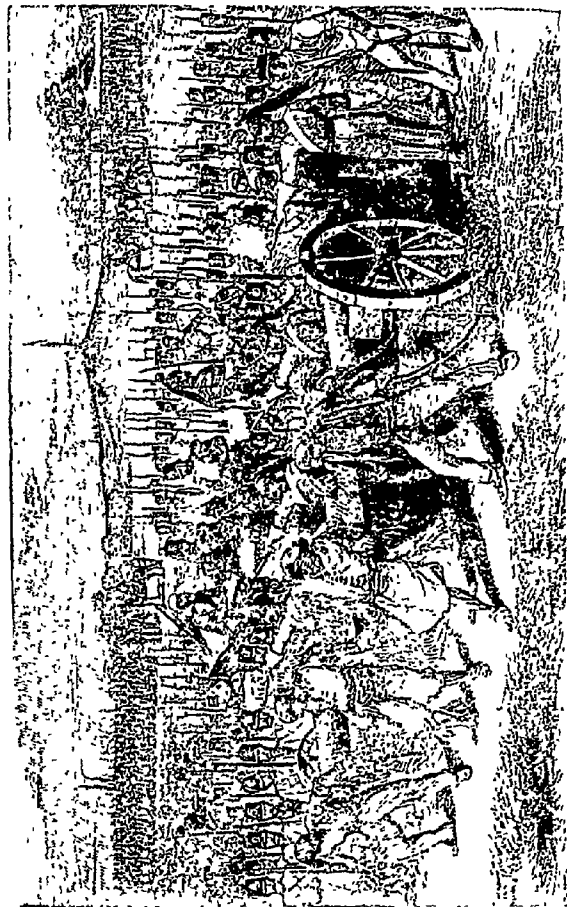
जून १८५७ में बग़ावत के सन्देह पर हिन्दोस्तानी सिपाहियों का तोप के मुँह से उड़ाया जाना

[जार्ज विकर्स द्वारा प्रकाशित "नैरेटिव ऑफ़ दी इण्डियन रिवोल्ट" से]

भीषण क्रूरता

पेशावर के विषय में कहा जाता है कि वहाँ पर २४, २७, और ५१ नम्बर पैदल और ५ नम्बर सवार, इन चार देशी पलटनों ने २२ मई सन् १८५७ को विप्लव प्रारम्भ करने का निश्चय कर रक्खा था। ये चारों पलटनें पेशावर के आस पास अलग अलग छावनियों में थीं। मियाँमीर का समाचार पाते ही पेशावर के अङ्गरेज़ अफ़सरों ने झेलम में आस पास की गोरी सेना को तथा अपनी विश्वासपात्र हिन्दोस्तानी पलटनों को जमा किया। २२ मई को प्रातःकाल कुछ गोरी सेना और कुछ तोपें चारों स्थानों पर भेज दी गईं, और चारों पूर्वोक्त पलटनों को केवल सन्देह पर घेर कर उनसे हथियार रखा लिए गए।

इन निःशस्त्र सिपाहियों को अपनी बारगों में रहने की आज्ञा दी गई। लिखा है कि २२ तारीख़ की रात को उनमें से कुछ ने नगर की ओर जाना चाहा। डर था कि नगर में अथवा आस पास विप्लव खड़ा न हो जाय। उन्हें रोक दिया गया और तुरन्त उनमें से १३ या १४ को इसलिए फाँसी पर लटका दिया गया ताकि दूसरों को सबक़ मिले।* बारगों के बाहर तोपें लगा दी गईं। फिर उनमें से किसी को भी बाहर निकलने का साहस न हो सका। तथापि बाद में इनमें से अनेक को फाँसी दी गई और अनेक को तोप के मुँह से बाँध कर उड़ा दिया गया।

---

* *Narrative of the Indian Revolt*, p. 35.

पेशावर के निकट होती मरदान में ५५ नम्बर पैदल पलटन थी। इस पलटन के करनल स्पॉटिस वुड को पूरा विश्वास था कि मेरी पलटन विद्रोह न करेगी। पञ्जाब के अन्य अङ्गरेज़ों ने आग्रह किया कि इस पलटन से भी हथियार रखा लिए जायँ। करनल ने इसका विरोध किया। पञ्जाब सरकार ने हथियार रखा लेने के पक्ष में फ़ैसला दिया। इस पर कहा जाता है कि करनल स्पॉटिस वुड ने अपने कमरे में जाकर आत्महत्या कर ली।

पेशावर से गोरी सेना और तोपें इस पलटन से हथियार रखा लेने के लिए भेजी गईं। ५५ नम्बर के कुछ सिपाहियों ने यह समाचार पाते ही होती मरदान के क़िले से निकल कर भागना चाहा, किन्तु कम्पनी की सेना ने, जो उनसे संख्या में अधिक थी और जिसके पास भारी तोपें थीं, उन्हें घेर लिया। १५० को उसी स्थान पर मार डाला गया, कुछ भाग निकले और शेष गिरफ़्तार कर लिए गए। लिखा है कि "५५ नम्बर पलटन के क़ैदियों के साथ अधिक भयङ्कर व्यवहार किया गया ताकि दूसरों को शिक्षा हो। उनका कोर्ट मार्शल हुआ, उन्हें दण्ड दिया गया और उनमें से हर तीसरे मनुष्य को तोप के मुँह से उड़ाने के लिए चुन लिया गया।"*

एक अङ्गरेज़ अफ़सर, जो इन लोगों के तोप से उड़ाए जाने

---

* "Of the prisoners of the 55th a more aweful example was made. They were tried, condemned, and every third man was selected to be blown away from guns."—Ibid, p. 36.

१० जून सन् १८५७ को पेशावर में हिन्दोस्तानी सिपाहियों का तोप के मुँह से उड़ाया जाना।

"तोपों की आवाज़ के साथ-साथ धुएँ से ऊपर चारों ओर टाँगें, हाथ और सिर उड़ते हुए दिखाई देते थे"—एक अंगरेज़ साक्षी

[From the "History of Indian Mutiny," by Charles Ball.]

के समय उपस्थित था, उस दृश्य को वर्णन करते हुए लिखता है—

"उस दिन की परेड का दृश्य विचित्र था। परेड पर लगभग नौ हज़ार सिपाही थे× × ×एक चौरस मैदान के तीन ओर फ़ौज खड़ी कर दी गई। चौथी ओर दस तोपें थीं। × × ×पहले दस क़ैदी तोपों के मुँह से बाँध दिए गए। इसके बाद तोपख़ाने के अफ़सर ने अपनी तलवार हिलाई, तुरन्त तोपों की गरज सुनाई दी, और धुएँ के ऊपर हाथ, पैर और सिर चारों ओर हवा में उड़ते हुए दिखाई देने लगे। यह दृश्य चार बार दोहराया गया। हर वार समस्त सेना में से एक ज़ोर की गूँज सुनाई देती थी जो दृश्य की बीभत्सता के कारण लोगों के हृदयों से निकलती थी। उस समय से हर सप्ताह में एक या दो वार उसी तरह के प्राणदण्ड की परेड होती रहती है और हमें उसकी इतनी आदत हो गई है कि अब हम पर उसका कोई असर नहीं होता× × ×।"*

इतिहास-लेखक के लिखता है कि ५५ नम्बर पलटन के अधिकांश सिपाहियों की निर्दोषता को करनल निकल्सन और सर जॉन

---

* "That parade was a strange scene. There were about nine thousand men on parade ; . . . The troops were drawn up on three sides of a square, the fourth side being occupied by ten guns. . . . The first ten of the prisoners were then lashed to the guns, the artillery officer waved his sword, you heard the roar of the guns, and above the smoke you saw legs, arms, and heads,—flying in all directions. There were four of these salvoes, and at each a sort of buzz went through the whole mass of the troops, a sort of murmur of horror. Since that time we have had execution parades once or twice a week, and such is the force of habit we now think little of them."—Ibid, p. 36.

लॉरेन्स दोनों ने अपने पत्रों में स्वीकार किया है। तथापि इस पलटन के छिपे और भागे हुए सिपाही जून और जुलाई के महीनों में बराबर दूर दूर से पकड़ कर लाए जाते थे और इसी प्रकार तोप के मुँह से उड़ाए जाते थे। कभी कभी और भी अधिक वीभत्स तरीक़ों से उनके प्राण लिए जाते थे।*

बग़ावत के सन्देह पर उन दिनों लोगों का तोपों के मुँह से उड़ाया जाना एक साधारण बात थी, जो अनेक स्थानों पर और अनेक बार दोहराई गई।

सन्देह ही पर दस नम्बर सवार पलटन के हथियार रखा लिए गए। इन सब सवारों के घोड़े उनके अपने थे। ये घोड़े ज़ब्त कर लिए गए और आठ हज़ार नक़द रुपए भी, जो सवारों के पास निकले, ले लिए गए। लिखा है कि घोड़ों को बेच कर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के ख़ज़ाने में पचास हज़ार रुपए जमा किए गए। सिपाहियों को ज़बरदस्ती किश्तियों में बैठा कर सिन्धु नदी में कहीं पर भेज दिया गया। मालूम नहीं, उनका अन्त क्या हुआ। एक अङ्गरेज़ अफ़सर, जो उस समय मौजूद था, लिखता है—"मुझे आशा है कि वहाँ पर उनमें से हर एक माता के पुत्र को तेज़ धार में डूबने का मौक़ा मिल जायगा।"†

---

* Kaye and Malleson's *History of the Indian Mutiny*, book vi, chapter iv.

† ". . . where I expect every mother's son will have a chance of being drowned in the rapids."—Narrative, p. 38.

. पेशावर तथा उसके पास के इलाक़े में विप्लवकारियों को अथवा विप्लव के सन्देह पर लोगों को भयङ्कर यातनाएँ दे देकर मारा गया, जिनके विषय में इतिहास-लेखक के लिखता है—

"यद्यपि मेरे पास बहुत से पत्र मौजूद हैं जिनमें यह बयान किया गया है कि हमारे अफ़सरों ने किस तरह की वीभत्स और क्रूर यातनाएँ लोगों को पहुँचाईं, तथापि मैं उनके विषय में एक शब्द भी नहीं लिखता, ताकि यह विषय ही अब संसार के सामने न रहे।"*

पञ्जाब के विप्लवकारियों के कृत्य

अब हम पेशावर से हट कर जालन्धर दोआब की ओर आते हैं। जालन्धर, फ़िलौर और लुधियाने की देशी पलटनें चुपचाप, किन्तु दृढ़ता के साथ विप्लव की तैयारी कर रही थीं। ९ जून को अचानक जालन्धर की फ़ौज ने आधी रात को विद्रोह शुरू किया। गोरी सेना जालन्धर में मौजूद थी, किन्तु देशी फ़ौज इस तरह अचानक बिगड़ी कि गोरी सेना कर्तव्यविमूढ़ हो गई। जालन्धर के सिपाहियों ने वहाँ के अङ्गरेज़ों के संहार करने में अपना समय नष्ट नहीं किया। वे तुरन्त दिल्ली की ओर चल दिए।

जालन्धर के सिपाहियों ने अपने में से एक सवार फ़िलौर के सिपाहियों को सूचना देने के लिए भेजा। उसी समय फ़िलौर की

---

* "Though I have plenty of letters with me describing the terrible and cruel tortures committed by our officers, I do not write a word about it, so that this subject should be no longer before the world!"—Kaye's *Sepoy War*, book vi, chap. iv.

देशी पलटनें भी विगड़ खड़ी हुईं। इसके बाद जालन्धर के सिपाही फ़िलौर पहुँच गए। दोनों जगह की पलटनें एक दूसरे से गले मिलीं और फिर दिल्ली की ओर बढ़ चलीं। मार्ग में सतलज नदी थी। जिसके उस पार लुधियाने का नगर था। लुधियाने के अङ्गरेज़ अफ़सरों को जालन्धर और फ़िलौर के विद्रोह का पता लगने से पहले ही वहाँ के देशी सिपाहियों को इसकी सूचना मिल गई। लुधियाने के अङ्गरेज़ अफ़सरों ने सतलज के ऊपर का किश्तियों का पुल तोड़ दिया। गोरी और सिख पलटनें तथा महाराजा नाभा की कुछ पलटनें सतलज नदी के ऊपर फ़िलौर से आने वाली विप्लवकारी सेना को रोकने के लिए जमा हो गईं। विप्लवकारियों को जब इसका पता चला तो उन्होंने रात्रि के समय चुपचाप चार मील ऊपर से सतलज को पार करना चाहा। किन्तु अभी उनमें से कुछ ही पार पहुँच पाए थे कि अङ्गरेज़ों और सिखों ने उन पर तोपों के गोले बरसाने शुरू कर दिए। रात के लगभग दस बजे थे। चाँद के निकलने में अभी दो घण्टे बाक़ी थे। अँधेरे में विप्लवकारियों को यह भी पता न चलता था कि शत्रु की सेना किस ओर है। उनकी तोपें भी अभी नदी को पार न कर पाई थीं। तथापि उसी हालत में वे दो घण्टे शत्रु का मुक़ाबला करते रहे। इतने में किसी सिपाही की एक गोली अङ्गरेज़ी सेना के कमाण्डर विलियम्स की छाती में जाकर लगी। वह वहीं पर ढेर हो गया। इसके बाद सुबह तक घमासान संग्राम होता रहा। अन्त में सिखों और अङ्गरेज़ों को पीछे हट जाना पड़ा।

विजयी विप्लवकारियों ने दोपहर के लगभग लुधियाने में प्रवेश किया। लुधियाने का नगर पञ्जाब में विप्लव का एक विशेष केन्द्र था। नगर भर में उस दिन विप्लव शुरू हो गया। जेलखाना तोड़ दिया गया। अङ्गरेज़ी मकान जला दिए गए। सरकारी ख़ज़ाना लूट लिया गया। इसके पश्चात् जालन्धर, फ़िलौर और लुधियाने की सेना मिल कर स्वाधीनता के उस युद्ध में भाग लेने के लिए दिल्ली की ओर रवाना हो गई।

सन् ५७ के विप्लव में पञ्जाब की ओर से यही मुख्य सहायता थी।

पञ्जाब के शासकों को उस समय सब से अधिक सन्देह पूर्वीय प्रान्तों के रहने वालों पर था, जिन्हें पञ्जाब में 'हिन्दोस्तानी' कहते हैं। इसलिए विप्लव के शुरू के दिनों में पञ्जाब के अनेक शहरों और ग्रामों से सहस्रों निर्दोष और प्रतिष्ठित 'हिन्दोस्तानियों' को ज़बरदस्ती पञ्जाब से निर्वासित कर सतलज के इस पार भेज दिया गया। इसके बाद पञ्जाब के अङ्गरेज़ों के लिए अपने यहाँ की गोरी और सिख सेनाओं को दिल्ली विजय करने के लिए भेजना और भी आसान हो गया।

सिख राजाओं का कम्पनी को मदद देना

अब हम फिर विप्लव के प्रधान केन्द्र दिल्ली की ओर आते हैं। हम ऊपर लिख चुके हैं कि लॉर्ड कैनिङ्ग ने दिल्ली का समाचार पाते ही कमाण्डर-इन-चीफ़ जनरल ऐनसन को आज्ञा दी

कि तुम फ़ौरन् दिल्ली पर चढ़ाई करके दिल्ली फिर से विजय करो। जनरल ऐनसन शिमले से अम्बाले पहुँचा। अम्बाले पहुँच कर उसने दिल्ली पर चढ़ाई करने की तैयारी शुरू की। इस कार्य में ऐनसन को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा और बड़ी देर लगी। कारण यह था कि अम्बाले और उसके आस पास का कोई हिन्दोस्तानी अङ्गरेज़ों को किसी तरह की सहायता देने के लिए तैयार न था। ऐनसन को न गाड़ियाँ मिलती थीं और न मज़दूर, न रसद मिलती थी और न चारा। इतिहास-लेखक के लिखता है—

"हर श्रेणी के भारतवासी हमसे दूर रहे। ये लोग ख़ामोश बैठे हुए इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि परिस्थिति किस ओर को मुड़ती है। पूँजीपतियों से लेकर कुलियों तक सब एक समान हमें सहायता देने में सङ्कोच करते थे, क्योंकि उन्हें सन्देह था कि कदाचित् हमारी सत्ता एक दिन के अन्दर उखड़ कर फिंक जाय।"*

एक दूसरी कठिनाई ऐनसन के सामने और थी। अम्बाले और दिल्ली के बीच में पञ्जाब की तीन प्रमुख रियासतें पटियाला, नाभा और झींद के इलाक़े पड़ते थे। यदि ये तीनों रियासतें उस समय विप्लव का साथ दे जातीं तो इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता कि अङ्गरेज़ों के लिए दिल्ली फिर से विजय कर सकना सर्वथा असम्भव होता और भारत की भूमि से अङ्गरेज़ी राज्य की जड़ें उस समय वास्तव में निकल कर फिंक गई होतीं।

---

* Ibid, vol. ii.

यदि पटियाला, नाभा और भींद तटस्थ भी रहते तो भी परिणाम अङ्गरेज़ी राज्य के लिए शायद इतना ही अहितकार होता। किन्तु जनरल ऐनसन और अङ्गरेजी राज्य दोनों के सौभाग्य से इन तीनों रियासतों ने उस समय भारतीय विप्लवकारियों के विरुद्ध अङ्गरेज़ों को धन, जन और माल तीनों की भरपूर सहायता दी। सर जॉन लॉरेन्स और उसके साथियों की नीतिज्ञता के कारण ऐनसन को अपने साथ के लिए पञ्जाब से पर्याप्त अङ्गरेज़ी सेना भी मिल गई।

अम्बाले से दिल्ली का रास्ता अब जनरल ऐनसन के लिए साफ़ होगया और दिल्ली के विप्लवकारियों को पञ्जाब से और अधिक सहायता मिल सकना असम्भव हो गया।

पटियाले के राजा ने अपनी सेना और तोपख़ाना भेज कर थानेश्वर की रक्षा की। भींद के राजा ने पानीपत की रक्षा अपने हाथ में ली।

अङ्गरेज़ी सेना की दिल्ली यात्रा और अनसुने अत्याचार

इसके बाद कमाण्डर-इन-चीफ़ ऐनसन अङ्गरेज़ी और सिख सेना सहित, जिसमें बहुत सी सेना इन्हीं तीन रियासतों की थी, २५ मई को अम्बाले से दिल्ली की ओर रवाना हुआ। तथापि जनरल ऐनसन का हृदय उस विकट परिस्थिति में भीतर से घबरा रहा था। मार्ग में २७ मई को हैज़े से करनाल में उसकी मृत्यु

होगई। सर हेनरी बरनार्ड उसकी जगह कमाण्डर-इन-चीफ़ नियुक्त हुआ।

अम्बाले से दिल्ली तक की यात्रा में अङ्गरेज़ी फ़ौज ने जो जो अकथनीय अत्याचार किए, वे किसी अंश में जनरल नील के अत्याचारों से कम अमानुषिक न थे। मार्ग में असंख्य ऐसे लोगों को, जो पञ्जाब से दिल्ली की ओर जा रहे थे, इस सन्देह में कि वे दिल्ली के विप्लवकारियों की सहायता के लिए जा रहे हैं, पकड़ पकड़ कर मार डाला गया। इन लोगों का मारना भी क्षम्य क़रार दिया जा सकता था। किन्तु एक अङ्गरेज़ अफ़सर, जो उस यात्रा में सेना के साथ था, लिखता है कि अम्बाले से दिल्ली तक मार्ग की जनता के ऊपर अङ्गरेज़ी सत्ता का दबदबा फिर से क़ायम करने के लिए सैकड़ों ग्रामों में हज़ारों ही निर्दोष ग्रामनिवासी अत्यन्त तीव्र यातनाएँ दे दे कर मार डाले गए; उनके सरों से एक एक कर बाल उखाड़े जाते थे, उनके शरीरों को सङ्गीनों से बींधा जाता था और सब से अन्त में, किन्तु मृत्यु से पहले, भालों और सङ्गीनों के ज़रिए इन हिन्दू ग्रामनिवासियों के मुँह में गाय का मांस ठूँस दिया जाता था।*

एक ओर उन्हें ये यातनाएँ दी जाती थीं और दूसरी ओर उनकी आँखों के सामने फाँसियाँ तैयार की जाती थीं। फाँसियाँ तैयार हो जाने पर उन्हें इस अधमरी अवस्था में उन फाँसियों पर लटका दिया जाता था।

* *History of the Siege of Delhi*, by an Officer who served there.

इनमें से अधिकांश ग्रामनिवासियों ने कभी भी अङ्गरेजी राज्य के विरुद्ध शस्त्र न उठाए थे। इसलिए इन्हें दण्ड देने से पहले तमाशे के लिए एक फ़ौजी अदालत बैठाई जाती थी। जो फ़ौजी अफ़सर जज नियुक्त होते थे वे अपनी नियुक्ति से पहले इस बात की शपथ लेते थे कि हम एक भी क़ैदी को फाँसी से न बचने देंगे।* इसके बाद ग्रामवासियों की क़तारें दूर तक उनके सामने खड़ी कर दी जाती थीं और तुरन्त फ़ैसला सुना दिया जाता था।

मेरठ की गोरी सेना, जो १० मई को कर्त्तव्य विमूढ़ होगई थी, अब जनरल बरनार्ड की सेना के साथ मिलने के लिए मेरठ से बढ़ी। इन दोनों के मेल से पहले दिल्ली की विप्लवकारी सेना ने आगे बढ़ कर हिन्दन नदी के ऊपर ३० मई सन् १८५७ को मेरठ की अङ्गरेजी सेना पर हमला किया। संग्राम में विप्लवकारी सेना का बाईं ओर का भाग कुछ कमज़ोर पड़ गया। उस ओर उनकी पाँच तोपें थीं। अङ्गरेजी सेना ने उन तोपों पर क़ब्ज़ा करना चाहा। विप्लवकारी सेना उस ओर से हट चुकी थी। केवल एक सिपाही तोपों के बीच में छिपा हुआ रह गया था। ठीक उस समय जब कि कई अङ्गरेज़ अफ़सर और सिपाही तोपों पर क़ब्ज़ा करने पहुँचे, इस भारतीय सिपाही ने चुपके से मैगज़ीन में आग लगा दी। कई अङ्गरेज़ उस भारतीय सिपाही के साथ साथ वहीं पर जल कर ख़ाक हो गए। इतिहास-लेखक के इस अज्ञात सिपाही की सूझ और उसकी वीरता की प्रशंसा करते हुए लिखता है—

* Holmes' *History of the Sepoy War*, p. 124.

"इससे हमें यह शिक्षा मिली कि विद्रोहियों में इस प्रकार के वीर और साहसी लोग मौजूद थे जो राष्ट्रीय हित के लिए तत्क्षण प्राण देने को तैयार थे !"*

दिल्ली की सेना उस दिन पीछे लौट गई। अगले दिन ३१ मई को वह मेरठ की सेना का मुक़ाबला करने के लिए फिर नगर से निकली। दोनों ओर से गोलेबारी होने लगी। लिखा है कि उस दिन अङ्गरेज़ों की ओर बहुत अधिक जानें गईं। शाम को दिल्ली की सेना अङ्गरेज़ी सेना को एक बार तितर बितर करके फिर दिल्ली की ओर वापस चली गई।

अगले दिन पहली जून को मेजर रीड के अधीन एक गोरखा सेना मेरठ की अङ्गरेज़ी सेना की सहायता के लिए मौक़े पर पहुँच गई। अम्बाले से जनरल बरनार्ड के अधीन अङ्गरेज़ और सिख सेना भी ७ जून को इस सेना से आ मिली। दिल्ली के मोहासरे के लिए बहुत सा सामान महाराजा नाभा की ओर से इन लोगों के पास पहुँचा। इसके बाद यह विशाल संयुक्त सेना दिल्ली के निकट अलीपुर तक पहुँच गई।

दिल्ली की सेना फिर एक बार इस सेना के मुक़ाबले के लिए निकली। बुन्देले की सराय के निकट ८ जून सन् १८५७ को सुबह

* "It taught us that, among the mutineers, there were brave and desperate men who were ready to court instant death for the sake of the national cause!"—Kaye's *History of the Sepoy War*, vol. ii, p. 138.

से शाम तक एक भीषण संग्राम हुआ। विप्लवकारी सेना का सेनापति उस समय सम्राट बहादुरशाह का एक पुत्र मिरज़ा मुग़ल था, जिसने शायद जीवन में कभी भी लड़ाई का मैदान न देखा था। दूसरी ओर योग्य से योग्य सेनापति, और सिखों तथा गोरखों की सहायता। सायङ्काल तक दिल्ली की सेना को फिर नगर के अन्दर लौट आना पड़ा। उनकी कई तोपें शत्रु के हाथ आ गईं और कम्पनी की सेना दिल्ली की दीवार के नीचे पहुँच गई।

दिल्ली के भीतर का उत्साह

दिल्ली के नगर के अन्दर उस समय एक विचित्र उत्साह था। प्रान्त प्रान्त से पलटनें और ख़ज़ाना आकर दिल्ली में जमा हो रहा था। स्थान स्थान से सम्राट बहादुरशाह के नाम वफ़ादारी के पत्र आ रहे थे। नगर के अन्दर बारूद बनाने और अस्त्र शस्त्र ढालने के लिए अनेक कारख़ाने खुल गए थे, जिनमें अनेक तोपें रोज़ाना ढलती थीं और हज़ारों मन बारूद तैयार होती थी। सम्राट बहादुरशाह का एक ख़ादिम ज़हीर अपनी पुस्तक 'दास्ताने ग़दर' में लिखता है कि अकेले चूड़ीवालों के मोहल्ले के एक कारख़ाने में सात सौ मन बारूद रोज़ाना तैयार होती थी। सम्राट बहादुरशाह प्रायः हाथी पर बैठ कर नगर में निकला करता था और जनता तथा सिपाहियों को प्रोत्साहित करता रहता था। एलान किया जा चुका था कि जो मनुष्य गोहत्या के अपराध का भागी होगा उसके हाथ काट लिए जायँगे अथवा उसे गोली से उड़ा दिया जायगा। वास्तव में गोहत्या के विषय में इस प्रकार की आज्ञा

सम्राट बाबर के समय से चली आती थी। धर्मान्ध अथवा अदूरदर्शी औरङ्गज़ेब तक ने इस हितकर आज्ञा पर अमल क़ायम रक्खा था। किन्तु दिल्ली और उसके आस पास के इलाक़े में कम्पनी का राज्य जमने के समय से गोरी सेना के आहार के लिए फिर से गोहत्या शुरू हो गई थी। ऊपर एक अध्याय में लिखा जा चुका है कि मथुरा और दोआब के इलाक़े में इसके कारण भयङ्कर असन्तोष उत्पन्न हो गया था। यही कारण था कि सम्राट बहादुरशाह को वास्तविक सत्ता हाथ में लेते ही फिर एक बार उस तीन सौ वर्ष की पुरानी आज्ञा को दोहराना पड़ा।

विप्लव के प्रारम्भ में दिल्ली के स्वाधीन होते ही सम्राट बहादुरशाह की ओर से एक एलान समस्त भारत में प्रकाशित किया गया, जिसके कुछ वाक्य ये थे—

"ऐ हिन्दोस्तान के फ़रज़न्दो! अगर हम इरादा कर लें तो बात की बात में दुश्मन का ख़ात्मा कर सकते हैं! हम दुश्मन का नाश कर डालेंगे और अपने धर्म और अपने देश को, जो हमें जान से भी ज़्यादा प्यारे हैं, ख़तरे से बचा लेंगे।"*

कुछ समय बाद सम्राट की ओर से एक दूसरा एलान प्रकाशित हुआ जिसकी प्रतियाँ समस्त भारत के अन्दर, यहाँ तक कि दक्खिन के बाज़ारों और छावनियों में भी हाथों हाथों बँटती हुई पाई गईं। इस एलान में लिखा था—

"तमाम हिन्दुओं और मुसलमानों के नाम! —हम महज़ अपना धर्म

---

* Leckey's *Fictions Exposed and Urdoo Works.*

समझ कर जनता के साथ शामिल हुए हैं। इस मौक़े पर जो कोई कायरता दिखलाएगा या भोलेपन के कारण दग़ाबाज़ फ़िरङ्गियों के वादों पर एतबार करेगा, वह शीघ्र ही शरमिन्दा होगा और इङ्गलिस्तान के साथ अपनी वफ़ादारी का उसे वैसा ही इनाम मिलेगा जैसा लखनऊ के नवाबों को मिला। इसके अलावा इस बात की भी ज़रूरत है कि इस जङ्ग में तमाम हिन्दू और मुसलमान मिल कर काम करें और किसी प्रतिष्ठित नेता की हिदायतों पर चल कर इस तरह का व्यवहार करें कि जिससे अमनो आमान क़ायम रहे और ग़रीब लोग सन्तुष्ट रहें; तथा उनका अपना रुतबा और उनकी शान बढ़े। जहाँ तक मुमकिन हो सकता है, सबको चाहिए कि इस एलान की नक़ल करके किसी आम जगह पर लगा दें। × × ×"

एक और तीसरा एलान बहादुरशाह की ओर से बरेली में प्रकाशित हुआ, जिसमें लिखा था—

"हिन्दोस्तान के हिन्दुओ और मुसलमानो, उठो! भाइयो, उठो! ख़ुदा ने जितनी बरकतें इनसान को अता की हैं, उनमें सबसे क़ीमती बरकत 'आज़ादी' की है। क्या वह ज़ालिम नाकस जिसने धोखा दे दे कर यह बरकत हमसे छीन ली है, हमेशा के लिए हमें उससे महरूम रख सकेगा? क्या ख़ुदा की मरज़ी के ख़िलाफ़ इस तरह का काम हमेशा जारी रह सकता है? नहीं, नहीं! फ़िरङ्गियों ने इतने ज़ुल्म किए हैं कि उनके गुनाहों का प्याला लबरेज़ हो चुका है। यहाँ तक कि अब हमारे पाक मज़हब को नाश करने की नापाक ख़्वाहिश भी उनमें पैदा हो गई है! क्या तुम अब भी ख़ामोश बैठे रहोगे? ख़ुदा अब यह नहीं चाहता कि तुम ख़ामोश रहो; क्योंकि उसने हिन्दू और मुसलमानों के दिलों में अङ्गरेज़ों को अपने मुल्क से बाहर निकालने की ख़्वाहिश पैदा कर दी है और ख़ुदा के फ़ज़ल और

तुम लोगों की बहादुरी के प्रताप से जल्दी ही अङ्गरेज़ों को इतनी कामिल शिकस्त मिलेगी कि हमारे इस मुल्क हिन्दोस्तान में उनका ज़रा भी निशान न रह जायगा ! हमारी इस फ़ौज में छोटे और बड़े की तमीज़ भुला दी जायगी और सबके साथ बराबरी का बरताव किया जायगा; क्योंकि इस पाक जङ्ग में अपने धर्म की रक्षा के लिए जितने लोग तलवार खींचेंगे वे सब एक समान यश के भागी होंगे। वे सब भाई भाई हैं, उनमें छोटे बड़े का कोई भेद नहीं। इसलिए मैं फिर अपने तमाम हिन्दी भाइयों से कहता हूँ, उठो, और ईश्वर के बताए हुए इस परम कर्त्तव्य को पूरा करने के लिए मैदान जङ्ग में कूद पड़ो !"*

दिल्ली का नगर पूरी तरह विप्लवकारियों के हाथों में था। कम्पनी की सेना ने बुन्देले की सराय की लड़ाई के बाद दिल्ली से पश्चिम में 'पहाड़ी' पर कब्ज़ा कर लिया। यह स्थान दिल्ली पर हमला करने के लिए बड़ी सुविधा का था। हमले की सलाहें होती रहीं। किन्तु अङ्गरेज़ सेनापतियों को हमले का साहस न हो सका। इस बीच दिल्ली की विप्लवकारी सेना ने बाहर निकल कर अङ्गरेज़ी सेना पर बार बार हमले करना शुरू किया। सब से पहले १२ जून को दिल्ली की सेना ने अङ्गरेज़ी सेना पर हमला किया। इतिहास-लेखक के लिखता है कि उस दिन के संग्राम में कम्पनी के हिन्दोस्तानी सिपाहियों का एक

---

* बहादुरशाह का यह असली एलान उर्दू में था। हमें दुख है कि हमें उसकी उर्दू प्रति नहीं मिल सकी। विप्लव के सम्बन्ध के इस तरह के सब पत्रों और एलानों को अङ्गरेज़ों ही के अनुवादों अथवा प्रतिलिपियों से हिन्दी में अनुवाद करना पड़ा है—लेखक।

दस्ता, जिसकी वफ़ादारी पर अङ्गरेज़ों को पूरा विश्वास था, विप्लव-कारियों से जा मिला। अङ्गरेज़ी सेना को काफी हानि पहुँचाने के बाद दिल्ली की सेना फिर नगर के अन्दर लौट गई।

इसके बाद बजाय इसके कि अङ्गरेज़ी सेना को दिल्ली में प्रवेश करने का साहस होता, लगभग हर रोज़ भारतीय सेना प्रातःकाल शहर से निकल कर अङ्गरेज़ी सेना पर हमला करती थी, और शाम तक उन्हें काफ़ी नुक़सान पहुँचा कर फिर नगर में वापस चली जाती थी। दिल्ली में उन दिनों यह एक नियम था कि जो नई पलटन बाहर से दिल्ली में आती थी वह अपने आने के अगले दिन सवेरे एक बार अङ्गरेज़ी सेना पर हमला करती थी। इन लड़ाइयों में १७, २० और २३ जून की लड़ाइयाँ अधिक भयङ्कर थीं। जिस वीरता के साथ विप्लवकारी सेनाओं ने इन लड़ाइयों में अङ्गरेज़ों, सिखों और गोरखों की संयुक्त सेनाओं पर हमला किया, उन्हें बार बार अपनी जगह से हटा दिया और उनके अनेक अफ़सरों तथा सैनिकों को ख़त्म कर दिया, उस वीरता की लॉर्ड रॉबर्ट्स तथा अन्य अङ्गरेज़ अफ़सरों ने अपनी रिपोर्टों में मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। कमाण्डर-इन-चीफ़ बरनार्ड ने अब निश्चय कर लिया कि जब तक और अधिक सेना सहायता के लिए पञ्जाब से न आए, तब तक दिल्ली पर हमला करना और विजय प्राप्त कर सकना असम्भव है।

२३ जून प्लासी की शताब्दी का दिन था। उस दिन के हमले के लिए दिल्ली में विशेष तैयारियाँ हो रही थीं। ठीक प्रातःकाल शहर-पनाह की तोपों ने अङ्गरेज़ी सेना के ऊपर गोले बरसाने शुरू किए।

विप्लवकारी सेना शहर से बाहर निकली। संयुक्त ब्रिटिश सेना पर वे टूट पड़े। अत्यन्त घमासान सग्राम हुआ। उस दिन के संग्राम के विषय में मेजर रीड लिखता है—"लगभग १२ बजे विप्लवकारियों ने हमारी समस्त सेना के ऊपर एक अत्यन्त भीषण हमला किया। कोई मनुष्य उससे अच्छा न लड़ सकते थे जितना अच्छा कि विप्लवकारी लड़े। उन्होंने हमारी सारी पलटनों पर बार बार हमला किया और एक बार मुझे ऐसा मालूम होता था कि हम मैदान खो बैठे।"*

किन्तु अङ्गरेज़ों के सौभाग्य से ठीक सङ्कट के समय एक और नई सेना पञ्जाब से सहायता के लिए आ पहुँची। विप्लवकारियों के लिए अब कार्य इतना सरल न रहा। तथापि वे शाम तक मैदान में डटे रहे। अन्त में दोनों ओर की सेनाएँ युद्धक्षेत्र से पीछे हट गईं। वास्तव में जोड़ बराबर का रहा और दोनों सेनाओं के दिलों में एक दूसरे की वीरता के लिए आदर उत्पन्न हो गया।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि यदि सिखों ने अङ्गरेज़ों का साथ न दिया होता और नई पञ्जाबी सेना समय पर सहायता के लिए न पहुँची होती तो २३ जून सन् १८५७ को दिल्ली की फ़सील के नीचे कम्पनी की सेना का सर्वनाश होगया होता, और फिर भारत में अङ्गरेज़ों का अपनी सत्ता क़ायम रख सकना लगभग असम्भव था।

२ जुलाई सन् ५७ को मोहम्मदबख़्त ख़ाँ के अधीन रुहेलखण्ड की सेना ने दिल्ली में प्रवेश किया। नगर-निवासियों और सम्राट बहादुरशाह की ओर से इस सेना का विशेष स्वागत हुआ। बख़्त ख़ाँ

---

* Major Reid's *Siege of Delhi*.

ने सम्राट से भेंट की। इस बीच दिल्ली में स्थान स्थान की फ़ौजों के आने के कारण प्रबन्ध की कुछ शिथिलता दिखाई देने लगी थी। सेनापति मिरज़ा मुग़ल में सुशासन स्थापित करने की योग्यता दिखाई न देती थी। अनेक शिकायतें सम्राट के कानों तक पहुँचीं। बूढ़े सम्राट ने अपने पुत्र मिरज़ा मुग़ल को हटा कर उसकी जगह बख़्त ख़ाँ को दिल्ली की समस्त सेनाओं का प्रधान सेनापति और दिल्ली का 'गवरनर' नियुक्त किया। बख़्त ख़ाँ वास्तव में अत्यन्त योग्य तथा वीर था। उसने सम्राट से कहा कि यदि इसके बाद कोई शहज़ादा भी नगर के अन्दर शासन-प्रबन्ध में बाधा डालेगा, या प्रजा के साथ किसी प्रकार का अन्याय करेगा तो मैं तुरन्त उसके नाक कान कटवा डालूँगा। सम्राट ने स्वीकार कर लिया। बख़्त ख़ाँ की नियुक्ति का एलान सारे शहर में कर दिया गया। बख़्त ख़ाँ के साथ लगभग चौदह हज़ार पैदल, दो या तीन सवार पलटन और अनेक तोपें थीं।* वह अपनी सेना को छै महीने की तनख़ाहें पेशगी दे चुका था। इसके अतिरिक्त उसने चार लाख रुपए नक़द लाकर सम्राट की भेंट किए। बख़्त ख़ाँ ने नगर में सुशासन स्थापित किया, आज्ञा दे दी कि कोई नगरनिवासी बिना हथियार के न रहे। जिनके पास हथियार न थे उन्हें मुफ़्त हथियार दिए गए। इसके बाद यदि कोई सिपाही बिना पूरी क़ीमत दिए किसी से कोई वस्तु लेता था तो सिपाही का एक हाथ काट दिया जाता था। उसी दिन रात को ८ बजे महल के अन्दर सम्राट

* 'दास्ताने ग़दर'—लेखक ज़हीर

बहादुरशाह, बेगम ज़ीनतमहल, सेनापति बख्त ख़ाँ तथा अन्य मुख्य मुख्य नेताओं में सलाह हुई। ३ जुलाई को एक आम परेड हुई, जिसमें लगभग बीस हज़ार सेना मौजूद थी।*

इस बीच नए नए अङ्गरेज़ अफ़सर और अनुभवी सेनापति पञ्जाब से और अधिक सेनाएँ ला लाकर अङ्गरेज़ी सेना में शामिल होते गए। फिर भी प्रधान सेनापति जनरल बरनार्ड को दिल्ली की सेना पर हमला करने का साहस न हो सका। ४ जुलाई को बख्त ख़ाँ ने अपनी सेना सहित अङ्गरेज़ी सेना पर हमला किया।

कम्पनी की सेना को दिल्ली की दीवारों के नीचे पड़े हुए एक महीने से ऊपर हो चुका था। अनेक अफ़सरों के बयानों से साबित है कि अङ्गरेज़ों को विश्वास था कि दिल्ली पहुँचने के चन्द घण्टे बाद ही हम दिल्ली पर विजय प्राप्त कर लेंगे। किन्तु अब वह विश्वास निराशा में बदलता हुआ दिखाई दे रहा था। इस निराशा में ही ५ जुलाई सन् ५७ को जनरल बरनार्ड भी हैज़े से मर गया। जनरल रीड ने उसका स्थान लिया। इस प्रकार विप्लव के शुरू होने से अब तक कम्पनी के दो कमाण्डर-इन-चीफ़ मर चुके थे। जनरल रीड तीसरा था, किन्तु अभी तक दिल्ली विजय न हुई थी।

दिल्ली की सेना के हमले अङ्गरेज़ी सेना पर बराबर जारी रहे। ९ जुलाई को दिल्ली की सेना ने इतना ज़बरदस्त हमला किया कि अङ्गरेज़ी सेना के सवारों को सामने से भाग जाना पड़ा और अङ्गरेज़ी तोपों के मुँह बन्द होगए। अनेक अङ्गरेज़ अफ़सर

---

* *Native Narratives* by Metcalfe, p. 60.

मारे गए। इतिहास-लेखक के लिखता है कि उस दिन की हार पर अङ्गरेज़ सिपाही इतने लज्जित और कुपित हुए कि उन्होंने अपने कैम्प में जाकर अपने निर्दोष ग़रीब विहिश्तियों और अनेक काले नौकरों को मार डाला। अपने इन हिन्दोस्तानी नौकरों की वफ़ादारी, और उनकी सेवाओं का उन्होंने कुछ भी ख़याल नहीं किया, क्योंकि "इन गोरे सिपाहियों के हृदयों में समस्त काले एशिया-निवासियों के प्रति प्रचण्ड घृणा की आग भड़क रही थी।"*

१४ जुलाई के आक्रमण में अङ्गरेजों की इससे भी बुरी हालत हुई। जनरल रीड भी घबरा गया। बीमार पड़ कर और इस्तीफ़ा देकर १५ जुलाई को वह पहाड़ पर चला गया। जनरल विलसन ने उसकी जगह ली। अङ्गरेज़ी सेना का यह चौथा कमाण्डर-इन-चीफ़ था। दिल्ली की मीनारों के ऊपर स्वाधीनता की पताका को लहराते हुए दो महीने हो चुके थे। भारत भर में अनेक अङ्गरेज़ यह कहने लगे थे कि, "जो सेना दिल्ली का मोहासरा कर रही है उसका स्वयं मोहासरा हो रहा है।" यहाँ पर हम यह याद दिला देना चाहते हैं कि अङ्गरेज़ी सेना केवल दिल्ली की पश्चिमी दीवार के नीचे थी, शेष तीनों ओर से विप्लव के सहायकों और शुभचिन्तकों के लिए आने जाने का मार्ग खुला हुआ था। अङ्गरेज़ी सेना में उस समय अनेक लोग सञ्जीदगी के साथ यह विचार कर रहे थे कि दिल्ली विजय करने का विचार छोड़ कर अभी किसी दूसरी ओर ध्यान दिया जाय।

---

* Kaye and Malleson's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 438.

भारतीय नरेशों की अनिश्चितता

अब हम फिर थोड़ी देर के लिए दिल्ली से हट कर विप्लव के अन्य केन्द्रों की ओर दृष्टि डालते हैं। जिस प्रकार सिखों ने कम्पनी की सहायता द्वारा उसी प्रकार अनेक राजपूत तथा मराठा नरेशों ने अपनी अनिश्चितता द्वारा भारतीय स्वाधीनता के प्रयत्नों को बहुत बड़ी हानि पहुँचाई।

जयाजीराव सींधिया उस समय ग्वालियर की गद्दी पर था। उसकी समस्त भारतीय सेना, जो अत्यन्त सन्नद्ध थी, राष्ट्रीय योजना में शामिल थी। १४ जून को ग्वालियर की सेना ने कम्पनी के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। उन्होंने ग्वालियर के अङ्गरेज़ों के मकान जला दिए, अपने अङ्गरेज़ अफ़सरों तथा नगर के अन्य अङ्गरेज़ों को मार डाला। अङ्गरेज़ स्त्रियों और बच्चों को उन्होंने हाथ तक नहीं लगाया।* इन सब को उन्होंने केवल गिरफ़्तार कर लिया। कुछ अङ्गरेज़ आगरे की ओर भाग निकले। ग्वालियर की समस्त रियासत से कम्पनी का प्रभाव और प्रभुत्व दोनों बिलकुल मिट गए। तथापि महाराजा सींधिया सङ्कोच में रहा। निस्सन्देह यदि महाराजा सींधिया उस समय कम्पनी के साथ मित्रता निबाहने के स्थान पर खुले विप्लवकारियों का साथ दे बैठता और अपनी विशाल सेना सहित, जो इस समय नेता न होने के कारण निकम्मी थी, दिल्ली पर चढ़ाई कर देता, तो दिल्ली के भीतर की विप्लवकारी

---

* Mrs. Coopland's Narrative.

सेना और बाहर से सींधिया की सेना दोनों के बीच में पिस कर कम्पनी की सेना वहीं समाप्त हो गई होती, तथा विप्लवकारियों के पक्ष को भारत भर में अनन्त बल प्राप्त हो जाता।

लगभग यही स्थिति इन्दौर के महाराजा होलकर की थी। पहली जुलाई को सआदत खाँ के अधीन इन्दौर की सेना ने इन्दौर की रेजिडेन्सी पर हमला किया। वहाँ के सब अङ्गरेजों की जान बख्शा दी गई। वे इन्दौर छोड़ कर भाग गए। किन्तु अङ्गरेज इतिहास-लेखक भी इस बात का निश्चय नहीं कर पाते कि महाराजा होलकर की सहानुभूति अङ्गरेजों के साथ थी अथवा विप्लवकारियों के साथ। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस तरह के अवसरों पर, जब कि भारतीय नरेश अन्त तक अपना निश्चय न कर सके, रियासतों की सेनाओं तथा कम्पनी की सबसीडीयरी सेनाओं ने हर जगह विप्लव का साथ दिया। यही स्थिति कच्छ तथा राजपूताने की रियासतों की थी। इतिहास-लेखक मालेसन लिखता है कि जयपुर और जोधपुर के राजाओं ने अपनी सेनाओं को आज्ञा दी कि जाकर अङ्गरेजों की मदद करो, किन्तु सिपाहियों और उनके अफ़सरों ने साफ़ इनकार कर दिया।*

यही हालत भरतपुर तथा अन्य कई रियासतों की भी थी। ५ जुलाई को विप्लवकारी सेना ने आगरे पर हमला किया। आगरे में कुछ गोरी सेना मौजूद थी। भरतपुर के राजा ने अपनी सेना अङ्गरेजों की सहायता के लिए भेजी। ऐन मौक़े पर भरतपुर की

* Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iii, p. 172.

सेना ने साफ़ जवाब दे दिया कि हम अपने देशवासियों के विरुद्ध न लड़ेंगे। जनरल पॉलवेल की गोरी सेना और विप्लवकारियों में एक संग्राम हुआ, जिसमें दिन भर की लड़ाई के बाद गोरी सेना को हार कर पीछे हट जाना पड़ा। ६ जुलाई को आगरे के नगर के ऊपर हरा झण्डा फहराने लगा। उसी दिन वहाँ का शहर कोतवाल, समस्त पुलिस तथा हिन्दू और मुसलमानों ने मिल कर हरे झण्डे का एक बहुत बड़ा जुलूस निकाला और एलान कर दिया कि आज से आगरे के ऊपर अङ्गरेज़ी राज्य के स्थान पर दिल्ली के सम्राट का आधिपत्य फिर से क़ायम होगया।

किन्तु इन भारतीय नरेशों की उस समय की अनिश्चितता ने निस्सन्देह विप्लव को बहुत हानि पहुँचाई।

कानपुर और इलाहाबाद

अब हम फिर कानपुर और इलाहाबाद की ओर आते हैं। इलाहाबाद के शहर और क़िले पर अङ्गरेज़ों का क़ब्ज़ा फिर से हो चुका था। उत्तरीय भारत के विप्लव को दमन करने की दृष्टि से इलाहाबाद अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। इसलिए लॉर्ड कैनिङ्ग अब कलकत्ते से इलाहाबाद आ गया, विप्लव के शान्त हो जाने के समय तक के लिए उसने इलाहाबाद ही को अपनी राजधानी नियत किया।

जिस समय कानपुर के अङ्गरेज़ों की मुसीबतों का समाचार इलाहाबाद पहुँचा, जनरल नील ने थोड़ी सी सेना इलाहाबाद की रक्षा के लिए रख कर शेष मेजर रिनॉड के अधीन कानपुर के
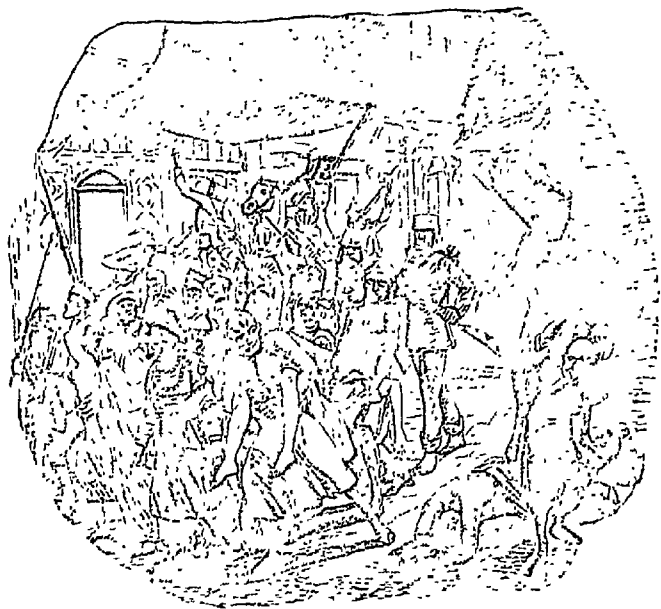
कानपुर ज़िले में अङ्गरेज़ी सेना के सिपाही एक गाँव में आग लगा रहे हैं,
ग्राम के स्त्री-पुरुष निकल कर भाग रहे हैं।
[जॉन विकर्स की "नैरेटिव ऑफ़ दी इण्डियन रिवोल्ट" से]

अङ्गरेजों की सहायता के लिए भेज दी। यह सेना जनरल नील की स्थापित की हुई मर्यादा के अनुसार दोनों ओर के ग्रामों को आग लगाती हुई कानपुर की ओर बढ़ी।

एक दूसरा जनरल हैवलॉक जून के अन्त में इलाहाबाद पहुँचा। इसी बीच कानपुर में अङ्गरेजों की पराजय और सतीचौरा घाट के हत्याकाण्ड का समाचार भी इलाहाबाद पहुँच गया। जनरल हैवलॉक भी अब अङ्गरेज़ तथा सिख सेना और तोपख़ाने सहित कानपुर की ओर बढ़ा।

आगे चल कर हैवलॉक और रिनॉड की सेनाएँ मिल गईं। मार्ग के ग्रामों को ग्रामवासियों सहित जलाने का कार्यक्रम पूर्ववत् जारी रहा। कम्पनी की सेना की इस यात्रा के विषय में इतिहास-लेखक सर चार्ल्स डिल्क लिखता है—

"सन् १८५७ में जो पत्र इङ्गलिस्तान पहुँचे उनमें एक ऊँचे दरजे का अफ़सर, जो कानपुर की ओर अङ्गरेज़ी सेना की यात्रा में साथ था, लिखता है कि—'मैंने आज की तारीख़ में ख़ूब शिकार मारा। बाग़ियों को उड़ा दिया।' यह याद रखना चाहिए कि जिन लोगों को इस प्रकार फाँसी दी गई या तोप से उड़ाया गया वे सशस्त्र 'बाग़ी' न थे, बल्कि गाँव के रहने वाले थे जिन्हें केवल 'सन्देह पर' पकड़ लिया जाता था। इस कूच में गाँव के गाँव इस क्रूरता के साथ जला डाले गए और इस क्रूरता के साथ निर्दोष ग्रामनिवासियों का संहार किया गया कि जिसे देख कर एक बार मोहम्मद तुग़लक़ भी शरमा जाता।"*

. letters which reached home in 1857, in which

नाना साहब ने ज्वालाप्रसाद और टीकासिंह के अधीन कुछ सेना कम्पनी की सेना के मुक़ाबले के लिए भेजी। १२ जुलाई को फ़तहपुर के नज़दीक दोनों सेनाओं में एक संग्राम हुआ जिसमें कानपुर की विप्लवकारी सेना को हार कर पीछे हट जाना पड़ा। इसके बाद अङ्गरेज़ों ने फ़तहपुर के नगर में प्रवेश किया।

इस बीच फ़तहपुर का नगर अपनी स्वाधीनता का एलान कर चुका था। कुछ अङ्गरेज़ अफ़सर वहाँ पर मारे भी जा चुके थे। किन्तु वहाँ के मैजिस्ट्रेट शेरर को विप्लवकारियों ने जान बख्श दी थी और उसे फ़तहपुर से जाने की इजाज़त दे दी थी। शेरर इस समय हैवलॉक की सेना के साथ था। हैवलॉक और शेरर ने नगर से पूरा बदला लिया। सब से पहले कम्पनी के सिपाहियों को नगर लूटने की आज्ञा दी गई। उसके बाद लिखा है कि अङ्गरेज़ सेनापति की आज्ञा से फ़तहपुर के नगर और नगरनिवासियों को उसी के अन्दर जला कर ख़ाक कर दिया गया।

इस रोमाञ्चकारी अत्याचार की ख़बर नाना के कानों तक पहुँची। कानपुर के नेताओं तथा नगरनिवासियों का क्रोध पराकाष्ठा

---

an officer in high command during the march upon Cawnpore, reported, 'good bag to day, polished off rebels,' it being borne in mind that the 'rebels' thus hanged or blown from guns were not taken in arms, but villagers apprehended 'on suspicion.' During this march atrocities were committed in the burning of villages and massacre of innocent inhabitants at which Mohammad Tuglak himself would have stood ashamed, . . . ,"—*Greater Britain*, by Sir Charles Dilke.

को पहुँच गया। नाना साहब ने स्वयं सेना लेकर आगे बढ़ने का निश्चय किया। इसी समय अङ्गरेज़ों के कुछ जासूस गिरफ़्तार होकर नाना के सामने पेश किए गए। इन जासूसों द्वारा पता चला कि जो अङ्गरेज़ स्त्रियाँ बीबीगढ़ की कोठी में नज़रबन्द थीं उनमें से कई नाना के विरुद्ध इलाहाबाद के अङ्गरेज़ों के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार कर रही थीं।*

अगले दिन शाम को वह घटना हुई जो सन् ५७ के भारतीय विप्लवकारियों के नाम पर सदा के लिए एक कलङ्क रहेगी। कहा जाता है कि कानपुर के १२५ अङ्गरेज़ क़ैदी स्त्रियाँ और बच्चे क़त्ल कर डाले गए, और दूसरे दिन प्रातःकाल उनकी लाशों को एक कुएँ में डाल दिया गया।

कानपुर की इस हृदय-विदारक घटना के सम्बन्ध में अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक अनेक प्रकार की टीका कर चुके हैं। इसी घटना के आधार पर नाना साहब को निर्दय हत्यारा साबित करने की चेष्टा की गई है। हमें यह देख कर दुख होता है कि इतिहास की जिन पुस्तकों में विशेषकर स्कूलों और कॉलेजों की जिन पाठ्य पुस्तकों में जनरल नील, जनरल हैवलॉक, जनरल ऐनसन, जनरल बरनार्ड इत्यादि के भारतीय प्रजा के ऊपर घोर अमानुषिक अत्याचारों का कोई ज़िक्र नहीं किया जाता उनमें कानपुर की इस बीभत्स हत्या

---

* *Narrative of the Indian Revolt*, p. 113. One of the Christian prisoners in the prison of Nana Saheb told the same thing and an Ayah also corroborated it.

और कानपुर के कुएँ का ज़िक्र अवश्य होता है। हम इस सम्बन्ध में केवल एक दो बातें कह देना आवश्यक समझते हैं।

एक यह कि जिन अङ्गरेज़ी पुस्तकों में इस घटना को वर्णन किया गया है उनमें प्रायः इस घटना के साथ कई और भी अधिक भयङ्कर और अमानुषिक बातों को जोड़ दिया गया है। उदाहरण के लिए यह कि अङ्गरेज़ स्त्रियों और बच्चों की हत्या के लिए शहर से क़साई बुलाए गए थे। हत्या से पूर्व इन लोगों को निर्दयता के साथ धीरे धीरे अङ्गभङ्ग किया गया, और स्त्रियों की हत्या से पहले उनकी बेइज़्ज़ती की गई, इत्यादि। इन सब रोमाञ्चकर बातों के सम्बन्ध में हम केवल विप्लव के सब से अधिक प्रामाणिक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक सर जॉन के के कुछ शब्द उद्धृत करते हैं। इतिहास-लेखक के लिखता है—

"उस समय के कई इतिहासों में बयान किया गया है कि इस भीषण हत्याकाण्ड के साथ कई तरह की परिष्कृत क्रूरताएँ और अकथनीय लज्जाजनक बातें की गई थीं। वास्तव में ये क्रूरताएँ और इस तरह की लज्जाजनक बातें कुछ लोगों ने क्रोध के आवेश में आकर केवल अपनी कल्पना-शक्ति से गढ़ ली थीं। अन्य लोगों ने बिना जाँच किए उन पर सहज ही में विश्वास कर लिया और बिना सोचे समझे उन्हें फैलाना शुरू कर दिया। × × × जून और जुलाई के हत्याकाण्डों के विषय में सरकारी कमीशन के मेम्बरों ने हर बात की अत्यन्त परिश्रम के साथ जाँच की, और उन्होंने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में यह राय प्रकट की है कि किसी को भी अङ्ग भङ्ग नहीं किया गया और किसी की भी इज़्ज़त नहीं ली गई।"*

* "The refinements of cruelty—the unutterable shame with which, in some chronicles of the day, this hideous massacre was

एक दूसरा विद्वान् अङ्गरेज़ लन्दन के 'टाइम्स' पत्र का सम्वाद-दाता सर विलियम रसल, जो विप्लव के समय भारत में मौजूद था, कानपुर के इस हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में लिखता है—

"अनेक जालसाज़ों और अत्यन्त नीच बदमाशों ने लगातार कोशिश करके इस हत्याकाण्ड के साथ अनेक भीषण घटनाएँ जोड़ दीं। ये कल्पित घटनाएँ केवल इस आशा से गढ़ी गई थीं कि उनसे अङ्गरेज़ों के दिलों में क्रोध और बदले की प्रचण्ड इच्छा भड़क उठे। मानो केवल घृणा इस क्रोध और बदले की इच्छा को भड़काने के लिए काफ़ी न थी।"*

दूसरी बात यह है कि एक सज्जन, जिन्हें ऐतिहासिक घटनाओं की खोज और जाँच का शौक़ है, इस पुस्तक के लेखक से कहते थे कि उन्होंने कानपुर क़साइयों के मोहल्ले में जाकर पूछ ताछ की तो वहाँ के बूढ़े लोगों से मालूम हुआ कि बीबीगढ़ की हत्या के लिए कम से कम क़साइयों का बुलाया जाना बिलकुल ग़लत है।

---

attended, were but fictions of an excited imagination, too readily believed without enquiry, and circulated without thought. None were mutilated, none were dishonoured . . . This is stated, in the most unqualifed manner, by the official functionaries, who made the most diligent enquiries into all the circumstances of the massacres in June and in July."—Kaye and Malleson's *History of the Indian Mutiny*, p. 281.

* " . . . the incessant efforts of a gang of forgers and utterly base scoundrels have surrounded it with horrors that have been vainly invented in the hope of adding to the indignation and burning desire for vengeance which hatred failed to arouse."—Russell's *Diary*, p. 164.

कलकत्ते के ब्लैकहोल के सर्वथा झूठे क़िस्से का वर्णन इतिहास की असंख्य पुस्तकों में पाया जाता है, और कलकत्ते में ब्लैकहोल की जगह तक बनी हुई है। इससे पता चलता है कि कानपुर में 'कुएँ' का होना जरूरी तौर पर यह साबित नहीं करता कि यह घटना सर्वथा सच्ची है।

इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट का एक सदस्य लेयार्ड इस तरह की अनेक घटनाओं की जाँच करने के लिए स्वयं उन्हीं दिनों में भारत आया। अपनी जाँच के बाद लेयार्ड लिखता है—

"निहायत ग़ौर के साथ जाँच पड़ताल करने के बाद, अच्छे से अच्छे और सबसे अधिक विश्वसनीय ज़रियों से जो सूचनाएँ मुझे मिली हैं, उनसे मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि जो अनेक भयङ्कर अत्याचार कहा जाता है कि देहली, कानपुर, झाँसी तथा अन्य स्थानों पर अङ्गरेज़ स्त्रियों और बच्चों पर किए गए, वे प्रायः एक एक कर सब के सब कल्पित हैं, जिनके गढ़ने वालों को लज्जा आनी चाहिए।"*

अन्य निष्पक्ष अङ्गरेजों के इससे भी अधिक जोरदार वाक्य इस कथन के समर्थन में उद्धृत किए जा सकते हैं। जाहिर है कि बीबीगढ़ के हत्याकाण्ड की सच्चाई पर पूरा विश्वास नहीं किया जा

* "From the information I received from the very best and most trustworthy sources, after the most careful inquiries, I am convinced that the series of horrible cruelties alleged to have been committed upon English women and children at Delhi, Cawnpore, Jhansi and elsewhere were almost without exception shameful fabrications, . . . "—Mr. Layard M. P. in *The Times*, 25th. August, 1858.

सकता। साथ ही हम अभी तक उस हत्याकाण्ड को सर्वथा असत्य अथवा कल्पित कहने के लिए भी तैयार नहीं हैं। वास्तव में इस विषय में अभी बहुत अधिक निष्पक्ष खोज की आवश्यकता है।

हम यह भी जानते हैं कि यदि कानपुर में १२५ अङ्गरेज़ औरतों और बच्चों को निर्दोष मार डाला गया तो जनरल नील ने अपने बयान के अनुसार ही कम से कम हज़ारों भारतीय स्त्रियों और बच्चों को ज़िन्दा जला दिया। किन्तु एक अत्याचार दूसरे अत्याचार को जायज़ नहीं बना सकता। हम स्वीकार करते हैं कि अभी तक हमारा अनुमान यही है कि बीबीगढ़ के हत्याकाण्ड में कुछ न कुछ सच्चाई अवश्य है। और अगर यह घटना सच्ची है, और जिस दरजे तक भी वह सच्ची है, इसमें कोई सन्देह नहीं सन् ५७ के विप्लवकारियों के नाम पर सदा के लिए यह एक बहुत बड़ा कलङ्क है।

एक प्रश्न इस सम्बन्ध में यह भी उठता है कि यदि बीबीगढ़ की हत्या का क़िस्सा सच है, तब भी उसके लिए नाना साहब को कहाँ तक ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता है। सर जॉर्ज फ़ॉरेस्ट लिखता है—

"गवाहियों से यह साबित होता है कि जो सिपाही इन क़ैदियों के ऊपर पहरा दे रहे थे उन्होंने उनकी हत्या करने से इनकार कर दिया। यह गन्दा जुर्म एक वेश्या के उकसाने पर नाना की गारद के पाँच बदमाशों ने किया। इस क्रूर हत्या के लिए सारी क़ौम को अपराधी ठहराना अनुदार भी है और असत्य भी।"*

---

* "The evidence proves that the sepoy guard placed over

इतिहास-लेखक सर जॉर्ज कैम्पबेल लिखता है—

"कानपुर की हत्या और कुएँ के ऊपर के भयङ्कर दृश्य के पाप को कम करने वाली कोई बात कहना कठिन है, तथापि हमें दो बातें याद रखनी चाहिएँ। पहली यह कि यह हत्या किसी ने पहले से तय करके नहीं की, बल्कि जिस समय हैवलॉक विप्लवकारियों को पीट कर चला आ रहा था उस समय क्षणिक क्रोध और निराशा के वश यह कार्य किया गया। दूसरी बात यह कि हमारी सेना के लोगों ने कानपुर की ओर बढ़ते समय जो जो अत्याचार किए उनके द्वारा हमने स्वयं लोगों को इस प्रकार के कार्य करने के लिए काफ़ी उत्तेजित कर दिया था। कुछ समय बाद इस हत्याकाण्ड के सम्बन्ध की सब परिस्थिति की बड़ी सावधानी के साथ जाँच पड़ताल की गई, और हमें कोई बात ऐसी नहीं मिली जिससे मालूम हो कि किसी ने पहले से इस हत्या का इरादा कर रक्खा हो अथवा किसी ने हत्या के लिए किसी को आज्ञा दी हो × × ×।"*

---

the prisoners refused to murder them. The foul crime was perpetrated by five ruffians of the Nana's guard at the instigation of a courtesan. It is as ungenerous as it is untrue to charge upon a nation that cruel deed."—*History of the Indian Mutiny*, by Sir George Forrest, Introduction, p. iv.

* "It is difficult to say anything in extenuation of the Cawnpore massacre and the terrible scene at the well, and yet we must remember two things: first, that it was done, not in cold blood, but in the moment of rage and despair when Havelock had beaten the rebels and was coming in; and second, that we had done much to provoke such things by the severities of which our people were guilty as they advanced. At a later time a

सर जॉर्ज कैम्पबेल के इस वाक्य से स्पष्ट है कि कानपुर में अङ्गरेज़ स्त्रियों और बच्चों की हत्या हैवलॉक के अत्याचारों से दुखित कुछ विप्लवकारियों के क्षणिक क्रोध का परिणाम था, 'किसी ने उसके लिए किसी को आज्ञा' न दी थी, और नाना साहब को उसके लिए उत्तरदाता ठहराना ग़लत है।

१० जुलाई को जनरल हैवलॉक अपनी विशाल सेना सहित कानपुर के निकट पहुँच गया। नाना साहब ने स्वयं सेना लेकर हैवलॉक का मुक़ाबला किया। दोनों ओर की तोपों ने गोले बरसाने शुरू किए। किन्तु अन्त में नाना साहब की सेना को हार कर पीछे हट जाना पड़ा। नाना साहब ने फिर एक बार अपने सिपाहियों को प्रोत्साहित करके आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया। एक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक लिखता है कि फिर एक बार घमासान संग्राम हुआ। किन्तु अन्त में फिर हैवलॉक की विशाल सेना के सामने नाना साहब की सेना को हार कर बिठूर की ओर चला जाना पड़ा।

१७ जुलाई को हैवलॉक की विजयी सेना ने कानपुर के नगर में प्रवेश किया। हैवलॉक का नाम अङ्गरेज़ी राज्य के इतिहास में अमर हो गया।

---

careful investigation was made into the circumstances of the massacre, and we failed to discover that there was any premeditation or direction in the matter."—Sir George Campbell, Provisional Civil Commissioner in the Mutiny, as quoted in *The Other Side of the Medal*, by E. Thompson pp. 79, 80.

नगर में घुसने के बाद चार्ल्स बॉल लिखता है—

"जनरल हैवलॉक ने सर ह्यू व्हीलर की मृत्यु के लिए भयङ्कर बदला चुकाना शुरू किया। हिन्दोस्तानियों के गिरोह के गिरोह फाँसी पर चढ़ गए। मृत्यु के समय कुछ विप्लवकारियों ने जिस प्रकार चित्त की शान्ति और अपने व्यवहार में ओज का परिचय दिया, वह उन लोगों के सर्वथा योग्य था जो कि किसी सिद्धान्त के नाम पर शहीद होते हैं।"*

इनमें से एक व्यक्ति की मिसाल देते हुए चार्ल्स बॉल लिखता है कि वह "बिना ज़रा सी भी घबराहट के ठीक इस प्रकार फाँसी के तख्ते पर चढ़ गया जिस प्रकार एक योगी अपनी समाधि में प्रवेश करता है!"†

सब से पहले गोरे और सिख सिपाहियों को नगर के लूटने की आज्ञा दी गई। उसके बाद फाँसियों का बाज़ार गर्म हुआ। लिखा है कि बीबीगढ़ में ज़मीन के ऊपर खून का एक बड़ा धब्बा था। सन्देह था कि यह खून गोरी मेमों और बच्चों का है। शहर के अनेक ब्राह्मणों को लाकर जिन पर 'सन्देह था' कि उन्होंने

---

* "General Havelock began to wreak a terrible vengeance for the death of Sir Hugh Wheeler. Batch upon batch of natives mounted the scaffold. The calmness of mind and nobility of demeanour which some of the revolutionaries showed at the time of death was such as would do credit to those who martyred themselves for devotion to a principle."—Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. i, p. 388.

† "Without the least agitation, he mounted the scaffold even as a Yogi enters Samadhi!"—Ibid.

विप्लव में भाग लिया है, उन्हें उस ख़ून को ज़बान से चाटने और फिर झाड़ू से धोकर साफ़ करने की आज्ञा दी गई। इसके बाद इन लोगों को फाँसी दे दी गई। उस समय के अङ्गरेज़ अफ़सर ने इस अनोखे दण्ड का कारण इस प्रकार बयान किया है—

"मैं जानता हूँ कि फ़िरङ्गियों के ख़ून को छूने और फिर उसे मेहतर की झाड़ू से साफ़ करने से एक उच्च जाति का हिन्दू अपने धर्म से पतित हो जाता है। केवल इतना ही नहीं, बल्कि चूँकि मैं यह जानता हूँ इसी लिए मैं उनसे ऐसा कराता हूँ। जब तक हम उन्हें फाँसी देने से पहले उनके समस्त धार्मिक भावों को पैरों तले न कुचलेंगे, तब तक हम पूरा बदला नहीं ले सकते, ताकि उन्हें यह सन्तोष न हो सके कि हम हिन्दू धर्म पर क़ायम रहते हुए मरे।"*

सतीचौरा घाट पर जिन अङ्गरेज़ों को हत्या की गई थी उन्हें कम से कम मरने से पहले इञ्जील का पाठ करने की इजाज़त दे दी गई थी!

इसके थोड़े ही दिनों बाद और कुछ सेना लेकर जनरल नील कानपुर पहुँचा। हैवलॉक अब दो हज़ार अङ्गरेज़ी सेना और दस

---

* "I know that the act of touching Feringhi blood and washing it with a sweeper's broom degrades a high caste Hindoo from his religion. Not only this, but I make them do it because I know it. We could not wreak a true revenge unless we trample all their religious instincts under foot, before we hang them, so that they may not have the satisfaction of dying as Hindoos."
—Ibid.

तोपों सहित २५ जुलाई को कानपुर से लखनऊ की ओर बढ़ा। जनरल नील कानपुर की रक्षा के लिए रहा।

नाना साहब अब बिठूर छोड़ कर अपने खज़ाने और कुछ सेना सहित गङ्गा पार कर फ़तहगढ़ की ओर चला गया।

पञ्जाब का ब्लैकहोल

नाना और हैवलॉक को कुछ देर के लिए यहीं छोड़ कर अब हम फिर राजधानी दिल्ली की ओर चलते हैं। किन्तु दिल्ली के आगे के संग्रामों को वर्णन करने से पहले पञ्जाब की एक छोटी सी घटना को वर्णन कर देना आवश्यक है, जिससे मालूम होगा कि दिल्ली के मोहासरे के दिनों में पञ्जाबियों को "डराने और उन पर अपनी धाक क़ायम रखने"* के लिए पञ्जाब के अङ्गरेज़ शासकों ने किस किस तरह के उपाय किए।

मई के महीने में लाहौर के अन्दर चार देशी पलटनों के हथियार रखाए जा चुके थे। इन लोगों पर सिखों और गोरों का पहरा था और इन्हें छावनी से बाहर जाने की इजाज़त न थी। ३० जुलाई की रात को इनमें से २६ नम्बर पलटन के अधिकांश सिपाही छावनी से चल दिए। इन लोगों के पास न हथियार थे और न इन्होंने किसी तरह के विद्रोह में भाग लिया था। अगले दिन उन्होंने रावी पार करके निकल जाना चाहा। उन्हें रोका गया। वे रावी के किनारे किनारे अमृतसर की ओर बढ़े। सर

* "Overawing" and "striking terror into."—*The Crisis in the Punjab*, pp. 151-52.

पुलिस-स्टेशन—अजनाला

[ज्ञानी हीरासिंह जी, सम्पादक 'कुल्हाड़ी', अमृतसर, की कृपा द्वारा]
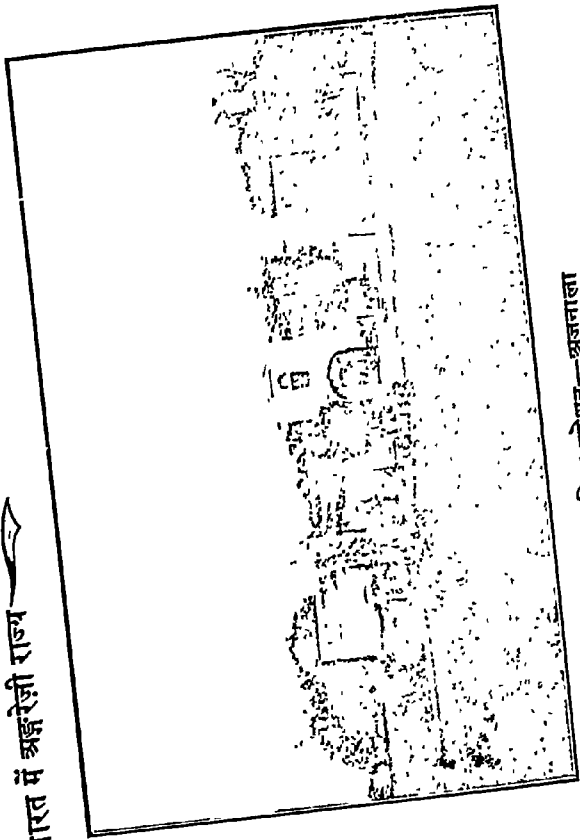
रॉबर्ट मॉण्टगुमरी ने आज्ञा दी कि उनका पीछा किया जाय। अमृतसर का डिप्टी कमिश्नर फ़्रेडरिक कूपर मॉण्टगुमरी का ख़ास आदमी था।

२६ नम्बर पलटन के ये हिन्दोस्तानी सिपाही थके हुए, भूखे और निहत्थे अमृतसर की एक तहसील अजनाले से ६ मील दूर रावी के किनारे पड़े हुए थे। अजनाला अमृतसर से १६ मील के फ़ासले पर है। इसके बाद जो कुछ हुआ वह फ़्रेडरिक कूपर ने अपनी पुस्तक "दी क्राइसस इन दी पञ्जाब" में बड़े अभिमान के साथ वर्णन किया है। इस घटना को हम ठीक कूपर ही के बयान के अनुसार और उसी के शब्दों में केवल थोड़े से संक्षेप के साथ नीचे बयान करते हैं।

३१ जुलाई के दोपहर को कूपर को पता चला कि ये लोग रावी के किनारे किनारे बढ़ रहे हैं। अजनाले के तहसीलदार को कुछ सशस्त्र सिख सिपाहियों सहित उन्हें घेरने के लिए भेजा गया। लगभग चार बजे शाम को कूपर स्वयं ८० या ९० सवारों सहित मौक़े पर पहुँचा। उन थके हुए और भूखे लोगों पर गोलियाँ चलाई गईं। सिपाहियों की संख्या लगभग पाँच सौ के थी। इनमें से क़रीब डेढ़ सौ गोलियों से जख़्मी होकर पीछे को हटे और रावी में डूब गए। कूपर लिखता है कि भूख और थकान के कारण वे इतने निर्बल थे कि धार में ठहर न सके। रावी का जल उनके रक्त से रङ्ग गया। शेष ने पानी में से निकल कर कुछ भागते हुए और कुछ तैरते हुए नदी के ऊपर की ओर लगभग एक मील के फ़ासले

पर एक टापू में आश्रय लिया। दो किश्तियाँ मौक़े पर मौजूद थीं। लगभग तीस सशस्त्र सवार इन किश्तियों में बैठ कर उन्हें गिरफ़्तार करने के लिए भेजे गए। लगभग साठ बन्दूक़ों के मुँह उन लोगों की ओर कर दिए गए। दूर से बन्दूक़ों को देख कर उन मुसीबतज़दा लोगों ने हाथ जोड़ कर अपनी निर्दोषता प्रकट की और प्राण-दान चाहा। इसी समय उनमें से पचास के लगभग नैराश्य के कारण पानी में कूद पड़े और फिर दिखाई न दिए।

शेष को गिरफ़्तार कर लिया गया और थोड़े थोड़े करके किश्तियों में बैठा कर किनारे तक पहुँचा दिया गया। किनारे पर पहुँच कर उनके गलों से मालाएँ आदिक काट कर फेंक दी गईं, उन्हें अलग अलग गिरोहों में अच्छी तरह बाँध दिया गया और सिख सवारों की देख रेख में धीरे धीरे अजनाले पहुँचा दिया गया। उस समय ज़ोर की बारिश हो रही थी।

आधी रात के लगभग कुल २८२ सिपाही जिनमें कई अफ़सर भी थे, अजनाले के थाने पर पहुँच गए। कूपर ने पहले से अजनाले के थाने में इन सब को फाँसी देने के लिए रस्सियों और गोली से उड़ाने के लिए पचास सशस्त्र सिख सिपाहियों दोनों का प्रबन्ध कर रक्खा था। किन्तु बारिश के कारण यह कार्य सुबह के लिए स्थगित किया गया। ये सब लोग पुलिस के मकान में न आ सकते थे। पास ही तहसील की नई इमारत बन कर तैयार थी। अधिकांश को सुबह तक के लिए पुलिस के थाने में बन्द कर दिया गया, और ६६ को तह-सील की नई इमारत के एक छोटे से गुम्बद में बन्द कर दिया गया।

'काल्याँ-दा-बुर्ज'—अजनाला

इस इमारत के एक छोटे से बुर्ज में सन् ५७ में ६६ आदमी बन्द कर दिए गए थे, जिनमें से ४५ हवा की कमी के कारण सुबह को मरे हुए निकले।

[ज्ञानी हीरासिंह जी, सम्पादक 'फुलवाड़ी', अमृतसर, की कृपा द्वारा]

यह गुम्बद बहुत तङ्ग था। उसके दरवाज़े चारों ओर से बन्द कर दिए गए।

अगले दिन पहली अगस्त को बक़रीद थी। प्रातःकाल इन अभागों को दस दस करके बाहर लाया गया। कूपर थाने के सामने बैठा हुआ था। दस सिख सिपाही एक ओर बन्दूक़ें लिए खड़े रहते थे। शेष चालीस उनके आस पास मदद के लिए रहते थे। सामने आते ही इन लोगों को गोली से उड़ा दिया जाता था।

इनमें से अधिकांश सिपाही हिन्दू थे। लिखा है कि उनमें से कुछ ने मरते समय सिखों को गङ्गा जी की दुहाई देकर लानत मलामत की। जब थाने के क़ैदी ख़त्म होगए तो गुम्बद के क़ैदियों को बाहर निकाला गया। किन्तु अभी कुल २३७ सिपाही ही गोली से उड़ाए गए थे, अर्थात् गुम्बद में से केवल २१ सिपाही बाहर निकले थे कि कूपर को सूचना दी गई शेष क़ैदी गुम्बद से बाहर निकलने से इनकार करते हैं।

कूपर लिखता है कि पहले उनको दुरुस्त करने का प्रबन्ध किया गया। फिर भीतर जाकर देखा गया तो शेष ४५ सिपाहियों की लाशें पड़ी हुई मिलीं। सम्भवतः उनमें से कुछ अभी तक सिसक रहे थे। कूपर के शब्द हैं—

"अनजाने ही हॉलवेल के ब्लैकहोल का हत्याकाण्ड फिर से दोहराया गया।"*

---

* "Unconsciously the tragedy of Holwell's Black Hole had

यहाँ पर यह दोहराने की आवश्यता नहीं है कि हॉलवेल के ब्लैकहोल का क़िस्सा बिलकुल झूठा था, किन्तु कूपर का अजनाले का ब्लैकहोल एक सच्ची घटना थी !

रात को वे लोग पानी और हवा के लिए चिल्लाए होंगे; किन्तु कूपर लिखता है कि बाहर के शोर के कारण उनकी आवाज़ें सुनाई नहीं दीं !

४५ लाशें, उन लोगों की जो थकान, गरमी और हवा की कमी के कारण भीतर घुट कर मर गए, बाहर घसीट कर डाल दी गईं !

एक कठिनाई बाक़ी थी। इन २८२ लाशों को दफ़न करने का प्रश्न। अजनाले के थाने से लगभग सौ गज़ के अन्दर एक गहरा पुराना कुआँ था। ये सब लाशें मेहतरों से घिसटवा घिसटवा कर उस कुएँ में डलवा दी गईं। शेष कुएँ को मिट्टी से भर दिया गया और उसके ऊपर मट्टी का एक इतना ऊँचा ढेर लगा दिया गया कि एक टीला सा बन गया।

इस कुएँ के विषय में फ़्रेडरिक कूपर बड़े अभिमान के साथ लिखता है—

"एक कुआँ कानपुर में है, किन्तु एक कुआँ अजनाले में भी है।"*

---

been re-enacted."—*The Crisis in the Punjab*, by Frederick Cooper.

* "There is a well at Cawnpore, but there is also one at Ajnalah."—Ibid.

'काल्याँ-दा-खूह'-अजनाला

इस प्रकार २६ नम्बर पलटन के लगभग पाँच सौ मनुष्यों को २४ घण्टे के अन्दर परलोक पहुँचा दिया गया। उस पलटन के जो शेष थोड़े से सिपाही लाहौर से अथवा रावी के किनारे से इधर उधर भाग निकले थे उन सब को दो चार दिन के अन्दर गिरफ़्तार कर लिया गया। और कुछ को लाहौर में और कुछ को अमृतसर में तोप के मुँह से उड़ा दिया गया।

अगले दिन चीफ़ कमिश्नर सर जॉन लॉरेन्स और जुडीशल कमिश्नर सर रॉवर्ट मॉण्टगुमरी ने समस्त घटना का समाचार पाकर कूपर को अत्यन्त प्रशंसा के पत्र लिखे, जो कूपर की पुस्तक में छपे हुए हैं। हिन्दू तहसीलदार और सिख घातकों को बड़ी बड़ी रक़में इनाम में दी गईं।

अजनाले की भीषण घटना यदि फ़्रेडरिक कूपर ने अपनी पुस्तक के अन्दर बयान न की होती तो हमें उस पर पूरा विश्वास हो सकना कठिन था। किन्तु हमने जो कुछ ऊपर वर्णन किया है, कूपर ही के शब्दों में किया है!

इस पर भी इस घटना की तसदीक़ करने के लिए हमने 'फुलवाड़ी' पत्र के सम्पादक ज्ञानी हीरासिंह जी को कष्ट दिया। उन्होंने स्वयं अमृतसर से अजनाले जाकर इस घटना की तसदीक़ की। अजनाले का एक बूढ़ा मनुष्य बाबा जगतसिंह, जिसकी आयु विप्लव में लगभग बीस वर्ष की थी, इस समय (सितम्बर १९२८) जीवित है और पूरी तरह सचेत है। बाबा जगतसिंह ने यह समस्त घटना अपनी आँख से देखी थी। बाबा जगतसिंह का

क़लमबन्द बयान हमारे पास मौजूद है। उसमें और ऊपर के बयान में मुख्य बातों में कोई अन्तर नहीं है। वह कुआँ भी, जिसके अन्दर २८२ लाशें फेंकी गई थीं, अभी तक मौजूद है। उसके ऊपर एक ऊँचा मट्टी का टीला है। अजनाले में इसे अभी तक 'काल्याँ-दा-खूह' कहते हैं। पुलिस का थाना भी, जिसके सामने सिपाहियों को मारा गया था और तहसील की वह इमारत, जिसके एक गुम्बद में ४५ सिपाही घुट कर मर गए, अभी तक मौजूद हैं। बाबा जगतसिंह का बयान है कि अजनाले के उस समय के तहसीलदार का नाम प्राणनाथ था और जो लोग कुएँ के अन्दर एक दूसरे के ऊपर डाले गए उनमें से कुछ जीवित थे और चिल्ला रहे थे।

इस शोकजनक घटना से हट कर अब हम राजधानी दिल्ली की ओर आते हैं।

दिल्ली में कमी

दिल्ली के अन्दर इस समय विप्लवकारियों का मुख्य कार्य यह था कि वे बार बार नगर से निकल कर कभी दाएँ से और कभी बाएँ से अङ्गरेज़ी सेना पर हमला करते थे, अङ्गरेज़ी सेना को काफ़ी नुक़सान पहुँचा देते थे, और फिर पीछे को हटते जाते थे। अङ्गरेज़ी सेना उनका पीछा करती थी। जब अङ्गरेज़ी सेना शहर फ़सील के ठीक नीचे आ जाती थी, फ़सील के ऊपर की तोपें उन पर इस बुरी तरह गोले बरसाती थीं कि कम्पनी के सिपाही दीवार के नीचे चनों की तरह भुनने लगते थे। इस प्रकार कई बार में कम्पनी

बाबा जगतसिंह—अजनाला

[ज्ञानी हीरासिंह जी, सम्पादक 'फुलवाड़ी', अमृतसर की कृपा द्वारा]

को सेना के इतने अधिक आदमी मारे गए कि जनरल विलसन ने विवश होकर आज्ञा दे दी कि आयन्दा किसी सूरत में भी विप्लव-कारी सेना का पीछा न किया जाय। अङ्गरेजी सेना की स्थिति इस समय काफ़ी शोचनीय थी।

जब कि एक ओर अङ्गरेजी सेना को नगर में घुसने का साहस न होता था, दूसरी ओर विप्लवकारी सेना को भी इस बात का साहस न हुआ कि एक बार शहर से निकल कर मैदान में डट कर अङ्गरेजी सेना को ख़त्म कर दे। कारण केवल यह था कि जब कि दिल्ली की सेना में वीरता, संख्या अथवा सामान किसी की कमी न थी, दिल्ली के अन्दर कोई एक ऐसा योग्य और प्रभावशाली नेता न था जो प्रान्त प्रान्त की सेनाओं को सफलता के साथ वश में रख सके और उन सब को मिलाकर एक निर्णायक संग्राम के लिए आगे बढ़ सके। सम्राट बहादुरशाह अत्यन्त बूढ़ा था और स्वयं सेनापतित्व ग्रहण करने के असमर्थ था। शहज़ादा मिरज़ा मुग़ल अयोग्य साबित हो चुका था। सेनापति बख्त ख़ाँ उस समय विप्लवकारी सेनापतियों में सब से अधिक योग्य और समझदार था। किन्तु वह एक सामान्य सेनापति था। उच्च कुल का घमण्ड अभी तक भारतवासियों में मौजूद था। दिल्ली की अनेक सेनाओं के सेनापति छोटे मोटे नरेश अथवा राजकुलों के लोग थे। उन लोगों पर बख्त ख़ाँ का प्रभाव न पड़ता था। उनमें से कोई कोई बख्त ख़ाँ के साथ स्पर्धा भी अनुभव करने लगे थे। जयपुर, जोधपुर, सींधिया और होलकर जैसे नरेश राष्ट्रीय विप्लव का साथ देने का

अन्त तक निश्चय न कर सके। अन्यथा महाराजा सींधिया जैसे प्रभावशाली आदमी का एक बार दिल्ली में आकर इस कमी को पूरा कर सकना कोई कठिन कार्य न होता। वास्तव में दिल्ली के अन्दर की यह ज़बरदस्त कमी ही सन् ५७ के विप्लव की अन्तिम असफलता का एक मुख्य कारण हुई। दिल्ली के अन्दर एक बार लगभग पचास हज़ार सन्नद्ध सेना थी। यदि यह विशाल सेना फ़सील के नीचे की अङ्गरेज़ी सेना को समाप्त कर विजय के उत्साह में भरी हुई एक बार शेष भारत पर फैल जाती तो निस्सन्देह इसके बाद का विप्लव का नक़्शा बिलकुल बदल गया होता।

सम्राट बहादुरशाह इस कमी को पूरी तरह समझ रहा था। इस कमी को पूरा करने के उसने अनेक उपाय किए। किन्तु व्यर्थ! उसने अपने बेटे मिरज़ा मुग़ल को हटा कर दिल्ली की सेनाओं का प्रधान नेतृत्व बख़्त ख़ाँ को सौंप दिया। किन्तु इससे भी कार्य न चला। अन्त में सम्राट बहादुरशाह ने निम्नलिखित पत्र स्वयं अपने काँपते हुए हाथ से लिख कर जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, अलवर तथा अन्य अनेक राजाओं के पास भेजा—

"मेरी यह दिली ख़्वाहिश है कि जिस ज़रिए से भी और जिस क़ीमत पर भी हो सके, फ़िरङ्गियों को हिन्दोस्तान से बाहर निकाल दिया जाय। मेरी यह ज़बरदस्त ख़्वाहिश है कि तमाम हिन्दोस्तान आज़ाद हो जाय। लेकिन इस मक़सद को पूरा करने के लिए जो क्रान्तिकारी युद्ध शुरू कर दिया गया है वह उस समय तक फ़तहयाब नहीं हो सकता जिस समय तक कि कोई ऐसा शख़्स जो इस तमाम तहरीक के भार को अपने ऊपर

उठा सके, जो क़ौम की मुख़्तलिफ़ ताक़तों को सङ्गठित करके एक ओर लगा सके और जो अपने तईं तमाम क़ौम का नुमाइन्दा कह सके, मैदान में आकर इस क्रान्ति का नेतृत्व अपने हाथों में न ले ले। अङ्गरेज़ों के निकाल दिए जाने के बाद अपने ज़ाती फ़ायदे के लिए हिन्दोस्तान पर हुकूमत करने की मुझमें ज़रा भी ख़्वाहिश बाक़ी नहीं है। अगर आप सब देशी नरेश दुश्मन को निकालने की ग़रज़ से अपनी तलवार खींचने के लिए तैयार हों, तो मैं इस बात के लिए राज़ी हूँ कि अपने तमाम शाही अख़्तियारात और हक़ूक़ देशी नरेशों के किसी ऐसे गिरोह के हाथों में सौंप दूँ जिसे इस काम के लिए चुन लिया जाय।"*

निस्सन्देह यह हसरत से भरा हुआ पत्र दिल्ली के अन्तिम सम्राट बहादुरशाह की समस्त भारतवर्ष के प्रति शुभेच्छा और उसकी उदारता, दोनों का दर्पण है।

किन्तु सन्दिग्ध-हृदय भारतीय नरेशों पर इसका यथेच्छ प्रभाव न पड़ सका।

इस बीच जनरल निकल्सन के अधीन और नई सेना ने पञ्जाब से आकर कम्पनी की सेना में नई जान डाल दी। यह स्मरण रखना चाहिए कि इस समय जो कम्पनी की सेना दिल्ली के बाहर थी, उसमें अङ्गरेज़ों की अपेक्षा हिन्दोस्तानियों की संख्या कई गुनी थी। इन हिन्दोस्तानियों में अधिकतर सिख, गोरखे और कुछ अन्य पञ्जाबी थे।† तथापि अगस्त के अन्त तक विप्लव-

---

* The Autograph letter,—*Native Narratives*, by Sir T. Metcalfe, p. 226.

† *History of the Siege of Delhi*, by an Officer who served there.

कारी सेना बार बार कम्पनी की सेना पर हमला करती रही, किन्तु कम्पनी की सेना शहर फ़सील के निकट आने की हिम्मत न कर सकी।

२५ अगस्त को सिपहसालार बख़्त ख़ाँ ने फिर एक बार अपनी पूरी ताक़त से अङ्गरेज़ी सेना पर हमला किया। दिल्ली के अन्दर उस समय दो सेनाएँ मुख्य थीं। एक बरेली की और दूसरी नीमच की। विप्लवकारियों के दुर्भाग्य से इन दोनों सेनाओं में काफ़ी वैमनस्य और प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो गई थी। बख़्त ख़ाँ ने इन दोनों सेनाओं को मिला कर रखने का यथाशक्ति प्रयत्न किया। २५ अगस्त को ठीक उस समय जब कि बख़्त ख़ाँ ने इन दोनों सैन्यदलों को लेकर अङ्गरेज़ी सेना के मुख्य स्थान नजफ़गढ़ पर हमला किया, नीमच की सेना ने बख़्त ख़ाँ की आज्ञा का उल्लङ्घन किया। इन लोगों ने उस स्थान को छोड़ कर, जहाँ पर कि बख़्त ख़ाँ ने उन्हें ठहरने के लिए कहा था, पास के दूसरे गाँव में डेरे जमाए। वे लोग शेष विप्लवकारी सेना से पृथक होगए। जनरल निकल्सन ने समाचार पाते ही पहले उन पर हमला किया और एक अत्यन्त घमासान संग्राम के बाद, जिसमें कि नीमच का एक एक सिपाही कट कर मर गया, कम्पनी की सेना ने विजय प्राप्त की। बख़्त ख़ाँ को अपनी शेष सेना सहित पीछे लौट आना पड़ा।

नीमच की सेना की बहादुरी की अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। किन्तु बिना सेनापति की अनन्य आज्ञापालन के संसार की कोई सेना भी विजय प्राप्त नहीं कर

सकती। पूर्ण व्यवस्था सामरिक सफलता का सब से आवश्यक साधन है। १६ मई के बाद वह पहला दिन था कि दिल्ली के नगर के अन्दर नैराश्य की छटा दिखाई देने लगी और कम्पनी की सेना के हौसले दुगने होगए।

कम्पनी की ओर उस समय साढ़े तीन हज़ार अङ्गरेज़, पाँच हज़ार सिख, गोरखे तथा पञ्जाबी, ढाई हज़ार काशमीरी, और स्वयं झींद का महाराजा और उसकी सेना थी। नगर के अन्दर अव्यवस्था बढ़ती चली गई। सितम्बर के शुरू में अङ्गरेज़ी सेना को धीरे धीरे नगर पर आक्रमण करने का साहस होने लगा। इतिहास-लेखक फ़ॉरेस्ट लिखता है कि कम्पनी की ओर के भारतीय सिपाही उस समय अपने प्राणों पर खेलकर असाधारण वीरता के साथ अपने सेनापतियों की आज्ञा पालन कर रहे थे।

इस बीच कम्पनी की ओर गुप्तचरों का मोहकमा भी ख़ासा उन्नति कर गया था। इस मोहकमे का प्रधान हडसन था। शहर के अन्दर कई विश्वासघातक पैदा किए जा चुके थे, जिनमें मुख्य सम्राट बहादुरशाह का समधी मिरज़ा इलाहीबख़्श था। मिरज़ा इलाहीबख़्श प्रायः सदा बहादुरशाह के साथ रहता था और महल की तमाम बातों तथा सलाहों की ख़बरें मेजर हडसन तक पहुँचाता रहता था।

७ सितम्बर से कम्पनी की सेना ने नगर के अन्दर प्रवेश करने के जीतोड़ प्रयत्न शुरू कर दिए। ७ से १३ तक उन्हें प्रति दिन अनेक जानें देकर पीछे हट जाना पड़ा। किन्तु इस बीच कम्पनी की

तोपों के कारण शहर फ़सील में जगह जगह दरारें पड़ गई थीं। १४ सितम्बर को कम्पनी की सेना ने नगर में प्रवेश करने का अन्तिम और सबसे अधिक ज़ोरदार प्रयत्न किया। वास्तव में उस दिन का दिल्ली का संग्राम विप्लव के सबसे अधिक भयङ्कर संग्रामों में से था।

१४ सितम्बर का संग्राम

प्रातःकाल जनरल विलसन ने कम्पनी की सेना को पाँच दलों में विभक्त किया। एक दल ब्रिगेडियर जनरल निकल्सन के अधीन, दूसरा करनल कैम्पबेल के अधीन, तीसरा ब्रिगेडियर जोन्स के अधीन, चौथा मेजर रीड के अधीन और पाँचवाँ ब्रिगेडियर लॉङ्गफ़ील्ड के अधीन। पहले तीन दलों ने जनरल निकल्सन के प्रधान नेतृत्व में काशमीरी दरवाज़े की ओर से प्रवेश करना चाहा, चौथे दल ने मेजर रीड के अधीन काबुली दरवाज़े तथा सब्ज़ी मण्डी की ओर से बढ़ना चाहा। सबसे पहले सूर्योदय के थोड़ी देर बाद निकल्सन अपने दल सहित फ़सील की ओर बढ़ा। भीतर से विप्लवकारियों की तोपों ने गोले बरसाने शुरू किए। दीवार के नीचे अङ्गरेज़ तथा सिख सिपाहियों की लाशों के ढेर लग गए। तथापि उन्हें रौंदते हुए निकल्सन और उसके कुछ साथी दीवार तक पहुँच गए। पिछले सात दिनों के प्रयत्नों में दीवार का कुछ टुकड़ा टूट चुका था। इस टुकड़े के पास सीढ़ी लगा दी गई। निकल्सन पहला अङ्गरेज़ वीर था, जिसने गोलियों और गोलों की बौछार के अन्दर काशमीरी दरवाज़े के निकट फ़सील पर चढ़ कर विजय की बिगुल बजाई।

इसी प्रकार मरते मारते दूसरा दल एक और ओर से फ़सील पर चढ़ कर शहर के भीतर कूद पड़ा। तीसरा दल काशमीरी दरवाजे की ओर बढ़ा। कुछ अफ़सरों ने आगे बढ़ कर दरवाज़े को बारूद से उड़ा देना चाहा। दीवारों और खिड़कियों से धुँआधार गोलियाँ बरसने लगीं। कई अङ्गरेज़ और देशी अफ़सर इसी प्रयत्न में मारे गए। अन्त में एक ने दरवाज़े तक बारूद पहुँचा दी और दूसरे कप्तान बरगेस ने मरते मरते फ़लीता दिखा दिया। काशमीरी दरवाज़े का एक भाग उड़ गया। करनल कैम्पबेल ने अपने दल को आगे बढ़ने की आज्ञा दी और गोलियों की बौछार में से बढ़ कर कैम्पबेल और उसके कुछ साथी काशमीरी दरवाज़े के अन्दर पहुँच गए।

चौथे दल ने मेजर रीड के अधीन काबुली दरवाज़े की ओर से बढ़ना चाहा। सब्ज़ी मण्डी के निकट दिल्ली की सेना से उनका आमना सामना हुआ। पहले ही वार में मेजर रीड घायल होकर गिर पड़ा। एक बार उसकी सेना पीछे हटी। इस पर होप ग्राण्ट कुछ सवारों सहित आगे बढ़ा। दोनों ओर से रक्त की नदियाँ बहने लगीं। होप ग्राण्ट के अधिकतर सवार हिन्दोस्तानी थे। संग्राम में दोनों पक्ष के सिपाहियों ने अपूर्व वीरता का परिचय दिया। अन्त में अङ्गरेजी सेना को फिर पीछे हट जाना पड़ा।

चौथे दल ने इस प्रकार हार खाई। शेष तीनों दलों ने निकल्सन, कैम्पबेल और जोन्स के अधीन काशमीरी दरवाज़े से घुस कर शहर पर धावा किया। जिस जिस मकान अथवा मीनार

को ये लोग सर कर लेते थे उस पर तुरन्त सूचना के लिए अङ्गरेज़ी झण्डा गाड़ देते थे। एक एक मकान के सामने संग्राम होता जाता था। इस प्रकार लड़ते लड़ते ये तीनों दल काबुली दरवाज़े की ओर बढ़े।

बर्न बैस्टियन के पास पहुँच कर इन लोगों को एक तङ्ग गली में से निकलना पड़ा। इस गली के दोनों ओर की खिड़कियों, छज्जों और छतों पर से गोलियों की भयङ्कर वर्षा होने लगी। गली के अन्दर अक्षरशः रक्त की नदी बह निकली। अङ्गरेज़ी सेना को मजबूर होकर पीछे हट जाना पड़ा। निकल्सन यह हालत देख कर एक सच्चे वीर के समान आगे बढ़ा। यह गली लगभग दो सौ गज़ लम्बी थी। किन्तु १४ सितम्बर के दिन इस गली ने वास्तव में अद्भुत कार्य कर दिखाया। वीर निकल्सन को भी पीछे हट जाना पड़ा। इस पर मेजर जैकब आगे बढ़ा और तुरन्त घायल होकर गिर पड़ा। निकल्सन फिर दूसरी बार आगे बढ़ा। किन्तु इस बार आगे बढ़ते ही घायल होकर ज़मीन पर गिर पड़ा। अन्त में अङ्गरेज़ी सेना को गली छोड़ कर पीछे हट जाना पड़ा। गली लाशों से भर गई। कम्पनी की सेना को पीछे हट कर फिर काशमीरी दरवाज़े लौट आना पड़ा।

जिस समय निकल्सन बर्न बैस्टियन की ओर बढ़ रहा था उसी समय करनल कैम्पबेल के अधीन एक दल जामे मस्जिद की ओर भेज दिया गया था। मस्जिद तक पहुँचने में इन लोगों को बहुत अधिक कठिनाई नहीं हुई। किन्तु मस्जिद में उस समय

कई 'हज़ार मुसलमान जमा थे। उन्हें यह पता चला कि अङ्गरेज़ मसजिद को बारूद से उड़ाना चाहते हैं। इन सब के पास तलवार थीं, बन्दूकें न थीं। ये सब लोग अपनी तलवार हाथ में लेकर मसजिद से निकल पड़े। सब से पहले उन्होंने अपनी तलवारों के मियान काट कर फेंक दिए। उन्हें मसजिद के बाहर देखते ही अङ्गरेज़ी सेना ने उन पर बन्दूकों की एक बाढ़ चलाई। उनमें से दो सौ आदमियों की लाशें तुरन्त मसजिद की सीढ़ियों पर गिर पड़ीं। किन्तु शेष मुसलमान इस फुरती के साथ तलवारें हाथ में लिए आगे बढ़े कि अङ्गरेज़ी सेना को दोबारा बन्दूकें भरने अथवा सँभालने तक का अवकाश न मिल सका। बन्दूकों को छोड़ कर दोनों ओर से तलवारों की लड़ाई प्रारम्भ हो गई। कैम्पबेल घायल हो गया। अङ्गरेज़ी सेना के इस दल को भी विवश होकर काश्मीरी दरवाज़े की ओर भाग आना पड़ा। कैम्पबेल ने बाद में बयान किया कि यदि मुझे समय पर सहायता पहुँच जाती और बारूद के थैले मेरे पास आ जाते तो मैं उस दिन दिल्ली की जामे मसजिद को अवश्य उड़ा देता।

इस प्रकार १४ सितम्बर की लड़ाई ख़त्म हो गई। दिल्ली में अङ्गरेज़ी सेना के प्रवेश का यह पहला दिन था। संग्राम अत्यन्त भयङ्कर रहा। दोनों पक्षों ने एक एक इञ्च भूमि के लिए अपने और शत्रु दोनों के रक्त को पानी की तरह बहा दिया। अङ्गरेज़ों की ओर चार मुख्य सेनापतियों में से तीन घायल हो गए, जिनमें सब से वीर सेनापति निकल्सन २३ सितम्बर को अस्पताल में

मरा। कम्पनी के ६६ अफ़सर और १,१०४ सिपाही उस दिन के संग्राम में मारे गए। कहा जाता है कि विप्लवकारियों की ओर लगभग १,५०० आदमी मरे। किन्तु चार महीने के मोहासरे के बाद दिल्ली की दीवार के अन्दर कम्पनी की सेना ने प्रवेश कर लिया।

दिल्ली का पतन

इसके बाद के दिल्ली के संग्रामों को इतने विस्तार के साथ वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। विप्लवकारियों की ओर अव्यवस्था बढ़ने लगी। कुछ सेना तुरन्त दिल्ली छोड़ कर चल दी और कुछ १५ सितम्बर से २४ सितम्बर तक दिल्ली की एक एक चप्पा भूमि के लिए शत्रु के साथ संग्राम करती रही। इन संग्रामों में कम्पनी की सेना के लगभग चार हज़ार मनुष्य मारे गए। विप्लवकारियों के हताहतों की संख्या इससे कुछ अधिक बताई जाती है।

धीरे धीरे तीन चौथाई नगर कम्पनी के क़ब्ज़े में आ गया। इस पर १९ सितम्बर की रात को बख्त ख़ाँ सम्राट बहादुरशाह से भेंट करने के लिए गया। उसने सम्राट को हिम्मत दिलाई और कहा कि,—दिल्ली हाथों से निकल जाने पर भी हमारा अधिक नहीं बिगड़ा, तमाम मुल्क में आग लगी हुई है, आप अङ्गरेज़ों से हार स्वीकार न कीजिए, आप मेरे साथ दिल्ली से निकल चलिए, कई अन्य स्थान सामरिक दृष्टि से दिल्ली की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं, इनमें से किसी पर भी जम कर हमें युद्ध जारी रखना चाहिए। मुझे विश्वास है कि अन्त में हमारी विजय होगी।

सम्राट बहादुरशाह बख़्त ख़ाँ की बात पर लगभग राज़ी हो गया, और उसे अगले दिन सवेरे फिर मिलने के लिए बुलाया। दूसरी ओर अङ्गरेज़ों ने अपने गुप्त सहायक मिरज़ा इलाहीबख़्श पर इस बात का ज़ोर दिया कि तुम किसी प्रकार बादशाह को दिल्ली से बाहर जाने से रोक लो। इस कार्य के लिए मिरज़ा इलाहीबख़्श से बहुत बड़े इनाम का वादा किया गया। चुनाँचे आज तक मिरज़ा इलाहीबख़्श के वंशजों को बारह सौ रुपए माहवार पेनशन मिलती है।

बख़्त ख़ाँ के चले जाने के बाद मिरज़ा इलाहीबख़्श ने सम्राट को समझाया कि,—विप्लव के सफल होने की अब कोई आशा नहीं हो सकती, बख़्त ख़ाँ के साथ जाने में आपको सिवाय कष्टों और हानि के कुछ न मिलेगा, और यदि आप यहाँ रह जायँगे तो मैं वादा करता हूँ कि अङ्गरेज़ों से मिल कर सब बातों की सफ़ाई करा दूँगा, आप और आपके कुटुम्बियों पर किसी तरह की आँच न आने पाएगी।

अगले दिन सवेरे बहादुरशाह हुमायूँ के मक़बरे में गया। बख़्त ख़ाँ को वहीं पर मिलने के लिए बुलाया गया। मक़बरे के पूर्व की ओर जमना की रेती में बख़्त ख़ाँ की फ़ौज पड़ी हुई थी। पूर्व की ओर के दरवाज़े से ही बख़्त ख़ाँ बहादुरशाह से मिलने के लिए मक़बरे में आया। बख़्त ख़ाँ ने बहादुरशाह को फिर समझाया। लिखा है कि बख़्त ख़ाँ बहादुरशाह को अपने साथ ले जाना चाहता था, बहादुरशाह बख़्त ख़ाँ के साथ जाना चाहता था,

और मिरज़ा इलाहीबख्श बहादुरशाह को रोक लेने के दाँव पेच खेल रहा था। अन्त में मिरज़ा इलाहीबख्श ने जब देखा कि और कोई चाल नहीं चल सकती तो उसने बख्त ख़ाँ पर यह इलज़ाम लगाया कि बख्त ख़ाँ चूँकि पठान है वह मुग़लों से अपनी क़ौम का पुराना बदला चुकाना चाहता है और छल से बहादुरशाह को फँसाना चाहता है। इस पर बात यहाँ तक बढ़ी कि निर्दोष बख्त ख़ाँ ने मिरज़ा इलाहीबख्श पर तलवार खींच ली। किन्तु स्वयं बहादुर-शाह ने उसका हाथ रोक लिया। निस्सन्देह मिरज़ा इलाहीबख्श का कोई न कोई तीर नेक, किन्तु बूढ़े तथा निर्बल बहादुरशाह पर अवश्य चल गया। अन्त में बहादुरशाह ने बख्त ख़ाँ से ये शब्द कहे—

"बहादुर ! मुझे तेरी हर बात का यक़ीन है और मैं तेरी हर राय को दिल से पसन्द करता हूँ। मगर जिस्म की क़ूवत ने जवाब दे दिया है। इसलिए मैं अपना मामला तक़दीर के हवाले करता हूँ। मुझको मेरे हाल पर छोड़ दो और बिस्मिल्लाह करो ! यहाँ से जाओ और कुछ काम करके दिखाओ ! मैं नहीं, मेरे ख़ान्दान में से नहीं, न सही, तुम या और कोई हिन्दोस्तान की लाज रक्खे ! हमारी फ़िक्र न करो। अपने फ़र्ज़ को अञ्जाम दो।"*

दिल्ली के समस्त स्वतन्त्रता संग्राम का यदि मुकुट बहादुरशाह था और हाथ पैर हज़ारों हिन्दू और मुसलमान वीर सिपाही थे, तो उस संग्राम का दिल और दिमाग़ बख्त ख़ाँ था। बहादुरशाह

---

*"देहली की जाँकनी"—लेखक ख़्वाजा हसन निज़ामी।

के इस उत्तर से बख्त ख़ाँ का दिल टुकड़े टुकड़े हो गया। वह गरदन नीची करके मक़बरे के पूर्वीय दरवाजे से बाहर निकल आया।

दूसरी ओर विश्वासघातक मिरज़ा इलाहीबख्श ने पश्चिमी दरवाजे से बाहर निकल कर तुरन्त अङ्गरेज़ों को सूचना दी कि इसी समय चुपके से पश्चिमी दरवाजे पर आकर बहादुरशाह को गिरफ़्तार कर लिया जाय। तुरन्त कप्तान हडसन पचास सवार लेकर मक़बरे के पश्चिमी दरवाजे पर पहुँच गया। लिखा है कि जिस समय बहादुरशाह को मालूम हुआ कि हडसन मुझे गिरफ़्तार करने आया है, उसने एक बार मिरज़ा इलाहीबख्श की ओर घूर कर देखा और कहा—"तुमने मुझको बख्त ख़ाँ के साथ जाने से रोका × × ×।" इलाहीबख्श सर झुकाए चुपचाप खड़ा रहा। यह भी लिखा है कि बहादुरशाह ने फिर इरादा किया कि किसी को भेज कर बख्त ख़ाँ को बुलाया जाय, किन्तु समय हाथ से निकल चुका था।

सम्राट बहादुरशाह, बेगम ज़ीनतमहल और शहज़ादे जवाँबख्त को चुपचाप पूर्वीय दरवाजे से गिरफ़्तार करके लाल क़िले में लाकर क़ैद कर दिया गया, और दिल्ली का नगर १३४ दिन के कठिन परिश्रम के बाद फिर से पूरी तरह अङ्गरेज़ों के क़ब्ज़े में आगया।

इसके बाद बख्त ख़ाँ अपनी समस्त सेना सहित जमना को पार कर किसी ओर निकल गया और आज तक किसी को उसका अथवा उसकी सेना का पता न चल सका।

जनरल विलसन और कप्तान हडसन की राय थी कि सम्राट

बहादुरशाह को तुरन्त मार डाला जाय। किन्तु अभी तक अधिकांश विप्लवकारी भारत अङ्गरेज़ों के वश में न आया था। इसलिए अन्य अनेक अङ्गरेज़ अफ़सरों की राय इसके विरुद्ध थी। अन्त में बहादुरशाह को केवल क़ैद कर दिया गया।

सम्राट बहादुरशाह की गिरफ़्तारी के बाद बहादुरशाह के दो और बेटे मिरज़ा मुग़ल और मिरज़ा अख़ज़र सुलतान और एक पोता मिरज़ा अबूबकर हुमायूँ के मक़बरे में बाक़ी रह गए थे। कुछ अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों का बयान है कि इन लोगों ने विप्लव के शुरू के दिनों में अङ्गरेज़ औरतों और बच्चों की हत्या में भाग लिया था। मिरज़ा इलाहीबख़्श ने हडसन को सूचना दी कि ये लोग अभी तक मक़बरे में मौजूद हैं। हडसन तुरन्त फिर मक़बरे की ओर लौटा। तीनों शहज़ादों को क़ैद कर लिया गया। मिरज़ा इलाहीबख़्श ने शहज़ादों को समझा कर इस कार्य में पूरी मदद दी। शहज़ादों को रथों में सवार करा कर हडसन अपने सवारों, मिरज़ा इलाहीबख़्श और उसके दो मुसाहिबों सहित शहर की ओर चला। जब शहर एक मील रह गया तो हडसन ने रथों को ठहराया, तीनों शहज़ादों को रथों से उतरने के लिए कहा, उनके कपड़े उतरवाए और फिर अचानक अपने एक सिपाही के हाथ से बन्दूक़ लेकर उन तीनों को तीन फ़ायर में वहीं पर ख़त्म कर दिया। गोलियाँ तीनों शहज़ादों की छाती में लगीं और वह "हाय दग़ा!" कह कर वहीं ठण्ढे होगए। मिरज़ा इलाहीबख़्श ने तीनों शहज़ादों से वादा कर लिया था कि मैं जनरल विलसन से तुम्हारी जान बख़्शवा दूँगा!

शहज़ादों के सिर काट कर सम्राट बहादुरशाह के सामने लाए गए। सिरों को पेश करते हुए हडसन ने बहादुरशाह से कहा—

"कम्पनी की ओर से यह आपकी नज़र है जो बरसों से बन्द थी।"

ख्वाजा हसन निज़ामी ने लिखा है कि सम्राट बहादुरशाह ने जवान बेटों और जवान पोते के कटे हुए सिर देखे तो आश्चर्यजनक धैर्य के साथ देख कर मुँह फेर लिया और कहा—

"अलहम्दोलिल्लाह! तैमूर की औलाद ऐसी ही सुर्ख़-रू होकर बाप के सामने आया करती थी!"*

इसके बाद शहज़ादों के सिर ख़ूनी दरवाज़े के सामने लाकर लटका दिए गए और धड़ कोतवाली के सामने टाँग दिए गए। अगले दिन इन तीनों लाशों को जमना में फिंकवा दिया गया।

शहज़ादों की हत्या के सम्बन्ध में एक और इससे भी कहीं अधिक भयङ्कर रिवायत दिल्ली में मशहूर थी। वह रिवायत यह है कि एक तो ये शहज़ादे जिन्हें हडसन ने इस प्रकार धोखा देकर मारा, चार थे। इनमें एक शहज़ादा अब्दुल्ला भी था। दूसरी मुख्य बात यह है कि हडसन ने शहज़ादों को मारकर तुरन्त अपने चुल्लू में भर कर उनका गरम गरम ख़ून पिया और पीकर यह कहा कि यदि मैं इनका ख़ून न पीता तो पागल हो जाता।

यह रिवायत किसी अङ्गरेज़ी इतिहास में नहीं मिलती। किन्तु ख्वाजा हसन निज़ामी ने इसे अपनी उर्दू पुस्तक "देहली की

* अर्थ—ख़ुदा की तारीफ़ है! तैमूर की औलाद इसी प्रकार मुख उज्ज्वल करके बाप के सामने आया करती थी!

जॉकनी" में दर्ज किया है। ख्वाजा साहब का दावा है कि यह घटना बिलकुल सच्ची है। ख्वाजा हसन निज़ामी का बयान है—"मैंने दिल्ली के सैकड़ों लोगों के मुँह से इस बात को सुना और इसके अलावा मिरज़ा इलाहीबख़्श के उन दो ख़ास मुसाहिबों में से एक ने, जो मौक़े पर मौजूद थे और जिन्होंने इस घटना को अपनी आँखों से देखा था, ख़ुद मेरे पिता से आकर यह तमाम वाक़ा सुनाया।"*

अब हमारे लिए केवल कम्पनी के क़ब्ज़े के बाद दिल्ली निवासियों के ऊपर कम्पनी की सेना के अत्याचारों को संक्षेप में वर्णन करना बाक़ी रह गया है।

इन अत्याचारों के विषय में लॉर्ड एलफ़िन्सटन ने सर जॉन लॉरेन्स को लिखा—

"मोहासरे के ख़त्म होने के बाद से हमारी सेना ने जो अत्याचार किए हैं उन्हें सुन कर हृदय फटने लगता है। बिना मित्र अथवा शत्रु में भेद किए ये लोग सबसे एकसा बदला ले रहे हैं। लूट में तो वास्तव में हम नादिरशाह से भी बढ़ गए!"†

मोहासरे के दिनों में क़िले के छत्ते में बीमार और घायल

---

*"देहली की जाँकनी"—लेखक ख़्वाजा हसन निज़ामी पृष्ठ ५२-५३

† "After the siege was over, the outrages committed by our army are simply heart-rending. A wholesale vengeance is being taken without distinction of friend and foe. As regards the looting, we have indeed surpassed Nadirshah!—*Life of Lord Lawrence*, vol. ii, p, 262.

सिपाहियों का एक अस्पताल था। कम्पनी की सेना जिस समय क़िले के अन्दर घुसी, जितने घायल और बीमार अस्पताल के अन्दर दिखाई दिए उन सबको उसने अपनी गोलियों से सदा के लिए रोगमुक्त कर दिया। इसी प्रकार और भी अनेक जगह, जहाँ घायल और बीमार पाए गए, क़त्ल कर दिए गए।*

माएटगुमरी मार्टिन लिखता है—

"जिस समय हमारी सेना ने शहर में प्रवेश किया तो जितने नगर-निवासी शहर की दीवारों के अन्दर पाए गए उन्हें उसी जगह सङ्गीनों से मार डाला गया; आप समझ सकते हैं कि उनकी संख्या कितनी अधिक रही होगी, जब मैं आपको यह बताऊँ कि एक एक मकान में चालीस चालीस और पचास पचास आदमी छिपे हुए थे। ये लोग विद्रोही न थे, बल्कि शहर के बाशिन्दे थे, जिन्हें हमारी दयालुता और क्षमाशीलता पर विश्वास था। मुझे ख़ुशी है कि उनका भ्रम दूर हो गया।"†

इसके बाद एक दूसरा अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक लिखता है—

"दिल्ली के बाशिन्दों के क़त्लेआम का खुले एलान कर दिया

---

* "तारीख़ हिन्द"—लेखक शम्शुल उलमा मुंशी ज़काउल्ला ख़ाँ पृष्ठ ६४६

† "All the city people found within the walls when our troops entered were bayonetted on the spot; and the number was considerable, as you may suppose, when I tell you that in some houses forty or fifty persons were hiding. These were not mutineers, but residents of the city, who trusted to our well-known mild rule for pardon. I am glad to say they were disappointed."—Letter in the *Bombay Telegraph*, by Montgomery Martin.

गया, यद्यपि हम जानते थे कि उनमें से बहुत से हमारी विजय चाहते हैं ।"*

इस भयङ्कर हत्याकाण्ड के दिनों में केवल एक दिन के दृश्य को बयान करते हुए लॉर्ड रॉबर्ट्स लिखता है—

"हम सुबह को लाहौरी दरवाज़े से चाँदनी चौक गए, तो हमें शहर वास्तव में मुरदों का शहर नज़र आता था। कोई आवाज़ सिवाय हमारे घोड़ों की टापों के सुनाई नहीं देती थी। कोई जीवित मनुष्य नज़र नहीं आया। सब ओर मुरदों का बिछौना बिछा हुआ था, जिनमें से कुछ मरने से पहले पड़े सिसक रहे थे।

"हम चलते हुए बहुत धीरे धीरे बात करते थे, इस डर से कि कहीं हमारी आवाज़ से मुरदे न चौंक पड़ें। × × × एक ओर मुरदों की लाशों को कुत्ते खा रहे थे और दूसरी ओर लाशों के आस पास गिद्ध जमा थे जो उनके मांस को नोच नोच कर स्वाद से खा रहे थे और हमारे चलने की आवाज़ से उड़ उड़ कर थोड़ी दूर जा बैठते थे × × × ।

"सारांश यह कि इन मुरदों की हालत बयान नहीं हो सकती। जिस प्रकार हमें इनके देखने से डर लगता था उसी प्रकार हमारे घोड़े इन्हें देख कर डर से बिदकते और हिनहिनाते थे। लाशें पड़ी सड़ती थीं। उनके सड़ने से हवा में बीमार करने वाली दुर्गन्ध फैल रही थी।"†

---

* "A general massacre of the inhabitants of Delhi, a large number of whom were known to wish us success, was openly proclaimed."—The Chaplain's *Narrative of the Siege of Delhi*, quoted by Kaye.

† *Forty-one Years in India,* by Lord Roberts, as quoted by Hasan Nizami in *Delhi-ki-Jankani*, pp. 66, 67.

हसन निज़ामी लिखता है कि इस क़त्लेआम में पुरुष, स्त्री अथवा छोटे बड़े की कोई तमीज़ न की जाती थी।

इनमें से अनेक लोगों को तरह तरह की यातनाएँ दे देकर मारा गया।

लेफ़्टेनेण्ट माजेण्डी ने अपनी आँखों देखी एक घटना बयान की है कि सिखों और गोरों ने मिल कर एक घायल मनुष्य के चेहरे को पहले अपनी सङ्गीनों से बार बार बींधा और फिर धीमी आँच के ऊपर उसे ज़िन्दा भून दिया—"उसका मांस चटका, लपटों में काला होगया और जलते हुए मांस की भयङ्कर दुर्गन्ध ने ऊपर उठ कर हवा को विषैला बना दिया।"*

टाइम्स पत्र के सम्वाददाता सर विलियम रसल ने लिखा है कि "मैंने इस शख्स की जली हुई हड्डियाँ कई दिन बाद मैदान में पड़ी हुई देखीं।"†

मॉवरे टॉमसन ने सर हेनरी कॉटन से कहा था कि दिल्ली में कुछ मुसलमानों को नङ्गा करके, ज़मीन से बाँधकर, सिर से पाँव तक जलते हुए ताँबे के टुकड़ों से अच्छी तरह दाग़ दिया गया था।‡

इन लोगों को मारने से पहले कभी कभी उनको धर्मभ्रष्ट करने

---

* ". . . the horrible smell of his burning flesh as it cracked and blackened in the flames, rising up and poisoning the air."—Lieut. Majendie, *Up Among the Pandies*, p. 187.

† *My Diary in India in the year 1858-59*, vol. i, p. 301-2.

‡ *Indian and Home Memories*, by Sir Henry Cotton, p. 143.

की घृणित क्रिया भी की जाती थी। एक अङ्गरेज़ पादरी की विधवा ने लिखा है कि बहुत से लोगों को पकड़ कर पहले उनसे सङ्गीनों के बल गिरजा में झाड़ू दिलवाई गई और फिर सबको फाँसी दे दी गई।*

रसल लिखता है कि कभी कभी—"मुसलमानों को मारने से पहले उन्हें सुअर की खालों में सी दिया जाता था, उन पर सुअर की चरबी मल दी जाती थी और फिर उनके शरीर जला दिए जाते थे, और हिन्दुओं को जबरदस्ती धर्मभ्रष्ट किया जाता था।"†

इन रोमाञ्चकारी घटनाओं के सम्बन्ध में अधिक उद्धरण देना अत्यन्त खेदकर है। परिणाम यह हुआ कि एक बार समस्त दिल्ली खाली और वीरान होगई, बल्कि उन इने गिने घरानों को छोड़ कर जिनसे कम्पनी की सेना को सहायता मिल रही थी, शेष समस्त नगर-निवासियों को, जो क़त्ल या फाँसी से बच सके, जबरदस्ती शहर से बाहर निकाल दिया गया। इतिहास-लेखक होम्स लिखता है—

"दिल्ली के बाशिन्दों ने विप्लवकारियों के अपराधों का कई गुना प्राय-

---

* *A Lady's Escape from Gwalior*, p. 243.

† " . . . sewing Mohammedans in pig-skins, smearing them with pork-fat before execution and burning their bodies, and forcing Hindoos to defile themselves. . . ."—Russell's *Diary*, vol. ii, p. 43.

श्चित्त कर डाला। दसों हज़ार मर्द, औरत और बच्चे बिना घरबार के इधर उधर के इलाक़े में घूम रहे थे, जिन्होंने कि कोई अपराध न किया था। अपना जो कुछ माल असबाब वे नगर में पीछे छोड़ गए थे उससे वे सदा के लिए हाथ धो चुके थे; क्योंकि सिपाहियों ने गली गली और घर घर जाकर हर क़ीमती चीज़ को खोज कर निकाल लिया था, और जो कुछ सामान वे उठा कर न ले जा सके उसे उन्होंने टुकड़े टुकड़े कर डाला।"*

शहर पर क़ब्ज़ा करने के बाद तीन दिन तक कम्पनी की सेना के सब सिपाहियों को नगर की लूट माफ़ रही। उसके बाद 'प्राइज़ एजन्सी' नाम से एक सरकारी मोहकमा खोल दिया गया, जिसका काम यह था कि शहर के तमाम घरों के हर तरह के माल असबाब को एक जगह जमा करके उसे नीलाम करे या गोदामों में रक्खे और रुपया फ़ौज को तक़सीम कर दे। इस मोहकमे ने मकानों के अन्दर किताबें, बरतन, चारपाई, चक्की, गड़ा हुआ माल दौलत, यहाँ तक कि मकानों के किवाड़ और उनके अन्दर का लोहा और पीतल तक, कोई चीज़ नहीं छोड़ी।

ख़्वाजा हसन निज़ामी लिखता है—

---

* "The people of Delhi had expiated, many times over, the crimes of the mutineers. Tens of thousands of men, and women, and children, were wandering, for no crime, homeless over the country. What they had left behind was lost to them for ever; for the soldiers, going from house to house and from street to street, ferreted out every article of value, and smashed to pieces whatever they could not carry away."—Holmes' *A History of the Indian Mutiny*, p. 386.

"करनल बर्न को शहर का फ़ौजी गवरनर नियुक्त किया गया। उसने एक दस्ता फ़ौज का इस काम के लिए नियुक्त किया कि जहाँ कहीं आबादी पाओ, मर्द, औरत और बच्चों को घरों के असबाब सहित गिरफ़्तार करके ले आओ। आगे आगे मर्द असबाब के गट्ठर सर पर रक्खे हुए, पीछे पीछे उनकी औरतें रोती हुईं, पैदल और बच्चों को साथ लिए हुए। जिन औरतों को कभी पैदल चलने की आदत न थी वे ठोकरें खा खा कर गिरती थीं, बच्चे गोद से गिरे जाते थे और सिपाही क्रूरता के साथ उन्हें आगे चलने के लिए धक्के देते थे।

"जब ये लोग करनल बर्न के सामने पेश होते तो हुक्म दिया जाता कि असबाब में जितनी क़ीमती चीज़ें हैं, उन्हें ढूँढ़ कर ज़ब्त कर लो, व्यर्थ चीज़ें वापस दे दो। यह हो चुकने पर दूसरा हुक्म यह दिया जाता कि, इनको सिपाहियों की देख रेख में लाहौरी दरवाज़े तक ले जाओ और शहर से बाहर निकाल दो। ऐसा ही किया जाता और वे लोग लाहौरी दरवाज़े के बाहर धक्के देकर निकाल दिए जाते।

"दिल्ली शहर के बाहर इस प्रकार हज़ारों मर्द, औरतें और बच्चे असहाय, नङ्गे पाँव, नङ्गे सर, भूखे प्यासे फिर रहे थे। × × × सैकड़ों बच्चे भूख भूख चिल्लाते हुए माताओं की गोद में मर गए। सैकड़ों माताएँ छोटे बच्चों का दुख न देख सकने के कारण उन्हें अकेला छोड़ कर कुएँ में डूब मरीं।

"नगर के अन्दर हज़ारों औरतें ऐसी थीं कि जिस समय उन्होंने सुना कि कम्पनी की फ़ौज आती है तो बेइज़्ज़ती और मुसीबतों से बचने के लिए कुओं में गिरने लगीं। और इतनी अधिक गिरीं कि डूबने को पानी न रहा। अनेक कुएँ औरतों की लाशों से भर गए।

"सेना के एक अफ़सर का बयान है कि—'हमने इस प्रकार की सैकड़ों

औरतों को कुओं से निकाला जो लाशों के ढेर के कारण डूबी न थीं और ज़िन्दा पड़ी थीं या बैठी थीं। जिस समय हमने उन्हें निकालना चाहा वे चीख़ने लगीं कि—खुदा के लिए हमको हाथ न लगाओ और गोली से मार डालो, हम शरीफ़ बहू बेटियाँ हैं, हमारी इज़्ज़त ख़राब न करो।' × × ×।"

दिल्ली की स्त्रियों का यह डर, कि कहीं हमारी इज्ज़त पर हमला न किया जाय, बेबुनियाद न था।

"फ़राशख़ाने के किसी कुएँ में दो औरतें ज़िन्दा निकाली गईं। एक जवान, किन्तु अन्धी और दूसरी बुढ़िया। बुढ़िया ने बयान किया कि मेरे एक ही बेटा था, उसे घर में घुस कर क़त्ल कर दिया गया, जब वह क़त्ल किया जा रहा था, कुछ सिपाहियों ने उसकी अन्धी बहिन के सतीत्व पर हमला करना चाहा, किन्तु वह अपने घर के कुएँ से परिचित थी, दौड़ कर उसमें गिर पड़ी, उसके साथ ही मैं भी कुएँ में कूद पड़ी। हम दोनों पानी में ग़ोते खा रहे थे कि किसी ने अन्दर आकर हमें निकाल लिया।"

"दिल्ली में ऐसे भी लोग थे जिनके घर की स्त्रियों की आबरू पर जिस समय हमला होने लगा तो उन्होंने अपने हाथ से अपनी बहुओं और अपनी बेटियों को क़त्ल कर दिया और फिर स्वयं आत्महत्या कर ली!"*

दिल्ली-निवासियों के धार्मिक भावों को जिस प्रकार आघात पहुँचाया गया उसके विषय में ख्वाजा हसन निज़ामी लिखता है—

"अङ्गरेज़ी सेना के मुसलमान सिपाही हिन्दुओं के मन्दिरों में घुस गए और उनको ख़राब कर डाला और हिन्दू सिपाहियों ने मसजिदों को ख़राब किया। दिल्ली की बड़ी जामे मसजिद में सिख सिपाहियों की बारग

* पूर्वोक्त पुस्तक, पृष्ठ ६०

बनाई गई। पाख़ाने और पिशाबख़ाने भी इसी के अन्दर थे। मीनारों के नीचे हलवे पकाए जाते थे और सुअर भी काट कर पकाए जाते थे। अङ्गरेज़ों के साथ के कुत्ते अन्दर पड़े फिरते थे। एक मसजिद ज़ीनतुलमसाजिद को गोरों का मिसकीट घर बनाया गया और नवाब हामिदअली खाँ की मशहूर मसजिद में गधे बाँधे जाते थे। क़िले के नीचे एक बड़ी आलीशान मसजिद अकबराबादी थी जो गिरा कर बिलकुल ज़मीन के बराबर कर दी गई। इसी तरह और बहुत सी छोटी छोटी मसजिदों का ख़ात्मा हुआ।"*

फिर नए सिरे से दिल्ली आबाद हुई। पहले कुछ हिन्दुओं से भारी जुर्माने ले लेकर उन्हें मोहल्लों में बसने की इजाज़त दी गई। उसके बाद मार्च सन् १८५८ में मुसलमानों को पास ले लेकर नगर में बसने की इजाज़त मिली। तथापि सन् १८५९ तक मुसलमानों के ख़ास मकान सरकारी ज़ब्ती में थे और मुसलमान लोग शहर के अन्दर बिना किसी अफ़सर के पास के चल फिर न सकते थे।

दिल्ली का हाल ख़त्म करने से पहले अब केवल एक चीज़ को बयान करना और बाक़ी है। वह यह कि दिल्ली के राजकुल का अर्थात् सम्राट बाबर और सम्राट अकबर के वंशजों का किस प्रकार अन्त हुआ। विप्लव के शुरू में दिल्ली के लाल क़िले के अन्दर सम्राट बहादुरशाह के कुटुम्बियों की एक बहुत बड़ी संख्या थी। इनमें से अनेक शहज़ादों को पकड़ कर फाँसी पर लटका

* पूर्वोक्त पुस्तक, पृष्ठ ८४

दिया गया। उदाहरण के लिए शहज़ादे मिरज़ा क़ैसर को, जो सम्राट शाहआलम का एक बेटा था और इतना बूढ़ा था कि विप्लव में कोई हिस्सा लेना उसके लिए असम्भव था, फाँसी दे दी गई। शहज़ादे मिरज़ा मोहम्मदशाह को, जो सम्राट अकबरशाह का पोता था और आजीवन गठिया का रोगी रहने के कारण सीधा खड़ा तक न हो सकता था, इसी प्रकार फाँसी पर लटका दिया गया। कुछ शहज़ादों को जेलख़ाने में रक्खा गया। उनसे चक्कियाँ पिसवाई गईं। जब वे अपना काम पूरा न कर सकते, उन पर कोड़ों की मार पड़ती थी। यहाँ तक कि वे बेचारे थोड़े ही दिनों में मार खा खाकर जीवन की क़ैद से मुक्त हो गए। बहादुर-शाह का एक बेटा मिरज़ा क़ोयाश एक दिन दिल्ली के पास के जङ्गल में घोड़े पर सवार खड़ा दिखाई दिया, सर पर टोपी न थी और चेहरे पर धूल पड़ी हुई थी, हडसन उसकी तलाश में घूम रहा था, उसके बाद आज तक पता न चला कि मिरज़ा क़ोयाश का क्या हुआ। अनेक शहज़ादे और शहज़ादियाँ दिल्ली से बाहर दरबदर घूमते फिरते थे। बहादुरशाह की एक बेटी राबेया बेगम ने रोटियों से मोहताज होकर दिल्ली के एक बावरची हुसेनी नामक से शादी कर ली। बहादुरशाह की एक दूसरी बेटी फ़ातमा सुल्तान ईसाई पादरियों के एक जनाने स्कूल में नौकरी करने लगी। जो शहज़ादियाँ अपने घरों में बैठ कर हज़ारों रुपए की ख़ैरात करती थीं वे चन्द महीने के अन्दर दरबदर भीख माँगती दिखाई देने लगीं।

सम्राट बहादुरशाह, बेगम ज़ीनतमहल और शहज़ादे जवाँ-

बख्त को क़ैद करके रङ्गून भेज दिया गया। रङ्गून में अङ्गरेज़ों की क़ैद के अन्दर सन् १८६३ में सम्राट बहादुरशाह की मृत्यु हुई और उसके साथ साथ दिल्ली के राजकुल का अन्तिम चिन्ह संसार से मिट गया।

सम्राट बहादुरशाह, मृत्यु-शय्या पर

[ख़्वाजा हसन निज़ामी कृत "दिहली की जाँकनी" में एक असली फ़ोटो से]
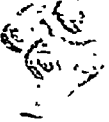
अड़तालीसवाँ अध्याय

अवध और विहार

वेगम हज़रतमहल

व हम लखनऊ की ओर आते हैं। वास्तव में सन् ५७-५८ के स्वाधीनता युद्ध में वीरता और वलिदान की दृष्टि से लखनऊ का पद दिल्ली से कहीं ऊँचा रहा। दिल्ली के पतन के छै महीने वाद तक अवध तथा लखनऊ में स्वाधीनता का झण्डा फहराता रहा।

चिनहट की विजय के वाद अवध को प्रजा ने क़ैदी नवाव वाजिद्अली शाह के पुत्र विरजीस क़द्र को लखनऊ के सिंहासन पर वैठा दिया। और चूँकि नवाव विरजीस क़द्र अभी नावालिग़ था इसलिए शासन की वाग विरजीस क़द्र की माँ हज़रतमहल के हाथों में सौंप दी गई। अवध के सव ज़मींदारों और प्रजा ने वड़े हर्ष के साथ वेगम हज़रतमहल को अपना अधिराज स्वीकार कर लिया।

वेगम हज़रतमहल की प्रशंसा करते हुए रसल लिखता है—

"बेगम में बड़ी पराक्रमशीलता और योग्यता दिखाई देती है। × × × बेगम ने हमारे साथ अनवरत युद्ध का एलान कर दिया है। इन रानियों और बेगमों की पराक्रमशीलता को देख कर मालूम होता है कि ज़नानख़ानों के अन्दर रह कर भी ये काफ़ी अधिक क्रियात्मक मानसिक शक्ति अपने अन्दर पैदा कर लेती हैं।"*

बेगम ने सबसे पहले नवाब बिरजीस क़द्र की ओर से अवध की स्वाधीनता का शुभ सन्देश अनेक उपहारों सहित सम्राट बहादुरशाह की सेवा में दिल्ली भेजा, इसके बाद उसने राजा बालकृष्ण सिंह को अपना प्रधान मन्त्री नियुक्त किया, और उस कठिन समय में राज्य के समस्त मोहकमों की नए सिरे से व्यवस्था कर एक बार समस्त अवध में शान्ति और सुशासन स्थापित कर दिया।

लखनऊ की रेज़िडेन्सी

ऊपर लिखा जा चुका है कि अवध के अङ्गरेज़ और वहाँ का अङ्गरेज़ी राज्य उस समय लखनऊ की रेज़िडेन्सी के अन्दर क़ैद किया जा चुका था। रेज़िडेन्सी के बाहर समस्त अवध में कम्पनी के राज्य का कोई चिह्न बाक़ी न रहा था। रेज़िडेन्सी का मोहासरा जारी था।

२० जुलाई सन् १८५७ को लखनऊ की विप्लवकारी सेना ने

---

* "The Begum exhibits great energy and ability. . . . The Begum declares undying war against us. It appears from the energetic characters of these Ranees and Begums that they acquire in their Zenanas and Harems a considerable amount of actual mental power . . ."—Russell's *Diary*, p. 275.

रेज़िडेन्सी के ऊपर हमले करने शुरू किए। कई दिन तक दोनों ओर से खूब गोलेबारी होती रही। कई बार रेज़िडेन्सी के ऊपर का अङ्गरेज़ी झण्डा टूट कर गिर पड़ा, किन्तु हर बार नया झण्डा उसकी जगह लगा दिया गया। रेज़िडेन्सी के अन्दर सिख सिपाही अङ्गरेज़ों की जी तोड़ सहायता कर रहे थे। बाहर के भारतीय सैनिकों ने सिखों को अनेक बार समझा कर अपनी ओर करने का प्रयत्न किया, किन्तु व्यर्थ।

इन्हीं संग्रामों में एक दिन अवध का अङ्गरेज़ चीफ़ कमिश्नर सर हेनरी लॉरेन्स, जो पञ्जाब के चीफ कमिश्नर सर जॉन लॉरेन्स का भाई था, विप्लवकारियों की गोली का शिकार हुआ। मेजर बैङ्क्स नें तुरन्त उसका स्थान ग्रहण किया। चन्द दिन बाद मेजर बैङ्क्स को भी एक गोली लगी और वह भी ख़त्म हो गया। ब्रिगेडियर इङ्गलिस ने अब उसका स्थान लिया। इसी बीच लिखा है कि विप्लवकारियों ने रेज़िडेन्सी की दीवार के कई हिस्से उड़ा दिए। भीतर के कई मकान भी विप्लवकारियों के गोलों से गिर कर ढेर हो गए।

रेज़िडेन्सी के अन्दर के अङ्गरेज़ों की हालत ख़ासी नैराश्यपूर्ण थी। उन्होंने मदद के लिए बार बार अपने गुप्त दूत कानपुर भेजे, जिनमें से कई दूत पकड़ लिए गए और मार डाले गए। २५ जुलाई को ब्रिगेडियर इङ्गलिस को सूचना मिली कि जनरल हैवलॉक मदद के लिए कानपुर से रवाना हो चुका है और पाँच या छै दिन के अन्दर लखनऊ पहुँच जायगा। किन्तु पाँच छै दिन के बाद हैवलॉक के

आने के स्थान पर विप्लवकारियों ने फिर एक वार रेजिडेन्सी पर ज़ोरदार हमला किया। रेजिडेन्सी की दीवार का एक बहुत बड़ा टुकड़ा गिर पड़ा। दीवार के ऊपर सङ्गीनों और तलवारों की लड़ाई शुरू होगई। लिखा है कि उस दिन विप्लवकारियों ने कई अङ्गरेज़ सिपाहियों की सङ्गीनें तक छीन लीं। किन्तु अन्त में विप्लवकारी फिर नगर की ओर लौट आए।

इसके वाद १८ अगस्त को विप्लवकारियों ने रेजिडेन्सी पर तीसरी वार हमला किया। अभी तक हैवलॉक और उसकी सेना का कहीं पता न था। इतने में ब्रिगेडियर इङ्गलिस को हैवलॉक का एक पत्र मिला जिसमें लिखा था—"मैं अभी कम से कम २५ दिन और लखनऊ नहीं पहुँच सकता।" रेजिडेन्सी के अङ्गरेज़ों की घवराहट हद को पहुँच गई। रसद का सामान इतना कम हो गया कि सब को आधा पेट खाना दिया जाने लगा।

तथापि लखनऊ के विप्लवकारी इस बीच रेज़िडेन्सी पर पूर्ण विजय प्राप्त कर वहाँ के समस्त अङ्गरेज़ों को क़ैद अथवा ख़त्म न कर सके। इसका मुख्य कारण था तो यह था कि दिल्ली के समान लखनऊ में भी एक योग्य और प्रभावशाली सेनापति की कमी थी, अथवा उन्हें शायद यह अनुमान था कि अङ्गरेज़ रसद की कमी और गोलों की आग से घवरा कर स्वयं आत्मसमर्पण कर देंगे। दूसरी ओर अङ्गरेज़ हैवलॉक और उसकी सेना के लिए आतुर हो रहे थे। इसलिए अब हम लखनऊ की रेजिडेन्सी को छोड़ कर जनरल हैवलॉक की ओर आते हैं।

जनरल हैवलॉक की लखनऊ यात्रा

२९ जुलाई सन् ५७ को हैवलॉक ने कानपुर से निकल कर गङ्गा को पार किया। वह उस समय लखनऊ के अङ्गरेजों को सहायता पहुँचाने के लिए आतुर था। कानपुर से लखनऊ का फ़ासला ४५ मील से कम है। हैवलॉक को पूरा विश्वास था कि मैं दो चार दिन के अन्दर ही लखनऊ पहुँच जाऊँगा। उसके साथ डेढ़ हज़ार फ़ौज और तेरह तोपें थीं।

किन्तु ज्योंही गङ्गा को पार कर हैवलॉक ने अवध की भूमि में प्रवेश किया, उसे मालूम हुआ कि लखनऊ तक पहुँच सकना इतना सरल नहीं है! अवध की एक एक चप्पा ज़मीन में स्वाधीनता की आग दहक रही थी। एक एक ज़मींदार ने अपने अधीन सौ सौ, दो दो सौ या अधिक मनुष्य जमा करके हैवलॉक को रोकने का निश्चय कर लिया। मार्ग में प्रत्येक ग्राम के ऊपर स्वाधीनता का हरा झण्डा फहरा रहा था। हैवलॉक को पहली लड़ाई उन्नाव में लड़नी पड़ी। वहाँ से ज्यों त्यों कर हैवलॉक आगे बढ़ा। दूसरा संग्राम बशीरतगञ्ज में हुआ। ये दोनों संग्राम २९ जुलाई ही को लड़े गए। हैवलॉक की सेना का छठा हिस्सा इन लड़ाइयों में ख़त्म हो गया। ३० जुलाई को हैवलॉक को बशीरतगञ्ज से पीछे हट कर अपनी सेना सहित मङ्गलवार में आकर ठहरना पड़ा।

दूसरी ओर नाना साहब को जब यह पता चला कि हैवलॉक लखनऊ की ओर जा रहा है, उसने फिर एक बार कानपुर पर

हमले की तैयारी शुरू की। हैवलॉक को मजबूर होकर ६ अगस्त तक मङ्गलवार में ठहरे रहना पड़ा।

इसके बाद हैवलॉक फिर लखनऊ की ओर बढ़ा। बशीरतगञ्ज में ही उसे फिर विप्लवकारियों से मोरचा लेना पड़ा। इस दिन के संग्राम में हैवलॉक के तीन सौ आदमी मारे गए। उसके डेढ़ हज़ार सिपाहियों में से अब केवल साढ़े आठ सौ बाक़ी रह गए थे। विवश होकर हैवलॉक को फिर दूसरी बार गङ्गा की ओर पीछे लौट आना पड़ा।

अवध की ग्रामीण जनता के इस वीर पराक्रम को देख कर इतिहास-लेखक इन्स लिखता है—"कम से कम अवधनिवासियों के संग्राम को हमें स्वाधीनता का युद्ध मानना पड़ेगा।"*

११ अगस्त को हैवलॉक तीसरी बार बशीरतगञ्ज की ओर बढ़ा। तीसरी बार उसे ग्रामीण अवधनिवासियों के साथ मोरचा लेना पड़ा और तीसरी बार जनरल हैवलॉक को पीछे हट कर मङ्गलवार में रुकना पड़ा।

इस बीच नाना साहब को सागर, ग्वालियर इत्यादि से काफ़ी सहायता पहुँच चुकी थी। नाना ने फिर एक बार किसी दूसरे स्थान से गङ्गा को पार कर कानपुर पर हमला किया। जनरल नील कानपुर में था। उसके पास नाना के मुक़ाबले के लिए काफ़ी सेना न थी। उसने तुरन्त हैवलॉक को सूचना दी। हैवलॉक के लिए अब

---

* "At least the struggle of the Oudhians must be characterised as a War of Independence."—Innes' *Sepoy Revolt.*

लखनऊ की ओर बढ़ सकना असम्भव हो गया। १२ अगस्त को दोबारा गङ्गा पार कर हैवलॉक को कानपुर लौट आना पड़ा।

हैवलॉक के गङ्गा पार करते ही अवधनिवासियों के हौसले दुगुने हो गए। इतिहास-लेखक इन्स लिखता है—

"अवध से हमारी सेना के लौट आने का परिणाम वह हुआ जिसका हैवलॉक को निस्सन्देह अनुमान तक न था। ताल्लुक़ेदारों ने खुले तौर पर इसका मतलब यह लिया कि अङ्गरेज़ों ने अवध का प्रदेश ख़ाली कर दिया। अब उन्होंने लखनऊ दरबार को बाज़ाब्ता अपनी क्रियात्मक सरकार स्वीकार कर लिया। और यद्यपि वे उस सरकार की सहायता के लिए स्वयं लखनऊ नहीं पहुँचे, तथापि लखनऊ दरबार की जिन आज्ञाओं को अभी तक उन्होंने नहीं माना था उन आज्ञाओं का अब उन्होंने पालन करना शुरू कर दिया। लखनऊ दरबार ने जितने जितने सैन्यदल इन लोगों से माँगे थे वे अब इन्होंने युद्ध के लिए लखनऊ भेज दिए।"*

वास्तव में यह आश्चर्यजनक प्रभाव उन्नाव और बशीरतगञ्ज के ग्राम-निवासियों की वीरता का परिणाम था।

कानपुर पहुँचते ही हैवलॉक को सूचना मिली कि नाना साहब ने बिठूर पर फिर क़ब्ज़ा कर लिया है। १७ अगस्त को हैवलॉक ने नाना की सेना पर चढ़ाई की। एक घमासान संग्राम के बाद दोनों ओर की सेनाओं को पीछे हट जाना पड़ा। हैवलॉक को अब पता चला कि नाना ने एक अधिक विशाल सेना जमना के किनारे कालपी में जमा कर रक्खी है। यदि हैवलॉक लखनऊ की

---

* *The Sepoy Revolt*, by Innes.

ओर बढ़ता तो नाना फिर तुरन्त आकर कानपुर पर फिर से क़ब्ज़ा कर लेता। घबरा कर जनरल हैवलॉक ने कलकत्ते सन्देशा भेजा—

"हम लोग एक भयङ्कर सङ्कट में हैं। यदि और अधिक सेना सहायता के लिए न पहुँची, तो अङ्गरेज़ी सेना को लखनऊ का विचार छोड़ कर इलाहाबाद लौट आना पड़ेगा। इस भयङ्कर आपत्ति का और कोई इलाज नहीं।"*

नाना अभी कालपी में तैयारी कर ही रहा था कि हैवलॉक के सन्देशे पर चार सप्ताह के अन्दर सर जेम्स ऊटरम और अधिक सेना लेकर हैवलॉक की सहायता के लिए १५ सितम्बर को कलकत्ते से कानपुर पहुँच गया।

कुछ सेना अब कानपुर की रक्षा के लिए छोड़ दी गई। शेष सेना ने २० सितम्बर को फिर एक बार कानपुर से लखनऊ के लिए प्रस्थान किया। जनरल हैवलॉक ने सबसे पहले २५ जुलाई को लखनऊ जाने के लिए गङ्गा को पार किया था। दो महीने तक उसे आगे बढ़ने में सफलता न हो सकी और बार बार कानपुर लौट आना पड़ा। किन्तु २५ जुलाई की अङ्गरेज़ी सेना और २० सितम्बर की अङ्गरेज़ी सेना में बहुत बड़ा अन्तर था। नील, ऊटरम, कूपर और आयर जैसे चार चार अनुभवी सेनापति इस

* "We are in a terrible fix. If new reinforcements do not arrive, the British army can not escape the terrible fate of abandoning Lucknow and retreating to Allahabad."—Havelock's message to Calcutta.

समय हैवलॉक की मदद के लिए मौजूद थे। ढाई हज़ार अङ्गरेज़ और एक रेजिमेण्ट सिखों की तथा बढ़िया तोपें हैवलॉक के साथ थीं।

दूसरी ओर अवध के कई सरहदी ताल्लुक़ेदारों ने, इस बीच इस विश्वास पर कि कम्पनी की सेना ने सदा के लिए अवध का प्रदेश छोड़ दिया, अपने अपने सैन्यदल लखनऊ भेज दिए थे। तथापि उन्नाव, बशीरतगञ्ज इत्यादि स्थानों पर अवध के ग्रामवासियों ने पूर्ववत् एक एक चप्पा ज़मीन पर कम्पनी की सेना का विरोध किया। किन्तु अकेले ग्रामवासी, जिनके पास शस्त्रों की भी कमी थी, कम्पनी की इस विशाल और सुसन्नद्ध सेना का कहाँ तक मुक़ाबला कर सकते थे। समस्त मार्ग विरोधी ज़मींदारों और ग्राम-निवासियों की लाशों से पट गया। जिस गाँव के ऊपर हरा झण्डा फहराता हुआ दिखाई दिया उसे जला कर ख़ाक कर दिया गया। मार्ग की नदियाँ दोनों ओर के रक्त से रँग गईं। अन्त में ज्यों त्यों कर मार्ग चीरते हुए २३ सितम्बर को कम्पनी की सेना लखनऊ के निकट आलमबाग़ नामक स्थान पर पहुँच गई।

हैवलॉक का रेज़िडेन्सी में क़ैद कर लिया जाना

आलमबाग़ में विप्लवकारियों की एक पलटन ठहरी हुई थी। दिन भर और रात भर तथा अगले दिन ख़ूब घमासान संग्राम हुआ। ठीक इस समय दिल्ली के पतन की ख़बर लखनऊ पहुँची, जिससे अङ्गरेज़ी सेना के हौसले और अधिक बढ़ गए।

२५ सितम्बर का प्रातःकाल हुआ। अङ्गरेज़ी सेना ने आलम-

बाग़ से हट कर कुछ चक्कर से रेज़िडेन्सी की ओर बढ़ना चाहा। लखनऊ की सेना ने मुड़ कर उन पर गोले बरसाने शुरू किए, तथापि अङ्गरेज़ी सेना गोलों की इस बौछार में से वीरता के साथ निकलती हुई चारबाग़ के पुल तक आ पहुँची। पुल के उस पार लखनऊ का शहर था। स्वभावतः चारबाग़ के पुल के ऊपर और अधिक भयङ्कर संग्राम हुआ। विप्लवकारियों की सेना पुल के ऊपर और दूसरी ओर थी। दोनों ओर से ज़ोरों के साथ गोले बरसने लगे। दोनों ओर के हताहतों की संख्या काफ़ी ऊँची पहुँच गई। जनरल हैवलॉक का एक पुत्र भी इस समय वीरता के साथ लड़ रहा था। अङ्गरेज़ों की ओर जानों का नुक़सान बहुत अधिक हुआ, तथापि अन्त में अङ्गरेज़ी सेना अपनी तथा विपक्षी की लाशों के ऊपर से पुल को पार कर गई। दूसरी ओर भी एक एक क़दम पर संग्राम जारी रहा। इन्हीं में से एक स्थान ख़ास-बाज़ार में किसी विप्लवकारी की गोली जनरल नील की गरदन में आकर लगी और जनरल नील वहीं पर ढेर हो गया। जनरल नील की मृत्यु अङ्गरेज़ी सेना के लिए एक बहुत बड़ी आपत्ति थी। तथापि अन्त में अङ्गरेज़ी सेना बढ़ते बढ़ते रेज़िडेन्सी के अन्दर पहुँच गई।

रेज़िडेन्सी के अन्दर एक बार अङ्गरेज़ों के हर्ष की कोई सीमा न थी। ८७ दिन के लगातार मोहासरे में रेज़िडेन्सी के अन्दर सात सौ आदमी मर चुके थे। उस समय वहाँ लगभग पाँच सौ अङ्गरेज़ और चार सौ हिन्दोस्तानी मौजूद थे, जिनमें से अनेक घायल थे। हैवलॉक की सेना में, जो कानपुर से चली थी, रेज़ि-

डेन्सी पहुँचने से पहले ७२२ आदमी मारे जा चुके थे। तथापि लखनऊ रेज़िडेन्सी के हताश अङ्गरेज़ों की मदद के लिए पहुँच जाना हैवलॉक और उसके साथियों के लिए कुछ कम हर्ष की बात न थी।

हैवलॉक को फिर एक बार भयङ्कर नैराश्य हुआ। उसके पहुँचने से रेज़िडेन्सी का मोहासरा समाप्त न हो सका। लखनऊ की विप्लवकारी सेना ने फिर एक बार रेज़िडेन्सी को उसी प्रकार चारों ओर से घेर लिया, जिस प्रकार हैवलॉक के आने के पहले घेर रक्खा था। हैवलॉक और उसकी सेना अब स्वयं रेज़िडेन्सी के अन्दर क़ैद हो गई। केवल क़ैदियों की संख्या पहले से बढ़ गई।

लखनऊ का शेष नगर और अवध का समस्त प्रदेश पूर्ववत् स्वाधीन रहा।

हैवलॉक और उसकी सेना की रिहाई

सर कॉलिन कैम्पवेल कम्पनी की सेनाओं का नया कमाण्डर-इन-चीफ़ नियुक्त होकर १३ अगस्त को कलकत्ते पहुँचा। मद्रास, बम्बई, लङ्का तथा चीन से नई नई अङ्गरेज़ी पलटनें जमा की गईं। क़ासिमबाज़ार के कारख़ाने में नई तोपें ढाली गईं। इस तैयारी में कैम्पवेल को दो महीने लग गए।

अन्त में २७ अक्तूबर को हैवलॉक और ऊटरम जैसे सेनापतियों को रेज़िडेन्सी की क़ैद से मुक्त कराने और लखनऊ को फिर से विजय करने के लिए कैम्पवेल स्वयं कलकत्ते से चला।

साथ साथ एक जहाज़ी बेड़ा करनल पॉवल और कप्तान पील के अधीन कलकत्ते से इलाहाबाद की ओर भेजा गया। इस बेड़े को भी कई स्थानों पर विप्लवकारियों से लड़ना पड़ा। इनमें से एक स्थान पर करनल पॉवल मारा गया।

३ नवम्बर को सर कॉलिन कैम्पबेल कानपुर पहुँचा। कैम्पबेल ने अब अत्यन्त विशाल पैमाने पर कानपुर में सेना जमा करनी शुरू की। यह सेना ब्रिगेडियर जनरल ग्राण्ट के अधीन जमा की गई। जहाज़ी बेड़ा भी कानपुर पहुँच गया। दिल्ली की अङ्गरेज़ी सेना इस समय तक आज़ाद हो चुकी थी। जनरल ग्रेटहेड इस सेना सहित दिल्ली से कानपुर तक मार्ग के विप्लवकारियों को दमन करता हुआ कानपुर पहुँच गया।

एक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक लिखता है कि विप्लव के आरम्भ से लेकर नवम्बर तक दिल्ली के पूर्व का समस्त प्रदेश विप्लवकारियों के हाथों में था, किन्तु जनता को उससे कोई कष्ट न पहुँचा था—"लोग न केवल खेती बाड़ी करते ही रहे, वरन् अनेक जिलों में इतने विशाल पैमाने पर करते रहे, जिससे अधिक कि उन्होंने पहले कभी न की थी। वास्तव में सिवाय इससे कि विप्लवकारी अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर लेते थे, वे देशवासियों पर कोई अन्याय करने का साहस न करते थे।"*

---

* "The people not only cultivated but in many districts as extensively as ever. In fact beyond supplying their necessity, the

· किन्तु जनरल ग्रेटहेड ने दिल्ली से कानपुर तक की यात्रा में मार्ग के समस्त ग्रामों को जलाने और निर्दोष जनता के संहार करने में जनरल नील को भी मात कर दिया। इस ओर से उस ओर तक उसकी सेना ने ग्रामवासियों का पशुओं की तरह शिकार किया। इससे अधिक हमें उस दुःखकर वृत्तान्त को विस्तार देने की आवश्यकता नहीं है।

सब से पहले जनरल ग्राण्ट इस नई विशाल सेना सहित आलमबाग़ पहुँचा, कानपुर और कालपी के बीच में नाना साहब के प्रयत्न अभी जारी थे जिन्हें आगे चल कर बयान किया जायगा, इसलिए कैम्पबेल ने कुछ गोरी और कुछ सिख सेना तोपों सहित विनढम के अधीन कानपुर की रक्षा के लिए छोड़ दी और स्वयं जनरल ग्राण्ट के पीछे पीछे गङ्गा पार कर ९ नवम्बर को आलमबाग़ पहुँच गया।

रेज़िडेन्सी के क़ैदी अङ्गरेज़ों के साथ पत्र व्यवहार तक इस समय असम्भव था। कैम्पबेल ने कैवेना नामक एक अङ्गरेज़ का काला मुँह रङ्ग कर उसे हिन्दोस्तानी कपड़े पहना कर रात के समय एक हिन्दोस्तानी गुप्तचर के साथ रेज़िडेन्सी में भेजा। कैवेना ने वहाँ से लौट कर कैम्पबेल को भीतर के हालात सुनाए।

१४ नवम्बर को कैम्पबेल की सेना ने रेज़िडेन्सी की ओर बढ़ना शुरू किया। हैवलॉक और ऊटरम ने भीतर से विप्लवकारी

---

rebels did not venture to assume the character of tyrants of the country."—*Narrative of the Indian Revolt.*

सेना पर हमला किया और कैम्पवेल की सेना ने वाहर की ओर से दवाना शुरू किया। कम्पनी की सेना में इस समय हैवलॉक, ऊटरम, पील, ग्रेटहेड, दिल्ली का प्रसिद्ध हडसन, होपग्राण्ट, आयर और स्वयं कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कॉलिन कैम्पवेल जैसे ज़बरदस्त सेनापतियों के अतिरिक्त इङ्गलिस्तान, चीन, आदिक से आई हुई नई अङ्गरेज़ पलटनें और दिल्ली की अनुभवी अङ्गरेज़, सिख तथा अन्य पञ्जाबी पलटनें शामिल थीं।

१४ नवम्बर की शाम तक कैम्पवेल की सेना दिलखुश बाग़ पहुँची। १६ को इस सेना ने सिकन्दर बाग़ पर चढ़ाई की। फिर एक अत्यन्त घमासान संग्राम हुआ, जिसमें एक ओर विप्लवकारी सेना ने और दूसरी ओर सिखों ने ख़ासी वीरता दिखलाई। एक सिख सिपाही ही सबसे पहले गोलों की बौछार के अन्दर से सिकन्दर बाग़ की दीवार पर चढ़ता हुआ दिखाई दिया। सामने से उसकी छाती में एक गोली लगी। वह वहीं ढेर होगया। उसके बाद जनरल कूपर और जनरल लम्सडेन भी उसी दीवार पर मारे गए। किन्तु अन्त में अपने साथियों की लाशों पर से कूदते हुए सिख तथा अङ्गरेज़ दोनों सिकन्दर बाग़ के अन्दर पहुँच गए। इतने में कम्पनी की सेना ने एक दूसरी ओर से भी बाग़ में प्रवेश किया। सिकन्दर बाग़ के अन्दर की हिन्दोस्तानी सेना ने जिस अद्भुत वीरता के साथ उस दिन सिकन्दर बाग़ की रक्षा की, उसके विषय में इतिहास-लेखक मालेसन लिखता है—

"इस बाड़े (सिकन्दर बाग़) पर क़ब्ज़ा करने के लिए जो संग्राम

हुआ, वह अत्यन्त रक्तमय था और जानों को हथेली पर रख कर लड़ा गया। विप्लवकारियों ने अपनी जानों पर खेल कर पूरी वीरता के साथ युद्ध किया। हमारी सेना रास्ता चीरती हुई अन्दर घुस आई, तब भी संग्राम बन्द नहीं हुआ। प्रत्येक कमरे के लिए, प्रत्येक सीढ़ी के लिए तथा मीनारों के एक एक कोने के लिए संग्राम होता रहा। न किसी ने किसी से दया चाही और न किसी ने किसी पर दया की। अन्त में जब आक्रमक सेना ने सिकन्दरबाग़ पर क़ब्ज़ा कर लिया तो दो हज़ार से ऊपर विप्लवकारियों की लाशों के ढेर उनके चारों ओर पड़े हुए थे। कहा जाता है कि जितनी सेना सिकन्दरबाग़ की रक्षा के लिए नियत थी उसमें से केवल चार आदमी अपनी जगह छोड़ कर निकल गए, किन्तु इन चार का बाग़ छोड़ कर जाना भी सन्दिग्ध है।"*

लखनऊ का सिकन्दरबाग़ उस दिन शब्दशः रक्त की झील बना हुआ था।

इसके बाद २४ घण्टे तक दिलख़ुशबाग़, आलमबाग़ और और शाहनजफ़ में घमासान संग्राम होते रहे। अगले दिन मोतीमहल में उतनी ही भयङ्कर लड़ाई हुई। २३ नवम्बर तक लड़ाई जारी रही। किन्तु दिल्ली के पतन ने अङ्गरेज़ी सेना के हौसले बढ़ा दिए थे और अनेक विप्लवकारी नेताओं के दिल बुझा दिए थे। अन्त में २३ नवम्बर को नौ दिन के लगातार संग्राम के बाद सर कॉलिन कैम्पबेल की सेना और रेज़िडेन्सी के भीतर की अङ्गरेज़ी सेना दोनों एक दूसरे से मिल गईं।

---

* G. B. Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iv, p. 132.

लखनऊ का समस्त शहर उस समय रक्त के समुद्र में तैरता हुआ दिखाई देता था। रेज़िडेन्सी के अङ्गरेज़ क़ैद से रिहा हो गए। तथापि समस्त शहर अभी तक विप्लवकारियों के हाथों में था। इस बीच २४ नवम्बर को जनरल हैवलॉक की मृत्यु हो गई। सर कॉलिन कैम्पवेल ने रेज़िडेन्सी को छोड़ कर आलमबाग़ में अपनी सेना तथा तोपों को जमा किया, ऊटरम को वहाँ का सेनापति नियुक्त किया, और लखनऊ शहर पर हमले की तैयारी शुरू की। इतने में कैम्पवेल को समाचार मिला कि नाना साहब के प्रसिद्ध मराठा सेनापति तात्या टोपी ने कानपुर की अङ्गरेज़ी सेना को हरा कर फिर से उस नगर पर क़ब्ज़ा कर लिया। कैम्पवेल ने अब ऊटरम को लखनऊ के लिए छोड़ा और स्वयं कानपुर फिर से विजय करने के लिए उस ओर चल दिया।

अब हमें लखनऊ को छोड़ कर कुछ पीछे हट कर तात्या टोपी और सर कॉलिन कैम्पवेल के संग्रामों को वर्णन करना होगा।

तात्या टोपी

१६ जुलाई को जनरल हैवलॉक की सेना ने इलाहाबाद से आकर फिर से कानपुर विजय किया था। नाना साहब अपने भाई बालासाहब, भतीजे रावसाहब, सेनापति तात्या टोपी, घर की स्त्रियों और खज़ाने सहित १७ जुलाई को सवेरे बिठूर से निकल कर फ़तहपुर चला गया था। नाना जनरल हैवलॉक पर फिर से हमला करने के लिए सेना जमा कर रहा था। तात्या टोपी को उसने शिवराजपुर भेजा। शिवराजपुर पहुँच कर तात्या ने

कम्पनी की ४२ नम्बर पलटन को अपनी ओर किया। इसी पलटन की सहायता से उसने फिर एक बार बिठूर पर जाकर क़ब्ज़ा कर लिया और हैवलॉक की सेना पर, जब कि हैवलॉक लखनऊ जाना चाहता था, पीछे से आक्रमण किया, यहाँ तक कि हैवलॉक को लखनऊ का इरादा छोड़ कर पीछे हट जाना पड़ा। १६ अगस्त को हैवलॉक की सेना ने फिर तात्या टोपी की सेना पर विजय प्राप्त की। तात्या टोपी फिर अपनी बची हुई सेना सहित भाग कर नाना के पास फ़तहपुर पहुँचा। इसके बाद तात्या गुप्त रीति से ग्वालियर पहुँचा। ग्वालियर के निकट मुरार की छावनी में सींधिया की विशाल सबसीडीयरी सेना थी जिसमें पैदल पलटनें, सवार और तोपखाना था, तात्या टोपी ने इस समस्त सेना को विप्लव की ओर फोड़ लिया। उन्हें अपने साथ लेकर तात्या टोपी मुरार से कालपी आया। कालपी का क़िला जमना के उस पार कानपुर से ४६ मील दूर युद्ध की दृष्टि से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान पर था। ९ नवम्बर को तात्या टोपी ने कालपी के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया। नाना ने अब कालपी ही को अपना केन्द्र बनाया। बालासाहब को वहाँ पर नियुक्त किया, और कालपी से सेना लेकर तात्या टोपी फिर एक बार कानपुर की ओर बढ़ा। निस्सन्देह धैर्य, पराक्रम, फ़ुरती और अन्य भारतवासियों को अपने पक्ष में करने की शक्ति में तात्या अद्वितीय था।

जनरल विनढम उस समय कानपुर में था। १९ नवम्बर को तात्या टोपी ने विनढम को घेर कर उसके पास बाहर से रसद

इत्यादि का पहुँच सकना असम्भव कर दिया। विनढम अपनी सेना सहित तात्या टोपी के मुक़ाबले के लिए कानपुर से निकला। २६ नवम्बर को पाण्डु नदी के ऊपर तात्या तथा विनढम की सेनाओं में एक घमासान संग्राम हुआ। पहले वार में कहा जाता है कि तात्या का काफ़ी नुक़सान हुआ। किन्तु तात्या टोपी की योग्यता को स्वीकार करते हुए इतिहास-लेखक मालेसन लिखता है—

"विद्रोही सेना का नेता मूर्ख न था। विनढम ने उसे जो हानि पहुँचाई उससे डर जाने के स्थान पर वह अङ्गरेज़ सेनापति की कमज़ोरी को अच्छी तरह समझ गया × × × तात्या टोपी ने उस समय विनढम की स्थिति और उसकी आवश्यकताओं को इतनी अच्छी तरह पढ़ लिया जिस प्रकार कोई खुली हुई किताब को पढ़ता है। तात्या टोपी में एक सच्चे सेनापति के स्वाभाविक गुण मौजूद थे। उसने विनढम की इन कमज़ोरियों से फ़ायदा उठाने का इरादा कर लिया।"*

अगले दिन तात्या टोपी की सेना ने विनढम की सेना को तीन ओर से घेर कर पीछे हटाना शुरू किया। यहाँ तक कि बढ़ते बढ़ते आधा कानपुर तात्या की सेना के क़ब्ज़े में आ गया। इसके बाद तीन दिन के लगातार संग्राम के पश्चात् कानपुर का समस्त नगर फिर एक बार तात्या टोपी के हाथों में आ गया और विनढम की सेना को हार पर हार खाकर मैदान से भाग जाना पड़ा। अङ्गरेज़ी सेना के अनेक अफ़सर इन तीन दिन के संग्राम में काम आए।

---

* Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iv, p. 167.

तीसरे दिन की लड़ाई और अङ्गरेज़ी सेना की पराजय को वर्णन करते हुए एक अङ्गरेज़ अफ़सर अपने पत्र में लिखता है—

"आज के संग्राम का वृत्तान्त पढ़ कर आपको आश्चर्य होगा। इससे आपको मालूम होगा कि किस प्रकार अङ्गरेज़ी सेना अपनी विजय पताकाओं, अपने आदर्श वाक्यों और अपनी प्रसिद्ध वीरता समेत पीछे हटा दी गई। उन भारतवासियों ने, जिन्हें हम तुच्छ समझ रहे हैं और चिढ़ाते रहे हैं, अङ्गरेज़ी सेना से उसका कैम्प, उसका सामान और मैदान सब कुछ छीन लिया! शत्रु को अब यह कहने का हक़ हो गया है कि फ़िरङ्गी पिट गए। ये पिटे हुए फ़िरङ्गी अपनी खाइयों में लौट आए, उनके ख़ेमे उलट दिए गए, असबाब छीन लिया गया, सामान ले लिया गया, ऊँट, हाथी, घोड़े और नौकर उन्हें छोड़ कर भाग गए। यह समस्त घटना अत्यन्त शोकजनक और लज्जास्पद है!"*

इसी पराजय से विवश होकर सर कॉलिन कैम्पबेल को लखनऊ छोड़ना पड़ा था। तात्या टोपी ने समाचार पाते ही सर कॉलिन को मार्ग में रोकने के लिए गङ्गा का पुल तोड़ दिया और गङ्गा के ऊपर तोपें लगा दीं। तथापि सर कॉलिन कैम्पबेल तात्या टोपी की तोपों से बच कर एक दूसरे स्थान से गङ्गा पार कर ३० नवम्बर को कानपुर के निकट पहुँच गया। इस समय तक नाना साहब भी तात्या टोपी की सहायता के लिए कानपुर पहुँच गया था।

मालेसन लिखता है कि सेनापति की हैसियत से तात्या टोपी

---

* Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 190.

की स्वाभाविक योग्यता बहुत ही बढ़ी चढ़ी थी।* गङ्गा के किनारे ही उसने कैम्पवेल की सेना को जा घेरा। पहली दिसम्बर से छै, दिसम्बर तक खूब घमासान संग्राम होता रहा। दोनों ओर की सेनाओं की संख्या लगभग बराबर थी। तात्या टोपी के दाहिनी ओर ग्वालियर की सेना थी। यह सेना अन्त में अङ्गरेज़ों और सिखों के संयुक्त हमले के सामने पीछे हटने लगी। मैदान सर कॉलिन कैम्पबेल के हाथ रहा। कानपुर के नगर पर फिर से कम्पनी का क़ब्ज़ा हो गया। तात्या टोपी अपनी रही सही सेना और तोपों सहित फिर दक्षिण की ओर निकल गया। अङ्गरेज़ी सेना ने उसका पीछा किया। शिवराजपुर में फिर एक संग्राम हुआ। इस संग्राम में तात्या टोपी की कुछ तोपें भी अङ्गरेज़ों के हाथ आ गईं। किन्तु तात्या टोपी फिर अपनी शेष सेना सहित बच कर कालपी की ओर चला गया। अङ्गरेज़ी सेना कानपुर लौट आई। सर कॉलिन कैम्पबेल ने इस बार बिठूर के महलों को गिरा कर ज़मीन से मिला दिया।

दिल्ली के पतन के बाद अधिकांश विप्लवकारी सेना अवध और रुहेलखण्ड में जमा होती जा रही थी। यह प्रदेश ही अब विप्लव का सब से महत्वपूर्ण गढ़ बनता जाता था। इस प्रदेश को फिर से विजय करने से पहले आवश्यक था कि अवध के पश्चिम में दिल्ली से पूर्व के समस्त इलाक़े को पूरी तरह अधीन कर लिया जाय। कई अङ्गरेज़ सेनापति अलग अलग सैन्यदल लेकर

* "A man of very great natural ability as leader . . ."—Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iv, p. 186.

इस कार्य के लिए दिल्ली, कानपुर इत्यादि से विविध दिशाओं में निकल पड़े। ग्रामीण जनता को वश में करने और उन पर अपने बल की धाक जमाने के लिए इन लोगों ने स्थान स्थान पर उसी तरह के उपायों का उपयोग किया जिस तरह के उपाय नील, हैवलॉक और ग्रेटहैड जैसे सेनापति इससे पूर्व काम में ला चुके थे। इन समस्त प्रयत्नों में इटावा और फ़र्रुखाबाद की घटनाएँ विशेष वर्णन करने योग्य हैं।

इटावा और फ़र्रुखाबाद

१८ दिसम्बर को जनरल वालपोल कुछ सेना और तोपों सहित कानपुर से उत्तर की ओर बढ़ा। मार्ग में विप्लवकारियों के साथ कई छोटे मोटे संग्राम हुए। इनमें इटावे के निकट रास्ते के ऊपर एक छोटा सा मकान था जिसकी छत पर और दीवार के अन्दर सूराखों में बन्दूकें लगी हुई थीं। इस मकान के अन्दर केवल २५ भारतीय विप्लवकारी थे। वालपोल के साथ एक बाजाब्ता सेना और कई तोपें थीं। तथापि इन २५ मनुष्यों ने बिना लड़े वालपोल को आगे बढ़ने न दिया। वालपोल ने उनसे सुलह करना चाहा, किन्तु उन्होंने स्वीकार न किया। उन्हें तोपों से डराया गया। इसका भी कोई असर न हुआ। इटावे के इन २५ वीरों और वहाँ की शेष घटना के विषय में इतिहास-लेखक मालेसन लिखता है—

"ये लोग गिनती में थोड़े से थे, इनके पास केवल साधारण बन्दूकें थीं, किन्तु उनके अन्दर एक उत्साह था जो आततायियों के उत्साह से भी

कहीं अधिक भयङ्कर था—वे अपने पवित्र उद्देश के लिए शहीद होने का दृढ़ सङ्कल्प कर चुके थे। × × × उनके मकान के अन्दर हाथ से बम फेंके गए। वाहर भुस जला कर उन लोगों को धुएँ में घोंट देने का प्रयत्न किया गया, जिससे वे वाहर निकल आवें। किन्तु सब व्यर्थ हुआ। सूराख़ों के अन्दर से ये विद्रोही अपने आक्रमकों के ऊपर लगातार और ज़ोरों के साथ आग बरसाते रहे, इन्होंने उन्हें तीन घण्टे तक रोके रक्खा। अन्त में उस मकान को उड़ा देने का निश्चय किया गया। × × × मकान के उड़ने से उसके रक्षकों को जिस यश की अभिलाषा थी, वह उन्हें प्राप्त हो गया। वे सब शहीद हो गए, और सब के सब उसी मकान के खण्डहरों में दफ़न हो गए।"*

फ़र्रुख़ाबाद के नवाब ने अपनी स्वाधीनता का एलान कर रक्खा था। तय हुआ कि तीन ओर से वालपोल, सीटन और स्वयं कैम्पबेल के अधीन तीन सैन्यदल पहुँच कर फ़र्रुख़ाबाद की राजधानी फ़तहगढ़ को घेर लें। फ़तहगढ़ में कई दिन तक घमासान संग्राम होता रहा। अन्त में १४ जनवरी सन् १८५८ को फ़तहगढ़ विजय कर लिया गया। नवाब को क़ैद कर लिया गया। इतिहास-लेखक फ़ॉर्ब्स मिचेल लिखता है कि फ़र्रुख़ाबाद के मुसलमान नवाब को फाँसी देने से पहले उसके तमाम बदन पर सुअर की चरबी मल दी गई थी।† नाना साहब का एक मुख्य सेनापति नादिर ख़ाँ भी इसी स्थान पर गिरफ़्तार हुआ और फाँसी पर चढ़ा

---

* Malleson's *Indian Mutiny.*

† Forbes-Mitchell's *Reminiscences.*

दिया गया। चार्ल्स बॉल लिखता है कि फाँसी पर चढ़ते समय नादिर खाँ ने "हिन्दोस्तान के लोगों को क़सम दी कि तलवार खींच कर और अङ्गरेजों को बाहर निकाल कर अपनी स्वाधीनता को फिर से स्थापित करें।"*

दिल्ली में फिर से सनसनी

इसी समय के निकट स्वयं दिल्ली के अन्दर फिर कुछ नई जान दिखाई देने लगी। अफ़वाह उड़ी कि नाना साहब बहादुरशाह को क़ैद से आजाद करने के लिए दिल्ली आ रहा है। चार्ल्स बॉल लिखता है कि इस पर बहादुरशाह के अङ्गरेज पहरेदारों को गुप्त आज्ञाएँ दे दी गईं कि यदि वास्तव में नाना दिल्ली के निकट पहुँचने लगे तो तुम लोग तुरन्त बूढ़े सम्राट को गोली से उड़ा देना।† दिल्ली से इलाहाबाद तक जमना के किनारे का प्रदेश प्रायः सब इस समय तक फिर से अङ्गरेजों के हाथों में आ चुका था। इसलिए सर कॉलिन कैम्पबेल के लिए अब रुहेलखण्ड और अवध को फिर से विजय करना बाक़ी था।

लखनऊ का पतन

लखनऊ ही इस समय विप्लव का सब से मुख्य केन्द्र था। २३ फ़रवरी सन् १८५८ को कैम्पबेल १७,००० पैदल, लगभग ५,००० सवार, और १३४ तोपों सहित कानपुर से लखनऊ की ओर बढ़ा।

---

* Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 232.

† Ibid. vol. ii, p. 184.

अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक लिखते हैं कि इतनी विशाल सेना अवध के मैदानों में कभी दिखाई न दी थी। इस सेना में अधिकतर अङ्गरेज़, सिख तथा कुछ अन्य पञ्जाबी थे। रसल लिखता है कि इस सेना ने मार्ग में अनेक गाँव के गाँव बारूद से उड़ा दिए।*

किन्तु यह विशाल सेना भी लखनऊ को फिर से विजय करने के लिए काफ़ी नहीं समझी गई। पश्चिम की ओर से यह सेना और पूर्व की ओर से एक विशाल गोरखा सेना सेनापति जङ्गबहादुर के अधीन लखनऊ की ओर बढ़ी चली आ रही थी।

एक स्थान पर लिखा जा चुका है कि विप्लव के शुरू ही में अङ्गरेज़ों ने नैपाल दरबार से सहायता की प्रार्थना की थी। बहुत सम्भव है कि नैपाल युद्ध के समय अवध के नवाब का कम्पनी को लगभग ढाई करोड़ रुपए की मदद देना नैपालियों के दिलों में खटक रहा हो और अवध-निवासियों से बदला चुकाने का उन्हें यह एक अवसर दिखाई दिया हो। सब से पहले अगस्त सन् १८५७ में तीन हज़ार गोरखा सेना पूर्व में आज़मगढ़ और जौनपुर पर उतर आई। किन्तु विप्लवकारी नेताओं मोहम्मद हुसेन, बेनीमाधव और राजा नादिर ख़ाँ ने सफलता के साथ इस सेना से लड़ कर पूर्वीय अवध की रक्षा की। इसके बाद लिखा है, जङ्गबहादुर और अङ्गरेज़ों में कुछ विशेष समझौता हो गया।

२३ दिसम्बर सन् १८५७ को ९००० नई गोरखा सेना जङ्गबहादुर के अधीन पूर्व की ओर से लखनऊ की ओर बढ़ी। इसके

* Russell's *Diary*, p. 218.

अतिरिक्त उसी ओर से दो और सैन्यदल कम्पनी की सेना के एक जनरल फ़्रैन्क्स के अधीन और दूसरा जनरल रोक्राफ्ट के अधीन लखनऊ की ओर बढ़े । २५ फ़रवरी सन् १८५८ को ये तीनों विशाल सैन्यदल घोगरा पार कर अम्बरपुर पहुँचे ।

अम्बरपुर एक छोटा सा दुर्ग था, जिसमें केवल ३४ भारतीय सिपाही थे । इन मुठ्ठी भर लोगों ने विशाल नैपाली सेना को, जो आगे थी, युद्ध का निमन्त्रण दिया । नैपाली सेना ने अम्बरपुर के दुर्ग पर हमला किया । ३४ रक्षकों में से प्रत्येक लड़ते लड़ते अपने स्थान पर कट कर मर गया । कहा जाता है, नैपाली सेना के सात आदमी मरे और ४३ घायल हुए । इसके बाद दुर्ग पर नैपाली सेना का क़ब्ज़ा हो गया ।* लखनऊ दरबार ने ग़फ़ूरबेग को जनरल फ़्रैन्क्स के मुक़ाबले के लिए सेना देकर भेजा । सुलतानपुर, बदायूँ आदिक स्थानों पर कई ज़बरदस्त संग्राम हुए । अन्त में नैपालियों तथा अङ्गरेज़ों की यह संयुक्त विशाल सेना पूर्वीय अवध पर विजय प्राप्त करती हुई आगे बढ़ चली ।

मार्ग में एक दुर्ग दौरारे का था । फ़्रैन्क्स अपने दल सहित इस दुर्ग को विजय करने के लिए बढ़ा । किन्तु दौरारा से फ़्रैन्क्स को हार खाकर पीछे हट जाना पड़ा, जिसके दण्ड में कैम्पबेल ने फ़्रैन्क्स की पदवी कम कर दी । इसके बाद दूसरी ओर से चक्कर खाकर कम्पनी की सेना आगे बढ़ती रही ।

---

* Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iv, p. 227.

११ मार्च सन् १८५८ को पश्चिम से कैम्पबेल की विशाल सेना और पूर्व से गोरखा तथा अङ्गरेज़ी सेनाएँ सब लखनऊ के निकट आकर मिल गईं।

लखनऊ शहर के अन्दर नवम्बर सन् ५७ से मार्च सन् ५८ तक स्वाधीनता का युद्ध बराबर जारी था। अवध की अधिकांश प्रजा और वहाँ के प्रायः सब राजा, जमींदार और ताल्लुक़ेदार सच्चे उत्साह के साथ इस युद्ध में शामिल थे। लॉर्ड कैनिङ्ग ने सर जेम्स उटरम के नाम एक पत्र में लिखा है कि जो राजा और ताल्लुक़ेदार अङ्गरेज़ों के विरुद्ध युद्ध में भाग ले रहे थे उनमें से कम से कम अनेक ऐसे थे जिन्हें स्वयं अङ्गरेज़ी राज्य से बजाय हानि के लाभ हुआ था, तथापि ये लोग अङ्गरेज़ी राज्य के इस समय विकट शत्रु थे और नवाब बिरजीस क़द्र तथा बेगम हज़रतमहल के लिए अपने सर्वस्व की आहुति देने को उद्यत थे।

इतिहास-लेखक होम्स लिखता है—

"अनेक राजा और छोटे छोटे सरदार ऐसे थे जो सदा अङ्गरेज़ सरकार के बन्धनों से अपने आपको मुक्त करने के लिए चिन्तित रहते थे। उन्हें स्वयं कोई विशेष हानि न पहुँची थी, किन्तु अङ्गरेज़ी सरकार का अस्तित्व ही उन्हें सदा यह याद दिलाता रहता था कि हम एक पराजित क़ौम के आदमी हैं। × × × भारत की लाखों जनता के दिलों में विदेशी सरकार की ओर कोई सच्ची राजभक्ति न थी × × × विप्लव के दिनों में भारतवासियों के व्यवहार का ठीक ठीक अन्दाज़ा करने के लिए, यह याद रखना आवश्यक है कि इन लोगों का हमारी जैसी एक विदेशी सरकार की ओर उस

प्रकार की राजभक्ति अनुभव करना, जो राजभक्ति कि केवल देशभक्ति के साथ साथ ही चल सकती है, मानव प्रकृति के प्रतिकूल होता I× × × उनमें एक भी मनुष्य ऐसा न था जिसे यदि एक बार यह विश्वास हो जाता कि अङ्गरेज़ी राज्य को उखाड़ कर फेंका जा सकता है, तो वह हमारे विरुद्ध न हो जाता !"*

रसल लिखता है कि अवध के लोग "अपने देश और अपने बादशाह के लिए देशभक्ति के भाव से प्रेरित होकर लड़ रहे थे।"†

लखनऊ नगर के अन्दर विप्लव का सब से योग्य नेता मौलवी अहमदशाह था, जिसका ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है। अहमदशाह की योग्यता के विषय में इतिहास-लेखक होम्स लिखता है—

"फ़ैज़ाबाद का मौलवी अहमदुल्लाह एक ऐसा व्यक्ति था जो अपने भावों और अपनी योग्यता दोनों की दृष्टि से एक महान आन्दोलन को चलाने और एक विशाल सेना का नेतृत्व ग्रहण करने दोनों के योग्य था।"‡

किन्तु दुर्भाग्यवश लखनऊ के अन्दर भी धीरे धीरे अव्यवस्था उत्पन्न हो गई थी। जिस प्रकार दिल्ली की सेना में बख्त खाँ के

---

* *The Sepoy War*, by Holmes.

† "Engaged in a patriotic war for their country and their sovereign."—Russell's *Diary*, p. 275.

‡ "A man fitted both by his spirit and his capacity to support a great cause and to command a great army. This was Ahmadullah—the Moulvi of Fyzabad."—Holmes' *The Sepoy War*.

विरुद्ध उसी प्रकार लखनऊ की सेना में अहमदशाह के विरुद्ध कुछ लोग प्रतिस्पर्धा अनुभव करने लगे थे। अहमदशाह की आज्ञाओं का यथेच्छ पालन न होता था।

कैम्पबेल के पहुँचने से पहले सर जेम्स ऊटरम चार हज़ार सेना सहित आलमबाग़ में मौजूद था। अहमदशाह ने कई बार चाहा कि ऊटरम पर एक जोरदार हमला करके उसकी सेना को समाप्त कर दिया जाय। किन्तु अहमदशाह की न चल सकी। प्रतिस्पर्धा यहाँ तक बढ़ी कि कुछ लोगों के ज़ोर देने पर कहा जाता है, एक बार बेगम ने अहमदशाह को क़ैद तक कर दिया। किन्तु सेना तथा जनता दोनों में अहमदशाह इतना सर्वप्रिय था कि शीघ्र ही उसे फिर छोड़ देना पड़ा। इसके बाद कैम्पबेल की सेना लखनऊ पहुँची। अहमदशाह ने फिर सेना का नेतृत्व ग्रहण किया। जितनी बार भारतीय सेना ने आलमबाग़ पर हमला किया मौलवी अहमदशाह अपने घोड़े अथवा हाथी के ऊपर प्रायः सदा सब से आगे लड़ता हुआ दिखाई पड़ता था।

१५ जनवरी सन् १८५८ के संग्राम में मौलवी अहमदशाह के एक हाथ में गोली लगी। १७ जनवरी को विप्लवकारियों का एक और मुख्य सेनापति विदेही हनुमान घायल होकर पकड़ा गया। इसी समय राजा बालकृष्णसिंह की भी मृत्यु होगई। १५ फ़रवरी को हाथ का घाव कुछ अच्छा होते ही अहमदशाह फिर मैदान में आया। कुछ समय बाद स्वयं बेगम हज़रतमहल शस्त्र धारण कर, घोड़े पर चढ़ कर, युद्ध के मैदान में उतर आई। किन्तु आपसी प्रति-

स्पर्धा और अव्यवस्था ने अब भी लखनऊ की विप्लवकारी सेना का साथ न छोड़ा।

जिस समय सर कॉलिन कैम्पवेल आलमबाग पहुँचा उस समय तक लखनऊ का समस्त नगर विप्लवकारियों के हाथों में था। शहर के बाहर आलमबाग में अङ्गरेज़ी सेना थी, और शहर के अन्दर विप्लवकारियों की ओर तीस हज़ार हिन्दोस्तानी सिपाही तथा पचास हज़ार सशस्त्र स्वयंसेवक जमा थे।* एक एक गली और एक एक बाज़ार में नाकेबन्दी और मोरचेबन्दी हो रही थी। हर घर की दीवारों में बन्दूकों के लिए सूराख़ बने हुए थे। हर मोरचे के ऊपर तोपें लगी हुई थीं। महल के चारों तरफ़ तोपें थीं। नगर के उत्तर की ओर गोमती नदी थी। शेष तीनों ओर मज़बूत क़िलेबन्दी थी।

कैम्पवेल के अधीन उस समय गोरी और हिन्दोस्तानी मिला कर लगभग चालीस हज़ार अभ्यस्त सेना थी। इससे पहले अङ्गरेज़ों ने जितने हमले लखनऊ पर किए थे उनमें से कोई भी उत्तर की ओर से न हुआ था। सब से पहले ६ मार्च को ऊटरम ने उस ओर से हमले की तैयारी शुरू की। सर कॉलिन कैम्पवेल के पहुँचने के बाद उत्तर और पूर्व दो ओर से हमला शुरू होगया। ६ मार्च से १५ मार्च तक ख़ूब घमासान संग्राम जारी रहा। तीसरी बार लखनऊ की गलियों में रक्त की नदियाँ बहने लगीं। अन्त में दिल्ली के समान ही लखनऊ का भी पतन हुआ। अङ्गरेज़ी सेना ने एक

* Sir Hope Grant.

दूसरे के बाद दिलखुशबाग़, क़दमरसूल, शाहनजफ़, बेगमकोठी इत्यादि किलों पर क़ब्ज़ा कर लिया। १० मार्च को वह हडसन, जिसने दिल्ली के शाहज़ादों का खून पिया था, लखनऊ के संग्राम में मारा गया। १४ मार्च को अङ्गरेज़ी सेना ने लखनऊ के महल में प्रवेश किया।

इतिहास-लेखक विलसन लिखता है कि उस दिन की विजय का मुख्य श्रेय "सिखों और दस नम्बर पलटन" को मिलना चाहिए।

बेगम हज़रतमहल, नवाब बिरजीस क़द्र और मौलवी अहमद-शाह तीनों शहर से निकल गए। अहमदशाह ने थोड़ा सा चक्कर देकर अपने मुट्ठी भर आदमियों सहित फिर एक बार दूसरी ओर से लखनऊ में प्रवेश किया। लखनऊ के मोहल्ले शहादतगञ्ज में पहुँच कर अहमदशाह ने नए सिरे से विजयी अङ्गरेज़ी सेना से मोरचा लिया। अहमदशाह के पास इस समय केवल दो तोपें रह गई थीं। दो पलटनें अहमदशाह के मुक़ाबले के लिए भेजी गईं। अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक लिखते हैं कि मौलवी अहमदशाह ने उस दिन अपूर्व वीरता के साथ युद्ध किया, शत्रु को अगणित जानों की हानि पहुँचाई, और अन्त में विजय असम्भव देख वह फिर लखनऊ से निकल गया। शहादतगञ्ज की लड़ाई लखनऊ की अन्तिम लड़ाई थी। अङ्गरेज़ी सेना ने ६ मील तक अहमदशाह का पीछा किया, किन्तु अहमदशाह हाथ न आया। लखनऊ के समस्त नगर पर अब कम्पनी का क़ब्ज़ा होगया।

लखनऊ के पतन के बाद कम्पनी की सेना ने लखनऊ निवा-

सियों के साथ जिस प्रकार का व्यवहार किया वह सार्वजनिक लूट और सार्वजनिक संहार, इन दो शब्दों में ही बयान किया जा सकता है। लेफ़्टिनेण्ट माजेण्डी लिखता है कि लखनऊ के अन्दर उस समय के क़त्लेआम में किसी तरह की तमीज़ नहीं की गई।*

हत्या से पहले जिस प्रकार की क्रूर यातनाएँ लोगों को दी गईं उसकी कई मिसालें रसल ने अपनी पुस्तक में दी हैं। इनमें से केवल एक हम नीचे उद्धृत करते हैं—

"कुछ सिपाही अभी जीवित थे और उन्हें दया के साथ मारा गया। किन्तु इनमें से एक को खींच कर मकान से बाहर रेतीले मैदान में लाया गया। उसे टाँगों से पकड़ कर खींचा गया, एक सुविधा की जगह लाया गया। कुछ अङ्गरेज़ सिपाहियों ने उसके मुँह और शरीर में सङ्गीनें भोंक कर उसे लटकाए रक्खा। दूसरे लोग एक छोटी सी चिता के लिए ईंधन जमा कर लाए; जब सब तैयार होगया तो उसे ज़िन्दा भून दिया गया! इस काम के करने वाले अङ्गरेज़ थे, और कई अफ़सर खड़े देखते रहे, किन्तु किसी ने हस्तक्षेप न किया! इस नारकी अत्याचार की बीभत्सता उस समय और भी अधिक बढ़ गई जब कि उस अभागे दुखिया ने अधजली और ज़िन्दा हालत में भागने का प्रयत्न किया। अकस्मात् प्रयत्न करके वह चिता से कूद पड़ा। उसके शरीर का मांस हड्डियों से लटक रहा था। वह कुछ गज़ दौड़ा, फिर पकड़ लिया गया, वापस लाया गया, फिर आग पर रख दिया गया और जब तक राख न होगया सङ्गीनों से दबा कर रक्खा गया।"†

---

* Lieut. Majendie's *Up Among the Panties*, p. 195, 196.

† "Some of the Sepoys were still alive and they were

इसके मुक़ाबले में अङ्गरेज़ क़ैदियों के साथ बेगम हज़रतमहल का व्यवहार बिलकुल दूसरे ढङ्ग का था। शुरू के दिनों में, जब कि लखनऊ के अन्दर विप्लवकारियों का पल्ला भारी था, कुछ अङ्गरेज़ पुरुष और स्त्री लखनऊ में क़ैद कर लिए गए थे। किन्तु छै महीने तक इनकी जान पर कोई हमला नहीं किया गया। जिस समय कम्पनी की सेना ने नगर में घुस कर दोषी और निर्दोष सबका एक समान संहार प्रारम्भ किया, कुछ क्रुद्ध विप्लवकारियों ने महल में जाकर बेगम से प्रार्थना की कि अङ्गरेज़ क़ैदियों को हमारे हवाले कर दीजे। बेगम ने सात या आठ अङ्गरेज़ पुरुषों को उनके हवाले कर दिया। उन्हें तुरन्त गोली से उड़ा दिया गया। किन्तु जब कुछ विप्लवकारियों ने ज़िद की कि क़ैदी अङ्गरेज़ स्त्रियों को भी मार

---

mercifully killed; but one of their number was dragged out to the sandy plain outside the house; he was pulled by his legs to a convenient place, where he was held down, pricked in the face and body by the bayonets of some of the soldiery, while others collected fuel for a small pyre; and when everything was ready—the man was roasted alive! These were Englishmen, and more than one officer saw it; no one offered to interfere! The horrors of this infernal cruelty were aggravated by the attempt of the miserable wretch to escape when half burnt to death. By a sudden effort he leaped away and, with the flesh of his body hanging from his bones, ran for a few yards ere he was caught, brought back, put on the fire again, and held there by bayonets, till his remains were cousumed!"—Russell's *Diary*, p. 302.

डाला जाय तो बेगम ने इनकार कर दिया। इतिहास-लेखक चार्ल्स बॉल लिखता है—

"स्त्रियों के विषय में बेगम ने उन लोगों की माँग को पूरा करने से ज़ोरों के साथ इनकार कर दिया। बेगम ने तुरन्त महल के ज़नानख़ाने के अन्दर उन अङ्गरेज़ स्त्रियों को अपने संरक्षण में ले लिया। बेगम का यह कार्य स्त्री जाति के मान को बढ़ाने वाला था।"*

कम्पनी की सेना ने महल में घुस कर भी लूट और क़त्लेआम जारी रक्खा। महल के ज़नानख़ानों के अन्दर अनेक स्त्रियाँ मारी गईं। शेष स्त्रियाँ क़ैद कर ली गईं। महल की इन स्त्रियों के दिलों में भी अपने आन्दोलन की पवित्रता और उसकी अन्तिम विजय में पूर्ण विश्वास मौजूद था। एक छोटी सी घटना कई अङ्गरेज़ी इतिहासों में दी हुई है। एक दिन इन क़ैदी बेगमों के अङ्गरेज़ पहरेदारों ने हँस कर उनसे पूँछा—"क्या आपका यह ख़याल नहीं है कि अब यह जङ्ग ख़त्म होगई?" बेगमों ने उत्तर दिया—"नहीं, इसके ख़िलाफ़ हमें पूरा यक़ीन है कि आख़ीर में तुम्हारी ही हार होगी।"†

---

* "To the honor of womanhood, the demand was imperatively refused by the Begum so far as the females were concerned, and they were immediately taken under her care in the Zenana of the palace."—Charles Ball's *Indian Mutiny* vol. ii, p. 94.

† *Narrative of the Indian Mutiny*, p. 338. Russell's *Diary*, p. 400.

लखनऊ के पतन के बाद भी अवध के कई भागों तथा हिन्दोस्तान के अन्य अनेक प्रान्तों में युद्ध बराबर जारी रहा।

बिहार

यद्यपि बिहार में सन् ५७ का सङ्गठन अवध और दिल्ली जैसा न था, तथापि उस प्रान्त में विप्लव के कई महत्वपूर्ण केन्द्र थे। विशेषकर पटने में एक ज़बरदस्त केन्द्र था, जिसकी शाखाएँ प्रान्त में चारों ओर फैली हुई थीं। सन् ५७ से पूर्व पटने में अनेक गुप्त सभाएँ हुआ करती थीं। वहाँ की पुलिस इस सङ्गठन में शामिल थी। लिखा है कि पटने के केन्द्र के पास धन की कमी न थी। सैकड़ों वैतनिक और अवैतनिक प्रचारक चारों ओर ग्रामों में विप्लव का प्रचार करते हुए फिरते थे। वहाँ के नेताओं का दिल्ली, लखनऊ और कानपुर के नेताओं के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार जारी था।

अङ्गरेज़ों को जब पटने वालों के गुप्त इरादों का सुराग़ मिला तो कुछ सिख सेना पटने की रक्षा के लिए भेजी गई। लिखा है कि नगर के लोगों ने इन सिख सिपाहियों से घृणा प्रकट करने के लिए उनके साए तक से बचना शुरू किया।

ज़िला तिरहुत के एक पुलिस के जमादार वारिसअली को विप्लव के सन्देह पर गिरफ़्तार कर फाँसी दे दी गई। वारिसअली के पत्रों में एक पत्र गया के नेता अलीकरीम के नाम का पकड़ा गया। कम्पनी की फ़ौज का एक दस्ता अलीकरीम को गिरफ़्तार करने के लिए भेजा गया। अलीकरीम अपने हाथी पर बैठ कर देहात की ओर भागा। कम्पनी की फ़ौज ने उसका पीछा किया। किन्तु

आस पास के ग्रामवाले अलीकरीम से मिले हुए थे। उन्होंने कम्पनी के सिपाहियों को धोखा देकर ग़लत राह बता दी और अङ्गरेज़ी दस्ते को असफल पीछे लौट आना पड़ा।

पटने के कमिश्नर टेलर को पता लगा कि शहर के तीन प्रभाव-शाली मौलवी विप्लव के सङ्गठन में शरीक हैं। टेलर ने उन तीनों को बातचीत के बहाने अपने घर बुलाया और धोखे से गिरफ़्तार कर लिया।

३ जुलाई को पटने में कुछ विप्लव हुआ। किन्तु सिखों की सहायता से आसानी से दमन कर दिया गया। विप्लवकारियों का मुख्य नेता पीरअली फाँसी पर चढ़ा दिया गया। लिखा है कि पीरअली को यातनाएँ दे देकर मारा गया। कमिश्नर टेलर स्वयं लिखता है कि पीरअली ने बड़ी वीरता और धार्मिक भाव के साथ यातनाओं तथा मृत्यु दोनों का सामना किया। दानापुर में उस समय तीन हिन्दोस्तानी पलटनें, एक गोरी पलटन और कुछ तोप-ख़ाना था। पीरअली की मृत्यु के बाद २५ जुलाई को दानापुर की देशी पलटनों ने विप्लव का एलान कर दिया। ये पलटनें अब जगदीशपुर की ओर बढ़ीं।

राजा कुँवरसिंह

शाहाबाद के ज़िले में जगदीशपुर एक छोटी सी पुरानी राजपूत रियासत थी। सम्राट शाहजहाँ के दरबार से जगदीशपुर की रियासत के मालिक को 'राजा' की उपाधि प्रदान हुई थी और उसी समय से चली आती थी। अब यह रियासत भी लॉर्ड डलहौज़ी की अपहरण

नीति का शिकार हो चुकी थी। जगदीशपुर का राजा कुँवरसिंह आस पास के इलाक़े में अत्यन्त सर्वप्रिय था। कुँवरसिंह की आयु उस समय ८० वर्ष से ऊपर थी। तथापि कुँवरसिंह बिहार के विप्लवकारियों का प्रमुख नेता और सन् ५७ के सब से ज्वलन्त व्यक्तियों में से था।

जिस समय दानापुर की विप्लवकारी सेना जगदीशपुर पहुँची बूढ़े कुँवरसिंह ने तुरन्त अपने महल से निकल कर शस्त्र उठा कर इस सेना का नेतृत्व ग्रहण किया। कुँवरसिंह इस सेना सहित आरा पहुँचा। उसने आरा के खज़ाने को लूटा, जेलख़ाने के क़ैदी रिहा कर दिए और अङ्गरेज़ी दफ़्तरों को गिरा कर बराबर कर दिया। इसके बाद उसने आरा के छोटे से क़िले को घेर लिया। क़िले के अन्दर थोड़े से अङ्गरेज़ और कुछ सिख सिपाही थे। लिखा है कि क़िले में पानी की कमी पड़ गई। तुरन्त क़िले के अन्दर के सिखों ने अङ्गरेज़ों की विपत्ति को देख कर २४ घण्टे के अन्दर एक नया कुआँ खोद कर तैयार कर दिया। कुँवरसिंह ने कम्पनी की सेना से वादा किया कि यदि आप लोग क़िला हमारे सुपुर्द कर दें तो आप सबको प्राणदान दे दिया जायगा। किन्तु क़िले के भीतर की सेना ने स्वीकार न किया।

क़िले के अन्दर के सिखों को कुँवरसिंह ने समझा बुझा कर विप्लव के पक्ष में करना चाहा, किन्तु उसे सफलता न हो सकी। इस प्रकार तीन दिन आरा के क़िले का मोहासरा जारी रहा।

२९ जुलाई को दानापुर से कप्तान डनबर के अधीन लगभग

३०० गोरे सिपाही और १०० और सिख आरा की सेना की मदद के लिए चले। आरा के निकट एक आम का बाग़ था। कुँवर-सिंह ने अपने कुछ आदमी आम के वृक्षों की टहनियों में छिपा रखे थे। रात का समय था। जिस समय दानापुर की सेना ठीक वृक्षों के नीचे पहुँची, अँधेरे में ऊपर से गोलियाँ बरसनी शुरू हुईं। सुबह तक ४१५ आदमियों में से केवल ५० ज़िन्दा बच कर दानापुर की ओर लौटे। कप्तान डनबर इसी आम के बाग़ में मारा गया।

इसके बाद मेजर आयर एक बड़ी सेना और तोपों सहित क़िले के अङ्गरेज़ों की सहायता के लिए बढ़ा। २ अगस्त को बीबी-गञ्ज के निकट कुँवरसिंह की सेना और मेजर आयर की सेना में संग्राम हुआ। एक बार अङ्गरेज़ी सेना के एक अफ़सर कप्तान हेस्टिंग्स ने मेजर आयर से आकर कहा कि विजय हमारे हाथों से खिसकती हुई दिखाई देती है। किन्तु अन्त में मेजर आयर ही की विजय रही। कुँवरसिंह की सेना को पीछे हटना पड़ा, और आठ दिन के मोहासरे के बाद आरा का नगर तथा क़िला फिर से अङ्गरेज़ों के हाथों में आ गया।

कुँवरसिंह अब जगदीशपुर की ओर लौट आया। मेजर आयर ने अपनी विजयी सेना सहित उसका पीछा किया। कई दिन के संग्राम के बाद कुँवरसिंह फिर हारा। मेजर आयर ने १४ अगस्त को जगदीशपुर के महल पर क़ब्ज़ा कर लिया।

बूढ़ा कुँवरसिंह बारह सौ सैनिकों और अपने महल की स्त्रियों

को साथ लेकर जगदीशपुर से निकल गया। उसने अब किसी दूसरे स्थान पर जाकर अङ्गरेज़ों के साथ अपना वल आज़माने का निश्चय किया।

यह वह समय था जब कि कुछ गोरी और कुछ गोरखा सेना आज़मगढ़ की ओर से अवध में प्रवेश कर रही थी। १८ मार्च सन् १८५८ को आस पास के अन्य विप्लवकारियों को अपने साथ लेकर कुँवरसिंह ने आज़मगढ़ से २५ मील दूर अतरौलिया नामक स्थान पर डेरा जमाया। जिस समय अङ्गरेज़ों को यह समाचार मिला, तुरन्त मिलमैन के अधीन कुछ पैदल, कुछ सवार और दो तोपें २२ मार्च सन् १८५८ को कुँवरसिंह के मुक़ावले के लिए पहुँचीं। उसी दिन अतरौलिया के मैदान में दोनों ओर की सेनाओं का आमना सामना हुआ। थोड़ी ही देर वाद कुँवरसिंह अपनी सेना सहित ज़ोरों के साथ पीछे को हटने लगा। अङ्गरेज़ी सेना समझ गई कि कुँवरसिंह हार कर मैदान से भाग गया। विजय के हर्ष में मिलमैन ने अपनी सेना को एक आम के वग़ीचे में ठहर कर भोजन करने की आज्ञा दी। किन्तु कुँवरसिंह उस जङ्गल की एक एक चप्पा भूमि से परिचित था। इस वुढ़ापे में भी वह अत्यन्त फुरतीला था। ठीक उस समय, जब कि मिलमैन की सेना भोजन कर रही थी, कुँवरसिंह अचानक उस पर आ टूटा। थोड़ी देर के संग्राम के वाद मैदान पूरी तरह कुँवरसिंह के हाथ रहा। मिलमैन के अनेक सिपाही काम आए और शेप ने अतरौलिया से भाग कर कौशिला में आश्रय लिया। कुँवरसिंह ने मिलमैन का पीछा किया। मिलमैन

के हिन्दोस्तानी नौकरों ने इस समय उसका साथ छोड़ दिया। लिखा है कि वे कम्पनी की सेना के बैलों और गाड़ियों समेत इधर उधर भाग गए। शेष असबाब और तोपें कुँवरसिंह के हाथ लगीं। मिलमैन अपने रहे सहे आदमियों सहित आज़मगढ़ की ओर भाग गया।

एक दूसरी अङ्गरेज़ी सेना करनल डेम्स के अधीन बनारस और ग़ाज़ीपुर से चल कर मिलमैन की सहायता के लिए आज़मगढ़ पहुँची। २८ मार्च को यह संयुक्त सेना करनल डेम्स के अधीन फिर कुँवर-सिंह के मुक़ाबले के लिए निकली। आज़मगढ़ से कुछ दूर कुँवर-सिंह और करनल डेम्स में संग्राम हुआ। कुँवरसिंह ने फिर एक बार पूर्ण विजय प्राप्त की। करनल डेम्स को मैदान से भाग कर आज़मगढ़ के क़िले में आश्रय लेना पड़ा। विजयी कुँवरसिंह ने आज़मगढ़ नगर में प्रवेश किया।

आज़मगढ़ को विजय कर अपनी सेना के एक दल को आज़मगढ़ के क़िले के मोहासरे के लिए छोड़ कर कुँवरसिंह अब बनारस की ओर बढ़ा। लॉर्ड कैनिङ्ग उस समय इलाहाबाद में था। इतिहास-लेखक मालेसन लिखता है कि कुँवरसिंह की विजयों और उसके बनारस पर चढ़ाई करने की ख़बर सुन कर कैनिङ्ग घबरा गया।

कुँवरसिंह अपनी राजधानी जगदीशपुर से १०० मील से ऊपर निकल आया था और अब बनारस के ठीक उत्तर में था। लखनऊ से भागे हुए अनेक विप्लवकारी इस समय कुँवरसिंह की

सेना में आकर शामिल होगए। लॉर्ड कैनिङ्ग ने तुरन्त सेनापति लॉर्ड मार्क कर को सेना तथा तोपों सहित कुँवरसिंह के मुक़ाबले के लिए भेजा। ६ अप्रेल को लॉर्ड मार्क कर की सेना और कुँवरसिंह की सेना में संग्राम हुआ। लिखा है कि उस दिन ८१ वर्ष का बूढ़ा कुँवरसिंह अपने सफ़ेद घोड़े पर सवार ठीक घमासान लड़ाई के अन्दर बिजली की तरह इधर से उधर तक लपकता हुआ दिखाई दे रहा था। लॉर्ड मार्क कर हार गया। उसे अपनी तोपों सहित पीछे हटना पड़ा। किन्तु लॉर्ड मार्क कर अब मैदान छोड़ कर आज़मगढ़ की ओर बढ़ा। कुँवरसिंह ने उसका पीछा किया। सम्भव है कि या तो कुँवरसिंह का विचार इस समय कुछ बदल गया, अथवा वह लॉर्ड मार्क की चाल में आगया। इतिहास-लेखक मालेसन लिखता है कि कुँवरसिंह का इस समय बनारस आने का विचार छोड़ कर आज़मगढ़ की ओर लॉर्ड मार्क का पीछा करना बहुत बड़ी भूल थी।

लॉर्ड मार्क ने अपने बचे हुए आदमियों सहित आज़मगढ़ के क़िले में आश्रय लिया। आज़मगढ़ का शहर विप्लवकारियों के हाथों में था। कुँवरसिंह ने लॉर्ड मार्क और उसकी सेना को क़िले में क़ैद कर क़िले का मोहासरा शुरू कर दिया।

पश्चिम की ओर से अब सेनापति लगर्ड एक दूसरी अङ्गरेज़ी सेना सहित लॉर्ड मार्क की सहायता के लिए आज़मगढ़ की ओर बढ़ा। कुँवरसिंह को इसका पता लग गया। कुँवरसिंह ने अब सब से पहले आज़मगढ़ छोड़ कर ग़ाज़ीपुर आकर वहाँ से गङ्गा पार कर

जगदीशपुर पहुँचने और फिर से अपनी पैतृक रियासत विजय करने का इरादा किया। इसके लिए कुँवरसिंह ने एक सुन्दर चाल चली।

लगर्ड की सेना तानू नदी के पुल पर से आजमगढ़ आने वाली थी। कुँवरसिंह ने अपनी सेना का एक दल उस पुल पर लगर्ड की सेना का मुक़ाबला करने के लिए भेज दिया। अपनी शेष सेना सहित कुँवरसिंह ग़ाज़ीपुर की ओर बढ़ा। यह छोटा सा सैन्यदल पुल के ऊपर वीरता के साथ लगर्ड की सेना का मुक़ाबला करता रहा। जब उसे पता लगा कि मुख्य सेना काफी दूर निकल गई, वह धीरे धीरे पीछे हट कर उस सेना से जा मिला। लगर्ड को कुँवरसिंह की इस चाल का पता न चल सका। इतिहास-लेखक मालेसन ने कुँवर-सिंह की इस चाल और तानू नदी के ऊपर लड़ने वाले कुँवरसिंह के सिपाहियों की वीरता दोनों की ख़ूब प्रशंसा की है। इसके बाद लगर्ड की सेना ने बारह मील तक कुँवरसिंह का पीछा किया, किन्तु कुँवरसिंह हाथ न आ सका।

इतने ही में जरा सा चक्कर देकर स्वयं कुँवरसिंह ने अचानक लगर्ड की सेना पर हमला किया। कम्पनी की ओर कई अफ़सर और अनेक सिपाही मारे गए। अन्त में कम्पनी की सेना को हार कर पीछे हट आना पड़ा, और कुँवरसिंह गङ्गा की ओर बढ़ा।

एक और अङ्गरेज़ी सेना सेनापति डगलस के अधीन कुँवरसिंह को परास्त करने के लिए बढ़ी। नघई नामक ग्राम के निकट डगलस और कुँवरसिंह की सेनाओं में संग्राम हुआ। कुँवरसिंह ने

इस समय अपनी सेना के तीन दल किए। एक दल ने डगलस का मुक़ाबला किया। दूसरे दोनों दल घूम कर आगे बढ़ गए। पहला दल ज़ोरों के साथ डगलस की सेना से लड़ता रहा। डगलस के मुक़ाबले में इस दल की संख्या कम थी। चार मील तक डगलस इस दल को दबाता चला गया। अन्त में ज्यों ही डगलस की सेना थक कर रुकी, दूसरे दोनों दल अन्य रास्तों से घूम कर उस पर टूट पड़े। पराजित डगलस को पीछे हट जाना पड़ा।

कुँवरसिंह की संयुक्त सेना गङ्गा की ओर बढ़ी। डगलस की सेना ने फिर उसका पीछा किया, किन्तु व्यर्थ। कुँवरसिंह अपनी सेना सहित आश्चर्यजनक वेग के साथ चल कर सिकन्दरपुर पहुँचा। उसने घोघरा नदी पार की और मनोहर ग्राम में जाकर कुछ देर के लिए विश्राम किया।

मनोहर ग्राम में डगलस की सेना ने फिर कुँवरसिंह पर हमला किया। कुँवरसिंह के कुछ हाथी, कुछ बारूद और कुछ रसद का सामान डगलस के हाथ आया। कुँवरसिंह ने फिर अपनी सेना के कई छोटे छोटे दल बनाए, और उन सब को अलग अलग रास्तों से चल कर एक नियत स्थान पर मिलने की आज्ञा दी। डगलस के लिए इन पृथक पृथक दलों का पीछा कर सकना असम्भव हो गया। कुँवरसिंह की सारी टुकड़ियाँ आगे चल कर मिल गई और गङ्गा की ओर बढ़ चलीं।

गङ्गा के निकट पहुँच कर कुँवरसिंह ने यह अफ़वाह उड़ा दी कि मेरी सेना बलिया के निकट हाथियों पर गङ्गा को पार करेगी।

अङ्गरेजी सेना उसी स्थान पर जाकर कुँवरसिंह को रोकने के लिए डट गई। किन्तु कुँवरसिंह उस स्थान से सात मील नीचे शिवपुर घाट से रात्रि के समय किश्तियों में गङ्गा को पार कर रहा था। अङ्गरेजी सेना को जब इस चाल का पता लगा, वह शिवपुर पहुँची। कुँवरसिंह की समस्त सेना गङ्गा पार कर चुकी थी। केवल एक अन्तिम किश्ती रह गई थी। कुँवरसिंह इसी किश्ती में था। ठीक जिस समय कुँवरसिंह की किश्ती बीच धार में थी अङ्गरेजी सेना के किसी सिपाही की गोली कुँवरसिंह की दाहिनी कलाई में आकर लगी। ८१ वर्ष के बूढ़े कुँवरसिंह ने यह देख कर कि दाहिना हाथ निकम्मा हो गया और समस्त शरीर में विष फैल जाने का डर है, बाएँ हाथ से तलवार खींच कर अपने घायल दाहिने हाथ को स्वयं एक वार में कुँहनी पर से काट कर गङ्गा में फेंक दिया। घाव पर कपड़ा लपेट कर कुँवरसिंह ने गङ्गा को पार किया। अङ्गरेजी सेना गङ्गा के उस पार उसका पीछा न कर सकी।

गङ्गा के उस पार कुछ दूरी पर जगदीशपुर की राजधानी थी। आज से आठ महीने पहले कुँवरसिंह को जगदीशपुर से निकल जाना पड़ा था। इन आठ महीने तक जगदीशपुर अङ्गरेजी सेना के क़ब्जे में रहा। २२ अप्रैल को राजा कुँवरसिंह ने फिर जगदीशपुर में प्रवेश किया। कुँवरसिंह के भाई अमरसिंह ने पहले से कुछ स्वयंसेवकों का एक दल कुँवरसिंह की सहायता के लिए जमा कर रक्खा था। जगदीशपुर पर फिर से कुँवरसिंह का क़ब्जा हो गया।

आरा के अङ्गरेज़ अफ़सर चकित हो गए। २३ अप्रैल को लीग्रैण्ड के अधीन कम्पनी की सेना जगदीशपुर पर दोबारा हमला करने के लिए आरा से चली। आठ महीने कुँवरसिंह और उसकी सेना के अनवरत संग्राम और कठिन यात्रा में बीते थे। जगदीशपुर पहुँचे उसे अभी २४ घण्टे भी न हुए थे। कुँवर-सिंह का दाहिना हाथ कट चुका था। उसके पास सेना भी एक हज़ार से अधिक न थी। उसके मुक़ाबले में लीग्रैण्ड की सेना सुसज्जित और ताज़ा थी। तोपें भी इस सेना के साथ थीं। कुँवर-सिंह के पास उस समय कोई तोप न थी। जगदीशपुर से डेढ़ मील के फ़ासले पर लीग्रैण्ड और कुँवरसिंह की सेना में संग्राम हुआ। लीग्रैण्ड की सेना में कुछ अङ्गरेज़ और अधिकांश सिख थे। मैदान फिर पूरी तरह कुँवरसिंह के हाथों में रहा। उस दिन की पराजय को वर्णन करते हुए एक अङ्गरेज़ अफ़सर, जो संग्राम में शामिल था, लिखता है—

"वास्तव में, इसके बाद जो कुछ हुआ उसे लिखते हुए मुझे अत्यन्त लज्जा आती है। लड़ाई का मैदान छोड़ कर हमने जङ्गल से भागना शुरू किया। शत्रु हमें बराबर पीछे से पीटता रहा। हमारे सिपाही प्यास से मर रहे थे। एक निकृष्ट गन्दे छोटे से पोखर को देख कर वे अत्यन्त घबरा कर उसकी ओर लपके। इतने में कुँवरसिंह के सवारों ने हमें पीछे से आ दबाया। इसके पश्चात् हमारी ज़िल्लत की कोई हद न रही, हमारी आपत्ति चरम सीमा को पहुँच गई। हममें से किसी में शर्म तक न रही। जहाँ जिसको कुशल दिखाई दी, वह उसी ओर भागा। अफ़सरों की आज्ञाओं

की किसी ने परवा न की। व्यवस्था और क़वायद का अन्त हो गया। चारों ओर आहों, शापों और रोने के सिवा कुछ सुनाई न देता था। मार्ग में अङ्गरेज़ों के गिरोह के गिरोह मारे गरमी के गिर गिर कर मर गए। किसी को दवा मिल सकना भी असम्भव था, क्योंकि हमारे अस्पताल पर कुँवरसिंह ने पहले ही क़ब्ज़ा कर लिया था। कुछ वहीं गिर कर मर गए, शेष को शत्रु ने काट डाला। हमारे कहार डोलियाँ रख रख कर भाग गए। सब घबराए हुए थे। सब डरे हुए थे। सोलह हाथियों पर केवल हमारे घायल साथी लदे हुए थे। स्वयं जनरल लीग्रैण्ड की छाती में एक गोली लगी और वह मर गया! हमारे सिपाही अपनी जान लेकर पाँच मील से ऊपर दौड़ चुके थे। उनमें अब अपनी बन्दूक़ उठाने तक की शक्ति न रह गई थी। सिखों को वहाँ की धूप की आदत थी। उन्होंने हमसे हाथी छीन लिए और हमसे आगे भाग गए। गोरों का किसी ने साथ न दिया। १९९ गोरों में से केवल ८० इस भयङ्कर संहार से ज़िन्दा बच सके! हमारा इस जङ्गल में जाना ऐसा ही हुआ जैसा पशुओं का क़साईख़ाने में जाना, हम वहाँ केवल वध होने के लिए गए थे!"*

इतिहास-लेखक व्हाइट लिखता है—"इस अवसर पर अङ्गरेज़ों ने पूरी और बुरी से बुरी हार खाई।"†

अङ्गरेज़ी सेना की सब तोपें और असबाब कुँवरसिंह के हाथ आया।

इस प्रकार २३ अप्रेल सन् १८५८ को विजयी कुँवरसिंह फिर

---

* Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 288.

† " The English sustained on this occasion a complete defeat of the worst kind."—White's *History of the Mutiny*.

से अपनी पैतृक रियासत पर शासन करने लगा। किन्तु कुँवरसिंह के हाथ का घाव अभी तक अच्छा न हुआ था। उस घाव ही के कारण २६ अप्रेल सन् १८५८ को अपने महल के अन्दर राजा कुँवरसिंह की मृत्यु हुई। कुँवरसिंह की मृत्यु के समय स्वाधीनता का हरा झण्डा उसकी राजधानी के ऊपर फहरा रहा था और अङ्गरेज़ कम्पनी के आधिपत्य से वह अपनी रियासत तथा प्रजा दोनों को सर्वथा स्वाधीन कर चुका था। इतिहास-लेखक होम्स लिखता है—

"उस बूढ़े राजपूत की, जो ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध इतनी वीरता और इतनी आन के साथ लड़ा, २६ अप्रेल सन् १८५८ को मृत्यु हुई।"*

कुँवरसिंह का व्यक्तिगत चरित्र अत्यन्त पवित्र था। उसका जीवन परहेज़गारी का था। यहाँ तक कि लिखा है, उसके राज्य में कोई मनुष्य इस डर से कि कहीं कुँवरसिंह न देख ले, खुले तौर पर तम्बाकू तक न पीता था। उसकी समस्त प्रजा उसका बहुत बड़ा आदर और उससे प्रेम करती थी। युद्ध-कौशल में वह अपने समय में अद्वितीय था।

बिहार में विप्लव का अन्त

कुँवरसिंह के बाद उसका छोटा भाई अमरसिंह जगदीशपुर की गद्दी पर बैठा। अमरसिंह ने बड़े भाई के मरने के बाद चार दिन भी विश्राम नहीं लिया। केवल जगदीशपुर की रियासत पर

* "The old Rajput who had fought so honourably and so bravely against the British power died on April 26th, 1858."—*History of the Sepoy War*, by Holmes.

कुँवरसिंह

अपना अधिकार बनाए रखने से भी वह सन्तुष्ट न रहा। उसने तुरन्त अपनी सेना को फिर से एकत्रित कर आरा पर चढ़ाई की। लीग्रैण्ड की सेना की पराजय के बाद जनरल डगलस और जनरल लगर्ड की सेनाएँ भी गङ्गा को पार कर आरा की सहायता के लिए पहुँच चुकी थीं। ३ मई को राजा अमरसिंह की सेना के साथ डगलस और लगर्ड की सेनाओं का पहला संग्राम हुआ उसके बाद बिहिया, हातमपुर, दलीलपुर इत्यादि अनेक स्थानों पर दोनों सेनाओं में अनेक संग्राम हुए। अमरसिंह ठीक उसी प्रकार की युद्ध-नीति द्वारा अङ्गरेज़ी सेना को बार बार हराता और हानि पहुँचाता रहा, जिस प्रकार की युद्ध-नीति में कुँवरसिंह निपुण था। निराश होकर १५ जून को जनरल लगर्ड ने इस्तीफ़ा दे दिया। लड़ाई का भार अब जनरल डगलस पर पड़ा। डगलस के साथ सात हज़ार सेना थी। डगलस ने अमरसिंह को परास्त करने की क़सम खाई। किन्तु जून, जुलाई, अगस्त और सितम्बर के महीने बीत गए, फिर भी अमरसिंह परास्त न हो सका। इस बीच विजयी अमरसिंह ने आरा में प्रवेश किया और जगदीशपुर की रियासत पर अपना आधिपत्य जमाए रक्खा। जनरल डगलस ने कई बार हार खाकर यह एलान कर दिया कि जो मनुष्य किसी तरह भी अमरसिंह का सिर लाकर पेश करेगा, उसे बहुत बड़ा इनाम दिया जायगा। किन्तु इससे भी काम न चल सका।

अन्त में सात ओर से सात विशाल सेनाओं ने एक साथ जगदीशपुर पर हमला किया। १७ अक्तूबर को इन सेनाओं ने जगदीश-

पुर को चारों ओर से घेर लिया। अमरसिंह ने देख लिया कि मेरे लिए इस विशाल सैन्यदल पर विजय प्राप्त कर सकना असम्भव है। वह तुरन्त अपने थोड़े से सिपाहियों सहित मार्ग चीरता हुआ अङ्गरेज़ सेना के बीच से निकल गया। जगदीशपुर पर फिर एक वार कम्पनी का क़ब्ज़ा हो गया। किन्तु अमरसिंह हाथ न आ सका।

कम्पनी की सेना ने अमरसिंह का पीछा किया। १९ अक्तूबर को नौनदी नामक ग्राम में इस सेना ने अमरसिंह को घेर लिया। अमरसिंह के साथ केवल चार सौ सिपाही थे। इन चार सौ में से तीन सौ ने नौनदी के संग्राम में लड़ कर प्राण दिए। शेष सौ ने कम्पनी की सेना को एक वार पीछे हटा दिया। इतने में और अधिक सेना अङ्गरेज़ों की मदद के लिए पहुँच गई। अमरसिंह के सौ आदमियों ने अपनी जान हथेली पर लेकर युद्ध किया। अन्त में अमरसिंह और उसके दो और साथी मैदान से निकल गए। शेष ९७ वहीं पर कट मरे। नौनदी के संग्राम में कम्पनी की ओर मरने वालों और घायलों की संख्या इससे कहीं अधिक थी।

कम्पनी की सेना ने फिर अमरसिंह का पीछा किया। एक वार कुछ सवार अमरसिंह के हाथी तक पहुँच गए। हाथी पकड़ लिया गया, किन्तु अमरसिंह कूद कर निकल गया।

अमरसिंह ने अब कैमूर के पहाड़ों में प्रवेश किया। शत्रु ने वहाँ पर भी उसका पीछा किया। किन्तु अमरसिंह ने हार स्वीकार न की। उसके बाद राजा अमरसिंह का पता न चला।

जगदीशपुर के महल की स्त्रियों ने भी शत्रु के हाथ में पड़ना

गवारा न किया। लिखा है कि जिस समय महल की डेढ़ सौ स्त्रियों ने यह देखा कि अब शत्रु के हाथों में पड़ने के सिवा कोई चारा नहीं, तो वे तोपों के मुँह के सन्मुख खड़ी होगईं और स्वयं अपने हाथ से फ़लीता लगा कर उन सब ने अपने ऐहिक जीवन का अन्त कर दिया !

मौलवी अहमदशाह की मृत्यु

लखनऊ के पतन के बाद विप्लवकारियों का कोई विशेष केन्द्र कहीं भी भारत में न रहा था। कम्पनी की सेनाएँ इस समय चारों ओर फैलती जा रही थीं। पलटनों पर पलटनें इङ्गलिस्तान से भरती हो होकर भारत आ रही थीं। विशाल भारतीय साम्राज्य को अपने हाथों से खिसकता देख कर इङ्गलिस्तान के शासकों ने उस समय अपनी समस्त शक्ति भारतीय विप्लव के दमन करने में लगा रक्खी थी। पहली अप्रेल सन् १८५८ को कम्पनी की हिन्दोस्तानी सेना और देशी रियासतों की सेनाओं के अतिरिक्त कम्पनी के पास भारत में ९६,००० गोरी सेना थी। अङ्गरेज़ क़ौम के बड़े से बड़े अनुभवी सेनापति भारत में मौजूद थे। दूसरी ओर सिखों और गोरखों दोनों ने अपनी पूरी शक्ति से अङ्गरेज़ों का साथ दिया। विप्लवकारियों के अन्दर अव्यवस्था बढ़ती जा रही थी। दिल्ली, कानपुर और लखनऊ जैसे केन्द्र हाथ से निकल चुके थे। इस परिस्थिति में अवध और रुहेलखण्ड के नेताओं ने इधर उधर फैले हुए विप्लवकारियों के नाम यह आज्ञा प्रकाशित की—

"तुम लोग विधर्मियों की बाज़ाब्ता सेनाओं का खुले मैदान में

सामना करने का प्रयत्न न करो, क्योंकि उनमें व्यवस्था हमसे बढ़ कर है और उनके पास बड़ी बड़ी तोपें हैं। उनके आने जाने पर दृष्टि रक्खो, दरियाओं के तमाम घाटों पर अपना पहरा रक्खो, उनके पत्र व्यवहार को बीच में रोक दो, उनकी रसद को रोक लो, उनकी डाक और चौकियों को तोड़ दो, और सदा उनके कैम्प के इधर उधर फिरते रहो। फ़िरङ्गी को बिलकुल चैन न लेने दो!"*

इस आज्ञा के विषय में रसल लिखता है—"इस आम एलान से नेताओं की बुद्धिमत्ता का पता चलता है और यह भी पता चलता है कि इससे अधिक भयङ्कर युद्ध का हमें कभी भी सामना करना न पड़ा था।"*

मौलवी अहमदशाह लखनऊ से लगभग तीस मील दूर बारी नामक स्थान पर था। बेगम हज़रतमहल छै हज़ार आदमियों सहित बिटावली में थी। होपग्राण्ट तीन हज़ार सेना और तोपख़ाने सहित लखनऊ से बारी की ओर बढ़ा। मौलवी अहमदशाह को पता चला। उसने बारी से चार मील दूर एक गाँव में अपनी पैदल सेना को नियुक्त किया, और सवार सेना को किसी दूसरी जगह छिपा दिया। उसकी चाल यह थी कि कम्पनी की सेना इस गाँव पर हमला करे, अहमदशाह की पैदल सेना उसका मुक़ाबला करे और उसके सवार अचानक पीछे से आकर कम्पनी की सेना को घेर लें। मौलवी स्वयं पैदल सेना के साथ रहा। सवारों को आज्ञा थी कि जिस समय तक पैदल सेना के साथ अङ्गरेज़ों की लड़ाई शुरू न

---

* Russell's *Diary*, p. 276.

हो जाय तुम अपने आप को बराबर छिपाए रखना। किन्तु ऐन मौक़े पर अधीर सवारों ने अहमदशाह की आज्ञा के विरुद्ध अङ्गरेज़ी सेना को सामने देखते ही अपने स्थान से निकल कर उस पर हमला कर दिया। इस अव्यवस्था का परिणाम यह हुआ कि थोड़ी सी लड़ाई के बाद अहमदशाह को उस गाँव से निकल कर भाग जाना पड़ा और बारी का मैदान अङ्गरेज़ों के हाथ रहा।

कम्पनी की सेना के अनेक दल इस समय अवध और रुहेलखण्ड के विप्लवकारियों को उत्तर की ओर खदेड़ते हुए चले जा रहे थे।

१५ अप्रेल को वालपोल ने लखनऊ से ५० मील दूर रुइया के क़िले पर हमला किया। रुइया के ताल्लुक़ेदार नरपतसिंह के पास केवल २५० साधारण सिपाही थे। वालपोल के साथ कई हज़ार सेना और तोपें थीं। सामने की ओर से वालपोल के डेढ़ सौ आदमियों ने क़िले पर चढ़ाई की। क़िले की दीवारों से गोलियों की बौछार शुरू हुई। ४६ अङ्गरेज़ वहीं पर मर गए, शेष को पीछे हट जाना पड़ा। वालपोल ने अपनी तोपों सहित क़िले के दूसरी ओर से गोलेबारी शुरू की। वालपोल के गोले क़िले के ऊपर से पार कर दूसरी ओर की अङ्गरेज़ी सेना पर जाकर गिरने लगे। वालपोल की घबराहट को देख कर जनरल होप आगे बढ़ा। होप मारा गया। समस्त अङ्गरेज़ी सेना को ज़िल्लत के साथ हार कर क़िले से पीछे हट जाना पड़ा। जनरल होप अङ्गरेज़ों के मुख्यतम तथा अनुभवी सेनापतियों में से था। उसकी मृत्यु से भारत तथा इङ्गलिस्तान के अङ्गरेज़ों को बहुत बड़ा शोक हुआ। इस विजय के

बाद भी नरपतसिंह ने जब देख लिया कि मैं विशाल अङ्गरेज़ी सेना के मुक़ाबले इस छोटे से क़िले में देर तक न ठहर सकूँगा, तो अपने मुट्ठी भर आदमियों सहित वह क़िले से बाहर निकल गया।

नाना साहब और मौलवी अहमदशाह अब शाहजहाँपुर पहुँचे। कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कॉलिन कैम्पबेल ने शाहजहाँपुर पहुँच कर चारों ओर से नगर को घेर लिया। उसका उद्देश नाना साहब और मौलवी अहमदशाह को वश में करना था। किन्तु ये दोनों नेता अङ्गरेज़ी सेना के बीच से शाहजहाँपुर छोड़ कर निकल गए।

ख़ानबहादुर ख़ाँ ने अभी तक रुहेलखण्ड की राजधानी बरेली को स्वाधीन कर रक्खा था। दिल्ली का एक शाहज़ादा मिरज़ा फ़ीरोज़शाह, नाना साहब, मौलवी अहमदशाह, बाला साहब, बेगम हज़रतमहल, राजा तेजसिंह तथा अन्य अनेक नेता इस समय बरेली में थे। सर कॉलिन अपनी सेना सहित बरेली की ओर बढ़ा। विप्लवकारी नेता पहले ही से बरेली छोड़ देने और चारों ओर रुहेलखण्ड में फैल जाने का निश्चय कर चुके थे। ५ मई को अङ्गरेज़ी सेना ने बरेली को घेर लिया। बरेली के असंख्य विप्लव-कारी केवल ढाल तलवार लेकर मरने के लिए अङ्गरेज़ी सेना पर टूट पड़े। दोनों ओर काफ़ी जानें गईं। अन्त में ७ मई सन् १८५८ को ख़ानबहादुर ख़ाँ अन्य नेताओं तथा कुछ सेना सहित बरेली छोड़ कर निकल गया। अङ्गरेज़ी सेना ने बरेली के नगर पर क़ब्ज़ा कर लिया।

सर कालिन कैम्पबेल अभी बरेली ही में था कि मौलवी

अहमदशाह ने घूम कर फिर से शाहजहाँपुर पर हमला किया, वहाँ की अङ्गरेज़ी सेना को परास्त किया और शाहजहाँपुर पर क़ब्ज़ा कर लिया। कैम्पवेल ने फिर शाहजहाँपुर पर हमला किया। इस वार तीन दिन तक शाहजहाँपुर में संग्राम होता रहा। एक वार मालूम होता था कि मौलवी अहमदशाह का अब शाहजहाँ-पुर से वच कर निकल सकना असम्भव है। तुरन्त चारों ओर से विप्लवकारी नेता सर्वप्रिय मौलवी अहमदशाह की सहायता के लिए पहुँच गए। वेगम हज़रतमहल, शहज़ादा फ़ीरोज़शाह, नाना साहव इत्यादि सव अपनी सेनाएँ लेकर १५ मई को शाहजहाँपुर पहुँचे। मौलवी अहमदशाह फिर इन सव की सहायता से शाह-जहाँपुर से निकल आया। इसके वाद रुहेलखण्ड से घूम कर अहमदशाह ने फिर अवध के अन्दर प्रवेश किया।

मौलवी अहमदशाह किसी तरह अङ्गरेज़ों के क़ावू में न आता था। इस वार अवध में प्रवेश करते ही उसने अङ्गरेज़ों से लड़ने के लिए फिर अपना वल वढ़ाने का प्रयत्न किया। मार्ग में पवन नाम की छोटी सी हिन्दू रियासत थी। मौलवी अहमदशाह ने वेगम हज़रतमहल की मोहर लगा एक परवाना पवन के राजा के पास सहायता के लिए भेजा। राजा जगन्नाथसिंह ने तुरन्त मौलवी अहमदशाह को अपने यहाँ वुलवाया। अहमदशाह अपने हाथी पर वैठ कर पवन पहुँचा। राजा जगन्नाथसिंह और उसके भाई से अहमदशाह की वातचीत हुई; वातचीत हो ही रही थी कि जगन्नाथसिंह के भाई ने धोखे से मौलवी अहमदशाह पर

गोली चला दी। अहमदशाह इस विश्वासघातक के वार से न बच सका। राजा जगन्नाथसिंह ने तुरन्त अहमदशाह का सिर काट कर उसे एक कपड़े में लपेटा और स्वयं पास के अङ्गरेज़ी कैम्प में पहुँचा दिया। इस प्रकार ५ जून सन् १८५८ को मौलवी अहमदशाह का अन्त हुआ। अगले दिन मौलवी अहमदशाह का कटा हुआ सिर शाहजहाँपुर की कोतवाली के सामने टाँग दिया गया।

राजा जगन्नाथसिंह को इस सेवा के बदले में कम्पनी सरकार से पचास हज़ार रुपए इनाम में मिले।

मौलवी अहमदशाह की योग्यता के विषय में हम ऊपर भी अङ्गरेज़ इतिहास-लेखकों की राय उद्धृत कर चुके हैं। होम्स लिखता है कि मौलवी अहमदशाह "उत्तरीय भारत में अङ्गरेज़ों का सब से ज़बरदस्त शत्रु था।"* एक दूसरा अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक मालेसन लिखता है—

"मौलवी एक बड़ा अद्भुत मनुष्य था × × × सेनापति की हैसियत से उसकी योग्यता के विषय में अनेक सुबूत मिले × × × कोई भी और मनुष्य अभिमान के साथ यह न कह सकता था कि मैंने दो बार सर कॉलिन कैम्पबेल को मैदान में परास्त किया! × × × फ़ैज़ाबाद के मौलवी अहमदशाह की इस प्रकार मृत्यु हुई। यदि एक ऐसे मनुष्य को, जिसकी जन्मभूमि की स्वाधीनता का अन्याय द्वारा अपहरण कर लिया गया हो, और जो फिर से उस स्वाधीनता को स्थापित करने के लिए योजना करे

---

* "The most formidable enemy of the British in Northern India."—Holmes' *History of the Indian Mutiny*, p. 539.

और युद्ध करे, देशभक्त कहा जा सकता है, तो इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता कि मौलवी अहमदशाह सच्चा देशभक्त था। उसने किसी निहत्थे की हत्या करके अपनी तलवार को कलङ्कित न किया था; निहत्थे और निर्दोष मनुष्यों की हत्या को उसने कभी गवारा भी न किया था; उसने वीरता के साथ, आन के साथ और डट कर खुले मैदान में उन विदेशियों के साथ युद्ध किया जिन्होंने उसका देश छीन लिया था; प्रत्येक देश के वीर और सच्चे लोगों को मौलवी अहमदशाह का आदर के साथ स्मरण करना चाहिए।"*

ये शब्द एक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक के हैं। निस्सन्देह संसार के स्वाधीनता के शहीदों में सन् ५७ के मौलवी अहमदशाह का नाम सदा के लिए आदरणीय रहेगा।

---

* "The Moulvi was a very remarkable man . . . of his capacity as a military leader many proofs were given during the revolt, . . . No other man could boast that he had twice foiled Sir Colin Campbell in the field! . . . Thus died the Moulvi Ahmad Shah of Fyazabad. If a patriot is a man who plots and fights for the independence, wrongfully destroyed, of his native country, then most certainly the Moulvi was a true patriot. He had not stained his sword by assassination; he had connived at no murders; he had fought manfully, honourably, and stubbornly in the field against the strangers who had seized his country; and his memory is entitled to the respect of the brave and the true-hearted of all nations."—Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iv, p. 381.

उनञ्चासवाँ अध्याय

लक्ष्मीबाई और तात्या टोपी

झाँसी की लड़ाई

मना के दक्षिण और विन्ध्याचल के उत्तर का समस्त प्रदेश ११ महीने तक विप्लवकारियों के हाथों में रहा, जिसका मुख्य श्रेय महारानी लक्ष्मीबाई को है। सर ह्यू रोज़ के अधीन एक विशाल सेना, जिसमें हैदराबाद, भोपाल तथा अन्य रियासतों की सेनाएँ भी शामिल थीं, तोपों सहित, इस प्रदेश को फिर से विजय करने के लिए भेजी गई।

६ जनवरी सन् १८५८ को सर ह्यू रोज़ मऊ से रवाना हुआ। रायगढ़, सागर, बानापुर, चँदेरी इत्यादि स्थानों को विजय करती हुई यह सेना २० मार्च को झाँसी के निकट पहुँची। झाँसी इस समस्त प्रदेश के विप्लवकारियों का सबसे मुख्य केन्द्र था। नगर के अन्दर बानापुर का राजा मरदानसिंह तथा अन्य अनेक राजा और सरदार रानी की सहायता के लिए मौजूद थे।

रानी लक्ष्मीबाई ने कम्पनी की सेना के पहुँचने से पहले झाँसी के चारों ओर दूर दूर तक के इलाक़े को वीरान करवा दिया था, ताकि शत्रु की सेना को झाँसी पर हमला करते समय रसद इत्यादि न मिल सके। न खेतों में नाज की एक बाल थी, न कहीं पर घास का तिनका था और न साए के लिए कोई वृक्ष था।

किन्तु महाराजा सींधिया ने और टेहरी टीकमगढ़ के राजा ने कम्पनी की सेना के लिए रसद, घास इत्यादि का इतना अच्छा प्रबन्ध कर दिया था कि उस सेना को किसी तरह की कठिनाई न हुई।

अङ्गरेज़ी सेना को बढ़ते देख कर रानी लक्ष्मीबाई ने विप्लवकारियों का सेनापतित्व ग्रहण किया। प्रत्येक मोरचा उसने अपनी उपस्थिति में तैयार कराया और अपने सामने फ़सील के ऊपर तोपें चढ़वाईं। सर ह्यूरोज़ लिखता है कि रानी लक्ष्मीबाई के साथ झाँसी की सैकड़ों और स्त्रियाँ तोपख़ानों और मैगज़ीनों में आती जाती और काम करती दिखाई दे रही थीं।

२४ मार्च को सवेरे सबसे पहले झाँसी की एक तोप ने, जिसका नाम घनगर्ज था, कम्पनी की सेना के ऊपर गोले बरसाने शुरू किए। उसके बाद आठ दिन तक लगातार संग्राम होता रहा।

एक दर्शक, जो उन दिनों झाँसी में मौजूद था, लिखता है—

"२५ तारीख़ से गहरा संग्राम प्रारम्भ हुआ। अङ्गरेज़ों ने सारे दिन और सारी रात गोले बरसाए। रात के समय क़िले और शहर के ऊपर तोपों के गोले डरावने दिखाई देते थे। पचास या तीस सेर का गोला

ऐसा मालूम होता था जैसी एक छोटी सी गेंद, किन्तु अङ्गारे की तरह लाल। × × × २६ तारीख़ के दोपहर को कम्पनी की सेना ने नगर के दक्खिणी फाटक पर इस ज़ोर से गोले बरसाए कि उस ओर की झाँसी की तोपें ठण्डी होगई। किसी को भी वहाँ खड़े रहने की हिम्मत न हो सकी। × × × इस पर पश्चिमी फाटक के तोपची ने अपनी तोप का मुँह उस ओर करके शत्रु के ऊपर गोले बरसाने शुरू किए। तीसरे गोले ने अङ्गरेज़ी सेना के सब से अच्छे तोपची को उड़ा दिया। इस पर अङ्गरेज़ी तोप ठण्डी होगई। रानी लक्ष्मीबाई ने खुश होकर अपनी ओर के तोपची को, जिसका नाम ग़ुलाम ग़ौस ख़ाँ था, कड़ा इनाम में दिया। × × × पाँचवें या छठे दिन चार पाँच घण्टे तक रानी की तोपों ने चमत्कार कर दिखाया। उस दिन अङ्गरेज़ों की ओर असंख्य आदमी मारे गए, और अनेक तोपें ठण्डी होगई। फिर अङ्गरेज़ी तोपें अधिक उत्साह से चलने लगीं, झाँसी की सेना का दिल टूटने लगा और उनकी तोपें ठण्डी होने लगीं। सातवें दिन शाम को शत्रु के गोलों ने नगर के बाईं ओर की दीवार का एक हिस्सा गिरा दिया और उस ओर की तोप ठण्डी हो गई। कोई वहाँ पर खड़ा न रह सकता था। किन्तु रात के समय ११ मिस्त्री कम्बल ओढ़े दीवार तक पहुँचे और सुबह तक उस हिस्से की मरम्मत कर दी। झाँसी की तोप सूर्य निकलने से पूर्व फिर अपना कार्य करने लगी। × × × कम्पनी की ओर इससे बहुत भारी नुक़सान हुआ, यहाँ तक कि उनकी तोपें बहुत देर के लिए निकम्मी हो गईं। आठवें दिन सवेरे कम्पनी की सेना शङ्कर क़िले की ओर बढ़ी। दूरबीनों की सहायता से अङ्गरेज़ों ने क़िले के अन्दर के पानी के चश्मे पर गोले बरसाने शुरू किए। ६-७ आदमी पानी लेने के लिए पहुँचे, जिनमें से चार वहीं पर मर गए, शेष

अपने बरतन छोड़ कर भाग आए। चार घण्टे तक किसी को नहाने धोने तक के लिए पानी न मिल सका। इस पर पश्चिमी और दक्षिणी फाटकों के तोपचियों ने कम्पनी की सेना के ऊपर लगातार गोलेबारी शुरू की और कम्पनी की जो तोपें शङ्कर क़िले पर हमला कर रही थीं उनके मुँह फेर दिए। तब जाकर लोगों को नहाने और पीने के लिए पानी मिल सका। इमली के दरख़्तों के नीचे बारूद का एक कारख़ाना था। × × × एक गोला इस कारख़ाने पर पड़ा जिससे तीस आदमी और ८ स्त्रियां मर गईं। उसी दिन सब से अधिक शोर मचा। उस दिन का संग्राम भीषण था। बन्दूक़ों की आवाज़ दिलों को दहलाती थी, तोपें ज़ोरों के साथ चल रही थीं। जगह जगह तुरही और बिगुल की आवाज़ सुनाई देती थी। आसमान धुएँ और गर्द से भरा हुआ था। शहर फ़सील के ऊपर के कई तोपची और अनेक सिपाही मारे गए। उनकी जगह दूसरे नियुक्त कर दिए गए। रानी लक्ष्मीबाई उस दिन बड़े परिश्रम के साथ कार्य करती रही। वह हर एक चीज़ को ख़ुद देखती थी, आवश्यक आज्ञाएँ जारी करती थी और दीवार में जहाँ कमज़ोरी देखती, तुरन्त मरम्मत कराती। रानी की इस उपस्थिति से सिपाहियों की हिम्मत बेहद बढ़ गई। वे बराबर लड़ते रहे।"*

किन्तु कम्पनी की विशाल सेना और उसके सामान के मुक़ाबले में झाँसी की सेना का अकेले बहुत अधिक देर तक ठहर सकना असम्भव था।

तात्या टोपी अपनी सेना सहित जमना के उत्तर में था। जमना पार कर अब वह चरखारी के राजा के यहाँ पहुँचा।

---

* D. B. Parasnis' *Life of Lakshmibai* (Marathi), pp. 187-93

चरखारी के राजा ने विप्लव में भाग लेने से इनकार कर दिया था। तात्या टोपी ने चरखारी पर हमला किया, राजा से २४ तोपें छीनीं और तीन लाख रुपए युद्ध के खर्च के लिए वसूल किए। इसके बाद तात्या टोपी कालपी पहुँचा। कालपी में उसे रानी लक्ष्मीबाई का एक पत्र मिला जिसमें रानी ने उससे झाँसी की मदद के लिए पहुँचने की प्रार्थना की थी। तात्या टोपी झाँसी की ओर बढ़ा। लिखा है कि तात्या के अधीन काफी विशाल सेना थी। कम्पनी की सेना एक बार सङ्कट में पड़ गई। सामने की ओर रानी लक्ष्मी-बाई और पीछे की ओर तात्या टोपी की सेना। किन्तु कम्पनी की सेना ने इस समय खासी हिम्मत दिखलाई और तात्या की सेना ने मालूम होता है काफी कायरता दिखलाई। १ अप्रेल को अङ्गरेज़ी सेना ने साहस के साथ पीछे मुड़ कर तात्या की सेना पर हमला किया। तात्या के लगभग डेढ़ हज़ार आदमी मारे गए। उसकी तोपें अङ्गरेज़ों के हाथ आईं।

झाँसी की स्थिति अब और भी अधिक निराशाजनक होगई। तथापि रानी लक्ष्मीबाई ने हिम्मत न हारी। ३ अप्रेल को अङ्गरेज़ी सेना ने झाँसी पर अन्तिम बार हमला किया। चारों ओर से एक साथ आक्रमण होने लगा। रानी अपने घोड़े के ऊपर सवार सिपाहियों और अफ़सरों के हौसले बढ़ाती हुई, उनमें ज़ेवर और खिलअत बाँटती हुई, बिजली की तरह इधर से उधर तक फिर रही थी। शत्रु ने पहले नगर के उत्तर की ओर सदर दरवाज़े पर ज़ोर दिया। आठ स्थानों पर सीढ़ियाँ लग गई। रानी की तोपों ने

अपना काम जारी रक्खा। अङ्गरेज अफ़सर डिक और मिचेलजॉन ने सीढ़ियों पर चढ़ कर अपने साथियों को ललकारा, किन्तु तुरन्त दो गोलियों ने इन दोनों बहादुर अङ्गरेजों को वहीं पर ढेर कर दिया। बोनस और फॉक्स ने उनका स्थान लिया, वे दोनों भी मार डाले गए। आठों सीढ़ियाँ टूट कर गिर पड़ीं। इतिहास-लेखक लो लिखता है कि झाँसी की दीवारों से गोलों और गोलियों की बौछार उस दिन अत्यन्त ही भीषण थी, जिसके कारण अङ्गरेजी सेना को पीछे हट जाना पड़ा।

किन्तु जब कि उत्तर की ओर सदर दरवाजे की यह स्थिति थी, कहते हैं कि किसी भारतीय विश्वासघातक की सहायता से कम्पनी की सेना दक्षिणी दरवाजे से नगर में घुस आई। इसके बाद कम्पनी की सेना एक स्थान के बाद दूसरा स्थान विजय करती हुई महल की ओर बढ़ चली।

रानी ने क़िले की फ़सील पर से नगरनिवासियों के संहार और उनकी बरबादी को देखा। वह तुरन्त लगभग एक हजार सिपाहियों सहित अङ्गरेजी सेना की ओर लपकी। दोनों ओर से बन्दूकों को फेंक कर तलवारों की लड़ाई होने लगी। दोनों ओर अनेक जानें गईं। कम्पनी की सेना को कुछ दूर तक फिर पीछे हटना पड़ा। इतने में किसी ने आकर रानी को सूचना दी कि सदर दरवाजे का रक्षक सरदार खुदाबख्श और तोपख़ाने का अफ़सर सरदार ग़ुलाम ग़ौस खाँ, दोनों मारे गए, जिसका अर्थ यह था कि उत्तर की ओर का दरवाजा भी अब शत्रु के लिए

खुल गया। रानी का दिल टूट गया। एक बार उसने क़िले के मैगज़ीन में अपने हाथ से आग लगा कर उसके साथ अपने प्राण दे देने का इरादा किया। किन्तु फिर अधिक सोच समझ कर उसने झाँसी से बाहर कहीं और पहुँच कर विप्लव में सहायता देने का निश्चय किया। झाँसी पर कम्पनी का क़ब्ज़ा हो गया।

रानी लक्ष्मीबाई के अन्तिम प्रयत्न

रानी लक्ष्मीबाई ने उसी दिन रात को सदा के लिए झाँसी छोड़ दी। हथियार बाँधे हुए, मरदाना वेष में और अपने दत्तक पुत्र दामोदर को कमर से कसे हुए वह क़िले की दीवार पर से एक हाथी की पीठ पर कूद पड़ी। वह अपने प्यारे सफ़ेद घोड़े पर सवार हुई। १० या १५ सवार उसने अपने साथ लिए और कालपी की ओर रवाना हुई।

लेफ़्टिनेण्ट बोकर ने कुछ चुने हुए सवार लेकर रानी का पीछा किया। रानी और उसके साथियों ने अपने घोड़ों को सरपट छोड़ दिया। बोकर और उसके सवार बराबर पीछा करते रहे। सुबह होते होते रानी एक क्षण भर के लिए भाण्डेर नामक ग्राम के पास ठहरी। गाँव से दूध लेकर उसने दामोदर को पिलाया। किन्तु अङ्गरेज़ी सैन्यदल बराबर पीछा कर रहा था। रानी तुरन्त अपने साथियों सहित फिर घोड़ों पर चढ़ कर कालपी की ओर बढ़ी। लेफ़्टिनेण्ट बोकर का घोड़ा रानी के घोड़े के पास आ पहुँचा। रानी ने तुरन्त अपनी तलवार खींच ली। रानी लक्ष्मीबाई की तलवार के एक वार में घायल होकर बोकर अपने घोड़े

से गिर पड़ा। रानी के साथ के सवारों और बोकर के साथ के सवारों में तलवार के हाथ होने लगे। अन्त में घायल बोकर और उसके साथी हार कर पीछे रह गए। रानी और उसके साथियों ने फिर अपने घोड़ों को सरपट छोड़ दिया। सुबह से दोपहर हो गया और दोपहर से तीसरा पहर, किन्तु रानी को ठहरने का अवकाश न मिल सका। चलते चलते शाम हो गई, तारे निकल आए, किन्तु फिर भी रानी न रुकी। अन्त में आधी रात के लगभग अपने बच्चे दामोदर को कमर से बाँधे हुए, झाँसी से कालपी तक १०२ मील से ऊपर फ़ासला तय करके रानी लक्ष्मीबाई ने कालपी में प्रवेश किया।

रानी का प्यारा घोड़ा कालपी पहुँचते ही गिर कर मर गया। रानी ने शेष रात कालपी में विश्राम लिया।

सुबह को रानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब के भतीजे रावसाहब और सेनापति तात्या टोपी में परस्पर बातचीत हुई।

जिस प्रकार सर ह्यू रोज़ मऊ से झाँसी की ओर रवाना हुआ था उसी प्रकार जनरल व्हिटलॉक १७ फ़रवरी सन् १८५८ को जबलपुर से सागर इत्यादि फिर से विजय करने के लिए निकला था। व्हिटलॉक के साथ भी काफ़ी गोरी तथा देशी पलटनें थीं। ओरछा का राजा व्हिटलॉक के साथ हो गया। सागर के बाद व्हिटलॉक बाँदा की ओर बढ़ा। बाँदा के नवाब ने अनेक अङ्गरेज़ों को अपने महल में आश्रय दे रक्खा था। उसका व्यवहार उनके साथ अत्यन्त उदार था। किन्तु साथ ही वह अपने प्रान्त के

विप्लवकारियों का एक मुख्य नेता था। शुरू में ही उसने बाँदा से अङ्गरेजी राज्य के चिन्ह उखाड़कर सम्राट बहादुरशाह का हरा झण्डा नगर के ऊपर लगा दिया था।

व्हिटलॉक को आते देख कर नवाब मुक़ाबले के लिए तैयार हो गया। कई लड़ाइयाँ हुईं, अन्त में नवाब की हार रही। विजयी व्हिटलॉक ने १९ अप्रेल को बाँदा में प्रवेश किया। नवाब अपनी कुछ सेना सहित नगर छोड़ कर कालपी की ओर निकल गया। इसके बाद व्हिटलॉक ने किरवी के राव माधोराव पर चढ़ाई की। माधोराव दस वर्ष का बालक था। उसकी नाबालग़ी के दिनों में रियासत का प्रबन्ध कम्पनी के नियुक्त किए हुए एक कारबारी के हाथों में था। किरवी के राव ने विप्लव में किसी प्रकार का भाग न लिया था। व्हिटलॉक के आने का समाचार सुन कर वह स्वागत के लिए आगे बढ़ा। व्हिटलॉक और उसकी सेना ने नगर में प्रवेश किया। तुरन्त बालक माधोराव को क़ैद कर लिया गया, महल को गिरा दिया गया, राजधानी को लूट लिया गया और रियासत को कम्पनी के राज्य में मिला लिया गया। इस घटना के विषय में इतिहास-लेखक मालेसन लिखता है—

"व्हिटलॉक की सेना के ऊपर किसी ने एक गोली भी न चलाई थी, तथापि व्हिटलॉक ने इरादा कर लिया कि बालक राव के साथ इस प्रकार का व्यवहार किया जाय जैसा किसी ऐसे मनुष्य के साथ किया जाता है जो अङ्गरेज़ी सेना के विरुद्ध लड़ा हो। इस बेईमानी का कारण यह था कि किरवी के महल में इस तरह का सामान भरा हुआ था जिससे सिपाहियों

को अनेक कठिन संग्रामों और गरमी की कष्टकर यात्राओं के लिए इनाम दिए जा सकते थे। किरवी के महल के तहख़ानों और ख़ज़ानों में सोना, चाँदी, जवाहरात और क़ीमती हीरे भरे हुए थे। × × × व्हिटलॉक को इस धन का लोभ था।"*

इसके बाद व्हिटलॉक महोबा पहुँचा। वहाँ से उसने सेना भेज कर आस पास के विप्लवकारियों को दमन करना शुरू किया।

रानी लक्ष्मीबाई, रावसाहब, तात्याटोपी, बाँदा का नवाब, शाहगढ़ और बानापुर के राजा तथा अन्य अनेक विप्लवकारी नेता उस समय अपनी अपनी सेना सहित काल्पी में मौजूद थे। इस विशाल सैन्यदल के लिए शत्रु पर विजय प्राप्त कर सकना अधिक कठिन न होता। किन्तु इन विप्लवकारियों में कोई एक व्यक्ति ऐसा न था जो शेष सब को अपनी आज्ञा के अधीन कर सके। रानी सब से योग्य थी, किन्तु वह स्त्री थी और उसकी आयु केवल २२ वर्ष की थी। तात्या टोपी वीर तथा दक्ष सेनापति था, किन्तु वह एक साधारण घराने में उत्पन्न हुआ था। प्राचीन खानदानी नरेशों का एक स्त्री के

---

* "Not a shot had been fired against him (Whitlock), but he resolved never the less to treat the young Rao as though he had actually opposed the British forces. The reason for this perversion of honest dealing lay in the fact that in the palace of Kirwi was stored the where-withall to compensate soldiers for many a hard fight and many a broiling sun. In its vaults and strong rooms were specie, jewels, and diamonds of priceless value . . . The wealth was coveted."—Kaye and Malleson's *Indian Mutiny* vol. v, p. 140-41.

अथवा साधारण कुल में पैदा हुए मनुष्य के आज्ञाधीन काम करना उस समय तक इतना सरल न था। ठीक यही दोष दिल्ली के पतन का भी मुख्य कारण रह चुका था। तथापि रानी लक्ष्मीबाई कुछ सेना लेकर कालपी से ४२ मील दूर कच्छगाँव पहुँची। कच्छगाँव में फिर सर ह्यू रोज़ की सेना से लक्ष्मीबाई की सेना का आमना सामना हुआ। नेताओं में मतभेद और अव्यवस्था बनी रही। किसी ने रानी को यथेच्छ सहायता न दी। परिणाम यह हुआ कि कच्छगाँव में फिर विप्लवकारियों की हार रही। इतिहास-लेखक मालेसन ने बड़ी प्रशंसा के साथ लिखा है कि पराजय के बाद विप्लवी सेना आश्चर्यजनक व्यवस्था के साथ कालपी की ओर लौट आई।* किन्तु प्रतीत होता है यह व्यवस्था उनमें पराजय के बाद पैदा हुई।

सर ह्यू रोज़ ने अब कालपी पर हमला किया। लक्ष्मीबाई ने अपनी पराजित सेना को फिर से प्रोत्साहित किया। वह अपने सवारों सहित स्वयं सर ह्यू रोज़ के मुक़ाबले के लिए आगे बढ़ी। खूब घमासान संग्राम हुआ। एक बार अङ्गरेज़ी सेना के दाहिने भाग को पीछे हट जाना पड़ा। कम्पनी के तोपची अपनी तोपें छोड़ कर भाग गए। लक्ष्मीबाई अपने घोड़े पर सब से आगे थी। इसके बाद स्वयं सर ह्यू रोज़ बाँईं ओर से मुड़ कर लक्ष्मीबाई के मुक़ाबले के लिए बढ़ा। अन्त में मैदान सर ह्यू रोज़ के हाथों रहा। २४ मई को कम्पनी की सेना ने कालपी में प्रवेश किया। कालपी के क़िले में अङ्गरेज़ों को लगभग ७०० मन बारूद और असंख्य

---

* Malleson's *Indian Mutiny*, vol. v, p. 124.

अस्त्र शस्त्र तथा अन्य सामान हाथ आया। रानी लक्ष्मीबाई, रावसाहब और बाँदे के नवाब और थोड़ी सी सेना सहित, कालपी छोड़ कर निकल गईं।

निस्सन्देह सर ह्यू रोज़, जो इस समय तक लगभग एक हज़ार मील की कठिन यात्रा कर, पहाड़ों, जङ्गलों और नदियों को पार कर, बड़ी बड़ी सेनाओं पर विजय प्राप्त कर चुका था और लगभग नरवदा से जमना तक का प्रदेश कम्पनी के लिए फिर से विजय कर चुका था, कम्पनी के अत्यन्त योग्य तथा वीर सेनापतियों में से था।

विप्लवकारियों के पास अब न सामान था, न कोई ढङ्ग की सेना और न कोई क़िला। तथापि लक्ष्मीबाई और तात्याटोपी ने हिम्मत न हारी। तात्याटोपी गुप्त रीति से कालपी से निकल कर ग्वालियर पहुँचा। ग्वालियर में उसने महाराजा सींधिया की सेना तथा प्रजा को अपनी ओर किया। इस नई सेना को साथ लेकर वह फिर पीछे मुड़ा। गोपालपुर में तात्याटोपी, लक्ष्मीबाई, बाँदा के नवाब और रावसाहब की फिर भेंट हुई। लक्ष्मीबाई ने अब रावसाहब को सब से पहले ग्वालियर विजय करने की सलाह दी, ताकि विप्लवकारियों का फिर से एक नया केन्द्र बन सके। २८ मई सन् १८५८ को सब विप्लवकारी नेता ग्वालियर के सामने पहुँच गए। महाराजा सींधिया के पास निम्नलिखित पत्र भेजा गया—

"हम लोग आपके पास मित्र-भाव से आ रहे हैं। आप हमारे (पेशवा के) और अपने पूर्व सम्बन्ध को स्मरण कीजिए। हमें आपसे सहायता की आशा है, ताकि हम दक्षिण की ओर बढ़ सकें, इत्यादि।"

जयाजीराव सींधिया इन लोगों की ओर मित्रता दर्शाने के स्थान पर १ जून सन् १८५८ को अपनी सेना और तोपों सहित उनके मुक़ाबले के लिए निकला। सींधिया के इरादे को देख कर रानी लक्ष्मीबाई तीन सौ सवारों सहित सींधिया की तोपों पर टूट पड़ी। किन्तु सींधिया की अधिकांश सेना पहले ही तात्या को वचन दे चुकी थी। ये लोग तुरन्त अपने अफ़सरों सहित विप्लवकारियों की ओर आ मिले। ग्वालियर की तोपें ठण्डी हो गईं। जयाजीराव और उसके मन्त्री दिनकरराव को मैदान छोड़ कर आगरे की ओर भाग जाना पड़ा। ग्वालियर की प्रजा ने हर्ष और उल्लास के साथ विजयी विप्लवकारियों का स्वागत किया।

ग्वालियर की सेना ने पेशवा नाना साहब के प्रतिनिधि राव-साहब को पेशवा मान कर तोपों की सलामी दी। सींधिया के अर्थसचिव अमरचन्द भाटिया ने सींधिया का सारा ख़ज़ाना विप्लवकारी नेताओं के हवाले कर दिया।

३ जून सन् १८५८ को फूलबाग़ में एक बहुत बड़ा दरबार हुआ। तमाम सामन्तों, सरदारों और अमीरों ने अपना अपना स्थान ग्रहण किया। अरब, रुहेला, राजपूत और मराठा पलटनें अपनी वर्दियाँ पहने दरबार में जमा होगईं। पेशवा का शिरपना और कलग़ी तुर्रा रावसाहब के सिर पर रक्खा गया। समस्त दरबार ने रावसाहब को पेशवा स्वीकार किया। पेशवा के मन्त्री नियुक्त कर दिए गए। तात्याटोपी प्रधान सेनापति नियुक्त हुआ। बीस लाख रुपए सेना में तक़सीम कर दिए गए। अन्त में तोपों की सलामी हुई।

इस प्रकार तात्या और लक्ष्मीबाई ने दिल्ली, कानपुर, और लखनऊ के स्थान पर सन् ५७-५८ के विप्लवकारियों को एक नया और ज़बरदस्त केन्द्र प्रदान कर दिया। तात्या और लक्ष्मीबाई की इस कारवाई को वर्णन करते हुए इतिहास-लेखक मालेसन लिखता है—

"इस प्रकार जो बात असम्भव मालूम होती थी वह होगई। × × × सर ह्यू रोज़ समझ गया कि,—अब देर करने से कितनी ज़बरदस्त हानि असन्दिग्ध है। यदि ग्वालियर तुरन्त विप्लवकारियों के हाथों से न छीन लिया गया तो कोई यह पहले से नहीं कह सकता कि नतीजा कितना अधिक बुरा हो सकता है। यदि विद्रोहियों को अवकाश मिल गया तो तात्याटोपी, जिसका राजनैतिक और सैनिक बल ग्वालियर पर क़ब्ज़ा हो जाने के कारण बेहद बढ़ गया है और जिसके पास इस समय ग्वालियर के समस्त जन, वहाँ का धन और सामान मौजूद हैं, कालपी की पराजित सेना के अवशेषों पर एक नई सेना खड़ी कर लेगा और समस्त भारत के अन्दर एक मराठा विप्लव पैदा कर देगा। तात्याटोपी इस काम में बड़ा चतुर था। ऐसी हालत में सम्भव है कि वह पेशवा का झण्डा फहरा कर दक्षिण महाराष्ट्र के ज़िलों को भड़का दे। उन ज़िलों में अङ्गरेज़ी सेना बाक़ी नहीं है। यदि मध्य भारत में विप्लवकारियों को ख़ासी सफलता मिल गई तो सम्भव है कि दक्षिण के लोग फिर से पेशवा की उस सत्ता के लिए खड़े हो जायँ, जिसके लिए उनके पूर्वज युद्ध कर चुके थे और अपना रक्त बहा चुके थे।"*

---

* Ibid, vol. v, p. 149-50

लक्ष्मीबाई ने अब इस बात पर ज़ोर दिया कि और सब काम छोड़ कर सेना को तुरन्त सन्नद्ध कर मैदान में लाया जाय। रावसाहब तथा अन्य नेताओं ने रानी की इस सलाह की अवहेलना की। अमूल्य समय दावतों और उत्सवों में नष्ट किया गया। इतने में सर ह्यू रोज़ अपनी सेना सहित वेग के साथ ग्वालियर पर टूट पड़ा। सर ह्यू रोज़ ने महाराजा सींधिया को अपने साथ रक्खा और एलान किया कि कम्पनी की सेना केवल सींधिया को ग्वालियर की गद्दी पर फिर से स्थापित करने के लिए आई है।

तात्याटोपी मुक़ाबले के लिए आगे बढ़ा। ग्वालियर की सेना इससे पहले उत्तरी भारत में एक बार कम्पनी की सेना से हार खा चुकी थी। थोड़ी देर के संग्राम के बाद ही ग्वालियर की सेना में उथल पुथल मच गई। रावसाहब घबरा गया। लक्ष्मी-बाई ने फिर एक बार बिखरी हुई सेना में नई जान फूँकी। उसने फिर से सेना की व्यूह-रचना की और नगर के पूर्वीय फाटक की रक्षा का भार स्वयं अपने ऊपर लिया।

लक्ष्मीबाई के साथ उसकी दो सहेलियाँ मन्दरा और काशी घोड़ों पर सवार वीरता के साथ शस्त्र चला रही थीं। प्रसिद्ध सेनापति जनरल स्मिथ अब लक्ष्मीबाई के मुक़ाबले के लिए बढ़ा। कई बार स्मिथ की सेना ने पूर्वीय फाटक पर हमला किया, किन्तु हर बार उसे हार कर पीछे हट जाना पड़ा। कई बार रानी लक्ष्मीबाई ने फाटक से निकल कर बाहर की सेना पर हमला किया

लक्ष्मीबाई ने अब इस बात पर ज़ोर दिया कि और सब काम छोड़ कर सेना को तुरन्त सन्नद्ध कर मैदान में लाया जाय। रावसाहब तथा अन्य नेताओं ने रानी की इस सलाह की अवहेलना की। अमूल्य समय दावतों और उत्सवों में नष्ट किया गया। इतने में सर ह्यू रोज़ अपनी सेना सहित वेग के साथ ग्वालियर पर टूट पड़ा। सर ह्यू रोज़ ने महाराजा सींधिया को अपने साथ रक्खा और एलान किया कि कम्पनी की सेना केवल सींधिया को ग्वालियर की गद्दी पर फिर से स्थापित करने के लिए आई है।

तात्याटोपी मुक़ाबले के लिए आगे बढ़ा। ग्वालियर की सेना इससे पहले उत्तरी भारत में एक बार कम्पनी की सेना से हार खा चुकी थी। थोड़ी देर के संग्राम के बाद ही ग्वालियर की सेना में उथल पुथल मच गई। रावसाहब घबरा गया। लक्ष्मी-बाई ने फिर एक बार बिखरी हुई सेना में नई जान फूँकी। उसने फिर से सेना की व्यूह-रचना की और नगर के पूर्वीय फाटक की रक्षा का भार स्वयं अपने ऊपर लिया।

लक्ष्मीबाई के साथ उसकी दो सहेलियाँ मन्दरा और काशी घोड़ों पर सवार वीरता के साथ शस्त्र चला रही थीं। प्रसिद्ध सेनापति जनरल स्मिथ अब लक्ष्मीबाई के मुक़ाबले के लिए बढ़ा। कई बार स्मिथ की सेना ने पूर्वीय फाटक पर हमला किया, किन्तु हर बार उसे हार कर पीछे हट जाना पड़ा। कई बार रानी लक्ष्मीबाई ने फाटक से निकल कर बाहर की सेना पर हमला किया

और अनेक शत्रुओं को मैदान में समाप्त कर फिर अपने फाटक को आ सँभाला। लिखा है कि रानी लक्ष्मीबाई उस दिन सुबह से शाम तक घोड़े पर सवार बिजली की तरह इधर से उधर जाती हुई दिखाई देती रही। अन्त में जनरल स्मिथ को उस ओर का प्रयत्न छोड़ कर पीछे हट जाना पड़ा। १७ जून सन् १८५८ का मैदान रानी लक्ष्मीबाई के हाथों रहा।

१८ जून को जनरल स्मिथ और अधिक सेना लेकर फिर उसी फाटक पर पहुँचा। उस दिन अङ्गरेजी सेना ने कई ओर से ग्वालियर के क़िले पर हमला किया। जनरल स्मिथ के साथ सेनापति सर ह्यू रोज़ भी उस दिन रानी लक्ष्मीबाई के मुक़ाबले के लिए पूर्वीय फाटक के सामने दिखाई दिया। बहुत सवेरे, जब कि लक्ष्मीबाई अभी अपनी दोनों सहेलियों सहित शरबत पी रही थी, ख़बर मिली कि कम्पनी की सेना बढ़ी चली आ रही है। तुरन्त शरबत का कटोरा फेंक कर रानी अपनी सहेलियों सहित आगे बढ़ी। लक्ष्मीबाई उस दिन मरदाना वेष में थी। एक अङ्गरेज़ दर्शक लिखता है—

"तुरन्त सुन्दर रानी मैदान में पहुँच गई। सर ह्यू रोज़ की सेना के मुक़ाबले में उसने दृढ़ता के साथ अपनी सेना को खड़ा किया। बार बार उसने प्रचण्ड वेग के साथ सर ह्यू रोज़ की सेना पर हमला किया। रानी का दल कई स्थानों पर शत्रु के गोलों से बिंध गया। उसके सैनिकों की संख्या निरन्तर कम होती चली गई। तथापि रानी सदा सबके आगे दिखाई देती थी। वह बार बार अपनी बिखरी हुई सेना को जमा करती रही और पद पद पर अलौकिक वीरता का परिचय देती रही। किन्तु इस

सब से भी काम न चला। स्वयं सर ह्यू रोज़ ने अपने साँढनीं सवारों सहित आगे बढ़ कर रानी लक्ष्मीबाई की अन्तिम व्यूह-रचना को तोड़ डाला। इस पर भी वीर और निर्भीक रानी अपने स्थान पर डटी रही।"

जब कि रानी लक्ष्मीबाई इस 'अलौकिक वीरता' के साथ सर ह्यू रोज़ का मुक़ाबला कर रही थी, शेष अङ्गरेज़ी सेना अन्य विप्लव-कारी दलों को चीरती हुई पीछे की ओर से रानी पर आ टूटी। लक्ष्मीबाई अब दोनों ओर से घिर गई।

ग्वालियर की तोपें ठण्डी हो गईं। मुख्य सेना तितर बितर हो गई। विजयी अङ्गरेज़ सेना चारों ओर से रानी के अधिकाधिक निकट बढ़ी आ रही थी। रानी के पास केवल उसकी दोनों सहेलियाँ और १५ या २० सवार बाक़ी रह गए। रानी ने अपने घोड़े को सरपट छोड़ा और शत्रु को चीरते हुए दूसरी ओर की विप्लव-कारी सेना से जाकर मिलना चाहा। अङ्गरेज़ सवारों ने उसका पीछा किया। रानी अपनी तलवार से मार्ग काटती हुई आगे बढ़ी। अचानक एक गोली उसकी सहेली मन्दरा के आकर लगी। मन्दरा घोड़े से गिर कर समाप्त हो गई। रानी ने तुरन्त मुड़ कर अपनी तलवार से उस गोरे सवार पर वार किया, जिसकी गोली ने मन्दरा को समाप्त किया था। सवार कट कर गिर पड़ा। रानी फिर आगे बढ़ी। सामने एक छोटा सा नाला था। एक छलाँग के बाद अङ्गरेज़ सवारों का रानी लक्ष्मीबाई को छू सकना असम्भव हो जाता, किन्तु दुर्भाग्यवश रानी का घोड़ा नया था। पिछले संग्रामों के अन्दर उसके कई प्यारे घोड़े उसके नीचे समाप्त हो चुके थे। घोड़ा

वजाय छलाँग मारने के नाले के इस पार चक्कर खाने लगा। अङ्गरेज़ सवार अब और अधिक निकट आ पहुँचे। रानी चारों ओर से घिर गई।

रानी उस समय विलकुल अकेली रह गई। उसने अकेले ही उन सब का अपनी तलवार से मुक़ावला किया। एक सवार ने पीछे से आकर रानी के सिर पर वार किया। सिर का दाहिना भाग अलग हो गया। दाहिनी आँख भी निकल कर वाहर आगई, फिर भी लक्ष्मीवाई घोड़े पर डटी हुई अपनी तलवार चलाती रही। इतने में एक वार रानी की छाती पर हुआ। सर और छाती दोनों से खून का फ़व्वारा छूटने लगा। वेहोश होते होते रानी ने अपनी तलवार से उस गोरे सवार को, जिसने सामने से रानी पर वार किया था, काट कर गिरा दिया! किन्तु इसके वाद लक्ष्मीवाई की भुजा में और अधिक शक्ति न रह गई।

लक्ष्मीवाई का एक वफ़ादार नौकर रामचन्द्रराव देशमुख उस समय पास था। घटनास्थल के निकट गङ्गादास वावा की कुटिया थी। रामचन्द्रराव रानी को उठा कर उस कुटिया में ले गया। गङ्गादास वावा ने रानी को पीने के लिए ठण्डा पानी दिया और उसे अपनी कुटिया में लिटा दिया।

चन्द मिनट के अन्दर ही रानी लक्ष्मीवाई का शरीर ठण्डा पड़ गया। रामचन्द्रराव ने रानी की अन्तिम इच्छा के अनुसार शत्रु से छिपा कर घास की एक छोटी सी चिता वनाई और उस पर रानी लक्ष्मीवाई के मृत शरीर को लिटा दिया। थोड़ी देर के

अन्दर आग की लपटों में लक्ष्मीबाई के शरीर की केवल अस्थियाँ शेष रह गईं।

निस्सन्देह महारानी लक्ष्मीबाई का समस्त व्यक्तिगत जीवन जितना पवित्र तथा निष्कलङ्क था उसकी मृत्यु भी उतनी ही वीरोचित थी। संसार के इतिहास में कदाचित् विरले ही उदाहरण इस तरह की स्त्रियों के मिलेंगे जिन्होंने इतनी छोटी आयु में इस प्रकार शुद्ध जीवन व्यतीत करने के बाद लक्ष्मीबाई की सी अलौकिक वीरता और असाधारण युद्ध-कौशल के साथ किसी भी देश की स्वाधीनता के लिए युद्ध किया हो अथवा इस प्रकार अपने आदर्शों के लिए लड़ते लड़ते युद्धक्षेत्र में प्राण दिए हों।

इतिहास-लेखक विन्सेण्ट स्मिथ ने, जो भारतीय आदर्शों अथवा भारतवासियों के मानव अधिकारों का अधिक पक्षपाती नहीं है, महारानी लक्ष्मीबाई को "विप्लव के नेताओं में सब से अधिक योग्य नेता"* स्वीकार किया है।

दक्षिण में विप्लव की चिनगारियाँ

सन् ५७ के विप्लव का मुख्य क्षेत्र उत्तरीय भारत था। यदि विन्ध्याचल से दक्षिण का भाग विप्लव का उसी प्रकार साथ दे जाता जिस प्रकार उत्तर का, तो मद्रास और बम्बई की सेनाओं का उत्तर की ओर जाकर बिहार, बनारस, इलाहाबाद, अवध और रुहेलखण्ड को फिर से विजय कर सकना असम्भव होता और विप्लव का

* ". . . the ablest of the rebel leader's,"—*The Oxford Student's History of India*, by Vincent. A. Smith, p. 328.,

अन्तिम परिणाम बिलकुल दूसरा ही होता। दक्षिण में विप्लव के प्रचारक पहुँच चुके थे, अनेक स्थानों पर विप्लव हुआ भी, किन्तु यह सब इतना कुसमय और इतने अव्यवस्थित ढङ्ग से हुआ कि अङ्गरेज़ों के लिए उसे दमन करना अत्यन्त सरल हो गया, और विप्लवकारियों को उससे विशेष लाभ न पहुँच सका।

लन्दन के अन्दर रङ्गो बापूजी और अज़ीमुल्ला ख़ाँ की भेंट का ज़िक्र एक पिछले अध्याय में किया जा चुका है। सतारा में बैठ कर रङ्गो बापूजी नाना साहब के साथ पत्र व्यवहार करता रहा और दक्षिण के अनेक सरदारों और नरेशों को विप्लव की ओर करने के प्रयत्न करता रहा। ३१ जुलाई सन् १८५७ को कोल्हापुर की देशी पलटन बिगड़ी। सिपाहियों ने अपने कुछ अङ्गरेज़ अफ़सरों को मार डाला और खज़ाने पर क़ब्ज़ा कर लिया। किन्तु चन्द महीने के अन्दर ही अङ्गरेज़ों ने वहाँ के विद्रोह को दमन कर दिया। १५ दिसम्बर को महाराजा के छोटे भाई चिमना साहब की मदद से कोल्हापुर के नगर में फिर विप्लव शुरू होगया। नगर के फाटक बन्द कर दिए गए, फ़सील पर तोपें चढ़ा दी गईं, और स्वाधीनता का ढिंढोरा पिटवा दिया गया। अङ्गरेज़ी सेना पहुँची। ख़ासा घमासान संग्राम हुआ। किन्तु विजय अङ्गरेज़ों की रही। विजय के बाद अनेक लोग तोपों के मुँह से उड़ा दिए गए।

अगस्त सन् ५७ में बेलगाँव की देशी पलटन में विप्लव के लक्षण दिखाई दिए। नेताओं को तोप के मुँह से उड़ा दिया गया। बेलगाँव और धारवाड़ को शान्त कर दिया गया।

रङ्गो बापूजी का एक बेटा फाँसी पर लटका दिया गया। सतारा राजकुल के दो व्यक्तियों को निर्वासित कर दिया गया। रङ्गो बापूजी सतारा से भाग गया। उसके पकड़ने के लिए बड़े बड़े इनामों का एलान किया गया। किन्तु उसका पता न चला।

बम्बई की कुछ देशी पलटनों ने निश्चय कर रक्खा था कि पहले बम्बई शहर में विप्लव प्रारम्भ किया जाय, फिर पूना जाकर पूना पर क़ब्ज़ा कर लिया जाय और नाना साहब को पेशवा एलान कर दिया जाय।* बम्बई के सिपाही अभी सलाहें ही कर रहे थे कि अंग्रेज़ों को पता चल गया। कुछ को फाँसी दे दी गई, कुछ को देश निकाला, और मामला ठण्डा होगया।

नागपुर के निकट के कुछ देशी सिपाहियों ने १३ जून सन् ५७ अपने लिए नियत कर रक्खी थी। कई बड़े बड़े नागरिक भी इस सलाह में शामिल थे। किन्तु मद्रास की देशी पलटनों ने समय से पहले पहुँच कर नागपुर को ठीक कर लिया।

जबलपुर प्रान्त का गोंड राजा शङ्करसिंह और उसका पुत्र विप्लव के सच्चे भक्त थे। उन्होंने जबलपुर की ५२ नम्बर देशी पलटन को अपनी ओर कर लिया। अङ्गरेज़ों को पता चल गया। १८ सितम्बर सन् ५७ को राजा शङ्करसिंह और उसके बेटे को तोप के मुँह से उड़ा दिया गया। इस पर ५२ नम्बर पलटन बिगड़ी। एक अङ्गरेज़ मार डाला गया। ५२ नम्बर पलटन के कुछ सिपाहियों ने अन्य स्थानों पर जाकर विप्लव में भाग लिया।

---

* Forrest's *Real Danger in India,*

दिल्ली के शहज़ादे फ़ीरोज़शाह ने रियासत धार में, महीदपुर में, गोरिया में तथा अन्य स्थानों में विप्लव की योजनाएँ कीं। किन्तु अधिक सफलता न हो सकी।

दक्षिण में हैदराबाद एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। एक अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक लिखता है—"तीन महीने तक हिन्दोस्तान की क़िस्मत निज़ाम अफ़ज़लुद्दौला और उसके वज़ीर सर सालारजङ्ग के हाथों में थी।" निस्सन्देह यदि हैदराबाद का निज़ाम विप्लवकारियों का साथ दे जाता तो समस्त दक्षिणी भारत में भयङ्कर आग लग जाती। जून और जुलाई सन् ५७ में हैदराबाद के नगरनिवासियों के अन्दर विप्लव की ओर बेहद जोश दिखाई दिया। बड़े बड़े मौलवियों ने अङ्गरेज़ों के विरुद्ध फ़तवे निकाले, विप्लव के पक्ष में हज़ारों पत्रिकाएँ बाँटी गईं, मसजिदों में बड़ी बड़ी सभाएँ हुईं, कुछ मुसलमान सिपाही भी बिगड़े, किन्तु निज़ाम और उसके वज़ीर ने अङ्गरेज़ों का सच्चा साथ दिया, विप्लवी नेताओं को पकड़ कर उनके हवाले कर दिया, स्वयं कम्पनी की सेना की मदद से विद्रोही सिपाहियों को कटवा डाला और हैदराबाद को बचाए रक्खा।

हैदराबाद ही के निकट एक छोटी सी रियासत ज़ोरापुर की थी। ज़ोरापुर का राजा छोटी उम्र का और विप्लव के पक्ष में था। अङ्गरेज़ों से लड़ने के लिए उसने अरब और रुहेले पठानों की एक सेना जमा कर ली। फ़रवरी सन् ५८ में वह हैदराबाद आया। सर सालारजङ्ग ने उसे गिरफ़्तार करा कर अङ्गरेज़ों के हवाले कर

दिया। गिरफ़्तारी के बाद इस बालक राजा का व्यवहार अत्यन्त प्रशंसनीय और वीरोचित था। एक अङ्गरेज़ अफ़सर मीडोज़ टेलर के साथ वह बड़ा मेल जोल रखता था, और उसे "अप्पा" कहा करता था। जेलख़ाने में मीडोज़ टेलर उससे मिलने गया। राजा पूर्ववत् बड़े आदर से मिला। मीडोज़ टेलर ने उससे अन्य विप्लव-कारी नेताओं के नाम पूछे। इस पर टेलर लिखता है,—"राजा ने बड़े गर्व के साथ अकड़ कर उत्तर दिया—'नहीं अप्पा, मैं यह कभी नहीं बताऊँगा! आप मुझे सलाह देते हैं कि मैं रेज़िडेण्ट से जाकर मिलूँ, किन्तु मैं यह नहीं करूँगा। शायद उसे यह आशा होगी कि मैं अपने प्राणों की भिक्षा माँगूँगा, किन्तु अप्पा! मैं दूसरे की भिक्षा पर कायर की तरह जीना नहीं चाहता, और न मैं कभी अपने देशवासियों के नाम प्रकट करूँगा!"

मीडोज़ टेलर एक दिन फिर राजा के पास गया। उसने बालक राजा से कहा कि यदि तुम दूसरों के नाम बता दोगे तो तुम्हें क्षमा कर दिया जायगा। राजा ने उत्तर दिया,—"× × × क्या? जब कि मैं मौत के मुँह में जाने को तैयार हूँ, क्या मैं विश्वासघात करके अपने देशवासियों के नाम प्रकट करूँगा? नहीं, नहीं! तोप, फाँसी, कालापानी—इनमें से कोई भी इतना भयङ्कर नहीं है जितना विश्वासघात!"

टेलर ने राजा को सूचना दी कि तुम्हें प्राणदण्ड दिया जायगा। राजा ने उत्तर दिया,—"किन्तु अप्पा, मुझे एक प्रार्थना करनी है; मुझे फाँसी न देना, मैं चोर नहीं हूँ। मुझे तोप के मुँह से उड़ाना।

फिर देखना कि मैं कितनी शान्ति के साथ तोप के मुँह पर खड़ा रह सकता हूँ !"

टेलर के कहने सुनने से राजा को प्राणदण्ड के स्थान पर कालेपानी की सज़ा दी गई। जब उसे कालेपानी ले जा रहे थे, राजा ने अपने किसी अङ्गरेज़ पहरेदार से खेल खेल में पिस्तौल ले ली और अवसर पाकर अपने ऊपर गोली दाग दी। इससे पहले उसने एक दिन कहा था—"मैं कालेपानी से मौत को पसन्द करता हूँ ! क़ैद और कालापानी ? मेरी प्रजा में से तुच्छ से तुच्छ पहाड़ी भी जेल में रहना पसन्द न करेगा—फिर मैं तो उनका राजा हूँ !"

इस वीर बालक राजा का वृत्तान्त और उसके शब्द हमने मीडोज़ टेलर की अङ्गरेज़ी पुस्तक "स्टोरी ऑफ़ माई लाइफ़" से दिए हैं।

ज़ोरापुर के राजा का एक साथी नारगुण्ड का राजा भास्कर-राव बाबासाहब था। बाबासाहब की रानी बड़ी वीर और अङ्गरेज़ों की जानी दुशमन थी। लिखा है कि बहुत दिनों तक सोचने विचारने के बाद रानी ही के कहने पर २५ मई सन् १८५८ को बाबासाहब ने अङ्गरेज़ों के विरुद्ध युद्ध का एलान कर दिया। मॉनसन के अधीन कम्पनी की एक सेना नारगुण्ड की ओर बढ़ी। बाबासाहब ने अपने कुछ सिपाहियों सहित जाकर मॉनसन को रात के समय नारगुण्ड के निकट जङ्गल में जा घेरा। संग्राम हुआ। मॉनसन मार डाला गया। उसका सर काट कर शेष धड़ जला दिया गया। कम्पनी की सेना हार कर भाग गई। अगले

दिन मॉनसन का कटा हुआ सिर नारगुण्ड की फ़सील पर लटका दिया गया। इसके बाद बाबासाहब का एक सौतेला भाई अङ्गरेज़ों से मिल गया। अङ्गरेज़ी सेना ने नारगुण्ड पर फिर हमला किया। बाबासाहब की सेना हार गई। बाबासाहब स्वयं बच कर निकल गया। कुछ दिनों बाद बाबासाहब गिरफ़्तार कर लिया गया, और १२ जून सन् १८५८ को उसे फाँसी पर लटका दिया गया। उसकी रानी और माता दोनों ने मालप्रभा नदी में कूद कर आत्महत्या कर ली।

कोमलदुग के भीमराव ने और खानदेश के भीलों और उनकी स्त्रियों ने तीर कमान लेकर अङ्गरेज़ों से युद्ध किया। किन्तु ये सब प्रयत्न अधिकतर समय निकल जाने के बाद हुए और आसानी से दमन कर दिए गए।

रङ्गून और बरमा में भी थोड़ा सा विप्लव हुआ, किन्तु कुसमय।

अवध में नए सिरे से विप्लव की आग

अब हम फिर विप्लव के सब से महान क्षेत्र अवध की ओर आते हैं। मौलवी अहमदशाह की हत्या से पहले लॉर्ड कैनिङ्ग ने अवध में यह एलान करवा दिया कि जो लोग हथियार रख देंगे उन्हें क्षमा कर दिया जायगा और उनकी जागीरें आदिक वापस दे दी जायँगी। किन्तु इसका विशेष असर दिखाई न दिया। इसके बाद ५ जून सन् ५८ को अहमदशाह की हत्या हुई। अवध निवासियों का क्रोध फिर एक बार ज़ोरों से भड़क उठा। निज़ामअली ख़ाँ ने पीलीभीत पर हमला कर दिया। ख़ानबहादुर ख़ाँ चार हज़ार

सेना जमा करके फिर मैदान में उतर आया। फ़र्रुख़ाबाद में पाँच हज़ार सिपाही नए सिरे से विप्लव के लिए जमा होगए। नाना साहब, बाला साहब, विलायतशाह और अली ख़ाँ मेवाती के अधीन हज़ारों सिपाही आ आ कर जमा होने लगे। घागरा नदी के किनारे चौक घाट में बेगम हज़रतमहल और सरदार मामूँ ख़ाँ की सेना थी। शहज़ादा फ़ीरोज़शाह भी इस समय अवध में था। इनके अतिरिक्त रुइया का राजा नरपतसिंह, राजा रामबख़्श, बहुनाथ सिंह, चन्दासिंह, गुलाबसिंह, भूपालसिंह, हनुमन्तसिंह इत्यादि अनेक बड़े बड़े ज़मींदार अपने अपने सैन्यदल लेकर अवध को फिर से अङ्गरेज़ों के हाथों से छीनने के प्रयत्नों में लग गए। बूढ़े राजा बेनीमाधव ने फिर से लखनऊ पर चढ़ाई करने की तैयारी शुरू की।

अङ्गरेज़ यह सुन कर चकित रह गए कि १३ महीने तक विप्लव जारी रहने और ६ महीने से ऊपर लखनऊ में रक्त की नदियाँ बहने के बाद फिर कोई वीर लखनऊ पर हमला करने का साहस कर रहा है! विप्लवकारियों की सेना इस बार लखनऊ के निकट नवाबगञ्ज में जमा हुई। १३ जून सन् १८५८ को सेनापति होप ग्राण्ट के अधीन कम्पनी की सेना ने, जिसमें कई हिन्दोस्तानी पलटनें शामिल थीं, अचानक इन लोगों पर हमला किया। उस दिन के संग्राम का वृत्तान्त हम सेनापति होप ग्राण्ट ही के शब्दों में देना चाहते हैं। वह लिखता है—

"हम लोगों पर उनके हमले असफल रहे, किन्तु वे हमले अत्यन्त

ज़ोरदार थे, और हमें उनका मुक़ाबला करने के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ा। अनेक सुन्दर और साहसी ज़मींदारों ने दो तोपें खुले मैदान में लाकर पीछे की ओर से हम पर हमला किया। मैंने हिन्दोस्तान में बहुत से संग्राम देखे हैं और बहुत से बहादुरों को इस दृढ़ता के साथ लड़ते देखा है कि या तो विजय प्राप्त करेंगे और या मर मिटेंगे; किन्तु मैंने इन ज़मींदारों के व्यवहार से बढ़ कर शानदार कभी कोई दृश्य नहीं देखा! पहले उन्होंने हमारी एक सवार पलटन पर हमला किया, हमारे सवार उनके मुक़ाबले पर न ठहर सके और इतने विचलित हो गए कि हमारी दो तोपें, जो उस पलटन के साथ थीं, बड़े ख़तरे में पड़ गईं। मैंने एक दूसरी सात नम्बर पलटन को आगे बढ़ने का हुकुम दिया। उनके साथ चार और तोपें थीं। ये तोपें शत्रु से पाँच सौ गज़ के फ़ासले पर लगा दी गईं। उन पर गोले बरसाने शुरू किए गए। वे इस बुरी तरह कट कट कर गिरने लगे जिस प्रकार हसिये से घास। उनका नेता एक लम्बा चौड़ा आदमी था। उसके गले में एक घेगा था। वह ज़रा नहीं घबराया। उसने अपनी तोपों के पास दो हरे झण्डे गड़वा कर उनके नीचे अपने आदमियों को जमा किया। किन्तु हमारे गोले इस बुरी तरह बरस रहे थे कि जो लोग तोपों के पास तक पहुँचते थे, वहीं मर कर गिर पड़ते थे। इसके बाद दो और नई पलटनें हमारी सहायता के लिए पहुँच गईं। तब हम बाक़ी बचे शत्रुओं को पीछे हटा सके। इस पर भी वे अपनी तलवारें और भाले हमारी ओर घुमाते जाते थे, और निर्भीकता के साथ हमें लड़ने के लिए आह्वान करते जाते थे। केवल उन दोनों तोपों के आस पास हमें १२५ लाशें मिलीं। तीन घण्टे के घमासान संग्राम के बाद विजय हमारी ओर रही।"*

---

* Hope Grant's *Incidents of the Sepoy War*, p. 292.

इस प्रकार के भयङ्कर संग्राम इस समय अवध में चारों ओर जारी थे।

अक्तूबर सन् १८५८ में कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कॉलिन कैम्पबेल ने नए सिरे से अनेक गोरी तथा काली पलटनों को जमा करके चारों ओर से अवध के विप्लवकारियों को उत्तर की ओर खदेड़ना शुरू किया। नए सिरे से अवधनिवासियों ने अपनी एक एक चप्पा भूमि के लिए विकट संग्राम किया।

राजा बेनीमाधव के स्थान शङ्करपुर पर तीन सेनाओं ने तीन ओर से चढ़ाई की। अङ्गरेज़ों का बल उस समय बेहद बढ़ा हुआ था और बेनीमाधव के पास सेना और सामान दोनों की कमी थी। तथापि बेनीमाधव ने विदेशियों की अधीनता स्वीकार न की। कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कॉलिन कैम्पबेल ने बेनीमाधव के पास सन्देशा भेजा कि अब आपका विजय की आशा करना व्यर्थ है, यदि आप वृथा रक्तपात नहीं चाहते तो अङ्गरेज़ सरकार की अधीनता स्वीकार कीजिए, आपको क्षमा कर दिया जायगा और आपकी समस्त ज़मींदारी आपको वापस कर दी जायगी। बेनीमाधव ने उत्तर दिया—

"इसके बाद क़िले की रक्षा कर सकना मेरे लिए असम्भव है, इसलिए मैं क़िले को छोड़ रहा हूँ। किन्तु मैं अपना शरीर आपके कदापि सुपुर्द न करूँगा। क्योंकि मेरा शरीर मेरा अपना नहीं, बल्कि मेरे बादशाह का है।"

निस्सन्देह 'बादशाह' शब्द से बूढ़े बेनीमाधव का तात्पर्य

अवध-नरेश नवाब बिरजीस क़दर और दिल्ली सम्राट बहादुरशाह से था।

कम्पनी के शासन का अन्त

विप्लव को प्रारम्भ हुए पूरा डेढ़ वर्ष बीत चुका था। इस समय वह घटना हुई जो भारतीय ब्रिटिश राज्य के इतिहास में एक विशेष सीमा-चिन्ह मानी जाती है। विप्लव के प्रारम्भ में पेशीनगोई हो चुकी थी कि अङ्गरेज़ कम्पनी का राज्य भारत से उठ जायगा। निस्सन्देह कम्पनी का राज्य पहली नवम्बर सन् १८५८ से हिन्दोस्तान से हटा लिया गया। इङ्गलिस्तान के शासकों ने उस समय कम्पनी की एक सौ वर्ष की सत्ता का अन्त कर देना अपनी कुशल के लिए आवश्यक समझा। किन्तु पहली नवम्बर से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्थान पर इङ्गलिस्तान की मलका विक्टोरिया का राज्य इस देश पर क़ायम कर दिया गया।

लॉर्ड कैनिङ्ग इलाहाबाद में था। पहली नवम्बर को 'भारतीय नरेशों और भारतीय प्रजा के नाम' मलका विक्टोरिया का एक एलान भारत में प्रकाशित किया गया। उसी दिन लॉर्ड कैनिङ्ग ने स्वयं इलाहाबाद में दारागञ्ज के निकट क़िले के नीचे यह एलान सहस्रों मनुष्यों को पढ़ कर सुनाया। इस एलान में विक्टोरिया की ओर से भारतवासियों को सूचना दी गई कि—

कम्पनी का राज्य अब से समाप्त हुआ और उसके स्थान पर भारत के शासन की बाग हमने (अर्थात् मलका विक्टोरिया ने) अपने हाथों में ले ली है; सिवाय उन लोगों के, जो हमारी

अङ्गरेजी प्रजा की हत्या में भाग लेने के अपराधी हैं, शेष जो लोग भी हथियार रख देंगे उन सब को क्षमा कर दिया जायगा; हिन्दोस्तानियों की गोद लेने की प्रथा आयन्दा से जायज़ समझी जायगी और दत्तक पुत्रों को पिता की जायदाद और गद्दी का मालिक माना जायगा; किसी के धार्मिक विश्वासों या धार्मिक रस्मोरिवाज में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जायगा; देशी नरेशों के साथ कम्पनी ने इस समय तक जितनी सन्धियाँ की हैं उनकी सब शर्तों का आयन्दा ईमानदारी के साथ पालन किया जायगा; इसके बाद किसी भारतीय नरेश की रियासत या उसका कोई अधिकार न छीना जायगा; समस्त भारतवासियों के साथ ठीक उसी प्रकार का व्यवहार किया जायगा जिस प्रकार का अङ्गरेजों के साथ; इत्यादि, इत्यादि।

किन्तु कम से कम अवध-निवासियों पर विक्टोरिया के इस एलान का भी अधिक प्रभाव न पड़ा। इङ्गलिस्तान की मलका की ओर से इस एलान के प्रकाशित होते ही बेगम हज़रतमहल की ओर से एक एलान इसके जवाब में अवध की समस्त प्रजा के नाम प्रकाशित हुआ। यह एलान हिन्दोस्तानी भाषा में था। हम इसके कुछ वाक्य उसके सरकारी अङ्गरेजी अनुवाद से हिन्दी में अनुवाद करके नीचे उद्धृत करते हैं। बेगम हज़रतमहल ने इस एलान में लिखा—

"× × × पहली नवम्बर सन् १८५८ का एलान, जो हमारे सामने आया है, बिलकुल स्पष्ट है। × × × इसलिए हम × × × बहुत सोच

समझ कर मौजूदा एलान प्रकाशित करते हैं, ताकि पूर्वोक्त एलान के ख़ास ख़ास असली उद्देश प्रकट होजायँ और हमारी रिआया होशियार होजाय।

"उस एलान में लिखा है कि हिन्दोस्तान का मुल्क, जो अभी तक कम्पनी के सुपुर्द था, अब मलका ने अपने शासन में ले लिया है, और आयन्दा से मलका के क़ानूनों को माना जायगा। हमारी धर्मनिष्ठ प्रजा को इसपर एतबार नहीं करना चाहिए। क्योंकि कम्पनी के क़ानून, कम्पनी के अङ्गरेज़ मुलाज़िम, कम्पनी का गवरनर-जनरल और कम्पनी की अदालतें इत्यादि, सब ज्यों की त्यों बनी रहेंगी। तो फिर वह नई बात कौन सी हुई जिससे जनता को लाभ हो अथवा जिस पर वे विश्वास कर सकें ?

"उस एलान में लिखा है कि कम्पनी ने जो जो वादे और अहदोपैमान किए हैं, मलका उन्हें मन्ज़ूर करेगी। लोगों को चाहिए कि इस चाल को ग़ौर से देख लें। कम्पनी ने सारे हिन्दोस्तान पर क़ब्ज़ा कर लिया है, और अगर यह बात क़ायम रही तो फिर इसमें नई बात क्या हुई ? कम्पनी ने भरतपुर के राजा को पहले अपना बेटा बतलाया और फिर उसका इलाक़ा ले लिया। लाहौर के राजा को वे लन्दन ले गए और फिर कभी उसे भारत लौटने न दिया। नवाब शम्सुद्दीन ख़ाँ को एक ओर उन्होंने फाँसी पर लटका दिया, और दूसरी ओर उसे सलाम किया। पेशवा को उन्होंने पूना और सतारा से निकाल दिया और याजीवन बिठूर में क़ैद कर दिया। बनारस के राजा को उन्होंने आगरे में क़ैद कर दिया। बिहार, उड़ीसा और बङ्गाल के नरेशों का उन्होंने नाम निशान तक नहीं छोड़ा। स्वयं हमारे क़दीम इलाक़े उन्होंने हमसे यह बहाना करके ले लिए कि फ़ौज को तनख़्वाहें देनी हैं, और हमारे साथ जो सन्धि की उसकी सातवीं धारा में उन्होंने यह क़सम खाई कि हम आप से और अधिक

कुछ न लेंगे। इसलिए यदि जो जो इन्तज़ाम कम्पनी ने कर रक्खे हैं वे सब मन्ज़ूर किए जायँगे तो इससे पहले की स्थिति में और अब इस नई स्थिति में क्या अन्तर हुआ? ये सब तो पुरानी बातें हैं। किन्तु हाल में भी क़समों और अहदनामों को तोड़ कर, और बावजूद इस बात के कि अङ्गरेज़ों ने हमसे करोड़ों रुपए कर्ज़ ले रक्खे थे—उन्होंने बिना किसी कारण के केवल यह बहाना लेकर कि आपका व्यवहार अच्छा नहीं और आपकी प्रजा असन्तुष्ट है, हमारा मुल्क और करोड़ों रुपए का माल हमसे छीन लिया। यदि हमारी प्रजा हमारे पूर्वाधिकारी नवाब वाजिद-अली शाह से असन्तुष्ट थी, तो वह हमसे सन्तुष्ट कैसे होगई? और कभी किसी भी नरेश के लिए प्रजा ने अपने जान और माल को इस प्रकार क़ुरबान करके अपनी राजभक्ति का परिचय नहीं दिया जिस प्रकार कि हमारी प्रजा ने हमारे साथ किया है। फिर क्या कमी है कि वे हमारा मुल्क हमें वापस नहीं देते? इसके अतिरिक्त उस एलान में लिखा है कि मलका को अपना इलाक़ा बढ़ाने की इच्छा नहीं है; तथापि वह इन देशी रियासतों को अपने राज्य में मिला लेने से बाज़ नहीं रह सकतीं। × × ×

* * *

"उस एलान में लिखा है कि ईसाई मज़हब 'सच्चा' है, किन्तु और किसी मज़हब वालों के साथ ज़्यादती न की जायगी, और सब के साथ एक समान क़ानूनी व्यवहार किया जायगा। न्यायशासन से किसी मज़हब के सच्चे या झूठे होने से क्या सम्बन्ध है? × × × सुअर खाना और शराब पीना, चरबी के कारतूस दाँत से काटना और आटे और मिठाइयों में सुअर की चरबी मिलाना, सड़कें बनाने के बहाने मन्दिरों और मसजिदों

को गिराना, गिरजा बनवाना, गलियों और कूचों में ईसाई मत का प्रचार करने के लिए पादरियों को भेजना × × × इन सब बातों के होते हुए लोग कैसे विश्वास कर सकते हैं कि उनके मज़हब में दख़ल न दिया जायगा? × × ×

"उस एलान में लिखा है कि × × × जिन लोगों ने हत्याएँ की हैं या हत्याओं में मदद दी है उन पर कोई दया न की जायगी, शेष सबको क्षमा कर दिया जायगा। एक मूर्ख मनुष्य भी देख सकता है कि इस एलान के अनुसार दोषी अथवा निर्दोष कोई मनुष्य भी नहीं बच सकता। × × × एक बात उसमें साफ़ कही गई है, वह यह कि किसी भी दोषी मनुष्य को न छोड़ा जायगा, इसलिए जिस गाँव या इलाक़े में हमारी सेना ठहरी है उसके बाशिन्दे नहीं बच सकते। उस एलान को पढ़ कर, जिसमें कि साफ़ दुशमनी भरी हुई है, हमें अपनी प्यारी प्रजा की स्थिति पर बड़ा दुःख है। अब हम एक स्पष्ट और विश्वस्त आज्ञा जारी करते हैं कि हमारी प्रजा में से जिन जिन लोगों ने मूर्खता करके गाँव के मुखियों की हैसियत से अपने तईं अङ्गरेज़ों के सामने पेश किया है, वे १ जनवरी सन् १८५९ से पहले हमारे कैम्प में आकर हाज़िर हों। निस्सन्देह उनका क़ुसूर माफ़ कर दिया जायगा। × × × आज तक कभी किसी ने नहीं देखा कि अङ्गरेज़ों ने किसी का क़ुसूर माफ़ किया हो।

* * *

"हमारी प्रजा में से कोई अङ्गरेज़ों के एलान के धोखे में न आए!"*

अवध की स्वाधीनता का अन्त

इस एलान के प्रकाशित होने के ६ महीने बाद तक अवध के

---

* *History of the Indian Mutiny,* by Charles Ball, vol. ii.

अन्दर स्वाधीनता का युद्ध बराबर जारी रहा। चार्ल्स बॉल लिखता है—

"मलका विक्टोरिया के एलान के बाद भी अवध के अन्दर आश्चर्यजनक युद्ध जारी रहा। विप्लवकारियों के इन सब गिरोहों के साथ उनके देशवासियों को सहानुभूति थी और इस सहानुभूति से उन्हें इतना अधिक बल और इतनी अधिक उत्तेजना प्राप्त हुई कि जिसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता। ये विप्लवकारी बिना कमसरियट के जहाँ चाहे जा सकते थे, क्योंकि लोग सब जगह उन्हें भोजन पहुँचा देते थे। वे बिना पहरे के अपना असबाब जहाँ चाहे छोड़ सकते थे, क्योंकि लोग उनके असबाब पर हमला न करते थे। उन्हें सदा अपनी और अङ्गरेज़ों की स्थिति का ठीक ठीक पता रहता था, क्योंकि लोग उन्हें घण्टे घण्टे भर के अन्दर आकर सूचना देते रहते थे। हम उनसे अपनी कोई योजना छिपा कर न रख सकते थे, क्योंकि हमारी प्रत्येक खाने की मेज़ के गिर्द और अङ्गरेज़ी सेना के लगभग हर खेमे में उनसे गुप्त सहानुभूति रखने वाले लोग खड़े रहते थे। हमारे लिए उन पर अचानक हमला कर सकना एक अलौकिक सी बात थी, क्योंकि हमारे चलने की अफ़वाह एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य को हमारे सवारों से अधिक तेज़ी के साथ उन तक पहुँच जाती थी।"*

यही कारण था कि विक्टोरिया के एलान के छै महीने बाद तक भी अवध का प्रान्त अङ्गरेज़ों के क़ाबू में न आ सका। समय समय पर शङ्करपुर, ढुँढियाखेड़ा, रायबरेली, सीतापुर इत्यादि स्थानों पर बराबर संग्राम होते रहे। अन्त में अप्रेल सन् १८५९ तक

* Ibid, vol. ii, p. 572.

अवध के समस्त विप्लवकारी नैपाल की सरहद के उस पार निकाल दिए गए ।

कहा जाता है कि लगभग साठ हज़ार पुरुष, स्त्री और बच्चों ने नाना साहब, बालासाहब, बेगम हज़रतमहल और नवाब बिरजीस क़दर के साथ नैपाल में प्रवेश किया । नाना साहब और महाराजा जङ्गबहादुर में कुछ दिनों तक पत्र व्यवहार होता रहा । नाना साहब ने पहले नैपाल दरबार से अङ्गरेज़ों के विरुद्ध सहायता की प्रार्थना की, उसके बाद केवल भारतीय निर्वासितों के लिए नैपाल में रहने की इजाज़त चाही । किन्तु महाराजा जङ्गबहादुर ने इनमें से कोई बात भी स्वीकार न की ; बल्कि अङ्गरेज़ी सेना को नैपाल में प्रवेश करने और इन भारतीय विप्लवकारियों का संहार करने की इजाज़त दे दी । विप्लवकारियों में से अनेक हथियार फेंक कर भारत वापस आ गए, अनेक जङ्गलों और पहाड़ों में खप गए । नाना साहब का जनरल होप ग्राण्ट के साथ कुछ पत्र व्यवहार हुआ, जिनमें से अन्तिम पत्र में अङ्गरेज़ों के अन्यायों को दर्शाते हुए नाना साहब ने लिखा कि—"आपको हिन्दोस्तान पर क़ब्ज़ा करने का और मुझे दण्डनीय क़रार देने का क्या अधिकार है ? हिन्दोस्तान पर राज्य करने का आपको किसने अधिकार दिया ? क्या ! आप फ़िरङ्गी लोग बादशाह हैं, और हम इस अपने मुल्क के अन्दर चोर हैं ?"

इसके बाद कुछ पता नहीं कि नाना साहब का क्या हुआ । बेगम हज़रतमहल और उसके पुत्र बिरजीस क़द्र को कुछ समय बाद नैपाल दरबार ने अपने यहाँ आश्रय दिया ।

अवध के इस विप्लव के विषय में इतिहास-लेखक मालेसन लिखता है—

"जिस विप्लव को उन सिपाहियों ने आरम्भ किया था, जिनमें से कि अधिकांश अवधनिवासी थे, उस विप्लव में समस्त अवधनिवासियों ने शामिल होकर स्वाधीनता के लिए युद्ध किया × × × हिन्दोस्तान के किसी दूसरे भाग ने इतनी दृढ़ता के साथ डट कर और इतनी अधिक देर तक हमारा मुक़ाबला नहीं किया जितना कि अवध ने। इस समस्त युद्ध में उस अन्याय को याद कर करके जो अन्याय कि सन् १८५६ में उनके साथ किया गया था, अवधनिवासियों के हृदय अधिकाधिक मज़बूत और उनका सङ्कल्प अधिकाधिक दृढ़ होता रहता था। × × × अन्त में जब कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कॉलिन कैम्पबेल (लॉर्ड क्लाइड) ने समस्त अवध में से बचे हुए विद्रोहियों को बीन बीन कर नैपाल के जङ्गलों में आश्रय लेने के लिए विवश कर दिया तो इन लोगों ने प्रायः हार मानने की अपेक्षा भूखों मर जाना अधिक पसन्द किया। किसानों ने, ताल्लुक़ेदारों ने, ज़मींदारों ने, व्यापारियों ने, बहुत दिनों के लगातार युद्ध के बाद केवल उस समय हार स्वीकार की जब कि उन्होंने देख लिया कि अब सब कुछ हो चुका।"*

तात्या टोपी के अन्तिम प्रयत्न

इसके पश्चात् केवल तात्या टोपी के अन्तिम प्रयत्नों को बयान करना बाक़ी रह जाता है।

तात्या टोपी के मुख्य साथियों नाना साहब, बाला साहब और

---

* Malleson's *Indian Mutiny*, vol. v, p. 207

लक्ष्मीबाई में से अब कोई बाक़ी न रहा था। अङ्गरेज़ों की सत्ता भारत में फिर से जम चुकी थी। स्वयं तात्या के पास अब न कोई ढङ्ग की सेना थी और न सामान। तथापि तात्या टोपी ने आशा न छोड़ी। २० जून सन् १८५८ को ग्वालियर से निकल कर तात्या टोपी ने रावसाहब, बाँदा के नवाब और मुट्ठी भर बचे खुचे सैनिकों सहित नर्मदा की ओर बढ़ना चाहा। तात्या का उद्देश नर्मदा पार कर पेशवा के नाम पर दक्षिण के नरेशों और प्रजा को विप्लव के लिए फिर से तैयार करना था। २२ जून को अङ्गरेज़ी सेना ने उसे जौरा अलीपुर में जा घेरा। तात्या टोपी फिर बच कर निकल गया। तात्या का लक्ष्य इस समय किसी प्रकार नर्मदा पार करना था, और अङ्गरेज़ उसे नर्मदा पार करने से रोकना चाहते थे।

तात्या टोपी ने सब से पहले भरतपुर की ओर निगाह की। तुरन्त एक प्रबल अङ्गरेज़ी सेना तात्या को फँसाने के लिए भरतपुर पहुँच गई। तात्या मुड़ कर जयपुर की ओर बढ़ा। जयपुर की प्रजा और सेना दोनों तात्या से सहानुभूति रखती थीं। तात्या ने उन्हें तैयार रहने की सूचना दी। अङ्गरेज़ों को पता चल गया। तुरन्त एक अङ्गरेज़ी सेना नसीराबाद से जयपुर के लिए भेज दी गई। तात्या अब दक्षिण की ओर मुड़ा। करनल होम्स के अधीन एक सेना ने उसका पीछा किया। तात्या अङ्गरेज़ी सेना से आँख बचाकर टोंक पहुँच गया। टोंक के नवाब ने नगर के दरवाज़े बन्द कर लिए, और अपनी कुछ सेना चार तोपों सहित तात्या के मुक़ाबले के

लिए भेजी। यह सेना सामने आते ही तात्या से जा मिली। उन्होंने अपनी तोपें तात्या के हवाले कर दीं। तात्या टोपी नई सेना और सामान सहित अब इन्द्रगढ़ की ओर बढ़ा। वर्षा ज़ोरों से हो रही थी। पीछे से होम्स अपनी सेना सहित तात्या की ओर बढ़ा चला आ रहा था। राजपूताने की ओर से सेनापति रॉबर्ट्स के अधीन एक सेना तात्या पर हमला करने के लिए आ रही थी। चम्बल नदी तात्या के सामने थी और खूब चढ़ी हुई थी।

तात्या तीनों से बच कर पूर्वोत्तर में बूँदी की ओर बढ़ा। नीमच नसीराबाद के प्रान्त में वह भीलवाड़ा नामक ग्राम में जाकर ठहरा। जनरल रॉबर्ट्स ने ख़बर पाते ही ७ अगस्त सन् १८५८ को तात्या पर हमला किया। दिन भर संग्राम होता रहा। रात को तात्या अपनी सेना और तोपों सहित उदयपुर रियासत में कोटरा ग्राम की ओर निकल गया।

कोटरा में १४ अगस्त को फिर अङ्गरेज़ी सेना ने उसे आ घेरा। संग्राम हुआ, किन्तु इस बार तात्या को अपनी तोपें मैदान में छोड़ कर भागना पड़ा। अङ्गरेज़ी सेना बराबर तात्या का पीछा करती रही। तात्या फिर चम्बल की ओर बढ़ा। इस समय एक अङ्गरेज़ी सेना पीछे से तात्या की ओर बढ़ी चली आ रही थी, दूसरी दाहिनी ओर से बढ़ी चली आ रही थी और तीसरी उसके ठीक सामने चम्बल के किनारे मौजूद थी। तथापि किसी को धोखा देते हुए और किसी से बचते हुए तात्या चम्बल तक पहुँच गया और आश्चर्यजनक फुर्ती के साथ अङ्गरेज़ी सेना से कुछ ही दूर फ़ासले

पर चम्बल नदी को पार कर गया। चम्बल नदी अब तात्या तथा अङ्गरेज़ी सेना के बीच में पड़ गई। किन्तु तात्या के पास न रसद थी और न तोपें। तात्या सीधे झालरापट्टन की ओर बढ़ा। वहाँ का राजा अपनी सेना और तोपों सहित तात्या पर हमला करने के लिए निकला। किन्तु मैदान में पहुँचते ही झालरापट्टन की सेना तात्या की ओर जा मिली। अब तात्या को सेना, सामान, रसद इत्यादि सब कुछ मिल गया। झालरापट्टन की ओर बढ़ते हुए तात्या के पास एक भी तोप न थी। अब उसके पास ३२ तोपें हो गईं। विजयी तात्या ने झालरापट्टन के राजा से युद्ध के खर्च के लिए १५ लाख रुपए वसूल किए। पाँच दिन तक तात्या वहीं ठहरा रहा। उसने अपनी सेना को तनख़ाहें दीं। रावसाहब और बाँदे का नवाब बराबर तात्या के साथ थे। तीनों ने मिल कर फिर नर्मदा पार करने का विचार किया। अङ्गरेज़ों ने इन लोगों को रोकने के लिए सेनाओं का एक जाल बिछा दिया। किन्तु तात्या के पास अब मुक़ाबले के लिए काफ़ी सामान था। वह अब इन्दौर की ओर बढ़ा।

इस समय छै बड़े बड़े अङ्गरेज़ सेनापति रॉबर्ट्स, होम्स, पार्क, मिचेल, होप और लोखार्ट छै ओर से तात्या को घेरने का प्रयत्न कर रहे थे। कई बार तात्या और उसकी सेना अङ्गरेज़ी सेना को सामने दिखाई तक दे जाती थी। किन्तु फिर भी तात्या बच कर निकल जाता था।

रायगढ़ के निकट मिचेल की सेना तात्या पर आ टूटी। थोड़े से

संग्राम के बाद तात्या टोपी फिर अपनी तीस तोपें मैदान में छोड़ कर बच कर निकल गया। मार्ग में एक स्थान पर उसे चार और तोपें मिलीं। इसके बाद उत्तर की ओर बढ़ कर तात्या ने सींधिया के नगर ईशगढ़ पर हमला किया और वहाँ से आठ और तोपें प्राप्त कीं। तात्या टोपी जिस तरह हो, नर्मदा पार करने की धुन में था और अङ्गरेजी सेना उसे चारों ओर से घेर कर रोकना चाहती थी। तात्या की इस समय की समस्त यात्राओं, चालों, विजयों और पराजयों को वर्णन कर सकना असम्भव है। एक अङ्गरेज़ लेखक लिखता है—

"इसके बाद तात्या के बचने और भाग जाने का वह आश्चर्यजनक सिलसिला शुरू हुआ जो दस महीने तक जारी रहा और जिससे प्रतीत होता था कि हमारी विजयों को भी निष्फल कर दिया। इस सिलसिले के कारण तात्या का नाम यूरोप भर में हमारे अधिकांश अङ्गरेज़ सेनापतियों के नामों की अपेक्षा भी कहीं अधिक मशहूर हो गया। तात्या के सामने समस्या सरल न थी। × × × उसे अपनी अव्यवस्थित सेना को लगातार इतनी तेज़ रफ़्तार पर ले जाना पड़ता था कि जिससे न केवल उसका पीछा करने वाली सेनाएँ ही, बल्कि वे सेनाएँ भी जो कभी दाहिनी ओर से और कभी बाईं ओर से अचानक उस पर टूट पड़ती थीं, हाथ मलती रह जाती थीं। एक ओर वह इस प्रकार उन्मत्तवत् अपनी सेना को भगाए लिए जाता था, दूसरी ओर वह दरजनों शहरों पर क़ब्ज़ा कर लेता था, अपने साथ नया सामान जमा कर लेता था, इधर उधर से नई तोपें साथ ले लेता था और इन सब के अतिरिक्त अपनी सेना के लिए इस प्रकार के

नए स्वयंसेवक रङ्गरूट भरती करता जाता था जिन्हें कि साठ मील रोज़ाना के हिसाब से लगातार भागना पड़ता था। तात्या ने अपने अल्प साधनों से जो कुछ कर दिखाया, उससे साबित है कि उसकी योग्यता साधारण न थी। × × × वह उस श्रेणी का मनुष्य था जिस श्रेणी का कि हैदरअली था। कहा जाता है कि तात्या नागपुर से होकर मद्रास पहुँचना चाहता था। यदि वह वास्तव में मद्रास तक पहुँच जाता तो वह हमारे लिए उतना ही भयङ्कर साबित होता जितना कि हैदरअली किसी समय हो चुका था। नर्मदा उसके लिए इतनी ही बड़ी रुकावट साबित हुई जितनी कि इङ्गलिश चैनल नैपोलियन के लिए। तात्या सब कुछ कर सका, किन्तु नर्मदा को पार न कर पाया। × × × अङ्गरेज़ी सेनाएँ शुरू में इतने ही धीरे धीरे आगे बढ़ीं जितने धीरे चलने की कि उन्हें आदत थी। किन्तु फिर मजबूर उन्होंने तेज़ चलना सीख लिया। जनरल पार्क और करनल नेपियर की अन्त की कोई कोई यात्राएँ इतनी ही तेज़ थीं जितनी तात्या की औसत आधी यात्राएँ। तथापि तात्या बच कर निकलता रहा। गरमियाँ निकल गईं, सारी बरसात निकल गई, सारी सरदी निकल गई, और फिर तमाम गरमी निकल गई, तो भी तात्या निकला चला जा रहा था। उसके साथ कभी दो हज़ार थके हुए अनुयायी होते थे और कभी पन्द्रह हज़ार।"*

इसके बाद तात्या ने अपनी सेना के दो टुकड़े किए। एक अपने अधीन, दूसरा रावसाहब के अधीन। दोनों दल दो ओर से आगे बढ़े। कई जगह अङ्गरेजी सेना से लड़ाइयाँ लड़ते हुए दोनों दल ललितपुर में जाकर फिर मिल गए। यहाँ पर दक्षिण में मिचेल की सेना, पूर्व में करनल लिडेल की सेना, उत्तर में करनल मीड की सेना,

---

* *The Friend of India*, 1858.

पश्चिम में करनल पार्क की सेना और चम्बल की ओर से जनरल रॉबर्ट्स के अधीन एक सेना,—पाँच ओर से पाँच अङ्गरेज़ी सेनाओं ने तात्या को घेर लिया। तात्या ने अब अङ्गरेज़ी सेना को धोखा देने के लिए दक्षिण की यात्रा छोड़ कर तेज़ी से उत्तर की ओर बढ़ना शुरू किया। अङ्गरेज़ समझे कि तात्या ने दक्षिण जाने का विचार छोड़ दिया। किन्तु तात्या फिर अचानक मुड़ पड़ा, तेज़ी से उसने बेतवा नदी पार की, कजूरी में अङ्गरेज़ सेना के साथ एक संग्राम किया, वहाँ से रायगढ़ पहुँचा और फिर सीधा तीर की तरह दक्षिण की ओर लपका। अङ्गरेज़ उसकी इन चालों से घबरा गए। जनरल पार्क एक ओर से लपका, मिचेल पीछे से लपका, बेचर सामने से तात्या की ओर बढ़ा, किन्तु तात्या अपनी सेना सहित नर्मदा पहुँच ही गया और होशङ्गाबाद के निकट संसार के बड़े से बड़े युद्ध-विशारदों को चकित कर अपनी सेना सहित नर्मदा को पार कर गया।

इतिहास-लेखक मालेसन लिखता है—"जिस दृढ़ता और धैर्य के साथ तात्या ने अपनी इस योजना को पूरा किया उसकी प्रशंसा न करना असम्भव है।"

लन्दन 'टाइम्स' के सम्वाददाता ने लिखा—

"हमारा अत्यन्त अद्भुत मित्र तात्या टोपी इतना कष्ट देने वाला और चालाक शत्रु है कि उसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती। पिछले जून के महीने से उसने मध्य भारत में तहलका मचा रक्खा है, उसने हमारे स्थानों को रौंद डाला है, ख़ज़ानों को लूट लिया है और हमारे मैगज़ीनों को

ख़ाली कर दिया है। उसने सेनाएँ जमा कर ली हैं और खो दी हैं, लड़ाइयाँ लड़ी हैं और हार खाई है, देशी नरेशों से तोपें छीन ली हैं, उन तोपों को खो दिया है, फिर और तोपें प्राप्त की हैं, उन्हें भी खो दिया है। इसके बाद उसकी यात्राएँ बिजली की तरह प्रतीत होती हैं। अठवाड़ों वह तीस तीस और चालीस चालीस मील रोज़ाना चला है। कभी नर्मदा के इस पार और कभी उस पार। हमारे सैन्यदलों के वह कभी बीच से निकल गया है, कभी पीछे से और कभी सामने से। × × × कभी पहाड़ों पर से, कभी नदियों पर से, कभी वादियों में से और कभी घाटियों में से, कभी दलदलों में से, कभी आगे से और कभी पीछे से, कभी एक ओर से और कभी घूम कर, कभी उसने हमारी डाक की गाड़ी पर हमला करके बम्बई की डाक लूट ली × × × तथापि वह हाथ न आया।"*

अन्त में अक्तूबर सन् १८५८ में तात्या अपनी सेना सहित रावसाहब और बाँदा के नवाब को साथ लिए हुए नागपुर के निकट पहुँच गया।

लॉर्ड कैनिङ्ग और उसके साथी काफ़ी घबरा गए। मालेसन लिखता है—

"जिस मनुष्य को महाराष्ट्र अन्तिम पेशवा का न्याय्य उत्तराधिकारी स्वीकार करता था उसका भतीजा सेना सहित महाराष्ट्र की भूमि पर आ पहुँचा। × × × निज़ाम हमारा वफ़ादार था। किन्तु वह समय बड़ा विचित्र था। × × × इससे पहले भी इस प्रकार की मिसालें हो चुकी थीं, जबकि यदि किसी नरेश ने राष्ट्र के भावों के विरुद्ध कार्य किया तो

* *The Times*, 17th January, 1859.

तात्या टोपी

[चित्रशाला प्रेस, पूना की कृपा द्वारा]

प्रजा ने अपने उस नरेश के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। सींधिया के विरुद्ध भी इस प्रकार का विद्रोह हो चुका था। हमें यह भय होना आवश्यक था कि कहीं ऐसा न हो कि तात्या की सेना समस्त महाराष्ट्र को हमारे विरुद्ध शस्त्र उठा लेने के लिए उत्तेजित कर दे, और फिर जब सारी महाराष्ट्र क़ौम विदेशियों के विरुद्ध हथियार उठा ले तो इसे देख कर दक्षिण (अर्थात् निज़ाम के इलाक़े) के लोग भी रोके न रुक सकें।"*

निस्सन्देह यदि यही घटना एक साल पहले हुई होती तो सम्भव था कि शेष भारतीय इतिहास की गति दूसरी ओर को पलट जाती। किन्तु पिछले एक वर्ष के अन्दर भारतवासियों का उत्साह काफ़ी टूट चुका था। उत्तरीय भारत में जिस तात्या को लाग स्वयं आ आकर ख़ुशी से रसद पहुँचाते थे उस तात्या के पास नागपुर के महाराष्ट्र लोग अब आने तक से डर गए।

तात्या की सेना कुछ दिन वहाँ ठहरी रही। अङ्गरेज़ी सेना ने फिर उसे चारों ओर से घेरना शुरू किया। तात्या के दक्षिण और उत्तर दोनों में विशाल अङ्गरेज़ी सेनाएँ थीं। उत्तर की सेना नर्मदा पार कर बढ़ी चली आ रही थी। नागपुर से तात्या को कोई सहायता न मिल सकी। लाचार होकर तात्या ने अब बड़ौदा की ओर बढ़ने का विचार किया।

नर्मदा के हर घाट पर दोनों ओर अङ्गरेज़ी सेना पड़ी हुई थी। तात्या बढ़ा। मेजर सण्डरलैण्ड की सेना के साथ उसका एक संग्राम हुआ। तात्या ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि सब तोपें

---

* Malleson's *Indian Mutiny*, vol. v, pp. 239-40.

पीछे छोड़ कर नर्मदा में कूद पड़ो। तात्या और उसकी सेना एक पल भर के अन्दर नर्मदा के पार दिखाई दी। मालेसन लिखता है कि संसार की किसी भी सेना ने कभी कहीं पर इतनी तेज़ी के साथ कूच नहीं किया जितनी तेजी के साथ कि तात्या की भारतीय सेना इस समय कूच कर रही थी।

तात्या राजपुरा पहुँचा। वहाँ के सरदार से उसने घोड़े और कुछ धन वसूल किया। अगले दिन वह छोटा उदयपुर पहुँचा। बड़ौदा यहाँ से केवल ५० मील था। इतने में पार्क के अधीन अङ्गरेज़ी सेना छोटा उदयपुर आ पहुँची। तात्या को बड़ौदा का विचार छोड़ देना पड़ा। अब वह फिर उत्तर की ओर मुड़ा। ठीक इस समय बाँदा के नवाब ने निराश होकर मलका विक्टोरिया के एलान के अनुसार हथियार रख दिए। तात्या और रावसाहब अकेले रह गए। मालेसन लिखता है—

"किन्तु ये दोनों नेता इस कठिन आपत्ति के समय भी इतने ही शान्त, वीर और चतुर बने रहे जितने कि वे पहले किसी भी समय में रह चुके थे।"*

तात्या अब उदयपुर (मेवाड़) की ओर बढ़ा। तुरन्त कई अङ्गरेज़ी सेनाएँ उस पर टूट पड़ीं। वह मुड़ कर जङ्गल में घुस गया। तात्या के लिए अब बच सकना असम्भव दिखाई देने लगा। एक दिन तात्या और रावसाहब लगभग चार बजे शाम को प्रतापगढ़ की ओर बढ़े। मेजर रॉक ने आकर सामने से उनका

---

* Ibid, vol. v, p. 247.

मार्ग रोक लिया। तात्या मेजर रॉक की सेना को परास्त करता हुआ आगे निकल गया। २५ दिसम्बर सन् १८५८ को तात्या टोपी बाँसवाड़ा के जङ्गल से निकला। ठीक इस समय दिल्ली के राजकुल का प्रसिद्ध शहजादा फ़ीरोजशाह, जो अवध के संग्रामों में भाग ले चुका था, अपनी सेना सहित तात्या की सहायता के लिए आ रहा था। जिस प्रकार शहजादे फ़ीरोजशाह ने सेना सहित गङ्गा और यमुना को पार कर तात्या से जाकर भेंट की, उसकी कहानी भी अत्यन्त मनोरञ्जक है। १३ जनवरी सन् १८५९ को इन्द्रगढ़ में फ़ीरोजशाह, तात्या और रावसाहब में भेंट हुई। सींधिया का एक सरदार मानसिंह भी उस समय इन लोगों में आकर मिल गया।

किन्तु इस समय तात्या फिर बुरी तरह चारों ओर से घिर रहा था। नेपियर उसके उत्तर में था, शॉवर्स उत्तर-पश्चिम में, सोमरसेट पूर्व में, स्मिथ दक्षिण-पूर्व में, मिचल और बैनसन दक्षिण में, और बॉनर दक्षिण-पश्चिम तथा पश्चिम में। ये समस्त सैन्यदल तात्या को बीच में घेर लेने के लिए बढ़े चले आ रहे थे। तात्या बढ़ते बढ़ते देवास पहुँचा। फ़ीरोजशाह, मानसिंह, रावसाहब और तात्या टोपी चारों घिर गए।

१६ जनवरी सन् १८५९ को सवेरे देवास में जब कि तात्या, रावसाहब और फ़ीरोजशाह तीनों खेमे में बैठे बातचीत कर रहे थे, अचानक किसी अङ्गरेज अफ़सर का हाथ तात्या की कमर पर पड़ा। अङ्गरेज सिपाही खेमें में आ टूटे। मालूम हुआ कि तात्या

पकड़ा गया। किन्तु अचानक फिर ये तीनों नेता अङ्गरेज़ सिपाहियों के चङ्गुल से निकल गए। देवास में चारों ओर खोज हुई, किन्तु उनका पता न चल सका।

२१ जनवरी को फिर ये तीनों विप्लवकारी नेता अलवर के निकट शिखरजी में दिखाई दिए। अङ्गरेज़ी सेना बराबर उन्हें घेरने का प्रयत्न करती रही। तात्या की समस्त आशाएँ अब टुकड़े टुकड़े हो चुकी थीं। वह अत्यन्त थका हुआ था। सरदार मानसिंह पास के जङ्गल में छिपा हुआ था। तात्या ने फ़ीरोज़शाह और राव-साहब को सेना के साथ छोड़ा और स्वयं केवल तीन आदमियों सहित मानसिंह से मिलने के लिए गया। ज़ाहिर है कि मानसिंह इस समय भीतर से अङ्गरेज़ों से मिला हुआ था। उसे जागीर इनाम में देने का भी वादा किया गया था। फ़ीरोज़शाह ने तात्या को फिर वापस अपने पास बुलाया। मानसिंह ने तात्या को रोक लिया और ७ अप्रेल सन् १८५९ को धोखा देकर ठीक आधी रात के समय सोते हुए तात्या टोपी को शत्रु के हवाले कर दिया।

१८ अप्रेल सन् १८५९ तात्या टोपी के लिए फाँसी का दिन नियत किया गया। चारों तरफ़ फ़ौज का पहरा था। लिखा है कि फ़ौज के चारों ओर टीलों पर खड़े हुए सहस्रों ग्रामीण भारतवासी तात्या को दूर से श्रद्धा के साथ नमस्कार कर रहे थे। तात्या आश्चर्यजनक धैर्य और साहस के साथ फाँसी के तख़्ते पर चढ़ा। तख़्ते के ऊपर उसकी बेड़ियाँ काटी गईं। तात्या ने हँसते हुए स्वयं अपने हाथ से फाँसी का फन्दा गले में डाल लिया। तख़्ता खिंच

गया, और उस दिन शाम तक तात्या का शव फाँसी पर लटकता रहा। शाम को अनेक यूरोपियन दर्शकों ने दौड़ दौड़ कर तात्या के सिर के दो दो, चार चार वाल तोड़ लिए और उन्हें तात्या की स्मृति के चिन्ह स्वरूप अपने पास रक्खा।

रावसाहव और शहज़ादा फ़ीरोज़शाह इसके एक महीने वाद तक जी तोड़ कर लड़े। इसके वाद वेष वदल कर दोनों जङ्गलों में निकल गए। फ़ीरोज़शाह सन् १८६४ तक वेष वदल कर भारत के जङ्गलों में घूमता रहा। उसके वाद अरव चला गया, जहाँ सन् १८६६ में वह अन्य अनेक भागे हुए निर्वासित भारतीय विप्लवकारियों के साथ भीख माँगता हुआ पाया गया। रावसाहव तीन वर्ष वाद गिरफ़्तार किया गया और २० अगस्त सन् १८६२ को कानपुर में फाँसी पर लटका दिया गया।

इस प्रकार हिन्दोस्तान को विदेशी ब्रिटिश शासन से स्वाधीन करने का सब से महान और व्यापक प्रयत्न निष्फल गया और अङ्गरेजी राज्य की जड़ें एक दीर्घकाल के लिए और अधिक मजबूती के साथ इस देश में जम गईं।

पचासवाँ अध्याय

सन् ५७ के विप्लव पर एक दृष्टि

स विशाल राष्ट्रीय प्रयत्न के कारणों और उसकी प्रगति को ऊपर के पृष्ठों में विस्तार के साथ बयान किया जा चुका है। इस प्रयत्न की असफलता के कारण भी इन्हीं पृष्ठों में स्थान स्थान पर दिखाए जा चुके हैं। इनमें मुख्यतम कारण हमें दो दिखाई देते हैं—

पहला यह कि कारतूसों और विशेष कर मेरठ की घटना के कारण विप्लव नियत समय से पहले शुरू हो गया। हम ऊपर मालेसन, विलसन, व्हाइट जैसे अङ्गरेज़ विशेषज्ञों की सम्मति इस विषय में उद्धृत कर चुके हैं कि यदि पूर्व निश्चय के अनुसार ३१ मई सन् १८५७ को सब स्थानों पर एक साथ विप्लव प्रारम्भ हुआ होता तो अङ्गरेज़ शासकों के लिए भारत को फिर से विजय कर सकना सर्वथा असम्भव होता।

दूसरा कारण यह था कि सिखों और गोरखों ने अङ्गरेज़ों की सहायता करके उनके लिए दिल्ली और लखनऊ जैसे केन्द्रों को फिर से विजय कर सकना सम्भव बना दिया। इस विषय में

पञ्जाब के चीफ़ कमिश्नर सर जॉन लॉरेन्स की स्पष्ट राय उद्धृत की जा चुकी है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यदि पटियाला, नाभा और झींद ने ऐन समय पर अङ्गरेज़ों को मदद न दी होती तो दिल्ली का फिर से विजय हो सकना असम्भव था, और एक बार यदि दिल्ली की सेना विजय प्राप्त कर पूर्व और दक्षिण में उतर आती तो सन् ५७ के विप्लव का बाद का सारा नक़शा बदल जाता। विप्लवकारियों का सङ्गठन सुन्दर और प्रशंसनीय था, तथापि कम से कम लाखों भारतवासी अपने देशवासियों के विरुद्ध तरह तरह से अङ्गरेज़ों को सहायता दे रहे थे। रसल लिखता है—

"तथापि हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि अङ्गरेज़ चाहे कितने भी बहादुर क्यों न हों, यदि समस्त भारतवासी पूरी तरह हमारे विरुद्ध हो जाते तो भारत में अङ्गरेज़ों का निशान तक कहीं बाक़ी न रह जाता। हमारे क़िलों के भीतर की सेनाओं ने जिस प्रकार जी तोड़ कर अपने स्थानों की रक्षा की, वह निस्सन्देह वीरोचित था। किन्तु इस वीरता में भारतवासी शामिल थे, और उन्हीं की सहायता और उपस्थिति के कारण पूर्वोक्त स्थानों की रक्षा करना हमारे लिए सम्भव हो सका। यदि पटियाला और झींद के राजा हमारे साथ मित्रता न दर्शाते और यदि सिख हमारी पलटनों में भरती न होते और उधर पञ्जाब को शान्त न रखते, तो हमारा दिल्ली का मोहासरा कर सकना सर्वथा असम्भव होता। लखनऊ में भी सिखों ने हमें ख़ूब सहायता दी। और हर स्थान पर जिस प्रकार कि भारतवासी हमारी सेनाओं में भरती होकर मैदान में हमारे बल को बढ़ाते थे, उसी प्रकार हर जगह भारतवासी ही हमारी घिरी हुई सेनाओं

की मदद करते थे, हमें भोजन पहुँचाते थे और हमारी सेवा करते थे। इसी तरह यहाँ इस कैम्प में हमारी सब की हालत क्या है! देशी फ़ौजें ही सब से आगे रह कर हमारी रक्षा कर रही हैं, देशी लोग हमारे घोड़ों के लिए घास काट रहे हैं, वे ही हमारे साईस हैं, वे ही हमारे हाथियों को चारा देते हैं, वे ही हमारी बारबरदारी का इन्तज़ाम करते हैं, कमसरियट में वे ही हमारे भोजन का प्रबन्ध करते हैं, वे ही हमारे गोरे सिपाहियों का खाना पकाते हैं, वे ही हमारे कैम्प की सफ़ाई करते हैं, वे ही हमारे डेरे गाड़ते हैं और उन्हें इधर उधर ले जाते हैं, वे ही हमारे अफ़सरों का सब काम करते हैं, और वे ही हमें अपने पास से रुपए उधार देते हैं। जो गोरा सिपाही मेरे साथ लिखने पढ़ने का काम करता है वह कहता है कि बिना हिन्दोस्तानी नौकरों, डोली उठाने वालों, अस्पताल के आदमियों तथा अन्य भारतवासियों के, उसकी पलटन एक सप्ताह भी जीवित न रह सकती।"*

---

* "Yet it must be admitted that, with all their courage, they (The British) would have been quite exterminated if the natives had been all and altogether, hostile to them. The desperate defences made by the garrisons were no doubt heroic; but the natives shared their glory; and they by their aid and presence rendered the defence possible. Our siege of Delhi would have been quite impossible, if the Rajas of Patiala and Jhind had not been our friends and if the Sikhs had not recruited in our battalions and remained quiet in the Punjab. The Sikhs at Lucknow did good service, and in all cases our garrisons were helped, fed, and served by the natives, as our armies were attended and strengthened by them in the field. Look at us all, here in camp,

जिस प्रकार सिखों के विना दिल्ली, उसी प्रकार गोरखों के विना लखनऊ का विजय हो सकना असम्भव था।

इन दो मुख्य कारणों के अतिरिक्त इनसे कुछ कम महत्त्व के तीन और कारण विप्लव की असफलता के बताए जा सकते हैं।

इनमें पहला था दिल्ली के मोहासरे के दिनों में दिल्ली के अन्दर एक इस प्रकार के योग्य, शक्तिशाली तथा प्रभावशाली नेता का अभाव जो नगर के अन्दर की समस्त शक्तियों को अपने वश में कर, उन्हें एक महान प्रयत्न के लिए अग्रसर कर सके। यही एक मात्र कारण था कि दिल्ली के भीतर की विशाल तथा वीर सेना बाहर निकल कर बाहर की अङ्गरेजी सेना को, जिसकी संख्या कहीं कम थी, महीनों तक समाप्त न कर सकी। यही त्रुटि एक दरजे तक लखनऊ में भी थी। और इसी के कारण कभी कभी ऐन सङ्कट के समय विप्लवकारियों में व्यवस्था और अनुशासन की कमी दिखाई देती थी।

---

at this moment, our outposts are native troops, natives are cutting grass for our horses and grooming them, feeding the elephants, managing the transports, supplying the commissariat which feeds us, cooking our soldiers' food, clearing their camp, pitching and carrying their tents, waiting on our officers, and even lending us their money. The soldier who acts as my amanuensis declares that his regiment could not have lived a week but for the regimental servants, doli-bearers, hospital men, and other dependents."—*My Diary in India*, by Sir W. Russell.

इनमें दूसरा कारण था सींधिया, होलकर तथा राजपूताने के नरेशों का केवल सङ्कोच और अविश्वास के कारण उस राष्ट्रीय विप्लव में भाग न ले सकना। हम ऊपर लिख चुके हैं कि यदि महाराजा जयाजीराव सींधिया अथवा कोई प्रमुख राजपूत नरेश समय पर अपनी सेना सहित दिल्ली पहुँच जाता तो कम्पनी की सेना के लिए ठहर सकना सर्वथा असम्भव होता और राजधानी के अन्दर प्रभावशाली नेता की कमी भी पूरी हो जाती। बहादुरशाह ने इन लोगों को विप्लव की ओर करने का प्रयत्न भी किया, किन्तु उसे सफलता न मिल सकी।

तीसरा कारण यह था कि विन्ध्याचल के नीचे के भाग ने उससे शतांश उत्साह के साथ भी विप्लव का साथ नहीं दिया, जिस उत्साह के साथ कि विन्ध्याचल के उत्तर के भाग ने दिया। यदि मद्रास, बम्बई और महाराष्ट्र में उत्तरीय भारत के साथ साथ उसी प्रकार का विप्लव प्रारम्भ हो गया होता तो उन प्रान्तों से उत्तर की ओर सेना भेज सकना असम्भव होता, जनरल नील, जनरल हैवलॉक इत्यादि कलकत्ते तक भी न पहुँच पाते और बनारस, इलाहाबाद, कानपुर और अन्त में लखनऊ विजय कर सकना अङ्गरेज़ों के लिए असम्भव होता।

विप्लव की असफलता के ये पाँचों कारण इस प्रकार के हैं कि यदि इनमें कोई एक भी अनुपस्थित होतां तो शेष चारों के होते हुए भी शायद विप्लव असफल न हो पाता।

अब प्रश्न यह हो सकता है कि यदि सन् ५७ का विप्लव

सफल हो गया होता तो भारत अथवा संसार के लिए परिणाम क्या होता ?

किसी भी निष्पक्ष इतिहास-लेखक को इससे इनकार नहीं हो सकता कि अधिकांश विप्लवकारी अपने देश की स्वाधीनता और अपने धर्म की रक्षा के लिए मैदान में उतरे थे। दूसरी ओर जिन अङ्गरेजों ने उनका विरोध किया उनका मुख्य उद्देश इस देश के ऊपर अङ्गरेजी क़ौम के राज्य को क़ायम रखना था। निस्सन्देह नैतिक दृष्टि से पहला आदर्श दूसरे आदर्श की अपेक्षा उच्चतर है। दोनों ओर से समय समय पर प्रशंसनीय वीरता और साहस का परिचय दिया गया। दोनों पक्षों ने कम वा अधिक अपने उद्देशों को निहत्थों और निरपराधों की हत्या से कलङ्कित किया। यहाँ पर दोनों ओर के अत्याचारों की थोड़ी बहुत तुलना कर लेना भी अनुचित न होगा। निस्सन्देह दिल्ली, कानपुर, झाँसी इत्यादि में अङ्गरेज स्त्रियों और बच्चों की हत्या द्वारा विप्लवकारियों ने अपने अन्यथा पवित्र आन्दोलन को प्रत्येक न्याय-प्रेमी मनुष्य की दृष्टि में सदा के लिए कलङ्कित कर लिया।

किन्तु इस सम्बन्ध में हमें एक दो बातों को स्मरण रखना होगा।

पहली यह कि जितनी बातें विप्लवकारियों के अत्याचारों के विषय में अङ्गरेज इतिहास-लेखकों की पुस्तकों में पाई जाती हैं उनमें असत्य की मात्रा काफ़ी है। इसके सुबूत में हम ऊपर भी कई निष्पक्ष अङ्गरेजों की सम्मतियाँ उद्धृत कर चुके हैं। इङ्गलिस्तान

की पार्लिमेण्ट के सदस्य मिस्टर लेयर्ड ने इस तरह की घटनाओं की सत्यता का ठीक ठीक पता लगाने के लिए विप्लव के दिनों में भारत की यात्रा की। ११ मई सन् १८५८ को इङ्गलिस्तान लौट कर लेयर्ड ने लन्दन में एक वक्तृता देते हुए कहा कि—

"जब मैं भारत में था, मैंने हद दरजे की सच्चाई के साथ यह पता लगाने का प्रयत्न किया कि क्या किसी भी अङ्गरेज़ को अङ्ग भङ्ग किया गया था या नहीं। जिन लोगों को गवरमेण्ट ने इस विषय की जाँच करने के लिए नियुक्त किया था, और जिनके विषय में मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि यदि उन्हें भारतवासियों के अत्याचारों का एक भी उदाहरण मिलता तो वे ख़ुश होकर उसे चिपट जाते, उन लोगों तक ने मुझे विश्वास दिलाया कि उन्हें एक भी उदाहरण ऐसा नहीं मिला जिसमें किसी अङ्गरेज़ को अङ्ग भङ्ग किया गया हो। इसके विपरीत अनेक उदाहरण इस विषय के मिलते हैं जिनमें कि हमारी सेना ने भयङ्कर बदला लिया × × ×।"*

निस्सन्देह इस बयान में उन अङ्गरेज़ पुरुषों की ओर इशारा नहीं है जो युद्ध में लड़ते हुए मारे गए।

---

* "While he was in India he endeavoured with utmost conscientiousness to find out whether or not there had been any case of mutilation, and he had been assured by men, who had been employed by the Government to make enquiries, and men, who he was sorry to say, would have joyfully pounced on any case of cruelty on the part of the natives, that they had not found one case of mutilation. On the other hand there had been numerous cases of fearful revenge on the part of their own army." —Mr. Layard M. P., *The Home News,* May 17th, 1888, p. 690.

एक दूसरे स्थान पर लेयर्ड ने कहा—

"अत्यन्त सावधानी के साथ जाँच करने के बाद, सबसे उत्तम और सब से अधिक विश्वसनीय लोगों से मुझे जो कुछ सूचना मिली है, उससे मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि दिल्ली, कानपुर, झाँसी तथा अन्य स्थानों पर जो अनेक भीषण अत्याचार कहा जाता है कि अङ्गरेज़ स्त्रियों और बच्चों के ऊपर किए गए, वे सब के सब, लगभग बिना एक भी अपवाद के झूठे हैं और कहने वालों के अपने मन से गढ़े हुए हैं, जिसके लिए उन्हें लज्जा आनी चाहिए।"*

अङ्गरेज़ और प्रामाणिक अङ्गरेज़ लेखकों की सम्मतियाँ इस विषय की भी उद्धृत की जा चुकी हैं कि कानपुर में अङ्गरेज़ स्त्रियों और बच्चों की शोकजनक हत्या नाना साहब की इजाज़त से नहीं की गई और न नाना साहब पर उसकी ज़िम्मेदारी लादना न्याय है। झाँसी में भी निहत्थे अङ्गरेज़ों की हत्या में रानी लक्ष्मीबाई का कोई हाथ न था। बहादुरशाह और नाना साहब, बेगम हज़रतमहल और रानी लक्ष्मीबाई चारों ने समय समय पर अङ्गरेज़ स्त्रियों और बच्चों की रक्षा का पूरा प्रयत्न किया। फ़ॉरेस्ट लिखता है कि अवध के नेताओं ने एक एलान द्वारा अपने अनुयायियों को आज्ञा दी

* "From the information I received from the very best and most trustworthy sources, after the most careful enquiries, I am convinced that the series of horrible cruelties alleged to have been committed upon English women and children at Delhi, Cawnpore, Jhansi and else where were almost without exception shameful fabrications."—*The Times*, 25th August, 1858.

कि—"स्त्रियों अथवा बच्चों की हत्या द्वारा अपने आन्दोलन को कलङ्कित न करना।" अवध के अन्दर असंख्य ही मिसालें इस तरह की मिलती हैं कि जहाँ पर विप्लवकारी ज़मींदारों और जनता ने अङ्गरेज़ स्त्रियों और बच्चों को यहाँ तक कि आश्रित अङ्गरेज़ पुरुषों तक को अपने महलों और मकानों में आश्रय दिया। इसके विपरीत जनरल नील, कूपर, हैवलॉक, हडसन जैसे अनेकों ने स्थान स्थान पर जिस प्रकार के कृत्य किए उनके विषय में स्वयं गवरनर-जनरल लॉर्ड कैनिङ्ग ने २४ दिसम्बर सन् १८५७ को अपनी कौन्सिल के अन्दर जुलाई सन् ५७ की पञ्जाब तथा पश्चिमोत्तर प्रान्त की अवस्था को वर्णन करते हुए कहा था—

"न केवल छोटे बड़े हर प्रकार के अपराधी ही, बल्कि वे लोग भी जिनका अपराध कम से कम अत्यन्त सन्दिग्ध था, बिना किसी भेदभाव के फाँसी पर लटका दिए गए, ग्रामों को आम तौर पर जला डाला गया और लूट लिया गया। इस प्रकार दोषी और निर्दोष, पुरुष और स्त्री, बच्चे और बड़े, सब को बिना भेद भाव के दण्ड दिया गया × × ×।"*

---

* "The indiscriminate hanging, not only of persons of all shades of guilt, but of those whose guilt was at the least very doubtful, and the general burning and plunder of villages, whereby the innocent as well as the guilty, without regard to age or sex, were indiscriminately punished, . . ."—Governor-General in Council, 24th December, 1857, on state of affairs in the previous July, as quoted in *The Other Side of the Medal*, by E. Thompson, p. 73.

नील, हडसन जैसों के अन्य अत्याचारों को दोहराना मानव हृदय को यातना पहुँचाना है।

किन्तु साथ ही भारतीय विप्लवकारी अपनी 'स्वाधीनता और अपने धर्म की रक्षा' के नाम पर खड़े हुए थे। एक ओर का पाप कभी भी दूसरी ओर के पाप को जायज़ नहीं बना सकता। यूरोप और भारत की सभ्यताओं में और दोनों के नैतिक आदर्शों में बहुत बड़ा अन्तर है। अङ्गरेज़ जनरल नील के अत्याचार कानपुर-निवासी भारतीयों द्वारा बीबीगढ़ के शोकजनक हत्याकाण्ड के लिए कोई बहाना नहीं हो सकते। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि लगभग दो सौ अङ्गरेज़ स्त्रियों और बालकों की हत्या—और जहाँ तक पता चल सकता है, सन् ५७ में समस्त भारत के अन्दर इससे अधिक अङ्गरेज़ स्त्रियों और बच्चों की हत्या नहीं की गई—स्वाधीनता के उस युद्ध में भाग लेने वालों पर और उनके द्वारा भारतीय सभ्यता पर सदा के लिए एक कलङ्क रहेगी।

किन्तु फिर यह प्रश्न उठता है कि यदि सन् ५७ का विप्लव सफल हो गया होता तो हालत क्या होती ? यूँ तो सभी क़ौमों और देशों के लिए स्वाधीनता हर हालत में श्रेयस्कर है और पराधीनता सब से बड़ा शाप है। तथापि सन् ५७ के हालात को पढ़ कर तीन बातें हमारी दृष्टि में सब से अधिक चमकती हैं।

एक यह कि जिन हिन्दू और मुसलमानों ने अपने अपने पृथक धर्मों के नाम पर तलवार उठाई, उनके हृदय की सच्चाई में हमें विश्वास है, उनके त्याग भाव का हमें आदर है, किन्तु साथ ही

हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि वे लोग सर्वव्यापी मानव-धर्म की दृष्टि से उच्चतर धार्मिक आदर्शों के लिए खड़े न हुए थे। यदि हिन्दू और मुसलमान दोनों पृथक धर्म सच्चे माने जा सकते हैं तो ईसाई धर्म सच्चा क्यों न माना जाय ? सच यह है कि इन पृथक पृथक धर्मों का समय संसार से बहुत दिनों का उठ चुका। सच्चा वास्तविक मानव धर्म मनुष्य मात्र के लिए एक है। इस सच्चे धर्म की झलक एशिया के अनेक हिन्दू, मुसलमान तथा अन्य महात्माओं की वाणी में समय समय पर मिल चुकी है; यहाँ तक कि वे लोग अपने तईं हिन्दू, मुसलमान इत्यादि कहने से भी परहेज़ करते थे। समस्त संसार इस सच्चे व्यापक धर्म की बाट जोह रहा है और जिस भारत ने कबीर और नानक जैसों को पैदा किया उससे आशा की जाती है कि वह संसार को इस सच्चे सार्वजनिक धर्म की ओर ले जाने में अग्रसर होगा। ऐसी सूरत में सन् ५७ के विप्लवकारियों की 'धर्म, धर्म !' और 'दीन, दीन !' की आवाज़ न सार्वजनिक सत्य की दृष्टि से बहुत ऊँची थी और न धर्म के क्षेत्र में भारत के वास्तविक गौरव के उपयुक्त थी।

हमें इसमें भी सन्देह नहीं कि दोनों धर्मों की जो पृथक पृथक लहरें सन् ५७ में उठ रही थीं, वे जिस प्रकार सन् ५७ से पहले कई बार एक दूसरे के साथ टकरा चुकी थीं, इसी प्रकार यदि सन् ५७ का युद्ध सफल हो गया होता तो कम से कम फिर एक बार उनका प्रचण्ड वेग के साथ आपस में टकराना अनिवार्य था। सम्भव है कि उस टक्कर का परिणाम अन्त में अच्छा ही होता

और वह टक्कर ही हमें शीघ्र सार्वजनिक सत्य की चट्टान तक पहुँचा देती। सम्भव है कि सन् १७५७ से १८५७ तक के अनुभवों के कारण उस टक्कर में से अनेक कबीर और अकबर पैदा हो जाते, और यह अत्यन्त जटिल समस्या सुन्दरता-पूर्वक सदा के लिए हल हो जाती। कम से कम सम्भव है कि फिर किसी तीसरी ताक़त को अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए इस समस्या को जान बूझ कर और अधिक जटिल बना देने का मौक़ा न मिलता। किन्तु वह टक्कर देश को किस ओर ले जाती और इस सब में कितना समय लगता, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

दूसरी बात यह है कि सन् ५७ का समय प्राचीन तथा उच्च कुलों के मान, उनकी सत्ता और कुलीनता के अभिमान का समय था। इन कुलों ही के नाम पर सन् ५७ का युद्ध शुरू हुआ। वास्तविक प्रजातन्त्र अथवा मानव समानता के अङ्कुर उस समय तक इस भूमि में बहुत कम फूटने पाए थे। हमें सन्देह है कि दिल्ली में बख्त ख़ाँ को, लखनऊ में मौलवी अहमदशाह को और कानपुर तथा महाराष्ट्र में अज़ीमुल्ला ख़ाँ और तात्या टोपी को केवल इस कारण यथेच्छ सफलता न मिल सकी, क्योंकि वे किसी राजकुल में पैदा न हुए थे। सम्भव है कि सन् ५७ के विप्लव की सफलता के बाद एक तो इन विविध कुलों में परस्पर अविरोध क़ायम रहना इतना सरल न होता, दूसरे मानव समता, समानता और प्रजातन्त्र के दिन भारत से और अधिक दूर चले गए होते।

तीसरी बात यह है कि यद्यपि एक ओर बहादुरशाह, हज़रत-

महल, कुँवरसिंह और लक्ष्मीबाई जैसों के चित्र और चरित्र और दूसरी ओर कैनिङ्ग, नील, हैवलॉक और हडसन जैसों के चित्र और चरित्र दोनों में साफ़ अन्तर दिखाई देता है; यद्यपि एक के ऊपर भारत के उच्चतर नैतिक आदर्शों और दूसरे के ऊपर पश्चिम के हीन आदर्शों की छाप साफ़ दिखाई देती है, तथापि जिन साधनों से सन् ५७ के विप्लवकारी अङ्गरेज़ों का मुक़ाबला कर रहे थे, वे अधिकतर पश्चिमी साधन थे, अथवा मानव सभ्यता के अधिक अनुन्नत काल के साधन थे। सन् ५७ में जिस पक्ष की भी विजय होती वह विजय 'हिंसा' के सिद्धान्त की ही होती। स्वाभाविक था कि उस संग्राम में वही पक्ष अन्त में विजय प्राप्त करे जो 'हिंसा' के सिद्धान्त और उसके उपयोग में अधिक निस्सङ्कोच और अधिक सिद्धहस्त हो। भारत अथवा एशिया का वास्तविक और चिरकालीन गौरव इस प्रकार की विजय में न था। हमें पूर्ण विश्वास है कि 'हिंसा' के ऊपर 'अहिंसा' की श्रेष्ठता और अधिक बलवत्ता की क्रियात्मक शिक्षा संसार को देने का कार्य भारत ही के लिए नियुक्त है और सन् ५७ के राष्ट्रीय विप्लव की शताब्दी से पहले भारत के पग स्पष्ट उस अधिक ज्वलन्त विजय की ओर बढ़ते हुए दिखाई दे रहे हैं।

प्रतीत होता है कि इन सब त्रुटियों की पूर्त्ति के लिए और भारतीय आत्मा के पूर्ण परिमार्जन के लिए ही अभी इस देश का कुछ और समय तक विदेशी शासन के तापदिव्य में से होकर निकलना आवश्यक था।

दूसरा एक प्रश्न यह भी उत्पन्न होता है कि यदि सन् ५७ का विप्लव ही न हुआ होता तो नतीजा क्या होता ? सन् १७५७ से १८५७ तक के कम्पनी के राज्य और उसके साधनों तथा कृत्यों का वर्णन इस पुस्तक में किया जा चुका है। उस समस्त दुःखकर कहानी को दोहराना असम्भव और निरर्थक है। लॉर्ड डलहौजी ही के भारतीय रियासतों को हड़पने के विषय में हम इतिहास-लेखक लडलो की यह राय उद्धृत कर चुके हैं कि—"यदि इन हालात में उन लोगों के पक्ष में, जिनकी रियासतें छीन ली गई थीं और छीनने वालों के विरुद्ध भारतवासियों के भाव न भड़क उठते तो भारतवासी मनुष्यत्व से गिरे हुए समझे जाते।"*

इसी प्रकार यदि दिल्ली सम्राट के लगातार अपमान और लखनऊ की स्वाधीनता के नाश से भारतवासियों के हृदयों में जोश उत्पन्न न होता तो वे मनुष्य न कहला सकते। ऐसे ही मनुष्य का विचार चाहे सत्य हो वा असत्य, किन्तु जिस चीज़ को भी मनुष्य अपना धर्म समझता है उसको आघात से बचाने के लिए यदि वह अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार नहीं हो जाता, तो उसे मनुष्य नहीं कहा जा सकता।

ऐसी अवस्था में यदि भारतवासियों में मनुष्यत्व शेष था तो सन् ५७ का विप्लव स्वाभाविक और अनिवार्य था। उस विप्लव के आदर्शों के विषय में अथवा विप्लवकारियों के सम्मुख वास्तविक

---

* " *Thoughts on the Policy of the Crown,* by Ludlow, pp. 35, 36.

और उच्चतर आदर्शों के अभाव के विषय में हम चाहे कुछ भी क्यों न कहें, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यदि सन् ५७ का विप्लव न हुआ होता तो उसका यही अर्थ था कि भारतवासियों में से साहस, आत्मगौरव, कर्तव्यपरायणता और जीवन-शक्ति का अन्त हो चुका। अङ्गरेज़ शासकों के हौसले फिर सहस्रों गुणे बढ़ गए होते और भारतवासियों के जीवन में आशा की छटा तक कहीं दिखाई न देती। इसमें तो कुछ भी सन्देह नहीं कि फिर हिन्दू अथवा मुसलमान एक भी देशी रियासत भारत में बाक़ी न बची होती। भारतवासियों की अवस्था इस समय तक लगभग वैसी ही होती जैसी अफ़रीका और अमरीका के उन आदिमनिवासियों की, जिनके सहस्रों वर्षों के अस्तित्व को यूरोपियन जातियों ने संसार से मिटा दिया और जिनके प्रदेशों में अब यूरोपियन जातियों के उपनिवेश बने हुए हैं। इस सब दृष्टि से सन् ५७ के विप्लवकारियों का भीषण बलिदान कदापि व्यर्थ नहीं गया। उन लोगों के असफल प्रयत्नों ने, जब कि एक ओर अङ्गरेज़ शासकों के नेत्र खोल दिए और उन्हें सावधान कर दिया, दूसरी ओर उन्होंने भारतवासियों के राष्ट्रीय जीवन में आशा और आत्मविश्वास की वह झलक पैदा कर दी जो सौ वर्ष तक भी कदापि फीकी नहीं पड़ सकती।

एक और बात इस विषय में ध्यान देने योग्य है। किसी भी देश की कोई इतनी महान घटना संसार के अन्य देशों पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती। ठीक सन् ५७ में अङ्गरेज़ चीन के साथ युद्ध करने का सङ्कल्प कर चुके थे। जिस अङ्गरेज़ी

सेना की मदद से लॉर्ड कैनिङ्ग ने भारत को फिर से विजय किया, उसमें से अधिकांश चीन पर हमला करने के लिए रवाना हो चुकी थी, और लॉर्ड कैनिङ्ग ने भारत की आपत्ति को देख कर उसे बीच ही में रोक लिया। उस समय का चीन भी ४० वर्ष बाद के बॉक्सर युद्ध के समय के चीन से कहीं अधिक निर्बल देश था। सन् ५७ का जापान भी लगभग तीन सौ छोटी छोटी रियासतों में बँटा हुआ था, जिनमें परस्पर प्रतिस्पर्धा और आए दिन के संग्राम होते रहते थे। उस समय का जापान राजनैतिक दृष्टि से किसी प्रकार उस समय के भारत से अधिक बलवान अथवा अधिक अच्छी अवस्था में न था। भारतीय विप्लव के ११ वर्ष बाद जापानी देशभक्तों ने, अपने यहाँ की २७३ सैकड़ों वर्षों की पुरानी रियासतों को अन्त कर, देश में एक प्रधान शासन क़ायम किया। सन् १८६८ के इस महान परिवर्तन से ही जापान की समस्त जागृति का प्रारम्भ हुआ। प्रसिद्ध अङ्गरेज़ तत्ववेत्ता हरबर्ट स्पेन्सर का वह ऐतिहासिक पत्र, जिसमें उसने भारत की ओर सङ्केत करते हुए जापानी नीतिज्ञों को यूरोप तथा अमरीका निवासियों की चालों की ओर से सावधान किया, भारतीय विप्लव के बाद का ही लिखा हुआ था। कौन कह सकता है कि यदि चीन और जापान दोनों देश पाश्चात्य क़ौमों के अधीन होने से बचे रहे तो इसका श्रेय किस दरजे तक सन् ५७ के विप्लव के उन प्रवर्त्तकों तथा सञ्चालकों को मिलना चाहिए जिन्होंने एशियाई जीवन के उस ऐन नाज़ुक मौक़े पर ब्रिटिश महत्वाकांक्षा को कुछ दिनों के लिए एक ज़बरदस्त

धक्का पहुँचाया, और अन्य एशियाई देशों को पाश्चात्य कूटनीति की ओर से सावधान हो जाने का मौक़ा दिया।

जो हो, भारतवासियों के लिए अब मुख्य कार्य केवल अपने धार्मिक, सामाजिक तथा नैतिक आदर्शों को स्थिर करना है। इसी के साथ साथ उन्हें 'हिंसा' के बल के मुक़ाबले में 'अहिंसा' के बल को समझना होगा और अपनी आत्मा के अन्दर 'अहिंसा' की अजेयता और उपयोगिता में विश्वास उत्पन्न करना होगा। हम ऊपर लिख चुके हैं कि भारत के पग उस भावी अपूर्व विजय की ओर साफ़ और दृढ़ता के साथ बढ़ते हुए दिखाई दे रहे हैं। प्रश्न केवल समय का है।

अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक फ़ॉरेस्ट लिखता है—

"सन् ५७ का विप्लव हमें इस बात की याद दिलाता है कि हमारा साम्राज्य एक ऐसे पतले छिलके के ऊपर क़ायम है, जिसके किसी भी समय सामाजिक परिवर्त्तनों और धार्मिक क्रान्तियों की प्रचण्ड ज्वालाओं द्वारा टुकड़े टुकड़े हो जाने की सम्भावना है।"*

---

* "The Mutiny reminds us that our dominions rest on a thin crust ever likely to be rent by titanic fires of social changes and religious revolutions."—*State Papers*, by Forrest, Introduction.

इक्यावनवाँ अध्याय

विप्लव के पश्चात्

न् १८५७ के विप्लव ने अङ्गरेज़ नीतिज्ञों की आँखें खोल दीं। वे अब अनुभव करने लगे कि जिस तेज़ी के साथ वे कुछ समय पूर्व से भारत की देशी रियासतों का अन्त करने और देश के समस्त मानचित्र को लाल रँग देने के प्रयत्नों में लगे हुए थे वह साम्राज्य की भावी स्थिरता के लिए कल्याण-सूचक न थी। वे समझ गए कि साम्राज्य को और अधिक विस्तार देने की अपेक्षा अब उसकी मज़बूती के उपाय करना अधिक आवश्यक है। उन्हें अपनी लगभग एक सौ वर्ष की शासन-नीति को फिर से दोहराने की ज़रूरत महसूस हुई। सन् ५७-५८ के अन्दर भारत और इङ्गलिस्तान के समाचार पत्रों तथा राजनैतिक केन्द्रों में इस विषय की खूब बहसें हुईं। अन्त को जो मुख्य-मुख्य उपाय साम्राज्य की भावी मज़बूती के लिए सब से अधिक महत्त्वपूर्ण समझे गए और जिनके ऊपर बहुत दर्जे तक विप्लव के पश्चात् ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य की नीति ढाली गई उन्हें हम एक एक कर नीचे बयान करते हैं,—

१—ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अन्त

सन् १८५८ तक ब्रिटिश भारत का शासन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों में था। हम ऊपर लिख चुके हैं कि सन् १६०० ईसवी में इङ्गलिस्तान की मलका एलिज़ेबेथ ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की रचना की थी और फिर हर बीस वर्ष के बाद इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट एक नए 'चारटर एक्ट' द्वारा भारत के अन्दर कम्पनी के अधिकारों को पक्का करती रहती थी। जिसका अर्थ यह है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी वास्तव में पार्लिमेण्ट की केवल एक एजण्ट थी।

क्लाइव से पहले ईस्ट इण्डिया कम्पनी का काम भारत में केवल व्यापार करना था। क्लाइव के समय से भारत के कुछ इलाक़े के ऊपर कम्पनी का शासन प्रारम्भ हुआ। उसके बाद वारन हेस्टिंग्स ब्रिटिश भारत का पहला गवरनर-जनरल नियुक्त हुआ। वारन हेस्टिंग्स ही के समय में इङ्गलिस्तान के एक मन्त्री फ़ॉक्स ने पार्लिमेण्ट के सामने यह तजवीज़ पेश की कि भारतवर्ष में जो कुछ इलाक़ा कम्पनी को मिल गया है उसका शासन-प्रबन्ध कम्पनी के हाथों से लेकर इङ्गलिस्तान के बादशाह और इङ्गलिस्तान के मन्त्रिमण्डल के हाथों में दे दिया जाय। हाउस ऑफ़ कॉमन्स ने फ़ॉक्स की इस तजवीज़ को मञ्ज़ूर कर लिया। किन्तु हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के धनाढ्य हिस्सेदारों का प्रभाव अधिक था, इसलिए हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स ने फ़ॉक्स की तजवीज़ को नामञ्ज़ूर कर दिया।

इसके अगले ही वर्ष अर्थात् सन् १७८३ में प्रधान मन्त्री पिट

ने यह नई तजवीज़ पेश की कि इङ्गलिस्तान के मन्त्रिमण्डल का एक पृथक मोहकमा क़ायम किया जाय जिसे 'बोर्ड ऑफ़ कण्ट्रोल' कहा जाय। मन्त्रिमण्डल का एक सदस्य इस बोर्ड का प्रधान रहे, और कम्पनी के डाइरेक्टर अपने भारतीय इलाक़ों के शासन का जो कुछ प्रबन्ध करें वह सब इस बोर्ड की देख रेख में करें। सन् १७८४ से लेकर सन् १८५८ तक इस सरकारी मोहकमे और कम्पनी के डाइरेक्टर; दोनों के संयुक्त नियन्त्रण में ब्रिटिश भारत की शासन-नीति चलाई जाती रही। दूसरे शब्दों में लगभग आरम्भ से ही ब्रिटिश भारत के शासन की वास्तविक बाग इङ्गलिस्तान की सरकार और वहाँ की पार्लिमेण्ट के हाथों में थी, और ईस्ट इण्डिया कम्पनी इस विषय में उनकी केवल एक एजण्ट थी।

सन् १७८३ के बाद सन् १८१३ में एक नई बात यह की गई कि उस समय से भारत के व्यापार का भी अनन्य अधिकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी से लेकर पार्लिमेण्ट ने प्रत्येक अङ्गरेज़ और अङ्गरेज़ कम्पनी को इस देश के साथ व्यापार करने का अधिकार दे दिया। इसका कारण यह था कि इङ्गलिस्तान तथा भारत के बीच का व्यापार अत्यन्त बढ़ गया था और समस्त अङ्गरेज़ क़ौम उससे लाभ उठाने के लिए लालायित थी। हम ऊपर एक अध्याय में दिखा चुके हैं कि भारत के प्राचीन उद्योग धन्धों का सर्वनाश और भारत की वर्त्तमान दरिद्रता का मूल कारण सन् १८१३ का ही 'चारटर' था।

प्रत्येक नए चारटर में अङ्गरेज़ क़ौम और अङ्गरेज़ व्यापारियों

के असली उद्देश पर परदा डालने के लिए कोई न कोई वाक्य इस प्रकार का जोड़ दिया जाता था जिससे मालूम हो कि विदेशियों का मुख्य उद्देश केवल भारतवासियों का उपकार करना है। उदाहरण के लिए सन् १८१३ के चारटर में यह लिखा गया कि भारत के "अङ्गरेज़ी इलाक़ों के बाशिन्दों के सुख और उनके हित को उन्नति देना"* इङ्गलिस्तान का "कर्तव्य" है, इत्यादि।

सन् १८३३ के एक्ट में दर्ज है—

"इन इलाक़ों के किसी बाशिन्दे को, अथवा इन इलाक़ों में रहने वाली बादशाह की किसी क़ुदरती प्रजा को, केवल उसके मज़हब, या जन्म स्थान, या नसल, या रङ्ग के कारण, कम्पनी के मातहत किसी मुलाज़मत, पदवी अथवा ओहदे के अयोग्य न समझा जायगा।"†

सन् १८३३ और सन् १८५३ के दरमियान भारत के अन्दर अङ्गरेज़ी राज्य की सीमाएँ इतनी अधिक बढ़ चुकी थीं कि फिर १८५३ के 'चारटर एक्ट' में इस तरह के किसी परोपकार-सूचक वाक्य की आवश्यकता अनुभव न हुई।

सन् १८५३ के चारटर एक्ट के पास होने के समय जो गवाहियाँ पार्लिमेण्ट की सिलेक्ट कमेटी के सामने दी गईं, उनसे

---

* "To promote the interest and happiness of the inhabitants of the British Dominions."—Charter Act of 1813.

† "That no Native of the said territories, nor any natural-born subject of His Majesty resident therein, shall, by reason only of his religion, place of birth, descent, color, or any of them, be disabled from holding any place, office, or employment under the said company."—Charter Act of 1833.

साफ़ मालूम होता है कि उस समय भारत के अङ्गरेज़ शासकों का एक मात्र लक्ष्य जिस तरह हो सके, भारत का धन चूस कर इङ्गलिस्तान को धनाढ्य बनाना, और अङ्गरेज़ी शिक्षा तथा ईसाई मत प्रचार द्वारा भारतवासियों के राष्ट्रीय चरित्र को निर्बल कर उन्हें सदा के लिए अङ्गरेज़ क़ौम का ग़ुलाम बनाए रखना था।

विप्लव से बहुत पहले इङ्गलिस्तान के अन्दर इस बात के लिए फिर ज़बरदस्त आन्दोलन हो रहा था कि कम्पनी के विशाल भारतीय साम्राज्य का शासन कम्पनी के हाथों से लेकर बराहरास्त इङ्गलिस्तान के बादशाह और इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के हाथों में दे दिया जाय। इस आन्दोलन के दो मुख्य कारण थे—

एक यह कि इङ्गलिस्तान के उद्योग धन्धे और इङ्गलिस्तान का व्यापार उस समय वेग के साथ बढ़ रहा था। इङ्गलिस्तान के रहने वालों को अपनी सांसारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हिन्दोस्तान के अन्दर अधिक बेरोक टोक मैदान की ज़रूरत थी। इसके लिए, "हिन्दोस्तान के द्रव्य साधनों को उन्नति देना (Development of the resources of India)"—यह एक नया कूटवाक्य रचा गया; जिसका अर्थ यह था कि रेल, तार, डाकख़ाने, रुई की काश्त, रुई और नाज का इङ्गलिस्तान भेजा जाना, इत्यादि उपायों द्वारा अङ्गरेज़ों के लिए भारत से धन खींचने में सुविधाएँ पैदा कर दी जायँ। कहा गया कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कारण भारत के द्रव्य साधनों को पूरी तेज़ी के साथ उन्नति नहीं दी जा सकती!

दूसरा कारण यह था कि इङ्गलिस्तान निवासी भारत के उर्वर मैदानों में आकर बसना और भारत को ऑस्ट्रेलिया, अफ़रीका, अमरीका आदि के समान इङ्गलिस्तान का एक उपनिवेश बना देना चाहते थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी इस तरह के उपनिवेश बनाने के विरुद्ध थी।

ये दो मुख्य कारण थे जिनसे इङ्गलिस्तान के लोग कम्पनी के तोड़े जाने और ब्रिटिश भारत का शासन इङ्गलिस्तान के बादशाह के हाथों में दिए जाने के लिए बहुत दिनों से आन्दोलन कर रहे थे। सन् ५७ के विप्लव से इन लोगों को एक बहुत अच्छा मौक़ा मिल गया। सन् १८५८ में पार्लिमेण्ट के सामने यह तजवीज़ पेश की गई। इसके उत्तर में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों ने एक लम्बा प्रार्थना पत्र लिख कर फ़रवरी सन् १८५८ में पार्लिमेण्ट के सामने पेश किया। डाइरेक्टरों ने इस पत्र में अपने सौ वर्ष के शासन के उपकारों को दर्शाते हुए यह प्रार्थना की कि शासन की बाग कम्पनी ही के हाथों में रहने दी जाय। हाल के विप्लव की ओर इशारा करते हुए और अपने शासन की सफलता को दर्शाते हुए डाइरेक्टरों ने इस पत्र में लिखा—

"हम लोगों को यह दिखाने की आवश्यकता नहीं है कि हाल की दुर्घटना में यदि देशी नरेश बजाय बलवे को दमन करने में हमें सहायता देने के, बलवे के मार्ग प्रदर्शक बन जाते अथवा यदि साधारण जनता बलवे में शामिल हो जाती तो इस दुर्घटना का परिणाम शायद कितना भिन्न होता।"*

---

* " . . . how very different would probably have been

इसी प्रार्थना पत्र में कम्पनी के डाइरेक्टरों ने लिखा कि "जिस उसूल का इस समय इङ्गलिस्तान में बड़े ज़ोरों के साथ प्रचार किया जा रहा है वह यह है कि हिन्दोस्तान पर शासन करने में हमें खास नज़र इसी बात पर रखनी चाहिए कि जो अङ्गरेज वहाँ रहते हैं, उनको किसी तरह फ़ायदा हो।"*

डाइरेक्टरों ने इस पत्र में पार्लिमेण्ट को विस्तार के साथ यह सलाह दी कि भारत के भावी शासन में किन किन बातों के ख़ास ख़याल रखने की ज़रूरत है।

कम्पनी की प्रार्थना का अब स्वीकार हो सकना असम्भव था। भारतवासियों के दिलों को भी किसी नए और गहरे परिवर्तन द्वारा अपनी ओर करने की आवश्यकता थी। सन् १८५८ में ही भारत के अन्दर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन का ख़ात्मा कर दिया गया। ब्रिटिश भारत के शासन की बाग इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट ने स्वयं अपने हाथों में ले ली। तथापि जिस उसूल का अभी ऊपर ज़िक्र किया गया है, उसका समर्थन करते हुए हाउस ऑफ़

---

the issue of the late events, if the Native princes instead of aiding in suppressing the rebellion, had put themselves at its head, or if the general population had joined in the revolt:"—East India Company's petition to Parliament, 1858.

* "The doctrine now widely promulgated that India should be administered with an special view to the benefit of the English who reside there."—Ibid.

कॉमन्स ने १६ मार्च सन् १८५८ को एक नई कमेटी नियुक्त की, जिसका कार्य नीचे लिखे शब्दों में निश्चित किया गया—

"यह तहक़ीक़ात की जाय कि हिन्दोस्तान में, विशेष कर देश के पहाड़ी ज़िलों और अधिक स्वास्थ्यजनक स्थानों में यूरोपियनों की बस्तियाँ आबाद करने और उपनिवेश बढ़ाने के लिए और साथ ही मध्य एशिया के साथ हमारे व्यापार को उन्नति देने के लिए क्या क्या किया जा चुका है, क्या क्या किया जा सकता है, और उसके क्या क्या सर्वोत्तम उपाय हैं ?"*

सर चार्ल्स मेटकाफ़ ने यह राय देते हुए कि भारत का शासन कम्पनी के हाथों से लेकर पार्लिमेण्ट के हाथों में दे दिया जाय, लिखा कि—

"यद्यपि मालूम होता है कि भारतवासी इस विषय में सर्वथा उदासीन हैं कि भारत के ऊपर कम्पनी द्वारा शासन किया जाय अथवा बराहरास्त इङ्गलिस्तान के मन्त्रियों द्वारा, तथापि भारत की दूसरी प्रजा इस विषय में उदासीन नहीं है, अर्थात् जो यूरोपियन भारत में रहते हैं और जो कम्पनी के नौकर नहीं हैं और इनके अलावा आम तौर पर वे सब लोग जो दोग़ली नसल के हैं, वे अब कभी भी कम्पनी के शासन से सन्तुष्ट न होंगे।"

इसके बाद किसी को भी इस विषय में सन्देह नहीं हो सकता

* "To inquire into the progress and prospects, and the best means to be adopted for the promotion of European colonization and settlement in India, especially in the hill districts and healthier climates of that country; as well as for the extension of our commerce with Central Asia."—Terms of Reference of the Select Committee of the House of Commons, 16th March, 1858.

कि भारत का शासन कम्पनी के हाथों से लेकर इङ्गलिस्तान के मन्त्रि-मण्डल के हाथों में देने का उद्देश भारतवासियों को लाभ पहुँचाना न था, वरन् भारत के सर्वोत्तम प्रदेशों में यूरोपनिवासियों के उपनिवेश बना कर भारतवासियों को अपने गोरे मालिकों के लिए "लकड़ी चीरने वालों और पानी भरने वालों" की अवस्था तक पहुँचा देना था। कम्पनी के शासन को अन्त कर देने में ही अब अङ्गरेज़ नीतिज्ञों को ब्रिटिश साम्राज्य की स्थिरता तथा उसका भावी हित दिखाई देता था।

२—मलका विक्टोरिया का एलान

विप्लव के पूरी तरह शान्त होने से पहले ही भारत का शासन कम्पनी के हाथों से लेकर इङ्गलिस्तान' की सरकार के हाथों में दे दिया गया। मलका विक्टोरिया उस समय इङ्गलिस्तान के सिंहासन पर थी। हिन्दोस्तान के राजाओं, रईसों, सरदारों और समस्त प्रजा के नाम मलका की ओर से एक एलान प्रकाशित किया गया, जिसका ज़िक्र हम ऊपर एक अध्याय में कर चुके हैं। सार रूप में इस एलान के अन्दर नए अधिकार-परिवर्त्तन की सूचना दी गई, भारतवासियों को मलका, उसके उत्तराधिकारियों और उनके द्वारा नियुक्त अफ़सरों के वफ़ादार रहने की सलाह दी गई, लॉर्ड कैनिङ्ग को भारत का पहला वाइसराय नियुक्त किया गया, देशी राजाओं को यह विश्वास दिलाया गया कि जो सन्धियाँ और अहदनामे आप लोगों के साथ इस समय तक किए जा चुके हैं, इङ्गलिस्तान की सरकार उन पर क़ायम रहेगी। भारतीय प्रजा को विश्वास दिलाया

गया कि तुम्हारे मजहब में किसी तरह का हस्तक्षेप न किया जायगा, और अन्त में लोगों से विप्लव को शान्त करने की प्रार्थना करते हुए मलका विक्टोरिया ने एलान किया—

"जब ईश्वर की कृपा से देश के अन्दर फिर से शान्ति स्थापित हो जायगी, तब हमारी यह हार्दिक इच्छा है कि हिन्दोस्तान की कारीगरी को उन्नति दी जाय, ऐसे ऐसे काम बढ़ाए जायँ जिनसे आम जनता का लाभ तथा उनकी उन्नति हो, और शासन इस तरह से चलाया जाय जिससे भारत में रहने वाली हमारी समस्त रिआया को लाभ हो। प्रजा की खुशहाली ही में हमारा बल है, उनके सन्तोष में हमारी सलामती है, और उनकी कृतज्ञता हमारे लिए सब से अच्छा इनाम है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा हमें और हमारे मातहत अफ़सरों को बल दे, ताकि हम अपनी इन इच्छाओं को अपनी प्रजा के हित के लिए पूरा कर सकें।"

पूर्वोक्त वाक्य इस एलान का सब से अधिक चित्ताकर्षक वाक्य है। अनेक भोले भारतवासी एलान के इन शब्दों को विदेशी शासन के रहते हुए अपने लिए भावी कल्याण का सूचक समझ बैठे। किन्तु वास्तव में इस एलान का मूल्य इस प्रकार के अन्य राजनैतिक एलानों से किसी प्रकार अधिक न था और न यह एलान अथवा कम्पनी से लेकर इङ्गलिस्तान के बादशाह के हाथों में शासन की बाग का दिया जाना भारत की ओर अङ्गरेज़ शासकों की नीति में किसी तरह के भी मौलिक परिवर्तन का द्योतक था। इस एलान का मुख्य उद्देश विप्लव के बिरझाए हुए भारतवासियों के दिलों को किसी प्रकार शान्त करना था; और

इसमें सन्देह नहीं, इस उद्देश में अङ्गरेज़ों को काफ़ी सफलता प्राप्त हुई। प्रसिद्ध अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक फ़्रीमैन इस तरह के एलानों के विषय में लिखता है—

"किन्तु जब हम विज्ञप्तियों और एलानों की ओर आते हैं × × × तो हम झूठ के अत्यन्त अभीष्ट क्षेत्र में पहुँच जाते हैं, × × × निस्सन्देह जो मनुष्य पार्लिमेण्ट के हर कार्य या हर क़ानून पर विश्वास कर लेता है, वह बालक की तरह भोला है।"*

इस तरह के जितने वादे इङ्गलिस्तान ने हिन्दोस्तान के साथ किए हैं, उन सबको मारकिस ऑफ़ सैलिसबरी ने साफ़ "राजनैतिक छल (Political hypocrisy)" बतलाया था।

भारत सरकार के प्रसिद्ध और सुयोग्य लॉ मेम्बर सर जेम्स स्टीफ़ेन ने मलका विक्टोरिया के इस ख़ास एलान के विषय में कहा था कि यह एलान—"केवल एक रसमी पत्र था, यह कोई अहदनामा न था जो भारत के अङ्गरेज़ शासकों के ऊपर किसी तरह का भी बन्धन हो, इस एलान की कोई भी क़ानूनी क़ीमत नहीं है (The Proclamation has no legal force whatever.)।"

इङ्गलिस्तान की राज-व्यवस्था के अनुसार भी मलका को कोई इस प्रकार का अधिकार प्राप्त न था और न इङ्गलिस्तान के

---

* " . . . But when we come to manifestoes, proclamations . . . here we are on the very chosen region of lies, . . . He is of child like simplicity indeed who believes every act of Parliament, . . ."—Freeman's *Methods of Historical study*, pp. 258, 259.

किसी बादशाह को प्राप्त है, जिससे इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट अथवा वहाँ के मन्त्री बादशाह के किसी एलान के अनुसार अमल करने के लिए मजबूर किए जा सकें।

पहली नवम्बर सन् १८५८ को लॉर्ड कैनिङ्ग ने यह एलान इलाहाबाद में पढ़ कर सुनाया। भारत के अङ्गरेज़ शासकों ने उस समय से आज तक इस एलान के वादों की अपने व्यवहार में अणुमात्र भी परवा नहीं की।

३—देशी रियासतों को क़ायम रखना

हम ऊपर लिख चुके हैं कि लॉर्ड डलहौज़ी का उद्देश भारत के समस्त मानचित्र को अङ्गरेज़ी राज्य के रङ्ग में रँग देना था। पञ्जाब, नागपुर, अवध, सतारा, झाँसी इत्यादि पर क़ब्ज़ा किया जा चुका था। १८ अप्रेल सन् १८५६ को पार्लिमेण्ट के सामने वक्तृता देते हुए सर अर्सकाइन पेरी ने कहा था,—"इसके बाद अब निज़ाम के राज्य की बारी है। उसके बाद मालवा की उर्वर भूमि पर क़ब्ज़ा किया जायगा, जहाँ की काली मिट्टी में रुई और अफ़ीम बहुत अच्छी पैदा हो सकती हैं। फिर गुजरात, जो उससे भी ज्यादा ज़रखेज़ है, इत्यादि। राजपूताना और बाक़ी की छै करोड़ देशी प्रजा को इसके बाद विजय किया जायगा।" इत्यादि।*

किन्तु अगले ही वर्ष विप्लव ने अङ्गरेज़ों की आँखें खोल दीं।

---

* Speech by Sir Erskine Perry in the House of Commons on April 18th, 1856.

वे समझ गए कि लॉर्ड डलहौज़ी की अपहरण नीति विप्लव का एक मुख्य कारण थी। उन्हें अब अपना हित और अपने साम्राज्य की स्थिरता हिन्दोस्तान की बाक़ी देशी रियासतों के क़ायम रहने में ही दिखाई देने लगी।

निस्सन्देह विप्लव के बाद भी अथवा विप्लव के ऐन दिनों में भी कुछ ऐसे अङ्गरेज़ मौजूद थे, जो रही सही देशी रियासतों को ख़त्म करके अङ्गरेज़ी राज्य में मिला लेने के पक्ष में थे। सन् १८५८ में लन्दन में "इण्डियन पॉलिसी (भारतीय नीति)" नामक एक पत्रिका प्रकाशित हुई, जिसमें भारत के अङ्गरेज़ शासकों को यह सलाह दी गई कि प्रत्येक देशी नरेश के मरने पर वे उसके राज्य पर क़ब्ज़ा कर लें। किन्तु विचारवान् अङ्गरेज़ नीतिज्ञों को इस सलाह के मानने में अपने साम्राज्य का हित दिखाई न दिया। यही कारण है कि विप्लव के बाद से अब तक एक बरमा को छोड़ कर किसी नई देशी रियासत पर क़ब्ज़ा नहीं किया गया। इसमें भी सन्देह नहीं कि जिस नीति का पिछले ७० वर्ष के अन्दर अङ्गरेज़ों ने देशी नरेशों के साथ व्यवहार किया है, उसके परिणाम रूप भारत की लगभग समस्त देशी रियासतें ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य की स्थिरता में किसी प्रकार बाधक हो सकने के स्थान पर साम्राज्य की विशेष पोषक बनी हुई हैं।

अङ्गरेज़ों की देशी फ़ौजों के सिपाही अधिकतर देशी रियासतों से ही भरती किए जाते हैं, और ब्रिटिश भारत के किसी भी विद्रोह को दमन करने में वे ही अधिक उपयोगी साबित होते हैं।

४—भारत में अङ्गरेज़ी उपनिवेश

भारत में अङ्गरेज़ों के उपनिवेश बसाने का चरचा वारन हेस्टिंग्स के समय से चला आता था। किन्तु अनेक अङ्गरेज़ उन दिनों इस तरह के उपनिवेशों को बढ़ने देने के विरुद्ध थे। उदाहरण के लिए वारन हेस्टिंग्स की कौन्सिल के सदस्य मॉनसन की राय थी कि अङ्गरेज़ भारत में खेती इत्यादि का कार्य न कर सकेंगे, और यदि करने की चेष्टा करेंगे तो उनका रहन सहन भारतीय प्रजा की अपेक्षा इतना मँहगा होगा कि उससे सरकार की आमदनी में बहुत बड़ी कमी पड़ जायगी।

७ नवम्बर सन् १७९४ को कॉर्नवालिस ने इङ्गलिस्तान के भारत मन्त्री डण्डास को लिखा कि—"ब्रिटेन के हित के लिए यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि यूरोपनिवासियों को जहाँ तक हो सके हमारे भारतीय इलाक़ों में उपनिवेश बनाने और बसने से रोका जाय।"

४ फ़रवरी सन् १८०१ को डाइरेक्टरों ने भारत में इस तरह के उपनिवेशों के विरुद्ध एक प्रस्ताव पास किया।

सन् १८१३ में इङ्गलिस्ताननिवासियों के लिए भारत आने और व्यापार करने का क्षेत्र अधिक विस्तृत कर दिया गया। दक्षिण तथा उत्तर में कई नए पहाड़ी इलाक़े इसके बाद अङ्गरेज़ी राज्य में मिलाए गए। इसलिए इङ्गलिस्तान के कुछ लोगों ने फिर भारत में अपने उपनिवेश बनाने के पक्ष में आन्दोलन शुरू किया। इन लोगों की मुख्य दलील यह थी कि इस तरह के उपनिवेशों की मदद से अङ्गरेज़ी राज्य भारत में अधिक दिनों तक क़ायम रह सकेगा।

अन्य नीतिज्ञों के अतिरिक्त सर फ्रेडरिक शोर भी उपनिवेशों के पक्ष में था। उसकी दलील यह थी—

"अङ्गरेज़ी सत्ता के उलट जाने से इस तरह के नए बसे हुए (विदेशी) लोगों को कोई फ़ायदा न होगा, बल्कि उन्हें हर तरह से नुक़सान होगा, इसलिए किसी भी उपद्रव अथवा विद्रोह के समय ये लोग अपना सारा प्रभाव गवरमेण्ट के पक्ष में लगा देंगे, और अपने देशी नौकरों, साथियों आदिक को भी ऐसा ही करने के लिए उत्तेजित करेंगे; इसके विपरीत भारतवासियों के भाव अङ्गरेज़ सरकार की ओर इस तरह के हैं कि जब कभी कोई विद्रोह होता है तब जो लोग विद्रोह में शामिल नहीं होते, वे भी तटस्थ रहते हैं, किन्तु सरकार को प्रायः कोई भी सहायता नहीं देता।"*

सर चार्ल्स मेटकाफ़ और लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क भी भारत में उपनिवेश बनाने के पक्ष में थे। उनकी दलीलें भी ठीक इसी प्रकार थीं। परिणाम यह हुआ कि सन् १८३३ के चारटर एक्ट ने उन अङ्गरेज़ों के लिए कई तरह की नई सुविधाएँ भी कर दीं जो भारत में आकर बसना चाहते थे।

नैपाल के रेज़िडेण्ट ब्रायन हॉटन हॉजसन ने दिसम्बर सन् १८५६ में हिमालय की उर्वर घाटियों में यूरोपियनों के उपनिवेश बनाने के पक्ष में एक अत्यन्त ज़ोरदार पत्र लिखा। उसने लिखा—

"× × × हिमालय में अपने उपनिवेशों को बढ़ाना सरकार के सर्वोच्च और सबसे अधिक महत्वपूर्ण कर्त्तव्यों में से एक है।"

हॉजसन की राय में "भारत के अन्दर ब्रिटिश सत्ता को

---

* *Notes on Indian Affairs,* by Sir Frederick Shore.

स्थायी बनाने के लिए सब से बड़ा, सब से पक्का, सबसे निःशङ्क और सबसे सुगम राजनैतिक उपाय"* भारत के अन्दर अङ्गरेज़ों के उपनिवेश ही हो सकते थे।

हॉजसन की तजवीज़ थी कि आयर्लैण्ड और स्कॉटलैण्ड के किसानों को मुफ़्त ज़मीनें देकर भारत में बसने के लिए प्रोत्साहित किया जाय।

विप्लव के बाद इस विषय का आन्दोलन इङ्गलिस्तान में और भी अधिक ज़ोर के साथ होने लगा। इसी लिए सन् १८५८ में पार्लिमेण्ट ने वह तहक़ीक़ाती कमेटी क़ायम की जिसका ज़िक्र हम ऊपर कर चुके हैं।

इसके साथ ही साथ अनेक छोटे मोटे तरीक़ों से उस समय के अङ्गरेज़ शासकों ने अपने देशवासियों और विशेष कर पूँजीपतियों को भारत में आकर बसने के लिए उत्साहित करना शुरू किया। उदाहरण के लिए आसाम और कुमायूँ में अङ्गरेज़ सरकार ने हिन्दोस्तानियों के खर्च पर चाय की काश्त के तजरुबे किए, और यह खुले एलान कर दिया कि इन तजरुबों के सफल होने पर चाय के सरकारी खेत उन अङ्गरेज़ों को दे दिए जायँगे जो इस

---

* " . . . the encouragement of colonization therein is one of the highest and most important duties of the Government, . . . greatest, surest, soundest and simplest of all political measures for the stabilisation of the British power in India, . . ."—Brian Houghton Hodgson, Resident of Nepal, on the Colonization of the Himalayas by Europeans, December 1856.

कार्य के लिए आसाम और कुमायूँ में बसना चाहें। तजरुबे का सारा ख़र्च हिन्दोस्तानियों के सर पड़ा और दोनों स्थानों के चाय के खेत बाद में अङ्गरेज़ों के हवाले कर दिए गए। सरकार ही के ख़र्च पर कई अङ्गरेज़ों को इस लिए चीन भेजा गया कि वे चीन से चाय के बीज लाएँ, चीनी काश्त के तरीक़ों को सीखें और वहाँ से चीनी विशेषज्ञ साथ लाकर भारत में अपने व्यापार को उन्नति दें। गत डेढ़ सौ वर्ष से ऊपर के ब्रिटिश शासन में कभी किसी भारतीय व्यापार को उत्तेजना देने के लिए सरकार ने इस प्रकार के प्रयत्न नहीं किए। इन यूरोपियन पूँजीपतियों की बचत को पक्का करने के लिए भारतीय मजदूरों के सम्बन्ध में भारत सरकार ने इस तरह के क़ानून पास किए जिनसे सहस्रों भारतवासी इन लोगों के क़ानूनी ग़ुलाम बन गए। इन क़ानूनी ग़ुलामों के साथ अङ्गरेज़ पूँजीपतियों और उनके नौकरों का व्यवहार ब्रिटिश भारतीय इतिहास का एक अत्यन्त कलङ्कित अध्याय है।

ठीक इसी तरह धन इत्यादि की सहायता कुमायूँ ही में लोहे का धन्धा करने वाले अङ्गरेज़ों को दी गई।

नील की काश्त करने वाले अङ्गरेज़ों को भी भारतवासियों के धन से समय समय पर सहायता दी जा चुकी है और हिन्दोस्तानी मज़दूरों के साथ इन निलहे गोरों के घोर अमानुषिक व्यवहार का चरचा अनेक बार देशी समाचार पत्रों में हो चुका है। रेलों, सड़कों और उनके विचित्र नियमों द्वारा भी इन अङ्गरेज़ों को अपने कार्य में हर तरह की सहायता दी गई।

सन् १८५८ की कमेटी के सामने गवाहों ने यह सब बातें विस्तार के साथ बयान कीं। गवाहों में से कुछ की राय यह थी कि भारत के पहाड़ी प्रदेशों पर अङ्गरेज़ किसानों और मजदूरों को आबाद कर दिया जाय और भारत के मैदानों में इस तरह के अङ्गरेज़ों पूँजीपतियों को बसाया जाय जो अपने अधीन हिन्दोस्तानी किसानों और मजदूरों से काम ले सकें। इससे बढ़ कर कुछ लोगों की राय यह भी थी कि एलजीरिया (उत्तर अफ़रीका) के समान समस्त भारत में अङ्गरेज़ पूँजीपतियों से लेकर अङ्गरेज़ किसानों और मजदूरों तक को बसाया जा सकता है। अङ्गरेज़ों को भारत में जमींदारी करने के लिए अनेक तरह की सुविधाएँ दी जाने की सलाह हुई।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में अङ्गरेज़ों की बस्तियाँ बसाने के विरुद्ध थी और मुख्यकर इस तरह की बस्तियाँ क़ायम करने के उद्देश से ही कम्पनी के हाथों से शासन छीना गया था। यह बात कमेटी के सामने अनेक गवाहों ने अपने बयानों में स्वीकार की है। इन गवाहों में से हम केवल एक गवाह जे० जी० वॉलर का बयान नीचे उद्धृत करते हैं। उससे पूछा गया—

"भारत में यूरोपियनों को बसने में ख़ास ख़ास एतराज़ कौन से हो सकते हैं?"

गवाह ने उत्तर दिया—

"मैं समझता हूँ, मैं कई एतराज़ गिना चुका हूँ; किन्तु एक और एत-

राज़ इतने महत्व का है कि मेरे लिए उसे छोड़ देना अपने विषय के साथ इन्साफ़ करना न होगा। मैं समझता हूँ कि जो कम्पनी बतौर एक अमीन के बादशाह के नाम पर इस समय भारत पर शासन कर रही है, उसके हाथों से शासन का अधिकार ले लेना नितान्त आवश्यक है। यदि अङ्गरेज़ सरकार का वास्तविक उद्देश यह है कि हिन्दोस्तान में अङ्गरेज़ों को बसने के लिए प्रोत्साहित किया जाय, तो × × × मेरी राय है कि × × × अङ्गरेज़ अपने बादशाह के स्थान पर किसी बीच की कम्पनी का अधिकार स्वीकार न करेंगे। × × × मैं समझता हूँ कि न केवल अङ्गरेज़ों को भारत में उपनिवेश बनाने के लिए प्रेरित करने और प्रोत्साहित करने के लिए ही, बल्कि उस अत्यन्त विशाल देश पर अपना प्रभुत्व जमाए रखने के लिए भी भारत के शासन में लगभग फ़ौरन् गहरे परिवर्तन करना आवश्यक है; और इन परिवर्तनों के लिए केवल तभी मार्ग तैयार किया जा सकता है जब कि कम्पनी की जगह बादशाह का नाम और बादशाह का अधिकार क़ायम कर दिया जाय।"

किन्तु बावजूद कम्पनी के अन्त और इन समस्त प्रयत्नों, कमेटियों, गवाहियों, सुविधाओं, इरादों और उत्तेजना के गत ७० वर्ष के अन्दर संसार के अन्य देशों की तरह भारत में अङ्गरेजों की बस्तियाँ आबाद न हो सकीं। इस असफलता का क़ारण बयान करते हुए टाउनसेण्ड अपनी पुस्तक 'एशिया एण्ड यूरोप' में लिखता है—

"कहा जाता है कि भारत में गोरों की कमी का कारण वहाँ की आबो-हवा है, किन्तु वहाँ की पहाड़ियों पर भी तो कोई अङ्गरेज़ जाकर नहीं सता। अङ्गरेज़ न्यू साउथवेल्स (ऑस्ट्रेलिया) के गरम मैदानों में रहते हैं;

अमरीका के गोरे लोग × × × फ़्लोरिडा (मध्य अमरीका) के उन मैदानों में भरे हुए हैं जिनमें मारे गरमी के भभूके उठते हैं; स्पेन के लोग दोनों अमरीकाओं के गरम प्रदेशों में एक शासक जाति की हैसियत से बसे हुए हैं; डच लोग जावा में रह रहे हैं; किन्तु अङ्गरेज़, चाहे उन्हें कुछ भी प्रलोभन क्यों न दिए जायँ, भारतवर्ष में नहीं ठहर सकते। ऐसे ज़ोरों के साथ उनकी तबियत ऊबती है, इतने ज़ोरों के साथ वे इस बात को अनुभव करने लगते हैं कि हम यहाँ पर देश के निवासियों से नितान्त पृथक परदेशी हैं, कि फिर चाहे उन्हें कितनी भी क़ुरबानी क्यों न करनी पड़े, धन, पदवी अथवा अपने सुखकर कारबार में उन्हें कितनी भी हानि क्यों न सहनी पड़े, वे चुपचाप वहाँ से खिसक आते हैं।"*

निस्सन्देह भारत की भूमि के अभी तक अङ्गरेज़ी उपनिवेशों के शाप से बचे रहने का वास्तविक कारण यह है कि भारत एक प्राचीन, विशाल और अत्यन्त घना बसा हुआ देश है। अङ्गरेज़ों के लिए न यहाँ की करोड़ों जनता को मिटा कर उनकी जगह लेना इतना सरल है जितना ऑस्ट्रेलिया के अर्धसभ्य आदिमवासियों को मिटा कर उनकी जगह लेना, और न वे यूरोपनिवासी, जो अभी तक 'सभ्यता' के उच्चतर अङ्गों में भारतवासियों से कहीं पीछे हैं, जिनके और भारतवासियों के चरित्रों, रहन सहन और आदर्शों में इतना ज़बरदस्त अन्तर है, बिना अपना जातीय व्यक्तित्व खोए भारतवासियों के साथ किसी तरह भी मिल जुल कर भारत में रह सकते हैं।

---

* Meredith Townsend's *Asia and Europe*, p. 87.

५—राष्ट्रीय भावों का नाश

सन् १८१३ के 'चारटर एक्ट' में एक धारा यह भी थी कि जो अङ्गरेज़ ईसाई पादरी भारतवासियों के "धार्मिक उद्धार" के लिए "भारत जाना चाहें और वहाँ रहना चाहें," उन्हें "क़ानून के ज़रिए हर प्रकार की सुविधा" दी जाय। चुनाँचे इसके बाद से ही "ईसाई धर्म प्रचार का एक मोहकमा (एक्लेज़िएस्टिकल डिपार्टमेण्ट)" भारत में खोल दिया गया और उसका ख़र्च ज़बरदस्ती भारतवासियों के सिर मढ़ दिया गया।

सन् ५७ के विप्लव के बाद अङ्गरेज़ नीतिज्ञों में इस विषय पर खूब बहसें होने लगीं। मार्च सन् १८५८ की अङ्गरेज़ी पत्रिका "दी कैलकटा रिव्यु" में निम्नलिखित वाक्य मिलता है—

"चारों ओर हमें × × × इस समय की आवाज़ें सुनाई दे रही हैं, जिनमें ज़ोरों के साथ यह सलाह दी जाती है कि हमें क्या करना चाहिए। कोई कहता है, 'भारत को अवश्य ईसाई बना लेना चाहिए' कोई कहता है, 'भारत भर में अङ्गरेज़ों को बसाना चाहिए' कोई कहता है, 'मुसलमानों के मज़हब को दबा देना चाहिए' कोई कहता है, 'हमें हिन्दोस्तानी ज़बान को ख़त्म कर देना चाहिए और उसकी जगह अपनी मातृभाषा (अङ्गरेज़ी) प्रचलित कर देनी चाहिए'। ये इनमें से थोड़ी सी आवाज़ें हैं।"*

---

* " . . . on every hand, we hear the voices of the times, . . . urging the popular measure of the hour, 'India must be christianized'—'India must be colonized'—'The Mohammedan religion must be suppressed,'—'We must abolish the vernacular

वास्तव में विप्लव के बाद अधिकांश अङ्गरेज़ नीतिज्ञ इस बात को और अधिक ज़ोरों के साथ अनुभव करने लगे थे कि भारत-वासियों के दिलों से राष्ट्रीयता के रहे सहे भावों को मिटा देना और आयन्दा इस तरह के भावों को पनपने न देना अङ्गरेज़ी साम्राज्य की स्थिरता के लिए आवश्यक है। इसके दो मुख्य उपाय सोचे गए—(१) भारत में ईसाई मत प्रचार और (२) अङ्गरेज़ी शिक्षा।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि मलका विक्टोरिया ने अपने एलान में यह वादा किया था कि मज़हब के मामले में अङ्गरेज़ सरकार किसी तरह का पक्षपात न करेगी। किन्तु विप्लव के केवल अगले ही वर्ष इङ्गलिस्तान के प्रधान मन्त्री लॉर्ड पॉमर्सटन ने ईसाई-पादरियों के एक डेपुटेशन के उत्तर में कहा—

"मालूम होता है कि अन्तिम लक्ष्य के विषय में हम सब का एक ही मत है। समस्त भारत में पूर्व से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक ईसाई मत के फैलाने में जहाँ तक हो सके मदद देना, न केवल हमारा कर्त्तव्य है, वरन् इसी में हमारा हित है।"*

---

and substitute our mother tongue,' such are but a few,"—*The Calcutta Review*, March 1858, p.163.

* " We seem to be all agreed as to the end. It is not only our duty, but it is our interest to promote the diffusion of Christianity as far as possible throughout the length and breadth of India."—Lord Palmerston, to a deputation headed by the Archbishop of Canterbury, in 1859, *The Conversion of India*, by George Smith, C. I. E., L. L. D., p. 233.

विप्लव पर टीका करते हुए अनेक अङ्गरेज पादरियों ने कहा—

"हमारे दुश्मन वे मुसलमान थे जिनके मज़हब की तारीफ़ करके हमने उन्हें फुला दिया, और वे हिन्दू थे जिनके अन्धविश्वासों को हमने पुष्ट किया; किन्तु हमारे सच्चे मित्र वे हिन्दोस्तानी थे जिन्हें हमारे पादरियों ने ईसाई बना लिया था।"

इन लोगों के ईसाई मत प्रचार का एक मात्र उद्देश अपने साम्राज्य को पक्का करना था। विलियम एडवर्ड्स विप्लव के दिनों में कम्पनी का मुलाज़िम था और बाद में आगरा हाईकोर्ट का एक जज हुआ। उसकी राय थी—

"हम विदेशी आक्रमक और विजेता समझे जाते हैं और सदा समझे जायँगे, × × × हमारे लिए अपनी रक्षा का सबसे अच्छा उपाय यह है कि हम देश को ईसाई बना लें; × × × देशी ईसाइयों की बस्तियाँ जब देश में इधर उधर फैल जायँगी तो वे अनेक वर्षों तक हमारी मज़बूती के लिए स्तम्भों का काम देंगी, क्योंकि जब तक अधिकांश जनता मूर्तिपूजक और मुसलमान रहेगी, तब तक ये ईसाई लोग अवश्य राजभक्त रहेंगे।"*

लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क के प्रयत्नों और पञ्जाब को ईसाई बनाने की तजवीज़ों का ज़िक्र इसके पूर्व किया जा चुका है।

* "We are, and ever must be, regarded as foreign invaders and conquerors, . . . Our best safeguard is in the evangelization of the country; . . . . Christian settlements scattered about the country would be as towers of strength for many years to come, for they must be loyal as long as the mass of the people remain either idolaters or Mohammedans."—William Edwardes.

जो उद्देश भारतवासियों को ईसाई बनाने या मुसलमानों को दबाने से था वही भारत में अङ्गरेज़ी शिक्षा के प्रचार से था। लॉर्ड मैकॉले इस शिक्षा का सब से ज़बरदस्त हामी था और उसके असली विचारों का ज़िक्र हम ऊपर शिक्षा के अध्याय में कर चुके हैं।

भारत की विचित्र स्थिति में देश को ईसाई बनाने का प्रयत्न अधिक न चल सका और न अधिक खुले तौर पर उसे शासन नीति का एक अङ्ग बनाया जा सका, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अङ्गरेज़ी शिक्षा ने एक खासी श्रेणी ऐसे लोगों की पैदा कर दी है, जो अपनी रोज़ी के लिए अङ्गरेज़ी राज्य पर निर्भर हैं, जो उस राज्य के विशेष स्तम्भ हैं, जिनके रहन सहन और भारतीय जनता के रहन सहन में बहुत बड़ा अन्तर पैदा हो गया है, और जिनमें सामूहिक दृष्टि से राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रीय मान के भावों का लगभग अभाव है।

६—भारत के द्रव्य-साधनों को उन्नति देना

वर्तमान यूरोप की राजनैतिक परिभाषा में किसी देश पर शासन करना और उस देश से धन खींचना दोनों समानार्थी हैं। भारत की 'लूट' से ही इङ्गलिस्तान के और विशेष कर लङ्काशायर के कारखाने चले, जिसका ज़िक्र पिछले एक अध्याय में किया जा चुका है। विप्लव के बाद "भारत के द्रव्य-साधनों को उन्नति देने (Development of the resources of India)" का विशेष चरचा सुना जाने लगा। इसके छै मुख्य उपाय सोचे गए।

(क) भारत में रेलों का जारी करना

भारत में रेलें उसी धन से जारी की गईं जो भारत ही के व्यापार आदिक से अङ्गरेज़ों ने कमाया था। हम एक पिछले अध्याय में दिखा चुके हैं कि इस तरह के कार्यों के लिए कभी एक पैसा भी इङ्गलिस्तान से लाकर हिन्दोस्तान में खर्च नहीं किया गया। इसके अतिरिक्त पार्लिमेण्ट के एक मेम्बर स्विफ़्ट मैकनील ने १४ अगस्त सन् १८९० को कहा था—

"यह हिसाब लगाया जा चुका है कि जितना धन भारत में रेलों पर ख़र्च किया जाता है, उसमें से हर शिलिङ्ग पीछे आठ पेंस (अर्थात् दो तिहाई) इङ्गलिस्तान चला आता है।"*

रेलों के अन्य उद्देश हैं—भारत से गेहूँ, कपास आदि इङ्गलिस्तान भेज सकना, इङ्गलिस्तान का बना हुआ माल भारत के कोने कोने में पहुँचाना और आवश्यकता पड़ने पर इधर से उधर तक सेनाओं का ले जा सकना। निस्सन्देह ये रेलें भारतवासियों के धन, उनके धन्धों और उनके स्वास्थ्य तीनों के लिए नाशक और असंख्य ग्रामों को उजाड़ देने वाली साबित हुई हैं।

(ख) रुई की काश्त

इङ्गलिस्तान को अपने कपड़े के धन्धे के लिए रुई पहले अमरीका से लेनी पड़ती थी। बरार, सिन्ध और पञ्जाब अपनी सुन्दर

---

* " It has been computed that out of every shilling spent in railway enterprise, 8d. makes its way to England."—Swift Macneill in the House of Commons 14th August, 1890.

रुई के लिए प्रख्यात थे। इन देशों पर अङ्गरेज़ों के क़ब्ज़े का एक विशेष उद्देश यह था कि इङ्गलिस्तान के कारख़ानों को सस्ती रुई भेजी जा सके। सन् १८५८ के बाद इसके लिए विशेष प्रयत्न किए गए। एक नई 'ईस्ट इण्डिया कॉटन कम्पनी' क़ायम की गई और रुई की काश्त तथा उसके इङ्गलिस्तान भेजे जाने की ओर विशेष ध्यान दिया गया। ब्रिटिश भारतीय सम्बन्ध का सब से मुख्य रूप ही उस समय से आज तक कच्ची रुई का भारत से इङ्गलिस्तान ले जाना और इङ्गलिस्तान के बने हुए कपड़ों का भारत में लाकर बेचना है। यही इङ्गलिस्तान के लोगों की जीविका का सबसे बड़ा सौदा है।

(ग) अङ्गरेज़ पूँजीपतियों को सुविधाएँ

भारत में धन्धा करने वाले अङ्गरेज़ पूँजीपतियों को शुरू से विशेष सुविधाएँ मिलती रही हैं। चाय और नील की खेती कराने वाले अङ्गरेज़ों के साथ सरकार की रिआयतों का ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है। सन् १८६० में सर एशले एडन ने, जो बाद में बङ्गाल का लेफ़्टिनेण्ट गवरनर हुआ, साफ़ कहा था कि,—"नील की काश्त कभी भी लोग अपनी इच्छा से नहीं करते, बल्कि सदा उनसे ज़बरदस्ती कराई जाती है।" ब्रिटिश भारत में चाय और नील की काश्त का इतिहास ग़ुलामी की प्रथा का लज्जाजनक इतिहास है।

(घ) भारत में अङ्गरेज़ों को नौकरियाँ

यह भी ब्रिटिश सत्ता को मज़बूत रखने का एक उपाय है।

अनेक अङ्गरेज़ों ने स्वीकार किया है कि आम तौर पर अङ्गरेज़ों को जो तनख़ाहें भारत में दी जाती हैं उससे आधी भी उन्हें इङ्गलिस्तान अथवा किसी दूसरे देश में न मिल सकतीं।

(च) शासन प्रबन्ध से भारतवासियों को दूर रखना

इङ्गलिस्तान के हित में भारत का अहित और भारत के हित में इङ्गलिस्तान का अहित है। एक के उद्योग धन्धों की उन्नति में दूसरे की हानि है और एक की खुशहाली में दूसरे की निर्धनता। इसलिए शासन-प्रबन्ध में कोई वास्तविक अधिकार हिन्दोस्तानियों को देना विदेशी शासकों के लिए हितकर नहीं हो सकता।

कप्तान पी० पेज ने लन्दन के ईस्ट इण्डिया हाउस में बैठ कर ९ अप्रेल सन् १८१९ को अपने एक मेमोरण्डम में लिखा कि—

"मैं भारतवासियों की नेक चलनी के इनाम में उनकी इज़्ज़त बढ़ा दूँगा, किन्तु उनके हाथ में सत्ता कभी न दूँगा, × × ×

"× × × यही उसूल रोमन लोगों का था। हम भारतवासियों के हाथों में बिना किसी प्रकार की सत्ता दिए उनकी ख़ैरख़्वाही अपनी ओर बनाए रख सकते हैं। उन्हें केवल सत्ता का आभास देना काफ़ी होगा; और यद्यपि व्यक्तिगत जीवन में मैं रोशफ़ॉकल्ट के इस उसूल को घृणा की दृष्टि से देखता हूँ कि मनुष्य अपने मित्रों के साथ भी इस प्रकार से रहे कि मानो एक दिन वे अवश्य उसके शत्रु बनने वाले हैं, तथापि मैं समझता हूँ कि भारत के शासकों के लिए इस उसूल को सदा ध्यान में रखना ही उचित है।"*

---

* " I would reward good conduct (of Natives) with honour but never with power.

(छ) क़ानून और अदालतें

इङ्गलिस्तान के हित में 'भारत के द्रव्य-साधनों को उन्नति देने' का निस्सन्देह एक बड़ा ज़बरदस्त उपाय क़ानून और कचहरियाँ हैं। जो 'ताज़ीरात हिन्द' वर्षों पहले लॉर्ड मैकॉले ने बनाया था वह सन् १८५७ के विप्लव के बाद क़ानून की शकल में रायज हुआ। निस्सन्देह ब्रिटिश साम्राज्य को मज़बूत करने और भारतवासियों को चरित्र-भ्रष्ट करने का इससे बढ़ कर यन्त्र नहीं सोचा जा सकता था।

७—भारतीय सेना का सङ्गठन

भारतवासियों की अपूर्व वीरता और उनमें देशभक्ति के अभाव के कारण भारतीय सिपाहियों ने विदेशी राज्य के संस्थापन में सदा ज़बरदस्त हिस्सा लिया है। तथापि विप्लव के बाद सेना के नए सङ्गठन के लिए एक रॉयल कमीशन नियुक्त हुआ। कुछ की तजवीज़ थी कि केवल अङ्गरेज़ और दोग़ले सिपाही भारतीय सेना

" *Nullum imperium tutum, nisi benevolentia munitum.* The good will of the Natives may be retained without granting them power, the semblance is sufficient; and although I abhor in private life that maxim of Rochefaucult's which recommends a man to live with his friends as if they were one day to be his enemies, I think it may be remembered with effect by the sovereigns of India."—Captain P. Page in his Memorandum, dated East India House, April 9th, 1819, *Report of the Select Committee, 1832*, vol. v, pp. 480-483.

में रक्खे जायँ, किन्तु इससे काम न चल सकता था। कुछ और लोगों की तजवीज़ थी कि अङ्गरेज़ सिपाहियों के साथ साथ थोड़े से अरब, बरमी और अफ़रीका के हब्शी भी भारतीय सेना में भरती किए जायँ। इस तरह की सलाहें देने वाले विप्लव से डर गए थे और हिन्दोस्तानी सिपाहियों की पलटनों को बिलकुल तोड़ देना चाहते थे। किन्तु इस तजवीज़ से भी काम न चल सका। अन्त को यह तजवीज़ ठहरी कि हिन्दोस्तानी पलटनों में ब्रिटिश भारतीय प्रजा के मुक़ाबले में नैपाल के गोरखों, सरहद के पठानों, जम्मू के डोगरों, राजपूताने के राजपूतों, पटियाले आदिक के सिखों और मराठा रियासतों के मराठों को तरजीह दी जाय। तोपखाने की नौकरियाँ अविश्वास के कारण देशी सिपाहियों के लिए बन्द कर दी गईं, क्योंकि अङ्गरेज़ लेखक कॉलफ़ील्ड के अनुसार—"इस मोहकमे में हिन्दोस्तानी सब से अधिक योग्यता प्राप्त कर लेते हैं।" देशी सिपाहियों को गोरे सिपाहियों के मुक़ाबले में घटिया हथियार मिलने लगे। फ़ौज के बड़े बड़े और असली ज़िम्मेवारी के रुतबे उनके लिए बन्द होगए।

करनल मालेसन लिखता है—

"अपने देशी सिपाहियों के साथ हमारी बेवफ़ाई (Bad faith) थी जिसने उनके दिलों को हमारी ओर से सशङ्क कर दिया × × ×

"सिपाहियों की ओर हमारी यह बेवफ़ाई ठीक पहले अफ़ग़ान युद्ध के बाद से शुरू हो जाती है।"

विप्लव को दमन करने का सारा ख़र्च यहाँ तक कि इङ्गलिस्तान

में गोरे सिपाहियों को शिक्षा देने और उनके भारत आने जाने का ख़र्च हिन्दोस्तान से वसूल किया गया। हिन्दोस्तान से बाहर के अंङ्गरेज़ों के अनेक युद्धों का ख़र्च भी हिन्दोस्तान से लिया गया है। मेजर विनगेट लिखता है कि सन् १८५९ में ९१,८९७ अङ्गरेज़ सिपाही भारत में पल रहे थे और इनके अतिरिक्त १६,४२७ अङ्गरेज़ सिपाही ऐसे थे जो उस समय इङ्गलिस्तान में रहते थे, इङ्गलिस्तान की रक्षा करते थे, और जिन्हें तनख़ाहें हिन्दोस्तान से दी जाती थीं। जब कभी इङ्गलिस्तान से हिन्दोस्तान पलटनें लाने की आवश्यकता होती थी तो उन गोरी पलटनों के इङ्गलिस्तान से चलने के छः महीने पहले तक की तनख़ाहें और तमाम ख़र्च भारत से लिया जाता था। भारतीय सेना के नए सङ्गठन द्वारा अङ्गरेज़ी सेना की संख्या बढ़ा दी गई, भारत से अङ्गरेज़ों की आमदनी बढ़ गई, देशी सिपाहियों की अवस्था और अधिक हीन होगई, भारत के शासन का आर्थिक भार बढ़ गया, और देश की शृङ्खलाएँ और अधिक मजबूत होगईं।

८—भेदनीति

सन् १८१३ में सर जॉन मैलकम ने, जो उन विशेष अनुभवी नीतिज्ञों में से था, जिन्होंने १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत के अन्दर अङ्गरेज़ी साम्राज्य को विस्तार दिया, पार्लिमेण्ट की तहक़ीक़ाती कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा था—

"इस समय हमारा साम्राज्य इतनी दूर तक फैला हुआ है कि जो

असाधारण ढङ्ग की हुकूमत हमने उस देश में स्थापित की है उसके बने रहने के लिए केवल एक बात का हमें सहारा है, वह यह कि जो बड़ी बड़ी जातियाँ इस समय अङ्गरेज़ सरकार के अधीन हैं वे सब एक दूसरे से अलग अलग हैं, और जातियों में भी फिर अनेक जातियाँ और उप-जातियाँ हैं; जब तक ये लोग इस तरह एक दूसरे से बटे रहेंगे, तब तक हमें इस बात का डर नहीं है कि कोई भी बलवा हमारी सत्ता को हिला सके।"*

इसके कुछ वर्ष बाद एक अङ्गरेज़ अफ़सर ने लिखा था—

"हमारी अन्तर्राष्ट्रीय, मुल्की और फ़ौजी तीनों तरह की भारतीय शासन-नीति का उसूल, 'फूट फैलाओ और शासन करो' होना चाहिए।"†

सन् १८३१ की जाँच के समय मेजर-जनरल सर लिओनेल स्मिथ ने कहा था—

"× × × अभी तक हमने साम्प्रदायिक और धार्मिक पक्षपात के

---

* "In the present extended state of our Empire, our security for preserving a power of so extraordinary a nature as that we have established, rests upon the general division of the great communities under the Government, and their subdivision into various castes and tribes; while they continue divided in this manner, no insurrection is likely to shake the stability of our power."—Sir John Malcolm, before the Parliamentary Committee of 1813.

† "*Divide et impera* should be the motto of our Indian administration, whether political, civil, or military."—Carnatus in the *Asiatic Journal*, May 1821.

द्वारा ही मुल्क को वश में रक्खा है—और हिन्दू मुसलमानों को तथा इसी प्रकार अन्य जातियों को एक दूसरे से लड़ाए रक्खा है × × ×।"*

विप्लव के बाद करनल जॉन कोक ने, जो उस समय मुरादाबाद की पलटनों का कमाण्डर था, लिखा कि—

"हमारी कोशिश यह होनी चाहिए कि भिन्न भिन्न धर्मों और जातियों के लोगों में हमारे सौभाग्य से जो अनैक्य मौजूद है उसे पूरे ज़ोरों में क़ायम रक्खा जाय, हमें उन्हें मिलाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। भारत सरकार का उसूल यही होना चाहिए,—'फूट फैलाओ और शासन करो।'"†

१४ मई सन् १८५९ को बम्बई के गवरनर लॉर्ड एलफ़िन्सटन ने अपने एक सरकारी पत्र में लिखा कि—

"पुराने रोम के शासकों का उसूल था—'फूट फैलाओ और शासन करो,' और यही हमारा उसूल होना चाहिए।"‡

---

* ". . . the prejudices of sects and religions by which we have hitherto kept the country—the Mussalmans against Hindoos, and so on ; . . ."—Major-General Sir Lionel Smith, K. C. B., before the Enquiry Committee of 1831.

† "Our endeavour should be to uphold in full force the (for us fortunate) separation which exists between the different religions and races, not to endeavour to amalgamate them. *Divide et impera* should be the principle of Indian Government." —Lieut.-Colonel John Coke, Commandent at Muradabad.

‡ "*Divide et impera* was the old Roman Motto, and it should be ours."—Lord Elphinstone, Governor of Bombay, in a Minute, dated 14th May, 1859.

हमें इस तरह के और उद्धरण देने की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में किसी देश के अन्दर विदेशी शासन को चिरस्थायी रखने का सबसे ज़बरदस्त उपाय यही है।

जिस प्रकार एक मज़हब और दूसरे मज़हब के लोगों में फूट डालने का प्रश्न है, उसी प्रकार एक प्रान्त और दूसरे प्रान्त के लोगों में। विप्लव के बाद एक तजवीज़ यह की गई थी कि भारतीय सरकार के अधिकारों को कुछ कम कर दिया जाय और विविध प्रान्तीय सरकारों को अपने अपने यहाँ के शासन में अधिक स्वतन्त्रता दे दी जाय। इस तजवीज़ का नाम उसके असली लक्ष्य को छिपाने के लिए 'प्रान्तीय स्वाधीनता (Provincial autonomy)' रक्खा गया। मेजर जी० विनगेंट ने १३ जुलाई सन् १८५८ को पार्लिमेण्ट को सिलेक्ट कमेटी के सामने इस तजवीज़ के लक्ष्य को इस प्रकार वर्णन किया था—

प्रश्न—आप कहते हैं कि एक केन्द्रीय सरकार से कई तरह के ख़तरे हैं और आप कहते हैं कि इससे देशवासियों में एक समान भाव और एक समान लक्ष्य पैदा होंगे जो हमारे लिए ख़तरनाक हो सकते हैं ?

उत्तर—हाँ ! मैं समझता हूँ कि यदि कोई एक ऐसी बात हुई कि जिसमें समस्त भारतवासी दिलचस्पी लेने लगे तो उससे विदेशी शासन को अधिक हानि पहुँचने की सम्भावना है, बनिस्बत किसी भी ऐसी बात के कि जिसका आन्दोलन साम्राज्य के केवल एक भाग तक परिमित हो। यदि किसी प्रश्न पर सारे साम्राज्य भर में

आन्दोलन होने लगे तो निस्सन्देह किसी ऐसे प्रश्न की अपेक्षा, जिसका सम्बन्ध केवल एक प्रान्त के लोगों से हो, विदेशी सत्ता के लिए यह कहीं अधिक ख़तरनाक होगा।*

इस 'प्रान्तीय स्वाधीनता' का असली लक्ष्य यही था कि विविध प्रान्तों के लोगों में परस्पर प्रेम और राष्ट्रीयता अर्थात् भारतीयता के भाव पैदा होने न पाएँ।

९—भारत से इङ्गलिस्तान को ख़िराज

वाह्य दृष्टि में भारत इङ्गलिस्तान को कोई ख़िराज नहीं देता, किन्तु मेजर विनगेट ने बड़ी योग्यता के साथ साबित किया है कि जो रक़म 'होम चार्जेज़' के नाम से भारत सरकार हर साल इङ्गलिस्तान भेजती है, वह वास्तव में भारतवर्ष का इङ्गलिस्तान को ख़िराज है। सन् १८३४ से १८५१ तक १७ वर्ष के अन्दर ५,७६,००,००० पाउण्ड अर्थात् लगभग ७५ करोड़ रुपए से कुछ अधिक इस मद में भारत से इङ्गलिस्तान भेजा गया। इस रक़म के बदले में भारत को कुछ भी प्राप्त न हुआ और न भारत को इससे कोई लाभ हुआ। जो रक़में प्रतिवर्ष अङ्गरेज़ व्यक्तियों ने अपने और अपने कुटुम्बियों के सुख के लिए भारत से इङ्गलिस्तान भेजीं, तथा जो विशाल धन इङ्गलिस्तान के लोगों ने भारत के व्यापार से कमाया, उस सब का इस रक़म से कोई सम्बन्ध नहीं। इसके

---

* Major G. Wingate, before the Parliamentary Committee, 13th, July 1858.

अतिरिक्त भारत से कमाए हुए धन में से ३,६०,००,००० पाउण्ड विविध अङ्गरेज़ों का उस समय भारत सरकार के पास क़रज़े की शकल में जमा था।

अन्तिम शब्द

विप्लव के बाद का गत ७० वर्ष का विस्तृत इतिहास इस पुस्तक के प्रसङ्ग से बाहर है। किन्तु कहानी वही है। आजकल की परिस्थिति में किसी भी देश का दूसरे देश पर शासन न उन उपायों के अतिरिक्त किसी दूसरे उपायों द्वारा क़ायम हो सकता है जिनका इस पुस्तक भर में वर्णन है, न किसी दूसरे उपायों द्वारा जारी रक्खा जा सकता है, और न उसके इससे भिन्न कोई दूसरे परिणाम हो सकते हैं।

लॉर्ड मैकॉले ने सच कहा है—

"मुझे विश्वास है कि सब प्रकार के अन्यायों में सबसे बुरा अन्याय एक क़ौम का दूसरी क़ौम पर अन्याय करना है।"*

अमरीका के प्रसिद्ध राष्ट्रपति इब्राहीम लिङ्कन ने एक स्थान पर लिखा है—

"कोई क़ौम भी इतनी भली नहीं हो सकती जो कि दूसरी क़ौम पर शासन कर सके।"†

---

* "Of all forms of tyranny I believe the worst is that of a nation over a nation."—Lord Macaulay.

† "There is no nation good enough to govern another nation."—President Abraham Lincoln.

यदि प्लासी के मैदान से ही भारत में अङ्गरेज़ी राज्य का आरम्भ मान लिया जाय, तो गत १७० वर्ष के विदेशी शासन का परिणाम भारत के लिए सिवाय दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई भयङ्कर दरिद्रता, निर्बलता, आए दिन के दुष्काल, मलेरिया, इनफ़्लुएञ्ज़ा और प्लेग के और कुछ न हो सका। इङ्गलिस्तान के लिए भी, यदि आज भारत के ऊपर से अङ्गरेज़ों का राज्य हट जाय तो कल लङ्का-शायर के तमाम पुतलीघर तथा देश के अन्य असंख्य कारख़ाने, जो भारतीय पराधीनता ही के सहारे चल रहे हैं, बन्द हो जायँ, लाखों अङ्गरेज पूँजीपति तथा मजदूर बेरोज़गार हो जायँ और सारा देश आश्चर्यजनक तेज़ी के साथ दरिद्रता, अवनति तथा बरबादी की ओर जाता हुआ दिखाई देने लगे। नैतिक क्षेत्र में दोनों देशों के लिए परिणाम इससे भी अधिक नाशकर है। प्रत्येक अन्याय अन्यायी तथा अन्याय-पीड़ित दोनों के लिए एक समान घातक होता है। एक क़ौम के ऊपर दूसरी क़ौम के बलात् शासन द्वारा शासक क़ौम के अन्दर स्वार्थान्धता, क्रूरता और अविवेक का बढ़ते जाना और विवेक, सहृदयता तथा मानव-प्रेम जैसे उच्चतर गुणों का लोप होते जाना स्वाभाविक तथा अनिवार्य है। इसी प्रकार शासित क़ौम के अन्दर दिन प्रति दिन स्वार्थ, अनैक्य और कायरता का बढ़ते जाना और प्रेम, आत्मविश्वास तथा साहस का कम होते जाना भी उतना ही स्वाभाविक है। वास्तव में इस प्रकार का अप्राकृतिक सम्बन्ध धीरे धीरे दोनों देशों को नाश तथा मृत्यु की ओर ले जाए बिना नहीं रह सकता।

संसार के अन्य देशों के लिए भी किसी दो देशों में इस प्रकार का सम्बन्ध हितकर नहीं हो सकता। जरमनी, इतालिया, जापान, अमरीका जैसे बलवान देशों में इङ्गलिस्तान के विस्तृत साम्राज्य को देख देख कर ईर्षा और बेचैनी उत्पन्न होना, और भारत की ग़ुलामी के कारण अफ़ग़ानिस्तान, ईरान, ईराक़, टरकी और मिश्र जैसी निर्बल जातियों की स्वाधीनता का और अधिक खतरे में पड़ना स्वाभाविक है। अपने भारतीय साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिए ही इङ्गलिस्तान को बार बार अफ़ग़ानिस्तान में अनुचित हस्तक्षेप की सूझती है। मिश्र के प्रसिद्ध देशभक्त ज़ाग़लूल पाशा ने सच कहा था कि भारत पर अपना साम्राज्य बनाए रखने के लिए इङ्गलिस्तान को नहर सुएज़ की आवश्यकता है, और नहर सुएज़ पर क़ब्ज़ा रखने के लिए मिश्र को पराधीन करने की, इत्यादि। इसके अतिरिक्त भारत जैसे विशाल देश का साम्राज्य विदेशी शासकों के हाथों में इस प्रकार के लाखों सस्ते वैतनिक और सिद्धान्तशून्य सिपाही दे देता है जिनका अन्य देशों को पराधीन करने में आसानी से उपयोग किया जा सकता है। सारांश यह कि दो देशों का इस प्रकार का अप्राकृतिक सम्बन्ध संसार के किसी भी देश के लिए हितकर नहीं हो सकता।

इस नाशकर परिस्थिति का उपाय केवल एक है,—अर्थात् दोनों देशों के इस अधर्म्य सम्बन्ध का, जितने शीघ्र हो सके, अन्त कर देना। साधन भी स्पष्ट है। और वह साधन मुख्यकर शासित क़ौम के हाथों में है। ऊपर के अध्यायों से प्रकट है कि इस तरह का

शासन न विना शासितों की सहायता के क़ायम हो सकता था और न विना उनके सहयोग के चल सकता है। विदेशी व्यापार द्वारा शासित देश से धन का सञ्चय आज कल की शासक जातियों का आहार है। इसी प्रकार शासितों में परस्पर अविश्वास और अनैक्य और विदेशी शासकों के साथ उनका सहयोग वह जलवायु है, जिसके विना विदेशी शासन किसी देश में एक क्षण के लिए भी जीवित नहीं रह सकता।

विदेशी वस्तुओं, और विशेष कर इन दोनों देशों की वर्त्तमान स्थिति में, विदेशी वस्त्रों का वहिष्कार कर अपने निर्धन देशवासियों के हाथ के कते और हाथ के बुने वस्त्रों के उपयोग द्वारा विदेशी शासकों के मार्ग से सब से प्रबल प्रलोभन को दूर कर देना, और देशवासियों में परस्पर विश्वास तथा ऐक्य का सञ्चार कर अपने क्षणिक व्यक्तिगत स्वार्थ को तिलाञ्जलि दे, शासन के अथवा शासन से सम्बन्ध रखने वाले हर विभाग में शासकों के साथ बढ़ता हुआ असहयोग—ये दो ही इस अप्राकृतिक और नाशकर सम्बन्ध को अन्त करने के केवल मात्र उपाय हैं। यही भारत के लिए उद्धार का एक मात्र मार्ग और भारतवासियों के लिए धर्म का एक मात्र पथ है। इसी पर भारत तथा इङ्गलिस्तान दोनों का जीवन निर्भर है। इसी में इन दोनों देशों का तथा इनके द्वारा शेष संसार का वास्तविक भावी कल्याण है।